सम्मतियां

पारख सिद्धांत के गम्भीर चिन्तक, वैराग्यप्रवर, ज्ञान-वयोवृद्ध श्रद्धेय श्री प्रेम साहेब की सम्मति

सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन एवं कर्तृत्व इतने महनीय हैं कि उन पर जितना लिखा जाय थोड़ा है। सद्गुरु कबीर के जीवन काल से लेकर अब तक उन पर अनेक सन्त, लेखक, विद्वान लिखते ही आ रहे हैं; परन्तु एक ओर जहां लेखकों द्वारा सद्गुरु कबीर के विभिन्न पहलुओं पर काफी प्रकाश डाला गया, वही दूसरी ओर इन विद्वानों द्वारा उनके बारे में काफी भ्रम व अन्ध-विश्वास को प्रश्रय भी मिला। इसलिए आवश्यकता थी किसी अधिकारी लेखक द्वारा सद्गुरु कबीर के सम्पूर्ण पार्श्वों पर निष्पक्ष दृष्टि से गम्भीर चिन्तन द्वारा स्वस्थ समाधान प्रस्तुत करने की। इस सन्दर्भ में सन्त श्री अभिलाष साहेब कृत "कबीर दर्शन" एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

कबीर दर्शन लेखक के गहन चिन्तन, निष्पक्ष दृष्टि, यथार्थ अनुभव का परिचय देता है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने सद्गुरु कबीर द्वारा प्रवर्तित "पारख सिद्धान्त" का तार्किक शब्दों में प्रतिपादन तो किया ही है, उनके बारे में फैले हुए भ्रम व अन्धविश्वास की आलोचना इतने मार्मिक शब्दों में की है कि चित्त बरबस आकर्षित हो जाता है। पुस्तक एक बार हाथ में लेकर बिना पढ़े रखने को मन नही करता।

आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि सद्गुरु कबीर के जीवन, दर्शन एवं कर्तृत्व आदि पर खोज करने वाले शोधकर्ताओं को "कबीर दर्शन" से एक नया प्रकाश तो मिलेगा ही, जिज्ञासु-मुमुक्षुओं को भी परमार्थ मार्ग में एकरस टिके रहने के लिए पर्याप्त सबल प्राप्त होगा। इसके लिए लेखक को अनेक साधुवाद।

अंगुलि चन्द्र दर्शन संकेत न्याय यह दो शब्द कबीर दर्शन के गंभीरता भरे संदर्भों को देखकर उत्कण्ठा से प्रेरित—

कबीर मन्दिर दलसराय **प्रेमदास**
बाराबंकी

हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान एवं कबीर तथा कबीर वाणी के प्रसिद्ध आलोचक मनीषी डा० रामकुमार वर्मा की सम्मति

महात्मा अभिलाष दास द्वारा लिखित 'कबीर दर्शन' ग्रन्थ अपने विषय का अनूठा ग्रंथ है। इसमें बीजक में अन्तर्भूत सिद्धान्तों की मार्मिक विवेचना के साथ संत कबीर पर लिखे गये अन्य साहित्य ग्रंथों की भी गहन विवेचना है। कबीर पन्थ के इतिहास के साथ सन्तों के जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है जिससे यह ग्रन्थ अपने विषय का एक विश्वसनीय और प्रामाणिक आलेख बन गया है।

मैं महात्मा अभिलाष दास जी को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए निवेदन करता हूं कि वे संत कबीर की वाणी का अधिकाधिक उद्घाटन करें। प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वागत करते हुए मैं उन्हें बधाई और साधुवाद देता हूं।

साकेत, इलाहाबाद — रामकुमार वर्मा
१७-१०-८२

साहित्य, दर्शन एवं संगीत के बहुश्रुत तथा कबीर वाङ्मय के चिन्तक मनीषी डा० जयदेव सिंह की सम्मति

आदरणीय श्री सन्त अभिलाष जी ने 'कबीर दर्शन' ग्रन्थ कृपा कर मेरे पास भेजा। इसका मुख्य-मुख्य अंश मैंने पढ़ लिया है।

ग्रंथ के प्रत्येक अध्याय में आदरणीय सन्त जी के गहन अध्ययन और मौलिक चिन्तन का प्रमाण मिलता है।

'पारखी सन्तों का परिचय और उनका ग्रन्थसार' अध्याय मे जो जानकारी दी गयी है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सद्गुरु कबीर एक महान रत्नाकर हैं। जिन लोगों ने इस रत्नाकर में डुबकी लगायी है उनके हाथ अनेक रत्न आये हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने भी कई रत्न प्रस्तुत किये हैं। 'पारख-सिद्धान्त' और 'भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन' इन्ही रत्नों मे है। ''कबीर पंथ का संक्षिप्त इतिहास' में भी सन्त जी ने बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बतलायी हैं। यह ग्रंथ सर्वथा उपादेय है।

'विश्राम कुटी'
डी० ६१/२६ एफ, सिद्धगिरी बाग — जयदेवसिंह
वाराणसी—२२१०१०

काशी विद्यापीठ हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं कबीर वाङ्मय के रचनाकार डा० वासुदेवसिंह की सम्मति

संत कबीर हिन्दी में उच्च कोटि के साधक एव कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके व्यक्तित्व, साधना एवं साहित्य के सम्बन्ध में देश-विदेश में बहुत अधिक कार्य हुआ है, अब भी हो रहा है। इस दिशा में देश के विभिन्न भागों में स्थित कबीरपथ की गद्दियो के महंतों एवम् आचार्यो ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनके प्रयास से श्री कबीर रचित बहुत-सा साहित्य प्रकाश में आया है और उनके उच्चादर्शो एवं सिद्धान्तों को समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। संत श्री अभिलाष दास रचित 'कबीर दर्शन' इसी परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। श्री अभिलाष दास जी ने न केवल कबीर और उनके पन्थ के साहित्य को निकट से देखा-समझा है, अपितु स्वयं उसी पन्थ के अनुयायी साधक भी हैं। उन्होने प्रस्तुत ग्रंथ में जो कुछ कहा है वह अनुभव पर आधारित है। इसलिए इसकी प्रामाणिकता असन्दिग्ध है। आपने प्रस्तुत ग्रंथ में 'बीजक' के विभिन्न पक्षो का विश्लेषण किया है, पारखी सन्तों का विस्तृत परिचय दिया है, पारख सिद्धान्त की सुस्पष्ट व्याख्या की है, अन्य भारतीय दर्शनों से उसका तुलनात्मक अध्ययन किया है तथा कबीरपन्थ का इतिहास बताते हुए उससे संम्बद्ध सन्तो के व्यक्तित्व और दर्शन पर गंभीरता से विचार किया है। इस कृति में अनेक तथ्य पहली बार प्रकाश मे आए हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'कबीर दर्शन' से इस क्षेत्र में कार्य करने वाले पाठकों एवं विद्वानों को पर्याप्त सहायता मिलेगी। मैं उन्हें इस परम पुनीत कार्य के लिए हृदय से धन्यवाद देता हूं।

काशी विद्यापीठ, वाराणसी   **वासुदेवसिंह**
दिनांक ५-१० ८२

प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन ग्रन्थों के यशस्वी लेखक तथा प्रयाग विश्वविद्यालय दर्शन विभाग के अध्यक्ष श्री संगम लाल पांडेय की सम्मति

कबीर-दर्शन : एक विहंगमदृष्टि

मुझे पारखी सन्त अभिलाष दास जी का 'कबीर दर्शन' देखने को मेला। इसमें पारख-सिद्धान्त का ऐतिहासिक और दार्शनिक विवेचन किया

गया है। कबीरपन्थ और पारख सिद्धान्त का गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि पारखी सन्त कबीर को ही अपनी परम्परा का मूल प्रवर्तक मानते हैं। इस समय कबीरपन्थ की प्रायः तीन दार्शनिक व्याख्याएं प्रचलित हैं जिन्हें जीववादी, ईश्वरवादी और ब्रह्मवादी कहा जाता है। पारखी सन्त जीववादी हैं। वे स्वानुभूति और उस पर आधारित तर्क-बुद्धि को सर्वोच्च प्रमाण मानते हैं उनका आदर्श जीवन्मुक्ति है। वे व्यवहार तथा परमार्थ के द्वैत में विश्वास नही करते। इस दृष्टि से वे कट्टर अद्वैतवादी हैं और परमार्थ के आधार पर सभी मनुष्यों को जीवनयापन करने की शिक्षा देते हैं। पारख सिद्धान्त के उन्नायकों में कबीर के अतिरिक्त "कबीर-परिचय" के लेखक श्री गुरुदयाल साहब, "पंचग्रंथीकार" श्री रामरहस साहब, "निर्णयसारकार" श्री पूरण साहब, "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" के लेखक श्री काशी साहब, "न्यायनामा" के लेखक श्री निर्मल साहब और "भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठादि" के लेखक श्री विशाल साहब प्रमुख हैं। इन तथा अन्य पारखी सन्तों का परिचय कबीर दर्शन के दूसरे अध्याय मे दिया गया है और तीसरे अध्याय में पारख सिद्धान्त का विवेचन किया गया है। मेरी दृष्टि से 'कबीर दर्शन" के ये दो अध्याय बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमे एक नये धर्म-दर्शन के बीज मिलते है। जिनके अधार पर समस्त विश्व के लिए एक सार्वभौम धर्म को प्रस्तावित किया जा सकता है। कट्टर पारखी सन्त होते हुए भी सन्त अभिलाष दास की मान्यता है कि कबीर पन्थ की ईश्वरवादी और ब्रह्मवादी परम्पराओ में ही नही अपितु भारत की समूची सन्त परम्परा में पारखी सन्त समय-समय पर होते रहे हैं। यदि उनकी इस मान्यता का अतिदेश कर दिया जाये तो कहा जा सकता है कि सभी धर्मो और सम्प्रदायो मे पारखी सन्त हुए हैं। इस दृष्टि से स्वयं अभिलाष दास जी ने पारख दर्शन और अन्य भारतीय दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन 'कबीर दर्शन' के चौथे अध्याय में किया है। अन्त में आधुनिक सन्त महात्मा गाँधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी रामतीर्थ, राधास्वामी श्री शिवदयाल सिंह आदि का भी कबीर से प्रभावित होने वाले सन्तों में नामोल्लेख करके सन्त अभिलाष दास जी ने अपने ग्रंथ 'कबीर दर्शन' को समकालीन चिन्तन से संयुक्त कर दिया है।

निःसन्देह सन्त अभिलाष दास जी एक सच्चे धर्म-दार्शनिक है विरक्त है, आत्मानुभूति से सम्पन्न है तथा उच्चकोटि के मनीषी हैं। तर्कबुद्धि, नैतिक सदाचार तथा आत्मा अनुभव की अद्भुद त्रिवेणी का उनमे संगम है। उनकी कृतियाँ न केवल पारख सिद्धान्त और कबीरपन्थ के लिए महत्वपूर्ण हैं अपितु सामान्य जिज्ञासु के लिए भी उनका अतिशय महत्व है। 'कबीर दर्शन'

का अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आत्म साक्षात्कारक होगा ऐसी मुझे आशा है। कुछ भी हो, हिन्दी भाषा के माध्यम से धर्म और दर्शन पर चिन्तन करने वालों में स्वामी अभिलाष दास जी अग्रिम पंक्ति में हैं।

अध्यक्ष और प्रोफेसर दर्शन विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
दिनांक ११-१०-८२

संगम लाल पांडेय

कबीर पर यशस्वी लेखक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुज तथा हिंदी भाषा और साहित्य सेवारत श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी की सम्मति

"कबीर दर्शन" के यशस्वी लेखक अभिलाष दास जी प्रतिभा-संपन्न मेधावी महात्मा हैं। आपका तपोनिष्ठ समर्पित जीवन अनायास ही आकर्षक बन गया है। आपकी धुन, लगन और सूझबूझ बड़ा ही प्रभावकारी है।

"कबीर बीजक" कबीर-पंथ का प्रेरणा-स्रोत है। पंथ का ताना-बाना इसी के अधार पर निर्मित हुआ है। इसकी कई टीकाएं तथा व्याख्याएं की जा चुकी हैं। परन्तु यह ग्रन्थ कबीर की भाँति ही कालजयी है। इसलिए इसमे निहित एवं विहित तत्व कभी चूकने वाले नही हैं। काल-क्रम से इसके अर्थो की नई-नई पर्तें खुलती रहती हैं और भविष्य मे भी यह संभावना गर्भित है। इसकी अक्षय प्राणधारा इसे जीवंत बनाये रहती है।

व्याख्याता अभिलाष दास जी ने बडे मनोयोग से कबीर-दर्शन की झलक प्रस्तुत की है। आपकी विद्वता सहज ही संत-जीवन का सहचर बन गयी दिखती है। यह सहृदय पाठकों की जिज्ञासा-भावना को बरबस जागृत एवं ...बद्ध बनाने में बहुत कुछ सफल है। परन्तु इस लेखकीय सतयास का आदि ...झना चाहिए, अन्त नही। इसमें उपलब्ध सामग्री तथा सूचना संत-...हित्य के प्रेमियो के लिए पाथेय का काम करेगी, इसमे सन्देह नही। ऐसे पुनीत कार्य के लिए सुधी लेखक को अनेकानेक साधुवाद।

२३६ चक, इलाहाबाद-३
दिनांक १५-१०-८२

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

कबीर चिंतनधारा पर नवोदित लेखिका डा० उमा ठुकराल की सम्मति

आदरणीय संत धर्मेन्द्र दास जी

सादर साहेब बंदगी।

आपके निर्देशानुसार ग्रंथ "कबीर दर्शन" पढ़कर वापस भेज रही हूँ। ग्रंथ को आद्योपान्त पढ़कर कितनी प्रसन्नता हुई यह मैं अभिव्यक्त नही कर सकती। मैंने अपने शोध प्रबन्ध में "पारख-दर्शन" को 'सिद्धान्त-साधना' दोनों पक्षों की दृष्टि से स्वतन्त्र स्थान दिया और इसकी वैज्ञानिकता, युगानुरूपता का अंकन किया। संयोगवश मूल्यांकन हेतु मेरा शोध प्रबन्ध ऐसे परीक्षकों के पास गया जो "पारख दर्शन" से अपरिचित थे। इसका एक कारण "पारख दर्शन" पर किसी अच्छे प्रबन्ध का अभाव भी है। "कबीर-दर्शन" पढ कर प्रसन्नता इसलिए हुई कि पारख-दर्शन के विषय में मेरे प्रायः सभी निष्कर्ष "पारख-दर्शन" के अधिकारिक विद्वानों के समान हैं।

कबीरपंथ का "पारख-दर्शन" चिन्तन-मनन से परिपुष्ट परिपक्व वैज्ञानिक दर्शन है। तथ्यान्वेषण के अभाव में प्रायः इस दर्शन को कबीर-दर्शन से नितान्त भिन्न मानकर कबीरपंथ का न मानने की अनेक चेष्टाएं हुई हैं। नास्तकिता का आरोप मंडित कर "पारख-दर्शन" को निकृष्ट सिद्ध करने के प्रयास भी कम नहीं हुए हैं। संत अभिलाष दास साहबका ग्रंथ "कबीर-दर्शन" सप्रमाण सिद्ध करता है कि "पारख-दर्शन" कबीर-बीजक से उद्भावित अंतः-सलिला है "पारख-दर्शन" की अजस्र धारा यद्यपि मनुष्य के अस्तित्व-उद्भावना-काल से ही किसी न किसी रूप में प्रवहमान है किन्तु इसे वर्तमान युग-सापेक्ष रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय कबीर साहब को है। "पारख-दर्शन" कबीर साहब के स्वानुभूत आत्मज्ञान का प्रतिपादन है। यह ग्रंथ प्रमाणित करता है कि "पारख-दर्शन" ही विचार-व्यवहार से वास्तविक "कबीर-दर्शन" है।

पूर्व प्रतिष्ठित भारतीय दर्शनों, पाश्चात्य पदार्थ मीमांसा एवं आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं की तुलना में "पारख-दर्शन" के सिद्धान्तों का विवेचन और अनेक भारतीय संत सम्प्रदायों पर "पारख-दर्शन" के प्रभाव का आकलन "पारख-दर्शन" की स्वतंत्र सत्ता तथा महत्ता की सशक्त छवि अंकित करता है। "पारख-दर्शन" पर नास्तिकता का आरोपण करने वाले रूढ़िवादी शास्त्रावलम्वी भी लेखक के ठोस तर्क प्रमाणों से प्रभावित होकर आस्तिकता-नास्तिकता विषयक अपनी मान्यताओं को सहर्ष परिवर्तित करेगे, और कबीर-

पंथी संतों के अध्ययन-मनन की गहनता,को स्वीकार करेंगे। वैज्ञानिक विश्लेषण युक्त गवेषणात्मक शैली "कबीरदर्शन" ग्रंथ की विशिष्टता है जिसके कारण लेखक विषय-वस्तु को पूर्ण ऊर्जस्विता के साथ अभिव्यक्त करने मे सफल हो सके हैं। "पारख-दर्शन" का निर्भ्रान्त सर्वाङ्गीण विवरण देने वाला परिनिष्ठित भाषा-शैली में रचित यह प्रथम ग्रंथ है। संतुलित विश्लेषण, यथार्थवादी दृष्टि, समसामयिक रूपरेखा और प्रामाणिक सामग्री के कारण यह ग्रंथ समस्त बुद्धि-जीवी वर्ग को आकर्षित करेगा, इसमें संदेह नही। निश्चय ही कबीरपंथ की अब तक उपलब्ध गद्य रचनाओं में "कबीर-दर्शन" ग्रंथ महत्तम है।

मुकेश फैन्सी स्टोर
रेलवे रोड, कोटद्वार-२४६१४९
दिनांक ११-१०८२

उमा ठुकराल

भूमिका

भारतीय इतिहास के मध्ययुग में सन्त कबीर साहब एक अभूतपूर्व प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर अवतरित हुए थे। वे युग के सजग प्रहरी थे। अन्धविश्वास, परमुखापेक्षिता एवं संकीर्ण मनोवृत्तियों की पंकिल भूमि से समाज को ऊपर उठाने का प्रयास उन्होंने आजीवन किया था। हिन्दू और इस्लाम की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों एवं निष्ठाओ पर निर्मम प्रहार करते हुए उन्हें मानवता के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कराने का प्रयास सन्त कबीर साहब जैसा कोई तपोधनी व्यक्तित्व ही कर सकता था। उन्होने जाति-व्यवस्था के पाशविक उत्पीड़नके प्रति समाजको सजग बनाया और नाना तर्क-जालों से ऊपर उठकर स्वानुभूति पर आधारित एक सहज धर्म की प्रतिष्ठा की। धार्मिक भूलों के परिष्कार के लिए उन्होने सभी धर्मो में व्याप्त जड़ता का घोर विरोध किया। कबीर साहब का यह विरोध भावनात्मक न होकर तर्कमूलक था। धार्मिक आडम्बरो के उन्मूलन के प्रयास में अनेक तर्क-वाण उनके तर्कश से निकल पड़े थे। वे पंडितो की सभा में ललकारते हुए अपने प्रश्नों से उन्हें निरुत्तर कर सकते थे। संभवत: आडम्बरप्रधान धर्म के विरोध में ही उन्होने सहजधर्म को बहुमान दिया था। सन्त कबीर का सहजधर्म पूजा पाठ की अपेक्षा नहीं रखता, वहा स्वर्ग का न तो कोई आकर्षण है, न हो नरक का भय। वह आन्तरिक शुचिता पर आधारित है। वस्तुत: नैतिकता ही सहज धर्म का प्राण तत्व है। साध्य जितना महान होता है, उसकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त साधना की उदात्तता भी उतना ही महत्वपूर्ण होती है। मनुष्य अपने से भिन्न किसी परमतत्व की खोज में तत्पर है। किन्तु बाह्य सृष्टि में सतत साधना के अनन्तर भी उस अखण्ड सत्य स्वरूप परमतत्त्व की उपलब्धि नही हो पाती। जब तक साधक अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर अपने भीतर का सन्धान नही करता तब तक उसे लक्ष्य की सिद्धि नही हो सकती। जब अन्तर्मुखी दृष्टि चेतना पर पड़े मोह, अज्ञान, कुसंस्कार इत्यादि नाना जड़ाध्यासो को समाप्त कर देती है तब पारख ज्ञान के प्रकाश में साधक को आत्म-चेतना की दिव्यानुभूति होती है और तब वह परम शान्ति का अनुभव करता है। इसके लिए कबीर साहब की पहली शर्त है मन की शुद्धता और हृदय की निष्कपटता, विचारों की पवित्रता और आचरण की सात्विकता। कबीर साहब के सहज धर्म में नैतिक आचरणो की ही

प्रमुखता है। उन्होंने वैराग्य शब्द का अर्थ भी प्रचलित रूप में नहीं किया। यदि मन का कालुष्य धुला नहीं तो फिर गेरुआ वस्त्र धारण कर अरण्य-सेवन व्यर्थ प्रयास है। कबीर साहब का सहज धर्म उस वैराग्य का पक्षधर है जिसमें सहज ही विषयासक्तियों का परिहार हो जाय। इस प्रकार कबीर साहब के सहजधर्म में दीक्षित होकर समाज दिव्यचेतना से अनुप्राणित हो सकता था।

कबीर साहब एक समाजवादी सन्त थे। उनके अन्तःकरण में एक ऐसे समाज-निर्माण की भावना निहित थी जिसमें रहकर सभी मनुष्य शान्तिमय और कलह रहित जीवन व्यतीत कर सके। इस कल्पना को साकार करने के लिए उन्होने पूजीपतियो की आन्तरिक वृत्ति को ही उदार बनाकर वितरण की समस्या हल करने की चेष्टा की। कबीर साहब ने नाना भांति कनक और कामिनी की असारता पर प्रकाश डालकर पूजीपतियो में जकड़ी हुई संचय की मनोवृत्ति पर कुठाराघात किया। कबीर साहब के समक्ष वर्ण व्यवस्था का भी वही रूप था जिसमें समाज का नेतृत्व ब्राह्मण पडितो के हाथों में था और शूद्र अपवित्र समझे जाकर हेय दृष्टि से देखे जाते थे। कबीर साहब एक वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। सामाजिक विषमता के मूल कारणो का उन्होंने पता लगाया। अतः पुस्तकीय ज्ञान का खण्डन और अनुभूति मूलक सत्य का मंडन उन्होने आरम्भ कर दिया। कबीर की आलोचना का विषय केवल ब्राह्मण समाज ही न था। जहां कही उन्हें इसप्र कार की विषमता दीख पड़ी वहां उन्होंने वाक्य प्रहार किया। वस्तुतः वर्ग-विभाजन कतिपय स्वार्थी पुरुषो की स्वार्थ-सिद्धि का साधन मात्र है। कबीर साहब के सामाजिक जीवन का आदर्श बहुत कुछ महात्मा गाँधी के एतद् विषयक आदर्श के समान था।

कबीर साहब की विद्रोही भावना समाज की जर्जरित अवस्था देखकर अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठी थी। उन्होने एक-एक करके समस्त आडम्बर मूलक प्रवृत्तियो को उखाड़ फेकने का प्रयास किया। समाज मे हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे और दोनो ही जातियों मे धार्मिक आडम्बर व्यापक रूप ग्रहण कर चुका था। इन जातियों में उद्भूत अनेक साधु-महात्मा भी बाह्या-डम्बर के शिकार हो रहे थे जो सामाजिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थान में बाधक सिद्ध हो रहे थे। अतः कबीर साहब ने समाज व्यापी समस्त धार्मिक आडम्बरों के झाड़-झंखाड़ को साफ कर एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करने की चेष्टा की जिस पर चलकर मानव आत्यन्तिक कल्याण की ओर अग्रसर हो सकता था। निःसन्देह महात्मा गौतम बुद्ध के पश्चात भारतीय इतिहास में

कबीर जैसा मौलिक तत्व चिन्तक, समाज का पुरोधा, मानवता का उन्मत्त गायक और आत्मा का उन्नायक कोई दूसरा उत्पन्न नही हुआ। इसीलिए आधुनिक संदर्भ में कबीर साहब का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है।

कबीर साहब की उदात्त प्रवृत्तियों के कारण ही अनेक देशी-विदेशी विद्वानों का ध्यान कबीर साहित्य के अनुशीलन की ओर गया है और कबीर-पंथी साहित्य पर भी विद्वानों ने विचार करना आरम्भ कर दिया है। सर्वप्रथम उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे ईसाई पादरियों ने भारतीय धार्मिक साहित्य तथा साम्प्रदायिक विकास का अध्ययन आरम्भ किया। उन्ही दिनों डेनमार्क के विशप मुटर ने इटैलियन भाषा में 'मूलपसी' नामक एक ग्रथ लिखा जिसका प्रकाशन 'माइन्स आफ दि ईस्ट' नामक ग्रंथमाला के तृतीय भाग मे हुआ और जिसमें कबीर साहब तथा उनके मत के सम्बन्ध मे कतिपय तथ्य रखे गये थे किन्तु विलसन साहब ने इसे किसी कबीरपंथी पुस्तक के अनुवाद के रूप में ही स्वीकार किया है। गार्सीद तासो के अनुसार उसी 'मूलपसी' वा मूलपंथी' का अनुवाद तुम्बा साहब ने इटालियन भाषा में किया और उसमें निहित विचारो के समान ही जनरल हैरियट ने अपनी फ्रेंच पुस्तक 'मेम्बार सूर लौ कबीरपंथी' में अपना मत प्रकट किया। १९वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे ट्रम्प और पिकंट ने आदि ग्रंथ में संगृहीत कबीर की रचनाओं के सम्बन्ध मे अपने विचार रखे और फिर विलियम कुक ने भी कबीरपन्थ का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत किया था। किन्तु इन प्रयत्नों को हम प्रासंगिक उल्लेख मात्र ही कह सकते है।

कबीर साहब को समझने के लिए यह आवश्यक है कि कबीर साहित्य के साथ कबीरपंथी साहित्य का भी अध्ययन किया जाय। इस दिशा मे सर्व-प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास बीसवी शताब्दी के आरम्भ में रेवरेन्ड वेस्टकाट नामक पादरी ने किया था। उन्होंने कबीर साहब की विचारधारा को समझने के लिए प्रमुखतः 'बीजक' और 'आदि ग्रंथ' को आधार बनाया था और कबीर-पन्थी सिद्धान्तों के लिए 'सुख निधान' एवं 'अमरमूल' जैसे ग्रंथो को उपजीव्य बनाया किन्तु वेस्टकाट ने तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण नही किया। एक अन्य विद्वान डा० एफ० ई० की० ने 'कबीर एण्ड हिज फालोवर्स' नामक शोध प्रबन्ध में बीजक और आदि ग्रंथ के अतिरिक्त रवि बाबू द्वारा सम्पादित 'वन हंड्रेड पोएम्स आफ कबीर' को आधार रूप मे स्वीकार किया और कबीरपंथी विचार धारा को समझने के लिए दो दर्जन पंथीय साहित्य को आधार बनाया। फलतः इस पुस्तक में अपेक्षाकृत अधिक सामग्री का आना स्वाभाविक था किन्तु कबीर साहब और कबीर पथ की तुलना करते समय उन्होंने समस्त महत्वपूर्ण तथ्यों पर ध्यान नही दिया।

स्व० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'कबीर बचनावली' की भूमिका में कबीर और कबीरपंथ के प्रति लिखते समय स्वस्थ समीक्षक-बुद्धि का परिचय नहीं दिया है। उनका ध्यान कबीर और कबीर पंथ के साम्य-वैषम्य की ओर भी नही गया है। फलतः महर्षि शिवव्रत लाल ने 'कबीर और कबीरपंथ' शीर्षक निबन्ध 'सन्त समागम' नामक उर्दू रिसाले में प्रकाशित करवाया जिसमें उन्होने कबीर साहब के मत और वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों के मौलिक अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। किसी भी तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह अपेक्षित है कि दोनों पक्षों की आधारभूत सामग्री की प्रामाणिकता पर निरपेक्ष दृष्टि से विचार कर लिया जाय और उसके आधार पर निकाले गये निष्कर्ष पूर्णतः वैज्ञानिक हों, किन्तु उक्त निबन्ध मे भी सन्तुलन का अभाव है। सन १९६२ में मैंने भी 'कबीर और कबीरपन्थ—एक तुलनात्मक अध्ययन' शीर्षक शोधप्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत किया था, जिसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन से हो चुका है। मैंने कबीर और कबीरपंथ का तुलनात्मक अध्ययन करते समय प्राप्त सामग्री की पूरी छानबीन करते हुए कबीर साहब के मत और कबीरपंथ की विचारधारा में साम्य वैषम्य को तो स्पष्ट करने की चेष्टा की ही है, कबीरपंथ की विभिन्न शाखाओं के पार्थक्य को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया है और कबीरपंथ का ऐतिहासिक परिचय भी एक अध्याय में दे दिया है, किन्तु मेरा यह प्रयास कहां तक सफल हो सका है, इसका निर्णय करने का अधिकार मेरा नहीं है। सुधी समीक्षक ही उसका मूल्यांकन कर सकते है। कबीर और कबीरपंथ पर नाना दृष्टियों से विचार करने का जो भी प्रयास अब तक हुआ है वह केवल सैद्धान्तिक, साधनात्मक और साम्प्रदायिक विचारो तक ही सीमित था, किन्तु 'कबीरपंथी साहित्य' का अभी साहित्यिक मूल्यांकन नही हो सका था। इस अभाव की पूर्ति के लिए डा० उमा ठकराल का मौलिक शोध प्रबन्ध 'कबीरपंथी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक से गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर मे डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया जिस पर सन् १९८० में उन्हें उक्त उपाधि के लिए सम्मानित भी किया गया। उस शोध प्रबन्ध में साहित्यिक मूल्यांकन करते समय स्वस्थ समीक्षक बुद्धि का परिचय देते हुए लेखिका ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु अभी वह शोधप्रबन्ध अप्रकाशित ही है। कबीरपथ पर नाना पंथेतर प्रभावो का विश्लेषण करने की दिशा में डा० वेद प्रकाश गिलड़ा ने भी प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनका यह शोधप्रबन्ध गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है। यह शोधप्रबन्ध सन्तुलित समीक्षा का एक महत्वपूर्ण निदर्शन है। मेरे मस्तिष्क

में पारख सिद्धान्त पर कुछ काम करने-कराने की बात उठी थी और अपने एक शोध-छात्र को 'पारख सिद्धान्त और उसके आचार्य' शीर्षक से विषय दे भी दिया था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह काम बीच ही में रुक गया।

मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि सन्त साहित्य का अनुशीलन कोई सन्त पुरुष ही पूर्ण निष्पक्ष निर्णय के साथ कर सकता है। पारखी सन्त अभिलाष दास जी अनेक ग्रंथो के यशस्वी लेखक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन निश्छल, शान्त और सन्तों के उन समस्त सद्गुणों से वेष्ठित है जिनकी ओर कबीर साहब ने संकेत किया है। उनका जीवन सतत साधना-रत रहता है और चिन्तन की दिशा में उन्हे पर्याप्त प्रौढ़त्व प्राप्त हो चुका है। उनकी निरपेक्ष दृष्टि समीक्षा में प्राणतत्व बन गयी है। जब उनका 'कबीर दर्शन' भूमिका लिखने के लिए मेरे यहां आया तो मुझे अपार प्रसन्नता इसलिए भी हुई कि एक सन्त-हृदय का भावोच्छवास इस पुस्तक मे मिलेगा। पंथीय लेखक बहुधा भाव-प्रकाशन करते समय अपनी पंथीय मान्यताओ को सर्वोपरि सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और पंथीय गन्ध के कारण उनके पुष्ट विचार भी विशेष महत्व के नही रह जाते, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक मे स्वामी जी ने सदा ही निरपेक्ष दृष्टि का परिचय देते हुए अपने सतत्व पर आंच नही आने दी है।

'कबीर दर्शन' एक विशालकाय ग्रंथ है। 'बीजक मंथन' इस पुस्तक का प्रथम अध्याय है जिसमें कबीर साहब के विभिन्न जीवन बिन्दुओ के संदर्भ मे नाना व्यक्त मतों का तर्कसगत खण्डन करते हुए किसी वैज्ञानिक स्थापना का सर्वप्रथम प्रयास किसी कबीरपंथी सन्त द्वारा हुआ है। धर्म, वर्ण-व्यवस्था, मूर्ति-पूजा, नाना देवताओ और पुनर्जन्म इत्यादि प्रचलित मान्यताओ को सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि से देखा गया है और सत्य, दया, क्षमा, धैर्य, संतोष जैसे शाश्वत मूल्यो के सम्बन्ध मे उद्भूत लेखक के विचार प्रेरणा के अपूर्व स्रोत हैं। द्वितीय अध्याय का सम्बन्ध पारखी सन्तों के व्यक्तित्व और कृतित्व से है। तीसरे अध्याय मे लेखक ने पारख-सिद्धान्त पर पूर्ण मनोयोग पूर्वक विचार किया है। यह भाग इस पुस्तक का प्राणतत्व है। वस्तुतः महर्षि कपिल, कणाद से लेकर महात्मा गौतम बुद्ध और स्वामी महावीर से जीवनी शक्ति ग्रहण करती हुई पारख-परम्परा का पूर्ण विकास सन्त कबीर साहब मे हुआ। प्रागैतिहासिक काल से ही तत्व चिन्तको ने जड़ और चेतन पर विचार किया है। अब तक की लगभग समस्त दार्शनिक प्रणालियां या तो जड़ से चेतन की उत्पत्ति मानती है अथवा चेतन से जड़ की अथवा जड़ और चेतन दोनो को उत्पत्ति रहित अनादि और अनन्त के रूप मे स्वीकार करती हैं। जड़ाद्वैतवाद के अनुसार जड़

द्रव्य अनादि और अनन्त है। चेतन को वे नित्य नहीं मानते। चेतनाद्वैतवाद जड़ द्रव्य एवं तत्व का अनस्तित्व सिद्धान्त स्वीकार करता है। उसकी दृष्टि में चेतन सत्ता ही अनादि और अनन्त है और यही चेतन जड़ जगत के निर्माण का हेतु है। दर्शन की एक विवेकवादी प्रणाली भी है जो जड़-चेतन भेद को मौलिक रूप में स्वीकार करती है। जड़ और चेतन में गुणात्मक भिन्नता को स्वीकार करने वाली विवेकवादी प्रणाली जड़ और चेतन दोनों को अनादि और अनन्त मानती है। यह तीसरी प्रणाली ही पारख-सिद्धान्त है जिसका गहन अनुशीलन लेखक ने पूर्ण मनोयोग के साथ किया है। इस अध्याय में कर्मों के सन्दर्भ में जो भी चिन्तन प्रस्तुत किया है वह अनेक पूर्वाग्रही बौद्धिक प्राणियों को नये सिरे से विचार करने के लिए विवश कर सकता है। आगे चलकर जगत की अनादिता पर व्यक्त नाना मतों की समीक्षा करता हुआ लेखक पारख सिद्धान्त की छाया में अपना मौलिक चिन्तन बड़े प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करता है और प्रखर व्यावहारिक तर्कों के धरातल पर ईश्वर के अनस्तित्व की भी घोषणा करता है। यथार्थ ज्ञान की सिद्धि के लिए चिन्तको ने प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, संभव और ऐतिह्य जिन आठ प्रमाणों की कल्पना की है, पारख-सिद्धान्त में वे सभी उपजीव्य के रूप मे स्वीकृत हैं किन्तु उनके पास विवेक की कसौटी भी है जिस पर परीक्षा करने के अनन्तर ही सत्यासत्य का निर्णय किया जा सकता है। चतुर्थ अध्याय में पारख-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पंचम अध्याय में कबीरपंथ की विभिन्न शाखाओं का संक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त षष्ठ अध्याय में कबीर और कबीरपंथ से प्रभावित अन्य सन्तों तथा मतों का संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है और अन्त मे लेखक ग्रंथ के सार तत्व को अपने चिन्तन के सांचे में ढालकर अमृत्व तत्व के रूप में सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस प्रकार हम देखते है कि जिस संदर्भ में लेखक ने अपना चिन्तन व्यक्त किया है, वह पूर्ण तत्वान्वेषी व्यक्तित्व का परिचय देता है।

किसी भी दार्शनिक अथवा साहित्यिक कृति का महत्व इस बात से आंका जाना चाहिए कि उसमें मानव को पशु सामान्य धरातल से ऊपर उठाने की क्षमता कहां तक है। यदि कोई साहित्य मनुष्य को हतवीर्य, पलायनवादी और परमुखापेक्षी बनाता है तो उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है। 'कबीर-दर्शन' को इस दृष्टि से भी महत्व प्राप्त होना चाहिए। यह पुस्तक मनुष्य को आत्म चिन्तन के लिए अवश्य ही प्रेरित करेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ का सम्यक् अध्ययन मनुष्य को उसकी पतनोन्मुख प्रवृत्ति से

मुक्त करने के लिए प्रेरक का काम करेगा और जिज्ञासुओं के लिए अनेक दर्शन-ग्रंथों में प्रतिपादित सिद्धान्तों की मूल गुत्थियो को सुलझाने में सहायक होगा। इस संदर्भ में यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि 'कबीर दर्शन' में व्यक्त सभी विचारो से सहमत कोई नही भी हो सकता है, किन्तु इतना अवश्य है कि पाठकों को इस ग्रंथ से एक नयी प्रेरणा और नया उत्साह अवश्य प्राप्त होगा। लेखक को इस परिश्रम साध्य और अनुभवसिद्ध कृति के लिए बधाई।

केदार नाथ द्विवेदी

प्रो०एवं अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कोटद्वार (पौड़ी गढ़वाल)
दिनांक २ अक्तूबर १६८२

निवेदन

सद्गुरु कबीर के 'पारख दर्शन' को समझने के लिए उनका मौलिक एव महान ग्रंथ बीजक पर्याप्त है। उसके बाद श्री गुरुदयाल साहेब रचित कबीर परिचय; श्री रामरहस साहेब रचित पंचग्रंथी; श्री पूरण साहेब रचित बीजक टीका (त्रिज्या), निर्णयसारादि; श्री काशी साहेब रचित निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, जड़-चेतन भेद प्रकाशादि; श्री निर्मल साहेब रचित न्यायनामादि तथा श्री विशाल साहेब रचित भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठादि कबीरदेव के पारख दर्शन का विशद विवेचन करते हैं। श्री काशी साहेब ने तो विस्तार मे निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन तथा सक्षेप में जड़-चेतन भेद प्रकाश लिखकर 'कबीर दर्शन' एवं 'पारख दर्शन' का ऐसा खुलाशा स्वरूप दिखा दिया है कि उसे समझने मे कोई कठिनाई ही नही रह गयी। पीछे से अनेक पारखी संतो द्वारा रची उनकी विपुल वाणियां इसके लिए प्रकाशस्तम्भ हैं। किन्तु समय-समय से समसामयिक भाषा और शैली मे भिन्न अन्त:करणो द्वारा उसका विवेचन होते रहना अत्यंत आवश्यक है।

आज से गत करीब बारह वर्षो से अनेक विद्वानों का मुझसे कहना रहा कि आप कबीर के दर्शन पर एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखें। आलोचको में सद्गुरु कबीर पर अधिक लिखने वाले प्रसिद्ध विद्वान आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने सन १९७७ ई० में जब वे लखनऊ में सरकारी संस्थान में भाषा पर ही काम कर रहे थे, मुझसे कहा "महाराज, आप समर्थ है, 'पारख' पर लिख दीजिये।" उन्होने पुन: कहा "मेरे बड़े भाई साहेब (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी) इस समय 'पारख' पर ही ज्यादा सोचते है और उस पर वे लिखना भी चाहते हैं लेकिन आप लोगो द्वारा पारख पर अध्ययन की विस्तृत सामग्री देना चाहिए।" पंडित श्री परशुराम चतुर्वेदी जी वृद्ध हो चले थे, और उनका उसके दो वर्ष बाद ही निधन हो गया। अत: वे पारख पर कुछ रचनात्मक कार्य न कर सके।

श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने जैसा कि मेरे लिए 'पारख दर्शन' के विषय में 'समर्थ' शब्द का प्रयोग किया, वैसा तो मुझे अपने को नहीं मानना चाहिए, परन्तु जब तक कोई 'पारख' के उच्चतम अधिकारी साधक, संत एवं विद्वान अपनी कलम नही उठाते है, तब तक मुझे भी तो अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार

कुछ प्रयास करना ही चाहिए। बीच-बीच में मेरी अनेक रचनाएं प्रकाशित होती रही और इस दर्शन ग्रंथ के लिए मेरे भीतर मानसिकता तैयार होती रही। इधर मेरे साथ में रहने वाले साधक, साधु एवं संतों की भी उत्सुकता बनी रही कि यह काम आपको शीघ्र कर देना चाहिए।

जब मैं सन १९७९ ई० में गुजरात भ्रमण के बाद कलकत्ता लौटा, तो बाबू प्रेमप्रकाश जी से इस पर पुनः चर्चा हुई। उनकी भी उत्सुकता बढ़ी। फलतः मैंने इस ग्रंथ का आरम्भ वहीं कर दिया, परन्तु वहां उदाहरण के लिए पर्याप्त ग्रंथ उपलब्ध न होने से रुकना पड़ा। मेरे बहुत ग्रथ भ्रमण में ही लिखे गये हैं, परन्तु बीजक टीकादि के समान इस ग्रंथ को भी एक जगह बैठकर ही लिखा जा सकता था क्योंकि इसमें उदाहरण देने के लिए बहुत से शास्त्रों एवं ग्रंथों की आवश्यकता थी। इलाहाबाद में स्थापित 'पारख प्रकाशक कबीर संस्थान' इसके लिए ज्यादा उपयुक्त लगा। मै इस ग्रंथ को लिखने के लिए इलाहाबाद में तीन बार बैठा और छह महीने के श्रम से यह तैयार हो सका।

कबीर साहेब का व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व बहुत व्यापक हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक बार हसते हुए इन पंक्तियों के लेखक से कहा था "हाथी के पांव में सब कै पांव" अर्थात कबीर साहेब में सब समा जाते है। अतः उनके जीवन तथा दर्शन पर विभिन्न महापुरुषों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। जो मुझे हृदय से सत्र लगा है, उसका मैने विश्वासपूर्वक प्रतिपादन किया है और जो उसमें आड़े आया है, उसकी आलोचना भी। कुछ विद्वानों ने तो कबीर साहेब के जीवन तथा दर्शन के विषय में अनर्गल प्रलाप भी किये हैं। ऐसे विद्वानों की कटु आलोचना भी करनी पड़ी है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि मै उन विचारकों का आदर नही करता हूं।

इस ग्रंथ में सात अध्याय तथा दो सौ से अधिक सन्दर्भ हैं। पहला अध्याय 'बीजक मंथन' मे पहले के कुछ सन्दर्भ जो सद्गुरु कबीर के जीवन के विषय में कहे गये है, उन्हे हम सीधे बीजक मंथन नही कह सकते। किन्तु अध्यायो की संख्या बढ़ाने की रुचि न होने से, उन्हे इसी अध्याय में रखा गया है। फिर प्रकारातर से देखा जाय तो कबीर साहेब का जीवन और बीजक दो अलग वस्तुएं नही हैं। जो कुछ बीजक में है, उनके जीवन का प्रतिबिम्ब है। क्योंकि रचना रचनाकार की छाया होती है। आज कबीर देव का जीवन नहीं है हम बीजक मे ही उनके जीवन को समझ सकते है। अतएव उनके जीवन सम्बन्धी चर्चा भी यदि 'बीजक मंथन' मे है, तो प्रसंगतः उचित ही हैं।

सद्गुरु कबीर की वाणियो का संसार की अनेक भाषाओं में अनुवाद

हुआ है और उनके ऊपर संसार के अनेक लेखक अपनी भाषा में लिखे हैं। खेद है, मैं इतना श्रम नहीं कर सका कि ऐसी सभी पुस्तकों, लेखकों एवं प्रकाशन स्थलों की सूची बना सकूं। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार मैने इस दिशा में कुछ काम करके इस ग्रंथ में परिशिष्ट के रूप में जोड़ने का प्रयत्न किया है। इस काम में मेरे अधिक सहायक हुए राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० ठाकुर रामदुलार सिंह। आपने कवीर साहेब द्वारा और उन पर अनेक भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों की एक सूची बनायी है। आपकी उदारता से मैने उसका खुलकर उपयोग किया है। इसके लिए मै आप को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

मेरे निजी सचिव साधु परीक्षा दास जी की लिखावट बड़ी सुन्दर होती है, क्योकि वे एक अच्छे आर्टिस्ट भी हे। कुछ ही को छोड़कर 'पारख प्रकाशक कवीर संस्थान' की सभी पुस्तकों के आवरण पर उन्ही की डिजाइन है। उन्होने इस ग्रन्थ की पांडुलिपि की वडे मनोयोग से प्रतिलिपि की। इसकी कापी साथियों एवं संतों मे पढ़ी गयी। सबकी वेताबी इसके प्रकाशन के लिए होने लगी।

साथियो की भावना थी कि अपना प्रेस स्थापित हो और उसी में 'कबीर दर्शन' की छपाई हो। फलत: भक्तों के सहयोग तथा साथियो के उत्साह से गत वर्ष क्वार दशहरे के अर्थात पारख प्रकाशक कबीर संस्थान इलाहाबाद के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन के समय सस्थान में 'बीजक प्रेस' की स्थापना हो गयी और आशा से कही बहुत अधिक प्रेसकार्य मे उन्नति हुई। अभी एक वर्ष भी नही पूर्ण हुआ और इसमे अनेक पुस्तके छप गयी, जिसमे भारी भरकम बीजक टीका तथा यह ग्रन्थ भी है। यद्यपि प्रेस में कम्पोजिग, प्रिंटिग एवं बाइंडिग सभी विभाग मे कार्य करने वाले वेतन-भोगी कर्मचारी हैं, तथापि अपने साधक-साथियो का इस कुछ ही महीने के अन्दर सभी मे अधिकार हो जाना और इस तीव्रगति से उन्नति कर लेना, निश्चित ही उनकी प्रशंसा का विषय है।

खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि संस्थान के जिन अपने सदस्यों में यह लालसा थी कि अपने अभिनव 'बीजक प्रेस' में बहुचर्चित ग्रन्थ 'कबीर दर्शन' छपा हुआ देखें, उनमें में तीन खास सदस्य इस जगत में नहीं रह गये—मुहम्मद नगर (बस्ती) के भक्तराज शंकरदास, कलकत्ता के बाबू प्रेमप्रकाश की धर्मपत्नी चंद्रकांता गुप्ता तथा संस्थान के समसामयिक उपाध्यक्ष साधु महेन्द्रदास। कर्म विधान बलवान है और जीवन की क्षणभंगुरता स्मरणीय।

जब से इलाहाबाद में संस्थान की स्थापना हुई, तब से साथी साधु-ब्रह्मचारियों की श्रद्धा, श्रमशीलता एवं कार्य कुशलता से मेरे ऊपर से पुस्तक प्रकाशन एवं प्रूफ देखने तक की जिम्मेदारी हट गयी है। साथियों ने मुझे एकदम स्वतंत्र तथा निःभार कर दिया है। मै प्रायः भ्रमणशील हूं। इस पुस्तक के प्रूफ शोधने का भी मुझे अवसर नहीं पड़ा। साथी साधु-ब्रह्मचारियो ने ही यह सारा काम किया है। जिसमें साधु धर्मेन्द्र दास की मुख्य जिम्मेदारी रही है। अपने साथियो को धन्यवाद कैसे दू। यह तो अपने आपको ही धन्यवाद देना हो जायेगा।

प्रूफरीडरों एवं प्रेस कर्मचारियों की असावधानी कहिये या दृष्टि-दोष अथवा भूल, ग्रंथ में जगह-जगह अक्षर-मात्रा की त्रुटियां रह गयी हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। पाठक उसे सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

मैं एक साधारण आदमी हूं। दर्शन एक गंभीर विषय है। इस ग्रंथ के किसी भी अध्याय में—आचार, इतिहास, दर्शन—किसी भी विषय-वस्तु में यदि कोई भूल रह गयी हो, तो पूज्य संतजन, आदरणीय विद्वतजन तथा सुधी पाठक पत्र द्वारा सूचित करने की कृपा करेंगे, जिससे अगले संस्करण में उनका सुधार हो सके।

इस ग्रंथ के लिखने में मुझे जिन महापुरुषों की रचनाओ से कुछ भी सहायता मिली है तथा जिनके ग्रंथों से मैंने इसमें उद्धरण दिये हैं, उनका मैं सादर आभार स्वीकार करता हूं।

कबीर दर्शन के प्रकाशन के लिए साधु और भक्तों में बड़ी भावना जगी और उदारता पूर्वक वे उसके लिए दान करने लगे। कबीर संस्थान परिवार के साधु तथा भक्त समाज का यही भाव है कि उसका प्रकाशन विभाग अपने पैरो पर खड़ा हो जाय, जिससे पुस्तके बराबर छपती रहे। इसलिए इस दिशा मे संस्थान को जितना दान मिलता है, सब पुस्तक प्रकाशन के स्थायी कोष मे जमा होता है और उससे पुस्तकें छपती रहती हैं। सभी दानदाताओं के प्रति मेरी शुभाकाक्षा है।

मैने अपनी सारी पुस्तकों के प्रकाशन का सर्वाधिकार 'पारख प्रकाशक कबीर संस्थान' को दे दिया है, जिसका केंद्र प्रीतम नगर कालोनी, इलाहाबाद में है। अभिनव ग्रंथ 'कबीर दर्शन' के भी प्रकाशन के लिए सर्वाधिकार मै उक्त संस्थान को समर्पित करता हू।

संत सम्राट सद्गुरु कबीर की महत्ता, अन्य सतो की गरिमा तथा उनके विचारो और सिद्धान्तो की गुरुता जिनके कृपाकटाक्ष से समझने मे

आया, वे है वर्तमान बोधकदेव सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब। अतएव उनके चरणों में शतशत नमन करते हुए ग्रंथगत समस्त त्रुटियों के लिए सुधी पाठको से क्षमा मांगता हू।

पारख प्रकाशक कवीर संस्थान
प्रीतम नगर कालोनी, इलाहाबाद
जुलाई १९८२ ई०

विनम्र
अभिलाष दास

दूसरा संस्करण

कबीर-दर्शन का पहला संस्करण गत अप्रैल में ही प्रायः समाप्त हो गया था। मेरी अन्य रचनाओ के समान या उससे भी अधिक बढ़ कर चेष्टा-पूर्वक इस ग्रंथ को सभी वर्ग, संप्रदाय एवं संप्रदाय-निरपेक्ष लोगों ने आदर दिया, ग्रहण किया एवं इसकी प्रशंसा की। इसकी प्रशसा में सभी वर्ग के उत्साह वर्धक कई पत्र भी आए। पाठको के उत्साह से मुझे भी प्रसन्नता हुई कि मेरी टूटी-फूटी सेवा को जनता-जनार्दन ने सहर्ष स्वीकारा।

इसके दूसरे सस्करण के लिए गत जुलाई से ही तैयारी होने लगी थी, किंतु अनेक छोटी-छोटी पुस्तकों के मुद्रण एव पुनर्मुद्रण मे लगे रहने से देरी हुई और अब यह प्रकाशित हो सका।

अबकी बार पुनः पूरी पुस्तक शोध दी गयी है, जिससे भाषागत त्रुटियो मे कमी अवश्य आयी है। शेष त्रुटियों को पाठक स्वयं शोध कर पढ़ने का कष्ट करेंगे। प्रूफ-शोधन अनेक साधु-ब्रह्मचारियों ने किया है; किंतु अधिकृत रूप से साधु धर्मेंद्र दास ने देखा है।

अब की बार कुछ नये संदर्भ जोड़े गये है। जैसे—

पहले अध्याय में—

क्या वे हिंदू कहलाने से लजाते थे ?
पंडित सो बोलिए हितकारी
ॐकार आदि जो जाने
गायत्री युग चारि पढ़ाई

आहुति सत्य होम की आशा
देवचरित्र सुनो हो भाई

चौथे अध्याय में—

स्वामी विवेकानंद एवं वेदांत पर उनका नया दृष्टिकोण

पांचवें अध्याय में—

श्री नारायण साहेब तथा वंशगद्दी

छठे अध्याय में—

संत श्री घीसा साहेब
गुजरात में कबीर साहेब का प्रभाव

प्रेस-स्थापन (अक्तूबर १९८१ ई०) के कुछ महीने के बाद से ही छपाई-कार्य में साधु सतेंद्र दास का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने जिस तरह इस विषय में समझदारी, साहस तथा अनन्य भाव का परिचय दिया है, वह उनके स्वभाव के अनुकूल ही है; बस, इतना ही कहना काफी है। सफाई, स्वच्छता से नियमित प्रकाशन में बहुत कुछ श्रेय उन्ही को है। इधर ब्रह्मचारी साहेब शरण भी उत्साहपूर्वक उनका सहयोग कर रहे हैं।

संस्थान के सभी साधु-ब्रह्मचारियों की श्रद्धा, समझ, सेवाभाव, परस्पर सहयोग, संगठन, कर्मठता आदि स्तुत्य है। इसी के फल में उनके जीवन में आध्यात्मिक प्रगति एवं शांति के लक्षण हैं तथा जनता की भी वे किंचित सेवा कर पाते हैं। इन सबके लिए हित कामना है कि इसी तरह ये अपने पथ में बढ़ते चलें।

इलाहाबाद
१-१-१९८७

लेखक

प्रथम संस्करण के प्रकाशन में सहयोग करने वालों की नामावली

५०००) श्री प्रेमप्रकाश गुप्ता, कलकत्ता; ३१००) एक भक्त, रायपुर; २०००) भक्त नाथा भाई, मथुर भाई नाना अमादरा, वड़ोदा, गुजरात।

प्रत्येक १०००) श्री धनजी भाई, गोपाल भाई, रायपुर; साधु अटल दास जी, जितेन्द्र दास, महेन्द्र दास, इलाहाबाद।

प्रत्येक ५००) संत श्री विमल साहेब जी, बडहरा; साधु दयाशरण दास अयोध्या; ब्र० छबिलाल जी, ब्र० ज्ञानेन्द्र जी, ब्र० साहेव शरण जी, इलाहाबाद; भक्त अबजी भाई रैयापटेल, फाफाडीह, रायपुर; भक्त रामलाल गुप्ता, बभनान, बस्ती।

प्रत्येक ३००) संत बलदेव गोस्वामी, धनौती, छपरा; साधु रतन दास जी, साधु विनयसनाथ दास जी, इलाहाबाद; भक्त मोतीचन्द, बोहारा, दुर्ग।

२५०) ब्रह्मचारिणी अनसूयादेवी, गोरेगांव, रायपुर।

प्रत्येक २००) साधु अनमोल दास, धनीराम पथार, नौगांव आसाम; साधु परीक्षादास, साधु विचारदास, साधु गुरुबोध दास, ब्र० अर्जुन जी, ब्र० केजराम जी, ब्र० देवेन्द्र जी, इलाहाबाद; भक्त नोहर राम, भैसमुडी, भक्त आनंदराम हिरवानी; गोरेगांव, रायपुर।

१६०) ब्र० ब्रह्मानंद, इलाहाबाद। १८५) संतश्री गंगा साहेब, मिरदासपुर, सुल्तानपुर, उ० प्र०।

प्रत्येक १५०) साधु उदार दास, इलाहाबाद; साधु चैनदास, करहीभदर, दुर्ग; भक्त हुकुमलाल, कोटेना, रायपुर।

१२५) श्री विष्णुदयाल साहेब चम्पारन, रायपुर; ११६) श्रीमती यशोदा देवी, कंवर, दुर्ग; ११५) श्रीमती जानाबाई, ११०) श्रीमती हिरमौतीबाई पोटियाडीह, रायपुर।

प्रत्येक १००) श्री विवेक साहेब जी, बुरहानपुर; श्री सुजान साहेब लुवावद ,कोटा; साधु सजीवन दास, साधु अभ्यास दास, करहीभदर, दुर्ग; साधु शरणपाल दास, साधु अमृत दास, साधु गुरुनिश्चय दास, साधु शोभाशरण दास, दर्रा, रायपुर; साधु गुरु आश्रित दास, साधु अर्चित दास, अयोध्या; साधु सहनशील दास, साधु कृपाशरण दास, साधु सुरेन्द्र दास, साधु गुरुप्रेम दास, ब्र० लक्ष्मण जी, ब्र० जयराम जी, इलाहाबाद; ब्रह्मचारिणी कैलाशवती देवी, मैलानी बस्ती; पारख दास, अरकार दुर्ग; ब्रह्मचारिणी निराशा देवी, कन्हारपुरी, श्रीमती कुसुम देवी, भोथा, रायपुर; श्रीमती कूंजाना मौर्य, पूरे हिन्दू

सिंह पूरवा, बहराइच; कबीर धर्म प्रचार समिति, डोमा, भक्त घासीराम काशी राम, संकरी, भक्त दानी राम, सिवनीकला, भक्त हंसराज भेलावे, पाण्डुका, रायपुर; भक्त गोवर्धनदास, गातापार, दुर्ग; भक्त रामशरण जी कलकत्ता; भक्त घनश्याम प्रसाद वर्मा, कैराती पुरवा, नेपाल।

प्रत्येक ६०) ब्रह्मचारिणी शीलवती देवी, दर्रा, ब्रह्मचारिणी वेदमती देवी कन्हारपुरी, दुर्ग।

प्रत्येक ७५) श्रीमती रमौतिन बाई, भानपुरी, भक्त पुनीतराम साहू कोसमर्रा, रायपुर; भक्त रणजीतसिंह, सुवासरामंडी, मन्दसौर।

प्रत्येक ६०) ब्रह्मचारिणी बिरझा देवी, गोरेगांव, भक्त हीरामन दास, रीवां, रायपुर; श्रीमती बैसाखिन बाई, बोहारा, दुर्ग।

५५) ब्रह्मचारिणी रजमत देवी, किकिरमेटा, दुर्ग।

प्रत्येक ५०) श्री देव साहेब, बेलथा, सीवान; साधु अचल दास शास्त्री, बैरी, फतेहपुर; साधु पारखशरण दास, साधु शीलेन्द्र दास, इलाहाबाद; साधु उपकार दास, साधु गुरुध्यान दास, साधु सत अधार दास, साधु ज्ञान अधार दास, अयोध्या; साधु निर्भय दास, सरैया सुल्तानपुर; साधुगुरुजतन दास, दर्रा, ब्रह्मचारिणी सुकारो बाई पोटियाडीह, ब्रह्मचारिणी पाचो बाई, दर्रा, ब्रह्मचारिणी देवकुवर देवी, परसकोल, ब्रह्मचारिणी हेमिन बाई डोमा, ब्रह्मचारिणी जानकी बाई अगारा, ब्रह्मचारिणी उपमादेवी, लाफिनखुर्द, श्रीमती नर्बदिया बाई, भक्त जुगुलराम बकतरा, भक्त नारद राम, डोमा, भक्त शंकर लाल, कोमा, भक्त डमरू राम, कोलियारी, भक्त चेतनराम, आमदी, भक्त श्यामलाल दरगहन, रायपुर; ब्रह्मचारिणी सुशीलादेवी, ब्रह्मचारिणी जानबाई, दुपचेरा, ब्रह्मचारिणी कलिन्द्री देवी, गातापार, भक्त बसावन दास, डांडेसरा, भक्त चैत राम, बोहारा, दुर्ग; भक्त शंकरभाई रणछोड़भाई छाणी, बड़ोदा।

प्रत्येक ४०) भक्त लीलेश्वर प्रसाद, अकोली, श्रीमती पार्वती देवी गढ़-सिवनी, श्रीमती संतकुमारी, भानपुरी, रायपुर।

३२) श्रीमती रामकुवर देवी, आमदी, रायपुर। ३०) साधु सेवासदन दास, करहीभदर, दुर्ग।

प्रत्येक २५) ब्रह्मचारी पुनीतराम, इलाहाबाद; भक्त रामजनक सिंह, बखरिया, बहराइच; भक्त पूनमभाई मालाभाई, धोराकुवां, बड़ोदा; श्रीमती गंगोत्री देवी, रीवां, रायपुर।

प्रत्येक २०) ब्रह्मचारिणी जानकी देवी, भिरई, दुर्ग; श्रीमती हेमिन बाई, चरोटा, भक्त मंसाराम, जोरातराई, भक्त महराजी दास दरगहन, रायपुर। १५) भक्तअर्जुनसिंह, सुवासरामंडी, मंदसौर।

अनुक्रमणिका

पहला अध्याय

बीजक मंथन

१	प्रस्तावना	३
२	जन्मकाल	४
३	जन्म रहस्य	५
४	कबीरदेव की जीवनकथा उनका ज्ञान है	११
५	वे विरक्त संत थे	१२
६	कबीर के विषय में कुछ विद्वानो का वहकाव तथा रहस्यवाद का होहल्ला	१८
७	गुरु निर्णय	२५
८	सागर जैसा व्यक्तित्व	३३
९	रचना : बीजक	४५
१०	बीजक में चारमुख वाणी तथा उसके पारिभाषिक शब्द	५९
११	उल्दवासियां	६२
१२	मसि कागद छूवो नही	६४
१३	तजलेउं मैं काशी	६५
१४	समन्वय की परख	६७
१५	श्रद्धातिरेक एवं मिथ्या विश्वास	६८
१६	वेद और किताब	७३
१७	नास्तिक कौन ?	७९
१८	क्या वे हिन्दू कहलाने में लजाते थे	८६
१९	धर्म	९३
२०	वर्ण व्यवस्था	९९
२१	छुआछूत	१०६
२२	ब्राह्मण	१०९
२३	पंडित सो बोलिये हितकारी	११३
२४	विचार स्वातंत्र्य	११४
२५	सत्य की परख	११५

२६	एकता	११६
२७	मानवता	११७
२८	नारी	११८
२९	तीर्थ	१२१
३०	मूर्ति	१२४
३१	देवता	१२६
३२	ॐकार आदि जो जानै	१२९
३३	गायत्री युग चारी पढ़ाई	१३०
३४	आहुति सत्य होम ।सा।	१३४
३५	देव चरित्र सुनो हो भाई	१४६
३६	अहिंसा	१५३
३७	मांसाहार का त्याग	१५५
३८	दूध त्याज्य नहीं	१५६
३९	भूत-प्रेत मंत्र-तंत्रादि	१५९
४०	फलित ज्योतिष, शकुन-अपशकुन तथा स्वप्न विचार	१६१
४१	सृष्टि एवं जगत	१६४
४२	राम और आत्मा	१६८
४३	राम नाम जप	१७०
४४	हरि मोर पीव की परख	१७२
४५	ईश्वर और अवतार	१७५
४६	ब्रह्म	१८४
४७	विचारों का विरोध सनातन	१८९
४८	जीव	१९०
४९	पारख	१९१
५०	स्वरूप भूल और स्वतः जागरण	१९३
५१	मैं कौन हूँ तथा मेरी स्थिति क्या है ?	१९५
५२	पुनर्जन्म और कर्मफलभोग	१९६
५३	बंध-मोक्ष और ज्ञान से कर्मों का दग्ध	१९७
५४	काया कष्ट नही वासना का त्याग	१९८
५५	साधू होना चाहिये	२००
५६	भक्ति और सद्गुरु संत	२०१
५७	शिष्यत्व	२०५
५८	वचन सुधार	२०७

५९	अपात्र से मौन तथा निर्विवादित्व	२०८
६०	कथनी करनी की एकता	२०९
६१	गुणग्राह्यता	२१०
६२	लघुता-विनम्रता	२११
६३	ब्रह्मचर्य	२१३
६४	निर्लिप्तवाद गलत	२१४
६५	कुसंगवर्जन और सत्संग में निवास	२१७
६६	परोपदेश के चक्कर में अपने आपको मत छलो	२१९
६७	सत्य	२२०
६८	दया	२२२
६९	क्षमा	२२३
७०	धैर्य	२२४
७१	संतोष	२२५
७२	विचार	२२६
७३	विवेक	२२७
७४	वैराग्य	२२७
७५	माया, मन और उसका निग्रह	२३०
७६	हद वेहद और उससे परे	२३३
७७	चतुर्दिक सावधानी	२३४
७८	जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति	२३५
७९	यथार्थ ज्ञानियों की समान और निर्द्वंद्व स्थिति	२३७

दूसरा अध्याय

पारखी संतों का परिचय और उनका ग्रंथसार

१	प्रस्तावना	२४१
२	श्री भगवान साहेब	२४२
३	बीजक टीका त्रिजी व गुरुगमबुझ	२४२
४	श्री गुरुदयाल साहेब	२४६
५	श्री रामरहस साहेब	२५२
६	श्री कुंजल साहेब तथा उनकी पंचग्रंथी	२८२
७	श्री पूरण साहेब	२८३
८	श्री प्रयाग साहेब	३०९

९	श्री राम साहेब	३०९
१०	पारख विचार	३११
११	श्री काशी साहेब	३१३
१२	श्री मेंही साहेब	३२०
१३	श्री निर्मल साहेब	३२१
१४	श्री लाल साहेब	३३२
१५	श्री विशाल साहेब	३३४
१६	श्री निष्पक्ष साहेब	३८८
१७	श्री सुखसागर साहेब	३९०
१८	श्री महाराज राघव साहेब	३९१
१९	श्री चेतन साहेब	३९२
२०	श्री राम लाल साहेब	३९३
२१	श्री सत्यपाल साहेब	३९४
२२	श्री शाति साहेब	३९४
२३	श्री नेत्र बहादुर थापा	३९५
२४	श्री शरण साहेब	३९६
२५	श्री प्रेम साहेब	२९६
२६	श्री आज्ञा साहेब	३९८
२७	श्री रामसूरत साहेब	४००
२८	श्री संतशरण साहेब	४०२
२९	श्री राम स्वरूप साहेब	४०३
३०	श्री गुरुशरण साहेब	४०४
३१	अन्य वरिष्ठ पारखी सन्त	४०५

तीसरा अध्याय

पारख सिद्धान्त

१	प्रस्तावना	४०९
२	विचारों की प्राचीनता	४१०
३	पारख सिद्धान्त के महापुरुष और परम्परा	४१२
४	पारख सिद्धान्त का संक्षिप्त स्वरूप	४१५
५	जड़ तत्व	४१७
६	तत्वो के षट् भेद	४२०

७	जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन अस्तित्व	४२१
८	ज्ञान सापेक्षवाद और निरपेक्षवाद	४३१
९	मन, अंतःकरण तथा सूक्ष्म शरीर	४३३
१०	पुनर्जन्म तथा कर्मफलभोग	४३५
११	स्वरूपज्ञान होने की भूमिका	४३७
१२	पूर्व जन्मों के स्मरण न होने के कारण	४३९
१३	बन्धन अनादि किन्तु सांत	४४१
१४	संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण	४४४
१५	कर्म	४४६
१६	कर्मों के नाश का रहस्य	४४८
१७	जगत की अनादिता	४५२
१८	ईश्वर	४५७
१९	अद्वैत ब्रह्मवाद	४६७
२०	विश्लेषण और संश्लेषण	४८२
२१	आकाश तथा शब्द	४८६
२२	प्रमाण	४८८
२३	वृक्ष वनस्पति निर्जीव है	४९६
२४	अंधविश्वास के आयाम से परे	५००
२५	मानवता का अधिकार	५०२
२६	नैतिकता ही पूजा है	५०३
२७	गुरुतत्व	५०४
२८	राम और आत्मा	५०८
२९	आनन्द, सुख और शांति	५०९
३०	साधना का प्राथमिक रूप	५१४
३१	पारखसमाधि	५१६
३२	मोक्ष	५२३

चौथा अध्याय

पारख दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन

१	प्रस्तावना	५३३
२	ऋग्वेद	५३४
३	उपनिषद्	५३८

४ भौतिकवाद ५४२
५ जैन दर्शन ५४६
६ बौद्ध दर्शन ५५१
७ गीता ५५६
८ साख्य दर्शन ५६०
९ योग दर्शन ५६९
१० वैशेषिक दर्शन ५७७
११ न्याय दर्शन ५८८
१२ मीमांसा दर्शन ५९६
१३ वेदान्त दर्शन ६०१
१४ स्वामी शकराचार्य का अद्वैतवाद ६१२
१५ स्वामी विवेकानन्द एवं वेदांत पर उनका नया दृष्टिकोण ६१८
१६ वैष्णव दर्शन ६२०
१७ स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

पांचवां अध्याय

कबीरपन्थ का संक्षिप्त इतिहास

१ प्रस्तावना ६४५
२ कबीरपंथ का प्रवतक कौन ? ६४६
३ श्री श्रुतिगोपाल साहेब तथा काशी कबीरचौरा ६४९
४ श्री भगवान साहेब तथा कबीरमठ धनौती ६५१
५ श्री जागू साहेब तथा कबीरमठ विद्दूपुर ६५२
६ श्री धर्म साहेब तथा वंशगद्दी ६५३
७ श्री नारायण साहेब तथा वशगद्दी ६५८
८ नादवंशीय कबीर आश्रम नादिया गद्दी ६६०
९ कबीरआश्रम खरसिया गद्दी ६६१
१० कबीरचौरा जगदीशपुरी ६६१
११ हटकेसर मठ ६६२
१२ रामकबीर एवं उदाधर्म ६६२
१३ पनिका कबीरपथी ६६५
१४ कबीरमठ फतुहा ६६५
१५ कबीरमठ लक्ष्मीपुर बगीचा रसड़ा ६६७

१६	श्रीकृष्ण पारख साहेब तथा वचनवंश गद्दी महादेवमठ रूसडा	६६७
१७	श्री मदन साहेब और बड़ैया गद्दी	६६८
१८	श्री कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर	६६९
१९	श्री विशाल साहेब बाराबंकी	६७१
२०	पारख मंडल काठमाण्डो	६७२
२१	श्री कबीर मन्दिर अजगैबा, खलीलाबाद	६७३
२२	श्री कबीर मन्दिर बड़हरा	६७४
२३	कबीरपंथ का क्षेत्र	६७५
२४	उपसंहार	६७६

छठां अध्याय

कबीर और कबीरपंथ से प्रभावित अन्य संत और मत

१	प्रस्तावना			६८३
२	भक्त सूरदास व मीराबाई			६८४
३	श्री हरीदास जी तथा निरजनी संप्रदाय			६८४
४	श्री नानकदेव तथा उनका पंथ			६८५
५	श्री दादूदयाल और उनका पंथ			६८६
६	बावरी पंथ			६८७
७	श्री मलूक साहेब तथा उनका पंथ			६८९
८	बाबा लालदास तथा उनका संप्रदाय			६९०
९	संत प्राणनाथ तथा प्रणामीमत			६९०
१०	सत्तनामी सम्प्रदाय	१	श्री योगीदास नारनौल	६९१
		२	श्री जगजीवनसाहेब कोटवा	६९२
		३	श्री घासीदास बिलासपुर	६९२
११	श्री दरिया साहेब व दरियापन्थ			६९३
१२	रामस्नेही संप्रदाय	१	श्री दरिया साहेब	६९४
		२	श्री हरिरामदास तथा श्री रामचरण जी	६९४
१३	अघोर तथा सरभंग सम्प्रदाय			६९५
१४	रविभाण सम्प्रदाय			६९६
१५	श्री चरणदास तथा उनका सम्प्रदाय			६९७
१६	श्री गरीबदास तथा उनका पंथ			६९८
१७	श्री पानपदास तथा पानपपन्थ			६९९

१८	श्री मोहनशाह तथा उनका साईंदाता पन्थ	६०६
१६	श्री अक्षर अनन्य	७००
२०	श्री दीन दरवेश	७००
२१	संत बुल्लेशाह	७००
२२	सत मीता साहेब	७०१
२३	संत रोयल साहेब	७०१
२४	श्री तुलसी साहेब	७०२
२५	सन्त डेढ़राज तथा नागी सम्प्रदाय	७०२
२६	राधास्वामी सत्संग	७०२
२७	संतमत सत्संग	७०३
२८	स्वामी रामतीर्थ	७०४
२६	संत घीसा साहेब	७०४
३०	रवीन्द्रनाथ टैगोर	७०५
३१	महात्मा गांधी	७०६
३२	गुजरात में कबीर साहेब का प्रभाव	७०७
३३	उपसंहार	७१०

सातवां अध्याय

उपसंहार

१	सत्य सनातन, उसके उपदेष्टा समय-समय पर	७१३
२	एक दर्शन दूसरे से सर्वथा अलग नहीं	७१४
३	प्राचीनता एवं आधुनिकता	७१७
४	जीवन का परम एवम् चरम लक्ष्य	७२०

परिशिष्ट ७२५

१

बीजक मंथन

सद्गुरवे नम.

कबीर-दर्शन

पहला अध्याय

बीजक मंथन

१

प्रस्तावना

मानव विवेकशील प्राणी है। यही उसकी पशु से भिन्नता का लक्षण है। वह बाहर से सब प्रकार सम्पन्न होने पर भी आध्यात्मिक उन्नति के बिना भीतर से उदासीन एवं खोया-खोया रहता है। इस अनादिकाल के जगत में मानव सदैव सत्य को जानने की जिज्ञासा रखता आया है। वह हर समय परम सत्य, परम सुख एवं परम शान्ति को पा लेना चाहता है। परन्तु यथार्थ विवेक प्राप्त हुए बिना मनुष्य भटकता है।

पावन भारत-भूमि विचारकों का केन्द्र रही है। यह भूमि पुलस्त्य, भरद्वाज, वामदेव, अगस्त्य, कण्व, विश्वामित्र, अंगिरस, वसिष्ठ, पराशर, कपिल, बुद्ध, महावीर, कणाद, गौतम, पतंजलि, जैमिनि, व्यास, वादरायण, दिग्नाथ, धर्मकीर्ति, उदयन, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द आदि तत्व-चिंतक मनीषियो के विचार-पियूष से अनवरत सींची गयी है। धर्म, दर्शन एवं आध्यात्मिक क्षेत्र का जो यहा विकास हुआ है, अन्यतम रहा है।

संसार का स्वभाव है परिवर्तन। उच्चतम उत्कर्ष पर पहुँची हुई भारतीय आध्यात्मिक चिंतनधारा के धूमिल होने का भी समय आया। अनुदारता सारे पतन की जननी होती है। हमारे आर्य पुरुषों में अनुदारता आयी, और भारत अवनति की दिशा में आया।

आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व भारत में इस्लाम, धर्म तथा शासन के रूप में तप रहा था। उसको अपनी इलहामी एवं खुदाई किताब (कुरान) का गर्व था। उसके ख्याल से गैर-इस्लामी काफर थे, अतएव नरक के अधिकारी थे। ब्राह्मणों के पास वेद के नाम से ईश्वर की किताब थी ही और वे जो भगवान के मूड़ से पैदा हुए थे, इसका उनको दोहरा अभिमान था। अतिमानवीय कल्पनाओं ने मिथ्या विश्वासों को जन्म देकर मानव का मूल्य गिरा दिया था। अज्ञान-वश हिन्दू-मुसलमान लड़ते थे। तथाकथित ब्राह्मण, एक वर्ग को शूद्र नाम देकर उससे घृणा कर रहा था। नाथपंथी अपने कुतर्क से वैष्णवों को परास्त कर उनके वेष को छीन रहे थे। सार्वभौमिक सत्य एवं प्रेम की मानो कोई वास्तविकता ही नहीं थी। राजाओं, सामंतों, नवाबों एवं जमीदारों का दमनचक्र तो प्रजा पर चल ही रहा था। पूरी मानवता त्रस्त थी। अतएव भारत की अन्तरात्मा किसी ऐसे त्राता को चाहती थी जो सभी सकुचित सीमाओं से परे हो। जो शाश्वत सत्य को बिना किसी लाग-लपेट के ज्यों-का-त्यों कह सके। जो निर्भय हो, निर्लेप हो, सबका हो, सबसे भिन्न हो, सत्य के शाश्वत मूल्यों में प्रतिष्ठित हो और उसी का उपदेष्टा हो।

उपर्युक्त संकट-काल में भारतीय नभ पर एक तेज सितारा चमका जो अपने ज्ञानालोक से सबको आलोकित कर दिया, जिसे हम महान सन्त सद्गुरु कबीर के नाम से जानते हैं

२

जन्मकाल

मिस्टर 'बील' के अनुसार कबीर साहेब का जन्म[1] विक्रम सम्वत १५४७ में हुआ। मिस्टर 'हंटर' के अनुसार उनका जन्मकाल[2] १३५७ विक्रम है। मिस्टर 'फरकहार' के अनुसार[3] सम्वत १४५७ विक्रम है। मिस्टर 'स्मिथ' के अनुसार[4] विक्रम सम्वत १४६७ है। श्रीमान 'भंडारकर' के अनुसार[5] सद्-

१. ओरिएंटल बायोग्रेफिकल डिक्शनरी।
२. इंडियन एम्पायर।
३. आउटलाइन आव दि रिलीजस लिटरेचर आव इंडिया।
४. आक्सफर्ड हिस्ट्री आव इंडिया।
५. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टिम्स।

गुरु कबीर का जन्म विक्रम सम्वत १४५५ है। मिस्टर 'मेकालिफ' के अनुसार[६] विक्रम सम्वत १४५५ ही है। मिस्टर 'वेसकट' के अनुसार[७] कबीर देव का जन्म १४९७ है। बाबू 'श्याम-सुन्दर' के अनुसार[८] उनका जन्मकाल १४५६ विक्रम होगा।

कबीरपंथ की परम्परा सद्‌गुरु कबीर का जन्मकाल विक्रम सम्वत १४५५ मानती है और इसी के अनुसार प्रायः समस्त भारतीय लेखक एवं कुछ विदेशी भी मानते हैं। डा० रामकुमार वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, बाबू श्यामसुन्दर दास आदि सभी विद्वान कबीर-पंथ के मान्यतानुसार ही जन्मकाल पर विश्वास करते हैं। कबीरपंथ मानता है कि सद्‌गुरु कबीर का जन्म विक्रम सम्वत १४५५ मे तथा शरीरान्त १५७५ में हुआ। अर्थात जन्म सन् १३९८ और मृत्यु सन् १५१८ ई० में हुई। इस प्रकार उनकी पूरी आयु करीब एक सौ बीस (१२०) वर्ष की थी।

३

जन्मरहस्य

मनुष्य का हृदय श्रद्धामय है। फिर जिनके प्रति उनकी पूर्ण श्रद्धा हो जाती है उन्हें मनुष्य कोटि में रखना उसे पसन्द नहीं आता। अनुयायियों एवं भक्तों-द्वारा संसार के महापुरुषो के लिए अतिमानव होने की कल्पना की गयी है। मर्यादा पुरुषोत्तम राजकुमार श्रीराम तथा राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण अनन्त ब्रह्माण्ड-नायक परब्रह्म परमात्मा सिद्ध किये गये और उनका युग-युग में अवतार लेना बताया गया। मानवतावादी सन्त बुद्ध को किसी देवलोक से भारत में आने की बात की गयी और महावीर स्वामी तथा अन्य तीर्थंकरों के लिए भी बेढंगी बाते गढी गयी। ईसा को ईश्वर-पुत्र होने तथा मुहम्मद को ईश्वर का संदेशवाहक होने की बात बतायी गयी। शकराचार्य को शंकर का अवतार बताया गया और उनके जीवन मे असभव बाते जोडी गयी। नानक देव के

६. सिख रिलीजन भाग ६।
७. कबीर एण्ड दि कबीरपंथ।
८. कबीर ग्रंथावली।
डा० रामकुमार वर्मा संपादित 'संत कबीर' से उद्धृत।

जन्म एवं व्यवहारकाल में उनके भक्तों-द्वारा[१] इतना बेहद चमत्कार जोड़ा गया है जिसको पढकर घोर निराशा होती है। नानकदेव को बुद्ध,[२] ईसा, राम, कृष्ण, गौरांग, रामानुज, वल्लभ, वैदिक ऋषि, जरथुस्त्र, लाओत्जे, कनफ्यूशियस, दयानन्द, मुहम्मद, शंकराचार्य, प्लेटो, सुकरात, अरस्तू, कांट, शॉपनहावर, बर्गशॉ, वैज्ञानिक-जन, कालिदास, हाफिज, शेक्सपियर, गेटे, उमरखय्याम आदि—सबसे बड़ा बताया गया है। यहाँ खुल कर कबीर से बड़ा नानक को नही कहा गया है; परन्तु प्रकारान्तर से नानक को कबीर से भी बड़ा कहने की चेष्टा की गयी है।

अतिश्रद्धा एक मानसिक विक्षिप्तता है। सभी मत के भक्त अपने गुरुओं तथा इष्टों को सर्वोपरि, सबका दादा, अतिमानव तथा परमात्मा सिद्ध करने मे व्यस्त है। तब हमारे कतिपय गुरुभाई (कबीर अनुयायी) ही पीछे क्यों रहे। अतएव उन्होने भी गुरुवर कबीर के लिए अतिमानव होने की कल्पना की।

"कबीर साहेब मानव नही; अपितु स्वयं सत्पुरुष अर्थात परब्रह्म परमात्मा हैं। वे निर्गुण रूप से सत्पुरुष है तथा सगुण रूप से चारो युगों मे चार मुख्य नामो से अवतार लेते हैं। सत्युग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग मे क्रमशः सत्सुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय और कबीर नाम से आते है। और कबीर साहेब के केवल यही चार अवतार नही है; अपितु प्रत्येक युग में उनके अनेक अवतार होते है। संसार के समस्त गणमान्य पुरुष—सनकादि, नारद, वसिष्ठ, राम, कृष्ण, हनुमान, मोहम्मद, ईसा, मूसा, दाऊद, कबीर साहेब के शिष्य हैं। इतना ही क्या, स्थावर-जंगम के रूप मे जो कुछ आप देखते है, सब कबीर साहेब की प्रेरणा से चल रहा है। वे चाहे तो सारे संसार का अभी मोक्ष कर सकते है। वे अनन्त ब्रह्माण्डनायक, सर्व-हर्ता-कर्ता है। अब आप स्वयं सोचिये, जिसके निमेष-उन्मेष से अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं प्रलय होता है उन कबीर साहेब के विषय मे यह पूछना कि उनका जन्म किनसे हुआ है वैसे ही पूछना है कि सूरज बिजली के किस लट्टू से पैदा हुआ? वस्तुतः कुछ उनकी लीला है तो यह कि आकाश से एक प्रकाश-पुंज काशी के लहरतारा-तालाब में एक कमल-फूल पर उतरा और वह बालक बन गया, जो कबीर साहेब थे। अंततः मगहर म उनका शरीर फूलो का ढेर हो गया जिसे आधा-आधा बॉटकर हिन्दू जलाये तथा मुसलमान उसका दफन किये।

१ श्री गुरु नानक चमत्कार चारो भाग।

२. श्री गुरु नानक चमत्कार भाग चौथा का अंत।

उपर्युक्त बातें श्रद्धालुओ द्वारा ज्यों-की-त्यों मान लेने की हैं। जो लोग वस्तुपरक बुद्धि रखते हैं, जो हर कार्य मे कारण-कार्य-व्यवस्था देखते है, जो बिना विवेक एवं निर्णय के कुछ भी स्वीकार करने की चेष्टा नही करते, उनके गले ऊपर की बाते उतरें या न उतरे; परन्तु श्रद्धालुजन मानते ही जायेंगे। ठीक है, अपनी मान्यता के लिए हर मनुष्य स्वतन्त्र है; परन्तु सत्य-ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रद्धा की दीवार मे बुद्धि के झरोखे खोलने पड़ेगे। केवल श्रद्धा में अन्धकार है और केवल बुद्धि मे रूक्षता। दोनों के समन्वय पूर्वक वस्तु निरीक्षण की आवश्यकता है।

मनुष्य का मन बड़ा कमजोर है। वह अपने इष्ट के गुणों को ज्यों-का-त्यों नही स्वीकार करना चाहता। वह उन्हे अतिरंजित करके देखता है और जब उनकी उत्पत्ति के विषय में कुछ सामाजिक नियमों की कमजोरिया देखता है तब वह उस पर चमत्कार, दैवी, अतिमानवीय आदि का स्वर्णिम वरक लगाकर प्रस्तुत करता है। इसीलिए श्रद्धेया मा सीता को पृथ्वी फोड़ कर निकलना तथा अंततः पृथ्वी में समा जाना बताया गया। श्री राम को क्षीर-भोजन से पैदा बताया गया इत्यादि। तो कबीर साहेब की भी उत्पत्ति कुछ इसी संदर्भ मे पाकर उनके भक्तो द्वारा उनको कमल फूल पर अवतरित तथा अंततः फूलो में विसर्जित होना बताया गया। यह मिथ्या धारणा केवल श्रद्धा की उपज है। कोई मनुष्य माता-पिता के बिना पैदा नही होता। राम भी मनुष्य थे, सीता भी मनुष्य थी और कबीर भी मनुष्य थे। इन सबके कोई माता-पिता थे। आधा या पूरा पता लगे या न लगे।

किसी महापुरुष के मूल्यांकन के मानदण्ड उसके आचरण और ज्ञान होते हैं, उसके माता-पिता एवं वर्ण-जाति नहीं। ऋग्वेद[३] तथा वाल्मीकीय रामायण[४] के अनुसार महाराज श्री राम के गुरुदेव महाराज वसिष्ठजी उर्वशी अप्सरा के पुत्र थे जो मित्र-वरुण द्वारा पैदा किये गये थे। घर-घर पूजे जाने वाले बालब्रह्मचारी, भक्त, विद्वान, राजनीतिकुशल एवं शूर-वीर श्री हनुमान जी के पिता के विषय में ठीक से निश्चय न होने से ही उन्हे शंकरसुवन, केशरीनन्दन तथा पवनसुत कहा गया। अर्थात एक साथ उन्हे शंकर का, केशरी

३. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्म मनसोऽधि जातः।

(ऋग्वेद ७-३३-११)

अर्थ—हे वसिष्ठ! हे ब्रह्मन! तुम मित्रावरुण और उर्वशी के मन के प्रभावित होने से, उनसे पैदा हुए हो।

४. वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग ५६-५७। गीता प्रेस संस्करण।

का तथा पवन का लड़का बताया गया। विदित है कि किसी व्यक्ति का पिता केवल एक होता है, दो-तीन नहीं। पराशर[५] और व्यास, भंगिनि तथा धीवरीतनय होने से उनका मूल्य कम नहीं आंका जा सकता। हिन्दू धर्म तो इतना उदार है कि वह मछली, कछुआ, सूअर तथा नरपशु को भी भगवान का अवतार मानकर पूज लेता है; मत्स्यावतार, कच्छपावतार, शूकरावतार एवं नरसिंहावतार की चर्चा आप सुने ही हैं, फिर मानवरूप में संत की पूजा तो स्वाभाविक है।

सत्यकाम जाबाल का उदाहरण जोरदार है। जन्म और जाति से स्वतन्त्र होकर मानवता का सही मूल्यांकन इस उपाख्यान में हुआ है।

एक लड़के ने अपनी माता से कहा—"माता ! मैं ब्रह्मचर्य-पूर्वक गुरुकुल में रह कर विद्याध्ययन करना चाहता हूँ। वहाँ जाने पर गुरुजी मेरा गोत्र पूछेंगे। तो माता ! मेरा क्या गोत्र है ?"

माँ ने कहा—"बेटा ! तू किस गोत्र वाला है, मैं नही जानती। क्योंकि मैंने अपनी जवानी में अनेकों की सेवा की, अनेको का सहचरण[६] किया और घूमती-विचरती रही। इसी संदर्भ मे तेरा जन्म हुआ। इसलिए यह पता नहीं कि तू किस गोत्र वाला है। मेरा नाम जबाला है तथा तेरा नाम सत्यकाम। अतः जाकर कह देना कि मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।"

तात्पर्य यह कि जबाला का कोई पति नही था।[७] वह घर-घर सेवकाई का काम करने वाली दासी थी। वह जवानी को सम्हाल न सकी थी। उसका सम्बन्ध अनेकों से हुआ। उसको गर्भ किससे रहा इसका उसे पता न था। वह

५. जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकः कणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥ (भविष्यपुराण)
अर्थ—मल्लाह की लड़की से व्यास, श्वपच की लड़की से पराशर, शुकी से शुकदेव तथा उलूकी से कणाद हुए।

६. स हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति।
(छांदोग्य उ० अ० ४, खंड ४, मं० २)

७. यहाँ पर स्वामी शंकराचार्य ने अपने भाष्य में लीपापोती करने की भरपूर चेष्टा की है; परन्तु उनके इस लीपापोती को किसी विचारक ने नहीं माना है। क्योंकि यहाँ स्वामी जी ने उपनिषद् वाक्यों के साथ अति बलात किया है और

साफ कह दी। वृहदारण्यक उपनिषद् मे ऐसे पचासो ऋषियो के नाम है जिनके पिता का पता नही है।[८]

सत्यकाम जाबाल, गौतम के पास पहुँचा और अपने अध्ययन का लक्ष्य कह सुनाया। गौतम ने गोत्र पूछा। सत्यकाम ने माता की कही हुई बाते ज्यों-की-त्यों कह दी। गौतम ने कहा—"बेटा! तू ब्राह्मण है। क्योंकि अब्राह्मण सत्य नही बोलता। अर्थात जो सत्य बोलता है वह ब्राह्मण है। यह था हमारे पूर्वजों का मानदण्ड ब्राह्मण होने का। धन्य है गौतम ऋषि की महानता, उनकी वस्तुपरक बुद्धि एवं विवेक को। वे जन्म एवं जाति ब्राह्मण होने का मानदण्ड नही मानते; किन्तु सत्यपरायणता मानते हैं।

श्री रजनीकांत शास्त्री लिखते हैं—"C. N. Krishnasamy Aiyar, M. A., L. T., Assistant Native College, Coimbatore ने Life And Time of Sankar नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक के पृष्ठ १२ मे आनन्दगिरि-कृत "शंकर-विजय" के आधार पर आप लिखते हैं—We are told that there was a pious Brahmin living with his wife at this place (Chidambaram), and that at one time the husband retired to a neighbouring forest after renouncing the world, that the wife continued for a long time to serve the Lord of Chidambar-am, and that as reward of her devotion, the Lord was pleased to make her conceive in some mysterious and miraculous manner And the child thus born to her was Sankar.

जबाला के मुख से सत्यकाम के लिए कहलवाया है—"बेटा, मै अपनी जवानी में घर में आये हुए अभ्यागतों की सेवा में इतनी व्यस्त रहती थी कि तुम्हारे पिता के जीवनकाल मे मैं उनसे उनका गोत्र पूछ ही नहीं सकी।" यह स्वामी जी की दलील कितना अस्वाभाविक है। लड़की-लड़के की जब शादी होने को होती है उसके पहले ही वे एक दूसरे के गोत्र इत्यादि को जान लेते हैं। फिर जबाला का यदि कोई विवाहित पति था और वही सत्यकाम का पिता था, तो उसका नाम पिता के नाम के आधार पर क्यों न रखा गया? जैसे हरिद्रुमान के पुत्र का नाम हारिद्रुमत पड़ा। अतएव सत्यकाम के पिता का पता न होने से उसका नाम माता जबाला के नाम के आधार पर पड़ा—सत्यकाम जाबाल। इसीलिए स्वामी शंकर की इस प्रक्षिप्त राय को स्वामी विवेकानन्द, सर राधाकृष्णन एवं समस्त विचारको ने अस्वीकार कर दिया है।

८. वृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय २, ब्राह्मण ६ तथा अध्याय ४, ब्राह्मण ६।

अर्थ—हम लोगों से कहा जाता है कि इस स्थान पर (चिदम्बरम्) में एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण अपनी स्त्री के साथ रहते थे। काल पाकर वे संसार से विरक्त हुए और निकटवर्ती वन में चले गये। उनकी स्त्री बहुतकाल तक चिदंबरम् के अधिष्ठाता देवता की सेवा करती रही। देवता ने उसकी भक्ति के पुरस्कार स्वरूप उसे गुप्त तथा करामाती उपाय से गर्भवती बना दिया और इस प्रकार जो बच्चा उत्पन्न हुआ, वही शंकर हुआ।

नोट—ब्राह्मण देवता तो संसार से विरक्त होकर वन में चले गये थे। उनके संसार त्याग के बाद उनकी धर्मपत्नी बिना किसी पुरुष के संसर्ग के ही गर्भवती कैसे हो गयी; यह समझ में नहीं आता। पाठकगण Mysterious तथा Miraculous शब्दों से अपना जो भाव चाहें, निकाल लें। मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कहता।

पुनः उक्त पुस्तक के उसी पृष्ठ में पण्डित नारायणाचार्य्य-कृत "मणि-मंजरी" के आधार पर लिखा है—The writer of Manimanjari states that a Brahmin widow of Kaladi went astray from the ascetic life imposed upon her and begot a male child, and this child was Sankar. This plain statement, however, is based upon a tradition still current in some parts of Malabar, that a young widow of Kaladi once went to the temple of Siva along with girls of her own age and that as some among them prayed for children, she also did so, and the Lord granted her request, and that she bore Sankar in consequence.

अर्थ—"मणिमंजरी" का लेखक कहता है कि कालडी की एक विधवा ब्राह्मणी तापस जीवन से, जो उसके लिए विहित था, परिच्युत हो गयी और उसने एक पुत्र उत्पन्न किया। यही लड़का शंकर था। इस सीधे-सादे कथन का आधार परम्परागत वह लोक-कथा है जो मालाबार के कुछ भागों में अब तक प्रचलित है। वह लोक-कथा यह है कि कालडी की एक अल्प-वयस्क विधवा अपनी ही उमर की अन्य लड़कियों के साथ एक बार शिव के मंदिर में गयी और चूँकि उन लड़कियों में से कुछ ने बच्चों के लिए प्रार्थना की, उसने भी वैसा ही किया और प्रभु ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। परिणाम स्वरूप उसने शंकर को उत्पन्न किया।"[६]

६. मानस मीमांसा, पृष्ठ १३-१४।

अतएव व्यक्ति किस माता-पिता से एवं किस जाति में पैदा हुआ—इसका महत्व नही है; अपितु महत्व है उसके ज्ञान एवं आचरण का।

सद्गुरु कबीर के शारीरिक जन्म के विषय में अनेक किंवदंतियाँ हैं; परन्तु उनमें से हम किसी को पुष्ट प्रमाण नही मान सकते। अतएव इतना ही निर्णय उचित है कि वे भी किसी माता-पिता से पैदा हुए; हुए अन्य मनुष्य के समान पैदा ही। उनके माता-पिता का पता न लगने से उसी प्रकार कोई हानि नही, जैसे श्रद्धेया मां सीता के माता-पिता का पता न लगने से उनकी उच्चता में कोई हानि नहीं तथा अन्य अनेक उदाहरण ऊपर देख ही लिये गये हैं। हीरे की कीमत की जाती है, हीरे की खदान का पता लगाना या जौहरी के माता-पिता एवं जाति-बिरादरी की पूछताछ करना हम कोई आवश्यक नही समझते।

सद्गुरु कबीर भी एक मानव थे। वे किसी मानव मां-बाप से जन्में होंगे। हाँ, कबीर देव महामानव थे, महान संत एवं सद्गुरु थे। अतएव उनके दिव्य आचरण तथा ज्ञान का हम मूल्यांकन करे।

४

कबीर देव की जीवनकथा उनका ज्ञान है

हमारे भारतीय संत पुरुषों ने न कभी अपनी आत्मकथा लिखी और न दूसरों से लिखवायी। वेदकाल, उपनिषद्काल और सूत्रकाल के जितने महापुरुष एवं ग्रन्थ-लेखक हुए किसी के विषय में कुछ विवरण नही मिलता।

इतिहास-विशेषज्ञों ने महात्मा बुद्ध के पहले के समय को प्रागैतिहासकाल अर्थात इतिहास के पूर्व का समय माना है। बुद्ध के पहले का इतिहास धुंधुलके में है, इसलिए उसके लिए हम कुछ कह नही सकते और बुद्धकाल (५०० ईसा पूर्व) से लेकर आज तक इतिहासकाल है। वेदानुसारी छह शास्त्रों के रचयिताओ में कपिल निश्चय ही प्रागैतिहासकाल के अर्थात बुद्ध के पहले के हैं; परन्तु इतिहास विशेषज्ञो ने अन्य पांच—गौतम, कणाद,[१] पतंजलि, जैमिनि एवं वादरायण को बुद्ध के बाद माना है। इन महापुरुषों के ऐतिहासिककाल में होते हुए भी इनकी कोई जीवन-कथा नहीं मिलती।

१. कणाद भी बुद्ध के पहले होने चाहिए। यदि वे बुद्ध के बाद हैं, तो भी उनके दर्शन का विचार बुद्ध के पहले का है।

श्री राम की कथा लिखने वाले महर्षि वाल्मीकि ही नही, गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपनी कोई जीवनी नही लिखी। इलाहाबाद के हाईकोर्ट के एक वरिष्ठ वकील ने इन पंक्तियो के लेखक को बताया था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के जजों द्वारा यह फैसला हो चुका है कि तुलसीदास के माता-पिता, जाति-बिरादरी का कोई पता नहीं। उनकी जितनी जीवनगाथा प्रचलित हैं, सब काल्पनिक हैं।

फिर कबीर साहेब जैसे मस्तमौला संत कब अपनी जीवनकथा लिखने या लिखाने लगे? अतएव उनके विषय में जितनी जीवनगाथा लिखी व छपी मिलती हैं, उनमें अधिकतम काल्पनिक हैं। इतना साफ है कि उनका मुख्यालय काशी रहा तथा बीच-बीच में भारत के कोने-कोने तथा भारत के बाहर भी उनका भ्रमण होता रहा[२]। उनका आविर्भाव काशी में तथा शरीरांत मगहर में प्रसिद्ध है। उन्होंने जीवनपर्यन्त काशी में अपना मुख्यालय रखा; परन्तु वे शरीरांत के समय काशी छोड़ कर मगहर जा बसे। इसमे भी उनका इस अंधविश्वास को तोड़ने का अपना व्यावहारिक प्रयास था कि काशी मे मरने से मुक्ति तथा मगहर में मरने से गधा होना पड़ता है। उनके पूरे जीवन का उद्देश्य ही अन्धविश्वासों तथा मिथ्या धारणाओं को समाप्त कर सत्यज्ञान की प्रतिष्ठा करना था। उनके पूर्व-निर्धारित अदृष्ट प्रारब्ध कर्म एव प्रकृति ने उनको ऐसा जन्म दिया कि मानो वे शरीर धारण करते ही यह सिद्ध कर दिये कि हम एक मानव हैं, हिन्दू-मुसलमान आदि मिथ्या विश्वासो से पैदा हुई भ्रम-धारणा जनित अमुक जाति से नही। उनके जन्म, जीवन-काल और मरण—सब असत्य मूल्यो को समाप्त कर सत्य की प्रतिष्ठा करने के लिए थे। उनकी वाणियो में उनका ज्ञान सुरक्षित है। वही उनकी जीवनकथा है।

किसी महापुरुष का जीवन-चरित यदि मिले तो निश्चित ही उससे समाज को बड़ी प्रेरणा मिलती है। परन्तु यदि वह न मिले तो उसके सम्बन्ध में काल्पनिक कथाएँ गढ़कर खड़ा करना कथमपि समीचीन न होगा। वैसे कबीर देव के ऊपर बावन कसनियों का जो वर्णन मिलता है, जिनमें यह बताया गया है कि सिकन्दर लोदी ने कबीर साहेब को हाथी से कुचलवाना चाहा, परन्तु हाथी ने कबीर साहेब के सामने जाकर सिर झुका दिया। उनको जंजीर मे बाँधकर गंगा में डाला गया और वे गंगा की लहर पर बैठे नजर आये तथा जंजीर टूट कर बिखर गयी, इत्यादि। इन अतिरंजित कथाओ से ये झलकियां मिलती हैं कि कबीर साहेब को तात्कालिक शासन ने कष्ट देने की

२. देश विदेशे हौं फिरा, गांव गांव की खोरि। (बीजक, साखी ३१६)

चेष्टा की; परन्तु वे अपने सत्य के बल पर विजयी रहे। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' सत्य की जय होती है, असत्य की नहीं; इस अटल नियम को कौन टाल सकता है ?

कबीर साहेब की खरी बातें सुनकर पहले पण्डित और मौलवी—दोनों उन पर क्रुद्ध हो गये; परन्तु जब धीरे-धीरे वे सद्गुरु कबीर की वास्तविकता को समझे तब दोनों शांत होकर उनके कायल हो गये। वे खरी बातें कहते थे और खरी बातें कटु होती ही हैं; परन्तु उनकी पूर्ण निष्पक्षता, उदारता, निर्मानिता एवं निरालेपन ने आगे चल कर सबके दिल को जीत लिये। कितने लेखको को यह आश्चर्य होता है कि जो कबीर साहेब जीवनपर्यन्त हिन्दुओं-मुसलमानों, पण्डितो-मौलवियो के अंधविश्वासों का तथा समाज की गलत रूढ़ियो एवं मिथ्या धारणाओ का विरोध करते रहे वे लगभग सवा सौ वर्षों की लम्बी आयु भोग कर प्रारब्ध-अवधि पूरी होने पर आराम से शरीर छोड़े। यह लगभग सवा सौ वर्षो तक उनके धड़ पर सिर बना कैसे रह गया। विद्वानों को यह न भूल जाना चाहिए कि सद्गुरु कबीर सारे मिथ्या विश्वासों, अहंकारों एव पक्षों से रहित थे। न वे ईश्वर पुत्र बने थे न पैगम्बर और न अवतार. न वे किसी इलहामी एव ईश्वरीय किताब के पक्षधर थे। वे न किसी सम्प्रदाय चलाने के भूखे थे और न राजसत्ता चाहते थे। वे तो ऐसे निराले थे कि अपने आप में अकेले थे। उनकी पूर्ण निर्मानिता और निष्पक्षता तथा देवी चमत्कारों और अतिमानवीय धारणाओ से हटकर प्रकृतिगत कारण-कार्य-व्यवस्था तथा मानव-मूल्यो की उच्चतम के रूप में स्वीकृति, सबके मन को मोह ली।

५

वे विरक्त संत थे

कुछ लोग कहते है कबीर साहेब जीवनपर्यन्त गृहस्थ थे। कुछ लोग कहते हैं कि वे पहले तो गृहस्थ थे; परन्तु पीछे विरक्त एव त्यागी हो गये। ये सारी बातें निरर्थक हैं। कबीर साहेब के जीवनवृत्त को समझने के लिए बहि-र्साक्ष्य कबीरपंथ की परम्परा है और अंतर्साक्ष्य उनकी प्रामाणिक वाणियों का संग्रह बीजक ग्रंथ है। कबीरपंथ का मूल स्थान काशी का कबीरचौरा तथा देश-विदेश में फैले हुए हजारों मठ इसके साक्षी हैं कि कबीर साहेब विरक्त संत थे। कबीरपंथ की किसी भी शाखा से यह सूत्र नही मिलता कि वे गृहस्थ थे; अपितु सब जगह से यही प्रमाण मिलता है कि वे त्यागी सत थे।

दक्षिणी भारत के कबीर साहेब के समसामयिक प्रसिद्ध विद्वान पण्डित सर्वाजीत सद्गुरु कबीर से विवाद करके परास्त हुए तथा उनकी शिष्यता स्वीकार कर साधु हो गये। उन्ही का नाम पड़ा श्री श्रुतिगोपाल साहेब जो काशी कबीरचौरा के पहले महंत हुए। उनके समय से आज तक वह परम्परा चली आ रही है; परन्तु वहां सद्गुरु कबीर को विरक्त संत ही माना जा रहा है।

कबीर साहेब के प्रामाणिक ग्रंथ बीजक की वाणियों का अध्ययन करने से साफ हो जाता है कि वे विरक्त थे। वे कहते हैं—"माया[1] को मैंने महान ठगिनी समझा है। वह अपने हाथों में त्रिगुण का फांस लेकर घूमती है और मीठी बाते बोल कर लोगो को फंसा लेती है। वह विष्णु के घर में लक्ष्मी, शिव के घर में सती या पार्वती तथा ब्रह्मा के घर में सरस्वती बनकर बैठी है।" भला जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव को इसलिए माया में फसा हुआ कहता है कि उनके पास सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती हैं, क्या वह स्वयं लोई आदि किसी स्त्री मे बँधा हो सकता है? वे और कहते हैं—"ऐ ज्ञानरंग जीव! तू[2] कनक तथा कामिनी को देख कर मत भूल। इनके मिलने-बिछुड़ने मे सांप-केंचुल के समान घोर कष्ट है। कनक[3]-कामिनी की आसक्ति रूपी माया की लपट में ससार जल रहा है। आग से लिपटी हुई रुई के समान तुम कैसे बच सकते हो। मूढ़ पतिंगे[4] अग्नि की ज्योति को देखकर उसमें मोहवश कूद कर जल मरते हैं। इसी प्रकार कनक-कामिनी में आसक्त होकर विमोहित मानव सावधान नही होता।"

कबीर साहेब का मुख्यालय काशी अवश्य था; परन्तु वे देश-विदेश में भ्रमणशील संत थे। वे स्वय कहते हैं—"मैंने देश[5]-विदेश और गांव-गांव की गलियों में भ्रमण किया है।" सद्गुरु कबीर के थोड़े ही दिनों के पीछे (संवत १६४२ वि०) के प्रसिद्ध वैष्णव संत श्री नाभादास जी महाराज की मूल वाणी भक्तमाल में कबीर साहेब के गृहस्थ होने का कोई सकेत नही है। कबीर साहेब का प्रामाणिक ग्रंथ बीजक है। उसके बाहर की उनके नाम पर मिलने वाली वाणियां प्रक्षिप्तों से भरी हुई तथा सुन-सुना कर लिखी गयी हैं और उन्ही में कुछ ऐसे सूत्र मिल जाते हैं जिनकी बाल की खाल काढ़ कर कबीर साहेब को गृहस्थ सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है। बीजक मे लोई, कमाल, कमाली,

१. बीजक, शब्द—५६। २. बीजक, साखी—१४८।
३. बीजक, साखी—१४१। ४. बीजक, शब्द—६०।
५. बीजक, साखी—३१६।

धनियां, रमजनियां आदि किसी की भी चर्चा नहीं है। बीजक का ज्ञान वैराग्य-वर्द्धक है; क्योंकि वह वैराग्यवान सद्गुरु कबीर के मुख से निकला है। यह नही भूलना चाहिए कि सद्गुरु कबीर विरक्त संत थे।

कबीर साहेब के समकालिक सूरतनिवासी वैष्णवसंत निर्वाण जी महाराज, जिन्होने कबीर साहेब का अपने यहाँ स्वागत भी किया था, कबीर साहेब को 'युगन-युगन का योगी' और 'अवधूत' कह कर उनके विरक्त होने की घोषणा की है।[६]

प्राय: विद्वान लोग जव किसी महापुरुष के विषय में लिखने बैठते हैं तब उनकी प्रामाणिक तथा अप्रामाणिक वाणियों या जनश्रुतियो के आधार पर बाल की खाल काढ कर उनके माता-पिता, जाति-बिरादरी, पत्नी-बच्चे आदि के विषय में मनगढन्त बाते लिख-लिख कर अपनी आधी पुस्तक रंग डालते है। विद्वानो की यह सनक ही है। किसी महापुरुष के माता-पिता, जाति-बिरादरी, परिवार आदि का सहज पता लग जाय तो ठीक है और यदि न लगे तो उसमें कोई हानि नहीं। उनकी प्रामाणिक वाणियो के आधार पर उनके तत्त्वज्ञान तथा समाज-हितकारी बातों का विश्लेषण करना चाहिए, जिसमे सबका मंगल है। किसी महापुरुष की वाणी में कोई रूपक आ जाय तो हम उन्हे तत्सम्बन्धी व्यवसायी होने की कल्पना नहीं कर सकते। बीजक मे जोलाहे के चरखे तथा ताना-बाना, बढई, नाई, चमार, पंडित, कहार, कुम्हार, कलाल, क्षत्रिय, वैश्य आदि के नाम तथा रूपक आदि आये हैं; तो हम कबीर साहेब को इनमें से किस जाति या व्यवसाय का सिद्ध करेंगे ? वेदान्त मे घट-मृतका का उदाहरण देखकर हम उनके रचयिताओ को कुम्हार तो नही कह सकते। ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं "चारों ओर सूत्र-विस्तार के द्वारा यज्ञ रूप वस्त्र बुना जाता है। देवों के लिए बहुसंख्यक अनुष्ठानो के द्वारा इसका विस्तार किया गया है। यज्ञ में जो पितर लोग आये हैं, वे बुन रहे हैं। लंबा बुनो, चौड़ा बुनो, कहते हुए वे वस्त्र-वयन का कार्य करते है। एक वस्त्र को लम्बा करते है और दूसरे चौड़ाई के लिए उसे पसार रहे हैं। यह स्वर्ग तक विस्तारित हो रहा है। ये सब तेज-पुंज देवता यज्ञ गृह मे बैठे हैं। इस कार्य मे साम-मंत्रो का ताना-बाना बनाया जाता है।"[७] क्या हम उक्त उदाहरण को लेकर उक्त ऋषियों को जोलाहा होने की घोषणा करेंगे ? वैसे जोलाहा होना बुरा नही। कपड़ा वैदिक युग में भी बनता था और उसे मनुष्य ही बनाते थे।

६. राम कबीर संप्रदाय, पृष्ठ ८, डा० कांतिकुमार भट्ट।

७. ऋग्वेद १०, १३०, १-२। श्री रामगोविन्द त्रिवेदी की टीका।

बीजक ही कबीर साहेब की प्रामाणिक वाणी है और उसमें उन्होने अपने आप के पत्नी-बच्चे आदि के विषय मे कही आधी जबान भी नही स्वीकारा है। बल्कि इसके विपरीत वैराग्य की बातें कही है; परन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने बीजक से बाहर की वाणियों का प्रमाण मानकर और उनकी कुछ पंक्तियो का स्थूल अर्थ लगाकर कबीर साहेब की दो स्त्रिया सिद्ध करने की चेष्टा की है। वे कहते हैं "कबीर की संभवतः दो स्त्रिया थी। पहली कुरूपा थी, उसकी जाति का कोई पता न था और उसमे गार्हस्थ्य के कोई लक्षण नही थे। दूसरी सुन्दरी थी, अच्छी जाति की थी तथा अच्छे लक्षणो से सम्पन्न थी। पहली स्त्री का नाम था 'लोई' और दूसरी स्त्री का नाम था 'धनियां' जिसे लोग 'रमजनियां' भी कहते थे। संभवतः यह वेश्या रही हो, किन्तु कबीर की दृष्टि मे वेश्या किसी भांति हीन न समझी गयी हो।"[८] यह स्वनामधन्य डा० रामकुमार वर्मा की उद्घोषणा है और इसका आधार उनके ये महावाक्य है—

मेरी बहुरिआ को धनिया नाउ। लै राखिओ रामजनिआ नाउ।
पहली कुरूपि कुजाति कुलखनी। अबकी सरूपि सुजाति सुलखनी॥

पहली बात उक्त पंक्तियों तथा पंक्तियों के भाव की बीजक मे नाममात्र छाया भी नही है। दूसरी बात इन पंक्तियों का अर्थ आध्यात्मिक होना चाहिए। यहाँ बहुरिया का अर्थ वृत्ति है। मेरी पहली वृत्ति थी वह कुरूपा, कुजाति एवं मलिन थी; परन्तु ज्ञानमार्ग की वृत्ति सुरूपा, सुजाति अर्थात दिव्य है। इस प्रकार की दूसरी भी वाणिया है "पहली वाली असद्वृत्ति रूपी पत्नी से कभी सुख नहीं मिला, अपितु दूसरी वाली सद्वृत्ति रूपी पत्नी के आने से सारे भ्रम मिट गये[९]।" बीजक मे कबीर साहेब की वाणी है "हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया[१०]।" तो क्या इसके आधार पर कबीर साहेब को 'स्त्री' होना सिद्ध किया जायगा ? बीजक की और वाणी है "माई मै दोनो कुल उजियारी। सासु ननद पटिया मिलि बँधलो भसुरहि परलो गारी[११]।" अर्थात हे माता ! मैं दोनों कुलो को उजागर करूंगी। मैने सासु और ननद को खाट की पाटी में बांध दिया है तथा जेठ को खूब गाली दी है।" क्या इसमें कबीर

८. संतकबीर, प्रस्तावना—पृष्ठ ६५।

९. पहली को पाल्यो भरमत डोल्यो, सँचु कबहूँ नहिं पायो।
अबकी घरनि धरी जा दिन थै, सगलों भरम गवाँयो॥

१०. बीजक, शब्द—३५।

११. बीजक, शब्द—६२।

साहेब का इतिहास खोजा जा सकता है। अभिप्राय है कि सद्वृत्ति कहती है कि हे चेतना-शक्ति माता, मै स्वार्थ-परमार्थ दोनो की उजासिका हूँ। मैने संशय और कुमति को अपनी स्थिति-शय्या की पाटी में बांध रखी है तथा अविवेक को खूब गाली दी है—तिरस्कार किया है, इत्यादि। डा० रामकुमार वर्मा जी जिन वाणियो को प्रमाण मानते है, उन्ही मे लिखा है "मेरी माता मर गयी और मै बहुत सुखी हो गया, अब न मैं अंगरखा पहनूंगा और न मुझे ठण्डी लगेगी[१२]।" इस अर्थ का क्या तुक हो सकता है कि कबीर साहेब जैसे ज्ञानी पुरुष माता के मरने पर अपने को सुखी होना बताये और उनकी माता उन्हे अंगरखा पहनाती रही हों, इसलिए वे घबरा कर अपनी माता की मृत्यु का रास्ता देखते रहे हो। फिर अंगरखा न पहनने पर ठंडी न लगने की बाते और बेतुकी है। वस्तुतः संतो की ऐसी वाणियो का जो स्थूल अर्थ करेगा वह धोखे मे ही पड़ेगा। यहाँ 'माता' का अर्थ 'ममता' है। उसके मर जाने पर साधक खुश होता है और वह कहता है कि अब शरीर रूपी दगली (अंगरखा) नही पहनूगा और अब मुझे सासारिकता की ठंडी नही लगेगी।[१३]

कबीर साहेब जैसे वैराग्यप्रिय ज्ञानी पुरुष जिन्होने बीजक मे अपने जीवन संबंधी किसी बात की चर्चा नही की है, उनकी वाणियो में क्लिष्ट कल्पना करके उनके माता-पिता एवं पत्नी-बच्चे का पता लगाने का दुराग्रह किया जाय तो एक अदूरदर्शिता ही होगी। आलोचक बेचारे कही-कही अपने अंतःकरण के योग्यतानुसार अपनी छटंकी से महापुरुषो को भी तौलने लगते है जो उचित नही है। और ये लेखक लोग क्या नही लिख सकते? जो कृष्ण ऋग्वेद मे शूरवीर तथा गलत रूढ़ियो के तोड़क है, महाभारत में महान राज-पुरुष, वीर और ज्ञानी है, वही कृष्ण लेखको की कृपा से श्रीमद्भागवत मे परम रसिया होकर हजारो पत्नियो वाले हो गये और परायी पत्नियो से रास (भोग-विलास) करने वाले हो गये।

१२. मुई मेरी माई, हऊ खरा सुखाला। पहिरउ नहीं दगली, लगै न पाला॥
(सं० क० आसा ३)

१३. मेरी लिखी वैराग्य संजीवनी-का तीसरा छन्द मुमुक्षु का दुखमय जीवन चरित्र "इस वासना दुखकारिणी के हाथ पड़ रोता रहा........" से मेरे जीवन की घटनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखक पूर्वाश्रम में न आर्थिक संकट में था और न किसी सेठ की नौकरी की थी। वह एक सहज मानव जीवन की घटनाओं का चित्रण है। अब यदि उन पंक्तियों को लेकर कोई मेरा जीवन चरित लिखने लग जाय तो अनर्थ ही होगा, जैसा कि कबीर साहेब के जीवन के साथ अनर्थ किया जाता है।

भागवत के रास पंचाध्यायी जैसे रसिक प्रसंग में राधा का नाम नहीं है, और पूरे भागवत में राधा का नाम नहीं है। परन्तु पीछे कवियों की कृपा से एक कल्पित राधा आकर कृष्ण के मत्थे मढ़ गयी। यहाँ तक कि ब्रह्मवैवर्त पुराण ने श्री कृष्ण को अधिक कामी सिद्ध किया। जब 'गर्ग संहिता' के लेखक ने कलम उठायी तो उसने कृष्ण को अरबों-खरबों पत्नियों से संयुक्त कर दिया। जब कृष्ण के भक्त लोग ही उनकी इतनी मिट्टी पलीद कर सकते हैं, तब आलोचक बेचारे कबीर साहेब को एक-दो पत्नियों से जोड़ने की कल्पना करें तो क्या आश्चर्य है।

विद्वान डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने मतानुसार कबीर साहेब की देन तथा उनके ज्ञान के विषय में महत्वपूर्ण मूल्यांकन किया है; परन्तु उन्होंने जो धनिया, रमजनिया आदि की विचित्र कल्पना की है, वह सर्वथा अनर्गल एवं मिथ्या धारणा है।

डा० रामकुमार वर्मा जी की उक्त मिथ्याधारणा से असहमति प्रकट करते हुए कबीर साहेब के एकनिष्ठ विचारक श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव ने लिखा है "अब यह अपनी रुचि है कि हम ऐसे पदों में आये हुए कुल-संबंध सूचक शब्दों का मुख्यार्थ लेकर कबीर की पत्नी के देवर, जेठ, ननद, बाप, सगे भइया (बा० प० २३०) आदि का इतिहास ढूढ निकालने मे माथापच्ची करें या इनके सांकेतिक अर्थ लेकर संगति बैठाये। हम नही समझते अपने कुल वालो का यह असंगत पचड़ा सुनाने में कबीर का क्या उद्देश्य हो सकता था। हां, सांकेतिक अर्थ से अवश्य उनके भाव पूर्णतया स्पष्ट हो जाते हैं। कबीर ने राम को भुलवाने वाली 'बौरीमति' और राम मे रमाने वाली 'सुन्दरमति' का उल्लेख अन्यत्र किया भी है[१४]।"

६

कबीर के विषय में कुछ विद्वानों का बहकाव तथा रहस्यवाद का होहल्ला

जो लोग वैदिक ऋषियों को जंगली गड़रिये तथा वेदमन्त्रों को गड़रियों के गाये हुए गड़बड़ गीत ही मानते है, वे उन तपःपूत ऋषियों एवं वेदमन्त्रों को

१४. कबीर साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ३४१।
साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, वि० स० २००८।

क्या समझेंगे ! जो लोग ऋषि-मुनियों को अधिकतम अनमिल माँ-बाप के अनैतिक यौनाचार से पैदा हुए मानकर उनको जहुआ जपाट होने की धारणा करते हैं, यथा व्यास, वसिष्ठ, नारद, सत्यकाम जाबाल, ईसा आदि, वे उनकी अच्छाइयों को क्या समझेंगे। जो लोग महात्मा बुद्ध का उपदेश राक्षसों के[1] लिए मान लेगे वे उनके ज्ञान का महत्व क्या समझ सकेंगे। जो लोग ऋषभदेव, महावीर आदि को नास्तिक ही मानते है वे उनकी अच्छाइयो को समझने से रहे। जो लोग स्वामी शंकराचार्य को दैत्य का[2] अवतार समझते हैं वे उनके ज्ञान के उत्तम अंशो को भी ओझल करना चाहेगे। जो गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दू समाज का पथभ्रष्टक[3] समझते हैं वे उनकी हिन्दू-समाज के लिए देन को क्या समझेंगे। इसी प्रकार जो लोग सद्गुरु कबीर को अनपढ़ जुलाहे मान लेगे वे क्या उन्हे समझ सकते है।

किसी को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है, परन्तु उससे श्रद्धा की आवश्यकता कम नही है। श्रद्धा और बुद्धि के आधार से ही हम किसी के तथ्य समझ सकते हैं। कितने पंडित कहते हैं, "कबीर के साहित्य में जो कुछ है रामानन्द की देन है। रामानन्द न होते तो कबीर का पता न लगता।" ठीक है, अपने पूर्वजो, गुरुजनो से सबको मिलता है। यदि रामानन्द कबीर के गुरु थे तो रामानन्द से उनको मिला, तो क्या बुरा हुआ ? यदि कहा जाय राम के पास जो कुछ ज्ञान है वह गुरु वसिष्ठ से उनमे आया है। यदि वसिष्ठ न होते तो राम का पता न लगता और संदीपनी तथा घोरअंगिरस न होते तो कृष्ण का पता न लगता, श्री नरहरि न होते तो तुलसी का पता न लगता, तो यह भी कोई तुक की बात हुई। गुरु के अभाव मे शिष्य को ज्ञान कैसे होता ? परन्तु क्या राम, कृष्ण तथा तुलसी का कोई अपना महत्व नही है ? वसिष्ठ, संदीपनी, घोरअंगिरस तथा श्री नरहरि के राम, कृष्ण तथा तुलसी को छोड़कर क्या अन्य शिष्य नही थे ? फिर वे सब एक ही गुरु से उपदेश पाकर भी राम, कृष्ण, तुलसी जैसे क्यो नही हो गये ? गुरु का उपदेश काम करता है, परम्परया

१. ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नांजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥भागवत १/३/२४।
अर्थात तब कलियुग के शुरू में ईश्वर बुद्धावतार के रूप में प्रकट होगा। वह गयाराज की अंजनी का पुत्र होगा, देव (विश्वासपूर्ण) लोगों की ईर्ष्या करने वालों को छलने के लिए।

२. देखिये इसी अध्याय का 'नास्तिक कौन' संदर्भ।

३. हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास, आजकल एक प्रसिद्ध पुस्तक है।

अनेक शब्दावलियां तथा युक्तियां मिलती अवश्य हैं; परन्तु शिष्य की अपनी प्रतिभा तथा व्यक्तित्व भी होते हैं। रामानन्द के शिष्यों में क्या केवल कबीर ही थे ? या रामानन्द कबीर के पक्षपाती थे जो उन्हें ज्यादा लिफ्ट दिये ? वस्तुतः कबीर की अपनी प्रतिभा थी। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने सोचने की पंडिताऊ शैली तथा अनुदारता वश जहां कबीर को नही समझ सके हैं वहां उनको कबीर के लिए इतना तो कहना ही पड़ा है 'उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी।'

बात कुछ यो नही है। अपने गुरु तथा परम्परा द्वारा सबको ज्ञान, युक्तियां और शब्दावलियां मिलती हैं; इसलिए वसिष्ठ, संदीपनी, घोरअंगिरस एव श्री नरहरि से राम, कृष्ण तथा तुलसी को ज्ञान आदि मिले, तो उनको अपनी परम्परा से मिले। कुछ अदूरदर्शी पंडितों का यहां कबीर तथा कबीर-पन्थियो पर यो व्यंग्य है कि कबीर को जो कुछ मिला वह रामानन्द से मिला। रामानंद हमारे दादा थे, कबीर तुम्हारे दादा हैं। हमारे दादा न होते तो तुम्हारे दादा का पता न लगता। परन्तु उन विज्ञ पंडितो को समझना चाहिए कि गुरु किसी का व्यक्तिगत दादा नही होता। वह सबका होता है। उससे जो जितनी प्रेरणा लेकर आगे बढ़ जाता है उसी का अपना वह गुरु हो जाता है। तो फिर हम क्यो न कहें कि तथाकथित नास्तिक बौद्धो की परम्परा के शून्यवादी आचार्य नागार्जुन न होते तो मायावादी शंकराचार्य का पता न लगता। इसी-लिए तो शंकराचार्य को वैष्णवाचार्यो ने प्रच्छन्न (छिपे हुए) बौद्ध[४] कहा है। सर राधाकृष्णन् भी लिखते हैं "यह एक अद्भुत भाग्य विडंबना ही है कि दोनो सिद्धान्तों के महान व्याख्याकार (बौद्ध दार्शनिक तथा शकराचार्य) अपने आप

४. स्वामी शंकराचार्य के दीक्षा-गुरु गोविन्दपाद (अमरावती) थे; परन्तु शिक्षा-गुरु गौड़पाद माने जाते हैं जो नर्मदा तट के वासी थे। शंकराचार्य का समय ७८८-८२० ई० माना जाता है और कुछ विद्वान गौड़पाद का समय ईसा की पाचवीं सदी मानते हैं। इस प्रकार शंकराचार्य गौड़पाद से मिले तो नहीं थे। परन्तु उनके साहित्य मांडूककारिका से उन्होंने अपने मायावादी सिद्धान्त की स्थापना की थी। गौड़पाद की इस कारिका में जिसका नाम 'आगम शास्त्र' भी है, बुद्ध का नाम आठ वार (४/१, १६, ४२, ८०, ८८, ६८, ६६, १००) आया है। भले ही इन स्थलों में स्वामी शंकराचार्य बुद्ध का अर्थ ज्ञानी करके भाग निकलना चाहे हैं, परन्तु निष्पक्ष व्यक्ति के सामने से भाग नहीं सकते।

सर राधाकृष्णन् लिखते हैं "गौड़पाद के ग्रन्थ (कारिका) में बौद्धदर्शन के चिन्ह मिलते हैं, विशेषकर विज्ञानवाद तथा माध्यमिक सम्प्रदाय के। गौड़-

को परस्पर विरोधी स्थितियों का समर्थक समझते रहे[५]।" अर्थात ये दोनो प्राय: एक थे ।

"श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध" एक तरफ भारी-भरकम नाम वाले हैं और दूसरी तरफ उन्होने कबीर साहेब पर अपनी 'कबीर वचनावली' में १०६ पृष्ठों में मुखबन्ध (भूमिका) गैरजिम्मेदाराना ढंग से लिखकर उनके विषय में सोचने का अपना सकुचित ढंग ही जाहिर किया है। वे कबीर की बातों में बडी कडवाहट देखते हैं। वही वे तुलसी के ऐसे संदर्भो से आंखे बन्द कर लेते हैं कि अयोध्यावासी दशरथ-पुत्र महाराजाधिराज श्री रामचन्द्र को जो अनन्त ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म का अवतार नही मानता, उसको गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज मोहपिशाच से ग्रसित, पाखण्डी, नीच, अज्ञानी, मूर्ख, भाग्यहीन, विषयासक्त, व्यभिचारी, छली, कुटिल, संत समाज के दर्शन से रहित, अविवेकी, मलिन हृदय, अंधा, सगुण-निर्गुण विवेक रहित, मायावश, उन्मादी, भूतावेश से अभिभूत, पागल, मोहमदिरा पीनेवाला, अनाडी, वेद विरोधी[६] करीब दो दर्जन गालिया दे डालते हैं। शायद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा हरिऔध जी यह सब गोस्वामी जी का मर्यादा-निर्वाह ही समझे ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी को गोस्वामी जी के शील मे मानस का केवल एक ही दोहा खटका था "जो हरिहर के चरणो को छोड़कर घोर भूत-

पाद ठीक उन्हीं युक्तियो का प्रयोग करता है जिनका प्रयोग विज्ञानवाद ने बाह्य-पदार्थो की अयथार्थता को सिद्ध करने के लिए किया (भारतीय द० २/४५७)। गौड़पाद की कारिका माध्यमिकों के निषेधात्मक तर्क को उपनिषदों के भावात्मक आदर्शवाद के साथ एक पूर्ण इकाई के अन्दर संयुक्त करने का प्रयास है (भारतीय द० २/४५९)। इस मत का कि गौड़पाद हमें बौद्ध धर्म के शून्यवाद का वेदान्त रूप देता है, कई विद्वानों ने समर्थन किया है, यथा जैकोबी, पूसीं, सुखठणकर तथा विधुशेखर भट्टाचार्य। दुर्भाग्यवश शंकर बौद्ध-धर्म के समस्त स्पष्ट उल्लेखों का समाधान कर डालता है। देखें आगमशास्त्र पर शांकरभाष्य, ४ : १, २, १९, ४२, ९० जहां पर बुद्ध तथा उसके सिद्धान्त के अद्भुत उल्लेखों का समाधान कर दिया गया है (भारतीय द० २/४५८-४५९)" ।

५. भारतीय दर्शन, खण्ड १, पृष्ठ ६१४ ।

६. इसी ग्रथ में अध्याय १, ईश्वर और अवतार संदर्भ देखें। रामचरित मानस बालकांड, दोहा ११४-११८। इन गालियों का आधार न तो वाल्मीकीय रामायण में है और न अध्यात्म रामायण में। यह गोस्वामी जी की अपनी कल्पना है।

गण को भजते हैं उनकी अधोगति होती[७] है।" शायद उन्होंने बालकाण्ड की उक्त करीब दो दर्जन गालियां न पढ़ी हों। इतना ही नही रामचरितमानस में पदे-पदे उसे बिना सींग-पूछ का पशु तथा और न मालूम कितनी भद्दी-भद्दी गालियां दी गयी हैं जो उनके वेद-शास्त्र-सम्मत श्री राम के अवतार को नहीं मानता, जबकि वेद[८] में श्री राम का केवल बली और धनी के रूप मे नाम आया है और शास्त्रो में तो उनका नाम तक नही है। अतएव वेद-शास्त्र के ऋषि अंगिरा, वृहस्पति, भरद्वाज आदि तथा कपिल, गौतम, कणाद, पतंजलि, जैमिनि तथा वादरायग गोस्वामी तुलसीदास जी पर वेद-शास्त्र में श्री राम को अवतार आरोपित करने के विरोध में मुकदमा दायर कर दे तो रामचरित-मानस जब्त हो जायगा, या गोस्वामी जी को मानस से अवतारवाद को तथा अवतारवाद के विरोधियो को दी हुई गालियों को निकाल देना पड़ेगा। खैर पूर्व ऋषिगण तो हैं नही, आज विवेकी-समाज अवतारवाद की भोली धारणा तथा उक्त गालियों को स्वयं अपने दिल से उतार दिया है।

इतना ही नही गोस्वामी जी ईश्वर को अलख मानने वालो को कहते हैं "हे नीच! अलख-अलख क्या करता है, राम का नाम भज[९]।" गोस्वामी जी का और करारा हमला देखिए "उन (राम) के चरण कमलो में सुन्दर जूते हैं, उनके हाथो मे धन्वा-बाण हैं। वे सरजू के तट व चौराहो पर बच्चो के साथ खेलते हैं। तुलसीदास जी कहते है ऐसे बालक राम से यदि प्रेम न किये तो वे मनुष्य गधा, सूअर और कुत्ते के समान हैं, भले वे जप, योग और समाधि करते हो। उनके जीने से कोई लाभ नही।[१०]

कपिल, जैमिनि, कणाद, पतंजलि, गौतम तथा वादरायण छहों शास्त्र निर्माताओ ने अपने शास्त्रों मे राम की चर्चा तक नही की है, उनकी उपासना

७. जे परिहरि हरिहर चरन, भजहि भूत गन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ विधि, जौ जननी मत मोर॥
(अयोध्या कांड, १६७ गी० प्रे०)

८. ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ९३, मंत्र १४।

९ तुलसी अलखं का लखं, राम नाम भजु नीच।

१०. पद कंजनि मंजु बनी पनहीं, धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका संग खेलत डोलत हैं, सरजू-तट चौहट हाट हिएँ॥
तुलसी अस बालक सो नहि नेहु, कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर श्वान समान, कहाँ जग में फल कौन जिए॥
(कवितावली, ६)

करना तो बहुत दूर। हां, वे जप, योग, समाधि आदि पर अवश्य जोर दिये हैं। तो क्या ये छहों तपःपूत ऋषि गधे, सूअर और कुत्ते हैं? आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अयोध्यासिंह हरिऔध रामचरित मानस का कभी पारायण नहीं किये होंगे। यदि उक्त पक्तियां ये विद्वान पढे होते तो कबीर साहेब के विषय में बहक कर बातें न करते।

कबीर साहेब ने सनकादि, व्यास, वसिष्ठादि की जो आलोचना की है वह सैद्धान्तिक है। उसको लेकर न दुखी होने की जरूरत है तथा न हो-हल्ला करने[11] की। तीर्थ-मूर्ति आदि के विषय में उठाये गये प्रश्नो का समाधान इसी अध्याय के तीर्थ-मूर्ति आदि के संदर्भो में देखना चाहिए।

अधिकतम विद्वान इसी खोज मे निशिवासर लगे रहते हैं कि अमुक आचार्य के अमुक सिद्धान्त पर अमुक आचार्य का प्रभाव है। कुछ पडित कबीर साहेब की सारी बातों पर दूसरे के प्रभाव की खोज में व्यस्त है। कुछ विद्वान वैदिक षड्दर्शनो पर यूनान के दर्शनो का प्रभाव बताते हैं और यहाँ तक कहते हैं कि भारतीयों ने उनके प्रति इसके लिए कृतज्ञता भी नही ज्ञापित की। कुछ लोग कहते हैं कि समस्त भारतीय दर्शनो पर वेदो का ही प्रभाव है। कुछ लोग कहते हैं कि वेद[12] किस जाति के धर्म से प्रभावित होकर बने? हर व्यक्ति पर अपनी पूर्व परम्परा का प्रभाव होता है। कोई भी अपनी पूर्व-पीढ़ी के संस्कारों से बच नही सकता। परन्तु सबके भीतर एक ही सत्य स्थित है; इसलिए एक-दूसरे की अपेक्षा के बिना भी एक ही साथ या आगे-पीछे दो चिंतक समान विचार प्रकट करते देखे जाते हैं। मनुष्य के दिल से ही सारे वेद, शास्त्र, पुरान, कुरान, बाइबिल आदि निकले है; अतएव मनुष्य के दिल की

११. इसी अध्याय में 'विचारों का विरोध सनातन' नामक ४७ वां संदर्भ पढ़िए।

१२. वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का प्रभाव

अब इस बात में संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है कि प्राचीन वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन संस्कृति का भारी प्रभाव है। ऋग्वेद की अनेक ऋचायें बैबिलोनियन भाषाओं से मिलती हैं। जिन ऋचाओं का अर्थ सायण आदि भाष्यकार नहीं लगा सके उन पर बैबिलोनियन ऋचाओं से काफी प्रकाश पड़ता है। यथा 'सृण्येव जर्फरी तुर्फरीतू' (ऋग्वेद १०-१०६-६)।

(आचार्य चतुरसेन कृत वयं रक्षामः, भाष्यम् पृष्ठ २४१)

ऋग्वेद के जर्भरी, तुर्फरी, फरफरीका, आन्गिी, विलगी, तैमात, ताबुवम् आदि शब्दों के अर्थ संदिग्ध है। इन्हें विद्वान बैबिलोनियन आदि संस्कृति से आये हुए मानते है।

विशेषता है। जो मनुष्य अपने जीवन को इंद्रिय-विषयों से ऊंचा उठा लेता है, उसका दिल खुल जाता है। या जिस विषय मे जो अधिक चिंतन करता है उसमें उसके नये-नये अनुभव होने लगते हैं। जो शाश्वत बातें हैं, सब लोग उसको वही कहेंगे, कहने के तरीके अलग हो सकते हैं। पूर्व से चली आयी हुई शब्दावलियों का प्रयोग भी प्रायः सभी लोग करते हैं। तुच्छ हृदय वाले अपनी माने जानी वाली परम्परा का प्रभाव दूसरे पर सिद्ध करने की चेष्टा में व्यस्त रहते है और उनका मतलब यह होता है कि हम तुम्हारे दाता है।

कुछ अधकचरे लोग प्रश्न उठाते हैं कि कबीर अवतारवाद, छुआछूत तथा मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तो क्या यह उन पर मुसलमानों का प्रभाव था? हम कहते हैं अच्छा प्रभाव किसी का हो परम आदरणीय है। परन्तु मैं ऐसे महाशयों से पूछना चाहता हूँ कि चारों वेदों, छहों वैदिक शास्त्रों एवं समस्त प्रामाणिक उपनिषदो मे अवतारवाद, मूर्तिपूजा तथा छुआछूत का असर नही है, तो क्या वेद, शास्त्र तथा उपनिषदों के ऋषि मुसलमानों से ही प्रभावित थे, जबकि मुसलमानो का जन्म भी नही था?

जो पचास पुस्तकों से सामग्री खीच-खीच कर एक पुस्तक बनाते है और कहते हैं कि यह मेरा चिंतन है, ऐसे लोग कैसे समझ सकते हैं कि कोई महापुरुष अपनी अन्तरात्मा की कसौटी पर स्वयं सत्य की घोषणा कर सकता है। कुछ-न-कुछ दूसरे का प्रभाव सब पर होता है; परन्तु जिन प्रतिभाशाली एवं इन्द्रिय-मन-जीत पुरुष का निष्पक्ष हृदय होता है, उनको सब सत्य-असत्य दिखाई देता है। उनको केवल पोथी रटने की जरूरत नही पड़ती।

कबीर ऐसी ऊंचाई पर पहुँच गये थे, जहां से सब कुछ दिखता था। जो मुसलमानो के कुर्बानी, मांसाहार और शून्य मे पुकारने की तथा हिंदुओं के मूर्तिपूजा, छुआछूत तथा अवतारवाद की कड़ी आलोचना करते रहे, वे क्या इन दोनो से प्रभावित माने जायेंगे? किंतु जो हिंदू-मुसलमानों मे सत्य है, उसको कबीर साहेब नकार कैसे सकते थे? सबको उपनिषद् एवं शास्त्र पढ़ कर ही ज्ञान नही होता है, किन्तु कुछ ऐसे महापुरुष होते है जिनके हृदय से उपनिषद्-शास्त्र निकलते ह। सद्गुरु कबीर इसी कोटि के महापुरुष हैं जिनके हृदय से सत्य का शास्त्र निकला है।

रामचन्द्र शुक्ल लिखते है "वाद या सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित बातो को स्वभावसिद्ध तथ्य के रूप मे चित्रित करना और उनके प्रति अपने भावो का वेग प्रदर्शित करके औरो के हृदय में उस प्रकार की अनुभूति उत्पन्न करने की

चेष्टा करना हम सच्चे कवि का काम नही मानते; मतवादी का काम मानते है[१३]।"

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज जब दशरथ सुवन महाराज श्री रामचन्द्र जी को अनन्त ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा का पूर्ण अवतार बलपूर्वक घोषित करते है और इसे न मानने वाले को सूअर-कुत्ता तक कहते हैं; तब वह स्वभावसिद्ध तथ्य एवं लोकधर्म होता है कि मतवाद, इस बात पर शुक्ल जी ने शायद कभी नही विचारा। स्वभावसिद्ध तथ्य एवं लोकधर्म उसे कहते है, जिसके विषय में मनुष्य मात्र में दो राय नही हो; जैसे प्रेम, करुणा, पर-सेवा आदि। तो क्या श्री रामचन्द्र का अवतार मानव मात्र द्वारा मान्य है और उसके साथ यह भी कि जो श्रीराम को अवतार न माने वह सूअर-कुत्ता है ? परन्तु इन सारी बातों को रामचन्द्र शुक्ल नजरअंदाज कर जाते है।

गोस्वामी जी कहते हैं "जो श्रीरामचद्र को अवतार नही मानता वह सुअर-कुत्ता तथा बिना सींग-पूँछ का पशु है। शीलगुण से रहित भी विप्र को पूजना चाहिए और गुण-ज्ञान-प्रवीण भी शूद्र को नही पूजना चाहिए।" कबीर साहेब कहते हैं "श्री रामचंद्र राजपुत्र है, उपासनीय राम तो घट-घट सबका अपना चेतना स्वरूप है, मनुष्य के गुण बडे होते हैं वर्ण व जाति नही। न कोई ब्राह्मण है न शूद्र, न हिन्दू और न मुसलमान, मानव की एक जाति है और एक मानवता धर्म है।" अब इन उक्त दोनो कथनो मे मतवाद क्या है और लोकधर्म क्या है, इसका निर्णय शुक्ल जी के समर्थक ही करे। या मतवाद तथा लोकधर्म की व्याख्या शुक्ल जी की पाठशाला मे कुछ दूसरी होगी। मैं यहां यह नही कहना चाहता कि गोस्वामी जी ने कही लोकधर्म कहा ही नही है। मैं तो केवल रामचंद्र शुक्ल की निष्पक्षता पर विचार कर रहा हूँ।

रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं "प्राचीन आर्य जातियों में रहस्यवाद की प्रवृत्ति नही थी[१४]।" परन्तु शुक्ल जी यदि ऋग्वेद को ध्यान से पढ़े होते, तो नासदीय सूक्त[१५], पुरुष सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त तथा अनेक सूक्तों की पंक्तियां उनको दिख जाती जो स्पष्ट रहस्यवाद की है। उपनिषदों में तो रहस्यवाद भरा ही है।

१३. चिंतामणि, भाग २, पृष्ठ ७०, संवत् २०१९।

१४. चिंतामणि, भाग २, पृष्ठ २०१।

१५. पुरुषसूक्त-ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ९०; हिरण्यगर्भ सूक्त मंडल १०, सूक्त १२१ तथा नासदीय सूक्त मंडल १०, सूक्त १२९।

कुछ लोगों के ख्याल से कबीर साहेब रहस्यवादी थे और ऐसे लोग कबीर साहेब की वाणियों में रहस्यवाद ही खोजते रहते हैं। रहस्यवाद से तात्पर्य उस विचारधारा से है जिसमें 'किसी अज्ञात सत्ता की कल्पना करके, उसके प्रति साधक आत्मनिवेदन करता है; अर्थात वह अपने को उसमें मिला कर एकरूप होना चाहता है।' निश्चित है कि यह एक धारणा है। जिसका हमें पता नहीं है, जो अगम-अगोचर है, उसके लिए सोचना अपना समय बरबाद करना है तथा दूसरे को उस भूल-भूलैया में डालना भी गलत है। कबीर साहेब के बीजक मे जहां ऐसी वाणियां हैं वे निश्चित ही पूर्वपक्ष की है जिन्हें सद्गुरु ने उपस्थित करके उनका खण्डन किया है। किसी कल्पित ईश्वर या ब्रह्म को पति मानकर अपने को उसकी पत्नी मानने की बात, हठयोग द्वारा कहीं गगनगुफा में पहुँचने की बात, समुद्र में बुंद मिलने वत जीव का ब्रह्म में मिलने जैसी बात—सब पूर्वपक्ष की हैं और उनका स्वरूप बताकर सद्गुरु कबीर ने उन सबका खण्डन किया है।

कबीर साहेब हवाई बातें नहीं करते थे। उनका धर्म लोकधर्म है। न वे किसी निर्गुण-निराकार ब्रह्म की कल्पना करते हैं और न वे किसी राजा के लड़के को अनन्त ब्रह्माण्डनायक कहकर उसके हाथ, पैर, आँख, नाक, कान, छाती आदि की सुन्दरता के वर्णन में शब्दों का पुल बांधते हैं। न वे जाति को प्रश्रय देते हैं और न अंध परम्परा को, न किसी पोथी को आंख मूद कर प्रमाण मानने को कहते हैं और न किसी को सत्य का एकाधिकारी कहते है। वे कहते हैं हर व्यक्ति का अपना स्वरूप ही सत्य है और व्यक्ति से बढ़कर भगवान नहीं है। सत्य रहस्य में नहीं छिपा है; किन्तु वह सरल सहज अपना ही स्वरूप है। इसीलिए उन्होंने सहज ध्यान[१६] रहने की बात कही। रहस्यवाद के विपरीत उन्होंने कहा "अज्ञात की बाते क्या करते हो जिसके न गाव है न ठांव। निर्गुण का क्या निरीक्षण करोगे और क्या उसका नाम रखोगे[१७]।"

इस तथ्य को न समझकर शुक्ल जी ने कबीर साहेव के कथन को मतवाद घोषित करने का दुस्साहस किया है। वही वे गोस्वामी तुलसीदास तथा मानस की महिमा गाते नहीं अघाते। उनको उनमे जातिवाद, अवतारवाद आदि मतवाद नहीं, सार्वभौम दिखते है। श्री राम को अवतार न मानने वालो को सूअर-कुत्ता कहने वाले तथा बीसियो गाली देने वाले गोस्वामी तुलसीदास

१६. बीजक, कहरा १।
१७. अविगति की गति का कहो, जाके गांव न ठांव।
गुण विहूना पेखना, का कहि लीजै नांव ।। बी० रमैनी, साखी-७ ।।

की इन बातों पर शुक्ल जी की कभी सपने में दृष्टि उसी प्रकार नहीं भयी जैसे "बालि के जिस पाप से श्रीराम ने उसे व्याध के समान मारा, परन्तु वही पाप सुग्रीव ने किया और वालि की पत्नी तारा को अपनी पत्नी बना लिया और यही अपराध परम भक्त विभीषण ने किया और उन्होंने मंदोदरी को अपनी पत्नी बना लिया, परन्तु महाराज श्री रामचन्द्र ऐसे भक्तवत्सल है कि स्वप्न में भी इसका नही विचार किये और न सुग्रीव तथा विभीषग को कोई दण्ड दिये, बल्कि उन्हे परम भक्त होने का तमगा दिये[१८] ।"

जहा अपनी श्रद्धा होती है वहां ऐसा ही कहा जाता है। परन्तु जो जिम्मेदारी के साथ किसी की समीक्षा करने बैठे उसे निष्पक्ष होकर विवेचन करना चाहिए। मै यह नही चाहता कि गोस्वामी जी की वर्णन सम्बन्धी गलतियो को उछाला जाय। मैं स्वयं गोस्वामी जी का भक्त हूँ। गीता, रामायण तथा वैदिक साहित्य और संस्कृति मे यह जीवन पला है तथा रग-रग में उनके प्रति श्रद्धा समायी है। परन्तु बात तो आती है रामचन्द्र शुक्ल जैसे हिन्दी साहित्य के जिम्मेदार कहे जाने वाले सर्वथा गैरजिम्मेदार व्यक्ति पर। वे कबीर मे केवल एक गुण देखते है 'उनकी प्रखर प्रतिभा'। इसके अलावा कुछ नही। गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणियों मे रहे हुए सैकड़ो असम्भव कथन, मिथ्या महिमाओ एवं अनेक मानवता विरोधी बातो की रामचन्द्र शुक्ल चर्चा नही करते और सद्गुरु कबीर की वाणियो से भरी हुई वस्तुपरक बाते, एकता-मानवता के तलस्पर्शी प्रबल कथनो के लिए वे एकदम चुप्पी साध लेते है। यदि कही कुछ कहते है तो हीनभावना लेकर विकृत करके। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध तथा आचार्य रामचद्र शुक्ल ये दोनो विद्वान जब तुलसी को सूँघते है तब अपनी नाक मे इत्र लगाकर और जब कबीर को सूँघते है तो कोई दुर्गंधित वस्तु लगाकर। ऐसे विद्वानो से निष्पक्ष निर्णय की क्या आशा की जाय ? जैसे "पश्चिम ने भारत को यह समझाने के लिए पूरा प्रयत्न किया कि इसका दर्शन-शास्त्र असंगत एवं विवेकशून्य है, इसकी कला बच्चो की-सी तथा तुच्छ है, इसकी कविता में कोई प्रेरणा नही है, इसका धर्म विलक्षण है, और इसका नीतिशास्त्र असभ्य लोगों का है[१९] ।" वैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारत के लोगो को यह समझाने का पूरा प्रयत्न किया कि कबीर की वाणी में कुछ सार नही है और यदि कुछ है तो वह दूसरों की नकल। वैसे रामचन्द्र

१८. जेहि अघ बध्यो व्याध जिमि बाली। सोई सुकंठ पुनि कीन कुचाली ॥
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी ॥

१९. भारतीय दर्शन, खण्ड २, पृष्ठ ७७६। सन् १९७२ ई०, डा० राधाकृष्णन्।

शुक्ल प्रसिद्ध भौतिकवादी ग्रंथ 'रिडल आव दि यूनिवर्स' के लेखक जर्मनी के विद्वान 'हैकल' के अनुयायी हैं। उसके अपने हिन्दी अनुवाद ग्रंथ में मूल पुस्तक की आधी आपकी १२६ पृष्ठों की भूमिका है, जिसमें आपने भौतिकवाद ही प्रबलता से स्वीकारा है। इस प्रकार शुक्ल जी अध्यात्मवादी नही किन्तु भौतिकवादी हैं; परन्तु इतना होने पर भी आपका पूर्व जड़ संस्कार आपकी आलोचनाओं में इतना मुखरित हुआ है कि आपके पक्षपातपूर्ण अनुदार वचन आपके समर्थक भी समझ सकते हैं। आप कहते हैं "कबीर की बानी में ज्ञान की एक नूतन कणिका भी कोई दिखा सकता है[२०] ?" क्या शुक्ल जी के इस आचार्यत्वपूर्ण प्रश्न का भी आज कोई उत्तर देने की आवश्यकता है? क्या कबीर के वचनों में ज्ञान की एक नूतन कणिका आज दिखाना पडेगा? जिन्होंने कबीर की वास्तविकता से अपनी आंखे बन्द कर ली हैं, उन्हें उनकी वाणी में ज्ञान की एक नूतन कणिका कैसे दिखायी जा सकती है? परन्तु सूरज को धूल से नहीं ढांका जा सकता। प्रसिद्ध वैष्णव संत नाभादास, विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, इतिहासज्ञ अबुल फजल तथा पंडित सुन्दरलाल, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं० परशुराम चतुर्वेदी, डा० रामकुमार वर्मा, डा० केदार-नाथ द्विवेदी तथा अन्य अनेक विद्वान अपने-अपने ढंग से सही, कबीर का महत्त्व-पूर्ण मूल्यांकन करते रहे और करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इस अनु-दारता तथा अदूरदर्शिता पर आज के निष्पक्ष विद्वान तरस खाते हैं तथा अगली पीढी हंसेगी। श्री सुदर्शन चोपड़ा जी ने श्री शुक्ल जी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' की आलोचना में एक 'हिन्दी साहित्य का गलत इतिहास' नामक निबन्ध लिखा है। आपने उसमें शुक्ल जी की भूलों और संकुचितता पर विवरण देते हुए आगे लिखा है—

"केवल इतना ही नहीं, शुक्ल जी ने तो उल्टे यह किया कि जिन ग्रंथों में जनसामान्य का चित्रण हुआ है उनको 'लोक धर्म विरोधी' कहकर तिरस्कृत कर डाला। उदाहरणार्थ कबीर की बानी को लिया जा सकता है। सांप्रदायिक भावनाओं तथा जातीय संकीर्णताओं का खुलकर विरोध करने वाले कबीर आदि कवियों पर शुक्ल जी जब 'सांप्रदायिक' होने का आरोप लगाते हैं, और इनमें सामाजिक सद्भावना तथा सहृदयता की कमी बताते हैं तो आचार्य शुक्ल अपने किस आचार्यत्व का परिचय देते हैं, इसका निर्णय शुक्ल जी के समर्थक स्वयं ही कर सकते हैं[२१]।"

२०. चिंतामणि, भाग २ पृष्ठ २०४, संस्करण संवत २०१९।
२१. सरिता, अगस्त प्रथम १९६९, दिल्ली।

७

गुरु-निर्णय

एक-दो लोग हमें यह राय देने का भी साहस करते हैं कि कबीर साहेब के गुरु शेखतकी थे; परन्तु ऐसे लोग निश्चय ही बीजक को मनोयोगपूर्वक नही पढ़े हैं। बीजक पढने से ऐसा लगता है कि शेखतकी[1] कबीर साहेब के समय में उपस्थित थे और सभवतः जौनपुर (जो काशी के निकट है) तथा झूंसी (जो प्रयाग-इलाहाबाद के पास है) मे अधिक रहते थे। कबीर साहेब और शेखतकी से धर्म एवं सत्य के विषय में विवाद भी हुआ था। उसमें शेखतकी परास्त हुए थे और कहा जाता है शेखतकी क्रुद्ध होकर सिकन्दर लोदी को कबीर साहेब के विरुद्ध उकसाये थे। कबीर साहेब की सहनशीलता से सिकन्दर लोदी तथा शेखतकी—दोनो अन्ततः ठण्डे हुए थे। अतएव सद्गुरु कबीर शेखतकी को उपदेश करते हुए कहते है—"हे शेखतकी[2]! तुम सुनो, प्रत्येक देह मे अविनाशी जीव विराज रहा है।" आप स्वयं विचार सकते हैं कि इस प्रकार कोई गुरु को उपदेश नही देता। यहां तो ऐसा लगता है कि शेखतकी ही शिष्य हैं और कबीर साहेब उनके गुरु होकर उन्हे उपदेश दे रहे है।

बीजक के अतिरिक्त कुछ बाहरी वाणियों के आधार पर अधिकतम लोग कबीर साहेब का गुरु स्वामी रामानन्द को बताते हैं। स्वामी रामानन्द, पहले रामदत्त के नाम से प्रयाग (इलाहाबाद) निवासी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताये जाते हैं, जो काशी मे जाकर दर्शन-शास्त्र पढ़े थे तथा एक दिन स्वामी राघवानन्द से मुलाकात होने पर उनके उपदेश से प्रभावित होकर और उनसे दीक्षा लेकर साधु हो गये और एक उदार वैष्णव संत हुए। निश्चय ही स्वामी रामानन्द उस समय के एक उदार, विरक्त एव अच्छे संत थे।

कुछ विद्वान यह भी सिद्ध करते है कि स्वामी रामानन्द के निधन[3] के २० वर्ष बाद कबीर साहेब पैदा हुए और कुछ लोग लिखते हैं ४४ वर्ष बाद। अधिकतम लेखको की यह खोज है कि स्वामी रामानन्द को कबीर साहेब अवश्य मिले तथा उन्होने उनकी शिष्यता स्वीकार की। इसमे कोई सन्देह नही कि स्वामी रामानन्द एक विरक्त, उदार एवं सदाचारी संत थे। यदि वे कबीर

१. बीजक, रमैनी ४८।
२. घट-घट है अविनाशी, सुनहु तकी तुम शेख। बीजक, रमैनी—साखी ६३।
३. डा० मोहनसिंह कृत 'कबीर-हिज बायोग्रेफी'।

साहेब के समसामयिक थे तो हो सकता है कि उनके चरणों में जाकर कबीर साहेब ने विनयभाव पूर्वक सत्संग किया हो और अपने से अग्र, वृद्ध एवं महान पुरुषों को आदर देना तथा उनसे सीखना कोई हीनता की बात नही; अपितु सर्वथा स्तुत्य कार्य है। परन्तु स्वामी रामानन्द और सद्गुरु कबीर के सिद्धान्तो का अन्तर देखते हुए दोनों को गुरु-शिष्य के रूप मे स्वीकार करना एक कठिन कार्य है। और जब कबीर साहेब शेखतकी के समान ही स्वामी रामानन्द को निर्णय की बात समझाते तथा उनके न मानने से उनको उलाहना देते हुए दिखते हैं तब यह बात और साफ हो जाती है। कबीर साहेब कहते हैं "रामानन्द[४] जी रामरस में माते रहे, मै उनको अनेक बार समझा कर थक गया, परन्तु वे समझ न सके।" स्मरण रहे! बीजक भर मे 'माते' शब्द खण्डन परक है। जैसे 'सबही[५] मद माते कोई न जाग' आदि। बीजक मे 'राम' शब्द विधेयात्मक तथा निषेधात्मक दोनों मे प्रयुक्त हुआ है। जहां कहा गया कि 'राम[६] बड़ा है कि राम का जानने वाला ?' वहां कल्पित राम का प्रसंग है। वहां यह बताया गया है कि कल्पित राम अर्थात ईश्वर श्रेष्ठ नही हैं; किन्तु उसकी कल्पना करने वाला जीव श्रेष्ठ है और जहां कहा गया कि 'दिल मे खोजो[७] यही राम तथा रहीम है।' वहां स्वस्वरूप चेतन के लिए विधिवाक्य है। यहां स्वामी रामानन्द को जिस 'राम' में माते रहने की बात बतायी गयी है, वह स्वात्म राम से पृथक दाशरथी राम या कल्पित ईश्वर के लिए है, जो निषेधपरक है। इसीलिए माते शब्द का भी यहाँ प्रयोग हुआ है तथा इसका स्पष्टीकरण आगे हो जाता है "कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके"। ऐसी स्थिति मे कैसे कहा जाय कि रामानन्द कबीर के गुरु थे।

मेरा यह कोई मंतव्य नही कि कबीर साहेब के स्वामी रामानन्द या कोई महापुरुष गुरु न सिद्ध हों। अपने ऊपर गुरु होने से किसी की तौहीनी नही होती। स्वामी शंकराचार्य के स्वामी गोविदपाद गुरु थे तो इसमे स्वामी शकराचार्य की हीनता नही है। गौतम बुद्ध ने अनेक संत एवं ऋषियो से पहले भले बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की हो; परन्तु उनके मौलिक सिद्धान्त का, जिसका आचरण करके वे बुद्ध कहलाये कोई गुरु नही था। कबीर साहेब ने समसाम-

४. रामानन्द रामरस माते। कहहिं कबीर हम कहि कहि थाके॥
(बीजक, शब्द ७७)

५. बीजक, वसंत–१०।

६. 'राम बड़ा कि रामहि जाना'॥ बीजक, शब्द ११२॥

७. 'दिल में खोजि दिलहि मा खोजो, इहैं करीमा रामा'॥ बीजक, शब्द ९७॥

यिक महापुरुषों—स्वामी रामानन्द या अन्य संत-गुरुजनों से अवश्य बहुत कुछ सीखा-समझा होगा जैसा कि यह स्वाभाविकता है; परन्तु कबीर साहेब के जिन अपने निराले विचारों एवं पारखज्ञान के सिद्धान्त के नाते उनकी विशेषता एवं विलक्षणता है उसका उनका अन्य कोई गुरु न था। यद्यपि समस्त विचारों के बीज संसार में सब समय रहते हैं और किसी सिद्धान्त की भूमिका सिद्धान्त-कर्ता के पूर्व वातावरण में विद्यमान रहती है, तथापि विशेष मंथन करके उसको व्यवस्थित रूप देने वाला कोई अद्वितीय पुरुष होता है। अतएव कबीर साहेब अपने निराले विचारों एवं पारख सिद्धान्त के स्वयं प्रतिष्ठाता एवं गुरु थे।

उन्होंने अनेक बंधनों में बंधे हुए जीवों को बंधनों से छूटने के दो रास्ते बताये, एक यह कि स्वयं अपने विवेक से अपनी दिव्य-दृष्टि खुल जाय तथा दूसरा यह कि यथार्थ सद्गुरु मिले और वह परखा कर छुड़ा दे[८]। इसकी चर्चा श्रीमद्भागवत में भी आयी है। श्लोक का भाव इस प्रकार है—"संसार में ज मनुष्य मैं कौन हूँ, यह जगत क्या है तथा इसमें क्या हो रहा है इत्यदि बातो का विचार करने में निपुण हैं वे मन मे भरी हुई अशुभ वासनाओं से अपने आप को स्वयं अपनी विवेक-शक्ति से बचा लेते है, वे अपने आप को स्वयं मुक्त कर लेते हैं[९]।"

कबीर साहेब को समसामयिक शास्त्रों एवं मत-मतान्तरों में काफी भ्रम दिखाई दिया। वे सभी शास्त्रो एवं मतों से सारतत्व का काफी संग्रह करते हुए भी सैद्धान्तिक सन्तोष कही नही पाये। उन्होने देखा हिन्दू-मुसल-मान सभी के मतो मे एवं ग्रंथो में धर्म तथा अध्यात्म के नाम पर काफी मिथ्या महिमायें, अप्राकृतिक उत्पत्ति और घटनाये तथा कारण-कार्य की वस्तुपरकता को छोड़कर अलौकिक चमत्कार आदि भरे हे। उन्होने देखा कि जड़-चेतन का कही साफ निर्णय नहीं मिल रहा है और प्रायः सभी मत तथा शास्त्र जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक की मान्यता लिये वैठे है और मिथ्या विश्वास से पैदा हुए किसी खुदाई पुस्तक, पैगम्बर तथा अवतार के पक्ष मे अपने को डालकर अपने विवेक की बलि चढ़ा दिये हैं। अतएव उनको सबसे घबराहट हो गयी, जैसे उनके दो हजार वर्ष पूर्व महान गौतमबुद्ध को हुई थी।

८. बहु बंधन से बाँधिया, एक बिचारा जीव।
की बल छूटै आपने, कीरे छुड़ावे पीव॥ (बीजक, साखी-२११)

९. प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः।
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात्॥ (श्रीमद्भागवत ११/७/१९)

जिनकी मैं अगले अध्याय में चर्चा करूंगा कबीर-अनुयायी महान विद्वान पारखी सन्त श्री रामरहस साहेब (१७२५-१८०९ ई०) की एकमात्र रचना 'पंचग्रन्थी' में स्वतः बोध होने का कई जगह उल्लेख मिलता है। वे कबीर साहेब के विषय में कहते हैं—"वे अनेक रीति के विचार देखकर बेचैन हो गये। तब उन विवेकवान ने स्वयंशोधन की दृष्टि अपनायी। सत्य, विचार धैर्य, दया, शील आदि सद्गुणो को अपना कल्याण-साधक जानकर उन्होने अपने हृदय मे धारण किया। उनके हृदय मे स्वतःस्वरूप के साक्षात्कार के लिए पुकार हुई जिसके प्राप्त होने पर सारे क्लेशो का अन्त होता है। फिर वे महान पुरुष धैर्यपूर्वक शान्त होकर वास्तविकता की परख किये। जब उनके हृदय से भ्रांति एवं मोह का तम दूर होकर ज्ञान का आलोक हो गया तब उनको अपने पारख स्वरूप चेतन का यथार्थ बोध हो गया। हे भाई! जिनको स्वरूपज्ञान की अपनी स्वतः दिव्यदृष्टि हो गयी, जो अपने आपको ठीक से परख लिये वे ही गुरुपद-श्रेष्ठपद—चेतन स्वरूप में स्थित हो गये और दूसरे को भी उसका बोध देने लगे। विवेकवान पारखपद (चेतनस्वरूप) मे स्थित होते हैं। जो पुरुष सारी प्रकृति से अपने चेतन पारखस्वरूप की सर्वथा भिन्नता एवं अकेलेपन को समझकर उस स्थिति मे ठहर जाते है उनको शुभाशुभ दृश्य-जगत का किंचिन्मात्र अहंकार नही रहता[१०]।"

इस बीसवी सदी के कबीर-विचारों के महानचिंतक सद्गुरु विशालदेव ने स्वतः बोध की सात योग्यताये बतायी हैं—"(१) अखण्ड सुख की इच्छा करना, (२) दुःखो मे कष्टित होना, (३) अनेक जन्मों के शुभसंस्कारो का समय पर उदय होना, (४) विषयो मे सुख मानकर भोगते हुए बार-बार असतुष्ट ही रह जाना, (५) मोक्ष की इच्छा करना, (६) अनेक मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं के संग से अनेक प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होना और (७) स्वयं अपर प्रकाश एवं परीक्षादृष्टि। ये सात योग्यताये जिस घट मे एकत्र

१०. देखि अनेक रीति अकुलाना। निज शोधन तब कियो सुजान ॥ ७ ॥
सत्य विचार धीरता पाई। दया शील उर बसो सहाई ॥ ८ ॥
प्रेम गोहार स्वतःपद देखा। इनके लहत सब मिटै कलेशा ॥ ९ ॥
ठहरि यथारथ पारख कीन्हा। लहत प्रकाश स्वतःपद चीन्हा ॥१०॥
स्वतः दृष्टि जब जेहि भई भाई। सोई गुरुपद ठहरे परखाई ॥११॥
पारख में ठहरे बुधिवंता। देखि दशा निज नाहिन हंता ॥१२॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध, चौपाई ७)

हुई वे स्वयं जंगल में बूटी शोध लेने वत स्वतः पारखपद का प्रकाश किये हैं[11]।"

कबीर साहेब ने बीजक में आदि, मध्य तथा अंत में किसी गुरु की वंदना एवं चर्चा नही की है; इसलिए भी उनके बोध का कोई अन्य गुरु नही प्रतीत होता। यह ठीक है कि उन्होने बीजक मे यत्र-तत्र गुरु का महत्व स्वीकार किया है, जैसे "जिसको[12] सद्गुरु नही मिला, वह व्यक्ति अबोध-वश दशो दिशाओ मे भटकता है।" अतएव "गुरु[13] की कृपा से और संतों की संगत करके इस कल्याण-द्वार पर आ जाओ" इत्यादि। यहां पर उनका सर्वसामान्य के लिए उपदेश है।

८

सागर जैसा व्यक्तित्व

कबीरदेव का व्यक्तित्व अथाह सागर है। वे लोगों द्वारा अपने जीवन-काल में ही महान संत, सद्गुरु ही नही अलौकिक पुरुष के रूप में माने जाने लग गये थे। उत्तरी भारत ही नही, पूरे भारत में उनकी सुकीर्ति फैल गयी थी और आस-पास के देशों तक मे उनके विचार पहुच गये थे। सद्गुरु कबीर के समसामयिक प्रसिद्ध भक्त पीपा जी ने (जन्मकाल १४८२ वि० सं०) गद्गद होकर कबीर साहेब को जो श्रद्धांजलि अर्पित की है वह अप्रतिम है। उन्होंने

११. मुमुक्ष-स्थिति शिक्षा प्रवाह।

सद्गुरु विशाल साहेब और कहते हैं—

अबोध से होवै बोध है, जीव अबंध के हेत।
स्वयं गुरू होय जात है, पाय योग्यता जेत ॥७॥
बोध मिले जेहि और से, तेहि को और से भेष।
स्वयं बोध को प्राप्त जो, सो तो स्वयं सुवेष ॥१०॥
झूठ इष्ट लखि जाहि जब, नहिं तेहि भेष सोहान।
सत्य प्रिये सिद्धान्त लखि, तेहि का भेष मिठान ॥११॥

(सत्यनिष्ठा, गुरुनिर्णय)

१२. बीजक, साखी—२४५।

१३. बीजक, साखी—३०४।

कहा "यदि[1] कलिकाल में कबीर न होते तो कलियुग और वेद मिलकर भक्ति को रसातल पहुंचा देते……मैंने तो कबीर की शरण ही में कुछ प्राप्त किया।" यद्यपि कबीर साहेब ने पीपा जी को फटकार ही बतायी है। क्योंकि वे स्वरूप-ज्ञान के अधिकारी न होकर परोक्ष उपासना ही में लगे रहे।

भक्तराज पीपा के उक्त वचन ध्यान देने योग्य है "जो कलि मांझ कबीर न होते……।" यदि कबीर साहेब का महत्व दो-चार जिलों में ही होता तो कबीर के साथ युग का नाम लेकर उन्हें समय की व्यापकता के साथ न जोड़ा जाता। अतएव समय की व्यापकता में देश की व्यापकता का ध्वनन होता है। इससे सिद्ध होता है कि कबीर साहेब अपने जीवनकाल में ही भारत मे छा गये थे।

कबीर साहेब के शरीरान्त के करीब साठ-सत्तर वर्ष के बाद प्रसिद्ध वैष्णव भक्तप्रवर नाभादास जी महाराज ने सद्गुरु कबीर के व्यक्तित्व और कर्तृत्व के विषय में जो केवल छह पंक्तियां कही हैं, सार निचोड़ कर रख दिया है। कबीर साहेब के विश्लेषण में आज तक बनी हजारों पुस्तकें इन छह पंक्तियो के अनुवाद मात्र हैं। उन्होंने कहा "जो[2] धर्म, भक्ति-विमुख था उसे उन्होने अधर्म रूप कहा। सदाचार के बिना योग, यज्ञ, व्रत, दानादि सब निरर्थक बताया। उन्होने हिंदुओ और मुसलमानो के लिए सत्य बातें बतायीं तथा रमैनी, शब्द और साखियों में अपने सत्योपदेश दिये। उन्होने किसी का पक्षपात नही किया। सबके कल्याण की बातें बतायी। वे ससार से सदैव तटस्थ एवं निरपेक्ष रहे। उन्होने किसी की मुखदेखी बात एवं लल्लोपत्तो नही की। कबीर ने सत्य कहने मे वर्ण, आश्रम एवं षड्दर्शनियो—योगी, जगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मणो की मर्यादा नही रखी।" यह एक भक्तप्रवर वैष्णव के मुख से निकली बातें हैं। बड़ा-से-बड़ा तार्किक, आलोचक एवं पारखी भी

१. जो कलि मांझ कबीर न होते। तौ ले……वेद अरु कलियुग मिल करि भगति रसातल देते……नाम कबीर सांच परकाशा तहं पीपै कछु पाया॥
(सन्त कबीर, पृष्ठ ५१)

२. भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो॥
हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पच्छपात नहिं वचन सबहि के हित की भाखी॥
आरुढ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षटदरसनी॥ (भक्तमाल)

इस सम्बन्ध में इससे अधिक क्या कहेगा ? इसमें मुख्य-मुख्य सारी बातें आ गयी हैं। भक्ति, विनय, कोमलता एवं निर्विषय स्थिति के बिना धर्म सारहीन है। इसके बिना योग, यज्ञ, व्रत, दान भी बेकार हैं। वे हिंदू और मुसलमान तथा पूरे अस्तित्व को समता की दृष्टि से देखने वाले थे। बीजक के क्रमशः रमैनी, शब्द और साखियो का भी यहां कितना सुन्दर चित्रण किया है। शब्द प्रकरण के बाद और साखी के पहले तक जो ज्ञानचौतीसादि छोटे-छोटे आठ प्रकरण है, शब्द मे अतर्भुक्त हो जाते है। किसी का पक्षपात न करना; सबके हित की बात कहना; जगत से निरपेक्ष रहना; किसी की लल्लोपत्तो न करना; वर्ण, आश्रम तथा नाना सम्प्रदायो की गलतियो पर क्षमा न करना; जो सत्य की प्राप्ति मे विघ्न उपस्थित करे ऐसे किसी की मर्यादा न मानना—यही सब तो कबीर देव को आकर्षण का केन्द्र बना रखे हैं।

कबीर साहेब के शरीरान्त के असी (८०) वर्ष बाद अकबर महान के राजकाल मे महान विद्वान अबुल फजल अल्लामी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आईन-ए-अकबरी' मे दो जगह कबीर साहेब का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। एक उदाहरण काफी होगा। उन्होंने कहा है "कोई कहते है कबीर मुवाहिद (एकात्मवादी) यहां विश्राम करते है और आज तक उनके काव्य और कृत्यों के सम्बन्ध में अनेक विश्वस्त जनश्रुतियां कही जाती हैं। वे हिन्दू और मुसलमान दोनो के द्वारा अपने उदार सिद्धान्तो और ज्योतित जीवन के कारण पूज्य थे और जब उनकी मृत्यु हुई तब ब्राह्मण उनके शरीर को जलाना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते[३] थे।"

जिसके माता-पिता का पता नही, जाति-बिरादर का ठिकाना नही, जो व्याकरण या किसी विषय में आचार्य एवं एम० ए० नही और जो भारत के महान धर्मावलंबियो—हिंदू और मुसलमान तथा उनके धर्मनेता पण्डितों

३. **आईन-ए-अकबरी पृष्ठ १२६। डॉ० रामकुमार वर्मा संपादित 'सन्त कबीर' से साभार। 'आईन-ए-अकबरी' का इंगलिश अनुवाद कर्नल एच० एस० जेरेट का है, जो इस प्रकार है—**

Some affirm that Kabir muahid reposes here and many authentic traditions are related regarding his sayings and doings to this day. He was revered by both Hindu and Muhammadan for his catholocity of doctrine and the illumination of his mind, and when he died the Brahman wished to burn his body and Muhammadan to bury it.

और मुल्लाओं को जीवन भर डांटता-फटकारता रहा; उनकी त्रुटियों पर व्यंग्य करता रहा, उन्हें भला-बुरा कहता रहा, जो किसी की गलती पर कभी मुरव्वत करना नहीं जाना, जिसकी पैनी दृष्टि सबकी कमजोरियों को तत्काल देखकर उसकी जुबान हजार के बाजार में साफ-साफ कह देती थी; ऐसे कबीर में आखीर क्या आकर्षण है जो उन पर सब कुर्बान होते थे और आज भी उनको सब अपने दिल में बिठा रखे हैं।

बात साफ है। कबीरदेव मानवता के महान आदर्श थे। सारी परम्पराओं से हटकर सत्य के उपासक थे। वे धर्म के नाम पर सत्य का मूल्य घटाना नहीं जानते थे। वे हिन्दू के नहीं थे, मुसलमान के नहीं थे, वे किसी एक के नहीं थे, इसीलिए वे सबके थे। वे चांद, सूरज, आकाश, हवा के समान सबके थे। कबीरपंथी कहलाने वाले उन्हें अपने कबीरपंथ की डिबिया में नहीं बन्द कर सकते। वे निर्मल, निरपेक्ष, बेलाग, अद्वितीय थे। वे पूरी मानवता के लिए रोते थे।[४] अवतार और पैगम्बर बन कर नहीं, इलहामी किताब एवं खुदाई पैगाम लाकर नहीं; शुद्ध मनुष्य बनकर, वास्तविकता की बात कहकर और अस्तित्व की व्याख्या करके।

उनके प्रखर ज्ञान, महान प्रतिभा, दिव्य चरित्र, ऊंचे विचार, उदार व्यवहार, प्रगल्भ बुद्धि, स्पष्ट प्रवचन, निष्फिक्र जीवन, निस्संदेह बोध, अखंड वैराग्य और पूर्णत्व प्राप्त जीवन से जनता आकर्षित होकर उनके जीवनकाल में ही उन्हें उच्च संत, सद्गुरु, अलौकिक पुरुष, अवतार आदि तक मानने लगी थी।

हजारों वर्षों का विकास सनातन धर्म है जिसमें वेद-काल, ब्राह्मण-काल, आरण्यक-काल, उपनिषद्-काल, रामायण तथा महाभारत-काल, सूत्र-काल तथा पुराण-काल गुजरे, जिसमे अनेक वादो का जन्म हुआ। आश्चर्य होता है केवल पांच सौ वर्षों के बीच अकेले एक कबीर साहेब की वाणियों में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, ईश्वरवाद, जीववाद, ब्रह्मवाद, योगवाद, सत्लोक-सत्पुरुषवाद—अनेक वादों का जन्म हुआ। बीजक का सिद्धान्त तो पारख अर्थात जीववादी है; लेकिन पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष का विचार न करने से विद्वानजन बीजक में ही अनेक वादों का आरोपण कर लेते हैं। बीजक के बाहर जो कबीर साहेब के नाम से प्रचलित अगम-अपार वाणियां हैं उन्हें पढ़ने से तो हम एक अथाह सागर में पहुंच जाते हैं। बीजक के बाहर की वाणियां चाहे वह डा०

४. मैं रोवों यह जगत को''''''बीजक, साखी १८०।

श्यामसुन्दर दास जी की और चाहे डा० पारसनाथ तिवारी जी की 'कबीर ग्रंथावली' हो, चाहे गुरुग्रन्थ साहेब से सम्पादित डा० रामकुमार वर्मा का 'संत कबीर' हो, चाहे क्षितिमोहन सेन एवं रवीन्द्रनाथ टैगोर का संग्रह हो तथा चाहे इनके भी बाहर अनेक ग्रन्थ हों सब में काफी प्रक्षिप्त वाणियां है। कितनी वाणियां कबीर साहेब के नाम पर रचकर यों ही चलायी गयी है। परन्तु इससे भी कबीर साहेब का महान आकर्षण ही सिद्ध होता है। कबीर साहेब कुछ ऐसे महान हैं जिनके नाम पर अपनी वाणी चलाने में लोग गौरव समझते हैं। सरकारी मोहर लग जाने पर कौड़ी का कागज रुपया बन जाता है। इसी प्रकार कितना ही फूहर-पातर गीत हो, जब उसके अंत मे लग गया "कहै कबीर सुनो भाई साधो" तब वह निर्गुणी और गहन-गंभीर अर्थ वाला बन जाता है।

कबीर साहेब की वाणियो मे चोटी के संतजन परमतत्त्व, परमस्थिति एवं स्वरूपस्थिति की खोज कर आत्मिक संतोष पाते हैं। विद्वानजन उनके समय, जन्म, जाति, परिवार, शब्दविन्यास, शैली, कवित्व, विषय-वर्णन आदि का विश्लेषण कर बौद्धिक संतोष पाते हैं। मध्यमवर्ग उनकी वाणियो से सत्य और सदाचार को ग्रहण कर जीवन सुधार करता है। चरवाहे, हरजोत्ते 'कहैं कबीर सुनो भाई साधो' का आलाप करके मस्ती पाते हैं। भीख मांगने वाले उनकी वाणियो को गाकर लोगो के मन को रिझा देते हैं। कबीर की अटपटी वाणी में कैसी चटपटाहट है, कैसा आकर्षण है! सोचते ही बनता है।

डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—"कबीर के समालोचकों ने अभी तक कबीर के शब्दों को तानपूरे पर गाने की चीज ही समझ रखा है पर यदि वास्तव में देखा जाय तो कबीर का विश्लेषण बड़ा कठिन है। यह इतना गूढ़ और गंभीर है कि उसकी महत्ता का परिचय पाना एक प्रश्न हो जाता है। साधारण समझने वालों की बुद्धि के लिए वह उतना ही अग्राह्य है जितना कि शिशुओ के लिए मांसाहार। ऐसी स्वतन्त्र प्रवृत्ति वाला कलाकार, किसी क्षेत्र मे नही पाया गया[५]।

"इसमें सन्देह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रो को समझने की शक्ति किसी में आ सकेगी अथवा नहीं। कबीर की 'बानी' पढ़ जाने के बाद यह स्पष्टरूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रों का कोष है जिसमे हृदय में उथल-पुथल मचा देने की बड़ी भारी शक्ति है। हृदय आश्चर्य-चकित होकर कबीर की बातो को सोचता ही रह जाता है, वह हतबुद्धि होकर

५. कबीर का रहस्यवाद, प्रकरण २, पृष्ठ ५।

अशांत हो जाता है। उस समय कबीर की प्रतिभा एक अगम्य विशाल वन की भांति प्रतीत होती है और पाठकों का मस्तिष्क एक भोले और अशक्त पथिक की भांति[६]।"

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है "भाषा पर कबीर का जबर्दस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे[७]।" "हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नही हुआ[८]।" "युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और एक वाक्य मे उनके व्यक्तित्व को कहा जा सकता है, वे सिर से पैर तक मस्तमौला थे—बे-परवाह, दृढ़, उग्र, कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर[९]।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं "संत कबीर एक उच्चकोटि के संत तो थे ही, हिन्दी साहित्य में वे एक श्रेष्ठ एवं प्रतिभावान कवि के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं तथा हिंदी साहित्य के बाहर भी उनकी रचनाओ का पर्याप्त आदर है[१०]।"

प्रसिद्ध इतिहासकार पण्डित सुन्दरलाल कबीर साहेब की वाणियों और सिद्धांतों पर लिखते हुए कहते हैं "भारत की आत्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही, और यदि भविष्य के लिए कोई मार्ग है तो केवल यही है[११]।" रेवरन्ड जी. एच. वेसकट ने लिखा है "कबीर हिन्दी-साहित्य के पिता माने जाते है[१२]।"

सद्‌गुरु कबीर की महिमा बहुमुखी थी। उनकी वाणी भी बहुमुखी है। उसमें सबको आश्रय मिल जाता है। कबीर देव पारखी तो हैं ही, ब्रह्मवादियो के ख्याल से ब्रह्मवादी है, आर्यसमाजियो के विचार से आर्यसमाजी, वैष्णवों के ख्याल से वैष्णव, यहां तक कि अवतारवाद तक के समर्थक। योगियो की दृष्टि मे महान योगी। कवि, समाज-सुधारक एवं मानव एकता के शंखनाद करने वाले तो है ही, समाजवादियों के ख्याल से वे समाजवादी एवं शुद्ध कम्यूनिस्ट हैं। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक बार कबीर साहेब की विशालता पर

६. वही, पृष्ठ ६। ७. कबीर, पृष्ठ २१६। ८. वही, पृष्ठ २१७।
९. वही, पृष्ठ १६६।
१०. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ४, पृष्ठ १४१, काशी नागरी०।
११. भारत में अंग्रेजी राज्य : मानवधर्म।
१२. Kabir is regarded as the father of Hindi literature.
(Kabir and the Kabirpanth)

हसते हुए कहा था "हाथी के पांव में सबकै पांव—कबीर साहेब में सब समा जाते हैं।"

डा० जयदेव सिंह तथा डा० वासुदेव सिंह लिखते हैं—

"कबीर का व्यक्तित्व न केवल हिन्दी संत कवियो मे अपितु पूरे हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है। हिन्दी साहित्य के लगभग बारह सौ वर्षो के इतिहास में तुलसीदास को छोड़कर, इतना प्रतिभाशाली और महिमामंडित व्यक्तित्व दूसरे कवि का नहीं है। वह हिन्दुओं के लिए "वैष्णव भक्त", मुसलमानों के लिए "पीर", सिक्खों के लिए 'भगत', कबीरपन्थियों के लिए 'अवतार', आधुनिक राष्ट्रवादियो के लिए 'हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य-विधायक', नव-वेदान्तियो के लिए 'विश्वधर्म या मानवधर्म प्रवर्तक', प्रगतिशील तत्वो की दृष्टि मे 'समाज सुधारक', जातिगत श्रेष्ठता के विरोधी, सामाजिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के पक्षधर, क्रांतिकारी और समता, बन्धुत्व-भावना, न्याय तथा एकता के प्रतिपादक के रूप में मान्य हैं। कहा जाता है कि उनकी मृत्यु के अवसर पर मगहर में उनके हिन्दू-मुस्लिम अनुयायियो मे उनके शव को जलाने अथवा दफनाने के प्रश्न को लेकर काफी विवाद हो गया था। इस किंवदन्ती मे कितना सत्य है, कहा नही जा सकता। किन्तु इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उनका व्यक्तित्व संकीर्ण धार्मिक सीमाओ से इतना परे था कि वे हिन्दू-मुस्लिम दोनो सम्प्रदायो के श्रद्धा-भाजन बन सके। उनके व्यक्तित्व की उदात्तता का इससे भी प्रमाण मिलता है कि हिन्दू-मुस्लिम भक्तों के अतिरिक्त सिक्खो ने भी उनकी रचनाओ को अपने धर्मग्रन्थ मे स्थान दिया और उनके विचारो की उदारता को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने उन्हे ईसाई-धर्म प्रभावापन्न घोषित किया और कहा कि उनके कतिपय उपदेश बाइबिल के निकट है। ग्रियर्सन ने कहा कि कबीर के सिद्धान्त सेट जोन की कविताओ से मेल खाते है :—

"Kabir's doctrine of the word (Sabda) is a remarkable copy of the opening verses of St. John's Gospel. Modern Hinduism and its Dept to the Nestorians. JRAS 1907. P. 311

"इसी प्रकार दूसरे पाश्चात्य लेखक वेस्टकाट ने भी कबीरपन्थ पर सेट जोन की रचनाओ का प्रभाव प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। कबीर पर ईसाई धर्म का प्रभाव था अथवा वे ईसाई पादरियो के सम्पर्क में आये थे, यह विवाद का प्रश्न है। साथ ही यह भी सत्य है कि कोई भी विचारक, वह चाहे जितना महान क्यों न हो, ऐसे विषयो पर निर्णय लेते समय अपनी धार्मिक मान्यताओ से निरपेक्ष नही रह पाता। यूरोप के विद्वान भारतीय धर्म, इति-

हास, साहित्य, दर्शन आदि पर लिखते समय प्राय: पूर्वाग्रह-ग्रस्त हो गये हैं और यहां की प्रत्येक अच्छाई को यूरोप से आयातित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। कबीर के सम्बन्ध में भी उनका निर्णय पक्षशून्य नही रहा है। यहां हम यह कहना चाहते हैं कि इस दोष के रहते हुए भी कबीर के व्यक्तित्व की महत्ता ने पाश्चात्य विद्वानों को सर्वाधिक प्रभावित और आकर्षित किया और बहुतो ने उन्हे 'भारतीय लूथर' तक घोषित कर दिया। यही नही, पश्चिम में कबीर पर जितना कार्य हुआ संभवत: हिन्दी के किसी अन्य कवि पर उतने ग्रन्थ नही लिखे गये। १८वीं शताब्दी से ही कबीर की वाणी का स्वर यूरोप मे गूजने लगा था। सन् १७५८ मे सर्वप्रथम एक इटैलियन साधु पाद्रे मार्को डेला टोम्बा ने कबीर के ज्ञान सागर अथवा सतनाम कबीर का इटैलियन भाषा में अनुवाद किया था। उसके बाद डब्ल्यूप्राइस, जेनरल हैरट, एच० एच० विल्सन, गार्सा द तासी, हण्टर, ई० ट्रम्प, ग्रियर्सन, वेस्टकाट, मेकालिफ, अण्डरहिल, एफ० ई० के, ब्रिग्स, स्मिथ, पिन्काट आदि पाश्चात्य विद्वानो ने कबीर की रचनाओं के सम्पादन, पाठानुसंधान, अनुवाद, समीक्षा आदि के रूप में जो विभिन्न कार्य किये, वे उनके व्यक्तित्व की महनीयता के ज्वलंत प्रमाण हैं।

"१९वी शताब्दी भारतीय इतिहास के नव-जागरण का काल है। हिन्दू समाज मे व्याप्त अनेक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वास, बाह्याडम्बर, जाति-प्रथा आदि के उन्मूलनार्थ उस समय अनेक समाज सुधारक पैदा हुए और ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओ के माध्यम से हिन्दू समाज में व्याप्त दोषों के परिहार के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए। बगाल इन समाज-सुधारकों का मुख्य केन्द्र था। कबीर इनके मुख्य प्रेरणास्रोत बने। वह एक प्रकार से 'नव जागरण' आन्दोलन के केन्द्र-विन्दु थे। इसी परम्परा में रवीन्द्रनाथ टैगोर को कबीर ने सर्वाधिक प्रभावित किया। उन्होने कबीर के सौ पदो का संग्रह किया, जिसकी भूमिका मिस अंडरहिल द्वारा लिखी गयी। टैगोर ने स्वीकार किया है कि कबीर जैसा रहस्यवादी, विश्व-धर्म प्रवर्तक, मानव एकता का उन्नायक और निर्भीक समाज-सुधारक कवि बगला भाषा में भी नही हुआ। उन्ही की प्रेरणा से क्षितिमोहन सेन ने कबीर के पदो का सग्रह किया और Medieval Mysticism नामक ग्रन्थ मे मध्यकालीन साधकों पर विचार करते हुए कबीर को श्रेष्ठ चिन्तक और साधक घोपित किया[१३]।"

१३. कबीर वाणी पियूष, पृष्ठ १-२, प्रथम संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी १९७६ ई०।

कबीर साहेब के महान व्यक्तित्व, खरे ज्ञान, निष्पक्ष आलोचना, मानवता एवं प्रखरवाणी से प्रभावित होकर श्रुतिगोपाल साहेब, भगवान साहेब, जागू साहेब, धर्म साहेब आदि ने ज्ञानप्रचार एव पन्थविस्तार किया ही; पीपाजी, नानक साहेब, पल्टू साहेब, घीसा साहेब, दादू साहेब, बुल्ला साहेब, यारी साहेब, मदन साहेब, दरिया साहेब आदि ने विशाल संतमत का विस्तार किया। जितने साहेब कहलाने वाले आचार्य हुए सब कबीर साहेब से प्रभावित होकर आगे बढ़े। वेदो एवं प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्, गीता एव ब्रह्मसूत्र) की प्रामाणिकता एव वर्णाश्रम-परम्परा एवं अवतारवाद से स्वतन्त्र होकर, ब्राह्माचार से रहित, सदाचार, सद्‌गुरु-उपासना, मानव समानता एवं आत्मज्ञान पर जोर देने वाले समस्त भारतीय धर्मपन्थों को संतमत कहा जाता है जिसके अग्रगण्य सद्‌गुरु कबीर माने जाते हैं। यो आपके वचनो को प्रामाणिक मान कर संन्यासी, उदासी, वैष्णव, ब्राह्मण, पंडित, बौद्ध, जैन आदि सभी जनता के सामने एव ग्रंथों में उद्धरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार आपके बहुमुखी व्यक्तित्व एवं वाणी सभी क्षेत्रो मे छाये हुए हैं। आपने सबको चौंका देने वाली बात कहकर भी सबके दिलो में अपना स्थायी घर बना लिया तथा सबमें समा गये, यह आपकी सब पर एक अद्‌भुत विजय है।

कुछ लोग कहते हैं "कबीर ने तो काम बड़ा अच्छा किया; परन्तु वे सफल नही हुए। सांप्रदायिकता का जहर दूर होकर मानवता कहां आयी ?" समझने की बात यह है कि यह संसार दूध का धोया कभी नही बन सकता। सारे सद्‌पुरुषार्थों का परिणाम आंशिक सुधार ही हो सकता है। हम रामराज्य की कल्पना करते है; परन्तु बेचारे राम स्वयं जीवन भर दुखी रहे और युद्ध करते-करते उनका जीवन बीता तथा उन्होंने जीवन से हार कर परिवार एवं अयोध्यावासी सहित सरजू-नदी की शरण ली। अयोध्या उजड़ गयी। श्री कृष्ण की कथा भी किसी से छिपी नही है, वे जीवन भर सोटा-डंडा लेकर लोगों से लड़ते रहे। एड़ी-चोटी का पसीना एक करने पर भी महाभारत युद्ध रोक नहीं पाये। उन्हे अपने सामने भारत का पतन देखना पड़ा। उसके छत्तीस वर्ष के बाद सम्हालते-सम्हालते उनके स्वयं यदुकुल का विनाश उनके नजरों के सामने हुआ। जिस कृष्ण से गीता का उत्तम ज्ञान जोड़ा जाता है उन्हीं कृष्ण के भाई, बच्चे, पोते आदि घोर शराबी होकर आपस में कट कर मर गये। उनका अवशेष और दुखी परिवार हस्तिनापुर (दिल्ली) की यात्रा में लूटा गया। जीवन से हारकर जब वे वनवासी हुए, जरा नाम के वधिक के बाण लगने से उनका प्राणान्त हुआ।

श्री कृष्ण ने गीता में फल की आशा त्याग कर केवल निरन्तर कर्म

करने के लिए कितना जोरदार भाषण दिया है; परन्तु क्या वे अपने अभियान मे सफल हैं। भारतवासी इतने कर्महीन बने कि वे हजार वर्ष तक विदेशियों के पैरो के नीचे रौंदे गये। भारत में यह धारणा ही फैल गयी कि शरीर से काम करने वाला आदमी न श्रेष्ठ है न धर्मात्मा। धर्मात्मा तथा बड़ा आदमी वही है जो कुछ काम-धन्धा नहीं करता है। और फल त्याग के बदले फल की इतनी लम्बी आशा हुई कि सत्यनारायण व्रत कथा के नाम पर कल्पित कहानी सुनकर लोक-परलोक दोनों के बनने की आशा की गयी। ब्राह्मण को एक पाव सत्तू देकर पुत्र, धन और स्वर्ग—सब कुछ चाहा गया। गंगा में नहा लेने मात्र से सारे पापों का क्षय और नर्मदा-नर्मदा कह देने मात्र से सारे पापो का संहार माना गया और राम नाम जप से तो कहना ही क्या! उतने पाप आप कर नहीं सकते हैं जितने कि राम-जप से भस्म होते हैं। यह सब गीतोपदेश के विरुद्ध ही है। इसीलिए विष्णु पुराण में कहा गया "जो लोग अपने कर्तव्य कर्मो को छोड़कर केवल कृष्ण-कृष्ण कहते रहते हैं वे हरिद्वेषी और पापी हैं, क्योंकि धर्म-कर्म की व्यवस्था के लिए ही हरि का जन्म होता है।[१४]

ईसा यहूदियों के घर में जन्म लिये और उन्होने यहूदियों के सुधार के लिए प्रयत्न किया; परन्तु यहूदी उनकी विशेषता न समझकर उन्हे मार डाले। तो उसका फल यह हुआ कि यहूदी संकुचित हो गये और इसाई दुनिया मे फैल गये। इसी प्रकार बुद्ध हिन्दुओं के घर में जन्म लेकर उनका सुधार करना चाहे, परन्तु अधिकतम हिन्दुओं ने उन्हें नास्तिक कह कर उनकी परम्परा-बौद्धों के उच्छिन्न होने की कामना[१५] की। तो फल यह हुआ कि बौद्ध तो संसार में फैल गये और हिन्दू संकुचित हो गये। यहां तक उनके चौदह करोड़ भाई आज मुसलमान का रूप लेकर उनके विरोधी बने बैठे है। करोड़ों इसाई बन गये। शिवजी ने नास्तिकों—बौद्धों को उच्छिन्न कर सनातन-धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए शंकराचार्य का अवतार लिया और वह काम किया; परन्तु अपने सनातन धर्म को शिव या शकराचार्य स्वामी मुसलमान तथा इसाइयों से न बचा सके। शुद्ध भारतीय तथा उदार बौद्धों की परम्परा का विनाश तो शंकर को अभीष्ट था, परन्तु गोघातक, विदेशी मजहब इस्लाम एवं

१४. अपहाय निजं कर्म कृष्णकृष्णेति वादिनः।
ते हरिद्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

१५. यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
(वाल्मीकीय रामायण २/१०९/३४)

इसाइयत से सनातन धर्म को बचाना अभीष्ट नही था। किरात[१६] हूण, आंध्र, पुलिंद, पुक्कस, आभीर, कंक, यवन, खस, शक तथा अनेक जातियों को अपने में पचा लेने वाली भारतीय आर्य जाति स्वामी शंकर (ई० ७८८-८२०) के पीछे मुसलमानो को न पचा सकी। इसमें चाहे स्वामी शंकर का कठोर वर्ण समर्थन का प्रभाव हो और चाहे भारतीयों का अपना ही दुर्भाग्य हो। फलतः सनातन धर्म के पुनर्स्थापक स्वामी शंकर सनातन धर्म को बचाने के लिए न पुनः अवतार लेकर आ सके और न उनके उपस्थित चार शंकराचार्य कुछ कर सके। वेदव्यास जी भी कहते हैं "मै हाथ उठाकर कहता हूँ परन्तु मेरी बात कोई सुनता नही। धर्म से अर्थ और भोग दोनों होते है, तो धर्म का सेवन क्यों न किया जाय[१७]।"

यहां मेरा मंतव्य महाराज राम, कृष्ण एवं शंकराचार्य का महत्त्व घटा करके आंकने का नहीं है। वे हमारे श्रद्धेय है। वे महान है। परन्तु सबका पुरुषार्थ सीमित है। संसार का सर्वथा सुधार न कोई कर सका है और न कोई कर सकेगा; परन्तु इन महान विभूतियों का किया हुआ पुरुषार्थ विफल नही गया है। उसी का फल है कि संसार मे कुछ सुन्दरता दिखती है। वसिष्ठ, व्यास, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकर, कबीर, दयानन्द विवेकानन्द आदि कोई भी अपने विचारो को संसार से मनवाने में सर्वथा सफल नही है। परन्तु इन महापुरुषों का पुरुषार्थ ही ससार में कुछ प्रकाश फैला रखा है। प्रसिद्ध उर्दू कवि रघुपति सहाय फिराक गोरखपुरी की यह बात ठीक ही है कि "आदम की नस्ल ने हजारों उपदेष्टाओं को पैदा किया, यह स्वीकार है; परन्तु आदमी आज भी भटक रहा है[१८]।" लेकिन इस जगत के जीवन में जो कुछ सुगंधी है वह किसका फल है, इन महापुरुषो के आदर्श जीवन एवं उच्च उपदेशों का ही।

कबीर साहेब अपने लक्ष्य में काफी सफल हैं। आज पांच सौ वर्षो से उनसे प्रेरणा पाकर संतमत की एक विशाल वाहिनी भारत में खड़ी है जो नानक

१६. किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुल्कसाः आभीर-कङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापास्तदवाश्रयाश्रयः शुद्धन्ति तस्मै प्रभविष्णवेनमः॥
(भागवत २/४/१८)

१७. ऊर्ध्व बाहुर्विरोम्येतद् न मे कश्चित श्रृणोति ह।
धर्मादर्थश्च कामश्च कस्मात् धर्मो न सेव्यते॥ (महाभारत)

१८. हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम ने।
ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है॥

साहेब से लेकर दादू साहेब, दरिया साहेब, पलटू साहेब आदि के द्वारा आगे निरन्तर बढ़ायी गयी है। जो हिमालय से कन्याकुमारी तथा पंजाब से आसाम-बंगाल एवं राजभवन से लेकर झोपड़ी तक मानव-समानता, छुआछूत-विरोध, बाह्याचार-निरास और एकता की गूंज चल रही है क्या इसमें कबीर साहेब का प्रभाव नहीं देखा जा सकता ? आधुनिक भारत के राजनीतिक संत गांधी और विनोबा के जीवन तथा कर्म में कबीर का प्रभाव सहजतया देखा सकता है। डा० पीतांबर बड़थ्वाल ने लिखा है—

"अपनी सन् १९३५ की हरिजन-यात्रा में जब महात्मा गांधी काशी पहुंचे थे, तब कबीरमठ में उनसे यह सुनकर कि मेरी माता कबीरपंथी थी, उपस्थित जनसमुदाय को विस्मय-सा हुआ था; परन्तु जो लोग महात्मा गांधी और कबीर की विचारधारा से परिचित हैं, उनके लिए उसमें विस्मय की कोई बात नहीं है, क्योंकि वे जानते हैं कि उन दोनों में कितना अधिक साम्य है। उनके लिए तो आश्चर्य की बात यही है कि लोग महात्मा गाधी की विचार-धारा का मूलस्रोत ढूढ़ने के लिए रूस, इंगलिस्तान और अमरीका जाते हैं। गांधी के निर्माण में टाल्स्टाय, रस्किन और संभवतः लायड गैरिसन आदि के विचारों का भी हाथ रहा सही, पर गौण रूप में। गांधीत्व की गंगा का गोमुख मूलतः कबीर की शिक्षाओं में है, जिन्हें उन्होने माता के दुग्ध के साथ पान किया था और जो इसी कारण उनकी नस-नस में व्याप्त है। टाल्स्टाय आदि के विचार तो उनके हृदय में सोती हुई उस चिनगारी को सुलगाने मे कारग रूप हुए हैं, जिसे उन्होंने अपनी माता के द्वारा कबीर से आध्यात्मिक दाय मे प्राप्त किया था[१९]।"

इस ससार में किया हुआ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता है। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ठीक ही कहा है "जीवन मे जितनी पूजाएं पूरी नही हुई हैं, मै अच्छी तरह समझता हूं कि वे बेकार नही गयी हैं। जो फूल विकसित होने से प्रथम ही सूख कर गिर गये तथा जो नदी रेगिस्तान में अपनी धारा खो दी है, मैं समझता हूं कि वे भी अपना अस्तित्त्व रखते हैं। वर्तमान जीवन में जो पीछे छूट गया है, जो अधूरा रह गया है, मैं समझता हूं वह भी बेकार नही हुआ है। जो मेरा भविष्य है अभी दूर है, वह तुम्हारी वीणा के तारों मे बज रहा है, मैं समझता हूं वह भी मिट नही गया है[२०]।"

अतएव कबीर साहेब ने जो कुछ किया है, कहा है, वह मिट नहीं गया है; किंतु शत-सहस्रमुखी होकर खिल रहा है और सर्वत्र फैल रहा है, फैलता

१९. कबीर और गांधी। २०. गीतांजलि।

रहेगा। वह ऐसा परम सत्य है कि धूमिल दिखते हुए धूमिल हो नहीं सकता। डा० सम्पूर्णानन्द के वचनों में "कबीर जैसे महापुरुष का जीवन उस हीरे के समान है जिसके कई पहल होते हैं। हर पहल अपने में संपूर्ण सुन्दर और ज्योतिर्मय होता है[२१]"

फ्रेन्च विदुषी कुमारी वौडिविल (Ch vaudeville) लिखती हैं "कबीर भारतीय परम्परा में एक अत्यन्त श्रद्धास्पद नाम है। वे पंजाब से बंगाल और हिमालय के छोर से दक्षिण कन्याकुमारी तक एक महान कवि के रूप में स्वीकृत हैं। वे हिंदी काव्य के पिता, महान रहस्यवादी तथा हिंदुओं और मुसलमानों के द्वारा एक समान अद्वितीय महापुरुष के रूप में श्रद्धापूर्वक माने जाते हैं[२२]।"

आज के युग में कबीर के विचारों की आत्मा सभी क्षेत्रों में झांक रही है और कहना चाहिए पहले की अपेक्षा अधिक जोर-शोर-से उनकी वाणी हजारों रागों में बदल कर प्रतिध्वनित हो रही है। उनके उपदेशों के चेहरे कई रंगों में भले रंग गये हों; परन्तु वे चारों ओर से बाढ़ के समान आज के युग को अधिक प्रभावित कर रहे हैं। आडंबरों की भीत को भहरा देने वाली कबीर देव की वाणी आज किसे नहीं प्रभावित कर रही है। उनसे विरोध करने वाले भी उनसे रीझे बिना नहीं रह सकते। कबीर साहेब के विचार जो संसार को मिले हैं केवल सामयिक नहीं, शाश्वत हैं। उन्हें कुछ ही मनुष्य नहीं, पूरा अस्तित्त्व स्वीकार करता रहेगा।

९

रचना : बीजक

सद्गुरु कबीर की महान रचना सद्ग्रन्थ 'बीजक' है। डा० श्यामसुन्दर दास जी द्वारा संपादित 'कबीर ग्रन्थावली', सिक्खों के गुरुग्रन्थ में संकलित,

२१. कबीर अंक, पूर्वी टाइम्स, जून १९६६ गोरखपुर।

२२. Kabir is the most revered name in Indian tradition. From Panjab to Bengal and from the Himalayan Frontier to the Deccan, he is acknowledged as a great poet (he has been called 'the father of Hindi poetry') and as a great mystic venereted by Hindus and Muslimr alike, a unique distinction.

(Kabir, Oxford University Press 1974)

बीजक-साखी के अतिरिक्त हजारों साखियों से भरा 'साखीग्रन्थ' 'शब्दावली' आदि कबीर साहेब की बहुत वाणियां मानी जाती है; परन्तु वे प्रक्षिप्तों से भरी हैं। इन इतर ग्रन्थों में यत्र-तत्र बीजक की वाणियां कुछ पाठभेद या स्वर-भेद से आयी हैं और कुछ बीजक के पदों के भावानुवाद रूप में आयी हैं; किन्तु वे पूरे ग्रंथ बीजक समर्थित नही हो सकते।

सिक्खों के गुरुग्रंथ में जो कबीर साहेब की वाणियां संग्रहीत हैं वे निश्चित ही बहुत पुरानी हैं; क्योकि वह उनके पांचवे गुरु अर्जुनदेव का संग्रह किया हुआ है जिसका समय सन् १६०४ (विक्रमी १६६१) है; परन्तु उन्होंने भ्रमण करने वाले सन्तों-भक्तों या आम लोगों के मुख से सुन-सुनाकर संग्रह किया था[1]। डा० श्यामसुन्दर दास जी की 'कबीर ग्रंथावली' कबीर साहेब के शरीरान्त के चौदह वर्ष पहले की संग्रहीत बतायी जाती है; परन्तु इस ग्रंथ मे जो पंजाबीपन है वह सिद्ध करता है कि संग्रह करने वालो की अपनी विशिष्ट छाप है। कबीर साहेब भले ही पूरे भारत में और इतर देशो मे भ्रमण करते रहे हों और इसलिए उनकी वाणियों में विभिन्न प्रान्तों एवं क्षेत्रो के शब्द आते रहे हों; परन्तु उनका मुख्य कार्यक्षेत्र काशी रहा है। बस्ती, गोरखपुर एवं वाराणसी के बीच की भाषा ही उनकी मुख्य भाषा रही है और वह बीजक की वाणियां मे ही मिल सकती है।

कहा जा सकता है कि गुरुग्रंथ साहेब तथा कबीर ग्रंथावली में बीजक की वाणियां क्यों नही ली गयी ? उत्तर है कि संग्रह करने वालों ने कबीर अनुयायियो से ठीक संपर्क किये बिना संग्रह करने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त किसी महापुरुष के प्रभाव मे आकर कितने ऐसे लोग उनके अनुयायी हो जाते है जो उनके खरे सिद्धान्त को पचा नहीं पाते और अपनी पूर्व मान्यताओं को अपने मन में छिपाये रखते है। ऐसे लोग कुछ कबीर साहेब की वाणियों को लेकर तथा कुछ अपना जोड़-तोड़ कर कबीर साहेब के नाम पर वाणियों का पाठ करते रहे और ऐसे लोगों द्वारा सुनकर संग्रह की हुई वाणियां निश्चित

१. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं "इन्होंने (अर्जुनदेव ने) भिन्न-भिन्न प्रसिद्ध भक्तों के अनुयायियों को आमंत्रित करके उनसे अपने-अपने श्रेष्ठ भजनों को चुनवाया। उनमें से भी अपने संग्रह में उन्हीं पदों को स्थान दिया जो सिद्धान्त की दृष्टि से अपने गुरुओं की रचनाओं से मेल खाते थे।"

(उ० भा० की संत परम्परा ३७६)

इससे साफ जाहिर है कि गुरुग्रंथ में वही वाणियां ली गयीं जो उन्हें किन्हीं भक्तो द्वारा मिलीं एवं जो उनके मत के अनुसार थीं।

ही खिचड़ी रहेंगी। बीजक के अतिरिक्त कबीर साहेब के नाम पर चलने वाली वाणियां जैसे—कबीर ग्रंथावली, गुरुग्रन्थ साहेब में संग्रहीत, साखीग्रंथ, कबीर शब्दावली आदि बीजक के प्रभाव से एकदम खाली नहीं हैं। कई पद तो उनमें स्वर एव पाठभेद से बीजक के ही हैं; परन्तु वे सब ग्रंथ पूरे-के-पूरे बीजक नही हो सकते। इन ग्रंथों में अनेक ऐसी बातें हैं जो कबीर साहेब के सिद्धान्त एवं विचारों से बिलकुल अलग है।

बीजक पर आधुनिक हिन्दी का प्रभाव है। जब कबीर साहेब बीजक के पद बोले होगे तब की हिन्दी निश्चित है आज से बहुत पीछे थी। यह बात ठीक है; परन्तु इससे यह नही सिद्ध होगा कि बीजक कबीर साहेब की वाणी नही है। रामचरित मानस पर आधुनिक हिन्दी का प्रभाव है; परन्तु इसीलिए हम उसे श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की कृति न माने यह संभव नही। इसलिए गीताप्रेस वालो ने रामचरित्र मानस का पाठ पुरानी भाषा मे करने की चेष्टा की है; परन्तु जिन्होंने पुरानी नही की उनकी रामायण से भी वही अर्थ निकलता है। वस्तुत: पुरानी हिन्दी के शब्दो के उच्चारण में कठिनता होने से संपादक लोग नवीन ढंग से शब्द लिखते गये। यद्यपि यह मूल पाठ की दृष्टि से अच्छा नही है; परन्तु जहां कोई कड़ा प्रतिबन्ध नहीं है वहां प्रसिद्ध ग्रंथों में अनेक हाथ लगने से अक्षर परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है जैसे बैराग का वैराग्य, बिषय का विषय आदि। यद्यपि ऐसा करना नही चाहिए।

छापाखाना न होने से, किसी मुख्य सस्था के हाथो में ग्रंथ पर कॉपीराइट न होने से, बोधी-अबोधी एवं शिक्षित-अर्धशिक्षित के हाथों मे लिपि पड़ते जाने से और यह सब लम्बी अवधि तक चलते जाने से लिपि में अक्षरो का परिवर्तन एवं थोड़ा-मोड़ा पाठभेद हो जाना स्वाभाविक है। हां, अधिक पाठभेद करना सपादकों के अहंकार एवं स्वार्थ का सूचक है। वस्तुत: किसी भी ग्रन्थ के मूलपाठ का उसके कर्ता के अलावा किसी प्रकार भी पाठभेद दूसरे को नही करना चाहिए और न लिखने में अक्षरो का परिवर्तन ही, परन्तु इस दोष से रामायण, महाभारत, गीता आदि ही नही, वेद भी नही बचे है। वेदों के विद्वान पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी अपनी ऋग्वेद टीका की भूमिका में लिखते हैं—

"हजारों वर्षो से एक-दूसरे से, दूसरे-तीसरे से, तीसरे-चौथे से सुन-सुनकर वेदमंत्रों को कंठस्थ करते आते थे। इस तरह हजारों मुखों और मस्तिष्को से छनकर कुछ मंत्रपाठ और मंत्रार्थ विकृत हो चले हैं। लिपिकारों की अज्ञता, अल्पज्ञता, प्रमाद, पक्षपात आदि के कारण भी कई मंत्र और उनके अर्थ विकृत हो गये है। ये ही कारण हैं कि पद, क्रम, जटा, माला, शिखा, लेखा,

ध्वजा, दंड, रथ और धन (विकृत-वल्ली १-५) में आबद्ध करने पर भी अनेक वेद मंत्रों के पाठान्तर हो गये, एक ही मन्त्र दो-एक शब्द इधर-उधर करके, दुबारा लिखा गया और उनके मन्त्रों के शब्द इतने विकृत हो गये कि उनका शुद्ध पाठ और अर्थ-ज्ञान दुर्बोध और अज्ञेय हो रहे। वेदमन्त्रों के कुछ ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थज्ञान नहीं होता[२]।"

बीजक सद्गुरु कबीर के हृदय से निकला खरे ज्ञान का कोश है। उनके शिष्यों की परम्परा मे उसका पठन-पाठन तब से आज-तक होता चला आया है और उसी के आधार पर श्री रामरहस साहेब ने पंचग्रंथी लिखी तथा उसमे यत्र-तत्र बीजक के पद दिये। पचग्रंथी बीजक की पहली भावात्मक टीका मानी जाती है। फिर श्री पूरण साहेब, श्री राघव साहेब, श्री मेंही साहेब, श्री विचार साहेब आदि की टीका भी उसी मूल के आधार पर है। रीवांनरेश की टीका के मूल भी बहुत कुछ इसी पाठ पर अवलम्बित है। श्री हनुमान साहेब की टीका का मूल तथा धनौती का मूल भी कुछ पाठभेद से इसी आधार पर हैं। अन्य में कुछ पाठभेद है भी; परन्तु श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब, श्री राघव साहेब, श्री मेंही साहेब, श्री विचार साहेब का बीजक पाठ तो एक ही है, जो कबीर साहेब के समय से चला आया है।

बीजक को ही सद्गुरु कबीर का प्रामाणिक ग्रंथ मानकर पंथ के अनेक सन्तों एव विद्वानो ने टीकाएं की है। कई बाहरी विद्वानों ने भी बीजक की ही टीकाएं की और उसी पर जोर दिया। कबीर साहेब एवं धर्म साहेब के संवाद रूप में अनुरागसागर आदि जितनी पुस्तकें बनी है वे तो अन्य साधुओ एव विद्वानों के लिखे हैं। वे कबीर साहेब की रचना हो नही सकतीं। कबीर ग्रंथावली, साखी संग्रह आदि बीजक से सर्वथा अछूते नहीं; किन्तु वे सर्वथा बीजक भी नहीं। बीजक अपने आप में निराला ग्रंथ है और वही सद्गुरु कबीर की प्रामाणिक रचना है।

कबीर साहेब के शरीरान्त के करीब साठ-सत्तर वर्ष बाद प्रसिद्ध वैष्णव भक्तप्रवर श्री नाभादास जी महाराज ने बीजक का ही संकेत करके कहा है "हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।" बीजक के अतिरिक्त कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध किसी पुस्तक मे रमैनी, शब्द एव साखी प्रकरणों का व्यवस्थित क्रम नहीं है। बीजक मे पहला प्रकरण रमैनी है, दूसरा शब्द और शब्द के बाद आठ छोटे-छोटे प्रकरण हैं जो शब्द प्रकरण के अन्तर्गत मान लिये जाते

२. हिन्दी ऋग्वेद की भूमिका, पृष्ठ ११, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड, प्रयाग १९५४।

हैं। इसके बाद अंतिम प्रकरण साखी है। इस प्रकार वैसे बीजक में ग्यारह प्रकरण हैं; परन्तु जहां प्रकरणों को संक्षिप्त करके कहा जाता है वहां रमैनी, शब्द और साखी कहा जाता है।

रीवांनरेश (राज्यकाल विक्रमी १८६०-१६११) ने अपनी बीजक टीका के अन्त मे 'सन्तौ बीजक मत परमाना' लम्बा पद दिया है, जो महत्वपूर्ण है। उसमें अन्त में कबीर साहेब का छाप लगा है। यह पद कबीर साहेब का भले न हो; परन्तु तत्काल पीछे का होना चाहिए। इस पद से यह पता लगता है कि कबीर साहेब के शरीरांत के बाद ही से उनके प्रामाणिक ग्रंथ बीजक से पृथक वाणियों पर जो अनेक लोगों द्वारा प्रक्षिप्तो से भरी गयी थीं कुछ लोग जोर देने लगे थे और उनके भ्रम का खंडन करने के लिए यह पद कहा गया[३]।

गया निवासी श्री रामरहस साहेब (वि० १७८२-१८६६ तथा ई० १७२५-१८०६) अपनी पुस्तक पचग्रंथी में कहते हैं "कबीरपथ में पीछे नानामत हो गये और लोग नाना वाणी एव कल्पनाओं में बहने लगे। वासना का काम ही

३. सायर बीजक को पद—

संतौ बीजक मत परमाना।
कैयक खोजी खोजि थके कोइ विरला जन पहिचाना॥
चारिउ युग और निगम चतुर्भुज गावै ग्रंथ अपारा।
विष्णु विरंचि रुद्र ऋषि गावैं शेष न पावै पारा॥
कोई निगुण सगुण ठहरावैं कोई ज्योति बतावै।
नाम धनी को सब ठहरावे रूप को नहीं लखावै॥
कोउ सूच्छम कोउ थूल कहावै कोउ अक्षर निज साँचा।
सतगुरु कह विरले पहिचानै भूले फिरै असांचा॥
लोभ के भक्ति सरै नहिं कामा साहब परम सयाना।
अगम अगोचर धाम धनीको सबै कहैं ह्वाँ जाना॥
देखै न पंथ मिलै नहिं पंथी ढूँढ़त ठौर-ठिकाना।
कोउ ठहरावै शून्यक कीन्हा ज्योति एक परमाना॥
कोउ कहैं रूपरेख नहिं वाके धरत कौनको ध्याना।
रोम रोम में परगट कर्ता काहे भरम भुलाना॥
पक्ष-अपक्ष सबै पचि हारे करता कोई न विचारा।
कौन रूप है साँचा साहेब नहिं कोई विस्तारा॥
बहु परचे परतीति दृढ़ावै साँचे को बिसरावै।
कलपत कोटि जन्म जुग वागे दर्शन कतहुं न पावै॥

है वहिर्मुखता। परन्तु कबीरपंथ में जहां-जहां एवं जिन-जिन की सद्गुरु कबीर के मौलिक ग्रंथ 'बीजक' में निष्ठा है, वे अपने-पराये एवं चेतन-जड़ का निर्णय ४।"

जहां तक यह बात है कि अनेक सिद्धान्तों को लेकर बीजक पर टीकाएं की गयी हैं, फिर किस टीका को सच तथा किस टीका को झूठ माने। तो महान पुरुषों द्वारा रचे हुए ग्रन्थों में जिसमें पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष का वर्णन हो विविध टीकाकार अपना स्थान बना ही लेते हैं। सर राधाकृष्णन लिखते हैं, "वेदान्तसूत्र के टीकाकारो ने, जिनमें प्रमुख हैं शंकर, भास्कर, यादव प्रकाश, रामानुज, केशव, नीलकंठ, मध्व, बल्देव, वल्लभ तथा विज्ञानभिक्षु एक समान विचारधारा का परिष्कार नही किया और इसलिए इस विषय का निर्णय करना कि इनमें से किसको सूत्र के ठीक-ठीक समझने के लिए पथ-प्रदर्शक माना जाय, सरल कार्य नही है, क्योकि इनकी टीकायें ऐसे समय में लिखी गयी जबकि ये सिद्धान्त अत्यन्त गंभीर संशय तथा वाद-विवाद के विषय बन चुके थे। ये अपनी-अपनी व्याख्याओं का विकास अपने पूर्व निर्धारित मतो के आधार पर ही करते हैं, यहां तक कि कभी-कभी शब्दों के धात्वर्थ तथा स्पष्ट अर्थो को भी दृष्टि से ओझल कर देते हैं, जिससे वे संदर्भ को खींच-खांच कर अपने दार्शनिक सिद्धान्तो की सचाई को सिद्ध करने मे प्रयोग कर सके। सूत्र ऐसे दुर्लभ ग्रंथों में से एक ग्रन्थ है जिसमें से प्रत्येक व्यक्ति को अपना अभिलषित सिद्धान्त अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्त हो सकता है५।"

यही बात कबीरदेव रचित बीजक की है। यद्यपि उसमें स्पष्ट पारख सिद्धान्त है, तथापि पूर्वपक्ष के कुछ ऐसे पद हैं जिनको विविध विचारकों द्वारा उत्तरपक्ष के ही मान लेने से भ्रम उत्पादक हो जाते हैं।

परम दयालु परम पुरुषोत्तम ताहि चीन्ह नर कोई।
तत्पर हाल-निहाल करत है रीझत है निज सोई॥
वधिक कर्म करि भक्ति दृढ़ावै नानामत को ज्ञानी।
बीजक-मतु कोइ विरला जानै भूलि फिरै अभिमानी॥
कह कबीर कर्ता मे सब है कर्ता सकल समाना।
भेद बिना सब भरम परे कोउ बूझत संत सुजाना॥
(रीवांनरेश विश्वनाथ सिंह जी की बीजक टीका, पृष्ठ ६५७—८)

४. जहां जेहि निष्ठा बीजक केरा। अपनि पराई करे निवेरा॥
(पंचग्रंथी, भानुप्रविचार, चौ० २६)

५. भारतीय दर्शन, खंड २, पृष्ठ ४२४।

सद्गुरु कबीर की वाणियों का महत्व उनके जीवनकाल से ही लोग मानने लगे थे और अच्छे-अच्छे संत तथा विद्वान उनकी प्रशंसा करने लगे थे। परन्तु उनकी वाणियों मे परम्परा के प्रति क्रांतिकारी विचार होने से अधिकांश पण्डित समुदाय उनसे कतराता रहा। संसार में अधिक तो यह है कि यदि हम वही बात कहते है जैसे कि आप मानते हैं, तब तो हम आपके लिए अच्छे हैं और यदि हम कुछ स्वतन्त्र बातें कह रहे हैं जिनमें कुछ आपकी मान्यता के अनुकूल नही है, तो आप मुझसे बचना चाहेगे, या विरोध भी करेगे। सद्गुरु कबीर की बहुत सारी बातें स्वतन्त्र हैं, अतएव पंडित समुदाय उनका महत्व समझते हुए भी उनसे सदियों से अपनी आंखें मीचता रहा।

इधर जब कुछ विदेशी विद्वान डा० की, वेस्कट तथा स्वदेशी प्रेमचन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, क्षितिमोहन सेन आदि ने कबीर साहेब के बीजक तथा अन्य प्रचलित वाणियों पर कुछ काम किया तब हिन्दी पंडितों की भी आंखें खुली कि बनारस के कबीर का महत्व दूसरे लोग समझ रहे हैं और हम उनके लिए सोये हैं, यह ठीक नही है। अतएव हिन्दी वाले भी प्रयास करने लगे; किन्तु ये लोग कबीर साहेब के मुख्य ग्रंथ बीजक को न लेकर उनकी ऐसी वाणियों का संग्रह किये जो प्रक्षेपो से भरी हुई है। कबीरपंथ से बाहर के संतो, भक्तों ने जो कबीर साहेब की वाणियो को सुन-सुना तथा तोड़-मरोड़ कर संग्रहीत किये थे और अपने मत के अनुसार पद्य रचना कर उनमें मिला दिये थे, उन्ही वाणियो का विद्वानो ने सग्रह कर लिया, क्योकि कदाचित उनको भी वही अनुकूल थी। अतएव ऐसी मिली-जुली, तोड़ी-मरोड़ी हुई वाणियों का रूप 'कबीर ग्रथावली' तथा 'संत कबीर' नामक आदि संग्रहो में आयी। विद्यालयों में यही वाणिया चलने भी लगी। विद्वानो का प्रयास अच्छा रहा कि उन्होने कुछ नही की जगह पर कुछ किया।

परन्तु पीछे ऐसे भी विद्वान होने लगे, जो बीजक को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए दबे या खुले स्वर में सामने आने लगे। यद्यपि सूर्य पर धूल तो नही पहुचती, वह चमकता ही है; परन्तु उछालने वाला स्वयं धुध से घिर जाने से उसे सूर्य नही दिखता, इसलिए वह मान लेता है कि सूर्य धूल मे ढंक गया। ऐसे विद्वानों ने यही समझ लिया कि बीजक को मै अमान्य किये देता हूं। कबीरपन्थ तथा पंथ के बाहर के संतों एवं विद्वानो द्वारा हिन्दी, संस्कृत, इंगलिश, उर्दू आदि में बीजक की करीब दो दर्जन टीकाएं विविध सिद्धान्त को लेकर हो गयी हैं और होती ही जा रही हैं, सत्य को कोई दबा नहीं सकता। यद्यपि बीजक के बाहर कबीर साहेब के नाम पर प्रचलित वाणियों

में बीजक के पर्याप्त पद आये हैं, परन्तु थोड़ा उच्चारण भेद से या तोड़-मरोड़ कर। सिक्खो के गुरुग्रंथ में कबीर साहेब की वाणियां संग्रहीत हैं, परन्तु वे स्वयं कहते और लिखते हैं कि कबीर साहेब का प्रसिद्ध ग्रंथ बीजक है जो कबीरपंथियों में सर्वमान्य है।

वैज्ञानिक खोज के नाम पर कभी-कभी रिसर्चस्कालर सत्य की आत्मा का हनन कर देते हैं। बीजक, जो कबीर साहेब का मुख्य ग्रंथ है, उसको अप्रमाणित करने के लिए कुछ विद्वानों ने प्रयास किया है। डा० पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर ग्रंथावली' का संपादन करके प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की है। उसमें आपने बीजक को निरस्त करने का पूरा प्रयास किया है।

आप लिखते हैं "बीजक में पुनरावृत्तियां बहुत पायी जाती है।" किन्तु इसलिए उसे संदेह की दृष्टि से नही देखा जा सकता। वेदो के मंत्र उपनिषदों में तथा उपनिषदों के मंत्र गीता में है, सो तो हैं ही; एक उपनिषद का मंत्र दूसरे उपनिषद में है। जैसे श्वेताश्वतर उपनिषद का मंत्र ३/२० ही कठोपनिषद के १/२/२० में है। वही मंत्र कठ २/२/१५ में, श्वेताश्वतर ६/१४ मे तथा मुडक २/२/१० में एक समान है। यहां तक कि श्वेताश्वतर का ४/१४ मंत्र थोड़ा भेद करके इसी में पुनः ५/१३ में है।

डा० तिवारी ने केवल उन बीस (२०) रमैनियों को प्रामाणिक माना है जो प्रायः दादूपंथी तथा निरंजनी सम्प्रदाय की प्रतियों में प्राप्त है। आपने उनकी टीका करके बताया है कि इन्हीं की संगति बैठती है और इनमे हम यदि बीजक की अन्य (६४) रमैनियां रख दे, तो उनके अर्थ का क्रम ही टूट जाता है और सारा तारतम्य ही नष्ट हो जाता है। अर्थ यह है कि डा०तिवारी जितने अभिप्राय वाली रमैनिया चाहते हैं, उतने पर ही कबीर साहेब का कथन होना चाहिए। यदि उससे बाहर है, तो उन्हें पसन्द न होने से वे मान्य नही। यह कितना एकांगी चिंतन है!

साखी प्रकरण जो बीजक में अंग-विभाजन रहित स्वाभाविक है, उसे तो डा० तिवारी ने स्वीकार नही किया है, किन्तु जो बीजक से पृथक साखियों का संग्रह है, जिसमें कबीर साहेब के स्वर के साथ प्रक्षिप्त स्वर भी मिलते हैं और अंगविभाजन पूर्वक जो गढ़-तराश दिया गया है, उसे आपने प्रमाण माना है।

डा० तिवारी लिखते हैं कि बसावल, रचल, पूछल आदि शब्द बनारस के पास के हैं, यह तो ठीक है, परन्तु 'तोहरा को' 'अछनो' 'राउर' 'गतहत' आदि बिहार के शब्द हैं। अतः बीजक का संग्रह शायद पहले बिहार में हुआ

होगा, क्योंकि वहां के प्रयोग बीजक में सांस की तरह समाये हुए हैं। परन्तु इतना ही क्या बीजक में छत्तीसगढ़ी के शब्द 'अमरे' 'बोहावे' आदि तथा गुजराती के शब्द 'मोहड़े' आदि, इसी प्रकार भारत के अनेक प्रान्तो के शब्द एवं प्रयोग सांस की तरह समाये हैं। फिर बीजक का संग्रह किस-किस प्रांत में हुआ ? आश्चर्य तो यह है कि डा० तिवारी जी पचास से अधिक बनारस के पास के शब्द बीजक से संग्रह करते हैं तथा बिहार के केवल करीब एक दर्जन, तो भी वे बीजक का संग्रह बनारस के पास न मानकर बिहार में होने का पक्ष करते है। वस्तुत: कबीर साहेब भ्रमणशील पुरुष थे। वे जहां गये कुछ दिनों तक रहे, अत: वहाँ की बोली और प्रयोग उनकी वाणी में आ गये। जहां वे अधिक रहे, वहां के अधिक आये, जहा कम रहे, वहां के कम आये।

डा० पारसनाथ तिवारी ने एक बात यह भी उठायी है कि "हाफिज मुहम्मद खां सिरानी के मत से बंदूक कबीर के युग में नही मानी जा सकती।" इसका तात्पर्य यह है कि बीजक की ६९ वी रमैनी जिसमें 'नारद कब बंदूक चलाया' है, कबीर साहेब की रचना नही हो सकती। इसके समाधान में यहां कुछ विवेचन देना है।

शोधकर्ता जब तत्संबंधित विषय की खोज करने का पूरा परिश्रम किये बिना अपना स्टेटमेंट देने लगता है, तब निश्चित है उसके द्वारा समाज में भ्रम फैलता है। हाफिज मुहम्मद खां सिरानी का यह मत कि कबीर के युग में बंदूक नहीं हो सकती, इतिहास के एक ज्वलंत अज्ञान को प्रकट करता है।

यह इतिहाससिद्ध बात है कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व चीनियो द्वारा बारूद (गन-पाउडर) की खोज कर ली गयी थी। कबीर साहेब का जन्म सन १३९८ तथा मृत्यु सन १५१८ ई० है, और इसके बहुत पहले १३२४ से १३४६ ई० तक यूरोप में कई बार लड़ाई में बंदूक का प्रयोग हो चुका था। सबसे आकर्षक विषय तो यह है कि जब कबीर साहेब करीब ५२ वर्ष की प्रौढ़ अवस्था में काशी में साधना, उपदेश तथा अपनी काव्यरचना कर रहे थे काशी के पास जौनपुर में बंदूक से लड़ाई हुई थी। इस घटना के करीब ६८ वर्ष के बाद उनका शरीरांत हुआ है। जगत प्रसिद्ध एनसाइक्लोपेडिया (विश्वकोश) तथा भारतीय विद्वान के० के० दत्ता के उद्धरण नीचे सानुवाद दिये जा रहे हैं।

Every Man's Encyclopaedia : Vol. 6 : Page 27. Article : Gunpowder.

"It is thought that the Chinese may have invented Gunpowder many centuries before Christ, and that the secret eventu-

ally spread to Central Asia from where it was brought to Europe in the mid 13th century by the Arabs. Combustible substances based on Saltpetre were known as early as 668 A. D. (see Greek Fire), and missiles pro ducing a 'roar and a flash or described as' Flying Fire were used by the Muslims in Spain in 1257. and the Tartars (Mongols) in the Battle of Legnica in 1241. by the Moors in the Seige of Alicante in 1331. in Venice in 1326. at Creecy in 1346.

ऐवरीमेन्स एनसाइक्लोपेडिया, भाग ६, पृष्ठ २७ गनपाउडर संदर्भ में बताया गया है—

"यह समझा जाता है कि चीनियों ने गन पाउडर (बारूद) का आविष्कार शायद ईसा से कई शताब्दी पहले कर लिया था। और यह रहस्य क्रमश: मध्य एशिया में फैल गया, जहां से यह यूरोप में अरबों द्वारा तेरहवीं ईसा शताब्दी के मध्य में लाया गया। शोरे के ऊपर आधारित जलने वाले पदार्थों का ज्ञान ६६८ ई० के लगभग मौजूद था (ग्रीक फायर को देखिये); और मिसाइल्स जिससे आवाज और चमक दोनों होती थीं जिनको फ्लांइग फायर कहा जाता था, मुसलमानों द्वारा स्पेन मे १२५७ मे, टारटारो (मगोलो) द्वारा लेग्निका की लड़ाई में १२४१ में, मूरों द्वारा अलीकांटा के घिराव में १३३१ मे, वेनिस मे १३२६ में और क्रीसी में १३४६ ई० में व्यवहार किया गया था।"

The New Encyclopaedia Brittania : Volume 8. Page 488 : Aricle : Gunnery.

"It was not introduced into Europe before the first decade of the 14th century. Although it, or some similar explosive seems to have existed in China before then. The first gun made by a monk, Berthold Schwarz, and it was used in the seige of Metz in 1324 and at Cividale in Italy 1331. The English, under Edward III at Creecy in 1346, used it."

दि न्यू एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिया, भाग ८, पृष्ठ ४८८, गनरी संदर्भ मे बताया गया है—

"यूरोप में इसका प्रचलन १४ वीं शताब्दी के प्रथम दश वर्षों में नहीं हुआ था, जबकि ऐसा मालूम होता है कि यही या इसी प्रकार के कुछ विस्फोटक

पदार्थ इसके पहले से चीन में मौजूद थे। पहली बंदूक बर्थोल्ड स्वार्ज नामक एक साधु ने बनायी थी तथा उसका उपयोग सन १३२४ ई० नेट्ज के घिराव में तथा इटली के सिविडेल में सन १३३१ ई० में हुआ था। अंग्रेजों ने भी एडवर्ड तृतीय के राज्य में क्रीसी में सन १३४६ ई० में इस (बंदूक) का व्यवहार किया था।"

Dr. S. C. Sarkar & Dr. K. K. Dutta writes in Text Book of Modern India P P. 19

"Gunpowder and artillery were in use in Indian States from the middle of the 15th century. If not earlier (e. g. in Jaunpur about 1450) : Native Assamese accounts claim for Assam the first use of Gunpowder in India."

डा० एस० सी० सरकार तथा डा० के० के० दत्ता टेक्स्ट बुक ऑफ माडर्न इंडिया, पृष्ठ १९ में लिखते हैं—

"बारूद और बंदूक भारत की रियासतों में यदि पहले से नहीं तो भी पंद्रहवी ईसा शताब्दी के मध्य से व्यवहार में ली जाती थी (जैसा कि जौनपुर में करीब १४५० ई० में)। आसाम के निवासियो का दावा है कि भारत में बारूद का व्यवहार सबसे पहले आसाम मे हुआ।"

इस प्रकार सद्गुरु कबीर ने ही अपने बीजक की रमैनी में कहा— "नारद कब बंदूक चलाया।" क्योंकि वे बन्दूक से अच्छी तरह परिचित थे। अतः उक्त पंक्ति को प्रक्षिप्त बताना इतिहास की गहरी अनभिज्ञता है।

"हिन्दू कहते है हमारी लाश को जलाओ तथा मुसलमान कहते हैं हमारे पीर हैं। किन्तु हंस कबीर तटस्थ होकर इस द्वन्द्व को देखते है। वे इस पचड़े में नही पड़ते[६]।" इन पंक्तियो को भी प्रक्षिप्त मानना अनुचित है। यहां हिन्दू-मुसलिम की धारणाओ की व्यर्थता पर प्रकाश डालते हुए कबीरदेव कहते हैं कि हिन्दू लाश को जलाने को कहते हैं तथा मुसलमान कहते हैं कि हमारे पीरो का कथन है कि लाश दफनाना चाहिए। परन्तु विवेकी पुरुष इन दोनो मे से किसी एक को ऊंचा तथा दूसरे को नीचा नही समझते, किन्तु जब जैसा अवसर हो वैसा किया जा सकता है। जो उच्च दृष्टि से सर्व सामान्य के लिए बात कही गयी हो, ग्रथकर्ता के जीवन पर ही आरोपित करना व्यर्थ है। यदि

६. हिन्दू कहैं हमहि लै जारौं, तुरुक कहै हमारो पीर।
दोऊ आय दीन में झगरे, ठाढ़े देखें हंस कबीर॥ (बीजक, शब्द ९०)

कबीर साहेब के जीवन पर ही आरोपित करना हो, तो यह माना जा सकता है कबीर साहेब के बुढ़ापा में हिन्दू और मुसलमान दोनों इसकी चर्चा करने लगे हों कि कबीर साहेब की देह पर हमारा ही स्वत्व है, तब कबीर साहेब ने कहा हो कि दीन-दुनिया का झगड़ा व्यर्थ है। मैं तो इसमें तटस्थ हूं। और ऐसी बात कविता के रूप मे उनके मुख से निकल गयी हो जिसे शिष्य बीजक में जोड़ दिये हों, वैसे उपर्युक्त सर्वसामान्य वाला अर्थ उत्तम है।

बीजक में 'पीपा[७]' भक्त का नाम आया है तथा पीपा ने भी कबीर[८] साहेब का नाम अपने पद में लिया है। पीपा ने कबीर साहेब का नाम श्रद्धा से लिया है तथा कबीर साहेब ने पीपा को कहा कि उनको भी काल ने नही छोड़ा। कबीर साहेब तथा गागरोनगढ़ के राजा पीपा समकालिक थे। पहले पीपा का शरीर छूट चुका होगा। वे भी प्रसिद्ध भक्त और राजा थे। उनके शरीर की नश्वरता पर कबीर साहेब ने कहा कि उनको भी काल ने नही छोड़ा। या उनकी भ्रांति पूरी न मिटी होगी, इसलिए भी कबीर साहेब उन्हे कह सकते है कि पीपा की कल्पना नही छूटी थी।

यदि कबीर साहेब के पद के अंश या पद बखना (दादू पंथी), रैदास, सूरदास, निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट, संत दादू आदि की रचनाओं में मिलते हैं, तो उसका यह तो अर्थ नही होता कि इनकी वाणियां में से बीजक मे पद या पदांश गये हैं, क्योंकि ऊपर के जितने नाम लिये गये है सब कबीर साहेब के बाद हुए है। अतः वास्तविकता यह होगी कि कबीर साहेब के प्रसिद्ध बीजक से कुछ पद व पदांश लिपिकारों द्वारा परवर्ती लेखको की वाणियों मे आ गये हैं। इस पर तो डा० तिवारी ने भी संदेह किया है कि हो सकता है कि बीजक मे से ही पीछे के कवियों की वाणी मे पद आये हो।

डा० तिवारी लिखते हैं "मैं नही जानता कि संसार के और किस कवि या लेखक की रचनाओं की समस्त प्रतियों मे समान रूप से प्राप्त और पुनः उनमें पृथक-पृथक सामूहिक अथवा स्वतत्र रूप से प्राप्त छन्दों की संख्या मे इस कोटि की विषमता होगी जितना कबीर के सम्बन्ध में दिखायी पड़ती है[९]।"

७. बीजक, शब्द ८६, पीपा और पहलादा।

८. जो कलि मांझ कबीर न होते। तौ ले वेद अरु कलियुग मिल करि भगति रसातल देते''' नाम कबीर सांच परकाशा तहं पीपै कछु पाया॥
(संत कबीर, पृष्ठ ५)

९. कबीर ग्रंथावली, प्रस्तावना, पृष्ठ ३।

पंडित बलदेव उपाध्याय वेदान्तदर्शन पर लिखते हुए कहते हैं "इन भाष्यों में सिद्धान्तों का ही फर्क नहीं है, बल्कि सूत्रो और अधिकरणों की सख्या में भी बड़ा अन्तर है। शंकर के अनुसार सूत्रो और अधिकरणों की संख्या क्रमशः ५५५ और १९९ है, रामानुज मत में ५४५ और १६०, माध्व मत में ५६४ और २२३, निम्बार्क मत में ५४९ और १६१, श्रीकंठ के अनुसार ५४४ और १८२, तथा वल्लभ मत में ५५४ और १७१ है[१०]।" कई प्रसिद्ध प्राचीन ग्रंथों में अनेक हाथ लगने में ऐसा हो गया है।

आजकल बाल्मीकीय रामायण के तीन पाठ प्रचलित है—दाक्षिणात्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरी। यद्यपि इन तीनों पाठों में कथानक के दृष्टिकोण से बहुत अंतर नहीं है, किन्तु जो श्लोक तीनों पाठों में पाये जाते हैं, वे एक तिहाई से भी कम हैं। इसके अतिरिक्त इनका पाठ भी पूर्णतया एक नही है[११]।

जब हम कबीर साहेब के नाम पर मिलने वाली बाहरी रचनाओं पर विचार करते हैं, तब ऐसा लगता है कि उनकी वाणियों मे बड़ा पाठभेद एवं अनेक रूपता है; जैसे कबीर ग्रथावली एव डा० रामकुमार वर्मा–संपादित 'संत कबीर' आदि। परन्तु बीजक मे ऐसी बात नही है। श्री पूरण साहेब, श्री राघव साहेब, श्री विचार साहेब आदि द्वारा संपादित बीजक के प्रसिद्ध पाठ एक रूप हैं तथा बीजक के अन्य अनेक संस्करणो मे भी अधिकतम एकरूपता है। पारख प्रकाशक कबीर संस्थान के तत्त्वावधान मे आयोजित कबीर विचार-गोष्ठी मे (२० अक्टूबर १९८० को) डा० रामकुमार वर्मा ने अपने भाषण के दौरान कहा था कि सद्गुरु कबीर की अन्य सग्रहीत वाणियो में एकरूपता नही है। उनमें तो कोई ठिकाना नही है। हां, बीजक मे एकरूपता है। डा० वर्मा का मूल वचन इस प्रकार है "उनका बीजक ग्रथ मात्र ऐसा है जिसके रूप में विकृति नही हुई है। लेकिन उनकी वचनावली और ग्रंथावली जो कि हमारे सामने आयी है उनमे कितना रूपान्तर हुआ है इसको डा० माताबदल जायसवाल जानते हैं, क्योंकि उन्होने कबीर की भाषा पर बहुत बड़ा काम किया है और उन्होने एक ग्रंथ भी कबीर की भाषा पर लिखा है।"

डा० शुकदेव सिंह ने, जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक प्रतिष्ठित प्रोफेसर हैं, मूल बीजक का संपादन किया है और उसमे आपने एक विस्तृत भूमिका दी है। आप लिखते हैं—

१०. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४०९।

११. रामकथा, पृष्ठ ७३८; फादर कामिल बुल्के।

"बीजक न केवल अन्यतम कबीरपंथी साहित्य है, बल्कि प्रामाणिक कबीर साहित्य भी है। कबीरपंथ का इसे 'वेद' या 'स्वसंवेद' भी कहा जा सकता है।"

(बीजक, भूमिका पृष्ठ १)

"वस्तुतः 'बीजक' कबीरपंथ का आर्ष ग्रंथ है। इसका संकलन और प्रचार कबीर के अनुयायियों के द्वारा हुआ है। इसीलिए इसे दर्शनग्रंथ मानकर दार्शनिक टीकाएं भी लिखी गयी हैं। बीजक की टीकाए सृष्टि, तत्व, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य देह की व्याख्या से भरी हुई हैं। टीकाकारों ने कहा है कि कबीर ने षट्दर्शनी वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का ध्यान नहीं रखा और बिना किसी पक्षपात के, सब के शुभ के लिए कहते है।"

(बीजक, भूमिका पृष्ठ ५४)

"इस प्रकार कबीर 'बीजक' कबीर-साहित्य की उस व्यापक भूमिका की सृष्टि करता हुआ दीख पड़ता है जिसके निर्माण में कबीर का व्यक्तित्व धीरे-धीरे घुल कर व्यक्ति नाम से मिशन बन गया और जो प्रायः साढ़े चार सौ वर्षों तक उनके अनुयायियों का आर्ष ग्रंथ बनकर कबीरपंथी आचार्यों की टीका-टिप्पणी, विश्लेषण तथा संप्रदाय निर्माण का हेतु रहा। वस्तुतः 'बीजक' को अन्यतम कबीर साहित्य के रूप में प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिए। क्योंकि यह प्रायः निर्विवाद सत्य है कि कबीर का अधिकांश जीवन काशी अथवा उसके आस-पास के प्रदेशों में व्यतीत हुआ, अतः उनकी भाषा में पूर्वी प्रयोगों की प्रचुरता स्वाभाविक ही है।"

(बीजक, भूमिका पृष्ठ ६४)

डा० जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह लिखते हैं—"इधर डा० शुकदेव सिंह ने 'बीजक' पर नया कार्य किया है। इसे साहित्यिक क्षेत्र में किया गया प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। उन्हे बीजक के सम्बन्ध में डा० तिवारी के निष्कर्ष मान्य नहीं है[१२]।" डा० जयदेव सिंह तथा वासुदेव सिंह पुनः लिखते है—"बाबू श्यामसुन्दर दास तथा अन्य विद्वानों द्वारा 'कबीर ग्रंथावली' के संपादन-प्रकाशन का परिणाम यह हुआ कि साहित्यिक क्षेत्र में पदों और साखियों का ही अधिकाधिक प्रयोग हुआ और विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इन्हीं को स्थान मिला। बीजक प्रायः उपेक्षित रहा, जबकि कबीरपंथियों में बीजक ही अधिक मान्य ग्रंथ रहा है, उसे पंथ का वेद माना जाता है। अमृतसर के गुरुद्वारे के कबीरपंथी भगत 'बीजक' का ही पाठ

१२. कबीर वाङ्मय, खण्ड १, उपोद्घात पृष्ठ ११।

करते हैं। कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सारतत्व 'बीजक' में ही उपलब्ध होता है। 'बीजक' का अर्थ ही है—गुप्तधन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है—

बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय।
शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥
(रमैनी ३७)

"जो वित्त या धन गुप्त होता है अर्थात कही पृथ्वी मे गाड़ कर या अन्यत्र छिपाकर रखा जाता है, उसका पता केवल उसके 'बीजक' से ही लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्तधन को अर्थात वास्तविक स्वरूप को शब्द रूपी बीजक (गुरुद्वारा प्रदत्त ज्ञानदीक्षा) बतलाता है। कबीर का प्रमुख साहित्य—रमैनी, साखी और शब्द (पद) बीजक मे उपलब्ध है। कबीर ने बीजक(रमैनी) में सृष्टि, मोक्ष, मनोमाया, माया से सावधानी, भवपंथ के कष्टों, संसार की असारता, सत्यानुभव, ज्ञानभूमिका, देवादि-मोह विडंबना, सत्संग महिमा, आसक्ति से ज्ञान की दुर्लभता, सद्गुरु महिमा, भक्ति महिमा आदि का विशद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुन्दर सामंजस्य 'बीजक' की अन्य विशेषता है। कबीर के सिद्धान्त साधना एवं काव्य-वैशिष्ट्य पर विस्तार से स्वतन्त्र रूप से लिखा जायगा। यहां हम केवल इतना संकेत करना चाहते हैं कि अब तक कबीर वाणी के इस महत्वपूर्ण अंश पर साहित्यकारो द्वारा अपेक्षित विचार का अभाव वस्तुतः कबीर के साथ अन्याय ही कहा जायगा[१३]।"

१०

बीजक में चारमुख वाणी तथा उसके पारिभाषिक शब्द

सम्पूर्ण बीजक सद्गुरु कबीर के मुख से निकला है, परन्तु कौन-सी वाणी किस अभिप्राय में कही गयी है, यह बात विचारणीय है। जैसे वे कहते हैं "मैं सृजन करता हूं, मैं मारता हूं, मैं जला देता हूं, मैं सबको खा जाता हूं, मैं जल-थल—सर्वत्र रम रहा हूं, मेरा नाम निरंजन है[१]।" इस उद्धरण से यह

१३. कबीर वाङ्मय, उपोद्घात, पृष्ठ ८, ९।

१. मैं सिरजौं, मैं मारौं, मैं जारौं मैं खांव।
जलथल महियां रमिरहौं, मोर निरंजन नांव॥ बीजक, रमैनी, साखी २१॥

लगता है कि कबीर साहेब अद्वैत ब्रह्मवादी हैं और वे अद्वैत ब्रह्म की बात कर रहे हैं। मानो वे स्वयं उस ब्रह्मवाद की मस्ती में मस्त होकर कह रहे हों कि मैं ही सृजन, परिवर्तन, प्रलय तथा अपने में सबको लीन कर लेता हूं। परन्तु इसके आगे की रमैनी में वे तुरन्त बोल पड़ते हैं "इस अलख निरंजन की कोई परख नहीं करता है जिसके बन्धन में सब लोग बंधे हैं। इस प्रकार जिस झूठी धारणा में सब भोले लोग बंधे हैं, उस झूठे वचन को वे सच्चा करके मान रहे हैं[२]।"

इससे यह साफ जाहिर हो जाता है कि इक्कीसवीं रमैनी की पंक्तियां पूर्वपक्ष की बात बताती है तथा बाइसवीं रमैनी की पंक्तियां उत्तरपक्ष की। यहीं ब्रह्ममुख और गुरुमुख वाणी का भेद खुल जाता है। "मैं सिरजौं मैं मारौं....." साखी ब्रह्ममुख वाणी है तथा "अलख निरंजन लखै न कोई........." गुरुमुख वाणी है। इस प्रकार बीजक के प्रसिद्ध टीकाकार श्री पूरण साहेब ने जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख तथा गुरुमुख—बीजक में चार प्रकार के अर्थों वाली वाणी मानी है। उनके पहले होने वाले श्री रामरहस साहेब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पंचग्रंथी में उन्हीं वाणियों को क्रमशः काल, सन्धि, झांई एवं सार के नामों से कहा है। कबीरमठ बनौती की हस्तलिखित बीजक टीका मे पूर्वपक्ष को वक-मुख तथा उत्तरपक्ष को हसमुख कहा है। इसको परायत तथा अपनायत भी कहा है। रीवांनरेश ने अपनी टीका में कहा है कि कबीर ने अपनी उक्ति, साहेब की उक्ति, माया की उक्ति, जीव की उक्ति एव ब्रह्म की उक्ति से कही है[३]।

कबीर देव ने अनेक मतों को परखाने के लिए बीजक में उनकी बातें कही है। उन सबको कबीर का मत मान लेना भूल है। शास्त्रों में भी पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष होता ही है। रूपकथन, अतिशयोक्तिकथन एवं स्वभावकथन की शैलियां चलती ही हैं। रामचरित मानस की भी अर्थसंगति बैठाने के लिए रामायणी लोग उसमें चितविलास, रमाविलास, वाक्‌विलास तथा आत्मविलास कथन के भेद मानते है।

कुल मिलाकर पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष का भेद जाने बिना बीजक से सही सिद्धान्त निकालना कठिनतर कार्य है। बीजक को पारखी संतो ने

२. अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बंधे बंधा सब लोई॥
जेहि झूठे सब बांधु अयाना। झूठा वचन सांच कै माना॥
(बीजक, रमैनी २२)

३. आदि मंगल, पृष्ठ ७२।

समझना चाहिए—"भूल मिटै गुरु मिलै पारखी........." या "पारखी से संग करू.........।"

हर शास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्द होते हैं जो आम जनता की जानकारी से एक पृथक अर्थ रखते हैं। पारिभाषिक शब्द के समानार्थी शब्द लाक्षणिक-सांकेतिक हो सकते हैं। बीजक में भी पारिभाषिक शब्द हैं जैसे पारख, खानी, वाणी आदि। पारख का अर्थ परीक्षा, ज्ञान एवं परख है। चेतन का वास्तविक स्वरूप ही पारख एवं ज्ञान है। शरीर, घर, परिवार, धन आदि मोटी माया 'खानी जाल' है तथा मन से कल्पित देवी-देवादि व राग-द्वेष, मान बड़ाई आदि 'वाणी जाल' है। कबीर देव ने खानी और वाणी—दो प्रबल बन्धन माना है, यथा "खानी-वाणी खोजि देखहु अस्थिर कोई न रहाय[४]।" इन्हीं खानी तथा वाणी को क्रमशः भंवरजाल तथा बकुजाल भी कहा है[५]।

कबीर, कबीरा तथा कबिरन आदि शब्दों का प्रयोग सामान्य जीवों के लिए भी किया गया है। यथा "कबिरन ओट राम की पकरी अन्त चले पछिताई[६]।" तथा "कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय[७]।" पद्य में रचयिता अपना नाम बैठाने के लिए भी नाम का अपभ्रंश करता है।

बीजक में 'हरि' शब्द कहीं विष्णुवाचक है, कहीं गुरुवाचक, कहीं ज्ञानवाचक तथा अधिकांशतः मायावाचक है। जैसे "हरि बिन बूड़ी नाव भरोसो[८]।" यह गुरु तथा ज्ञानवाचक है। "हरि हीरा जन जौहरी[९]" यह ज्ञानवाचक है। "हरि ठग ठगत" तथा "अब हम जानिया हो हरि बाजी को खेल" व "कहहिं कबीर ये हरि के काज, जोइया के ढिग रहि कौने लाज[१०]।" यहां सब 'हरि' शब्द मायावाचक है।

यहां हरि शब्द का अर्थ विविध देखकर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं। कोशकारो ने हरि के दर्जनों अर्थ किये हैं। वैदिक ग्रंथों गीता आदि में आत्मा का अर्थ देह, मन, इन्द्रिय, जीव, ईश्वर, ब्रह्म—ये सब हैं।

इसी प्रकार 'बोली हमारी पूर्व की' तथा 'पूरब दिशा हंसगति होई' इत्यादि का अर्थ भी लाक्षणिक है। जब वे कहते है "हमारी बोली पूर्व की है।

४. बीजक, हिंडोला १/११।　　५. बीजक, साखी ६२।
६. बीजक, शब्द ८४।　　७. बीजक, साखी २५१।
८. बीजक, विप्रमतीसी १।　　९. बीजक, साखी १६६।
१०. बीजक, शब्द ३६, ३७, ७८, बसन्त ६।

हमें वही समझ सकेगा जो निश्चयपूर्वक पूर्व का होगा[११]।" तब साधारण आदमी और विद्वान भी यही समझ लेते हैं कि कबीर की बात वही समझेगा जो पूर्व की बोली, अर्थात बनारस की बोली जानता होगा; परन्तु यह छिछिला विचार है। बनारस पूर्व कैसे है? यदि कबीर साहेब पंजाब में भाषण कर रहे हों तो निश्चय ही यह कह सकते है कि बनारस पूर्व है; परन्तु यदि वे बङ्गाल में बोल रहे हो तो बनारस को पश्चिम कहना पड़ेगा। इसी प्रकार मद्रास से उत्तर एवं नेपाल से दक्षिण। अतएव यहां कबीर देव का गूढ़ अभिप्राय है।

पूर्व का अर्थ पूर्व नरजन्मों के शुद्ध संस्कारों से संस्कारित है अथवा पूर्व से अर्थ ज्ञान से है। सूर्य जिधर उगता है, उसे पूर्व कहते हैं। सूर्य उजाला रूप होने से वह ज्ञान का प्रतीक है। अतएव अर्थ हुआ कि 'हमारी बोली अध्यात्म-ज्ञान से पूर्ण है' इसे वही समझ सकता है जो निश्चयपूर्वक ज्ञानमार्गी होगा।

इसी प्रकार बीजक में पारिभाषिक शब्द और भी हैं जिनका अच्छी तरह मर्म जान कर ही बीजक के अर्थ करने में प्रविष्ट होना चाहिए।

११

उल्टवासियां

सद्गुरु कबीर ने अपनी वाणियों में उल्टवासियां कही है, जो सहसा देखने में उल्टे अर्थ वाली प्रतीत होती है; परन्तु अर्थ उनके सीधे है। उल्टवासी को हम 'उल्टवा' तथा 'सी' दो पदो का जोड़ मान सकते है। 'उल्टवा' का अर्थ 'उल्टी हुई' तथा 'सी' का अर्थ 'समान' अर्थात उल्टी हुई बात के समान लगे तो, परन्तु उल्टी न हो। संसार के लोग अपने हितमार्ग को छोड़कर उल्टे अहित मार्ग में जा रहे हैं और वे सीधे तौर से समझाने पर भी सही मार्ग में नही आ रहे हैं। अतः कबीरदेव उनको व्यंगात्मक ढंग से संबोधित कर रहे हैं जो ऊपरी तौर पर देखने से उल्टे अर्थों वाली बातें लग रही हैं। जैसे कोई ज्वरग्रस्त व्यक्ति समझाने पर भी मिठाई खाना नही छोड़ता हो तो उसका हित चाहने वाला उसे व्यंग में कहे "हा ठीक है, मिठाई खूब खाओ, यह बुखार का दूर कर देगी।" तो यह सुनने मे उल्टवासी है; परन्तु जो समझ सके उसके लिए

११. बोली हमारी पूर्व की, हमें लखे नहिं कोय।
हमको तो सोई लखे, जो धुर पूरब का होय॥ बी० साखी १८४॥

अर्थ सीधा और मार्मिक है। कबीर साहेब की उल्टवासियां समझदारों के दिलों में गहरी चोटें पहुंचाती हैं और मोह तथा भ्रांतियों को तोड़कर अलग रख देती हैं।

वे कहते हैं "चूहा और बिल्ली एक साथ कैसे रह सकते हैं? हे संतो, एक आश्चर्य देखता हूं कि हाथी सिंह को खा रहा है। अर्थात कुसंग में रहकर जीव का कल्याण कहां है? आश्चर्य है मन समर्थ जीव को भटका रहा है[1]। हे ब्रह्मवादी! जरा ब्रह्मवाद पर पुनः विचार कर लो। तुम उमड़-घुमड़ कर ब्रह्मोपदेश की बारिश करते हो, परन्तु किसी को उसके छीटें भी नही पड़ रहे हैं। क्योंकि तुम्हारे मत से आत्मा एक है। अतः यदि किसी को भी तुम्हारा बोध होकर एक आत्मा का मोक्ष हो गया होता तो विश्व का कल्याग हो गया होता और यह जगत प्रपंच न होता; परन्तु प्रत्यक्ष जीव दुःखो में जल रहे है। जब जगत ही ब्रह्म है तब ब्रह्म बनने से जगत-दुःखों से छुटकारा कैसे होगा? अतएव यह अद्वैतवाद का तुम उपदेश क्या दिये, चीटी के पैर में हाथी बांध दिये, बकरी की रक्षा में भेड़िया बैठा दिये, मछलियों के जीवन कल्याण के लिए उन्हें समुद्र में से निकालकर मैदान में उनका घर बनवा दिये, मेंढक तथा सर्प को एक साथ कर दिये, बिल्ली श्वान पैदा करने लगी, सिंह नित्य सबेरे उठकर सियार से डरने लगा। यह आश्चर्य कहा नही जाता, यह तो बिना पर-पख के आकाश में उड़ना है। सच है व्यक्ति को अपना विनाश नही सूझता[2]।"

इसी प्रकार कबीर साहेब की जितनी उल्टवासियां हैं, सभी व्यंगात्मक हैं और उल्टे लोगों को उल्टे ढंग से पकड़ने का यह उनका अद्भुत प्रभावात्मक

१. बीजक, रमैनी—साखी ७२।

२. बूझ लीजै ब्रह्मज्ञानी ॥१॥

घूरि घूरि बरसा बरसावै, परिया बुन्द न पानी ॥२॥
चिउँटी के पग हस्ती बाँधो, छेरी बीग रखावै ॥३॥
उदधि माह ते निकरि छाँछरी, चौड़े ग्रह करावै ॥४॥
मेढ़ुक सर्प रहत एक संगे, बिलैया श्वान बियाई ॥५॥
नित उठि सिंह सियार सों डरपै, अद्‌बुद कथ्यो न जाई ॥६॥
कौने संशय मृगा बन घेरे, पारथ बाणा मेले ॥७॥
उदधि भूप ते तरिवर डाहै, मच्छ अहेरा खेले ॥८॥
कहँहि कबीर यह अद्‌बुद ज्ञाना, को यह ज्ञानहिं बूझै ॥९॥
बिनु पंखे उड़ि जाय अकाशै, जीवहिं मरण न सूझै ॥१०॥

(बीजक, शब्द ५२)

तरीका है। उनके विचार एवं सिद्धान्त को सत्संग तथा अध्ययन से जान लेने के वाद उल्टवासियों का अर्थ लगाना कठिन नहीं रह जाता। जहां तक भिन्न अर्थ करने की बात है, जब शास्त्रीय शब्दों में व्याख्याता धड़ल्ले से भिन्न और विचित्र अर्थ करते हैं, तब उल्टवासियों का, जिनकी शब्दयोजना शास्त्रीय न होकर बुझव्वल तथा आलंकारिक है, भिन्न अर्थ करना सरल है; परन्तु ईमानदारी से विवेक करने पर उनके अर्थ छिपे नहीं रहते।

ऐसे बुझव्वल तथा उल्टवासी वेदों में भी मिलते हैं। ऋषि कहते हैं "एक बैल है जिसके चार सींगें हैं, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से बंधा हुआ रोता है और यह देव मनुष्य में प्रवेश करता है[३]।" यहां यज्ञ ही बैल है। चारों वेद उसके चार सींग हैं। प्रातः, मध्यान्ह और सायं सवन (सोम निचोड़ना या पीना) तीन पैर हैं। प्रायणीय तथा उदयनीय (यज्ञभेद) ये दो सिर है। गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती—ये सात छन्द सात हाथ हैं। यह मंत्र, ब्राह्मण और कल्पसूत्र ग्रंथ रूप तीन बन्धनों से बंधा हुआ रोता है। यह यज्ञ रूप महानदेव मरणधर्मा मानव में प्रवेश करता है। ऋषि और भी कहते हैं कि "नदियां बहती हैं और जल स्थिर रहता है[४]।"

१२

मसि कागद छूवों नहीं

सद्गुरु कबीर ने कहा "मैंने स्याही और कागज नहीं छूये और न लेखनी हाथ मे पकड़ी; परन्तु जिस सत्य का महत्व चारो युगों (सब समय) में है, उसको अपने मुख से कह कर बता दिया[१]।" इसको लेकर कितने आलोचक कहने लगते हैं कि कबीर तो पढ़ना-लिखना जानते नहीं थे। बीजक किसी दूसरे का बनाया है। कहा जाता है महाभारत लिखते समय वेदव्यास जी भी

३. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश॥
(ऋग्वेद ४, ५८, ३)

४. ऋग्वेद ४, ५, ४७, ५।

१. मसि कागद छूवों नहीं, कलम गहों नहि हाथ।
चारिउ युग का महातम, कबीर मुखहि जनाई बात॥ बीजक, साखी १८७॥

कलम, कागज और स्याही नहीं छूये थे। वेदव्यास जी बोलते थे और गणेश जी लिखते थे। तो क्या यही कहा जायगा कि वेदव्यास जी पढ़े-लिखे नहीं थे। हमारी भारतीय परम्परा के ऋषियो एवं संतों में और विशेषकर चोटी के सिद्ध संतों मे यह स्वभाव था कि वे पद्य बनाकर प्रायः बोलते थे और पास मे बैठे शिष्य लिखते थे। चारों वेदों का ऋषियों ने उच्चारण किया है और शिष्यो ने सुनकर उन्हे याद किया है, इसीलिए वेदों का नाम श्रुति पड़ गया। आधुनिककाल के पारख सिद्धांत के प्रसिद्ध संत श्री विशाल साहेब (ई० सन् १८८५-१९७७) ने भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा तथा नौनियम—चार ग्रंथो की रचना की है; परन्तु एक अक्षर अपने हाथ से लिखा नही है और उसमे एक अक्षर भी दूसरे का मिलाया नही है। वे बोलते थे और शिष्यगण लिख लेते थे। इसी प्रकार सद्गुरु बोलते गये और शिष्यगण लिखते गयें। अपनी वाणियो के संग्रह का नाम उन्होंने स्वयं 'बीजक' रखा[२]।

कबीर साहेब का 'अनुभव बढ़ा-चढ़ा तो था ही[३] वे भले व्याकरणाचार्य न रहे हो; परन्तु शास्त्रो के ज्ञाता थे। उनके बीजक को कोई एक बार पढ़ जाये तो अपने आप पता चल जाता है कि उनको धर्मशास्त्रों, दर्शन एवं मत-मतान्तरों का कितना गहरा ज्ञान था। जो वेद, उपनिषद् स्मृति, महाकाव्यों एवं पुराणों का गहरा ज्ञान नही रखता, वह बीजक के हर स्थल का अर्थ नहीं कर सकता। कबीर साहेब ने कागज, कलम एवं स्याही नही छूयी, परन्तु "मुखहि जनाई बात" को तो नही भूल जाना चाहिए। वे बोलते गये और शिष्यगण लिखते गये। प्रश्न होता है किस शिष्य ने लिखने का काम किया ? यह बता पाना असंभव है। सद्गुरु जब बोलते होंगे सामने वाला शिष्य लिखता होगा। लिखने वाले की विशेषता नहीं है; अपितु बोलने वाले की ही है।

१३
तजलेउं मैं काशी

जिनके सोचने का दायरा अत्यन्त छोटा है, वे कहते हैं कबीर साहेब काशी छोड़कर जब मगहर गये तब उन्होंने इस गलती को स्वीकार कर पश्चा-

२. बीजक वित्त बतावै, जो वित्त गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावे जीव को, बूझै विरला कोय ।।बीजक रमैनी, साखी ३७।।

३. मिश्रबन्धुओं।

ताप किया कि मैंने मुक्तिधाम काशी को छोड़कर भूल की है। ऐसे लोगों के इन विचारों का आधार बीजक का १०८ वां शब्द है। मूल वचन इस प्रकार है "मैंने पहले जन्म में तपस्या का अहंकार किया था, अतः मैं पुनः उसी जल का मीन बना। मैं उस समय हृदय से वैरागी था और राम के लिए गृह-परिवार छोड़ दिया था। मैंने काशी छोड़ दी, मेरी बुद्धि भोली हो गयी। हे प्राणनाथ! कहो मेरी क्या गति होगी? मैं कुसेवक हूं कि तुम अज्ञानी हो। हे भगवान! इसमें किसका दोष है? मै तो तुम्हारी शरण में आ गया हूं, परन्तु कहीं आपके चरण-दर्शन नही हो रहे हैं। मै तो तुम्हारे पास आ गया हूं, परंतु तुम मुझे एकदम निराश कर दिये[1]।"

उपर्युक्त शब्द का भाव उपासकों का है। कबीरदेव उनकी भावनाओं को केवल चित्रित करते हैं। बीजक की शैली तथा कबीर जैसे महान स्थित-प्रज्ञ की उच्च स्थिति को जो समझता है, उसे उपर्युक्त भ्रम नही हो सकता। वे कोई अधकचरे एवं भावुक ज्ञानी नहीं थे जो जल्दी से काशी से मगहर जाने की योजना बना लिये और वहां जाकर पछताने लगे। कबीर साहेब का जीवन ही अंधविश्वास को उखाड़ फेकने के लिए था। हिन्दुओ मे काशी की बड़ी महिमा थी कि यहां शरीर छोड़ने से मुक्ति होती है। मगहर के आस-पास तथा गोरखपुर तक बौद्ध तथा नाथपंथी आदि बहुत थे। शायद जनता का आकर्षण भी उधर था। इसलिए हिंदू पंडितों ने प्रचार कर रखा था कि 'जो मगहर में शरीर छोड़ेगा वह गदहा होगा।' इस मिथ्या विश्वास को तोड़ने के लिए कबीरदेव ने अन्त में काशी छोड़कर मगहर मे अपना निवास बनाया और कहा "क्या काशी, क्या मगहर, क्या ऊसर जमीन, यदि हृदय में राम की स्थिति है तो कही भी शरीर छूटे, कोई फर्क नही पड़ता[2]।"

उक्त घोषणा बड़े साहस का काम है। बड़े-बड़े भौतिकवादी भी अपने बुढ़ापा में डगमगा जाते हैं और वे काशी, गंगा, शिवलिंगी आदि का सेवन करने लगते हैं। कबीर देव की यह प्रखर निर्भ्रान्ति दृष्टि ही है जो अपनी जर्जर अवस्था मे इस अंधविश्वास को तोडने के लिए काशी से मगहर आ गये कि काशी मे मरने से मुक्त होती है। उन्होंने संसार को दिखा दिया कि यथार्थ ज्ञानी के लिए काशी, मगहर, ऊसर जमीन—सब बराबर है।

यह कहना बिलकुल बेतुकी बात है कि कबीर काशी के अपने विरोधियों से घबराकर मगहर चले गये। जो एक सौ बीस (१२०) वर्ष काशी में बिता

१. बीजक, शब्द–१०८।
२. बीजक, शब्द–१०३।

सका, क्या वह केवल शरीर छोड़ने के समय में वहां से घबरा जायगा? जब कि बुढापा में कोई भी महापुरुष सबका अधिक श्रद्धेय हो जाता है। जो लोग कबीर के काशी त्याग में उनकी हठवादिता तथा अहंकार प्रेरित होने की बात करते हैं वे कबीर के मूल्य को घटाकर आंकना चाहते हैं और इससे वे अपने छिछलेपन को ही जाहिर करते हैं। कबीरदेव निर्भ्रान्त सत्यद्रष्टा एवं जीवन्मुक्त थे। अतः वे निर्भय होकर सारे अंधविश्वासों को तोड़ सके। वे काशी की मिथ्या महिमा तथा मगहर की मिथ्या निंदा का विरोध करने के लिए ही काशी तज कर मगहर में शरीर छोड़े। यह अधकचरे का नहीं, पूर्ण परिपक्व पुरुष का क्रांतिकारी काम है।

१४
समन्वय की परख

क्या कबीर साहेब सबके विचारों का समन्वय करना चाहते थे। कुछ लोग कहते हैं कि वे समन्वय तथा समझौता के चक्कर में नही थे; प्रत्युत अपनी खरी-खरी बातें सबको सुना देना चाहते थे। उन्होंने किसी से समझौता करने की कभी परवाह की ही नहीं। दूसरे लोग कहते है कबीर साहेब सबका समन्वय कर रहे थे। उन्होने वेद-पुराण से बाहर कुछ भी नही कहा। वे सबकी त्रुटियो को छोड़ और सबकी केवल अच्छाइयो को लेकर सबके विचारों की एकता करना चाहते थे। कबीर साहेब के उपर्युक्त दो प्रकार आलोचकों के अपने-अपने विचार सापेक्ष है।

सद्गुरु कबीर-रचित बीजक की वाणियों से यह साफ है कि वे किसी गलती से कभी भी समझौता नहीं करना चाहते थे। जो विचार वस्तुपरक नही हैं, जो बातें प्रकृति तथा प्रत्यक्ष सृष्टि-क्रम-विरुद्ध हैं, जिसका समर्थन विवेक-बुद्धि नहीं कर रही है, जो मान्यताएं तथ्य से दूर हैं, कबीर देव उनका स्पष्ट विरोध करते हैं। इसमे चाहे वेद-शास्त्र आड़े आये, चाहे कुरान-पुरान, चाहे कोई महापुरुष या संप्रदाय और चाहे सारी दुनिया। वे असत्य के सामने कभी नहीं झुके, वे गलत से कभी समझौता नही किये। उन्हें न परम्परा का पक्ष है न किसी पोथी या महापुरुष का। उन्हें केवल सत्य का पक्ष है। सत्य के मार्ग में जो अवरोधक हो, वे उसको क्षमा नही कर सकते थे। अतएव यह कैसे कहा जाय कि हजारों वर्षो से जो सत्य के साथ-साथ अध्यात्म तथा धर्म के नाम पर सैकड़ों उलूल-जुलूल बातें कही गयी हैं उनका वे समन्वय कर रहे थे। जो सत्य का उपासक होगा, वह गलत से समझौता नहीं कर सकता।

कबीर देव समन्वयवादी हैं किन्तु विवेकपूर्वक। गहरे में न जाकर सरलता में उनका ज्वलंत समन्वयवाद समझा जा सकता है। "अल्ला, राम, करीम, केशव एक ही बात है[1]। एक जमीन पर रहने वाले इंसान में कौन हिंदू है और कौन मुसलमान[2]? एक ही प्रकार के त्वचा, हड्डी, मल, मूत्र, खून, पसीने के पिंजरे को धारण करने वाले मनुष्य में कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र[3]? जितने औरत तथा मर्द पैदा होते हैं, सब तो तुम्हारे स्वरूप हैं[4]। वेद-कितेब को कौन झूठा कहता है, झूठा तो वह है जो विवेक नही करता और आंख मूद कर केवल शब्द प्रमाण की दोहाई देता है[5]।" जहां वे कहते है कि राम नाम भजो और मन में चेत करके देखो[6], वहां वे जन-भाषा में बोलकर एक समन्वय ही उपस्थित करते हैं। 'अपनी बाते कहे और मेरी सुने और फिर एक हो जाय[7]।' यह महासमन्वय ही तो है।

सबका सार यह हुआ कि कबीर देव ने मुलाहिजा में पड़कर सत्य और झूठ का समन्वय नही करना चाहा; किन्तु उन्होंने सत्य के सभी पक्षों का उद्-घाटन किया है। वस्तुतः कबीर साहेब ने समन्वय नही किया है; किंतु उन्होने जो कुछ कहा है शाश्वत सत्य है। अतः वह स्वयं समन्वित है। उनके जीवन और वचनों मे समन्वय अपने आप फलता है।

१५

श्रद्धातिरेक एवं मिथ्या विश्वास

श्रद्धा-भक्ति बड़ी अद्‌भुत वस्तु है। श्रद्धालु अपने श्रद्धेय को अनन्त ब्रह्माण्डनायक सिद्ध करने की असफल चेष्टा करता है। यह काम सारी दुनिया में हुआ है। अवधनरेश श्री राम का भक्त उनके एक-एक रोयें में अनंत ब्रह्माण्ड लटके हुए देखता है। उसके ख्याल से दशरथ-सुत राम के संकल्प से अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय होते हैं; वस्तुतः श्री राम ही सब कुछ है। द्वारकाधीश श्री कृष्ण का भक्त श्री कृष्ण के चरणों के नख में असंख्यों ब्रह्म का तेज देखता है। उसके ख्याल से श्री कृष्ण ही अनन्त ब्रह्माण्डनायक परात्पर परब्रह्म हैं। श्री कृष्ण की हार और जीत, शुभ कर्म और अशुभ कर्म—सब में

१. बीजक, शब्द ३०। २. बीजक, शब्द ३०।
३. बीजक, शब्द ७५। ४. बीजक, शब्द ६७।
५. बीजक, शब्द ६७। ६. बीजक, कहरा ५।
७. अपनी कहै मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै होय। (बीजक साखी ३१५)

उसे उनकी लीला दिखती है। इसाइयो ने ईसा को ईश्वर का पुत्र घोषित ही कर दिया है। इसाइयो के ख्याल से इस अनन्त ब्रह्माण्ड में किसी भी मनुष्य को अपना कल्याण यदि करना है तो उसे ईसा पर विश्वास करना पड़ेगा। ईसा को छोड़कर अन्यत्र छुटकारा नहीं है; परन्तु दुनिया में फैले हुए करोड़ों मुसलमान इस पर कहां राजी होंगे। उनके ख्याल से ईश्वर का अंतिम पैगम्बर अर्थात संदेशवाहक आज से करीब चौदह सौ वर्ष पूर्व इस दुनिया के मक्का नामक जगह में आया था। उसी पर ईश्वर की वाणी जो असली है, कुरान के रूप में उतरी थी। दुनिया के खतम होने तक रसूल-मुहम्मद एवं कुरान का ही राज्य रहेगा। अगर आदमी को अपनी जिंदगी को कामयाब करना है, उसे जन्नत में जाना है और इसके लिए उसे आज राहे खुदा लगना है तो उसे हजरत मुहम्मद एवं कुरान की पनाह लेना ही पड़ेगा। मुहम्मद और कुरान का रास्ता छोड़कर दोजख (नरक) का रास्ता है। जिसने मुहम्मद और कुरान की पनाह नहीं ली वह जहन्नुम में गया। बौद्ध मतावलम्बी बुद्ध के तथा जैन मतावलम्बी महावीर स्वामी आदि तीर्थंकरो के जीवन में अनेक चमत्कारो, मिथ्या विश्वासों एवं असंभव घटनाओ की कल्पनाओ को जोड़ रखे हैं। इसीप्रकार संसार में सैकड़ों-सैकड़ो मत हैं जो अपने-अपने श्रद्धेयो को सर्वशक्तिमान बता कर उनकी व्याख्या जगत के सामने उपस्थित करते हैं।

सद्गुरु कबीर के अनुयायी ही इसमें पीछे क्यों रहें। जब सब अपने-अपने श्रद्धेय को सबका दादा सिद्ध करना चाहते हैं, तो कबीर साहेब सबके दादा क्यो नही? अतएव कुछ कट्टर कबीरपंथियो एवं प्रचंड भक्तों ने कबीर साहेब की ऐसी व्याख्या पेश की जिसके सामने सब फीके पड़ गये। "कबीर साहेब अनन्त ब्रह्माण्डनायक है। वे निर्गुण-निराकार रूप मे सत्पुरुष (परब्रह्म) हैं तथा सगुण-साकार रूप में सत्युग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग में क्रमशः सत्सुकृत, मुनींद्र, करुणामय और कबीर नाम से अवतार लेते हैं और वैसे उनके हजारों अवतार हैं। अभी केवल कलियुग मे उनके एक दर्जन से अधिक अवतार हो चुके हैं। चारों वेद कबीर साहेब की वाणी है। कबीर साहेब की कोटवाणी ही ऋग्वेद है, टकसार वाणी यजुर्वेद है, मूकज्ञान वाणी सामवेद है तथा बीजक वाणी अथर्ववेद है[1]। राम, कृष्ण, हनुमान, वसिष्ठ, व्यास, ईसा, मूसा, मुहम्मद दुनिया के समस्त गणमान्य पुरुष कबीर साहेब के शिष्य हैं। कबीर साहेब की

१. एक भक्त ने कबीर साहेब का नाम वेदों से खोज निकाला है। वहां पाठ है 'एकवीर' परन्तु 'ए' को अलग करके 'कबीर' बना लिया गया है। पूरा मंत्र वेद में इस प्रकार है—

कृपा से ही रामेश्वर का सेतु बंधा था, द्रोपदी का चीर बढ़ा था, जगन्नाथ का मंदिर समुद्र के चंगुल से बचा था। मंदोदरी कबीर साहेब की शिष्या हो गयी थी; परन्तु रावण ने अहंकार वश नही माना था और उसने कबीर साहेब पर सत्तर बार तलवार चलायी थी; परन्तु कबीर साहेब का कुछ नही हुआ। तब वह थर्रा गया। कबीर साहेब काशी के लहरतारा तालाब पर ज्योति रूप मे उतरे और भारत मे नाना लीला करते रहे और अंत में मगहर में कुछ फूल तथा दो चद्दर छोड़कर अंतर्धान हो गये। कबीर साहेब का शरीर भौतिक नही था। वह शस्त्र से कट नहीं सकता था, आग से जल नही सकता था। कबीर साहेब के भृकुटिविलास से सारे संसार की उत्पत्ति और प्रलय होते है, फिर वे मुर्दे को जिला दें, सूखी नदी में पानी बहा दें, कोई बड़ी बात न हुई।" इन सबका वर्णन आप अनुरागसागर, कबीर मंशूर आदि ग्रन्थो मे देख सकते है। कबीर साहेब की लीलायें बहुत हैं। उनको परब्रह्म मान लेने के बाद उनमे सब कुछ संभव है।

कहना न होगा कि यदि आज राम, कृष्ण, ईसा, मूसा, मुहम्मद, बुद्ध, महावीर एवं कबीर आ जायें, तो वे अपने अनुयायियो तथा भक्तो को बुरी तरह फटकारेंगे। इन महापुरुषों ने अपने विषय मे जिन बातो की कल्पना भी न की होगी, इनके भक्तो ने वह सब कर के रख दी है। इन शुद्ध मानवो को इनके अनुयायियो ने हवाई जीव बना रखा है। इसको श्रद्धा न कहना चाहिए; किंतु यह अति मोह का पागलपन है। ऐसी कल्पनाओ से मनुष्यता का मूल्य गिरता है। सद्गुरु कबीर ऐसी बातो के घोर विरोधी थे। खेद है, जिन अंध-विश्वासो, मिथ्या मान्यताओं, धर्म के नाम पर चलने वाली झूठी महिमाओं का वे जीवन भर विरोध करते रहे, उन्ही का पोषण उनके कतिपय पंथी नामधारी शताब्दियो से करते रहे है।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः॥

(ऋग्वेद, १०, १०३, १)

(आशुः) शीघ्रगामी, (शिशानो) वज्र को तेज करने वाला (वृषभः) बैल के (न) समान (भीमः) भयंकर (घनाघनः) घात करने वाला (चर्षणीनाम्) युद्ध में स्थित असुरों के (क्षोभणः) क्षोभ के कारण, (संक्रन्दनः) शत्रुओं के भयजनक नाद करने वाला, (अनिमेषः) तुरन्त (एकवीरः) अद्वितीय वीर, इन्द्र (शतम् सेना) असंख्य सेनाओं को (साकम्) साथ ही (अजयत्) जीत लेता है। (टीका ब्रह्मलीन मुनि, निरुक्तम् पृष्ठ ८४)

केवल एक मत या पंथ नहीं, धर्म के नाम पर प्रायः सारे मत एवं सम्प्रदाय कुछ भी कह कर चला लेते हैं। यदि आदमी सीधा झूठ बोलता है तो वह पकडा जाता है, झूठा सिद्ध किया जाता है और दण्डित भी किया जा सकता है; परन्तु आप धर्म के नाम पर बड़ी-बड़ी झुठाइयां मजे से चला सकते हैं। प्रत्युत आप को हर झुठाई पर फूल-माला पहनायी जायगी। केवल अनपढ़ ही मिथ्या कथाओं में विश्वास करते हों ऐसी बात नही है; किन्तु पढ़े-लिखे उससे अधिक डूबे हैं। अनपढ़ आदमी तो केवल 'धर्म की बात है' कहकर मान लेगा, कोई तर्क प्रायः न दे पायेगा। पढ़ा-लिखा तो विज्ञान के बल पर मिथ्या विश्वासों को सिद्ध करने का दुस्साहस करता है। वह बाल की खाल काढ़ता है, अजीब-अजीब व्याख्याएं पेश करता है। वह राम-जन्म के समय सूर्य का एक महीना के लिए अयोध्या में रुक जाना, रावण के दस शीश और बीस भुजा का होना, हनुमान का बन्दर होना, रामादल में अठारह पद्म सेना-पतियो का होना, राजा सगर को एक साथ साठ हजार बच्चो का पैदा होना, राजा प्रियव्रत का ग्यारह अरब वर्ष राज्य करना, उनके रथ के पहिये से समुद्र बन जाना, हनुमान का सूर्य को निगल जाना, गौ के कान से गौकर्ण का पैदा होना, कबीर, नानक, नरसी मेहता, पल्टू आदि संतो के नाम में जुड़े हुए हजारो मिथ्या चमत्कारो को और आज के तथाकथित अवतारो एवं साधु नामधारियो के चमत्कारो, मिथ्या-कथाओ को वैज्ञानिकता का जामा पहना कर उन्हें जनता से मनवाना चाहता है।

सद्गुरु कबीर हर घटना में कारण-कार्य-व्यवस्था देखते हैं। वे हमें वस्तुपरक बुद्धि रखने की राय देते हैं। चमत्कार के नाम पर मिथ्या-विश्वासों का जन्म होता है और उससे मनुष्य मूढ बनकर विपथ मे जाता है। सद्गुरु कबीर हमें कड़ाई से आदेश देते हैं "ऐ विवेकी संतो एवं सज्जनो! झूठी बातों पर विश्वास मत करना। देखो तुम्हारे शरीर के भीतर ही अज्ञान, मिथ्या विश्वास एव भ्रमरूप चोर छिपे है। इनमें पड़कर अपनापन नही खोना। इस संसार में धर्म के नाम पर झूठी बातो का खूब प्रचार है। सब तरफ भ्रांतियों का जाल है, जिसमें जीव फंसे हैं। यहां तक योग, जप, तप, संयम, तीर्थ व्रत, दान, नौधा भक्ति, वेद, किताब—सबकी मिथ्या परिभाषा करके एव सबको मिथ्या महिमा का रूप देकर संसार को दिग्भ्रमित कर दिया गया है। साधु, सिद्ध, धर्मात्मा, गुरु, अवतार, औलिया आदि बने कितने के तो वचन फुर रहे हैं। वे जो-जो कहते हैं वे सब सच हो रहे हैं और कितने अद्भुत-अद्भुत चमत्कार दिखा रहे हैं। इस प्रकार धर्म के नाम पर मिथ्या महिमा फैलाकर हिंदू और मुसलमान अपनी-अपनी मान-बड़ाई हांक रहे है। ये लोग हवाई

बातें करके अपना समय बिता रहे हैं। इस प्रकार अहंकार की मूर्ति बनकर बिना विवेक डूबते हैं। सद्गुरु कबीर कहते है मैं किससे कहूं, सारा संसार तो अंधा है। सब तो धर्म, भगवान, सिद्धि आदि के नाम पर झुठाई पर तुले हैं। ये लोग सच्ची बातों से तो दूर भागते हैं और झूठे का गुलाम बने हैं[२]।"

इतनी कड़ी आवाज में मिथ्या विश्वासों एवं चमत्कारों पर प्रहार करने वाले कबीर का अनुगामी कहलाकर यदि हम अवतार, चमत्कार एवं मिथ्या विश्वास के दलदल में फंसे रहे, तो कहां उस परम विवेकी का रहस्य समझ सके। संसार में जिन-जिन कारणों से जो कार्य होता है, उनके अभाव मे वह कार्य नही हो सकता। बिना कारण के कार्य बन जाना ही चमत्कार है; परन्तु यह कभी संभव नही है। जादूगर कितना चमत्कार दिखाता है। वह हवा में हाथ हिलाकर फल, घड़ी, अंगूठी आदि ला देता है और यह केवल उसके हाथ की सफाई तथा अन्य जालसाजियां हैं। यही कोई महात्मा नामधारी कर दे, तो वह सिद्ध एवं अवतार माना जाने लगता है। हम महापुरुषो के विषय मे चमत्कार जोड़ते चले जाते हैं।

हमें चाहिए कि हम कबीरदेव की मौलिक वाणियों का मनन करके सारे चमत्कारों एवं मिथ्या विश्वासों से ऊपर उठें।

२. झूठेहि जनि पतियाउ हो, सुनु सन्त सुजाना।
तेरे घट ही में ठग पूर है, मति खोवहु अपाना॥
झूठे की मण्डान है, धरती असमाना।
दशहुं दिशा वाकी फन्द है, जीव घेरे आना॥
योग जप तप संयमा, तीरथ व्रत दाना।
नौधा वेद कितेब है, झूठे का बाना॥
काहू के वचनहिं फुरे, काहू करामाती।
मान बड़ाई ले रहे, हिंदू तुरुक जाती॥
बात ब्योंते असमान की, मुद्दति नियरानी।
बहुत खुदी दिल राखते, बूड़े बिनु पानी॥
कहहिं कबीर कासो कहौं, सकलो जग अंधा।
सांचे से भागा फिरे, झूठे का बन्दा॥

(बीजक, शब्द ११३)

१६

वेद और किताब

यह प्रश्न उठाया जाता है कि कबीर साहेब वेदों को मानते हैं कि नही ? कबीर साहेब की दृष्टि बड़ी व्यापक है। वे किसी पुस्तक को स्वतः प्रमाण नही मानते, परन्तु यह नही कहा जा सकता कि वे वेदो को नहीं मानते। हां, वे वेद-किताब को आकाशीय मानकर उन्हें पूजना नही चाहते। जब किसी पुस्तक को ईश्वर की वाणी या स्वयंभू मान ली जाती है, तब उसकी सही बातो के साथ मिथ्या बातें भी अनुगामियों के गले मढ़ जाती हैं। हिन्दुओं ने वेदों को, इसाई-यहूदियों ने बाइबिल को तथा मुसलमानो ने कुरान को ईश्वर की वाणी या अपौरुषेय माना है। ईश्वर तो एक ही ठहरा; परन्तु उसने संसार में तीन किताबे गिराकर मनुष्यो में झगड़ा मचा रखा है।

कोई पुस्तक ईश्वरीय है, इस मान्यता ने मानवता की बड़ी हानि की है। हिन्दू वेदो को स्वतः प्रमाण न मानने वालों को हजारो वर्षो से नास्तिक एवं नरकगामी कहता आया है। इसाई-यहूदी बाइबिल को न मानने वालो को नरकगामी कहता रहा है। मुसलमानो ने तो कुरान न मानने वालों को कत्ल करना भी वाजिब समझा; चूकि कुरान में ही इस वाक्य की भरमार है कि जो कुरान की आयतों (मन्त्रो-वचनो) को ईश्वरीय नही मानता, उसके लिए नरक की आग है। बेचारे मूर्तिपूजक न मूर्ति पूजने वालो से उतना विद्वेष नही करते जितना पुस्तक पूजने वालो ने किया है। किसी पुस्तक को ईश्वरवाणी मानकर पोथी पूजने वालो ने करोड़ो को तलवार के घाट पर उतारा है, दूसरों को नास्तिक, काफर एवं नापाक कहा है।

मजहब अपनी मिथ्या बातों को समाज से मनवाने के लिए अपने गुरु, पूज्य एवं उपास्य को ईश्वर, ईश्वर का अवतार या उसका पुत्र तथा पैगम्बर और अपनी मूल पुस्तक को ईश्वर की वाणी या अपौरुषेय होने की घोषणा करता है, परन्तु इसमें शतप्रतिशत मिथ्या धारणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि कोई व्यक्ति ईश्वर या ईश्वर का अवतार, पुत्र या पैगम्बर है तो वह सर्वमान्य क्यो नहीं ? यदि कोई पुस्तक ईश्वरीय है तो वह सर्वमान्य क्यों नही ? देखा जाता है संसार में न कोई पुरुष सर्वमान्य हुआ है और न कोई पोथी। अतएव इन मजहबों का अपने-अपने पुरुष या पोथी को ईश्वरीय कहना एक जबर्दस्ती है।

सद्गुरु कबीर बीजक में कहते हैं 'वेद-कितेब दो जाल मनुष्यों ने फैला

रखे हैं और उनमें वे बेचारे स्वयं पड़े हैं[१] ।' 'वेद पढ़ते हैं और उसकी बड़ाई करते हैं; परन्तु संदेह की गांठ तब भी नहीं टूटती है[२] ।' 'वेद, पुरान, किताब, कुरान नाना प्रकार की बातें बताते हैं[३] ।' 'योग, जप, तप, तीर्थ, व्रत, दान, नौधा-भक्ति, वेद एवं किताब—सब झूठे का वेष धारण कर रखे हैं। इन सबमें मिथ्या महिमाओं एवं झूठी धारणाओं का साम्राज्य है[४] ।' 'ब्रह्मा ने चारों वेदों का व्याख्यान किया; परन्तु कर्मकांड में उलझ कर वे भी मुक्ति का रहस्य नही जाने[५] ।' 'स्मृतियां वेदों से पैदा हुईं उनकी पुत्रियां हैं; परन्तु हे भाई ! वे अपने हाथों में मनुष्यों को बांधने के लिए मानो रस्सी लेते आयीं हैं[६] ।' 'पंडित लोग वेदों को पढ़-गुनकर उन्ही के अहंकार में भूल गये और अपने आपका रहस्य नही जाने[७] ।'

'हे रमैया राम जीव ! तूने स्मृतियों-धर्मशास्त्रों में अपने आप को भली प्रकार उलझा लिया है और तूने धोखे में विश्वास कर लिया है; परन्तु जिसमें तूने विश्वास किया है वह मछली को चारा के लोभ में फंसाने वाली बंसी के समान है। तुम कहते हो ये वेद-शास्त्र हैं, बड़े-बड़े गुरुओं ने उनके प्रति भक्त बने रहने के लिए हमें प्रतिज्ञा करा दी है कि इनको स्वतः प्रमाण एवं ईश्वरीय नहीं मानोगे तो नास्तिक हो जाओगे। इन्हीं से तुम्हारा कल्याण है। परन्तु हे मानव ! तूने शत्रुओं के आक्रमण से बचने के लिए गोबर का किला उठा रखा है। यह वेद-शास्त्रों की दोहाई बिलकुल बेकाम है[८] ।'

यहां कबीर साहेब का वेद, स्मृति आदि के प्रति एक क्रांतिकारी स्वर है। उनका कहना है आंख मूंद कर किसी का प्रमाण मत मानो। अपनी पोथियों को ईश्वरीय कहकर उनका अहंकार मत करो। सत्य और ईश्वर के ठेकेदार मत बनो। हर बात विनम्रता से सरलता पूर्वक समझने की चेष्टा करो।

भारतीय महापुरुष व्यवहार में भले अनुदार रहे और वे अपने मानव-बन्धु को चरित्र और आचरण के आधार पर नही; किन्तु झूठे वर्ण और जाति के आधार पर छोटा-बड़ा मानते रहे; परन्तु वे धर्म, दर्शन एवं मान्यताओं में सदैव उदार रहे। इसीलिए वेदभक्तों द्वारा ही वेद की आलोचना की गयी।

१. बीजक, शब्द ३२, ८।
२. बीजक, रमैनी ३१, ३।
३. बीजक, शब्द ४८, ६।
४. बीजक, शब्द ११३, ५-६।
५. बीजक, रमैनी ३४, ३।
६. बीजक, रमैनी ३३, १।
७. बीजक, रमैनी ३५, १।
८. बीजक, बेलि २, १-७।

मुंडक उपनिषद् अथर्ववेद के मन्त्र-भाग के अंतर्गत माना जाता है[९]। ग्रंथ आरम्भ में ही शौनक कहते हैं कि किसके जान लेने पर सब जाना हुआ हो जाता है ? उत्तर में अंगिरा कहते हैं "अपरा और परा दो विद्यायें जानने योग्य हैं। उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष 'अपरा' विद्या अर्थात सांसारिक विद्या के अन्दर हैं और जिससे अविनाशी का बोध होता है, वह 'परा' विद्या[१०] है।" यहां चारों वेदों और छहो वेदांगों को सांसारिक विद्या में मानकर आध्यात्मिकता के संदर्भ में उनकी प्रामाणिकता का मूल्य कम किया गया है। यही बात महाविरक्त सनत्कुमार नारद से कहते हैं "हे नारद ! चारो वेद, इतिहास, पुराण एवं समस्त विद्यायें केवल शब्दावली हैं। इससे शोक से मुक्ति नही हो सकती[११]।" याज्ञवल्क्य जी कहते हैं "हे मैत्रेयी ! जैसे आग से धुआं निकलता है, वैसे वेद-वेदांग आत्मा के स्वर हैं। सभी वाणियों का आधार आत्मा ही है[१२]।" महा-भारत तो कहता है वेद कपट से पूर्ण है[१३]।"

गीताकार भी अपनी जोरदार भाषा में कहते हैं "हे पार्थ ! अविवेकी लोग, वेद-वेद चिल्लाने वाले उनकी स्वर्ग विधायक दिखाऊ शोभायुक्त वाणियों की प्रशंसा करते फिरते हैं; किन्तु जो वेदवाद मे रत है उनकी बुद्धि स्थिर नहीं होती। वेद तो त्रिगुणात्मक संसार का ही ज्ञान कराने वाले हैं। अतएव हे अर्जुन ! तू इससे रहित होकर निर्द्वन्द्व, नित्य सत्य मे स्थित, योग-क्षेम की चिन्ता से रहित एवं स्वरूपस्थ हो जा। जिसे बड़े जलाशय की प्राप्ति हो जाती है उसे छोटे जलाशय की आवश्यकता नही रहती। उसी प्रकार आत्मज्ञानी को वेदो की आवश्यकता नही रहती[१४]।" सरल वेदभक्त गोस्वामी तुलसीदास तक कह देते हैं, "जड़ चेतन की ग्रन्थि पड़ गयी है यद्यपि वह मिथ्या है; परन्तु छूटने में कठिन है। वेद-पुराणो ने छूटने के बहुत उपाय कहे है, किन्तु वह छूटने की अपेक्षा अधिक-अधिक उलझती ही गयी। मति, कीर्ति, मोक्ष, भूति, भलाई जब जिसने जहां पाये हैं वह सत्संग ही मे पाये है; लोक और वेदों में

९. मुण्डकोपनिषद् शांकर भाष्य सानुवाद का निवेदन, गीताप्रेस वि० २०२६।
१०. मुण्डकोपनिषद् १/१/४-५।
११. छांदोग्य उपनिषद ७, १।
१२. वृहदारण्यक २, ४, १०-११।
१३. महाभारत १२/३२९/६। सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, खंड १, पृष्ठ ४४७
१४. गीता, अध्याय २, श्लोक ४२, ४५, ६४।

उनके पाने के उपाय नहीं है[१५]।" बौद्ध, जैन, शैव तथा वैष्णव करीब-करीब एक ही काल में पैदा हुए। सब में वेद विरोधी बीज थे।[१६]

छठी ईसा शताब्दी के उद्‌भट विद्वान धर्मकीर्ति कहते हैं "वेदों को स्वतः प्रमाण मानना, जगत का रचयिता मानना, स्नान करने मात्र से धर्म की पूर्ति मानना, ऊंची-नीची जाति मानना और शरीर को संताप देकर पाप का क्षय मानना—ये पांच नष्टबुद्धि लोगों की जड़ता की निशानियां है[१७]।" नारद सूत्र में कहा है "जो वेदों का भली-भांति त्याग कर देता है, वह अखण्ड असीम भगवत्प्रेम को प्राप्त करता है[१८]।"

धर्मकीर्ति बौद्ध होने के नाते ऐसा कह डाले सो कह डाले; परन्तु हम नहीं कह सकते कि महाऋषि अंगिरा, सनत्कुमार, याज्ञवल्क्य, गीताकार वेद-व्यास, नारद और गोस्वामी तुलसीदास जी वेद-निंदक थे; परन्तु इनकी वाणियों में वेदों के विषय में उपर्युक्त तीव्र स्वर है। यही भारतीय वातावरण की महत्ता है। यहां विचारों की स्वतंत्रता है। वैदिक पुरुषो द्वारा ही वेदादि शास्त्रो की आलोचना की गयी है। महाज्ञानी कपिल जी महाराज वेदो को स्वीकार करते हुए भी कहते हैं "जैसे सांसारिक पदार्थो से दुःखो का आत्यंतिक अभाव नही होता, वैसे वैदिक उपदेश रूप कर्मकाण्डो से भी जीवों के दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति नही होती। क्योकि वैदिक कर्मकाण्ड पशुवध युत होने से अशुद्धि, उसका फल स्वर्ग नाशवान होने से क्षणभंगुरता और स्वर्ग ऊंची-नीची स्थितियों वाला होने से सातिशयता रूपी दोषो से पूर्ण है। अतएव इसके विपरीत प्रकृति-पुरुष-विवेक ही मोक्ष का कारण है[१९]।"

१५. जड़ चेतनहिं ग्रन्थि पड़ि गई। यद्यपि मिृषा छूटत कठिनई॥
श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानब सत्संग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ॥
(रामचरित मानस)

१६. रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ० १४४

१७. वेद प्रामाण्यं कस्यचित् कर्तृवादः स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः।
संतापारंभः पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञानां पंच लिंगानि जाड्ये॥
(प्रमाणवार्तिक-स्ववृत्ति १,३४२)

१८. वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते॥ नारद सूत्र॥

१९. दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुतः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्॥ सांख्यकारिका २॥

सर राधाकृष्णन लिखते हैं "सांख्य ने वेद को ज्ञान का साधन स्वीकार करके अपने को नवीन कृति के रूप में प्रतीत होने से बचाया है; किन्तु जैसे हम देखेंगे, इसने कितनी ही पुरानी रूढ़ियों को छांटकर अलग कर दिया है तथा औरों की मौनभाव धारण करके उपेक्षा की है। निःसंदेह इसने कही भी वेदों का स्पष्ट रूप में विरोध नहीं किया है; किन्तु उनकी नीव को खोखला कर देने की कही अधिक भयानक प्रक्रिया का आश्रय लिया है[२०]।"

सद्गुरु कबीर जहां वेदों की आलोचना करते हैं, वहां वे उसे इस गहराई से नहीं लेते कि वेदों को नहीं मानना चाहिए और वेद नाम लेने से न केवल ऋग, यजु आदि से सम्बन्ध है और किताब कहने से न केवल कुरान से मतलब है। उनके वेद-किताब को आलोचना करने का मतलब है किसी भी पोथी को ईश्वरीय या स्वतः प्रमाण मान लेने से इन्कार करना। कोई भी पोथी जब ईश्वरीय मान ली जाती है, तब वह कितना खतरा उत्पन्न करती है और उस पोथी के पक्षधर कितने अहंकारी एवं क्रूर हो जाते हैं यह किसी समझदार विद्वान से छिपा नहीं है। कबीर साहेब कहते है कि प्रजा मे विद्वेष एवं अहं-हीनत्व की भावना उत्पन्न करने वाली इस धारणा को दूर कर दो कि कोई पोथी ईश्वरीय या स्वतः प्रमाण है।

यद्यपि अनादिकाल के जगत में आरम्भ नाम की कोई वस्तु नहीं है, तथापि ज्ञात समय की सभ्यता के ऊषाकाल में हमारे पूज्य ऋषियो ने सरल एवं शुद्ध हृदय से जो चिंतन किया है, वह अप्रतिम है। उनके वेदों की रचना भाषा एवं अलंकार की दृष्टि से प्रौढ़ एवं मनोरम है। जिस समय संसार का अन्य कोना असभ्य और जंगली था, उस समय हमारे ऋषि ऋग्वेद जैसे गहन-गंभीर एवं प्रौढ़ साहित्य की रचना कर रहे थे। ऋग्वेद आदि के मन्त्रो में जो छन्द, अलंकार, भाषा, भाव-व्यंजनादि की पटुता है मन को बरबस खीच लेती है। ऋषिगण प्राकृतिक देवताओ के उपासक है। उनका सर्वोपरि देवता अग्नि है। "यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान देवो को बुलाने वाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की स्तुति करता हूं[२१]।" यह ऋग्वेद का पहला मन्त्र है। अग्नि का महासमुच्चय सूर्य है, इसलिए वैदिक ऋषियों का परम देवता सूर्य है। उसी के नाम पर उन्होने गायत्री मन्त्र की रचना की। उन्होने कहा "उस सूर्य देवता

२०. भारतीय दर्शन, २/२६६ सन् १६७२ ०।

२१. रामगोविन्द त्रिवेदी का हिन्दी ऋग्वेद, इण्डियन प्रेस प्रयाग १६५४। मूल मंत्र इस प्रकार है—अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥ ऋग्वेद १/१/१॥

का मैं ध्यान धारण करता हूं जो स्वीकार करने योग्य प्रकाशस्वरूप है और हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है[२२]।" पीछे वालों ने वेद मन्त्रों को भले ईश्वरीय मान लिया; परन्तु वैदिक ऋषियों ने वेदमन्त्रों में ईश्वरत्व का दावा नहीं किया। वे बड़े सरल हृदय से कहते हैं "मैं नही जानता कि मैं क्या हूं, मेरा उलझा हुआ मूढ़ मन इधर-उधर भटकता है[२३]।"

वेद हमारे पितामहों की हमारे लिए धरोहर हैं। उनमें वैदिक युग के इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, रीति-रिवाज एवं ज्ञान-विज्ञान की झलकियां हैं। वे विश्व के प्राचीनतम साहित्य हैं। सात समुन्दर पार जर्मनी के वेद-विद्वान पं० मैक्समूलर कहते हैं "पुरानी बाइबिल के इतिहास और कालक्रमानुसार घटनावृतांत के आज तक की खोज के बाद अब हम निश्चित कह सकते है कि ऋग्वेद न केवल आर्यमानवता की; किन्तु पूरे संसार की प्राचीनतम पुस्तक है, और हम आशा कर सकते हैं कि—जब तक पृथ्वी पर नदियां एवं पर्वत रहेगे, तब तक संसार में ऋग्वेद की महिमा फैली रहेगी[२४]।" वेद कोई आकाश से टपके ग्रन्थ नही हैं; अपितु शताब्दियों तक विभिन्न ऋषियो द्वारा उनके मन्त्र बनते रहे। ऋषि स्वयं कहते हैं "स्तोम जनयामि नव्यम्[२५]"—हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोमप्रदान समय में पठनीय नया स्त्रोत बनाता हूं। अतएव वेद हमारे पूज्य ऋषियो की कृतियां है। हम उनका आदर करते है और वेदों के साथ-साथ ही बाइबिल, कुरान आदि समस्त धर्मग्रन्थों का आदर है। उनके रचयिताओं ऋषियों, पैग़म्बरो का आदर है। हां, हम उन्हें स्वतः प्रमाण ईश्वरीय, आकाशीय नही मानते है। हम उन पर विचार करते हैं।

२२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोद्यात्।
॥ऋग्वेद ३/६२/१०॥

२३. न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि॥
॥ऋग्वेद १/१६४/३७॥

२४. After the latest researches into the history and chronology of the books of the Old Testament we may now safely call the Rig-Veda the oldest book, not only of Aryan humanity, but of the whole world, and we may hope that—

यावत्स्थास्यंति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावदृग्वेद महिमा लोकेषु प्रचरिष्यति॥
(मैक्समूलर संपादित सायणभाष्यसहित ऋग्वेद दशम मंडल की भूमिका)

२५. ऋग्वेद १/१०६/२।

सद्गुरु कबीर कहते हैं "वेद-किताब को कौन झूठा कहता है, झूठा वह है जो उनका विचार नहीं करता[२६]।" इसका तात्पर्य यही है कि कबीर साहेब वेदों और किताबों पर विचार करने को कहते हैं। विचार करके उनकी सत्य बातों को ग्रहण करना चाहिए और जो विवेक अनुकूल न हो उसका त्याग करना चाहिए; परन्तु जब वेदों-किताबों पर ईश्वरीय या अपौरुषेय का स्वर्णिम वरक चढ़ जाता है तब वह 'झूठे का बाना' हो जाता है, तब वे उच्च स्वर में कह उठते हैं "नवधा वेद कितेब है झूठे का बाना[२७]।" अतएव हम कबीर साहेब को वेद विरोधी नहीं कह सकते, वे वेद अर्थात सत्यज्ञान के विचारक हैं। हां, वे अंधविश्वास के विरोधी हैं। कबीर-बीजक के महान चिंतक श्री रामरहस साहेब ने भी कहा है—"व्यवहार तथा परमार्थ के बोध के लिए वेद आदि समस्त वाणियों का आदर करो[२८]।"

अतएव कबीर या कबीर-अनुयायी किसी पुस्तक का अनादर नहीं करते; किन्तु अंधविश्वास का निरादर करते हैं। किसी को यह हठ नहीं होना चाहिए कि अमुक वचन या पुस्तक स्वतः प्रमाण है; किन्तु जो विवेकपूर्ण हो उसका आदर होना चाहिए। श्री अनिरुद्ध ने अपनी वृत्ति में ठीक ही कहा है कि "आकाश से महान दैत्य केवल इसलिए नही उतरते कि कोई आप्त अथवा योग्य पुरुष ऐसा कहता है। मैं तथा तुम्हारे जैसे अन्य पुरुष केवल ऐसे ही कथनो को स्वीकार करते हैं जिनका समर्थन तर्क द्वारा हो सके[२६]।"

१७

नास्तिक कौन ?

वैदिक लेखक समस्त भारतीय दर्शनो को नास्तिक और आस्तिक दो भागों मे बांट कर रखते हैं। वे चार्वाक जो सचमुच नास्तिक दर्शन है उसके साथ बौद्ध और जैन को भी रखकर तीनों को नास्तिक कहते है। शेष न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त को आस्तिक कहते हैं। माधवा-

२६. वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न बिचारे ॥बीजक, शब्द ६७/१२॥
२७. बीजक, शब्द ११३।६।
२८. वेद आदि बानी सबै, बोध हेतु उर धार ॥पंचग्रंथी, गुरुबोध, दोहा ३६॥
२९. न ह्याप्तवचनान्नभसो निपतन्ति महासुरा।
युक्तिमदवचनं ग्राह्यं मयाऽन्यैश्च भवद्विधैः ॥१।२६॥

चार्य ने अपने 'सर्वदर्शनसंग्रह' में तथा मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'प्रस्थानभेद' में इसी परिपाटी का निर्वाह किया है और फिर पीछे इसका जोर से प्रचलन चल पड़ा। अब जो कोई दर्शन पर ग्रन्थ लिखता है, वह चार्वाक के साथ बौद्ध और जैन को भी नास्तिकता के कटघरे में खड़ा कर देता है। हां, इस दोष से आधुनिक दर्शन-आलोचक तथा इण्डियन फिलासफी के लेखक सर राधाकृष्णन प्रायः बचे हैं। वस्तुतः हम चार्वाक को ही नास्तिक दर्शन कह सकते है जो केवल शरीर ही तक जीवन मानता है। बौद्ध और जैन को नास्तिक कहना अपनी ही नास्तिकता प्रकट करना है।

वेद की पुत्री स्मृति (मनुस्मृति) कहती है कि नास्तिक वह है जो वेद की निन्दा करता है 'नास्तिको वेदनिन्दकः'। परन्तु यह नास्तिक की कोई सही परिभाषा नही हुई। इस प्रकार तो बौद्ध कह सकते हैं 'नास्तिको बौद्धनिन्दकः' जैन कह सकते हैं 'नास्तिको जैननिन्दकः' आदि। मान लो वेदो का न मानने वाला नास्तिक है और वेदों को मानने वाला आस्तिक है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त—ये छह दर्शन वेदो को मानते है। सर राधाकृष्णन उक्त छह दर्शनों के विषय मे कहते हैं—

"इसका अर्थ यह नहीं है कि वे वेद-प्रतिपादित सब सिद्धान्तों को भी स्वीकार करते हैं, या परमात्मा के अस्तित्व में भी विश्वास रखते हैं। इसका अर्थ केवल जीवन के मूल रहस्य के उद्घाटन के लिए गंभीर प्रयास करना है, क्योंकि इन सम्प्रदायों ने वेदो की निर्दोषता तक को समान रूप में स्वीकार नही किया है[1]। हम देखते हैं कि वैशेषिक और न्याय परमात्मा की सत्ता को अनुमान प्रमाण द्वारा ही स्वीकार करते है। सांख्य ईश्वरवादी नहीं है। योग वेद से वस्तुतः स्वतन्त्र ही है। दोनो मीमांसा शास्त्र अवश्य ही वेद पर स्पष्ट रूप से निर्भर करते हैं। पूर्व मीमांसा मे वर्णित देवता का सामान्य विचार वेद-मूलक अवश्य हैं; किन्तु उसे परब्रह्म के रूप की चिन्ता नही है। उत्तर-मीमासा ब्रह्म के अस्तित्व को श्रुति के आधार पर स्वीकार करता है; किन्तु उसकी सिद्धि में अनुमान प्रमाण का भी प्रयोग करता है और उसकी सम्मति से उसका साक्षात्कार ज्ञान व ध्यान द्वारा हो सकता है। परवर्ती-काल के आस्तिक विचारक सांख्य को सनातन दर्शन-शास्त्रों के अन्तर्गत मानने को तैयार नही थे।

"इस प्रकार वेद की प्रामाणिकता मानने से इन छह दर्शनो की दार्शनिकता में कोई विशेष अन्तर नही आता। श्रुति और स्मृति का भेद सर्वविदित

१. जैसे पीछे 'वेद-किताब' संदर्भ में सांख्यकारिका का उद्धरण दिया गया 'दृष्टवदानुश्रविकः'।

है, और जहां दोनों में परस्पर मतभेद हो वहां श्रुति की ही प्रधानता मानी जाती है। श्रुति भी अपने आप में दो भागों में विभक्त हैं, कर्मकाण्ड (संहिता भाग और ब्राह्मण ग्रंथ) और ज्ञानकाण्ड (उपनिषद्)। ज्ञानकाण्ड का महत्व अधिक है, यद्यपि उसके अधिकांश भाग को केवल अर्थवाद अर्थात अनावश्यक या गौण कथन कहकर एक ओर रख दिया गया है। इन सबके कारण वेद की प्रामाणिकता को बहुत उदारभाव से ही ग्रहण किया जा सकता है। वेदों की व्याख्या भी व्याख्याकारों की दार्शनिक रुचियों पर निर्भर करती है। तार्किक विधियों का प्रयोग करते हुए और युक्तिसंगत सत्यो पर पहुचते हुए भी, वे प्राचीन मन्त्रो से उनकी संगति बनाये रखने के लिए बराबर उत्सुक रहे। उनकी इच्छा बराबर यही रही कि उन्हें किसी बिलकुल नवीन विषय का प्रतिपादक न समझा जाये। यद्यपि इससे उनकी स्पष्टवादिता का कुछ अभाव ही टपकता है, तो भी इससे उन सिद्धान्तों के प्रचार में सहायता मिली जिन्हे वे सत्य मानते थे। भिन्न-भिन्न संप्रदायो के समालोचक और टीकाकार अपने-अपने मत की पुष्टि में वेद की सम्मति का दावा करते हैं, और जहां यह सम्मति स्वतःदृष्टि में नहीं आती वहां बलपूर्वक सम्मति बैठाने मे अपनी पटुता दिखाते हैं। परवर्ती काल के वाद-विवादों के प्रकाश में, ये लोग वेदो की भाषा में उन विषयो पर भी सम्मति ढूंढ़ते हैं जिनका ज्ञान इन्हें बहुत ही कम या बिलकुल नही होता। वेदों के साधारण विचार न तो निश्चित ही हैं और न विस्तृत रूप में स्पष्ट ही हैं। इसीलिए भिन्न-भिन्न संप्रदाय वालो का उनके अर्थो मे खींचातानी करने का सुयोग मिल जाता है। इसके अतिरिक्त, वेदो की विशालता के कारण भी, ग्रंथकारो को अपने विश्वास के अनुसार कोई-सा भाग चुन लेने से एक नवीन विचार का प्रचार करने के लिए सामग्री मिल जाती है[२]।"

वैदिक कहे जाने वाले संप्रदाय एक दूसरे को प्रायः अवैदिक एतदर्थ नास्तिक कहते है। स्वामी शंकराचार्य ने पांचरात्र वैष्णव मत को जोरदार शब्दो में अवैदिक[३] कहा है और जो लोग ईश्वर को जगत का उपादान कारण न मानकर केवल निमित्त कारण मानते है उनको वे अवैदिक मानकर उनका खंडन करने के लिए प्रतिज्ञा करते है, वे कहते हैं "जो लोग ईश्वर को केवल निमित्त कारण मानते हैं उनके मत का खंडन करने के लिए वर्तमान अधिकरण की रचना की जा रही है[४]।" शंकराचार्य के इस विचार से समस्त

२ भारतीय दर्शन, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८-१६, दूसरा संस्करण १९७२।

३. शारीरिक भाष्य २/२/४२-४५।

४. इदानीं केवलाधिष्ठात्रीश्वरकरणवादः प्रतिषिध्यते।

वैष्णव, आर्यसमाज आदि अवैदिक हैं। निश्चल दास कहते हैं "उत्तर मीमांसा (ब्रह्मसूत्र) का उपदेश वेद-संमत है, शेष सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमांसा—पांच शास्त्र वेद-विरुद्ध होने से नास्तिक हैं[५]। तो प्रसिद्ध वैष्णव माध्वाचार्य के शिष्य त्रिविक्रम (गृहस्थ) के पुत्र नारायण ने मणिमंजरी और मध्वविजय—इन दो ग्रन्थों द्वारा शंकराचार्य को महाभारतोक्त मणिमान नामक दैत्य का अवतार कहा है[६]। रामानुजाचार्य ने अपने श्री भाष्य में शंकराचार्य को छिपा हुआ बौद्ध कहा है। उनके मत को हास्यास्पद बताया है। पद्म-पुराण में शिव के मुख से शंकराचार्य के मायावाद सिद्धान्त को अवैदिक करार दिलाया गया है 'मायावादम् अवैदिकम्' और इसी ग्रंथ में शिव से कहलवाया गया है "माया की कल्पना एक मिथ्या सिद्धान्त है और बुद्धमत का ही छिपा हुआ रूप है। हे देवि, मैंने ही कलियुग में एक ब्राह्मण (शंकराचार्य) का रूप धारण कर इस मिथ्या सिद्धान्त का प्रचार किया था[७]।"

१७५ ई० में पैदा हुए बौद्धिष्ठ नागार्जुन का मत था कि सब कुछ शून्य है। इससे कोई लगभग छह सौ वर्ष बाद गौड़पाद द्वारा उक्त शून्यवाद का सिद्धान्त औपनिषदिक आत्मा को लेकर शंकराचार्य तक पहुंचा और शंकराचार्य का भी मत हुआ कि सब शून्य है। इन दोनों पर व्यंग करते हुए पराङ्कुशदास रामानुज के वेदान्त भाष्य की टीका 'श्रुति प्रकाशिका' मे कहते हैं "ऐ शंकराचार्य के अनुयायियो! तुम्हारे लिए वेद के उपदेश झूठे हैं और इसी प्रकार शून्यवादी बौद्धों के लिए बुद्ध के उपदेश झूठे हैं। तुम्हारे लिए वेद तथा बौद्धों के लिए बुद्ध-आगम के प्रमाण निरर्थक है। तुम दोनों के लिए बोद्धा, ज्ञाता, जीव और बुद्धि फल मुक्ति भी झूठे हैं। इसलिए तुम (मायावादी वेदाती) और बौद्ध दोनों एक सभा के हो[८]।"

५. उत्तर मीमांसा उपदेशा। वेद विरुद्ध न जामे लेसा॥
सास्त्र पंच ते वेद विरुद्धं। याते जानहु तिनहि अशुद्धं॥
(विचार सागर, तरंग ७, चौ० १०३, १०४)

६. महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराजकृत भारतीय संस्कृति और साधना, पृष्ठ २१५, संस्करण १९६४।

७. मायावादमसच्छास्त्रम् प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।
मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥ (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २३६)

८. वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः प्रमाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्।
बोद्धाऽनृतो बुद्धिफले तथाऽनृते यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः॥
(दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ८२१, संस्करण १९६१ से उद्धृत)

स्वामी दयानन्द सरस्वती कहते हैं "मायावादी अद्वैत वेदांती पांचवें नास्तिक है जो कहते हैं ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म से भिन्न नही[९]।" कर्मकाण्डी मीमांसक कुमारिल निरीश्वरवादी वैदिक हैं, वे सांख्य और योग को बौद्धो की श्रेणी में रख कर उन्हे अवैदिक घोषित करते हैं[१०]। शंकराचार्य वैशेषिक दर्शन को भी अर्धवैनाशिक[११] (आधा बौद्ध) कहते है जबकि स्वयं वैष्णवो द्वारा छिपे हुए बौद्ध कहे जाते है। सांख्यदर्शन वैदिक कर्मकाण्ड को अशुद्धि[१२], क्षय तथा अतिशय दोषों से युक्त कह कर वेदों का एक प्रकार विरोध ही करता है।

मीमांसक लोग अपने को कट्टर वैदिक मानते है और वे कर्मकांडी होते है। वे कहते हैं "जिसका भी क्रिया के लिए तात्पर्य है वही वेद का अर्थ है और इसके अतिरिक्त सब अनर्थक[१३] है। ब्रह्म तो एक परिनिष्ठित अर्थात सदा स्थिर वस्तु है; जो स्थिर है उसमें क्रिया कहां और जहां क्रिया विषयत्व नही है वह वेद का विषय कैसे ? अत: अक्रियार्थत्व के कारण ब्रह्मविषयक ज्ञान की भी वेद के मंतव्य के रूप में अनर्थकता है।" उनका कहना है "अनेक वैदिक देवताओ मे ब्रह्म भी एक देवता है और उसकी उपासना रूप क्रिया में ही ब्रह्म का उपदेश है, इसके अतिरिक्त अनर्थकता है। उपासनादि क्रियान्तर विधानार्थत्वं।" इस प्रकार मीमांसक ब्रह्मवादियो को अवैदिक कहकर उन्हे नास्तिक सिद्ध करना चाहते है और दूसरी ओर वे वेद के ज्ञान काण्ड को आनर्थक्य कह कर वेद के पूरे भक्त नही सिद्ध होते। अतएव मीमांसक स्वयं अवैदिकता एवं नास्तिकता के कटघरे मे खड़े हो जाते हैं।

महर्षि पाणिनि कहते हैं "परलोक मानने व न मानने वाले ही आस्तिक एवं नास्तिक है[१४]। भीमाचार्य भी कहते हैं कि परलोक मानने वाला ही आस्तिक है[१५]। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि पहले के जमाने में जो ईश्वर

९. सत्यप्रकाश, पृष्ठ २१४, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली। संस्करण, वि० २०३१।

१०. तन्त्रवार्तिक १/३/४।

११. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य २/२/१८।

१२. सांख्यकारिका २।

१३. बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृष्ठ ६२०, लीडर प्रेस इलाहाबाद; मीमांसादर्शन १/२/१।

१४. अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः। पाणिनि ४/४/६०।

१५. न्यायकोश।

को नहीं मानता था वह नास्तिक कहा जाता था; परन्तु आज के जमाने में जो अपने आपको, अपनी आत्मा को नहीं मानता है, वह नास्तिक कहा जाता है।

अब विचारणीय यह है कि नास्तिक किसे कहना चाहिए और आस्तिक किसे कहना चाहिए। वस्तुतः जड़ प्रकृति से भिन्न जो आत्मा या परमात्मा के रूप में चेतन की सत्ता, पुनर्जन्म या परलोक, कर्म-फल-भोग, बंध-मोक्ष एवं जीवन में नैतिकता को न माने उसे नास्तिक कहना चाहिए और इन सबको मानने वालों को आस्तिक कहना चाहिए। इस दृष्टि से केवल भौतिकवाद को छोड़कर वैदिक, बौद्ध, जैन, इस्लामी, इसाई आदि सब आस्तिक हैं; परन्तु भौतिकवादी को भी हम सर्वथा नास्तिक नही कह सकते, क्योंकि नैतिकता को वे भी मानते हैं जो आस्तिकता का मूल है। कहा जाता है कार्लमार्क्स भौतिकवादी एवं नास्तिक है; परन्तु जब निर्गुण-निराकार शून्य एवं शून्यवत ब्रह्म का चिंतन करने वाले तथा जड़ पाषणादि की मूर्ति पूजने वाले व्यक्ति आस्तिक है, तब सगुण, साकार सचैतन्य मानव की रोजी-रोटी का चिंतन करने वाला मार्क्स कैसे आस्तिक नही? कहा जाता है भौतिकवादी हिंसा करने से नही चूकते, तो क्या आत्मा अजर-अमर मानने वाली गीता यह उपदेश नही करती कि इन भाई, दादा, काका, आजा एवं गुरुओं को मारो, आत्मा अमर है, आखीर मरता तो कुछ है नही। आत्मवादी गीता का यह उपदेश महाभारत युद्ध कराकर लाखो का गला कटवाया। ईश्वरवादी मुसलमानों, इसाइयों और यहूदियों ने धर्म और ईश्वर के नाम पर लाखो-लाखो लोगों को तलवार के घाट उतारा। आत्मा और परमात्मावादी गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने विचारो के विरोधियो की जीभ काट लेने का आर्डर दे दिया। वे कहते हैं "यदि विष्णु और शिव की निंदा अपने कानो से सुने तो गौहत्या जैसे पाप लगता है। संत, शम्भु और विष्णु की निंदा करने वाले के लिए यह मर्यादा है कि अपनी शक्ति चले तो निंदा करने वाले की जीभ काट ले, नहीं तो कान मूद कर वहां से हट जाय[१६]।" किसी आत्मा-परमात्मा मानने वाले ने ही वाल्मीकीय रामायण में प्रक्षिप्त किया है "जैसे चोर दण्डनीय है वैसे तथागत बुद्ध (बौद्धमतावलम्बी) तथा नास्तिकों को भी दण्डनीय समझो। प्रजा के हित

१६. हरिहर निंदा सुनै जो काना। होय पाप गोघात समाना॥
संत शंभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहां तहँ असि मरजादा॥
काटिय जीभ जो चलै बसाई। कान मूंद न तो चलिय पराई॥
(रामचरित मानस)

के लिए इनको दण्ड दिलाये, यदि शक्ति न हो तो उन नास्तिकों से दूर रहे[१७]।"

अतएव हम यह नहीं कह सकते कि आत्मा-परमात्मा को मान लेने मात्र से कोई आस्तिक हो गया और जो उन्हें नहीं माना, बस, इसीलिए वह नास्तिक हो गया। वस्तुतः नास्तिक, काफर आदि शब्द दूसरे मतवालों को गाली देने के लिए गढ़े गये हैं। जो जितना ही ईश्वर का बड़ा भक्त बनता है वह उतना ही दूसरे मत वालों को नास्तिक, काफर, नापाक आदि कह कर गाली देता है। और दूसरे को नास्तिक-काफर कहने वाले लोगों मे आत्मा-परमात्मा का ज्ञान तो कुछ भी नही, वे केवल बात के धनी होते हैं और उनमें मनुष्यता का अल्पांश होना भी कठिन होता है। एक मत, सम्प्रदाय या मजहब की दृष्टि से दूसरे सारे सम्प्रदाय के लोग नास्तिक, काफर या नापाक है, तो सब मिलकर सब नास्तिक, काफर या नापाक है। आपके ख्याल से मै नास्तिक तथा मेरे ख्याल से आप नास्तिक। इसीलिए महाभारतकार नाना मतो से घबरा कर कहता है "तर्क की कहीं स्थिरता नही, श्रुतियां (वेदवाक्य) भी अनेक है, एक हो ऋषि नहीं है जिसके मत का प्रमाण मान लिया जाय, धर्म का तत्त्व गुहा में छिपा है; अतएव चरित्रनिष्ठ पुरुष जिस मार्ग से चले वही सत्यपथ है[१८]।

जो अपने आप नैतिकता से पूर्ण है और दूसरे के लिए करुणा, स्नेह एवं प्रेम से भरा है, वह आस्तिक है और इसके विपरीत चरित्र-भ्रष्टता एवं जीव-वैर ही नास्तिकता है। अतएव सच्चरित्रता ही आस्तिकता है और दुश्चरित्रता नास्तिकता। वेद और ईश्वर को न मानने वाले महात्मा बुद्ध तथा वैदिक कर्मकाण्डों को अशुद्धि, क्षय तथा अतिशय दोषो से लिप्त मानने वाले निरीश्वरवादी महाज्ञानी कपिल अपने उच्च आचरण के कारण ही जगतपूज्य हुए और बुद्ध दस अवतारों में तथा कपिल चौबीस अवतारों में गिने गये। परन्तु चारों वेदों का भाष्यकार, वेदो तथा वैदिक कर्मकांड का परमभक्त और ईश्वर (शिव) का पूजक, ब्रह्मा का प्रपौत्र उत्तम ब्राह्मण रावण अपने आचरण की गड़बड़ी से ही राक्षस कहा गया।

१७. यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात्॥
(बाल्मीकि, २/१०९/३४)

१८. तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥
(महाभारत, वनपर्व ३१३/११७)

सद्गुरु कबीर न कोई आकाशीय किताब मानते हैं और न उसका गिराने वाला। उन्होंने अपने आपको किसी लोक से आना नही बताया और न अपने आपको ईश्वर या अवतार घोषित किया। उन्होंने अपने आपको सर्व साधारण मनुष्यों की तरह देहधारी बताया "उस दिन (माता के पेट में) हम और तुम–सब मनुष्य एक ही प्रकार के खून से बने हैं। अर्थात सबके शरीर की रचना एक समान हुई है[१६]।" कबीर साहेब ने यह दावा नही किया कि मेरी बात ईश्वर की ओर से है, इसको नहीं मानोगे तो तुम नास्तिक या काफर हो और नरक में जाओगे। वेद, ईश्वर, अवतार, पैगम्बर आदि के प्रमाणों पर अपना ज्ञान सिद्ध करना उधारी का सौदा करना है। विवेकपूर्ण बात ही नकद ज्ञान है। कबीर साहेब का ज्ञान नकद है। उसके लिए किसी ईश्वर तथा ईश्वर-रचित किताब की दोहाई खींचने की आवश्यकता नहीं और इसलिए उसके न मानने वालों में किसी को नास्तिक, काफर आदि कहकर गाली देने की आवश्यकता नही।

जिस व्यापारी का माल कच्चा रहता है वह दूकान पर बैठा दिन भर 'राम दोहाई' 'गंगाकिरिया' शपथ लेता रहता है; परन्तु जिसका माल सच्चा है वह कहता है 'भाई! देखो, जंचे तो लो, अन्यथा छोड़ो।' कच्चे ज्ञान की सिद्धि के लिए ही तथाकथित ईश्वर, अवतार, पैगम्बर एवं ईश्वरीय किताबों की दोहाई देनी पड़ती है। जिसका ज्ञान चांद-सूरज के समान साफ एवं सच्चा है, उसे किसी की कसम खाने की जरूरत नही। सद्गुरु कबीर के ख्याल से तो कोई हिंदू, मुसलमान आदि जाति व मजहब ही नही है, तो नास्तिक व काफर कौन होगा। वे तो कहते हैं "राम में रमो, न कोई हिंदू है और न मुसलमान[२०]!"

१८

क्या वे हिंदू कहलाने में लजाते थे ?

एक लेखक ने लिखा है कि कबीर ने अपने आप को हिन्दू कहने में संकोच किया और इसी प्रकार अयोध्याधीश श्रीराम को परमात्मा मानने में

१६. तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण वियापै मोहू॥
(बीजक, रमैनी १,८)

२०. कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिंदू तुरुक न कोई॥
(बीजक, शब्द ७५, ८)

लज्जा एवं संकोच किया। यह सब इस लहजे में लिखा गया है कि कबीर ने ऐसा करके ठीक नहीं किया। परन्तु कहना पड़ेगा कि इस बात को लिखते समय लेखक की बुद्धि दयनीय थी। हम इस पर विचार कर लें।

व्यास, वसिष्ठ, कपिल, कणाद, याज्ञवल्क्य आदि किसी भी वैदिक, औपनिषदिक एव सूत्र के ऋषि ने अपने आपको न हिंदू कहा है और न राम या कृष्ण को परमात्मा, तो क्या उन लोगों ने लज्जा के कारण ऐसा किया है। वेद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मृति, शास्त्र, महाकाव्य कहीं भी तो हिन्दू शब्द का प्रयोग नही हुआ है और न इन ग्रथो में कही राम या कृष्ण को परमात्मा माना गया है। हां, महाभारत में पीछे से श्री कृष्ण को परमात्मा मान लिया गया है तथा वाल्मीकीय रामायण में पीछे से श्रीरामादि चारों भाइयों को विष्णु का अंशावतार।

हम हिन्दू शब्द पर विचार कर ले। हिन्दू शब्द भारतीय भाषा का नहीं है चाहे वह संस्कृत हो या पाली, प्राकृत आदि। इसीलिए वैदिक साहित्य में हिन्दू शब्द नहीं है। हमारे पूर्वज यह नही जानते थे कि हम हिन्दू हैं। वे अपने को आर्य कहते थे। अतएव व्यास, वसिष्ठ, राम, कृष्ण आदि हिन्दू नही थे।

हिन्दू शब्द आया कहां से ? वस्तुतः इस पर करीब सभी विद्वान एकमत हैं कि प्राचीन भारत से पश्चिम लगा हुआ पारस (या फारस) देश (जिसे आजकल ईरान कहते है) के लोग पंजाब में स्थित सिन्ध नदी को हिन्द नदी कहते थे, क्योंकि उनके यहां 'स' को प्रायः 'ह' कहा जाता है; जैसे सप्त का हप्त, असुर का अहुर आदि। अतः अनुमानतः ५०० ईसा पूर्व जब पारस वाले भारतवर्ष के सम्पर्क मे ज्यादा आये, तब उन्होने सिन्ध नदी को हिन्द नदी कहना शुरू किया और धीरे-धीरे इस देश को हिन्द देश और यहा के निवासियो को हिन्दू।

हमारे पूर्वजों का समाज छोटा था; परन्तु वे शरीरबल, विद्याबल, तपबल साहित्यबल एवं उच्चसंस्कारो के वल से संयुक्त थे। वे अपने को आर्य कहते थे। वे एक अच्छे व्यवस्थापक थे। उन्होंने आगे चलकर वर्णव्यवस्था की। उन्होने अपने आप को ब्राह्मग तथा क्षत्रिय वर्ग में रखा तथा शायद भारत की अन्य आदिम जातियों में से पणियों (व्यापारियों) को वैश्य की संज्ञा देकर चतुर्वर्गों में तीसरा स्थान दे दिया और शेष आदिवासियों का, शूद्र नाम से चौथा वर्ण कायम कर दिया। तब तक उनमें उदारता थी और किसी शूद्र वर्ण से आये हुए प्रतिभाशाली एवं तपस्वी पुरुष को ब्राह्मग मान लेते थे; ऐतरेय महीदास, वेदव्यास आदि के उदाहरण प्रसिद्ध हैं; किन्तु शूद्र वर्ण में जो नही मिलाये जा

सके थे, ऐसे आदिवासियों की भी संख्या भारत में काफी थी और आज भी है। इस प्रकार हमारे यहां पूरे भारतवासियो का कोई सामूहिक नाम नहीं था। कोई ब्राह्मण था, कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य था तो कोई शूद्र, कोई आदिवासी था, तो उनमें भी संथाल, उरांव, उरगन आदि।

जब पारस वाले हमारे देश को हिन्द देश एवं हमें हिन्दू कहने लगे, तब धीरे-धीरे हमारे पूर्वजों के मन में यह बात अच्छी लगने लगी। चलो, पारस वालों की कृपा से हमें एक राष्ट्रीय नाम मिल गया और हम बहुत काल के बाद अपने आप को हिन्दू कहने लगे।

यूनानियों ने जब पारस वालों से हिन्द नदी, हिंद देश एवं हिन्दू नाम सुना, तब वे अपनी भाषा मे बोलने की सुविधा से हिंद नदी को इडस्, हिंद देश को इंडिया एवं हिंदवासी को इंडियन कहने लगे। सुकरात (सॉक्रातेस), प्लेटो (प्लातोन) और अरस्तू—इन तीन क्रमशः गुरु-शिष्य एव महान मनीषी विद्वानों के कारण ४०० ईसा पूर्व में ही यूनान विद्या का केन्द्र बन गया। यूनान की विद्या एव दर्शन का प्रभाव पूरे यूरोप पर पड़ा; अतः यूनानियो द्वारा दिये गये इंडिया एवं इंडियन नाम यूरोप वालों ने भारत एवं भारतवासियो के लिए ग्रहण कर लिये। जब यूरोप वालों ने हमारे देश को इंडिया एवं हमें इंडियन कहना शुरू किया, तो उसे हमने भी स्वीकार कर लिया। आज कोई भी भारतवासी जब विदेश जाता है, तब वह वहां वालो के पूछने पर अपने देश को इडिया कहता है तथा अपने आप को इंडियन। इस प्रकार पारस (प्राचीन ईरान) वालो ने हमें हिंदू नाम दिया और यूनान वालो ने इंडियन; और दोनो नामो को हमने खुशी से स्वीकारा है। जैसे मुहम्मद से मुसलमान, ईसा से इसाई तथा बुद्ध से बौद्ध नाम पड़ा, वैसे हिन्दू नाम राम-कृष्ण, व्यास, वसिष्ठ आदि किसी से नही जोड़ा जा सकता; क्योंकि हिन्दू नाम की अवधारणा ही भारतीय नही है।

एक बात यहां और ध्यान देने योग्य है। कुछ लोग कहते है कि हमें हिन्दू नाम मुसलमानों ने घृणा से दिया और हमारे पूर्वज भोले थे, उसे उन्होंने स्वीकार लिया; क्योंकि फारसी भाषा में हिंदू का अर्थ काला, चोर, ठग, डाकू आदि है। विचार यह है कि एक शब्द का अर्थ भिन्न भाषा मे भिन्न होता है। संस्कृत मे देव का अर्थ सज्जन है; किन्तु फारसी मे देव का अर्थ दुष्ट है। संस्कृत मे ही राम का अर्थ सुन्दर, आनन्दप्रद एवं हर्पदायक भी है और मलिन, धूमिल, काला भी[1]। संस्कृत में गदहा का अर्थ वैद्य है (गद = रोग, हा = नष्ट करने वाला—जो रोग को नष्ट करता है); परन्तु हिन्दी में गदहा का अर्थ गधा

१. संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे।

पशु है। फारसी भाषा में दस्त का अर्थ हाथ है और मल भी है। संस्कृत भाषा में 'कुली' का अर्थ 'उच्चवंश का' है और तुर्की भाषा में कुली का अर्थ नौकर या मजदूर है। संस्कृत में 'साम' का अर्थ एक वेद या वेद के गेय मन्त्र है; किंतु फारसी में 'साम' का अर्थ सूजन, दर्द या आग है और अरबी में मौत है। अतएव यदि फारसी में हिंदू का अर्थ काला या ठग आदि है, तो उसका अर्थ हिंदू समाज के लोगो को अपने मे नही लगाना चाहिए।

पहले यह विचारना चाहिए कि ईसा की सातवी शताब्दी में हजरत मुहम्मद ने अरब में इस्लाम की नींव रखी है। उसके पहले मुसलमान थे ही नहीं; किन्तु हजरत मुहम्मद के सतरह सौ वर्ष पूर्व[२] से ही पारसी भारतीयो को हिन्दू और भारत को हिन्द देश कहने लगे थे। पारसियों की 'शातिर' नाम की पुस्तक मे, जो शायद ईसा के पांच सौ वर्ष पूर्व बनी है, लिखा है—

"अकनू बिरहमने व्यास नाम आज हिन्द आमद वस दाना कि अकल चुना नस्त।"

अर्थात—व्यास नामक एक ब्राह्मण हिंद (भारत) से आया, जिसके बराबर कोई दूसरा अक्लमद न था।

"चू व्यास हिन्दी बलख आमद, गश्ताशप जबरदस्त राव ख्वान्द।"

अर्थात—जब हिंद वाला व्यास बलख में आया तो ईरान के बादशाह गश्ताशप ने जबरदस्त को बुलाया।

यह 'जबरदस्त' पारसी मत के प्रवर्तक जरथुश्त थे या उनकी शिष्य परम्परा का कोई विद्वान रहा हो। आगे लिखा गया कि 'व हिन्द वाज गश्त' अर्थात वह हिंद चला गया[३]।

उक्त उदाहरण से दो बाते सामने आती हैं कि व्यास पारस (ईरान) गये थे, और तब पारसी लोग भारत को हिन्द तथा भारतीयों को हिन्दू कहने लगे थे; किन्तु स्वयं व्यास ने न अपने को न अन्य भारतीयो को हिन्दू कहा है और

२. हिंदू शब्द के उपयोग की शुरुआत ५४९ तथा ५२५ ईसा पूर्व के बीच (दारा द्वारा) हुई। "अपने पूरा लेख में दारा ने भारत और भारतीयों के अर्थ में पहली बार 'हिंदी' शब्द का प्रयोग किया था, जिसको बाद में, बहुत बाद में, भारतीय साहित्यों ने ग्रहण किया और जिसको हिन्दी और हिंदू के रूप में बार-बार दोहराया। (भारतीय संस्कृति के स्रोत, पृष्ठ ३९, भगवत शरण उपाध्याय)

३. हिंदू जाति का उत्थान और पतन, पृष्ठ ३-४, किताब महल इलाहाबाद, पं० रजनीकांत शास्त्री।

न भारत को हिन्दुस्तान कहा है। इस उदाहरण में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं पारसी लेखक ने अपने 'शातिर' ग्रन्थ में व्यास को अद्वितीय बुद्धिमान कहा है। और शायद उनका जरथुश्त या उनके अनुगामियों से वार्तालाप भी हुआ है। पारस-राजा गश्ताशप ने जबरदस्त या जरथुश्त को बुलाया जिससे वे धार्मिक या आध्यात्मिक बातें व्यास से कर सके। इस प्रकार ईसा के पांच सौ वर्ष पूर्व ही ईरानियों ने भारत को हिन्द देश एवं यहां के निवासियों को हिन्दू कहा। उनके ख्याल से हिन्दू कोई धर्म या मजहब नहीं; किन्तु हिन्दुस्तान में रहने वाले लोग हैं।

"हिन्दू' शब्द हिंद (भारत) के मुसलमानों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। मौलाना रूमी अपनी मसनवी में लिखते हैं—'चार हिंदू दर इके मसजिद शुदन्द, बहिरे ता अत एके ओ मसजिद शुदन्द।' अर्थात चार हिंदू एक मसजिद मे गये और इनायत (कृपा) के लिए सिजदा करने लगे। यहां पर यह शंका होती है कि हिंदू मसजिद में क्यों गये ? इस पर मसनवी के टीकाकार मौलवी बहरुल्ला साहब ने स्पष्ट लिखा है कि यहां हिन्दू से मतलब हिन्द के मुसलमानो से है[४]।"

श्री सुरेन्द्रनाथ लाल लिखते है—बहुत से अरब देशों में घूमते हुए मुझे कई बार एक अजीब प्रश्न का सामना करना पड़ता है। लोग मुझसे पूछते थे—'एन्ता, मिन आई बलद' (आप किस देश से आये है ?)। 'मिन अल हिन्द' (मैं भारत से) मेरा उत्तर होता था।

"अल हिन्द, अहसन अहलन व सहलन (भारत, बहुत अच्छा, आपका स्वागत है)। लगभग निश्चित रूप से दूसरा प्रश्न होता था—'एन्ता मुस्लिम' (क्या आप मुसलमान हैं ?)—ला अना हिन्दू' (नही, मै हिन्दू हूं)।

"इस उत्तर में मुसलमान अक्सर उलझन में पड़ जाते, वे कहते जी हां, हम समझ गये कि आप हिन्दू है, लेकिन क्या आप मुसलमान हैं ? यही बात वे कई बार दोहराते। अरब के अधिकतम लोग यह नही जानते हिन्दू भी कोई धर्म होता है। वे इसाई, यहूदी से तो परिचित हैं; परन्तु हिन्दू से नही। उनमें कुछ लोग बुधाई (बुद्ध धर्म) का ज्ञान रखते हैं, परन्तु हिन्दू का अर्थ उनके दिमाग में हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

"वैसे हिन्दू नाम अच्छा हो या बुरा, इसमें सन्देह नहीं कि यह नाम स्वयं अपने को हिन्दुओ ने नही दिया है। संस्कृत भाषा में इस शब्द का कहीं पता नहीं। हमारे पूर्वज अपने को आर्य जाति अथवा किसी छोटी विशिष्ट

४. हिंदू जाति का उत्थान और पतन, पृष्ठ ४।

जाति का वंशज समझते थे; परन्तु वे हिन्दू थे, इसका उन्हें पता नहीं। पहलवी अथवा प्राचीन ईरानी भाषा में संस्कृत ध्वनि 'स' बहुधा 'ह' उच्चारित होती है, जैसे फारसी में 'सप्त' को 'हफ्त' या 'असुर' का 'अहुर' और मास को माह कहते है। इस प्रकार ईरानी सिन्धु नदी के आस-पास के क्षेत्रों के रहने वालों को 'सिन्धु' न कहकर 'हिन्दू' कहा करते थे[५]।"

विद्यानिधि रजनीकांत शास्त्री लिखते हैं—"जिन-जिन संस्कृत ग्रंथों में हिन्दू शब्द आया हो, उन्हें अनार्ष तथा आधुनिक समझना चाहिए। यदि यह शब्द सस्कृत रहता तो वेदों में न सही, पर कम-से-कम स्मृतियो, पुराणो एवं रामायण तथा महाभारतादि आर्ष ग्रंथों तथा प्राचीन कोशो में अवश्य पाया जाता। और तो और, हमारा प्राचीन कोश-ग्रंथ अमर कोश भी इस 'हिन्दू' शब्द से पूर्णतः अनभिज्ञ है[६]।"

अन्ततः विचार यह करना चाहिए कि हिन्दू किसे कहें ? वस्तुतः प्राचीन पारसियों एवं आधुनिक विदेशी मुसलमानों के ख्याल से हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी मानव हिन्दू हैं; जैसे रूस में रहने वाले रूसी, चीन में रहने वाले चीनी आदि। परन्तु इसाई, मुसलमान, पारसी आदि जो आज हिन्दुस्तान में रहते हैं वे अपने को हिन्दू न मानते है न कहते हैं; इसलिए आधुनिक भारतीय विद्वानो ने हिन्दू की एक अच्छी परिभाषा की है। वह इस प्रकार है—"सिन्धु नदी से लेकर समुद्र पर्यन्त यह भारत भूमि जिनके पूर्वजों की जन्मभूमि तथा धर्मभूमि हो, उन्हें हिन्दू कहना चाहिए[७]।"

इस परिभाषा मे इसाई, पारसी, मुसलमान, यहूदी आदि अलग हो जाते हैं, क्योंकि इनका जन्मस्थान भारत भले है; किन्तु ये अपना धर्मस्थान रोम, पारस, अरब आदि मानते है। हां, इस परिभाषा में हिन्दू में वैदिक, बौद्ध, जैन, कबीरपंथी, सिक्ख, आर्यसमाजी, गोंड, संथाल आदि सब आ जाते हैं।

वस्तुतः हिन्दू शब्द जिन प्राचीन ईरानियो ने दिया है, उनके ख्याल से हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी लोग हिन्दू हैं और यह शब्द धर्म या मत-संप्रदाय से मतलब नही रखता, किन्तु भारतीय समाज से रखता है। यह उदार परिभाषा है; परन्तु कुछ संकीर्ण मन वालों के कारण हिन्दू शब्द आगे चल कर ब्राह्मणी मान्यताओ में सीमित हो गया।

५. आज, इलाहाबाद, २ अगस्त १९८६ ई० साप्ताहिक विशेषांक पृष्ठ ३।

६. हिंदू जाति का उत्थान और पतन, पृष्ठ ७।

७. आसिन्धु सिन्धुपर्य्यन्ता यस्य भारत भूमिका।
　पितृभूर्धर्म्मभूश्चैव　सर्वे　हिन्दुरितिस्मृतः।।
　　(हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, पृष्ठ ७)

वस्तुतः इस्लाम, इसाइयत, जैन, बौद्धमत आदि एक-एक महापुरुष द्वारा चलाये गये सम्प्रदाय हैं, इस प्रकार हिन्दू सम्प्रदाय नहीं है कि वह किसी एक व्यक्ति द्वारा चलाया गया हो। हिन्दू तो भारत देश का एक बहुव्यापी समाज है जो सागर की तरह है। पूरे हिन्दू किसी एक व्यक्ति, मान्यता एवं ग्रन्थ के प्रति एकनिष्ठ नहीं हैं। वेदों को जो ईश्वर-वचन मानता है वह हिन्दू है, जो उन्हें मात्र मानव निर्मित मानता है वह भी हिन्दू है। देवी-देवताओं को मानने वाले हिन्दू, न मानने वाले भी हिन्दू। तीर्थों में नहा कर पाप कटने की धारणा करने वाले हिन्दू और इस धारणा को न मानने वाले भी हिन्दू। ईश्वर की सत्ता मानने वाले हिन्दू, उसकी सत्ता न मानने वाले भी हिन्दू। वर्ण व्यवस्था मानने वाले हिन्दू, न मानने वाले भी हिन्दू। अवतारवाद मानने वाले हिन्दू, न मानने वाले भी हिन्दू। इस प्रकार हिन्दू समाज (सम्प्रदाय नहीं) विचारो मे उदार है। यह उसकी खूबी है। इसी के बल पर यह आज तक जीवित भी है। इसमें एक बहुत बड़ी त्रुटि है व्यवहार की अनुदारता, अर्थात जाति एवं वर्ण के आधार पर ऊँच-नीच का भेदभाव एव छूआछूत। इस भयंकर दोष ने इसे पतित कर दिया है। मुसलमानों में विचारो की अनुदारता है। वहा मुहम्मद, कुरान आदि की आलोचना में एक वाक्य भी नहीं कह सकते। परन्तु उनमे एक बहुत बड़ी अच्छाई है कि वे जाति-पाति के आधार पर ऊँच-नीच छूआछूत नही मानते। खेद है कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे की अच्छाइयो को न लेकर बुराइयों को ले रहे है। हिन्दू मुसलमानो की तरह साम्प्रदायिक मान्यता की जड़ता अपना रहे हैं और मुसलमान हिन्दुओ की तरह झूठे जाति-वाद में ग्रस्त हो रहे हैं। चाहिए यह कि हिन्दू मुसलमानो की व्यावहारिक उदारता लें तथा मुसलमान हिन्दुओं के विचारो की उदारता ले।

कबीर साहेब अन्ताराष्ट्रीय संत हैं। हिन्दू-मुसलमानादि जिस प्रकार अपनी संकीर्णता जाहिर कर रहे थे, संत कबीर जैसा आसमानी परिंदा उस प्रकार के किसी तंग कमरे मे कैसे बन्द हो सकता था। कबीर जैसे उच्चतम संत जगत में जन्में हुए किसी व्यक्ति को विश्व का कर्ता मान ले और किसी मजहबी एवं साम्प्रदायिक दायरे में अपने को बाध दे, यह कहां संभव था? कबीर जैसे उच्चतम संत को समझने के लिए व्यक्ति को अपने विचार तो उच्चतम बनाने ही चाहिए। ऐसे वजनदार पुरुष को छटांकों से तौलना हास्या-स्पद है।

आज आवश्यक है कि भारत का हर नागरिक हिन्दू, मुसलमान आदि न बन कर शुद्ध भारतीय बने और उसके भी पहले खालिस मानव।

१६
धर्म

'धर्म' जो लोक-मंगलकर है, उसका संसार में कितना दुरुपयोग हुआ है, यह प्रसिद्ध है। धर्म के नाम पर निरीह गाये, भैसे, बकरे, मुर्गे, सुअर, भेंड़े काटे जाते हैं। धर्म के नाम पर हिंदुओं-द्वारा मस्जिदें तोड़ी जाती है और मुसलमानों द्वारा मंदिर ढाये जाते हैं। धर्म के नाम पर ही ईसा, सुकरात, मंसूर, गांधी आदि को मौत के घाट उतार दिया गया। "३६० ई० में लाटपादरी थेवफिल ने पुस्तकों का भंडार धर्म विरोधी समझकर सिकन्दरिया के सारे पुस्तकालयों को जलवा दिया। ४१५ ई० में सिकंदरिया के ज्योतिषी थ्योन की लडकी तथा स्वयं गणित की पंडिता हिपाशिया का इसाई धर्मांधों ने बड़ी निर्दयता के साथ वध किया। ऐसे कितने ही पाशविक वधो और अत्याचारो से इसाई धर्मांधों को संतोष नही हुआ और अन्त मे ५२६ ई० में जिस शताब्दी में भाव्य, चन्द्रकीर्ति, प्रशस्तपाद, उद्योतकर जैसे दार्शनिक तथा बराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त जैसे ज्योतिषी हमारे यहां स्वतन्त्र चिंतन में लगे थे—इसाई राजा जस्तीनियन ने राजाज्ञा निकाल दर्शन के सभी विद्यालयो को बन्द करा दिया[1]।" धर्म के नाम पर ही विजयी मुसलमान अलेक्जेंड्रिया के विशाल पुस्तकालय की पुस्तके जला-जला कर छह महीने तक नहाने का पानी गरम करते रहे।[2] धर्म के नाम पर गैलीलियो, चार्ल्स ब्रूनो आदि अनेक वैज्ञानिकों का वध कर डाला गया। हजारों वर्षो से मजहबी लोग अपने-अपने तथाकथित धर्मो को बचाने के लिए दूसरे मजहबो के लोगो का कत्लेआम करते आये हैं। ईश्वर ने भी मारने और मरने की आज्ञा दे दी है[3]। एक धर्मी, दूसरे धर्मी को देखकर जल मरता है।

धर्म के नाम पर ही मानव समाज के एक बड़े हिस्से को शूद्र कहकर उसे पशु के समान जीने को विवश किया गया। उसे विद्या, शिक्षा एवं उच्च

१. दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ४२-४३, किताब महल इलाहाबाद, संस्करण १९६१।
२. एच० जी० राबिन्सन। दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ २१२।
३. अल्लाह ने मुसलमानों से उनकी जानें और उनके माल खरीद लिये हैं कि उनके बदले उनको जन्नत देगा ताकि अल्लाह की राह में लड़ें और मारें, और मरें, यह खुदा की पक्की प्रतिज्ञा है।

(कुरान, पारा ११, रकू १४, आयत १११)
प्रभाकर साहित्यलोक लखनऊ, छठां सस्करण।

संस्कार से दूर रहने का नियम दिया गया। धर्म के नाम पर ही पुष्यमित्र शुंग ने ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में बौद्धों के सिर काट कर लाने वालों को एक सिर के बदले में सौ स्वर्ण-मुद्रायें देने की प्रतिज्ञा की[४]। धर्म के नाम पर ही शंकर दिग्विजय में कहा गया कि उस समय राजाओं की यह आज्ञा थी कि हिमालय से कन्याकुमारी तक बालक-वृद्ध बौद्धों को जो नही मारता है वह राजा का नौकर स्वयं मृत्युदण्ड का अधिकारी है[५]। धर्म के नाम पर ही शैवों ने अहिंसकी वैष्णवों का कत्ले आम किया और इसी की प्रतिक्रिया में अन्ततः वैष्णवो ने भी नागादल बनाकर शैवनिपात करना आरम्भ किया। स्त्री, रुपये, जमीन और राज्य को लेकर पुराकाल से जितना रक्त बहाया गया है, उससे कम धर्म के नाम पर नही बहाया गया। मनीषी नीत्शे व्यंग मे कहते है—"वे अपने ईश्वर से प्रेम करने का, सिवाय मानव को शूली पर लटकाने के और कोई तरीका ही नहीं जानते।"

हिंसा के साथ धर्म अंधविश्वास का अड्डा बना हुआ है। सीधे-सादे ढग से झूठ बोलकर तुम समाज में प्रतिष्ठा नही प्राप्त कर सकते; परन्तु धर्म के नाम पर जितना अधिक झूठ बोलो उतना ही अधिक फूल-मालाये तुम्हे पहनायी जायगी। एक वकील और व्यापारी उतना झूठ नही बोलता जितना एक धर्मी बोल सकता है। धर्म के नाम पर मिलने वाले ग्रंथो में मिथ्याविश्वास छाये हुए हैं। वस्तु के गुण-धर्म, कारण-कार्य-व्यवस्था, सृष्टिक्रम आदि की परवाह किये बिना धर्म के नाम पर बड़ी-बड़ी गप्पे हांकी गयी है। इसीलिए क्रांतिकारी कबीर देव कहते हैं "जो लोग गद्दी सजाकर धर्म की कथा कहते रहते हैं; वे तो मानो सवेरे से उठकर मिथ्या विश्वासो से भरी हुई लम्बी-चौड़ी बाते ही हांकते हैं। वे सबेरे लवरी बानी हांकते है और शाम को भी; क्योंकि उनके हृदय में मिथ्या विश्वास भरे हुए है। राम उनका अपना स्वरूप ही है, यह भेद वे नहीं जानते, प्रत्युत वेद-पुराणो के नाना मतो मे उलझे रहते हैं। वेदादि धर्मशास्त्रो की नैतिक बातो का भी आदर नहीं करते, उनके अनुसार भी नही चलते। वे सदैव मोह एव भ्रांति की आग मे जलते रहते है, शांतन नही होते। ये तथाकथित धार्मिक लोग गुणातीत की कथा करते-करते अपन

४. यो मे श्रमणशिरो दास्यति तस्याहं दीनारशतं दास्यामि।
(दिव्यावदान)

५. आसेतुरातुषारद्रिर्बौद्धानां वृद्धबालकम्।
न हन्ति यः स हन्तव्यो भृत्य इत्येव संनृपाः।
(माध्वाचार्यकृत शंकर दिग्विजय)

आप को ही खो देते हैं और यथार्थ विवेक बिना उनका जीवन व्यर्थ समाप्त हो जाता है[६] ।" "पंडित लोग बैठकर पुराण पढ़ते है और बिना देखी बातों का व्याख्यान करते हैं[७] ।"

वैमनस्य, मिथ्या विश्वास एवं अवैज्ञानिक बातों से भरा हुआ तथा-कथित धर्म का स्वरूप वस्तुपरक बुद्धि रखने वालों के हितमार्ग में भ्रामक रूप लेकर खडा है । कितने विद्वान बुद्धिजीवी परम्परागत प्राप्त अंधविश्वासों, गलत रूढ़ियों, आधारहीन संस्कारों एवं मिथ्या मान्यताओं की रस्सी में बंधे हुए जीवन भर अनिच्छित घसिटते चले जाते हैं । वे उन पर विचार करने का साहस नही कर पाते । विचार करने पर उन्हें नास्तिक, काफर एवं नरकगामी होने का डर है । सत्य का हीरा तो वही पा सकता है जो नास्तिक और काफर कह कर धमकाने वालों से न डरे । आखीर, हनुमान जी सूरज कैसे निगल सकते हैं ? राजासगर के साठ हजार बच्चे एक साथ कैसे पैदा हो सकते है ? कबीर साहेब के कहने से दीवार या टूटी चौकी कैसे चल सकती है ? रामचन्द्र जी शंख, चक्र, गदा, पद्म लेकर कैसे पैदा हो सकते हैं ? रावण की आयु साढ़े पांच करोड़ वर्ष कैसे हो सकती है[८] । नानकदेव, ईसा, बुद्ध, कृष्ण, महावीर आदि के नाम में लगे हुए चमत्कार सत्य कैसे हो सकते हैं ? "धर्म लोगो के लिए अफीम है[९] ।" मार्क्स का यह कथन सर्वथा असत्य नहीं है ।

हम मजहब या मत को धर्म कहने लगते हैं । मजहब या मत में अच्छी-बुरी, सत्य-असत्य सभी प्रकार की बातें हो सकती हैं और उसको धर्म नाम देकर जब हम लोगो पर थोपने लगते हैं, तब अन्याय होता है । हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, इसाई धर्म, बुद्ध धर्म, जैन धर्म, कबीरपंथ धर्म, नानकधर्म आदि

६. धर्म कथा जो कहतहिं रहई । लाबरि उठि जो प्रातहिं कहई ॥
लाबरि बिहाने लाबरि संझा । एक लाबरि बसे हृदया मंझा ॥
रामहु केर मरम नहिं जाना । ले मति ठानिनि वेद पुराना ॥
वेदहु केर कहल नहिं करई । जरतई रहे सुस्त नहिं परई ॥
साखी—गुणातीत के गावते, आपुहि गये गवांय ।
माटी का तन माटी मिलिगो, पवनहिं पवन समाय ॥
(बीजक, रमैनी ६१)

७. बैठा पंडित पढ़ै पुरान । बिनु देखे का करत बखान ॥
(बीजक, शब्द १०५/५)

८. रावण की आयु ५, ६१, ६०००० वर्ष । अग्निपुराण ।

९. Religion is the opium for the people.

शब्द अत्यन्त भ्रामक हैं। ये सब मत-मजहब है, धर्म नहीं। मत-मजहब से लड़ाइयां उत्पन्न हो सकती हैं, धर्म से नहीं। परन्तु जब मत-मजहब को ही धर्म कहा जाने लगता है, तब धर्म का नाम बदनाम होता है। धर्म शाश्वत है, नित्य स्थिर है, मत-मजहब बदलने वाले हैं।

पूर्व मीमांसाकार जैमिनि कहते है "वेद जिसकी चोदना (घोषणा) करे वह धर्म है[१०]।" परन्तु यह बात ठीक नही। वेद बहुत विस्तार पूर्वक है। उनमें बहुत बाते है। उनमे नाना मत है। वेदों का अन्तिम मत क्या है, यह बता पाना असंभव है। करोड़ो-अरबों लोग वेद को अपना धर्मग्रन्थ नही मानते, फिर उनके धर्म का निर्णय कैसे होगा? अतएव वेद जो कहे वह धर्म है, यह कहने से काम नहीं चल सकता।

संस्कृत शब्द-शास्त्र के अनुसार 'धृ' धातु से धर्म शब्द बना है जिसका अर्थ धारण करना होता है। जो सबको धारण करे, संभाल रखे, वह धर्म है। इसका स्रोत हम ऋग्वेद में 'ऋत्' के नाम से पाते हैं। देश-काल-व्यापी अनन्त विश्व जिन नियमो में बधा अनादिकाल से चल रहा है, उसका ऋग्वैदिक नाम 'ऋत' है। वैज्ञानिक गवेषणा के अनुसार प्रकाश की किरणे एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार (१८६०००) मील भागती हैं, और इस ब्रह्माण्ड मे ऐसे भी ग्रह हैं जहां से हमारी पृथ्वी तक प्रकाश आने मे पांच अरब वर्ष लग जाय। फिर यह भी एक सीमांकन है। अनन्त देश और काल हमारी कल्पना की सीमा के बाहर हैं; परन्तु सबकी व्यवस्था जिससे होती है उसका नाम 'ऋत' है। वस्तुतः जड़ और चेतन मे अपने-अपने गुण और स्वभाव हैं। उनका दूसरा नाम 'धर्म' है। इसी को ऋग्वेद की भाषा में 'ऋत्' कहते है। जड़ द्रव्यों में जो गुण, स्वभाव एवं गति है वे ही उनमें 'ऋत्' या 'धर्म' कहलाते है और चेतन जीवों में जो ज्ञान-स्वभाव है, यही इसका 'ऋत्'[११] या 'धर्म' है।

पृथ्वी की कठोरता पृथ्वी का धर्म है, जल की शीतलता जल का धर्म है। इसी प्रकार आग की गरमी, वायु की कोमलता उनके धर्म है। भौतिक जगत में द्रव्य और गति सर्वत्र विद्यमान है। द्रव्य की गति ही द्रव्य का धर्म है जिससे उसकी अविच्छिन्न व्यवस्था है। अतएव धर्म धारणकर्ता है, यह बात सत्य है।

१०. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।।मीमांसादर्शन १/२।।

११. ऋग्वेद में ऋत के तीन अर्थ हैं—यज्ञों के विधान, विश्व-प्रकृति के नियम एवं मानव में नैतिकता के नियम। पीछे वाले दोनों अर्थ गंभीर हैं।

जीव जगत में ज्ञान ही उसका धर्म है। जीव अर्थात चेतन द्रव्य है तथा ज्ञान उसका धर्म है। क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी हर मनुष्य के भीतर ज्ञान की ज्योति निरन्तर जलती रहती है। वह ज्ञान ही उसका धर्म है। आंतरिक ज्ञान के अनुसार आचरण बनाना ही धार्मिक जीवन अपनाना है। हर कर्म के प्रति हमारे मन में विधि-निषेधात्मक स्वर उठते रहते हैं, 'यह करो, यह न करो' अंतरात्मा बताती रहती है। यह अंतरात्मा की आवाज ही धर्म है जो हर मनुष्य ही नही, कीट आदि जीव मात्र के अंदर विद्यमान है; परन्तु कीटादि मे विवेक न होने से वे असमर्थ हैं। मनुष्य अकल्याणपथ को छोड़कर कल्याण करने में सर्वथा समर्थ है। सद्गुरु कबीर कहते हैं "जैसे जीव का स्वयं शुद्ध स्वरूप है उस प्रकार उसका कोई उद्घाटन करने वाला समर्थ गुरु उसे मिल जाय तो उसके हृदय मे धर्मजनित आत्यंतिक सुख की प्राप्ति हो[१२]।"

मनुष्य का जो अपना स्व 'चेतन' है, सद्गुरु के उपदेश एवं स्वविवेक से जब उसका बोध हो जाता है और उस बोधस्वरूप मे स्थिति हो जाती है, तब उसे चिर अभिलषित अनन्त शांति की प्राप्ति होती है। यह स्वरूपस्थिति जनित अनन्त सुख ही धर्म का सुख है। इन्द्रियजन्य विषय सुखों से ऊपर उठकर और सर्वत्र से अप्रभावित हो अपने उच्च चरित्र की मर्यादा में मनुष्य का स्थिर होना ही उसका धारत्व है, और यह काम जिससे हो उस अंतरदृष्टि एवं विवेकज्ञान का नाम ही धर्म है। धर्म धारण करता है। मनुष्य की नैतिक मर्यादा का धारण करने वाला उसका आंतरिक विवेक-ज्ञान ही है। इसीलिए मनु जी ने भी कहा "मन से विवेक करके आचरण करो[१३]।" तथा "जिस कार्य के करते रहने से अंतरात्मा प्रसन्न हो, उस कार्य को प्रयत्नपूर्वक करे और उसके विरुद्ध कार्य का त्याग कर दे[१४]।" महाभारत कहता है "जो सत्य है वह धर्म है, जो धर्म है वही प्रकाश है, जो प्रकाश है वही सुख है[१५]।"

मत, मजहब, समाज, संप्रदाय आदि किसी देश और किसी काल में बनते हैं। उनके नियम, चिह्न, पारिभाषिक शब्द, संस्कारादि किसी महापुरुष या तात्कालिक समाज द्वारा निर्धारित होते हैं। समय-समय से उनमें परिवर्तन,

१२. जस जिव आपु मिलै अस कोई। बहुत धर्म सुख हृदया होई॥
(बीजक, रमैनी १७/१)

१३. मनःपूतं समाचरेत्। मनुस्मृति ६/४६।

१४. यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मन.।
तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥ मनुस्मृति ४/१६१॥

१५. यत् सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत्सुखमिति। (महाभारत)

परिवर्त्तन भी होते हैं; परन्तु धर्म मनुष्य की अंतरात्मा का विषय है, वह सदैव अक्षुण्ण रहता है। जब दो आदमी इकट्ठे हों, तब एक दूसरे के दुख को दूर करने का प्रयत्न करे, यही धर्म है। दूसरे को दुखी देखकर द्रवित हो जाना और बन सके तो उसके दुख को दूर करने का प्रयास करना यही धर्म है। पूजा-नमाज और राम-रहीम शब्द सांप्रदायिक हैं; अतः धर्म इनमें सीमित नही कर सकते। कबीर साहेब कहते हैं—"जब बांग, नमाज, कलमा, संध्या, पूजा, राम रहीम आदि शब्दों का प्रचलन नहीं था, तब धर्म था कि नहीं ?[१६]

मान लो, कोई एक नया लोक मिल जाय। जिसमें सुसभ्य मानव हों, तो क्या वहां राम-रहीम, वेद, कुरान, बाइबिल आदि के प्रचलन होगे ? कदापि नहीं। उनके अपने नियम या ग्रंथ होंगे; किन्तु दूसरे पर दया करना चाहिए, यह भाव वहां भी होगा और यही परम धर्म है। अहिंसा और दया ही परम धर्म है। इसको आप हलका मत समझे। जो व्यक्ति अपने आप को जितना साध लिया होगा, वह उतना ही अहिंसा व दया का व्यवहार कर सकता है। जो पूर्ण दयावान है, वह पहले ही पूर्ण आत्म-विजयी हो गया है।

सरसरी तौर पर जो लोग धर्म से घृणा करते हुए-से दिखते हैं, उनका भी आंतरिक आकर्षण धर्म के लिए ही है। वे धर्म के नाम पर मजहब से घृणा करते हैं। यद्यपि मत-मजहब भी कोई अपराध नही है। उससे भी समाज का हित होता है; परन्तु जब उसका दुरुपयोग किया जाता है, तब वह घृणा का पात्र बनता है। मन की शांति सबको प्रिय है और जिन आचरणों से शांति मिलती है, वही धर्म है। इस धर्म को कोई अस्वीकार कर नही सकता। नाना धार्मिक ग्रंथों मे जो क्षमा, दया, शम, दम, संतोष, धैर्य, सत्य, अस्तेय, पवित्रता, निर्वैरत्व, समता आदि धर्म के नाम से कहे गये है, वह ठीक ही है। यही धर्म के व्यावहारिक स्वरूप हैं। सारांश—जिससे मनुष्य को शांति मिले, वही आचरण धर्म है।

इस प्रकार धर्म न घृणा और हिंसा है, न मिथ्या विश्वास है और न वह अफीम है; क्योकि वह केवल मत और मजहब नही है। धर्म है भौतिक जगत की व्यवस्था का नियम और आध्यात्मिक जगत की नैतिकता का प्राण !

रही मत, मजहब, पंथ, संप्रदाय, समाज आदि की बात। ये विश्व के विभिन्न देशो, प्रदेशो एव क्षेत्रो मे विभिन्न महापुरुषो द्वारा जनकल्याण के लिए चलाये गये हैं। परन्तु जब इन पर तथाकथित ईश्वर, अवतार, पैगम्बर आदि

१६. बीजक, शब्द २२।

की मोहर लगा दी जाती है, तो ये मत-मजहब क्रूर हो जाते हैं। सारे संप्रदाय मनुष्य की बनायी नियमावलियां हैं। वे समय-समय पर परिवर्तनीय एवं परिवर्धनीय हैं। सत्य सभी मतों से ऊपर है। पृथ्वी नित्य है, उस पर पथ बनते और मिटते है। इसी प्रकार सत्य नित्य है और उसके साक्षात्कार के लिए मत-संप्रदाय बनते और मिटते हैं। अतएव सच्चा धर्म सभी मत, मजहब एव संप्रदायों से परे है।

२०

वर्णव्यवस्था

भृगु जी भरद्वाज से कहते हैं "पहले वर्णो में कोई अन्तर नहीं था। ब्रह्मा जी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत ब्राह्मण ही था। पीछे विभिन्न कर्मो के कारण उनमें वर्णभेद हो गया। जो अपने ब्राह्मणोचित धर्म का परित्याग करके विषय भोग के प्रेमी, तीखे स्वभाव वाले, क्रोधी और साहस का काम पसंद करने वाले हो गये और उन्हीं कारणों से जिनके शरीर का रंग लाल हो गया, वे ब्राह्मण क्षत्रिय-भाव को प्राप्त हुए—क्षत्रिय कहलाने लगे। जिन्होंने गौवों तथा कृषिकर्म के द्वारा जीविका चलाने की वृत्ति अपना ली और उसी के कारण जिनके रंग पीले पड़ गये तथा जो ब्राह्मणोचित धर्म को छोड़ बैठे वे ही ब्राह्मण वैश्यभाव को प्राप्त हुए। जो शौच और सदाचार से भ्रष्ट होकर हिंसा और असत्य के प्रेमी हो गये, लोभवश व्याधों के समान सभी तरह के निंद्य कर्म करके जीविका चलाने लगे और इसीलिए जिनके शरोर का रंग काला पड़ गया, वे ब्राह्मण शूद्रभाव को प्राप्त हो गये। इन्ही कर्मों के कारण ब्राह्मणत्व से अलग होकर वे सभी ब्राह्मण दूसरे-दूसरे वर्ण के हो गये; किन्तु उनके लिये नित्य धर्मानुष्ठान और यज्ञ कर्म का कभी निषेध नहीं किया गया है[1]।"

१. न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥

उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि पृथ्वी की पूरी मानवजाति का एक ही मूल है। ब्रह्मा नाम के एक ही व्यक्ति से सब मनुष्यों की उत्पत्ति तो आलंकारिक है। जगत और मनुष्य सदा से हैं। परन्तु इसका सार यह हुआ कि मनुष्य की जाति एक है। गुण-कर्मो से ही उनका चार वर्णो मे विभाग हुआ है। महाभारतकार साफ कहते है कि चार वर्णो का विभाग हो जाने पर भी उनमें किसी को, यहां तक शूद्र तक को धर्मानुष्ठान और यज्ञकर्म करने का निषेध नहीं किया गया।

छांदोग्य उपनिषद् में कैकयदेशीय राजा अश्वपति कहते हैं—"मेरे जनपद में न चोर है, न जुआरी, न मदिरा पीने वाला, न नही यज्ञ करने वाला और न व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी आये ही कहा से[२] ?" जब जनपद में ऐसा कोई नही है कि वह विना यज्ञ किये रहता हो, तो निश्चित ही शूद्र भी यज्ञ करता होगा; क्योंकि पूरे जनपद में शूद्र हो ही नही, ऐसा संभव ही नहीं है, बल्कि सर्वदा शूद्रो की ही संख्या अधिक रही है।

निश्चित ही यह युग उदार रहा होगा। स्वभाव और पेशे के अनुसार चार वर्ण हुए; परन्तु कोई किसी को अशुद्ध नही मानता रहा। धर्माचरण एवं यज्ञकर्म में सबका अधिकार रहा। परन्तु जैसे-जैसे दूसरे वर्ग के लोगों के चरित्र गिरते गये, वैसे-वैसे सभ्य लोगों को उनसे घृणा होती गयी और उन्हें अछूत मानने लगे, तथा उनका समाज के उच्चकार्य एवं अधिकारों से बहिष्कार किया जाने लगा। इस प्रकार उनमें सुधार की संभावना भी घटती गयी और आगे चलकर वह वर्ग शूद्र कहलाया और शारीरिक और मानसिक विकास से कमजोर होता गया।

विचार यह है कि जब सबका मूल एक है और अपने गुण-कर्मो के अनुसार ही चार वर्ण हो गये हैं, तब जिनमें पुनः जो गुण आ जाये उन्हें उसी वर्ण के माने जाने चाहिए। जब बुरे कर्मों के कारण ब्राह्मण शूद्र हो गये, तब

हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रता गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णांतरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
(महाभारत, शांतिपर्वांतरगत मोक्षपर्व, अ० १८८, श्लोक १०-१४, टीका, गीता प्रेस)

२. न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥ (छांदोग्य ५०५ ११.५)

अच्छे कर्मों से वही शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं हो सकता, चूंकि मूलतः सब ब्राह्मण हैं। पहले वर्ण और वर्ग रहित सब एक ही जाति के थे, इसकी झलकियां आधुनिक विकासवाद-भौतिकवाद-मार्क्सवाद में भी मिलती हैं। भौतिक मार्क्सवाद कहता है बहुत पहले आदिम समाज साम्यवाद से पूर्ण था। यह पत्थर युग था। इस समय पत्थर, लकड़ी, सींग और हड्डी के बने औजार थे। सब सामूहिक समाज में रहते थे। खेती करते थे और मेहनत का फल बराबर-बराबर बांट लेते थे।

दूसरा युग धातु और लोह का आया। खेती-व्यापार की वृद्धि हुई। चतुर लोग साधारण लोगों को गुलाम बना कर रखने लगे। उनके प्राण चलने भर की उन्हें सामग्री देकर शेष हड़प लेने लगे। इसके बाद मशीन का युग आया और सामंतवाद आया। धन और जमीन पर सामंतो का प्रभुत्व हुआ। आगे तार, भाप, विद्युत तथा भारी भौतिक शक्तियों की ईजाद हुई और बड़ी-बड़ी फैक्टरियां खड़ी हुईं तथा पूंजीवाद पनपा और टाटा, बिड़ला, डालमिया जैसे बडे-बडे पूजीपति विश्व में हुए। इनकी बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में हजारो मजदूर काम करते रहे। मालिक इनका शोषण करता रहा। अतएव मजदूर भड़क कर विद्रोह किये और पूंजीवाद से समाजवाद तथा पुनः साम्यवाद में पनपने का अवसर आया। इस प्रकार भौतिकी अध्ययन में भी पहले (आदिम समाज में) वर्गहीन साम्यवादी स्थिति थी। साम्यसमाज, दास समाज, सामंतवाद, पूजीवाद, समाजवाद तथा अंतिम शुद्ध साम्यवाद—यह भौतिक समाज के विकास का मार्क्सवादी अध्ययन है। इस दृष्टि से भी पहले सब साम्यावस्था में थे, पीछे ऊंचे-नीचे वर्ग बने[३]।

३. समाजवादी धीरे-धीरे पूंजीवादी व्यवस्था मे सुधार करते हुए शांतिपूर्ण ढंग से वर्गहीन समाज की व्यवस्था चाहता है और साम्यवादी क्रांति और संघर्ष द्वारा एकाएक उस व्यवस्था को लाना चाहते हैं। समाजवादी सुधारक है तथा साम्यवादी क्रांतिकारी। समाजवाद (Socialism) का आर्थिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक श्रमिक को अपनी योग्यता के अनुसार न मिलकर अपने श्रम के अनुसार वेतन मिले और साम्यवाद (Communism) का आर्थिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक श्रमिक को अपनी योग्यता के अनुसार न मिलकर अपनी आवश्यकता के अनुसार वेतन मिले। साम्यवाद की अवस्था अभी दुनिया में कहीं नहीं आयी है। हां, रूस आदि में समाजवादी व्यवस्था हुई है। रूस ने बहुत पहले घोषणा की थी कि हम सन् १९८० तक अपने यहां साम्यवादी व्यवस्था ला देंगे। साम्यवादी व्यवस्था के लिए उत्पादन प्रचुर मात्रा में चाहिए।

(नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण)

सोवियत रूस वासी प्रोफेसर 'म०फ० नेस्तुर्ख' ने अपनी वैज्ञानिक खोज-पूर्ण पुस्तक 'मानव जाति' में मनुष्यों की त्वचा, केश, आंखों के रंग, केशों के प्रकार, पलकों, नाक, होठ, चेहरे और मस्तक की आकृति तथा लंबाई आदि के आधार पर पृथ्वी के सभी मानवों को 'नीग्रोसम, यूरोपाभ[४] तथा मंगोलाभ'—तीन वर्गों में बांटकर उनका बुनियादी वंशज एक परम्परा का ही माना है।

ऋग्वैदिक ऋषि कहते हैं "विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय, दोनो जघनों से वैश्य तथा पैरों से शूद्र पैदा हुए[५]।" यहां भी आलंकारिक भाषा में कहकर यह व्यक्त किया गया है कि गुण-कर्म के अनुसार वर्णों की व्यवस्था हुई। समाज ही विराट पुरुष है, इसीलिए 'पंच परमेश्वर' कहा जाता है। इस समाज रूप विराट पुरुप का मुख ज्ञान, हाथ बल, जांघ संपत्ति और पैर श्रम है। मुख निरवस्त्र रह कर भी अधिक चमकता है, अतः वह तपस्वी है; आंख, नाक, कान, जीभ, मस्तिष्क—सब मुख के साथ हैं जो ज्ञान के साधन एवं भण्डार हैं; सिर दूसरे के सामने झुकता है; मुख सारे शरीर के लिए खाता है; अतः जो तपस्वी, प्रसन्न, ज्ञानवान, विनम्र और परोपकारी हो वह ब्राह्मग है। यही विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पति का अर्थ हो सकता है।

हाथ शरीर की रक्षा करता, दुष्ट को मारता, दूसरे की सेवा करता, दूसरे के सामने संपुटवद्ध होता और दान करता है। यह सब लक्षग जिसमें हो वह क्षत्रिय है। उरु (जंघों) से यहा पेट लें। पेट समस्त खाये हुए पदार्थों का संग्रह कर लेता है; परन्तु वह बेईमान नही। वह उसके रस-रक्त को सारे शरीर मे भेज देता है। इस प्रकार व्यापारी का संग्रह लोकमंगल के लिए होना चाहिए। या उरु (जंघे) के बल से ही धन कमाया जाता है। यही उरु या पेट से वैश्य की उत्पत्ति की बात है। सारा शरीर पैरो पर स्थिर है। इसी प्रकार सारा समाज कर्मठों, श्रमिको पर निर्भर करता है। यही विराट पुरुप के पैरों से शूद्रो की उत्पत्ति का अर्थ हो सकता है। कल्पना है कि भगवान के पैरों से शूद्र हुए और भगवान के पैरों से गंगा; अतएव दोनों भाई-बहन हुए। गंगा पतितपावनी हुई, फिर शूद्र अशुद्ध क्यों ?

इस प्रकार भारतीय वर्ण-व्यवस्था में कुछ ऐतिहासिक तथ्य हैं। जिस समय इसकी स्थापना हुई, उस समय इसकी उपयोगिता रही होगी। उस समय

४. यूरोपाभ में भारतीय आते हैं।

५. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य: कृत:।
उरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ (ऋग्वेद १०/९०/१२)

विद्या और आध्यात्मिक शक्ति के सवर्द्धक ब्राह्मण, समाजरक्षक क्षत्रिय, अर्थ-व्यवस्थापक वैश्य एवं श्रमिक शूद्र कहलाये। परन्तु हजारो वर्षो से आज तक यही देखा जाता है कि गुण, कर्म और पेशे से कोई मतलब नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के रूप में रूढ़ हो गए हैं। आज सब वर्णो एवं जातियों में सब प्रकार गुण-कर्म तथा पेशे वाले हैं। ब्राह्मणों में विद्वान, तपस्वी, सिपाही, व्यापारी-खेतिहर और श्रमिक हैं और तथाकथित शूद्रों में भी विद्वान, तपस्वी, सिपाही, व्यापारी-खेतिहर और श्रमिक हैं। इसी प्रकार अन्य दो वर्गों में भी। अतएव आज वर्णव्यवस्था कहां रही। भागवतकार ने बहुत पहले ही कह दिया है "जिस पुरुष के वर्ण को बताने वाले जो लक्षण कहे गये हैं, ये यदि दूसरे वर्ण वाले में भी मिले तो उसे भी उसी वर्ण का समझना चाहिए[६]।" स्वामी विवेकानन्द कहते है "पुरोहित गण चाहे कुछ भी बकें, वर्णव्यवस्था केवल एक सामाजिक विधान ही है, जिसका काम हो चुका है। अब तो वह भारतीय वायुमंडल में दुर्गन्ध फैलाने के अतिरिक्त कुछ नही करती[७]।"

वर्ण और जाति के विषय में सद्गुरु कबीर का तर्क साफ है। वे कहते है मनुष्य जाति एक है। उसकी मौलिकता में अन्तर करना संभव ही नही है। "एक ही मानव माता-पिता से सभी मनुष्यो की उत्पत्ति हुई, फिर किस समझ से ब्राह्मग आदि वर्ण स्थिर हो सकते हैं[८]?" मनुष्य अपने गुणकर्मो से तो ऊंच-नीच हो सकता है, परन्तु जन्म से ऊंच-नीच नही हो सकता। सद्गुरु कहते है "यदि तू सच्चा ब्राह्मग है और ब्राह्मणी से ही पैदा हुआ है तो दूसरे रास्ते से क्यो नहीं पैदा हुआ, और ऐ मुसलमानो! यदि तुम सच्चे मुसलमान हो और मुसलमानिन से जन्मे हो, तो पेट मे से सुन्नत कराकर क्यो नही आये। काली-पीली गाये दुह कर दूध रखे जायं तो क्या उनके दूध का विभेद किया जा सकता है? इसी प्रकार काले-गोरे मनुष्यो की मौलिकता में भी कोई भेद नही है[९]।" ब्राह्मग, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी में काले-गोरे होते हैं। यदि शूद्रो मे

६. यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥ (भागवत ७-११-३५)

७. विवेकानन्द पत्रावली, पृष्ठ ३११।

८. एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञान से भयो निनारा॥बीजक, रमैनी १/६॥

९. जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणि को जाया। और राह दे काहे न आया॥
जो तू तुरुक तुरुकनि को जाया। पेटहिं काहे न सुन्नति कराया॥
कारी पियरी दुहहु गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई॥
(बीजक, रमैनी ६२/३-५)

जो गोरे हैं वे ब्राह्मण-क्षत्रियों के अंश हैं, तो जो क्षत्रियों-ब्राह्मणों में काले हैं, वे फिर शूद्रों के अंश सिद्ध हो जायेंगे। नस्ल भी आज तक किनकी शुद्ध रही है? मिथ्या डींग कोई भले हांक ले; परन्तु सत्य की कसौटी पर कसने पर सिद्ध हो जाता है कि कोई वर्ण नस्ल में भी अपनी मर्यादा में नहीं रहा। मनु के अनुसार भी "क्षत्रिय की लड़की क्षत्रिय और ब्राह्मण को, वैश्य की लड़की वैश्य, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय को और शूद्र की लड़की शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को व्याही जाती ही थी[10]।" फिर तो जाहिर या छिपे कोई वर्ण दूसरे से नस्ल में एकदम अलग नहीं रह गया।

सद्गुरु कबीर कहते हैं वर्ण एवं जाति का अहंकार छोड़ो। मनुष्य केवल मनुष्य है "सभी मनुष्यों की एक ही प्रकार त्वचा है, एक ही प्रकार हड्डी, मल, मूत्र, रक्त एवं मांस हैं और एक ही प्रकार के वीर्यबूंद से मानवीय सृष्टि की रचना है, फिर कौन ब्राह्मण है और कौन शूद्र है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्रमशः रज, सत एवं तम गुणों के प्रतिनिधित्व करने वाले काल्पनिक देवता हैं। हे मानव! आत्माराम में रमण कर। न कोई हिंदू है और न कोई मुसलमान। गुप्त व प्रकट मानव की एक ही जाति है। किसको ब्राह्मण और शूद्र कहा जाय? मिथ्या अहंकार में कोई मत भूलो, हिंदू और मुसलमान दोनों कुल झूठे हैं। बस, मानवता ही एक कुल या जाति है। इन सारे चित्रों का कल्पक चेतन जीव ही सच्चा सूत्रधार है। अतएव वही श्रेष्ठ ज्ञानी है जो चित्रकार चेतन स्वरूप को परख ले[11]।"

वस्तुतः जाति संस्कृत भाषा का शब्द है। जाति का शुद्ध अर्थ होता है पैदा होना। बकरी और बैल से, शूकरी और घोड़ा से बच्चे नहीं पैदा होते, अतः इनकी जातियां भिन्न हैं। इसी तरह अन्य को भी समझ लें; किन्तु

१०. मनुस्मृति, ३/४४।

११ एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा ॥
एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा ॥
रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि होई ॥
कहहि कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई ॥
(बीजक, शब्द ७५/५-८)

गुप्त प्रगट है एकै दूधा, काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा ॥
झूठे गर्भ भुलो मत कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई ॥
साखी—जिन्ह यह चित्र बनाइया, सांचा सो सूत्रधार।
कहहि कबीर ते जन भले, जो चित्रवंतहि लेय निहार ॥
(बीजक, रमैनी ३६)

भूमंडल के एक कोने की नारी तथा दूसरे कोने के नर-मनुष्य से बच्चे पैदा होते हैं; अतः पूरे मानव की जाति एक है।

प्रतिक्रियावादी लोगों द्वारा कहा जाता है कि यह वर्णव्यवस्था प्राकृतिक है। देखो, आज भी ब्राह्मण अधिक तेजस्वी और विद्या में आगे हैं, क्षत्रिय आज भी साहसी हैं, वैश्य आज भी अधिक व्यापार-कुशल है तथा शूद्र आज भी अधिक शारीरिक परिश्रमी है। बात आंशिक सच है, परन्तु इसकी बुनियाद मे क्या रहस्य है ? यह छिपा नही है। यह इसलिए नही है कि ब्राह्मण भगवान के मूड़ से पैदा हुए है, इसलिए विद्या मे आगे है तथा इसी प्रकार अन्य। यह तो हजारों वर्षो से किये अभ्यास का परिणाम है। अध्ययन-अध्यापन का काम हजारो वर्षो से ब्राह्मण करता रहा, तो उसकी परम्परा मे उसकी निपुणता स्वाभाविक है। शूद्रों पर ताला लगा दिया गया था, वे पढ़ नही सकते थे, कोई सभ्य संस्कार में सम्मिलित नही हो सकते थे, तो उनकी परंपरा पंगु न हो तो क्या हो ? शूद्रो के पिछड़ेपन मे क्या ब्राह्मण दोषी नही है जो उन्हें मूढ़ बने रहने को हजारों वर्षो से विवश किया है। आज की तरह पहले भी सबको सब दिशा—विद्या, तप, रक्षण, व्यापार, खेती, श्रम आदि मे विकास करने की छूट होती तो क्या ब्राह्मण का ही लड़का मनु बनता, महार का लड़का अम्बेडकर मनु न बनता जो इस बीसवी सदी के स्वतत्र भारत में बनकर दिखा दिया। आज जब छूट हुई, तब कितने शूद्र कहे जाने वालो के लाल विद्या-शिक्षा में आगे बढ़कर ऊंचे-ऊंचे पदो पर आसीन हैं। आखीर विदेशो में जहां वर्णाभिमानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नही है, वहां एक-से-एक ज्ञानी-विज्ञानी और विद्वान हजारो वर्षो से कैसे होते आये हैं ? सारी उच्चता वैदिक ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों की ही ठेकेदारी में है, तो भारत के बाहर जहां ये नहीं हैं वहां विद्या और मानवता का उजागर कौन कर रहा है ?

यदि हमारे भारतवर्ष में मानव समानता का अधिकार पहले से होता, तो जिनमें जो योग्यता होती उसके विकास का अवकाश होता। हमने अपने अहंकार और अंधे स्वार्थ-वश अपने समाज के एक बड़े वर्ग को शूद्र कह कर उन्हें बुरी तरह से कुचल दिया। उनकी शिक्षा और सभ्य-संस्कार का द्वार बन्द कर दिया। इससे हम अपने ही अंगो को काटकर अपने को निर्बल बनाने की मूर्खता का प्रदर्शन किये और अपने को सहस्राब्दियो तक विदेशो का गुलाम बनाये रखे।

आज भी इस मिथ्या वर्ण एवं जाति[१२] का भूत सर्वत्र व्याप्त है। केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय ही नही; अग्रवाल, कायस्थ, कुर्मी, जायसवाल, यादव,

१२. केवल हिन्दू जाति ही दूसरे को तुच्छ समझती हो, ऐसी बात नहीं है। इस अज्ञान का पसारा कम-बेश हर देश में है। पहले अधिक था। सर

जाट, सिक्ख आदि जो जहां जमें हैं, दूसरों को नहीं घुसने देना चाहते। शुद्ध मानवता के विकास के लिए मिथ्या वर्णाभिमान और जातिवाद छोड़ना ही पड़ेगा। समस्त मानवों की एक मानव ही जाति है, इस बात को हमें अपने चित्त में जमा लेना चाहिए। महामानवतावादी सद्‌गुरु कबीर की यह बात हमें याद कर लेना चाहिए—

"एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा।"
"कहहि कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई।"

२१

छुआछूत

जो आदमी टट्टी होकर आया है, जब तक स्नान नहीं कर लेता, वह अछूत है। जो किसी प्रकार अशुद्धि में हो वह तब तक अछूत है जब तक उससे निवृत्त न हो जाय। कोई सफाई-शुद्धता ठीक से नहीं रखता या रोगी है, तो वह अछूत है। किसी के कुवेष एवं अशौचता देखकर दूसरों को स्वाभाविक वितृष्णा होती है। किसी के शरावपान, मांसाहार, दुर्व्यसनों एवं दुराचरणों के कारण सदाचारी व्यक्ति के मन में असन्तोष होता है, तो यह स्वाभाविक है; परन्तु किसी के शुद्ध सदाचारी एवं सुसभ्य रहते हुए भी उसको अछूत कहना हमारे मन का कुसंस्कार है। हमारे पास कोई आता है। वह स्वच्छ है। उससे हमें घृणा नहीं होती। हम उससे पूछते हैं कि तुम किस जाति के हो? वह कहता है मैं भंगी या चमार हूं। हमारे मन का भंगी या चमार उठ खड़ा होता है और हम समझते हैं कि यह अछूत है। इसको दूर बैठाओ। जब वह

राधाकृष्णन् लिखते हैं "प्राचीनकाल के यूनानी, विदेशियों को जंगली समझते थे। रोमन-सेनापति कुंटिलियन वैरस ने जर्मेनिया के निवासियों के विषय में कहा था 'यह ठीक है कि वे मनुष्य हैं; परन्तु आवाज और शरीर के अंगों के सिवाय उनमें मनुष्य का और कोई अंश नहीं है।" फ्रांसीसी दार्शनिक मोन्तेस्क्यू (१६८९-१७५५ ई०) ने हब्शियों के विषय में कहा था "कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि परमात्मा ने, जो कि इतना बुद्धिमान है, एक बिलकुल काले शरीर में कोई आत्मा, और वह भी अमर आत्मा, डाली होगी। यह सोच पाना असम्भव है कि ये लोग मानव-प्राणी हैं।"

(गीता टीका, पृष्ठ २५०, ई० १९६९)

देखने में स्वच्छ लग रहा है और उसका आचरण ठीक जान लिया गया, तब वह भंगी-चमार कहां है। उसके प्रति भंगी-चमार की हमारी धारणा है। वह हमारे मन का भंगी-चमार है। कोई भंगी और चमार का काम करे ही, टट्टी फेके और चाम कमाये; परन्तु जिस समय वह स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन कर पवित्र स्थिति में हो, तो अछूत क्यों ? हम स्वयं सुबह उठकर अपना भंगी बनते है। तो क्या जो दूसरे की टट्टी साफ कर दे वह पापी बन गया।

निराधार अर्थात मिथ्या जाति को लेकर छुआछूत की भावना हिन्दू समाज में एक महाकोढ़ है। यह कोढ़ हजारो वर्षो का है। अतएव यह केवल कानून या जबर्दस्ती से दूर होने वाला नही है। इसके लिए हल्ला-गुल्ला एवं आंदोलन भी सफलता के हेतु नही बन सकते। इसके लिए शिक्षित और समझ दारो की ओर से यथासंभव समता का व्यवहार और अकारण किये जाने वाले छूतछात के निवारण की समझदारी देने का प्रयास करना चाहिए। छुआछूत-निवारण करने के लिए कुछ उत्साही लोग महर्षि मनु, राम और कृष्ण तथा ब्राह्मणों को गाली दे लेते है और कही मनुस्मृति के पन्ने फाड़ या जला देते है; परन्तु यह या तो अपने नाम के प्रचार के लिए किया जाता है या उत्तेजना में पड़ कर। इससे दूसरे वर्ग के मन मे दुःख, वैर, घृणा और हिंसा बढ़ने के सिवा समता नही आ सकती। हम दूसरे सिह को मार कर स्वयं सिह बनना चाहते हैं। जो हजारो वर्षो की मानसिक गंदगी है वह विरोध करने से नही दूर होगी। उसके लिए प्रेम के बलपर सत्य समझाना पड़ेगा। निराधार, केवल वर्ण या जाति के नाम पर छुआछूत की भावना एक मानसिक सनक है, अवैज्ञानिक मिथ्या धारणा है और सच्ची समझदारी द्वारा इसका अन्त होना निश्चित है। फिर सच्ची समझदारी न देकर किसी के दिल के साथ बलात करने से क्या फल हो सकता है ? वस्तुतः लोग जितना शिक्षित होते जायेंगे, छुआछूत समाप्त होती जायेगी।

भारत में या कहना चाहिए हिन्दू समाज में छुआछूत का पागलपन अति व्यापक है। आज भी कुछ ब्राह्मण हैं जो दूसरे ब्राह्मणों का बनाया भोजन नही खाना चाहते। शुक्ल तिवारी से दूर और पांडे मिश्र से अलग चौका रखने वाले। फिर तो क्षत्रिय, वैश्य, कुर्मी, मुराव, जायसवाल, पटेल, तेली, धोबी, चमार, मोची, भंगी—सब उन्चास हाथ है। उच्च कही जाने वाली जाति तो तथाकथित भगवान के घर के सदस्य हैं ही, साधारण चमार, चाम कमाने वाले चमार से रोटी-बेटी का संबंध नही रखता। भंगी से दोनो प्रकार के चमार सम्बन्ध नही रख सकते। कुर्मी अपने अहंकार में चूर हैं, तो मुराव और यादव उनसे आगे हैं। हमारे यहां दूसरे को अछूत तथा छोटा मानना ही सबसे

बड़ा धर्म बन गया है। मांस पकाते समय भी यह सावधानी रखी जाती है कि दूसरे से छू न जाय। यदि घर में कोई मर जाय तो घर बारह दिन तक अशुद्ध माना जाता है जब तक शुद्धि कर्म न हो जाय; परन्तु मांस पका कर खा लेना अशुद्धि नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कुर्मी, यादव, पटेल, मुराव सबके परिवार में शराबी-मांसाहारी-दुर्व्यसनी और गंदे होते हैं; परन्तु वे उनको अछूत कह कर अलग नहीं कर पाते। केवल दूसरी जाति को अछूत कहते रहते हैं। हम पशु और पक्षी के बच्चे को यहां तक कुत्ते को गोद में खेला लेते हैं; परंतु पवित्र मनुष्य के बच्चे को अछूत मानते हैं।

सद्गुरु कबीर कहते हैं "पंडित जी ! मन में विचार करके देखो। कहो भला, छूति कहां से उत्पन्न हुई जिससे तुमने छूत मान ली। नाद, बिन्द और रक्त के साथ में माता के गर्भ में तुम्हारा शरीर नौ महीने पकता रहा और मलिनद्वार होकर पृथ्वी पर पैदा हुआ, छूत भला कहां से पैदा होती है ? सब देहधारियों के शरीर तथा नाना वर्तन सब सड़कर मिट्टी में मिलते है। उसी मिट्टी की एक पाटी पर सबको बैठाया गया है, फिर किससे छूत मान रहे हो ? तुम्हारे खाने, पीने सबमें छूत लगी है। छूत ही से तो सबकी उत्पत्ति होती है। छूत से वही बचता है, जिसके मन में राग-द्वेष नही है[१]।" "दूसरे के छू लेने से तुम जल के छीटे मारते हो; परन्तु यह बताओ, तुम से भला कौन नीच है ? अपने मिथ्या गुण का गर्व मत करो। अधिक गर्व भला नही कर सकता[२]।"

कबीर साहेब यह मानते हैं कि जीव अनादि कर्म प्रवाह-वश माता के गर्भ में जाकर गंदे रज-वीर्य-द्वारा शरीर धारण करता है। यह शरीर-धारण रूपी छूत पंडितो की सृष्टि नही; किन्तु जीव का अपना ही कर्मफल है। उनके कहने का अभिप्राय तो यह है कि जब तुम्हारे शरीर की रचना का क्रम इतना गंदा है और जीवनकाल में भी जब अनेक ऐसी विवशतायें हैं जिनमें तुम छूत से नही बच सकते, तो अपने भाई जो दूसरी जाति या वर्ण के कहलाने वाले मानव हैं उनके पवित्राचारी होने पर भी उनको अछूत क्यों मानते हो ? जब दूसरी जाति वाले की शरीर-रचना के समान तुम्हारी शरीर-रचना का क्रम भी गंदगी से पूर्ण है, तब तुम उनसे अपने आप को पवित्र कैसे मानते हो और उन्हें अछूत कैसे कहते हो ? अतएव झूठे वर्ण और जाति के आधार पर छुआछूत मानना नैतिक अपराध है। इसका त्याग करना मानव का पुनीत कर्तव्य है।

१. बीजक, शब्द ४१।
२. बीजक, रमैनी ३५। ४-५।

२२
ब्राह्मण

कहा जाता है कबीर साहेब ने ब्राह्मणों का बड़ा विरोध किया है। उन्होंने उनका खंडन किया है। पहले यह समझ लेना चाहिए कि कबीर साहेब एक पहुंचे हुए संत पुरुष थे और संत किसी का विरोध नहीं करते। वह सबका हितचिंतक होता है। वह सबका कल्याण चाहता है और कल्याण के लिए ही जिसमें त्रुटि देखता है उसकी त्रुटियों को दूर करने के लिए वह उसे विनम्र राय देता है। यदि कोई त्रुटि करते हुए अहंकार करता है और उसे छोड़ना नहीं चाहता, तब वह कभी-कभी उग्र होकर भी उसे फटकारता है। मां बच्चे को पुचकार कर उपदेश करती है और न मानने पर चांटे भी लगा देती है। परन्तु उसके चांटे भी बच्चे के हित को लेकर होते हैं, द्वेष-वश नहीं। कबीर साहेब उच्च संत एवं जगत के सच्चे हितचिन्तक थे। इधर ब्राह्मण भारतीय समाज का दिशा-निर्देशक बना था, परन्तु वह स्वयं दिग्भ्रमित होकर भटक रहा है। अतएव ज्ञानी पुरुष का कर्तव्य है कि उसे दिशा बताये।

कहा जाता है, एक युग ऐसा भी था जब ब्राह्मण अपने पवित्र आचरण के कारण ही पूज्य होते थे। उस समय वे जनता को धार्मिक और आध्यात्मिक दिशाओं में सहयोग देते थे। उस समय के ब्राह्मण तपस्वी थे; अतः तेजवान एव जनता के श्रद्धेय थे। तपस्या के बाद शक्ति मिलती है। शक्ति का दुरुपयोग करने से पतन होता है। यह संसार की कथा है। ब्राह्मण भी आगे चलकर भौतिक शक्तिसम्पन्न हो गये और धीरे-धीरे विलासी, आलसी, धर्माचरण-रहित हो गये और ऐसी प्रवृत्ति तक के लोग हो गये जो बिल्ली और बक के समान विनम्र और स्वच्छ रूप दिखाकर जनता को ठगने वाले थे। इसलिए उनको दान देने का निषेध करना पड़ा "धर्मज्ञ गृहस्थाश्रमी को चाहिए कि वह वैडालव्रतिक और बकव्रतिक (कपटी-क्रूर) और वेदों को नहीं जानने वाले ब्राह्मणों को पानी भी न दे[1]। इस प्रकार दान देने वाले तथा लेने वाले दोनों नरक में जाते हैं[2]।" अत्रि (३७३-३८३) ने तो ब्राह्मणों के दस प्रकार बताये हैं, १. देव ब्राह्मण, २. मुनि ब्राह्मण, ३. द्विज ब्राह्मण, ४. क्षत्र ब्राह्मण, ५. वैश्य ब्राह्मण, ६. शूद्र ब्राह्मण, ७. निषाद ब्राह्मण; ८. पशु ब्राह्मण, ९. म्लेक्ष ब्राह्मण तथा १०. चांडाल ब्राह्मण[3]।

१. मनुस्मृति ४/१९२।

२. मनुस्मृति ४/१९३-१९४।

३. वामनकाणे, धर्मशास्त्र का इतिहास खंड १, पृष्ठ १५३।

फिर पीछे ऐसे भी ब्राह्मण विचारक हुए कि अब हमारी संतान-परम्परा पूर्ण योग्य नहीं रह गयी और यदि हम केवल न्याय के चक्कर में पड़ेगे तो हमारी सन्तान को दान-दक्षिणा नही मिलेगी, अतः उन्होंने धर्मशास्त्रो मे लिखा कि ब्राह्मण चाहे कैसा भी हो वह पूज्य है "अग्नि चाहे शास्त्रविधि से संस्कारित हो और चाहे संस्कारहीन, वह महान देवता है। वैसे ब्राह्मण चाहे मूर्ख हो और चाहे विद्वान वह महान देवता है। जिस प्रकार तेजस्वी अग्नि श्मशानों में भी शव को जलाती हुई दूषित नहीं होती और यज्ञों में हवन करने पर अधिक बढ़ती ही है। उसी प्रकार यद्यपि ब्राह्मण निंदित कर्मों में भी प्रवृत होते हैं, तथापि सब प्रकार से ब्राह्मण पूज्य हैं; क्योंकि वे उत्तम देवता हैं[४]।" और भी कहा गया "ब्राह्मण बुरे आचरण वाला हो तो भी पूजनीय है, शूद्र जितेन्द्रिय होने पर भी पूज्य नही; क्योकि कौन ऐसा मूर्ख है जो दुष्टा गौ को छोड़कर सुशीला गधी को दुहेगा[५]।" प्रथम मुनियों ने जिसकी कीर्ति गायी है उसी मार्ग से चलने में मुझे सरलता है—कहने वाले गोस्वामी तुलसीदास जी ने उक्त वचनों का अनुवाद करके ही कहा है "शाप देता हुआ, मारता हुआ और कटु वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है, ऐसा संत कहते है। शीलगुण से रहित होने पर भी ब्राह्मण पूज्य है और गुण-समूहों से युक्त तथा ज्ञान में प्रवीण भी शूद्र पूजनीय नहीं है[६]।"

यहां गोस्वामी जी ने सन्तों की भी मिट्टी पलीद कर दी है। शील-सदाचार-रहित कुकर्मी ब्राह्मण पूज्य है और शील, सद्गुण तथा ज्ञान सम्पन्न भी शूद्र नहीं पूज्य है—यदि यही संतमत है, तो असंत मत क्या है? कुकर्मी ब्राह्मणो की पूजा करवाने का यह प्रयास ब्राह्मणो को और डुबाने वाला है। गोस्वामी जी की तरह कबीर साहेब ब्राह्मणो को विष मिले मीठे लड्डू नही देते है, किन्तु उनको रोग-निवारक कड़वा काढ़ा देते हैं। वे कहते हैं—

ब्राह्मणो की बुद्धि तो देखो! ज्ञान बिना इनकी नावका डूब गयी। ब्राह्मण कहलाकर भी ब्रह्म क्या है इसे नही जानते न इन्हे कर्त्ता की पहिचान है। बस, केवल ग्रहण, अमावस्या आदि को दान ले आना, हवन कराकर दक्षिणा पा लेना जानते हैं। स्वयं तो स्त्री-बच्चे मिल कर एक दूसरे का जूठा

४. मनुस्मृति ९/३१७-३१९।
५. पराशर स्मृति ८/३३।
६. सापत ताड़त परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिय विप्र सील गुण हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रवीना॥
(अरण्यकांड ३३/१ गीताप्रेस)

खाते हैं और हरिभक्तों एवं सन्तों में छूत लगाते हैं। ऊपर से नहाते-धोते हैं किन्तु भीतर से विष्णु-भक्तों एवं संतो से जलते हैं। केवल स्वार्थ परायण हैं। राम-कृष्ण के कथनानुसार भी नही चलते, केवल कृत्रिम बातों के दास हो रहे हैं। केवल कर्मकांड से प्रेम करते हैं जिससे दक्षिणा मिले। ज्ञानमार्गी संतों की निन्दा करते हैं। यह हिरण्यकश्यपु जैसी चाल तो भक्ति-विरोधी है। यही इनकी सुबुद्धि का प्रकाश है! बिना ज्ञान के ये भ्रम के दास हैं। इनके पूजने से क्या कल्याण होगा। इन्होंने तो पाप और पुण्य के पाश हाथों में ले रखा है। ये जिसे चाहें पाप कहें और जिसे चाहें पुण्य कहें। यह तो लोक-परलोक बिगाड़ना हुआ। ये चाहे जैसे अवकर्मी रहे, परन्तु इनकी पूजा होनी चाहिए—यह इनकी धारणा है। ये बूड़ गए। अपने को सम्हाले नहीं। भला ऊंची-नीची जाति मानकर नमस्कार करने की बात कैसी (अवस्था और गुण प्रधान होना चाहिए), ऊंची-नीची जाति-वर्ग तो बीच की कल्पित बाते हैं। सबकी उत्पत्ति तो एक ही प्रकार मिट्टी, जल, वायु, माता-पितादि से हुई है और सबके घटों में एक प्रकार चेतन निवास कर रहा है। राक्षस करनी करके भी देवता कहलाने की चेष्टा कितना विपरीत है। ये केवल वर्णाभिमान का बकवास करते हैं, अध्यात्म एवं सत्यता इनको अच्छी नही लगती। भला जब जीव शरीर छोड़कर अलग होगा, तब कोई उसकी क्या जाति कहेगा? उसे काला, सफेद, लाल, पीला, वर्ग, अवर्ग, गरम, ठंड अर्थात शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हिन्दू, मुसलमान—क्या कहोगे? उसे हिन्दू कहोगे कि तुरुक, बूढ़ा कहोगे कि बालक तथा स्त्री कहोगे कि पुरुष? मिथ्या वर्णाभिमान की प्रबलधारा में ये लोग हाथ-पैर मारते हुए बहे जा रहे हैं। हे सन्तो! इन्हे समझाकर रास्ते पर लाओ। यदि ये कहा न माने तो भी दो बाते पुनः समझाने की कोशिश करो[७]।"

यह है ब्राह्मणो के प्रति सद्गुरु कबीर की हितचिन्तना! बिना अपनत्व माने किसी के मन में इस प्रकार किसी के सुधार करने के लिए राय देने की बेताबी नहीं हो सकती। कबीर साहेब ने ब्राह्मणो के प्रति ध्यान रख कर उनके हितचिन्तन में 'विप्रमतीसी' नाम का एक चौथा प्रकरण ही बीजक में रखा है। जिसका ऊपर संक्षिप्त भाव दिया गया है। निश्चित है कबीर साहेब ब्राह्मणो तथा पंडितो के प्रति आकर्षित है और वे उन्हें सत्य समझाना तथा सुधारना चाहते हैं। कबीर साहेब ने बीजक के दूसरे प्रकरण 'शब्द' मे भी पंडितों को सम्बोधित करके ४० से ५१ तक एक दर्जन शब्द कहा है तथा बीजक में अन्यत्र भी 'बूझो पंडित ज्ञानी' आदि कहकर ब्राह्मणो की ओर घूम कर उन्हें प्रेरित करने की चेष्टा की है।

७. बीजक, विप्रमतीसी।

सद्‌गुरु कबीर आम जनता को समझाते हैं, तब 'लोगो' आदि का सम्बोधन करते हैं; परन्तु वे अपने उपदेशो का प्रथम अधिकारी साधु-संतो को, दूसरा अधिकारी पंडितों को, उसके बाद योगियों तथा अवधूतो को समझते हैं। फिर वे मुल्ला-मौलवियो को लेते हैं। वे अधिकांशतम साधु-सन्तो तथा पंडितो को सम्बोधित करते हैं। पंडित एवं ब्राह्मण समाज यदि इस तथ्य को आज भी समझ ले कि रूढ़िगत वर्ण एवं जाति मिथ्या है, और मनुष्य का मूल्यांकन उसके गुण-कर्मो द्वारा करना चाहिए, तो समाज का बड़ा उपकार हो और मनुष्यता के साथ यही सच्चा न्याय होगा।

ज्ञान और आचरण से लापरवाह होकर केवल वर्ण एवं जाति का मूल्य मान लेने से ही, वर्णो का इतना घोर पतन हुआ है। कहा जाता है कि वैदिक युग में इसके लिए उदारता थी। ब्राह्मणवंश के अतिरिक्त लोग भी योग्य होने पर पुरोहित एवं गुरु हो सकते थे; और ब्राह्मणवंश का व्यक्ति यदि गुण, कर्म तथा ज्ञान रहित है तो वह अयोग्य घोषित कर दिया जाता था।

मानवता की मांग तो यह है कि मनुष्य केवल मनुष्य है। वह कहीं भी किसी कुल में जन्मा हो, यदि शील, क्षमा, ज्ञान, वैराग्य, विद्या से सम्पन्न है तो वह ब्राह्मण है, श्रेष्ठ है। वैदिक ऋषि महीदास एवं नैमिषारण्य मे अट्ठासी हजार ऋषियों को उपदेश करने वाले सूत जी आखीर शूद्र कुल में उत्पन्न थे। व्यास, वसिष्ठ, पराशर, सत्यकाम आदि को पहले देख चुके है कि ब्राह्मणेतर ही थे। वराहमिहिर कहते हैं "म्लेक्ष हो, यवन हो, किन्तु वह यथार्थ ज्ञान मे स्थित है, तो ऋषि के समान ही पूज्य है[८]।" महाभारतकार कहते हैं "जो जितेन्द्रिय, धर्मपरायण, स्वाध्याय मे तत्पर, पवित्र, काम-क्रोध को जीतने वाला है, सज्जन लोग उसे ब्राह्मण कहते है[९]।"

हमने हजारों वर्षो से तथाकथित जाति के आधार पर मनुष्य के मूल्यांकन का अपराध किया है। उस अपराध का प्रायश्चित हमें करना ही चाहिए; जल-वायु, देश तथा रहन-सहन के अनुसार मनुष्यो के आकार-प्रकार तथा रूप रंग में अन्तर होता है; परन्तु बुनियादी तौर पर पूरे मनुष्य की जाति केवल

८. मलेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत् तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्देवविद् द्विजः॥
(बृहत्संहिता २/१४)

९. जितेन्द्रियः धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥
(महाभारत वन पर्व २०६/३४)

एक 'मानव' है। सबके पूर्ण विकास का अवसर होना चाहिए। सबका आदर होना चाहिए। ब्राह्मण कहलाने की रुचि न रख कर पवित्र मानव बनना चाहिए। इस बात को आज के तथाकथित ब्राह्मण-क्षत्रिय कुल के शिक्षित युवक भी समझने लगे हैं। उन्हें तथा पूरे मानव समाज को सद्गुरु कबीर का आह्वान है कि वर्ण और जाति को भूल कर मानवता को विकसित करें।

२३

पंडित सो बोलिये हितकारी

कहा जाता है कि 'कबीर साहेब ने पंडितों को बहुत फटकारा एवं लताड़ा है।' कबीर साहेब का पंडितों से कोई द्वेष नहीं था। वे एक पहुचे हुए संत थे। उन्होंने किसी की भी गलती पर उसे टोका है। क्या पंडित क्या साधु तथा क्या अन्य। पंडित समाज का एक जिम्मेदार व्यक्ति है। यदि वह गलत करता है, तो उसे कड़ाई से टोकना जरूरी है। इसीलिए उन्होने कहा—"बैठा पंडित पढ़े पुरान, बिनु देखे का करत बखान[1]।" तथा "पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपन पौ जानु न भेदा[2]॥" इस प्रकार सद्गुरु कबीर ने पत्रा-धारी तथाकथित पंडितों को फटकारा है जो पोथी-पुराण के आधार पर बिना सिर-पैर की बातें करते रहते हैं और विवेकी नही होते।

हम जिसे संस्कृत में प्रज्ञा कहते हैं, उसे ही मागधी में पञ्जा तथा अर्ध मागधी में पण्णा कहते हैं और इसे ही संस्कृत मे पंडा कहा गया है; और इन सबका अर्थ समझ, ज्ञान, विवेक आदि है। इस 'पंडा[3]' से जो संपन्न है वह पंडित है। सत्यासत्य-विवेकवती बुद्धि ही पंडा है और जिसकी बुद्धि पंडा है वह पंडित है। ऐसे पंडितों का सद्गुरु ने आदर किया है। सद्गुरु कबीर ने अपनी बातों को समझने का अधिकारी साधु-संतो के बाद पंडितों को ही माना है। जैसा मैने पीछे संदर्भ में निवेदन किया है कि कबीर साहेब ने पंडितों को संबोधित करके बीजक के शब्द प्रकरण में एक जगह बारह शब्द रच डाले हैं।

१. बीजक, शब्द १०१।

२. बीजक, रमैनी ३५।

३. पंडा=बुद्धिमत्ता, समझ, ज्ञान, विज्ञान।

(संस्कृत हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे)

पंडा=सत-असत का विवेक करने वाली बुद्धि, निश्चयात्मिका बुद्धि, ज्ञान, विद्या। (वृहत् हिंदी कोश, ज्ञानमंडल काशी)

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं तो पुकार कर कहे जा रहा हूं जो पंडित होगा वह विचार लेगा[४]। हे संतो, सुनो और हे पंडित ज्ञानियो, बूझो[५]। पंडित से हितकारी वचन कहो और मुर्ख से मौन रहो[६]। यहां पंडितों का कितना आदर है। समझते ही बनता है। पंडित का अर्थ किसी कल्पित जाति एवं वर्ण से नहीं लगाना चाहिए; किंतु विवेक, बुद्धि एवं विद्या से सम्पन्न व्यक्ति से लगाना चाहिए।

२४

विचार-स्वातंत्र्य

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं "कबीर साहित्य के अध्ययन, मनन, चिंतन, आलोचना और साहित्यालोचना के बाद अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, कि वे सिर्फ संत नहीं बल्कि एक बहुत बड़े युगद्रष्टा साहित्यकार थे। उनके साहित्य में भारतीय जीवन-दर्शन का मूल समाया हुआ है। कबीर कहते हैं 'पुराने संस्कार तोड़ो, तब मेरे साथ चलो।' कबीर एक अद्भुत व्यक्तित्व वाले मनीषी रचनाकार थे। उनकी तुलना अन्य किसी से नही की जा सकती। कवीर की मान्यता थी कि सारी दुनिया उनकी खिल्ली उड़ाने के लिए है, इस-लिए उन्होंने पर-पक्ष की परवाह कभी नहीं की[१]।"

कबीरदेव अप्रतिम साहस और स्वतंत्र प्रज्ञा के युग पुरुष थे। वे अंध-परम्परा के सामने झुकना नहीं जानते थे। उन्होने सत्य बातें डके की चोट पर कही और समाज में फैली मिथ्याधारणाओं को नहीं बख्शा। उन्होंने कहा "जो मेरी सत्यता को स्वीकार करता है, उसे मै स्वीकार करता हूं और इसके बीच में यदि लोक या वेद आते है, तो मै उन्हें नहीं मानता[२]।" यह कहने तथा कर

४. कहहिं कबीर हम जात पुकारा, पंडित होय सो लेय विचारा।

॥ बीजक शब्द ५३ ॥

५. कहहिं कबीर सुनो हो संतो, बुझो पंडित ज्ञानी ॥

॥ बीजक शब्द ९४ ॥

६. पंडित सो बोलिये हितकारी। मूरख सो रहिये झखमारी ॥

॥ बीजक रमैनी ७० ॥

१. धर्मयुग, २७ मई से २ जून १९७९, पृष्ठ २९।

२. जो मोहि जाने ताहि मैं जानों। लोक वेद का कहा न मानों ॥

(बीजक साखी, २००)

दिखाने की हिम्मत सबमें नहीं होती। जिसका शास्त्र दोहाई दें तथा दुनिया रट लगाये उसे एकदम अस्वीकार कर देना, भले ही वह झूठ हो, कोई मामूली बात नही है।

वे कहते हैं समय के दौरान में लोक मान्यताएं, सामाजिक मूल्य, रीति-रिवाज, देवी-देवताओं की कल्पनायें, उपासना की पद्धतियां, नैतिकता के बाहरी मानदण्ड, वेष-मर्यादाये, परम्परायें आदि बदलती हैं। उन्हें तुम पकड़ कर स्थायी रख नहीं सकते। अतएव "इन सभी को बदलने वाले समझ कर जैसा वर्तमान देखो वैसा विचार करो[३]।" जो समय के परिप्रेक्ष्य में अपने को, अपने विचारो एवं सिद्धान्तों को विन्यस्त कर सकता है वही और उसी के विचार जीवित रह सकते हैं। अन्यथा काल के दौरान सब बह जाते है। असीमित समय के हर परिप्रेक्ष्य एव वातावरण में जीव के हित-साधनों को सदैव ताजा बनाये रखने की यह कितनी अमोघ बूटी है! सड़े संस्कारों से सटे रहने से कभी समाज का हित नहीं हो सकता। जो संस्कार एवं मूल्य निष्प्राग हो गये हो उनका मोह छोड़कर जीवन को नये सिरे से शोधना होगा। शाश्वत मूल्य कभी निष्प्राण नहीं होते।

२५

सत्य की परख

केवल श्रद्धा सत्य सिद्धान्त की जननी नही, और न केवल कोरी बुद्धि से ही सत्य समझा जा सकता है। केवल श्रद्धावेश से मिथ्या धारणाओं एवं मिथ्या विश्वासों को प्रश्रय मिलता है तथा केवल बुद्धि मात्र तर्क का आश्रय लेकर दिग्भ्रमित हो सकती है। किन्तु बुद्धि से श्रद्धा को एवं श्रद्धा से बुद्धि को शोधकर जब दोनों का समन्वय किया जाता है, तब विवेक का उदय होता है और विवेक से शोधी वस्तु सत्य होती है। केवल महापुरुषों तथा पोथियों की दोहाई देने से काम नही चलता। हमें वस्तु को परखने के लिए सारे संस्कारों की चादर हटाकर निष्पक्ष विवेक करना चाहिए, कुतर्क नही; किन्तु सत्य को परखने के लिए तर्क की आवश्यकता है। "हीरा वही प्रशसनीय है जो घनों की चोट पड़ने पर भी नहीं टूटता। ज्ञान हीरा है, संतजन उसके जौहरी-व्यापारी हैं। सब ज्ञानियों ने अपने ज्ञान-हीरे संसार बाजार में फैला रखे हैं; परन्तु जब

३. ददा देखहु विनसनहारा। जस देखहु तस करहु विचारा॥
(बीजक, ज्ञान चौंतीसा)

इन हीरों का सच्चा पारखी आयेगा, तब इनकी परख करेगा[१] ।" सत्य अकाट्य होता है। इसलिए सब ज्ञानियों को चाहिए कि वे अपने सिद्धान्त को तर्क की कसौटी पर कसने दें।

२६

एकता

सबके शरीर में लगे हुए जड़तत्त्व वही हैं तथा सबके भीतर विराजमान चेतन जीव एक समान हैं। इसी प्रकार सबके अंदर मन, वासना, सुख-दुःख की अनुभूतियां आदि एक समान हैं। सबकी भौतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकतायें भी एक समान हैं। इस प्रकार सब में मौलिक एकता समझ कर मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी दृष्टि काल्पनिक विभाजक-रेखाओं से हटाकर मिलन-बिन्दु पर केंद्रित करे।

राम और रहीम को लेकर लड़ना हद दर्जे का अज्ञान है। गुरुदेव कहते हैं "सन्तो! देखने से मालूम होता है कि संसार के लोग पागल हो गये हैं·········हिन्दू कहते हैं हमें राम प्रिय है और मुसलमान कहते हैं हमें रहीम। इस प्रकार दोनों लड़-लड़ कर मरते हैं। यह नही समझते कि दोनो का मतलब एक है[१] ।" "कहो भाई, दो परमात्मा कहां से आ गये? किसने तुम्हे पागल बना दिया? अल्लाह-राम, करीम-केशव, हरि-हजरत, महादेव-मुहम्मद, ब्रह्मा-आदम, पूजा-नमाज नाम रख कर लड़ने की आवश्यकता नही है। एक जमीन पर रहने वाले मनुष्यो मे भला कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान? कोई वेद पढ़ता है, कोई कुरान; कोई पण्डित कहलाता और कोई मौलवी! हैं सब एक ही मिट्टी के बर्तन! धर्म के नाम पर हिंसा करने वाले वे दोनों भूले हैं और व्यर्थ मे जीवन खो रहे हैं[२] ।"

दाढ़ी, चोटी, खतना, जनेऊ, माला हमारे बनाये चिन्ह है। यह कोई प्राकृतिक नियम नही है। "यदि कोई खतना करा कर मुसलमान होता है तो उसकी औरत को क्या कहा जायगा? वह तो हिन्दू ही रही। यदि जनेऊ पहन कर ब्राह्मण बनते हैं तो उसकी धर्मपत्नी को क्या कहा जायगा? उसका यज्ञोपवीत न होने से वह तो जन्म से आज तक शूद्रा ही है। फ़िर उसका बनाया

१. बीजक, साखी १६८, १६९।

१. बीजक, शब्द ४। २. बीजक, शब्द ३०।

भोजन पण्डित जी क्यों खाते हैं? यदि मुसलमानियत तथा ब्राह्मणत्व के आधार खतना और जनेऊ हैं तो ये माता के गर्भ में ही उनके सहित क्यों नही आते? एक मनुष्य जाति में हिन्दू-मुसलमान आदि विविध जातियां कहां से आ गयी? ऐसे भ्रामक रास्ते किसने चलाया? हे सज्जनो! जोर-जबर्दस्ती करने से काम नही चलता, भूले लोग घट-घट में विराजमान आत्माराम को न समझ-कर आकाश में खोजते हैं या अपने से पृथक राम-रहीम का सहारा पकड़ते हैं और ये अन्त में पछता चलते हैं[३]।" तथाकथित भगवान के मूड़ से निकले हुए ब्राह्मण तथा खुदाई दूत के पक्षधर मुसलमान मिथ्याभिमान ही में लिपटे है। लोग पूर्वाग्रह एवं मिथ्या विश्वास-वश देख नही पाते कि मनुष्य केवल मनुष्य है, सत्य पर किसी की बपौती नही है। सारे मजहब, संप्रदाय, वेद, कुरान, बाइबिल, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा आदि की कल्पना मनुष्य के मन से प्रसूत हैं। सर्वोपरि मनुष्य है। मनुष्य-मनुष्य में कुछ फर्क नही।

२७
मानवता

मानव का शरीर मात्र मिल जाने से कोई मानव तब तक नही हो सकता जब तक उसमें मनुष्यता न आये। वह काल्पनिक हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण आदि कहलाने से न बड़ा है और न केवल मानव शरीर मात्र से। उसमें मानवीय गुणो की आवश्यकता है। सद्गुरु कहते है "हे मनुष्य! तेरे सद्गुणो की विशेषता है; अन्यथा अंत में न तेरा मांस काम में आता है, न हड्डी का गहना बनता है तथा न चाम का बाजा। जो मनुष्यता धारण करके जीवन नहीं बिताते; किन्तु पशु सदृश आचरण करके बिताते हैं, उनका कल्याण कहां, वे हाथी-घोड़े खानियो मे जायेगे। केवल मुख से राम या कोई धार्मिक नाम कहते रहना और आचरण गलत रखना, यह तो वैसे ही हुआ जैसे बैल मनुष्य की खाल ओढ़ कर घूमे। ऊपर से बना-ठना मानव मानवीय-बुद्धि बिना मानवता से बेमेल है। देखने मे लाल और मोहक फूल हो; परन्तु उसमें सुगंधी न हो तो उसे लेकर क्या किया जाय[१]?"

"मानव शरीर की सफलता मानवता के आचरण में है। जो मानवीय गुणो को न धारण करके वेद-विद्या का अहकार करते हैं वे अन्ततः धूल हो

३. बीजक, शब्द ८४।

१. बीजक, साखी १९९, १०६, २८४, ३३३।

फांकते हैं। सुगा राम-राम पढ़ लेता है; परन्तु बिल्ली उसे धर दबोचती है[२]।" इसी प्रकार कोई पढ़-लिख लिया; किन्तु आचरण नही धारण किया तो उसे मन की वासनायें धर दबोचती हैं। दिव्य आचरण धारण किये बिना कुछ काम नहीं देता। अतएव दया, क्षमा, शील, विचार, संतोष, समता, मैत्री, विवेक, वैराग्य, भक्ति आदि सद्गुणों को जीवन में धारण करना अति आवश्यक है। सद्गुरु कहते है "अहंकार छोड़ो, संत पुरुषो की उपासना एवं स्वस्वरूप का अनुसधान रूपी हरि भजन करो, नख से शिखा तक की सारी बुराइयों को छोड़ो, सब जीवों से निर्बैरी रहो और त्याग तथा शील से रहो, तभी जीवन का लाभ पाओगे[३]।"

२८

नारी

कुछ लोग कहते है "कबीर साहेब ने नारी की निन्दा की है। उन्होने नारी के लिए कोई उदारता का बर्ताव नहीं किया है। इसलिए जबकि कबीर की तमाम उदार बातों के कारण हम उनके निकट पहुंचते है, तो उनकी नारी-निन्दा के कारण हम उनसे दूर हो जाते हैं।"

यह कहा जा चुका है कि कबीर साहेब की प्रामाणिक वाणी हम बीजक को ही मानते हैं और बीजक में नारी-निन्दा जैसी कोई बात नहीं है। जिनमें कोई नारी-निन्दा मान सकता है, वे केवल दो-तीन पद हैं। उन्हे यहां उद्धृत करके परखना चाहिए कि उनमे नारी-निन्दा है कि कुछ और बात! कबीर साहेब कहते हैं "हे ज्ञानरंग मनुष्य! कनक और कामिनी देख कर तू मत भूल; क्योकि इनके मिलने तथा बिछुड़ने में उसी प्रकार कष्ट होता है जैसे केंचुली के आने और जाने में सांप को कष्ट होता है। साप और विच्छू के जहर को दूर करने के लिए वैद्यो की राय हैं, युक्तियां है। यदि आदमी जहर खा ले तो उसे दवा खिला कर वमन-द्वारा गिराया जा सकता है; परन्तु यदि मनुष्य विकट नारी के पाले पड़ गया तो वह उसके कलेजे को काढ़ कर खा जाती है[१]।"

२. बीजक, शब्द २१, चाचर २।

३. बीजक, साखी १२७।

१. कनक कामिनी देखि के, तू मत भूल सुरंग।
मिलन बिछुड़न दुहेलरा, जस केंचुल तजत भुवंग॥

कबीर साहेब के समसामयिक हिन्दू तथा मुसलमान रजवाडे, जमीदार आदि अधिकतम विषयलंपट थे। वे स्त्री को अपना क्रीड़ा-कंदुक समझते थे। ऐसे पुरुषों का मन स्त्रियों से हटकर रचनात्मक कार्यों में लगे तथा नारी भी पुरुषों द्वारा जो सतायी जाती है, स्वतंत्र हो, इसलिए कामिनी से उपरत होने के लिए ऐसे पद कहे गये। कामिनी का मतलब है काममदिरा से मतवाली स्त्री। इसे नारी निंदा नहीं मान लेना चाहिए। दूसरी साखी में 'विकट नारि' कर्कशा नारी से अर्थ है। आपने एक प्रसिद्ध पद में कहा है "माया महान ठगनी है, मै जानता हूं। यह त्रिगुणी फास लेकर डोलती है और मीठी-मीठी बाते करती है। यह माया विष्णु के घर में लक्ष्मी और शिव के घर मे सती या पार्वती बन कर बैठी है। यह पंडा के घर में मूर्ति, तीर्थ में पानी, योगी के घर में योगिनि तथा राजा के घर में रानी बनी बैठा है। यह माया किसी के घर में हीरा बन गयी और किसी के घर में कानी कौड़ी। यह भक्तो के घर मे भक्तिनि तथा ब्रह्मा के घर में सरस्वती बन बैठी। हे संतो! इस माया की कथा अकथनीय है[२]।"

ध्यान देने योग्य बात है कि यहां माया का अर्थ केवल स्त्री नही है; किंतु मूर्ति, पानी, हीरा, कौड़ी आदि भी है। अभिप्राय यह है कि जिससे जीव भूल जाय वह सब माया है। कबीरदेव का अन्तःकरण वैराग्यमय होने से वैराग्य का जो विरोधी है उन्होने उस विषयासक्ति का निरास किया है। इसे हम नारी-निंदा नही कह सकते। पुरुष के लिए स्त्री की आसक्ति बंधन है, इसी प्रकार कल्याणार्थी स्त्री के लिए पुरुष की आसक्ति बंधन है। विवेकवान अपनी देह की आसक्ति का भी निराकरण करते हैं।

एक ही बूंद से हिंदू और मुसलमान तथा ब्राह्मण और शूद्र को पैदा हुआ कह कर सबकी समता की व्याख्या करने वाले कबीर भूल नही गये हैं कि नारी और नर भी एक ही बूंद से पैदा हुए हैं, अतः उनमें भी समता है। वे कहते है "इस प्रकार भ्रम और भारी उलझन है। वेद-किताब, दीन और दोजख का यह झगड़ा कैसा? कौन स्त्री है और कौन पुरुष? क्योंकि मिट्टी का शरीर बना है, नाद-बिन्द में समाया है। शरीर के मिट जाने पर जीव का क्या नाम रखोगे स्त्री या पुरुष! अनाडी! अपनी भूल को परख, स्त्री-पुरुष कोई नही। एक ही

साँप बिच्छू का मत्र है, माहुरहु झारा जाय।
विकट नारि के पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय॥

(बीजक, साखी १४८, १४३)

२. बीजक, शब्द ५९।

प्रकार त्वचा, हाड़, मल, मूत्र, रक्त, मांस हैं और एक ही बूंद से सबकी सृष्टि-रचना है। फिर कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र है? रजोगुणी ब्रह्मा हैं, तमोगुणी शंकर हैं तथा सतोगुणी ही विष्णु। राम में रमण करो न कोई हिंदू है और न मुसलमान[३]!" "एक स्त्री है और एक पुरुष है, इसका विचार करो[४]।" "आधे में पुरुष बसता है और आधे में स्त्री—इस प्रकार यह संसार चलता है[५]।" "हे मानव! जितने स्त्री और पुरुष पैदा होते हैं सब तुम्हारे स्वरूप हैं। अर्थात तुम्हारे सजाति हैं[६]।" "ऐ पंडित! हृदय में विचार करके देखो, कौन स्त्री है और कौन पुरुष? सब घटों में सहज विराजमान वही चैतन्य बोल रहा है। उसके चरित्र, उसके गुण विलक्षण ज्ञानमय हैं। उसके रंग और भौतिक रूप नहीं हैं। फिर उसका क्या नाम लोगे[७]?" श्री रामरहस साहेब ने ठीक ही कहा है "चेतन स्त्री और पुरुष नहीं। स्त्री-पुरुष की शरीर-रचना तो वासनात्मक है। सब अध्यास मिटाकर सद्गुरु की शरण में आनन्द है[८]।" इस प्रकार सद्गुरु कबीर नर और नारी का समान मूल्यांकन करते हैं।

३. ऐसो भरम बिगुर्चन भारी।
　वेद-कितेब दीन औ दोजख, को पुरुषा को नारी॥
　माटी का घट साज बना है, नादे बिन्द समाना।
　घट बिनसे क्या नाम धरहुगे, अहमक खोज भुलाना॥
　एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
　एक बुन्द से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥
　रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि होई।
　कहँहि कबीर राम रमि रहिये, हिंदू तुरुक न कोई॥ बीजक, शब्द ७५।
४. एकै पुरुष एक है नारी, ताकर करहु विचारा॥ बीजक, शब्द ५॥
५. आधे बसे पुरुष, आधे बसे जोय॥ बीजक, शब्द ५०॥
६. जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा॥ बीजक, शब्द ६७॥
७. पंडित देखहु हृदय बिचारी, को पुरुषा को नारी॥
　सहज समाना घट घट बोलै, वाके चरित अनूपा॥
　वाको नाम काह कहि लीजै, ना वाके वर्ण न रूपा॥ बीजक, शब्द ४८॥
८. हंस न नारी पुरुष है, यह सब काल को फन्द।
　गांस फांस सब मेटिके, साहेब शरण अनन्द॥
　　　　॥ पंचग्रंथी, गुरुबोध साखी १३६॥

२८
तीर्थ

तीर्थ कहते हैं तारने वाले को। मनुष्य सत्संग के बल पर भवाब्धि से तरता है। अतएव जहां सत्संग होता है उस स्थल को तीर्थ कहा जाता है। महान पुरुषों के जन्मस्थल तथा कार्यस्थल आगे चलकर तीर्थ का रूप ले लेते हैं। देश की एकता तथा धर्म के प्रचार के लिए देश के कोने-कोने मे तीर्थ बनाये भी जाते है। देश के लोगों का इन सब में आने-जाने से देश की जनता में परस्पर सौहार्द बढ़ता है, लोगों का ज्ञान बढ़ता है, जलवायु का परिवर्तन होता है, सत्संगादि का लाभ भी मिले तो आध्यात्मिक प्रगति होती है। परन्तु आगे चलकर कुछ चतुर लोग तीर्थ के बलपर जनता को बेवकूफ बनाते हैं। उनसे दक्षिणा लेकर उनके सारे पापो को काटते हैं और बताते है कि तुम्हारे चाहे जैसे और जितने पाप हों, यहां आकर स्नान करने तथा देव-दर्शन करने से क्षणमात्र मे भस्म हो जायेंगे। फिर तो तीर्थ पाप को बढ़ाने वाले बन जाते हैं। कितने लोग तीर्थ के बलपर घोर हिंसादि कर्म करते रहते हैं और तीर्थो में जाकर अपना उनसे छुटकारा मानते हैं। स्कंद पुराण के रेवाखंड में २३२ अध्यायो में केवल नर्मदा नदी के तीर्थो की महिमा का वर्णन है। उसी के अंत में पांच अध्यायों में प्रसिद्ध सत्यनारायणव्रत कथा है। नर्मदा नदी की महिमा में कहा गया है "नर्मदा का नाम लेने से एक जन्म का पाप कटता है, उसके दर्शन करने से तीन जन्मों का तथा उसमें स्नान करने से तो सहस्रों जन्मो का पाप भस्म हो जाता है[१]।" फिर तो जहा बैठकर इन पंक्तियो को लिखा जा रहा है, उस तीर्थराज प्रयाग मे तथा काशी-अयोध्यादि में तो कहना क्या। यहां के तो कीट-पतंग तक हर समय मुक्त ही हैं।

कहा गया सैकड़ों योजन दूर रहने वाले जब गंगा का नाम लेते हैं, तब उनके तीन जन्मो का पाप नष्ट हो जाता है[२]। जो लोग प्रयाग के संगम में स्नान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं और जो धीर लोग वहां अपना शरीर त्याग

१. स्मरणाज्जन्मजं पापं दर्शनेन त्रिजन्मजम्।
स्नानाज्जन्मसहस्राख्यं हन्तिरेवा कलौ युगे॥

२. गंगा गंगेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि।
स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम्॥
(विष्णु पुराण २/८/१२१)

करते—त्रिवेणी में डूब कर देहविसर्जन कर देते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं[३]। यदि प्रयाग में मुण्डन करा लिया, तो गया में पिंडदान करने, कुरुक्षेत्र में दान करने एवं काशी में मरने की क्या आवश्यकता[४] ? वेद-वचन एवं लोक-वचन की परवाह न करके प्रयाग में मरने (आत्महत्या) का विचार नही छोडना चाहिए[५]।

जो व्यक्ति अपने देश में या घर में या तीर्थयात्रा के क्रम में किसी वन में प्रयाग का स्मरण करता हुआ मर जाता है, तो वह तब भी ब्रह्मलोक पाता है। वह वहां पहुंचता है जहां के वृक्ष सभी कामफल देने वाले होते हैं, जहां की पृथ्वी हिरण्यमयी होती है और जहां ऋषि, मुनि एवं सिद्ध रहते है। वह मंदाकिनी के तट पर सहस्रों स्त्रियो से आवृत्त रहता है और ऋषियो की संगति का आनंद लेता है। जब वह लौटकर पृथ्वी पर आता है तो जंबूद्वीप का राजा होता है[६]। चारि खानि के जितने जीव मेढक, मच्छर, साप, छंछूदर, बैल, मनुष्यादि हैं, अयोध्या में शरीर छोड़ने पर मुक्त हो जाते है[७]।

मिथ्या महिमा मनुष्य को घोर अधकार में ढकेल देती है। धर्म के क्षेत्र में घुसा हुआ सबसे बड़ा अपराध है मिथ्या महिमा। कितने लोग तीर्थों के बलपर हत्यादि कुकर्म करते रहते हैं और अंततः तथाकथित तीर्थों मे जाकर अपने पाप कटने का भ्रम करते रहते है। सद्गुरु कबीर ने कहा है "बेचारे निरीह प्राणियों को मत मारो। सबके प्राण एक समान है। करोड़ो पुराण सुनने पर भी हत्या का पाप छूटेगा नहीं, उनके फल भोगने पड़ेगे। जीव हत्या मत करो, तुम्हें उसका फल भोगना होगा। तीर्थ में जाकर चाहे करोड़ो हीरो का

३. सितासिते सरिते यत्र संगते तत्राप्लुता सो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्व भजन्ते॥
(त्रिस्थली, पृष्ठ ३)

४. किं गयापिंडदानेन काश्यां वा मरणेन किम्।
किं कुरुक्षेत्रदानेन प्रयागे वपनं यदि॥
(नारदीय पुराण, उत्तर ६३/१०४)

५. न वेदवचनात्तात न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति॥
(महाभारत, वनपर्व ८५/८३)

६. मत्स्य पुराण १०५/८-१२। धर्मशास्त्र का इतिहास खंड ३, पृष्ठ १३३६।

७. चारि खानि जगजीव अपारा। अवध तजे तनु नहि संसारा॥ (मानस)

दान करो; परन्तु हत्या का पाप न छूटेगा। चित्त के चंचल, मन के चंचल तथा स्वभाव के चोर लोग तीर्थ में जाकर क्या फल पायेंगे। तीर्थों से पाप तो एक भी कटने वाला नहीं; प्रत्युत ऐसे चंचल लोग दस इन्द्रियों की चंचलता रूप दस मन पाप और लाद लेंगे। तीर्थों के बलपर हिंसादि कुकर्म करने वाले लोग तीर्थों में जाकर तथा ठण्डे पानी में नहा कर अपने पाप कर्मों में डूब के मरते हैं और उसके परिणाम में अंततः तामसी योनियो मे जाकर पछताते रहते हैं। इस प्रकार जो तीर्थ लोकमंगल के लिए बनाये गये थे, वे मिथ्या महिमाओ के कारण विष की बेलि बन गये और युगानुयुग से छाये हुए है। मनुष्यों ने सदाचार को तो उखाड़ फेका और तीर्थ आदि की मिथ्या महिमाओ में उलझ गये। अब इसका कटु परिणाम कौन भोगेगा। कर्ता सो भोक्ता[८]।"

जो लोग पूरे प्रसंग को नही समझ पायेंगे, वे यह वाक्य 'राक्षस होय पछिताय' पढ़ कर चौक जायेंगे। क्या कोई तीर्थो मे जाने से राक्षस हो जायगा? परन्तु इन पांचों साखियों को क्रमशः एक साथ मनन कर लेने पर प्रश्न उठ ही नहीं सकता। सद्गुरु २१२ वी साखी से ही कहते चल रहे है कि हत्या मत करो, दूसरे की जान को मत सताओ, अन्यथा तुम्हारे दान, पुराण-श्रवण तथा तीर्थ-सेवन व्यर्थ होगे, और यदि तीर्थों के बलपर ही हत्यादि पाप करते हो तो ये तीर्थ ही तुम्हारे नरक के द्वार हो जायेंगे। साधु-वेष त्याग-वैराग्य के चिन्ह हैं; परन्तु केवल वेषधारण से मोक्ष मान ले और बल्कि वेष के बलपर पाप करने लगे, तो उसके लिए वह साधु-वेष ही नरक का कारण बन जायगा।

पेटी को साबुन-पानी से धोने से पेटी के भीतर रखे कपड़े नही धुल सकते। इसी प्रकार मन के भीतर के पाप नदी में नहाने या मूर्ति के दर्शन से

८. **जीव मति मारो बापुरा, सबका एकै प्राण।**
हत्या कबहुँ न छूटिहैं, जो कोटिन सुनो पुराण॥
जीव घात न कीजिये, बहुरि लेत वै कान।
तीरथ गये न बाँचिहो, जो कोटि हीरा देहु दान॥
तीरथ गये तीन जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न काटिया, लादिनि मन दश और॥
तीरथ गये ते बहि मुये, जूड़े पानी नहाय।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राक्षस होय पछिताय॥
तीरथ भई विष बेलरी, रही युगन युग छाय।
कबिरन मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय॥
(बीजक, साखी २१२ से २१६)

नहीं कट सकते। उसके लिए सत्संग, सद्विवेक, पुनः पाप न करने की प्रतिज्ञा, दृढ़ निश्चय, सद्ग्रंथों का अध्ययन आदि होना चाहिए। तीर्थों की जितनी उपयोगिता है उसकी चर्चा ऊपर की गयी है, बाकी ज्यादा महिमा तो मनुष्यों को अंधा बनाने का साधन है, और उसी का निराकरण सद्गुरु ने किया है।

३०

मूर्ति

किसी महापुरुष की मूर्ति या चित्र उसकी स्मृति के लिए है। जब वेश्या का चित्र देखने से सावधान न रहने पर मन खराब हो सकता है, तब सन्त का चित्र देखने से श्रद्धावान का मन अवश्य श्रद्धा से भर जायगा। वैराग्यवान संत, साधु, साधक, ज्ञानी, विद्वान, राजनीतिज्ञ, शूरवीर, वैज्ञानिक, सती-साध्वी एवं सत्य तथा मानवता के लिए कुर्बान होने वाले लोगों के चित्र देखकर स्वाभाविक मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अतएव केवल स्मृति के लिए महापुरुषो के चित्र दीवार में टांग कर रखना, उन्हें साफ रखना ठीक है। मूर्ति या चित्र को भूख-प्यास, नीद, शीत-गरमी आदि नही लगती; अतएव उन्हे खिलाने-पिलाने, सुलाने-जगाने, आग तपाने, पंखा करने आदि की आवश्यकता नही होती। चूंकि मूर्तियां कुछ जानती-बूझती नहीं इसलिए उनके सामने स्तुति, प्रार्थना एवं आरती करना आदि भी केवल भावुकता और अंधविश्वास है। जड़ मूर्ति-चित्र केवल स्मृति के लिए है, पूजने के लिए नही। पूजने के लिए तो चेतन मूर्तियां हैं। बड़ों को श्रद्धा से, बराबरी के लोगों को प्रेम से तथा छोटों को स्नेह से जल, भोजन, मीठे वचन आदि से पूजो।

सद्गुरु कबीर ने मूर्ति-पूजन को स्वीकार नही किया है। उन्होने मूर्ति-पूजन का निषेध करके संत और गुरु की पूजा पर जोर दिया है। परन्तु उन्होने मूर्ति पूजने वालों के लि‍ए नरक जाने की घोषणा नही की है और न मूर्तिपूजन मे पापो की सूची ही तैयार की है। बीजक भर में मूर्तिपूजन के निषेध में विनम्रता पूर्वक केवल एक साखी है, "भूले लोगों ने कंकर-पत्थर धोकर भक्ति के स्वरूप को बिगाड़ दिया। अन्तर मे विष रख कर अमृत को खो दिया[१]।" इसी प्रकार मुसलमानो के कबर पूजने पर भी कहा "मुसलमानों को कबर

१. कबिरन भक्ति बिगारिया, कंकर पत्थर धोय।
अन्तर में विष राखिके, अमृत डारिनि खोय॥ (बीजक, साखी २५१)

पूजते सुनकर मुझसे न रहा गया और मैंने कहा कि तुम लोग मकबरा देखकर भूल रहे हो[२]।''

जो मूर्तिपूजा के ही अधिकारी हैं उनके लिए कुछ नही कहना है। परंतु विवेकवान का कर्तव्य है साधक को हर जड़ता से हटा कर आध्यात्मिक-पथ मे लगाना। मूर्तिपूजन भी एक जड़ता है जिसमें बोध होने की कोई गुंजाइश नही है। कहते हैं कि आध्यात्मिक ऊंचाइयों पर चढ़ने के लिए मूर्तिपूजन एक सीढी है; परन्तु देखा जाता है कि लोग मूर्ति पूजते-पूजते बूढे हो जाते हैं और जीवन पर्यन्त सीढी पर ही खड़े रहना चाहते हैं, मंजिल पर पहुचते ही नही। जो बोल नहीं सकता, उत्तर नही दे सकता, बोध नही दे सकता उसको पूजकर क्या होगा। अतएव माता-पिता को पूजो तथा बोधदाता चैतन्य गुरु एव सन्तो को पूजो जिससे ज्ञान प्राप्त करके कल्याण हो।

कहते हैं "किसी आर्यसमाजी ने स्वामी विवेकानन्द के सामने जब मूर्ति-पूजन का खंडन किया, तब उन्होने उनके किसी श्रद्धेय की लगी हुई फोटो पर उन्हें थूकने की आज्ञा दी और वे उस पर न थूक सके इसलिए मूर्तिपूजन सिद्ध हो गया।" ऐसी बाते बहुत छिछली हैं। न तो सबके लिए मूर्तिपूजन का निषेध करने का हठ होना चाहिए और न सबसे मूर्ति पुजवाने का हठ। कुछ लोग तो ऐसी बालबुद्धि के हैं जो मूर्ति पूजेंगे ही। उनका विरोध करने का क्या अर्थ है? हां, उनकी रुचि के अनुसार समय पड़ने पर उन्हे सत्य बताना चाहिए; जब वे सत्यता को समझ लेंगे, अपने आप उन्हे मूर्तिपूजा का अभाव हो जायगा। जो विचारक हैं या सच्चे पारखी के अनुयायी है वे मूर्ति पूज नहीं सकते। जिनका मूर्ति पूजने का मत नही है वे भी उसे नही पूज सकते। अत-एव उनसे मूर्ति पूजने के लिए किसी का हठ करना बेकार है।

चित्र या मूर्ति स्मृति के प्रतीक है। उन पर थूकने-जैसी बात अपने आप में असभ्यता है। थूका तो जाता है थूकदानी मे या गंदी जगह में। स्वच्छ जगह में भी थूकना नही चाहिए, फिर चित्र पर थूकने की बात समझदार सोचेगा कैसे? जो चित्र-मूर्ति आदि स्मृति के साधन मात्र है जब वे खिलाये, पिलाये, सुलाये, जगाये जाने लगते हे, उनकी आरती उतारी जाने लगती है, उनसे भोग और मोक्ष मांगा जाने लगता है, तब विवेकवान को इस मिथ्या आडम्बर का निरास करके उसकी सत्यता बतानी पड़ती है। इस उच्च निर्णय

२. सुनी बोल मोहि रहा न जाई, देखि मुकर्बा रहा भुलाई॥
(बीजक, रमैनी ४८)

के जो पात्र होते हैं वे इसे ग्रहण करते हैं, जो नहीं ग्रहण कर सकते वे लगाते रहे भोग। कौन सबको समझा पाया है। किसी ने ठीक ही कहा है "साधारण लोगों के लिए गंगा-यमुनादि नदियां देवता है, विद्वानो के लिए सूर्य-तारे देवता हैं, बालबुद्धि वालों के लिए काष्ठ-पत्थर आदि की मूर्तियां देवता हैं; परन्तु विवेकवानों के लिए आत्मा ही देवता है[३]।"

३१

देवता

ऋग्वेद के प्रथम मंत्र की व्याख्या करते हुए यास्कमुनि कहते हैं "जो देता है वह देव है, जो जलाता है वह देव है, जो प्रकाशता है वह देव है अथवा जो आकाश में रहता है वह देव है[१]।" वस्तुतः वैदिककाल में आकाशचारी सूर्य, चंद्र, तारे आदि को देवता कहा जाता था और अग्नि को देवता कहते थे। इसीलिए ऋग्वेद की शुरुआत ही अग्नि की प्रार्थना से हुई है "यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान देवो को बुलाने वाले ऋत्विक् और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हूं[२]।" अतएव ऋग्वैदिक काल में प्राकृतिक पदार्थ ही देवता के नाम से जाने जाते थे। सर राधाकृष्णन् लिखते हैं—

"मानव-मस्तिष्क रूपी कारखाने में देवमाला के निर्माण की पद्धति ऋग्वेद में जैसी स्पष्ट देखी जाती है वैसी अन्यत्र नही मिल सकती। हमे इसमे मानवीय मानस की एक प्रातःकालीन स्वाभाविक नवीनता एवं उज्ज्वलता मिलती है जो अभी तक पुराने रीतिरिवाजो और नियत परिपाटी से म्लान नही हुई थी। विचारधारा के इतिहास मे प्रारम्भ नाम का कोई विषय नही होता, इसलिए कही न कहीं से तो हमे चलना ही होता है। वैदिक देवताओ के, प्राकृतिक शक्तियो से, साम्य स्थापित करने के समय से ही हम प्रारम्भ कर सकते है और निर्देश कर सकते हैं कि किस प्रकार शनैः-शनैः उन प्राकृतिक शक्तियो को ही साधु वृत्ति एवं अतिमानव-सत्ता का रूप दे दिया गया। वैदिक

३. आप्सुदेवा मनुष्याणां दिविदेवा मनीषिणाम्।
बालानां काष्ठलोष्ठेषु बुधस्य आत्मनि देवता॥

१. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा॥ निरुक्त ७,१५।

२. अग्निमीले पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥
(ऋग्वेद 1/1/1) हिन्दी ऋग्वेद श्री रामगोविन्द त्रिवेदी।

सूक्तों के प्राचीनतम ऋषि प्राकृतिक दृश्यों को देखकर अपने सरल स्वभाव के कारण अनायास ही अत्यंत प्रफुल्लित हो उठते थे। विशेषकर कवि-स्वभाव होने के कारण उन्होंने प्राकृतिक पदार्थों को ऐसे प्रगाढ़ मनोभावों और कल्पना शक्ति द्वारा देखा कि उन्हें वे आत्मा की भावना से परिपूर्ण प्रतीत होने लगे। वे प्रकृति प्रेम से अभिज्ञ थे और इसलिए सूर्योदय एवं सूर्यास्त के अद्भुत दृश्यों में खो गये, क्योंकि ये दोनों ही रहस्यमयी प्राकृतिक घटनायें हैं, जो आत्मा को प्रकृति के साथ जोड देती हैं। उनके लिए प्रकृति एक जीवित सत्ता थी, जिसके साथ वे प्रेम-संबन्ध जोड़ सकते थे। प्रकृति के कुछ उज्ज्वल स्वरूप एक प्रकार से द्युलोक के ऐसे झरोखे थे जिनमें से दैवी शक्ति नीचे के ईश्वर-विहीन जगत को झांकती-सी प्रतीत होती थी। चांद और तारे, अगाध समुद्र और अनन्त आकाश, सूर्योदय और रात्रि का आगमन इन सबको दैवी घटना समझा जाने लगा। वैदिक धर्म का प्रारम्भिक रूप इसी प्रकार की प्रकृति की पूजा था[३]।" आगे चल कर "विद्वान को, माता को, पिता को और आचार्य को देवता माना गया[४]।"

उपनिषत्काल मे प्राकृतिक शक्तियो को देवता मानने से हट कर आत्मा पर जोर आया और याज्ञवल्क्य ने कहा "जो यह समझता है कि मै अन्य हू तथा देवता अन्य है और इस प्रकार जो दूसरे देवता की उपासना करता है, वह अज्ञानी तुच्छ भाव वाला उस कल्पित देवता के सामने पशु है[५]।" केन उपनिषद् कहती है "जो वाणी मे आये, मन मे आये, आंख से दिखे, कान से सुनाई पड़े, प्राण से गतिशील हो वह ब्रह्म नही है; किन्तु वक्ता, मता, द्रष्टा, श्रोता ही ब्रह्म है, श्रेष्ठ है[६]।" उपर्युक्त वेद-उपनिषदों के मंथन से पता चलता है और स्वविवेक भी साक्षी है कि जड़ प्राकृतिक शक्तियो को देवता मानना अविकसित बुद्धि का परिणाम है। जब व्यक्ति का विचार पूर्ण विकसित हो जाता है तब आत्मा ही देवता हो जाता है "बुधस्य आत्मनि देवता।"

सद्गुरु कबीर के विचार से घट-घट में निवास करने वाले चेतन ही देवता हैं। अतएव साधारण ढंग से कहे तो ससार के नर-नारी ही देवी-देवता हैं। वे ललकारते हुए कहते हैं "हे समर्थ देव! तू देव को अपने से पृथक मान-

३. भारतीय दर्शन ११६५। सन १९६९ ई०।

४. विद्वांसो हि देवाः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव। (तैति. उप० १।११।२)

५. योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवँ स देवानाम्॥ (बृहदारण्यक उप० १।४।१०)

६. केन उपनिषद्, प्रथम खंड।

कर क्या राम-राम की रट लगा रखा है। अरे, देव दूर नही हैं, किन्तु भ्रम से तुम दूर की आशा लगा रखे हो। हे पगले! अन्य देवता का सेवन तू क्या करता है? ये तेरी अन्य देव की आशा मिथ्या है[७]।" "हे पहले! सूने घर में पहुना आये, तो आदर पाये बिना ज्यों-का-त्यों लौट जायगा। इसी प्रकार तू ने पाप कटने के लिए स्नानार्थ बहुत तीर्थ बनाये और पूजने के लिए बहुत देवता और संसार-सागर से तरने के लिए राम-नाम का जहाज। परन्तु हे पगले! तू बिना विचार डूब गया। स्वरूपदेव (आत्मदेव) को जाने विना सब प्रयास निष्फल गया[८]।" देवता के नाम पर बलि चढ़ाने के बहाने जो लोग जीव-वध करते है, वे तो घोर अन्धकार मे पड़ते हैं आज के उन्नत युग मे भी देवता के नाम पर जीव-वध की परिपाटी समाप्त नही हुई है। सद्गुरु कहते हैं "स्मृतियों[९] के हिंसाविधायक वचन सबको प्रिय लगते है। ऐसे लोग हृदय मे वास्तविकता की परख तो करते नहीं और निर्जीव जड़ देवी-देवताओं के सामने

७. राम नाम का सेवहु बीरा, दूरि नाहिं दुरि आशा हो ॥
और देव का सेवहु बौरे, ई सब झूठी आशा हो ॥ (बीजक, कहरा-३)

८. सूने घर का पाहुना मन बौरा हो।
ज्यों आवै त्यों जाय समुझि मन बौरा हो ॥
नहाने को तीरथ घना मन बौरा हो।
पुजवे को बहुदेव समुझि मन बौरा हो ॥
बिनु पानी नर बूड़हीं मन बौरा हो।
तुम टेकेउ राम जहाज समुझि मन बौरा हो ॥ (बीजक, चाचर २)

९. मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥
एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः।
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिश्चराचरे।
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥
(मनुस्मृति, ५/४१, ४२, ४४)

अर्थ—मधुपर्क (अतिथि के लिए जलपान), यज्ञ, पितृकार्य (श्राद्ध) और देवकार्य में ही पशुवध करे; ऐसा मनु ने कहा है। उक्त कार्यों के लिए पशुवध करने वाला वेदतत्त्वविज्ञ ब्राह्मण अपने तथा पशु को उत्तम गति मे पहुंचाता है। इस चराचर संसार में जो हिंसा वेदविहित है, उसे हिंसा नहीं समझना चाहिए; क्योंकि वेदों से ही धर्म निकला है।

तथा जड क्रिया बाहुल्य यज्ञों में जीते जी प्राणियों का वध करते हैं। इनकी आंखों से सूझता नहीं[१०]।" "अरे नराधम ! मिट्टी-पत्थरादि के देवी-देवता बनाकर और उनके सामने पशु-पक्षियों को काट-काट कर चढ़ाता है। यदि तुम्हारा सच्चा देवता है, तो खेत में चरते हुए पशु-पक्षियों को क्यो नही खा जाता[११] ?"

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पेड़, पत्थर, नदी आदि में देवत्व की कल्पना करने से मनुष्य में जड़ता, अज्ञान एवं भ्रम को स्थान मिलता है। ये सब देवता नही, जड़ पदार्थ हैं। काली, भवानी, दुर्गा, चंडी तथा अन्य नाना कल्पित देवता मनुष्य के मिथ्या भ्रम हैं। ये समय-समय पर मनुष्यों द्वारा कल्पना से गढ़े गये हैं जैसे आजकल 'संतोषी-माता'। संतोषी का कोई इतिहास नही है। सिनेमा वालो ने संतोषी को गढ़ कर बना लिया है। आज मिथ्या संतोषी के मन्दिर बन रहे हैं, व्रत हो रहे हैं तथा उनकी कथा कही जा रही है। मनुष्यो को झूठे देवी-देवताओ में इसलिए श्रद्धा हो जाती है कि उनकी पूजा मे ऋद्धि-सिद्धि पाने की झूठी कल्पना है। खेद है, संसार में नदी, पेड़, पहाड़, पत्थर, अष्ट धातु, काष्ठ, गोबर, मिट्टी आदि जड़ पदार्थ देवता बन गये; परन्तु इन्हें देवता बनाने वाला मनुष्य जो देवो का देव है, तुच्छ ही बना रहा। वह इन नदी, पेड़, पत्थरो के सामने घुटने टेक कर गिड़गिड़ाता ही रहा। वस्तुतः तुम्हारे घर में माता-पिता, भाई-बन्धु आदि मनुष्य मात्र, प्राणिमात्र चेतन देव हैं उनका सत्कार करो। गुरुजनों, सन्तो एवं पूज्यजनो को देवता समझो। उनका सत्कार करो। अन्ततः परम उपास्य तुम्हारा अपना चेतन स्वरूप ही परमदेव है।

३२
ॐकार आदि जो जानै

'ॐ' में तीन मात्राएं है—'अ', 'उ' तथा 'म्'। 'अ' तथा 'उ' पूर्ण मात्राएं हैं और 'म्' आधी मात्रा है; इसलिए ॐ को ढाई मात्रा भी कहते हैं; परन्तु सामान्यतया इसे तीन मात्रा ही कहते हैं।

मांडूक्य उपनिषद् के पहले मंत्र में कहा गया है कि 'ओम्' इस अक्षर

१०. सुमृति सोहाय सबै कोई जाने, हृदया तत्त्व न बूझै।
निर्जिव आगे सर्जिव थापे, लोचन किछउ न सूझै॥ (बीजक, शब्द ६३)

११. माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिव देइया जी।
जो तोहरा है सांचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी॥ (बी०, शब्द ७०)

की ही व्याख्या समग्र संसार है। कहीं कहा गया है 'अ' रजोगुण, 'उ' सतोगुण तथा 'म्' तमोगुण है या ये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के वाचक हैं। कहीं कहा गया कि सृष्टि के प्रथम एक घोर आवाज होती है, उसमें अ, उ तथा म् की कल्पना कर ली जाती है और उसी शब्द के फट जाने पर सारा विश्व पैदा हो जाता है। प्रश्न उपनिषद् (५/६) में कहा गया कि ये तीनों मात्राएं मृत्युमय हैं (तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः)। अ, उ, म् को क्रमशः सरस्वती, यमुना तथा गंगा का द्योतक भी माना गया है (त्रिस्थली सेतु पृ० ८)। इस प्रकार प्रयाग का संगम ॐकार रूप ही है।

वस्तुतः ॐ एक ऐसा शब्द है जिसे किसी काल में हमारे पूर्वजों ने उपासना के लिए बनाया था और यह शब्द उपास्य होने से श्रद्धास्पद बन गया। फिर इसका अर्थ सारा विश्व किया जाने लगा। अर्थात यह कहा जाने लगा कि ओम् से ही सारा विश्व पैदा हुआ है; परन्तु यदि यह बात सच है, तो इसे विदेशी लोग क्यों नहीं जानते ?

सद्गुरु कबीर कहते हैं कि 'ॐ' के आदि को जो जानता है, वह समझता है कि जो मनुष्य 'ॐ' को लिख कर उसे काट देता है वह 'ॐ' से भी श्रेष्ठ है। ॐ-ॐ तो सब कहते है; परन्तु जो इसको ठीक से समझता है, वह बिरला है[1]।

ॐ, राम, ब्रह्म, खुदा, गॉड आदि शब्द मनुष्यों के रचे हुए हैं। इन विभिन्न नामों में विभिन्न मत वालों को श्रद्धा है और श्रद्धा से की गयी उपासना से कुछ-न-कुछ चित्त की शुद्धि होती है। परन्तु यह मान लेना कि इनमें कोई नाम सबसे श्रेष्ठ है और वही जगत का तथा मनुष्य के मोक्ष का कारण है, एक दुराग्रह है। सारे शब्दों, नामो, संज्ञाओ के रचयिता मनुष्य हैं। मनुष्य की आत्मा सर्वोपरि है। उसे चाहिए कि वह अपने स्वरूप को पहचाने।

३३

गायत्री युग चारि पढ़ाई

जैसे हिंदी में दोहा, चौपाई, सवैया आदि छन्दों के नाम हैं, वैसे वेदों के मुख्य प्रसिद्ध छन्द गायत्री, जगती, त्रिष्टुप, पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप् तथा उष्णिक

१. ॐकार आदि जो जानै। लिख कै मेटै ताहि सो मानै ॥
ॐकार कहैं सब कोई। जिन्ह यह लखा सो बिरला होई ॥ (ज्ञान चौंतीसा १)

हैं ।[1] इन्ही में गायत्री छन्द एक प्रकार का छन्द है जो २४ अक्षरों का होता है । छन्द में आधे अक्षर को नही गिना जाता, पूरे अक्षर को ही गिना जाता है । वेदो मे जगह-जगह गायत्री छन्द है । सभी वेदों में ऋग्वेद प्रथम है और ऋग्वेद की शुरुआत ही गायत्री छन्दों से होती है ।

गायत्री छन्द के जिस मन्त्र की उपासना पीछे बड़े जोरो से चली, वह ऋग्वेद के तीसरे मंडल के बासठ (६२) वें सूक्त का दसवां मंत्र है,[2] जो विश्वामित्र की रचना है । यह भी एक विडम्बना है कि एक क्षत्रिय के रचे हुए मंत्र गायत्री को जो दीक्षा मे जब तक ग्रहण नही करता, ब्राह्मण नही हो सकता ।

इस मन्त्र में चौबीस अक्षर न होकर तेईस ही अक्षर होने से छन्द भंग है; किंतु वेद-शास्त्र की, भाषा एवं पिंगल संबधी त्रुटियो को आर्ष प्रयोग कह कर उसे बुरी नही मानी जाती है । आर्ष प्रयोग का अर्थ ही है "ऋषियो या बड़े विद्वानो द्वारा किया गया शब्दो का व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग[3]।" इस गायत्री मन्त्र मे तेईस अक्षर इस प्रकार है—"तत्, स, वि, तुर्, व, रे, ण्यं, भ, र्गो, दे, व, स्य, धी, म, हि, धि, यो, यो, नः, प्र, चो, द, यात् । कुछ पंडित 'ण' को णि' करके 'वरेणियं' पढ़कर चौबीस अक्षर बना लेते है । इस पूरे मन्त्र का शब्दशः अर्थ होता है—"हम उस सविता (सूर्य) देवता का ध्यान धारण करते है जो वरण करने योग्य तथा प्रकाश स्वरूप है, और हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है ।"

वैदिक काल में मनुष्य को प्रकृति का बहुत कम ज्ञान था । अतएव वैदिक ऋषि प्रकृति के प्रायः हर रूप या शक्ति को देवता मान कर उसकी स्तुति में मन्त्र बनाते और उसे निष्छल भाव से अपनी मस्ती मे गाते थे । सविता (सूर्य) की महिमा मे वेदो में बहुत मन्त्र हैं । उनमें यह प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र सूर्य की प्रशंसा में ऋषि ने मस्त होकर गाया है । यहां ऋषि सूर्य को बुद्धि का प्रेरयिता मानता है । सच तो है, सूर्य का जब आगमन होने लगता है, उस उषा

१. इन सात छन्दो के अतिरिक्त भी वैदिक छन्द हैं ।

२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।। (ऋ. ३/६२/१०)

३. बृहत् हिन्दीकोश, ज्ञानमंडल वाराणसी ।

वैदिक ऋषि अपनी मस्ती में छन्द बना कर गाते थे । वे अक्षर नहीं गिनते थे । इसीलिए वेद-मन्त्रों में काफी अशुद्धियां है । कहा जाता है छन्दों का ठीक निर्धारण भी वेद रचना के बाद हुआ है । स्वामी करपात्री जी वेद-छन्दों की अशुद्धियां स्वीकार करते हुए लिखते हैं "लता की सहजसिद्ध वक्रिमा पर कौन घृणा करता है ?" (वेद का स्वरूप और प्रमाण, पृष्ठ ५६) ।

काल में ही चिड़िया चहचहाने लगती हैं। सूर्य के उगते ही मानो सारी सृष्टि जाग जाती है। सूर्य की गरमी से ही तो पृथ्वी पर सारी गतिविधियां है। यदि सूर्य ठंडा हो जाय, तो हम सब कुछ ही मिनटों में पृथ्वी पर ठंडे होकर समाप्त हो जायं। यदि सूर्य को ऋषि ने बुद्धि का प्रेरक माना तो कोई बुरा नही किया।

आगे चल कर मानसिक शांति के लिए वैदिको में गायत्री मन्त्र के जप का विधान हुआ। यज्ञोपवीत-दीक्षा के समय यही मन्त्र आचार्य द्वारा शिष्य को दिया जाने लगा। जब से यह दीक्षा-मन्त्र हुआ, इसका महत्व और वढ गया।

पहले पहल प्रायः सभी नियम मानव के उत्थान के लिए शुद्ध भावना-पूर्वक बनाये जाते हैं। आगे चलकर उनमें विकार आते हैं, यह मानव-समाज का स्वभाव है। गायत्री मन्त्र हो या शिव मन्त्र, राम मन्त्र हो या वासुदेव मंत्र, गुरु मन्त्र हो या बौद्ध-जैन मंत्र, इस्लामी मन्त्र हो या इसाई मन्त्र या अन्य कोई पवित्र धारणा संबलित नाम हो—जिनकी जिनमें श्रद्धा है, उन्हे बारंबार जपने या दोहराने से उनको कुछ एकाग्रता, शांति या स्वच्छता का सुख मिल सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। इनमें न कोई मन्त्र या नाम बड़े है न अन्य छोटे। किंतु सांप्रदायिकता ने जो गजब ढाया है, वह खेदजनक है। शैव कहते हैं मोक्ष तो शिव-नाम जप से ही होगा, राम-मन्त्र के जप से तो केवल भौतिक उपलब्धि हो सकती हैं। यही अन्य मत वाले कहना चाहते हैं। राम-नाम या राम-मन्त्र तो सारे पापो का नाशक मान ही लिया गया।

गायत्री मन्त्र, अपने रचनाकाल मे केवल बुद्धि का प्रेरक था, पीछे उसकी मिथ्या महिमा बढ़ी। जरा बानगी ले—"ब्रह्महत्यादि सारे पाप, बड़े हो या छोटे, गायत्री जप से शीघ्र नष्ट हो जाते है[४]। ब्रह्महत्या, शराबपान, चोरी, गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार आदि करके जो महान पाप हो गया हो, वे सब गायत्री के स्मरग मात्र से नष्ट हो जाते है[५]। दिन के पाप दिन में और रात के पाप रात में गायत्री के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।[६]

४. ब्रह्महत्यादि पापानि गुरूणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्री जापतो द्विजः॥ पद्म पुराण॥

५. ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेय गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकादीनि स्मरणान्नाशमाप्नुय॥ (गायत्री पु० २/२७)

६. यदह्नात्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते।
यद्रात्रियात्कुरुते पापं तद्रात्रियात्प्रतिमुच्यते॥ तै० अ० प्र० १० अ० ३४॥
(गायत्री महा विज्ञान, भाग २, पृ० २६-२९)

"बेल के वृक्ष के नीचे एक महीना तक निवास करके (गायत्री का) जप करने से राज्य की प्राप्ति होती है। बेल पेड़ की जड, फल, फूल तथा पत्रों को मिलाकर हवन करने से भी राज्य की प्राप्ति होती है[७]।"

"काशी का प्रसिद्ध 'भारत माता' मन्दिर का जब शिलान्यास किया गया, तब दो सौ दिन तक यज्ञ किया गया तथा बीस लाख गायत्री-मन्त्र जप। अतः यह प्रभाव हुआ कि यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन पास में लगे पेड़ो के सूखे पत्ते हरे हो गये तथा पेड़ो में असमय में फल लग गये (गा० म० वि० १/५६)" कैसी-कैसी झूठी सूचनाएं पडित कहलाने वाले दे सकते है।

कितने लोग गायत्री के जप से पुत्रवान हो गये, कितने बड़े वकील, कितने परीक्षा में पास, कितने राजा और पता नही क्या-क्या! उक्त सारी बाते मनुष्य को गुमराह करने के साधन हैं। जब गायत्री के स्मरण मात्र से भयंकर से भयंकर पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, तब गायत्री जपने वाले पाप से क्यो डरेंगे। गायत्री जपने वाले संसार में मुट्ठी भर लोग है। संसार के अन्य लोग कैसे परीक्षोतीर्ण, जज, वकील आदि होते है? बेल पेड़ के नीचे एक महीना के गायत्री जप से जब राज्य की प्राप्ति हो जाती है, तब राजनेताओ को चुनाव लड़ने की जरूरत ही नही है। वे बस एक महीना बेल पेड़ के नीचे गायत्री जप लिया करें। मंत्र के नाम पर समाज को कितना बेवकूफ बनाया गया है! ऐसी-ऐसी ही ढकोसलेबाजी एवं मतांधता की सलाह से हिंदूराज्य का पतन हुआ था। हमलावर तो अपने बाहुबल से हमारे देश को जीतते थे और हम मूढ़ मान्यताओं में पड़कर मन्त्र-जप करके शत्रुसंहार का दावा करते थे। देश के हजारों-हजारों मंदिर तोड़े गये, लाखो लोग मारे गये, करीब एक सहस्राब्दी तक भारत गुलाम रहा, ये गायत्री जपने वाले पता नहीं कहां बैठे अपना मन्त्र आजमा रहे थे। कहा गया "जो राजा व्रतपूर्वक गायत्री का एक लाख होम करता है, उसके शत्रु युद्ध भूमि मे उसके आगे कदापि नही ठहरते है[८]।" ऐसी बातें जब पडित या महात्मा नामधारी कहता है, तब लोगो को विश्वास हो जाता है और इसी में लोग मारे जाते है। गायत्री न जपने वालो को मूर्ख

७. जपेद् विल्व समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात्।
विल्वं हुत्वाप्नुयाद् द्रव्यं समूलं फल पल्लवम्॥
(गा० म० वि० २/१८२)

८. एवं यः कुरुते राजा लक्षहोमं यतव्रतः।
न तस्य शत्रवः संख्ये अग्रे तिष्ठन्ति कर्हिचित्॥
(गा० म० वि० २/१६६)

भी कहा गया है (गा० म० वि० १/४४)। इन अंधविश्वासों में फंसने वाले अशिक्षित से ज्यादे शिक्षित नामधारी है प्रोफेसर, वकील, जज आदि। और अंधविश्वास फैला कर लोगों को फंसाने वाले तो शिक्षित, तेज, तर्रार होते ही हैं।

"मात्र गायत्री में निष्णात ब्राह्मण मोक्ष को प्राप्त करता है[९]। तथा "मात्र गायत्री के जप से अक्षय मोक्ष की प्राप्ति होती है[१०]।" उक्त कथन श्रद्धा का विषय है। कोई किसी शुभ कर्म से मोक्ष मान सकता है; परन्तु विचार तो करना ही चाहिए। शुद्ध भाव संवलित किसी भी मन्त्र या नाम के जप से थोड़ी एकाग्रता एवं मानसिक प्रसन्नता मिल सकती है। मोक्ष प्राप्ति के लिए स्वस्वरूपज्ञान तथा विषय-वासनाओं की सर्वथा निवृत्ति चाहिए। जब साधक विषय-वासनाओ से सर्वथा छूट कर अपने स्वरूप मे स्थित हो जाता है, यही है मोक्ष। मोक्ष कोई इतना सस्ता सौदा नहीं है कि किसी मन्त्र जप से वह मिल जाय। इसलिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—गायत्री मन्त्र चारो युगो से लोगो को पढ़ाया जा रहा है; परन्तु गायत्री जपने वालो से जाकर पूछो कि केवल जप से किसका मोक्ष हुआ है—"गायत्री युग चारि पढ़ाई। पूछहु जाय मुक्ति किन पाई ॥" (बीजक, रमैनी ३५)

किसी वस्तु का मूल्य घटा कर आंकना अन्याय है; किन्तु सैकड़ो-हजारो गुणा बढ़ा कर आंकना भी अन्याय तथा समाज को धोखा देना है। वस्तु का मूल्यांकन सही होना चाहिए।

३४

आहुति सत्य होम की आसा

ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम पुस्तक है। यह तो सबको मानना पड़ेगा कि यह आर्यो एवं भारतीय परम्परा की सबसे पुरानी पुस्तक है। ऋग्वेद के अधिकतम मंत्र होम-यज्ञ के लिए, उसकी प्रशंसा में ही बने है। पीछे के अन्य तीनों वेद भी यज्ञपरक ही हैं। वेदो मे अन्य बाते भी है, किन्तु उनमें प्रधानता यज्ञों की ही है। ऋग्वेद का पहला मंत्र कहता है "यज्ञ के पुरोहित, दीप्तिमान

९. गायत्री मात्र निष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ (गा० म० वि० २/१८)
१०. अक्षयमोक्षमवाप्नोति गायत्री मात्र जापनात् ॥ (गा० म० वि० २/१९)

देवों को बुलाने वाले ऋत्विक और रत्नधारी अग्नि की मैं स्तुति करता हू[1] ।" इसमें यज्ञ, पुरोहित, देवता, ऋत्विक (यज्ञ कराने वाले) तथा अग्नि का वर्णन है जो सब यज्ञ के ही अंग हैं।

ऋग्वेद की ऋचाओं के बनने के शताब्दियों पूर्व से ही यज्ञ-होम चलते रहे हैं। तभी यज्ञों के विचार परिपक्व होकर ऋग्वेद में मंत्रबद्ध हुए हैं। ऋग्वेद का दूसरा मंत्र कहता है "प्राचीन ऋषियों ने जिसकी स्तुति की थी, आधुनिक ऋषि जिसकी स्तुति करते हैं, वह अग्नि, देवों को इस यज्ञ में बुलावे[2] ।"

उस समय प्रकृति का ज्ञान कम था। अतएव जब ऋषिगण अनंत आकाश, घनघोर बादल, उद्दीप्त बिजली, दहलाने वाली गर्जना, भीषण वर्षा, प्रज्वलित अग्नि, प्रकाशमान सूर्य, प्रवहमान वायु, निबिड़ अंधकार आदि प्रकृति के डरावने तथा मनोरम चेहरे देखते थे; तब उनके हृदय भय और प्रसन्नता से आंदोलित हो उठते थे। जड़ प्रकृति की इन महान शक्तियों को वे प्रबल देवता समझते थे। उनको लगता था कि ये बलशाली देवता आकाश हमें आक्रोश और अनुग्रह की दृष्टि से झांक रहे हैं।

ऋग्वेद की रचना आरम्भ होने के शताब्दियों या सहस्राब्दियों पूर्व से ही आर्यगण साहित्य क्षेत्र में उन्नत हो गये थे, क्योंकि ऋग्वेद जैसा प्रौढ़ काव्यात्मक साहित्य वे एकाएक नही दे सकते थे। ऋग्वेद के पूर्व आर्यो के साहित्य अवश्य रहे होंगे, किन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार ऋग्वेद की रचना के बहुत पूर्व से आर्यों के रक्त में कवित्वशक्ति लहरा रही थी। अतएव कवि-हृदय ऋषिगण प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवी-देवता मान कर वैदिक छंदों में स्तुति करने लगे।

ऋषियों ने सोचा सूर्य, वायु, अग्नि, बादल, बिजली आदि देवता (प्रकृतिशक्ति) आकाश में फैले हैं। ये यदि प्रसन्न रहें, तो वर्षा या जगत की सारी गतिविधियां व्यवस्थित रहें। इनको खुश कैसे किया जाय ? उन्होने पहले अपने भोजन की सारी सामग्री में से कुछ अंश देवताओ के नाम पर निकाल कर अलग रखा होगा और देखा कि उस सामग्री को पशु, पक्षी एवं कीड़े खा गये या वह यों ही सड़ गयी। उन्होंने सोचा देवताओं ने हमारी पूजा नही ली और तब कुछ दिनों में ऋषियों को सूझ हुई कि आग में घी, मेवे, औषधियां, अन्न,

१ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥

(ऋग्वेद १/१/१)

२. वही १/१/२ । श्री रामगोविंद त्रिवेदी की हिंदी टीका ।

इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, वि० २०११ सं० ।

पशु, पक्षी आदि डाले जायं, इनका होम किया जाय, तो इनकी गंध उड़ कर ऊपर आकाश में जायेगी और देवता लोग उसे सूंघ कर प्रसन्न होंगे। वे वर्षा ठीक करेंगे, भूचाल नहीं लाएंगे, हमें रोग नहीं होने देंगे, हमारे शत्रुओं का नाश करेंगे, हमें धन देंगे, पशु देंगे, आयु देंगे इत्यादि। इन्हीं आशयों के मंत्र वेदों में भरे हैं।

इस विश्वास में होम-यज्ञ का दौरदौरा चलने लगा। चारों वेद इसकी प्रशस्ति में बने। ब्राह्मणग्रंथ—शतपथ, गोपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय आदि; श्रौत-सूत्र—आपस्तंब, आश्वलायन, बौधायन, कात्यायन, सत्साषाढ़ आदि; ऐसे ही आपस्तंब-आश्वलायन आदि गृह्यसूत्र यज्ञविधि के विस्तार में व्यस्त है।

जब चतुर्वर्ण-व्यवस्था हुई, तब यज्ञ करने की जिम्मेदारी केवल ब्राह्मणों ने ली। यही उनका निर्वाह-धंधा हुआ। धंधे का विज्ञापन करना पड़ता है। कपड़ा, तेल, मशीन—किसी वस्तु का व्यापार जब किया जाता है, तब उसका विज्ञापन किया जाता है। फिर यज्ञ का विज्ञापन तो अनिवार्य था; क्योंकि इसमें कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं था, बल्कि धन का ही बेतहाशा खर्च था। समय भी लगता था। अतएव पुरोहितों ने कहा कि यज्ञ करने से पुत्र, राज्य, धन, स्वर्ग आदि की प्राप्ति होती है। शिव जी से कहलवा दिया गया कि हजारों ब्राह्मणों के वध तथा अरबों गर्भ-हत्या का पाप, कोटि आहुतियों का होम करने से नष्ट हो जाता है[३]। वेदव्यास द्वारा युधिष्ठिर को कहलवा दिया गया कि मनुष्य गण नित्य बहुत से पाप कर्म करके यज्ञ, तप, दान आदि के द्वारा उन पापों से छूट जाया करते हैं[४]। ब्राह्मणों को मारने वाला, विश्व के लोगों का सामूहिक वध करने वाला तथा गाय का मारने वाला भी अश्वमेध यज्ञ करने से शुद्ध होता है[५]। शत्रुसंहार की इच्छा करके यज्ञ करने पर यज्ञकुंड से सशस्त्र सेना निकल आती थी[६]। इन्द्रजित (मेघनाद) यज्ञ के बल पर अपने आप को, अपने घोड़ों सहित रथ को युद्ध में अदृश्य कर लेता था[७]। पुत्र की इच्छा से यज्ञ करने पर हवन कुंड से खीर लेकर देवता प्रकट हो जाता था[८]। इतना ही नहीं, यज्ञ कुंड

३. ब्रह्महत्या सहस्राणि भ्रूणहत्या अर्बुदानि च। कोटि होमेन नश्यन्ति यथा-वच्छिव भाषितम् ॥ मत्स्य पु० ९३/१३८ ॥ गायत्री यज्ञ विधान १२४ ॥

४. ततोऽभिः क्रतुश्चैव दानेन युधिष्ठिर। तरन्ति नित्यं पुरुषाये स्म पापानि कुर्वते।
(गायत्री यज्ञ विधान १२५)

५. द्विजहा, विश्वहागोघ्नो वाजिमेधेन शुध्यति ॥ गर्ग सं० १०/७ ॥

६. शिवपुराण।

७. वाल्मीकीय रामायण ६/७३।

८. वाल्मीकीय रामायण १/१६।

से नदी, नगर, अस्त्र-शस्त्र तथा जो चाहो, वह सब निकल आता था। ये सारी असंभव बते यज्ञ-प्रचार के लिए विज्ञापन हैं।

यज्ञ-होम को आज-कल के पुरोहित तथाकथित वैज्ञानिकता का जामा भी पहनाते हैं। हवन की वस्तु सूक्ष्म होकर ऊर्जा के रूप मे बदल जाती है। वेद मंत्रो से अभिषिक्त होने से वह जगत का कल्याण करती है इत्यादि। ये सारी अजीबोगरीब बातें होम को बहुत फलदायी सिद्ध करने का प्रयास है।

होम-यज्ञ न करने वालो को नरक जाने का करार दिया गया। कहा गया "तामिस्र, अंधतामिस्र, महारौरव, असिपत्रवन, घोर कालसूत्र और अवीचिक आदि जो नरक हैं, वे वेदों की निंदा और यज्ञों का उच्छेद करने वाले तथा स्वधर्म-विमुख पुरुषो के स्थान कहे गये है[९]।"

एक बार असुर लोग यज्ञ से बलवान हो गये। तब देवो की प्रार्थना पर भगवान ने असुरो के पास ऐसे-ऐसे दूत भेजे जो असुरो को यज्ञ न करने की सलाह दे। उन छद्म दूतो ने बड़ा प्रभावशाली वेष बना कर असुरो से कहा—"हरे-हरे! तुम यह पाप क्यो करते हो? यज्ञ मे हिंसा होती है[१०]। दैत्यो को यह मत उचित लगा और उन्होने अपना जीवन अ-यज्ञमय बना लिया, जिससे वे तेजहीन हो गये। देवो ने उन यज्ञहीन दैत्यो को परास्त करके स्वर्ग का राज्य वापस ले लिया।" यहां परोक्ष रूप से महात्मा बुद्ध के अनुगामियो को दैत्य कहा गया है जो बुद्ध के उपदेश पाकर यज्ञ से हट गये थे।

आप जानना चाहेगे कि क्या यज्ञ मे जीव-हिंसा की जाती थी? उत्तर में बताना पड़ेगा कि यज्ञपरक वैदिक शास्त्र हिंसा से भरे है। वैदिक साहित्य के यज्ञ विधान संदर्भ मे पांच बलिपशु माने गये हैं—'मनुष्य, बकरा, भेड़ा, बैल तथा घोड़ा[११]। "भारतरत्न, महामहोपाध्याय डॉ० पाडुरंग वामन काणे एम० ए० एल० एल० एम०" ने पांच खडो मे 'धर्मशास्त्र का इतिहास' लिखा है। उसी में से थोड़ी बानगी लें—

पशु की बलि इन्द्र-अग्नि, सूर्य या प्रजापति के लिए दी जाती है और बलि करने वाले को प्रत्येक पशुबन्ध में जीवन भर उस देवता के लिए, जिसे

९. तामिस्रमन्ध तामिस्रं महारौरवौ। असिपत्रवनं घोर कालसूत्रमवीचिकम् विनिन्दकानां देवस्य यज्ञव्याघातकारिणाम्। स्थानमेतत्समाख्यातं स्वधर्मत्यागिनश्च ये॥
॥ वि० पु० प्र० अंश अ० ६। गायत्री यज्ञ विधान, पृ० १३६॥

१०. गायत्री यज्ञ विधान, पृ० ६०।

११. शाखायन श्रौतसूत्र ६/२३/४; शतपथ ब्राह्मण २/४/३/१३; ३/१/२/१३; ४/५/५/१०; १४/१/१/३२॥ वैदिक इंडेक्स १/२५८॥

वह प्रथम बार चुनता है, ऐसा करना पड़ता है (कात्यायन ६/३/२६-३०)। इस यज्ञ से सम्बन्धित अन्य कृत्यों का वर्णन यहां आवश्यक नहीं है।

"अध्वर्यु (पुरोहित) शमिता (पशु मारने वाले) को अस्त्र देता है। यह क्रिया मंत्र आदि के साथ की जाती है। जब पशु का शिर काट दिया जाता है तो उसकी आंतें आदि एक विशिष्ट गड्ढे में दबा दी जाती हैं। जिस अग्नि पर पशु का मांस पकाया जाता है उसे 'शामित्र' कहते हैं। पशु का मुख इस प्रकार बांध दिया जाता है कि काटते समय उसके मुख से स्वर न निकले। अध्वर्यु, प्रतिस्थाता एवं यजमान अपना मुख काटे जाते हुए पशु से दूसरी ओर कर लेते हैं। यजमान ऐसे मंत्रों का उच्चारण करता है जिनका तात्पर्य यह है कि वह पशु के साथ स्वर्ग की प्राप्ति करे। जब पशु मर जाता है, तो यजमान की पत्नी उसके मुख, नाक, आंखों, नाभि, लिंग, गुदा, पैरों को मंत्र के साथ स्वच्छ कर देती है। इसी प्रकार अन्य कृत्य भी किये जाते है। सभी पुरोहित (अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, आग्नीध्र, प्रतिप्रस्थाता एव मैत्रावरुण) यजमान और उसकी पत्नी मार्जन द्वारा अपने को शुद्ध करते है[१२]।"

पशु के एक-एक अंग की भिन्न देवताओं के नाम पर आहुति दी जाती है तथा यज्ञ करने वाले पुरोहितों एवं यजमान को प्रसाद स्वरूप दिया जाता है। इसका लंबा तथा वीभत्स वर्णन है।

वैसे तो अश्व दिशा-विदिशा में छोड़ने के लिए जब पहले उसकी क्रिया की जाती थी, तभी कई पशुओं की जानें ली जाती थी। अश्वमेध यज्ञ के समय तीन सौ यूपों (खूटों) में तीन सौ पशु-पक्षी आदि जानवरों के सहित मुख्य घोड़ा बांधा और मारा जाता था (वाल्मीकीय रामायण १/१४)। वह सारा विवरण देने के लिए एक मोटी पुस्तक लिखना चाहिए। थोड़ी बानगी लें। भारतरत्न महामहोपाध्याय डॉ० पाडुरंग वामन काणे जी लिखते हैं—

"घास पर एक वस्त्र खंड बिछा दिया जाता है, जिस पर एक अन्य चादर रख कर तथा एक स्वर्ण खंड डालकर अश्व का हनन (वध) किया जाता है। इसके उपरांत रानियां दाहिने से बाये जाती हुई अश्व की तीन बार परिक्रमा करती हैं (वाजसनेयी संहिता २३/१९), रानियां अपने वस्त्रों से मृत अश्व को हवा करती हैं और दाहिनी ओर अपने केश बांधती हैं तथा बाई ओर खोलती हैं। इस कृत्य के साथ वे दाहिने हाथ से अपनी बाईं जांघ पर आघात

१२. धर्मशास्त्र का इतिहास, खंड १ पृ० ५४३, संस्करण २, हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ।

करती हैं (आपस्तंब २२/१७/१३, आश्वलायन १०/८/८)। पटरानी (बड़ी रानी) मृत अश्व के पार्श्व (बगल) मे लेट जाती है और अध्वर्यु (पुरोहित) दोनों (मृत घोड़े औ रानी) को नीचे पडी चादर से ढक देता है। पटरानी इस प्रकार मृत अश्व से सम्मिलन करती है (आपस्तंब २२/१८/३-४, कात्यायन २०/६/१५-१६), इसके उपरांत आश्वलायन (१०/८/१०-१३) के मत से वेदी के बाहर होता (पुरोहित) पटरानी को अश्लील भाषा में गालिया देता है, जिसका उत्तर पटरानी अपनी एक सौ दासी राजकुमारियो के साथ देती हैं। इस प्रकार ब्रह्मा नामक पुरोहित एवं वावाता (प्रियतमा रानी) भी करते है; अर्थात उनमे भी अश्लील भाषा मे गालियो का दौर चलता है। कात्यायन (२०/६/१८) के अनुसार चारो प्रमुख पुरोहितों एवं क्षत्रो (चंवर डुलाने वालियो) में भी वही अश्लील व्यवहार होता है और ये सभी रानियो एवं उनकी नवयुवती दासियो से गंदी-गंदी बातें करते है (वाजसनेयी संहिता २३/२२-३१। शतपथ ब्राह्मण १३/२/९ एवं लाट्यायन ९/१०/३-६)। इसके उपरात दासी राजकुमारियां पटरानी को मृत अश्व से दूर करती हैं। अश्व को पटरानी, वावाता[13] एवं परिवृक्ती रानिया क्रम से सोने, चांदी एवं लोहे (संभवत: यहा यह ताम्र का ही अर्थ रखता है) की सूइयो से काटती है और उसके मांस को निकाल बाहर करती हैं। इसके उपरात यज्ञ संबन्धी बहुत से उत्तर-प्रत्युत्तर पुरोहितो एवं यजमान के बीच चलते हैं, जिन्हे यहा देना आवश्यक नही। विभिन्न देवताओं के नाम पर मांस की आहुतियां दी जाती है। इसके उपरात बहुत से कृत्य किये जाते है, जिन्हें स्थानाभाव से हम यहां नही दे रहे है[14]।"

ऋग्वेद, प्रथम मंडल के १६२ वें तथा १६३ वे सूक्तो के पूरे ३५ मन्त्रों में अश्वमेध यज्ञ के क्रम मे वध किये जाने वाले अश्व का जो वर्णन है, देखने योग्य है। कुछ मन्त्रो का उदाहरण लें। वेदो के महान विद्वान पं० रामगोविन्द त्रिवेदी मन्त्रों का अर्थ करते हुए लिखते हैं—"अश्व का जो कच्चा मांस मक्खी खाती है, काटते या साफ करने के समय हथियार में जो लग जाता है और छेदक के हाथों तथा नखों में जो लग जाता है, वह सब देवों के पास जाय (१/१६२/९)। हे अश्व! आग में पकाते समय तुम्हारे शरीर से जो रस

१३. यज्ञ में दीक्षित राजा की मुख्य चार रानियां होती हैं महिषी, वावाता, परिवृक्ती, पालाकली या पालागली। पटरानी को महिषी, अतिप्रिय रानी को वावाता, त्यागी हुई रानी को परिवृक्ती तथा नीच जाति वाली रानी को पालाकली कहते हैं।

१४. धर्मशास्त्र का इतिहास, खंड १, पृ० ५६८-५६९।

निकलता और जो अंश सूल में आबद्ध रहता है, वह मिट्टी में मिलकर तिनकों में मिल न जाय। देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय। जो लोग चारों ओर से अश्व का पकना देखते हैं, जो कहते हैं कि गंध मनोहर है, देवों को दो; तथा जो 'मांस-भिक्षा' की अपेक्षा करते, उनका संकल्प हमारा ही हो (१/१६२/११-१२)। वह द्रुतगामी अश्व आसक्त चित्त से देवों का ध्यान करते हुए वध-स्थान मे जाता है। उसके मित्र छाग (बकरे) को उसके आगे-आगे ले जाया जाता है। कवि स्तोता पीछे-पीछे जाते है (१/१६३/१२)। यजुर्वेद (अध्याय २५। मन्त्र ३१ से ४५) में भी अश्व की बलि, उसके पकाने तथा देवताओं को अर्पित करने की विशद चर्चा है; जो ऋग्वेद के प्रथम मंडल के १६२ वे सूक्त से लिया गया है।

यजुर्वेद के चौबीसवें अध्याय के पूरे चालीस मंत्रों में यही वर्णन है कि किस देवता के लिए किस पशु-पक्षी की बलि देनी चाहिए; जिनमे घोड़ा, बकरा, भेंड़ी, तीतर, बटेर, मेढक, मछली, केकड़ा, हंस, चकवा, मुर्गा, उल्लूक, नीलकंठ, मयूर, भैंसा, नीलगाय—कहां तक गिनाया जाय! गायत्री छन्द के लिए डेढ़ वर्ष का पशु, त्रिष्टुप छन्द के लिए ढाई वर्ष का पशु, जगती छन्द के लिए दो वर्ष का पशु, इसी प्रकार अन्य छन्दों के लिए पशु को बलि देने की बात है (यजुर्वेद अ० २४। मन्त्र १-४०) देखे आचार्य श्रीराम शर्मा की टीका, संस्करण १९६५।

ऋग्वेद (१/१६२/२१) तथा यजुर्वेद (२५/४४) में मारे गये अश्व के लिए कहा गया है कि "हे अश्व! न तुम मारे जा रहे हो, और न विनष्ट हो रहे हो; किन्तु पुण्यात्माओं के स्वर्गलोक को जा रहे हो। द्रुतगामी अश्व, पिता और माता को प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट और निवास योग्य स्थान पर गमन करता है। अश्व आज खूब प्रसन्न होकर देवों के पास जाओ, ताकि दृव्यदाता वरणीय धन प्राप्त करें (ऋग्वेद १/१६३/१३)।" इन यज्ञों में पुरोहितों को दान में राज्य, स्वर्ण, हजारों तथा लाखों गायें और राजकन्या को भी देने का विधान है।

यज्ञ के बहुत प्रकार हैं जो बड़े बेढंगे हैं। इनका विवेक से कोई मतलब नहीं है। "गोसव तो एक विचित्र यज्ञ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (२/७/६) में संक्षेप में इसका वर्णन किया है। स्वाराज्य का इच्छुक इसे करता है। आपस्तंब (२२/१२/१२-२० एवं २२/१३/१-३) ने लिखा है कि इस यज्ञ के उपरान्त साल भर यजमान को पशुव्रत अर्थात् पशु की भांति आचरण करना पड़ता है। उसे पशु के समान जल पीना, घास चरना, कुटुम्ब-व्यवहार आदि करना प[illegible]

है–तेनेष्ट्वा संवत्सरं पशुव्रतो भवति। उपावहायोदकं पिबेतृणानि चाच्छिन्द्यात्। उप मातरमियादुप स्वसारमुप सगोत्राम् (आपस्तंब २२/१३/१-३)। एक अन्य मनोरंजक एकाह यज्ञ है सर्वस्वार जो उस व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो यज्ञ करते-करते स्वर्ग की प्राप्ति के लिए मर जाना चाहता है। सायंकाल सोमरस निकालते समय जब आर्भव पवमान स्तोत्र का पाठ होता रहता है, यजमान पुरोहितों से यज्ञ की समाप्ति की बात कहकर अग्नि में प्रवेश कर जाता है। इस यज्ञ को शुनःकर्णोग्निष्टोम कहा जाता है (ताण्ड्य ब्राह्मण १७/१२/५, जैमिनि १०/२/५७-६१)[१५]।"

अश्वमेध यज्ञ को सारे पापो का नाशक माना है, जबकि यह स्वयं महा क्रूरतापूर्ण, घृणित एवं अश्लीलता का नग्न नृत्य था। दूसरी बात अश्वमेध यज्ञ के नाम पर घोड़ा छोड़ कर उसके पीछे राजा की सेना चलती थी और जो राजा उस घोड़े को पकड़ता उससे लड़ाई लड़ी जाती थी तथा उसे जीत कर उसको अपने अधीन बनाया जाता था। जो नही पकड़ता, वह स्वयं अधीन हो जाता था। इस प्रकार बलवान राजा-लोग यज्ञ के नाम पर अन्य राजाओं तथा देशों को पीड़ित करके उनका रक्त बहाकर राज्य का विस्तार या अपने अहंकार का पोषण करते थे। यह एक प्रकार की बर्बरता थी जिसको धर्म का जामा पहना रखा था। देखिये युधिष्ठिर का यज्ञ (महाभारत आश्वमेधिक पर्व) घोड़ा के पीछे सेना सहित अर्जुन ने चलकर त्रिगर्त, प्राग्ज्योतिषपुर, सिंधु देश, मणिपुर, मगध, चेदि, काशी, कोसल, गांधार आदि देश के राजाओं से लड़कर निरपराधो का कितना खून बहाया है!

इन सारे यज्ञों के मूल मे अंधविश्वास, अज्ञान एव पुरोहितों का पेट-धंधा था। जब धीरे-धीरे इस यज्ञ-होम के प्रपंच से जनता ऊब गयी, तब उसने ज्ञान की शरण ली। इस ज्ञान के चिंतन में उपनिषदों की रचना हुई। आचार्य वृहस्पति ने यज्ञों के विरोध में कड़े वचन कहे। महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर ने यज्ञों का विरोध किया। पीछे वासुदेव कृष्ण की भक्ति चली और भगवत भक्तो ने भी यज्ञों से हट कर पूजा-उपासना पर बल देना शुरू किया।

पुरोहितो को यह बुरा लगा और वे आचार्य वृहस्पति[१६] को भला-बुरा कहने लगे। बुद्ध तथा महावीर को तो नास्तिक ही कह डाले। यज्ञ के नाम

१५. धर्मशास्त्र का इतिहास, खंड १, पृ० ५६०।

१६. आचार्य वृहस्पति ने कहा—यज्ञों में गाली-गलौज भांडपन है; पशु मारना, उसका हवन करना तथा मांस खाना निशाचरपन है और यजमान को राज्य, पुत्र, धन, स्वर्ग आदि पाने का झांसा देकर यज्ञ के बहाने उनसे धन चूसना धूर्तता है।

पर क्रूर हिंसा करने वाले आस्तिक थे और करुणा की मूर्तियां बुद्ध-महावीर नास्तिक थे कैसी पक्षपाती धारणा है ! यज्ञ के प्रपंच से रहित होने के कारण भागवतों (वैष्णवो) की भी पुरोहितों ने मखौल उड़ाई । एक उदाहरण लें—

"वेदविहीन लोग शास्त्र पढ़ते हैं, शास्त्रविहीन लोग पुराण पढ़ते हैं, पुराणहीन लोग खेती करते हैं और जो इससे भी भ्रष्ट (सब प्रकार गये बीते) हैं, वे भागवत (विष्णु तथा शिव के पुजारी भक्त) हो जाते हैं[१७] ।"

पुरोहितो के झल्लाने पर भी प्रपंच बहुल हिंसायुक्त यज्ञो को समर्थन मिलना वन्द होने लगा । गीताकार ने यज्ञ का अर्थ उलट कर लोक-कल्याणकारी सेवा एव ज्ञान कर दिया । छांदोग्य उपनिषद् (१/१२) ने यज्ञ करने वालो को कुत्तो के समान बता कर उनका परिहास किया जो बिना विवेक एक दूसरे की पूछ पकड़ करके चलते है । मुंडक उपनिषद् (१/२/७-८) ने यज्ञ करने वाले यजमान तथा कराने वाले पुरोहितों को मूढ़, अहंकारी, पांडित्य बघारने वाले, अंधे को अंधे रास्ता दिखाने वालो के समान 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा.' कह कर उनका तिरस्कार किया । गीता (२/४२-४६) मे इन यज्ञो स हट कर आत्मज्ञान की ओर बढ़ने की जोरदार शब्दो में प्रेरणा दी गयी । इस प्रकार भारत की जनता आडंबरपूर्ण एवं क्रूर यज्ञ से हट कर पूजा, उपासना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि की तरफ अग्रसर हुई ।

भारतीय दर्शनो के पिता, परमज्ञानी महर्षि कपिल ने यज्ञो का तिरस्कार किया । उनकी परम्परा मे ईश्वरकृष्ण रचित सांख्यदर्शन के प्रौढ़ ग्रन्थ साख्यकारिका में लिखा गया कि "अशुद्धि, क्षय और सातिशयता—इन तीन दोषो के कारण यज्ञकर्म कल्याण का पथ नही है । यज्ञ मे पशु वध होने से वह अशुद्ध है, यज्ञ का फल स्वर्ग माना है जो नाशवान होने से क्षयदोष से लिप्त है और स्वर्ग मे सबकी समान स्थिति नही मानी है, बल्कि कहा जाता है कि वहां कर्मों के अनुसार ऊंची-नीची स्थितियां होती है, अतः यज्ञफल सातिशय (कमीबेशी) रूप तीसरे दोष से भी पूर्ण है । अतएव कपिल जी ने कहा कि यज्ञ कल्याण का रास्ता नही है । कल्याण का रास्ता है प्रकृति-पुरुष-विवेक (सां० का० २) । इसीलिए कर्मकांडियो ने साम्प्रदायिक विद्वेषवश सांख्यवादियों को बहुत कहा है । "अपरार्क (पृ० ६२३) एवं स्मृति चंद्रिका (पृ० ११८) ने पद्[illegible]

१७. वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥
अत्रि ३८४ ॥ धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १, पृ० १५३ ॥

ब्रह्मांड पुराण से उदाहरण लेकर कहा है—"बौद्धों, पाशुपतों, जैनों, लोकायतों, कापिलों (सांख्यवादियों), धर्मच्युत ब्राह्मणों, शैवों एवं नास्तिकों को छूने पर वस्त्र के साथ पानी में स्नान कर लेना चाहिए" (धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृष्ठ १६८)।

स्वयं वैदिक ऋषि भी यज्ञ और कल्पित देवताओं से निराश होकर उनके प्रति अविश्वास प्रकट करने लगे थे। ऋग्वेद के सोभरि ऋषि कहते हैं—"हे अग्निदेव! यदि तुम मुझ जैसा मरणशील मानव होते और मै तुम जैसा अमर देवता होता (तो जानते हो मैं क्या करता?) मेरी स्तुति करने वाला न बुद्धि-हीन होता, न वह संकट में फंसता और न पाप मे लिप्त होता (और तुम ऐसे निकम्मे देवता हो कि मुझे मूर्खता, संकट तथा पाप से नहीं बचा पा रहे हो[१८])।" त्रित ऋषि कहते हैं—"हे देव! तुम्हारा सत्य कहां गया, तुम्हारा अमृत कहां गया और तुम्हें दी गयी आहुतियां कहां गयी[१९]?"

बुद्धकाल से ही हिंसामय यज्ञ में कमी होने लगी थी। इतिहास के मध्य-युग तक ऐसे यज्ञ काफी बद हो गये, किन्तु एकदम बद नही हुए थे। ईसा की अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में आमेर (जयपुर) के राजा जयसिंह ने अश्वमेध यज्ञ किया था[२०]। किसी न किसी प्रकार यज्ञ एवं पूजा के नाम पर धर्मशास्त्रो का आधार लेकर ब्राह्मण पुरोहितो द्वारा सद्गुरु कबीर के काल मे भी जीव वध होते थे। इसका स्पष्ट प्रकाश उनकी वाणियों में है।

सद्गुरु कबीर कहते है "स्मृति ग्रंथों की बातें सभी को अच्छी लगती हैं, किन्तु लोग हृदय से वास्तविक तत्त्व को नही समझते। निर्जीव देवो के सामने सजीव प्राणियों का वध करते हैं। इस प्रकार इनके नेत्रो से कुछ नही सूझता[२१]। पुरोहित लोग अग्नि में आहुति डालकर होम करना परम धर्म समझ लिये हैं और इसी से इनको सत्य पाने की आशा लगी है.........ये कर्मकांड का ही अध्ययन करते हैं और जनता से कर्मकांड कराने के लिए ही प्रयत्न करते है। जब कोई इनसे कल्याण का रास्ता पूछता है, तब ये उसे कर्मकांड-

१८. यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रो अमर्त्यः। न मे स्तोता मतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया। ऋग्वेद। ऋग्वेद सूक्त विकास, पृष्ठ १३३। लेखक प्र० ह० र० दिवेकर।

१९. कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः। (वही)

२०. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५७०।

२१. सुमृति सोहाय सब कोइ जान, हृदया तत्व न बूझैं।
निर्जिव आगे सर्जिव थापै, लोचन किछउ न सूझैं॥ (बीजक, शब्द ९३)

यज्ञ-होम करने की ही राय देते हैं और कहते है इसी से सारी सिद्धियां मिल जायेंगी। पुरोहित लोग निष्कर्मी अर्थात भक्ति एवं ज्ञानमार्गावलंबी संतो, सज्जनों एवं ज्ञानियों की निंदा करते हैं, और जो होम-यज्ञ करता है, उससे बहुत प्रसन्न रहते है[२२]।

सद्गुरु कबीर और कहते है "हे रमैया राम (मानव)! तूने स्मृति ग्रथों को धर्मशास्त्र मान कर उनमें अपनी बुद्धि बांध दी और यज्ञ-होम के नाम पर हिंसा तथा वर्णधर्म के नाम पर भेद-भाव के विषैले तत्त्व मे फंस कर अपने को खो दिया। तू ने धोखे मे विश्वास किया और राज्य, पुत्र, धन, स्वर्ग आदि के लोभ मे पड़ कर विवेकहीन कर्मकांडो में उसी प्रकार फस गया जैसे मछली चारे के लोभ से बंसी (कटिया) मे फंस जाती है। तुम कहते हो "यह तो वेद-शास्त्र है, पूर्व आचार्यों ने इन पर श्रद्धा रखने की बात हम पर डाल दी है।" मै कहता हूं तुम शत्रु के हमले से बचने के लिए गोबर का किला उठा रहे हो। बिना विवेक के केवल वेद-शास्त्रो की प्रामाणिकता की दोहाई देना कदापि हितकर नहीं हो सकता[२३]।"

सद्गुरु कबीर की कैसी मार्मिक एवं आंखें खोल देने वाला सुझाव है। वे वेद-शास्त्रों को बिलकुल नकारने को नही कहते है, किन्तु विवेक रखने की बात कहते है—"वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे।"

इस पर चर्चा हो चुकी है कि वेदों के अधिकतम मंत्र प्राकृतिक शक्तियों को देव मानकर और उनसे भयभीय होकर उनको खुश करने के लिए प्रार्थना रूप में बने है और हवन भी इसी विश्वास पर शुरू हुआ था कि मेवे, घी,

२२. आहुति सत्य होम की आशा।............

कर्म पढ़ें औ कर्म को धावें। जेहि पूछा तेहि कर्म दृढ़ावें॥
निष्कर्मी की निंदा कीजै। कर्म करे ताही चित दीजै॥
(बीजक, विप्रमतीसी)

२३. भल सुमृति जहँड़ायो, हो रमैया राम॥ १॥
धोखे कियेउ विश्वास, हो रमैया राम॥ २॥
सो तो है बन्सी कसी, हो रमैया राम॥ ३॥
सो रे कियेहु विश्वास, हो रमैया राम॥ ४॥
ई तो है वेद शास्त्र, हो रमैया राम॥ ५॥
गुरु दीहल मोहि थापि, हो रमैया राम॥ ६॥
गोबर कोट उठायेहु, हो रमैया राम॥ ७॥
परिहरि जैबेहु खेत, हो रमैया राम॥ ८॥ (बीजक, बेलि २)

औषधियां, जानवर आदि जलाकर ऊपर के देवताओं तक उसकी गंध पहुंचायी जाये। उनको खुश किया जाय। उनसे अपने जीवन, धन, खेती, परिवार, पशु आदि की रक्षा और वर्षा आदि की गारंटी ली जाये।

हवन से पानी बरसने की बात एक मिथ्या धारणा है। विश्व के अनेक देश अपने श्रम से इतना अन्न पैदा करते हैं कि उनमे से कोई-कोई देश कभी-कभी बाजार भाव गिरने के डर से हजारों टन अन्न समुद्र मे फेक देते है। हमारे भारत देश में हर साल हवन रूप 'घर फूक तमाशा' में करोड़ों रुपये के घी, मेवे, अन्नादि जला दिये जाते है; किन्तु भारत आज भी कंगाल बना हुआ है। भारत में आज भी प्रतिदिन लाखो लोग आधे पेट रह जाते है। भारत में इधर हवन होते हैं, उधर सूखा-दाहा रुकते नही। भारत भी धन-धान्य संपन्न होकर तभी सुखी होगा, जब वह छू मंतर के अंधविश्वास को छोड़ कर श्रम में श्रद्धा करेगा और अटूट श्रम करेगा। हमे अनेक धार्मिक मान्यताओ ने पंगु बना कर रख दिया है।

हम घी, मेवे और अन्न को फूक कर वातावरण पवित्र नही बना सकते। हमारा कर्तव्य है कि जहां तक बन सके हम वातावरण मे गंदगी न फैलाएं, सफाई रखने का पूर्ण प्रयत्न करे। घर मे अगरबत्ती, गूगल, धूप आदि थोड़ा सुलगा देना अच्छा है; परन्तु घी, मेवे, अन्नादि फूकना मनुष्यता के विरुद्ध है। आज भारत में हर वर्ष सहस्रकुंडी यज्ञ आदि के नाम पर हजारो मन घी, मेवे, अन्नादि फूकने का जो नग्न ताडव किया जाता है, विवेकवान को संतोष नही दे सकता। आदमी तो घी, मेवे तथा अन्न खाने को नही पाता; परन्तु विद्वान कहलाने वाले लोग उन्हे फूक कर भारत मे आनन्द की बारिश करा देना चाहते है।

पूर्ववैदिक या वैदिक युग में पूरा भारत जगलों से ढंका था। एक-एक ऋषि या गृहस्थ के हजारो गाये होती थी। मनुष्य कम थे और घी, मेवे, अन्न आदि की अधिकता थी। ऐसी स्थिति मे वे हवन के नाम पर उन्हे जलाते रहे हो; तो क्षम्य थे। आज जबकि बढ़ती जनसंख्या मे उपभोक्ता अधिक है और सामग्री कम, फिर घी, मेवे, अन्नादि जैसा जीवन की आवश्यक वस्तुओ को हवन के नाम पर फूकना कहां तक विवेकसमत है!

कहा जाता है कि एक मिर्चा को खाये तो एक व्यक्ति को ही तीत लगेगा; परन्तु उसे यदि आग में डाल दें, उसकी झार से वहां बैठे दूर तक के लोग पीड़ित हो जायेंगे। वस्तुएं जलाने से सूक्ष्म होती हैं और सूक्ष्म वस्तुएं शक्तिवर्द्धक होती हैं। हवन से घी, मेवे, अन्नादि जल कर उनकी शक्ति बहुत

वढ़ जाती है और वह समाज के लिए स्वास्थ्यप्रद होती है। परन्तु ये सारी दलीलें वेकार हैं। किसी को नहीं देखा गया कि उसने रोटी न खाकर उसे आग में जला, उसको अपार शक्ति लेने की कल्पना की हो।

घी-मेवे आदि जलाने से वहां का वातावरण कुछ समय के लिए तत्काल सुगंधित हो जाता है तो भी यह सौदा घाटे का है। मेवे, घी, अन्नादि मनुष्य को खाना चाहिए। स्वच्छता से वातावरण को पवित्र रखने का प्रयास रखना चाहिए। यदि परम्परा निभाना ही हो, तो केवल एक छोटा अग्निकुंड वना कर उसमें थोड़ी स्वास्थ्यप्रद औषधीय लकड़ियां डाल दी जायं। वैसे गूगल-अगर-वत्ती आदि काफी हैं।

आग जितनी ही जलती है, कार्वन डाई आक्साइड (जहरीला-वायु) उतना ही फैलता है। अतएव वातावरण शुद्ध करने का तरीका हवन नहीं है, किन्तु फूल-फुलवारी एवं वृक्षारोपण है; क्योंकि वृक्ष वातावरण में फैले हुए कार्बन डाई आक्साइड को सोखते हैं और आक्सीजन (प्राणप्रद वायु) को वातावरण में छोड़ते हैं; अतएव हम अधिक-से-अधिक वृक्षारोपण करें, यह बहुत वड़ा यज्ञ होगा, और वृक्ष-वनस्पतियों के विस्तार से वर्षा की भी अधिकता होगी।

लोकमंगलकारी कार्य ही यज्ञ है। हम सार्वजनिक संस्था वना सकते हैं और अपने गांव-जवार, मोहल्ले एवं शहर से धन संकलित करके सड़क, पुलिया, पाठशाला, औषधालय, सत्संगाश्रम, अनाथालय, विकलांगालय आदि का निर्माण करके जनसेवा कर सकते हैं। हम सार्वजनिक धन को वैंक में सुरक्षित रख कर उसके व्याज से गरीव, किन्तु मेधावी छात्रों को पढ़ा सकते हैं। ऐसा काम करके अपनी जाति, परम्परा एवं राष्ट्र को समृद्धि के शिखर पर ले जा सकते हैं। हमें जगना होगा, तभी व्यक्ति, समाज, देश एवं संसार का कल्याण संभव है।

३५

देव चरित्र सुनो हो भाई

धर्मशास्त्रों मे जिनको देवता कहा गया है, उनके सभी आचरण न प्रशंसनीय है और न इसलिए अनुकरणीय। सद्गुरु कबीर कहते हैं—हे भाई! देवताओं के चरित्र तो सुनो। जिनका नाम ब्रह्मा है, वे अपनी पुत्री [illegible] से काममोहित हो गये। मंदोदरी और तारा को देखकर, [illegible]

जेष्ठ-श्रेष्ठ भक्त विभीषण और सुग्रीव उपपति रूप में जीवन बिताये। देवों का नायक इन्द्र काम मोहित होकर अहल्या के साथ छल किया। देवताओं के गुरु वृहस्पति की पत्नी तारा को चन्द्रमा ने बलपूर्वक अपने कब्जे मे कर लिया। लोग विष्णु के गुण गाते हैं; परन्तु उन्होने जलंधर की पत्नी का सतीत्व नष्ट किया। और सूर्य देवता ने कुन्ती के क्वारी रहते ही उसको गर्भवती बना कर कर्ण को पैदा किया (देवचरित्र सुनो हो भाई……बीजक, रमैनी ८१)।

ब्रह्मा—शतपथ ब्राह्मण (१/७/४/१) तथा ऐतरेय ब्राह्मण (१३/६)[१] के अनुसार प्रजापति ने अपनी पुत्री उषा से संभोग किया। यह एक रूपक अलंकार है। प्रजापति सूर्य है। उषा सुबह की लालिमा है। उसके पीछे सूर्य जाता है। सूर्य से ही उषा पैदा होती है और सूर्य के पूर्ण आगमन से उषा पतित हो जाती, समाप्त हो जाती है। इस रूपक अलंकार को पुराण वालो ने इस ढंग से बनाया है "मैत्रेय जी कहते है—हे क्षत्ता (विदुर) जी; हमने सुना है कि प्रजापति अर्थात ब्रह्मा की लड़की सरस्वती अति सुन्दरी थी। वह वासना रहित थी, किंतु ब्रह्मा उससे काममोहित हो गये। उनके इस अधर्ममय काम को देख कर उनके पुत्र मरीच आदि ऋषियो ने उन्हे समझाया (श्रीमद्भागवत, स्कंद ३ अध्याय १२, श्लोक २८-२९)।

मंदोदरी तथा तारा—मंदोदरी रावण की पत्नी तथा तारा बाली की पत्नी थी। विभीषण तथा सुग्रीव ने अपने बड़े भाइयो रावण एवं बाली को श्रीराम से मरवा कर मंदोदरी एवं तारा को अपनी-अपनी पत्नी बना ली।

जेहि अघ बध्यो ब्याध जिमि बाली। सोई सुकंठ पुनि कीन कुचाली॥
सोइ करतूति विभीषण केरी। सपनेहु सो न राम हिय हेरी॥
(मानस)

अहल्या—शतपथ ब्राह्मण (३/३/४/१८) में इन्द्र को अहल्याजार कहा गया है। कुमारिल तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि विद्वान अहल्या का अर्थ 'रात' करते हैं, जिसमें 'अह' (दिन) ल्या (लीन-समाप्त) रहता है। इन्द्र का अर्थ सूर्य है। जार कहते है जीर्ण, अंतर्धान एवं समाप्त करने वाले को। इन्द्र अहल्या पर जार कर्म करता है। अर्थात सूर्य रात को समाप्त करता है। गौतम अहल्या का पति है, इसका अर्थ है चन्द्रमा रात का नायक है। चन्द्रमा को यहां गौतम-तेज चलने वाला कहा गया है।

प्रजापति का पुत्री गमन तथा इन्द्र का अहल्या से जारत्व जैसे कि ऊपर बताया गया कि कुछ विद्वान उन्हें रूपक मात्र मानते हैं, अतः वे कोई

१: धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २, पृष्ठ ६५६।

दोषयुक्त घटनाएं नहीं थीं; किन्तु पौराणिक कहते हैं कि इस प्रकार यदि हम पुराण की कुछ कथाओं को रूपक मानेंगे, तो अन्य कथाओं की क्या दशा होगी? वे भी रूपक मात्र बन जायेंगी और सारा पुराण ही स्वप्नलोक की परी-कथा बन जायेगी। अतः पौराणिकों के ख्याल से इसमें कुछ रूपक नहीं, सब घटी घटनायें हैं।

महाभारत, वाल्मीकीय रामायण आदि में अहल्या को गौतम की पत्नी माना गया है तथा इन्द्र उससे जारकर्म करता है। वाल्मीकीय रामायण, बालकांड के ४८ तथा ४९ वें सर्ग में अहल्या की विस्तृत कहानी लिखी गयी है। वहां लिखा है कि गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र अहल्या के पास जाता है। अहल्या[२] भी इन्द्र जैसे बड़े देवता को अपनी ओर आकर्षित देख कर खुश होती है।

चंद्रमा—चन्द्रमा महर्षि अत्रि के पुत्र हैं और अत्रि ब्रह्मा के। चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया। उसमें उनके गुरु वृहस्पति की पत्नी 'तारा' निमंत्रग मे आयीं। तारा सुन्दरी थीं। चन्द्रमा ने उन्हें अपने घर में बलपूर्वक रख लिया। चन्द्रमा के वीर्य से तारा को गर्भ रह गया।

वृहस्पति ने चन्द्रमा से बारंबार कहा कि मेरी पत्नी लौटा दो; परन्तु वे नहीं लौटाये। फिर तो देवासुर संग्राम छिड़ गया। असुर-गुरु शुक्राचार्य तथा

२. अहल्या, द्रोपदी, तारा, कुन्ती तथा मन्दोदरी ये सभी स्त्रियां एक से अधिक पुरुषों द्वारा दूषित की गयीं, फिर ये कन्या अर्थात कुंवारी कैसी? अतः किसी पंडित ने व्यंग में परिहास करते हुए इन्हें पंचकन्या कहा है और इनके स्मरण करने से पाप का नाश होना बताया है। यथा—

अहल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा।
पंचकन्यां स्मरेन्नित्यं महापातक—नाशिनी॥

इस श्लोक को व्यंग न समझ कर लोग इसे सचमुच मानने लगे। विद्यानिधि पं० रजनीकांत शास्त्री लिखते कि अहल्या, तारा, द्रोपदी, कुन्ती तथा मन्दोदरी को हटाकर सीता, शैव्या (हरिश्चन्द्र की पत्नी), सावित्री (सत्यवान की पत्नी), गांधारी, भीमनंदिनी (दमयंती नल की पत्नी) का स्मरण पापनाशक माना जाय तो अच्छा है। उन्होंनें एक श्लोक बनाकर भी रख दिया है—

सीता शैव्या च सावित्री गांधारी भीमनन्दिनी।
पंचकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्॥
(हिन्दू जाति का उत्थान और पतन, पृष्ठ २२४)

देवगुरु वृहस्पति में अनबन रहती थी। अतः शुक्राचार्य ने असुरों को चन्द्रमा की तरफ से लडने का इशारा कर दिया। घोर संग्राम मच गया। अंगिरा ने यह बात ब्रह्मा को बतायी। ब्रह्मा ने जाकर अपने पोते चन्द्रमा को बहुत फटकारा, तब उन्होंने गुरु-पत्नी तारा को लौटा दिया। तारा को चन्द्रमा द्वारा 'बुध' नाम का लड़का पैदा हुआ था। उसे भी वृहस्पति चाहते थे। किन्तु देवताओं ने उसे चन्द्रमा की कमाई समझ कर उन्हें ही दिला दिया (देखिए श्रीमद्भागवत, स्कंध ९, अध्याय १४, श्लोक १-१४)।

विष्णु—असुरों का सर्वत्र राज्य था। देवता उपेक्षित थे। वे विष्णु के पास गये। विष्णु ने कहा—"हे देवताओ! अपना काम बनाने के लिए शत्रुओं से भी मेलमिलाप कर लेना चाहिए। हां, काम बन जाने पर सर्प-चूहे का-सा बर्ताव कर दे[३]।" देवताओं ने ऐसी सर्पवृत्ति अपनाकर असुरों से कपट पूर्वक मेलमिलाप करके उनसे समुद्र मंथन में सहयोग लिया, परन्तु विष्णु ने मोहनी रूप बना कर असुरों के साथ छल किया तथा समुद्र से निकले अमृत को केवल देवताओ को दिया, असुरों को नही। सार यह कि देवता तथा असुरो के सहयोग से पैदा किया धन विष्णु ने असुरो को धोखा देकर, केवल देवताओ को दिया (देखिए भागवत, स्कंध ८, अ. ६ से ९)।

कहा जाता है कि असुरराज जलंधर की पत्नी वृन्दा पूर्ण पतिव्रता थी और जलंधर को यह वरदान था कि जब तक उसकी पत्नी का पतिव्रत अक्षुण्ण रहेगा, तब तक वह नहीं मरेगा। जलंधर अत्याचार करने लगा। अंततः विष्णु जलंधर का रूप बना कर वृन्दा के पास गये। वृन्दा अपना पति जान कर उसके पास आयी। विष्णु ने वृन्दा का सतीत्व नष्ट किया। जब वह जान पायी, तब उसने विष्णु पर कुपित होकर उन्हें शाप दिया—"हे विष्णु! तेरे परस्त्रीगामी रूप आचरण को धिक्कार है। मै तुम्हे समझ गयी, तुम देखने में साधु, किन्तु आचरण में धूर्त हो। हे दैत्यो के शत्रु, महा अधम तथा दूसरे के

३. अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।
अहिमूषकवद् देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः॥

(भागवत ८/६/२०)

अर्थात एक मदारी की पिटारी में सांप था। वहां एक चूहा टपक पड़ा। सांप ने कहा घबराओ मत; तुम पेटारी काट दो और हम दोनों इससे भाग चलें। पहले चूहा डरा। पीछे उसने पिटारी काट दी। सांप ने चूहे को खा लिया और पिटारी से निकल गया। इस प्रकार सांप की तरह विश्वासघाती होने की राय विष्णु जी देवताओं को देते हैं।

सदाचरण बिगाड़ने वाले शठ ! मेरे दिये हुए भयंकर शाप को स्वीकार करो[४] ।"

शाप-वर तो मिथ्या धारणा ही है; परन्तु पडित जन किसी बहाने विष्णु को परदारागामी तथा पतिव्रता के साथ भी छल करने वाला सिद्ध करना चाहते हैं ।

सूर्य और कुन्ती—कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि का कृपा से 'देवहूती' नाम की एक विद्या प्राप्त की थी । उसी के बल को आजमाने के लिए उन्होने सूर्य को बुलाया । सूर्य आ गये । कुन्ती को आश्चर्य हुआ । उसने सूर्य से निवेदन किया कि मैने अपनी विद्या की परीक्षा करने के लिए आप को बुलाया था, कृपया आप अपने स्थान पर लौट जाय । सूर्य ने कहा—मेरा दर्शन अमोघ है । मै तुम्हें गर्भवती बनाऊंगा । सूर्य ने कुन्ती को गर्भवती कर दिया । कुन्ती को एक बच्चा पैदा हुआ । उसने लोकापवाद के डर से बच्चे को संदूक मे रख कर नदी की धारा मे फेंक दिया । इसी लड़केको अधीरथ ने पाया और पाला-पोषा । यही लड़का कर्ण के नाम से प्रख्यात हुआ । इस प्रकार कुन्ती ने कर्ण को कुंवारेपन में ही जन्म दिया । पीछे यही कुन्ती पाडु से व्याही गयी, जिसने धर्मराज से नियोग करके युधिष्ठिर, वायु से भीम तथा इन्द्र से अर्जुन को पैदा किया ।

सद्गुरु कबीर कहना चाहते हैं कि यदि पुराण वर्णित देवी-देवता रूपक मात्र हैं, तो उनका अस्तित्व न होने से उनकी उपासना का कोई प्रश्न ही नही उठता, और यदि वे व्यक्तित्व रूप मे रहे है, तो पुराणानुसार उनके सभी आचरण पवित्र नही हैं, अतएव वे सर्वथा श्रद्धेय एव उपासनीय नही है । इसलिए जिनका जीवन पवित्र एवं ज्ञान दिव्य है उन संत-गुरुजनो की उपासना करके आत्म-कल्याण करो ।

थोड़ा निवेदन और करना चाहूंगा । मध्य युग[५] के पंडित संप्रदाय ने अपनी मलीन कामवासना को भक्ति का जामा पहना कर तथा पोथियो मे महापुरुषो के लिए गंदी-गदी बाते लिख कर उनके चरित्र की हत्या की है ।

४. धिक् तदेवं हरे शीलं परदाराभिगामिनः ।
ज्ञातोऽसि त्वं मयासम्यङ् मायी प्रत्यक्ष तापसः ॥
रे महाधम दैत्यारे परधर्म-विदूषकः ।
गृह्णीस्व शठ मद्दत्तं शापं सर्वं सर्वविषोल्पणम् ॥
(रुद्रसंहिता, युद्ध खंड, अध्याय २४)

५. ईसा की दूसरी शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक ।

उदाहरणार्थ श्री कृष्ण महाराज को लें। वे ऋग्वेद (८/८५/१३-१६) में शूरवीर, वन्य जातियो के नायक, ब्राह्मणो के कर्मकाड तथा इन्द्र के विरोधी हैं। छांदोग्य उपनिषद् (३/१७/६) में देवकी पुत्र कृष्ण घोर आंगिरस के शिष्य हैं और उन्हें घोर आंगिरस ने ज्ञान देकर तृष्णा रहित कर दिया था। महाभारत के अनुसार भी श्री कृष्ण राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, योद्धा तथा ज्ञानी हैं। इस ग्रन्थ मे कवियो ने उनके अवतार होने को भी उभारा है; परन्तु कही भी उनको परस्त्रीगामी, रसिक, परस्त्रियो के साथ रास करने वाला नही लिखा है[६]। परतु ईसा के बाद संस्कृत भाषा के कवियों में तो श्रृंगार रस बहुत उभरा है। पुराणों में श्री कृष्ण के चरित्र का हनन किया गया है। श्री मद्भागवत जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का पुराण कहा जाता है और उसमे ऐसी बाते है भी; परन्तु कहना चाहिए इस पुराण ने कोकशास्त्र के भी कान काट लिये है। इसके दशम स्कंद का रास पंचाध्यायी तो नग्न अश्लील है जो एक सभ्य आदमी किसी के सामने बांच नही सकता। इसमें श्री कृष्ण का परायी स्त्रियो के साथ नाचना तथा भोग-विलास करना इतना अभद्र रूप से दर्शाया गया है कि हिंदुत्व का सिर झुक जाता है। श्री मद्भागवत में श्री कृष्ण की हजारो पत्नियां है। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे वे और अधिक कामी चित्रित किये गये है तथा गर्ग संहिता में श्री कृष्ण की अरबो-खरबों पत्नियां हैं।

सनातन धर्मी पंडित और महात्मा श्री कृष्ण का परस्त्रियो के साथ रास तथा रमण करने को घटित घटना मानते हैं और इसे दिव्य लीला कहते हैं। वे कहते है भगवान की सभी लीलाए गूढ़ हैं, और श्री कृष्ण की रासलीला तो गूढ़तम गूढ है। भला, परस्त्रियो के साथ नाचना तथा उनसे संभोग करना कौन-सी गूढ़ लीला है! रास पचाध्यायी में १७४ श्लोक हैं। केवल एक श्लोक लें—"हाथ फैलाना, आलिंगन करना, गोपियों के हाथ दबाना, उनकी चोटी, जांघ, नीवी तथा स्तन आदि का स्पर्श करना, हंसी-मसखरी करना, नखक्षत करना, तिरछे नेत्रो से देखना और मुस्काना—इन क्रियाओ द्वारा गोपियों का कामोद्दीपन करते हुए श्री कृष्ण उनके साथ रमण करने लगे[७]।"

६. महाभारत, सभा पर्व, अध्याय ३८ में चीरहरण के समय कवि ने द्रोपदी के मुख से श्री कृष्ण को 'गोविन्द द्वारिका वासिन् कृष्ण गोपीजन प्रिय' कहलवाया है। इसमें उनको गोपीजन प्रिय कहा गया है; परन्तु यह अंश पीछे का प्रक्षिप्त है, ऐसा सभी महाभारत के तार्किक चिंतक मानते हैं।

७. बाहुप्रसार-परिरम्भ-करालकोरु-नीवी-स्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोक-हसितैर्व्रजसुन्दरीणा- मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार॥
(श्री मदभागवत, स्कंद १० अ० २९ श्लोक ४६)

हम नहीं समझ पाते कि इसमें कौन-सी गूह्यतम गुह्य लीला है ? कौन-सा गूढ रहस्य है ? यह ठीक है कि इस प्रकार कोई युवक गृहस्थ अपनी पत्नी के साथ एकांत, बन्द कमरे में कर सकता है न कि खुले मंच पर। यह कोई व्याख्यान की वस्तु भी नही हैं फिर परायी स्त्रियों की भीड़ के साथ ऐसा करने वाला कितना घृणित होगा ? क्या श्री कृष्ण जैसे महापुरुष ऐसा कर सकते थे ? क्या इसका आधार कही गीता, महाभारत मे है ? गीता मे श्री कृष्ण जी स्वय कहते हैं—"बड़ा व्यक्ति जैसा करता है, छोटे लोग भी वैसे करते हैं। वह जैसा आदर्श स्थापित कर देता है संसार उसी का अनुसरण करता है[८]।"

महाराज श्री राम का उद्दात चरित्र महाभारत तथा वाल्मीकीय रामायण में वर्णित है। कहना चाहिए रामचरित्र का पहला सर्वांगीण महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण है। वाल्मीकीय रामायण मे श्री राम एक पत्नीव्रती तथा दृढ़ चरित्र के हैं। परन्तु कृष्ण भक्तों की देखादेखी राम भक्तो ने भी अपने मत मे रसिक संप्रदाय चला दिया और उसने भी 'हनुमत्संहिता, वृहत्कोशल खंड, ब्रह्म रामायण, चित्रकूट माहात्म्य, भुशुडि रामायण, महारामायण[९] आदि में श्री राम को एक पत्नीव्रत से हटा कर बहुपत्नी वाला तथा परायी हजारों स्त्रियों के साथ रास तथा क्रीड़ा भोग करने वाला सिद्ध किया।[१०]

जब श्री राम के बहुपत्नीत्व तथा परस्त्रियों से रास एवं संभोग का आधार वाल्मीकीय रामायण में नही है, तब साफ जाहिर हो जाता है कि यह रसिक भक्तो का गढ़ा हुआ कल्पित प्रपच है, जो मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के साथ घोर अन्याय है।

८. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते (गीता ३/२१)

९. रामकथा, प्रयाग विश्वविद्यालय प्रकाशन।

१०. मंथरा श्रीराम के राज्याभिषेक को लेकर कैकेयी से कहती है कि यह खुशखबरी सुनकर राम की स्त्रियां निश्चय ही प्रसन्न होंगी—"हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः" (वाल्मीकि २/८/१२)। इसी प्रकार जब श्रीराम समुद्र से रास्ता मागने के उपलक्ष में प्रायोपवेशन (आमरण अनशन) करते हुए कुशा-घास पर अपने हाथ का तकिया बना कर सोते हैं, तब कवि कहता है—राम के जिस हाथ की अनेक स्त्रियों द्वारा सेवा होती थी—"भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा" (वा० ६/२१/३), वह आज तकिया बना है। उक्त दो उदाहरणों को लेकर यदि कोई श्री राम के चरित को बहुपत्नीत्व की तरफ ढकेलता है तो वह अनर्थ करता है। यहां दोनों उदाहरणों में श्री राम की पत्नियां नहीं

३६

अहिंसा

अहिंसा परम धर्म है तथा हिंसा परम अधर्म। सद्गुरु कबीर ने हिंसा त्याग करने पर बहुत जोर दिया है। उन्होने कहा है "हे सन्तो! हिन्दू और मुसलमान दोनों के रास्ते हमने देख लिया है। दोनों को जीभ का स्वाद बहुत प्रिय है। हिंदू दूध-सिघारा खाकर एकादशी तो रहते है; परन्तु मांस के लिए जीव-वध करते हैं। मुसलमान भी रोजा-नमाज सब करते है; परन्तु उनके लिए गाय, बकरी, मुरगी काटना साग-मूली काटना है। दोनो ने दया तथा मेहरबानी छोड़ दी है। वस्तुतः हिन्दू और मुसलमान का एक रास्ता दया एवं मेहरबानी है। प्राणियो पर दया तथा मेहरबानी करो, यही राम तथा रहीम की पूजा है। इसके अलावा न कही राम है न कही खुदा[1]।" और भी देखो "हिंसकी पंडित चतुर कसाई है। ये 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कहकर बकरा को मार कर भैसे पर भी धावा बोल देते हैं। इनके दिल में दर्द नहीं। स्नान करना, तिलक लगाना, जड़ देवो को पूजना क्या महत्त्व रखता है जब आत्माराम को मार कर खून की नदी बहाते है। इनका बहुत पवित्र कहलाना, ऊंची जाति का कहलाना, सभा में ऊचा आसन पाना, लोगो द्वारा गुरु स्वीकार किये जाना—सब हास्यास्पद ही है। पाप कटने के लिए कथा सुनाना और

लिखा है; किंतु स्त्रियां एवं नारियां है जो दासियों एवं सेविकाओं के लिए कहा गया है। वाल्मीकीय के लेखक राम को प्रायः राजा मानते हैं और उन्होंने श्री राम के राजोचित व्यवहार के उपलक्ष में उनका सेविकाओं द्वारा सेवा होने का चित्रण किया है। सीता-निर्वासन के बाद जब श्री राम यज्ञ करते हैं, तब सीता की स्वर्णमूर्ति बनायी जाती है। ऐसे एक पत्नीव्रती उच्चादर्श पुरुष पर बहुपत्नीत्व का आरोप करना अनर्थ है।

जब भरत ननिहाल से लौटकर कैकेयी से पूछते हैं कि पिता जी ने भैया राम का निर्वासन क्यों कर दिया? क्या श्री राम ने किसी का धन हरण कर लिया, या किसी निरपराध की हत्या कर दी, या किसी परायी स्त्री पर उनका मन चला गया? कैकेयी ने कहा—राम ने न तो किसी के धन का हरण किया है, न किसी निरपराधी की हत्या की है और श्री राम परायी स्त्री पर तो कभी दृष्टि तक नहीं डालते—"न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति" (वा० २/७२/४८)। ऐसे उच्चादर्श पुरुष श्री राम जो परायी स्त्री पर नजर भी नहीं डालते क्या परायी स्त्रियों को लेकर रास कर सकते हैं?

1. बीजक, शब्द १०।

कर्म नीच हिंसा का करना-कराना तो यमराज का ही काम है। गाय मारने वाले तुरुक कहलाते हैं, तो इनसे वे कम नही हैं। अतः ये हिंसकी कलियुगी ब्राह्मण खोटे है[२]।" "वे नासमझ और नादान हैं जो हर घट में राम को न समझ कर किसी का वध करते है। क्रूरतापूर्वक गाय को मार देते है और कहते हैं कि यह हलाल (जायज) हुआ। जिस मांस को पाक कहते हो, भाई सुनो, उसकी उत्पत्ति तो घृणित रज-वीर्य से है। ऐसे नापाक मांस को तुम खा जाते हो। स्वयं विवेक नही करते हो, अपने बड़ों की दोहाई देते हो कि पहले के लोग किये हैं। परन्तु उनका या तुम्हारा कोई गला काट देता तो कैसा लगता? स्याही चली गयी और सफेदी आ गयी; परन्तु दिल तो आज भी सफेद नहीं हुआ। फिर रोजा, बांग, नमाज करने से तथा मस्जिद में निवास करने से भी क्या हुआ। पंडित वेद-पुराण पढ़ते हैं और मुसलमान कुरान; परन्तु जो सब प्राणियों में राम-रहीम को नही देखता और किसी की हिंसा करता है उसकी अधोगति ही होगी[३]।" "अतएव किसी जीव को मत दुखाओ। सबके प्राण एक समान हैं। करोड़ों पुराण सुनने पर भी हत्या का पाप न छूटेगा। दूसरे को मारोगे तो तुम स्वयं मारे जाओगे। तीर्थ करने तथा दान करने से भी हिंसा का फल भोगना पड़ेगा[४]।"

मनुष्य के जीवन में दया एवं रहम सबसे बड़ी वस्तु है। जिसके जीवन में दया नही है, वह इंसान नही है। सभी धर्मग्रंथो मे दया एवं रहम की महिमा गायी गयी है। मनुस्मृति कहती है "जो जीवों का वध तथा बंधन नही करना चाहता, वह सबका हितैषी अत्यन्त सुख प्राप्त करता है[५]।" कुरान शरीफ कहता है "खुदा तक न तो इन पशुओं के गोश्त पहुंचते हैं और न इनके खून; बल्कि उस तक तुम्हारी परहेजगारी पहुँचती है[६]।" सारे धर्मशास्त्र जिस मनुष्य के दिल से निकले हैं वह रात-दिन भीतर से क्या साक्षी दे रहा है, इस पर विचार करने से अपने आप पता चलता है कि हिंसा हर अंतरात्मा के विरुद्ध है। क्योंकि कोई अपनी हिंसा नही चाहता, तो दूसरे की हिंसा करने का हमारा क्या अधिकार है। 'जीवो और जीने दो' यह चेतना प्रकृति का नियम है। मनुष्य को चाहिए कि वह सीधे न समझ सके, तो अपने शरीर में थोड़ा कांटा चुभाकर देखे तो उसे पता चलेगा कि किसी को चोट पहुंचाने से उसे कैसी पीड़ा होती है। अपनी पीड़ा के समान दूसरे की पीड़ा समझ लेने पर

२. बीजक, शब्द ११। ३. बीजक, शब्द ८३।
४. बीजक, साखी २१२, २१३। ५. मनुस्मृति ५/४६।
६. कुरान शरीफ, पारा १७। सूरेहज्ज २२। रकू ५। आयत ४।

जीवन से हिंसा का त्याग हो जायगा। कबीर देव कहते हैं "किसको चोट पहुंचायी जाय, जहां देखता हूं हमारा प्राण-प्यारा है[७]।"

३७

मांसाहार का त्याग

सद्गुरु कबीर मांसाहार के सर्वथा विरुद्ध हैं। मांस घृणित होता है, हिंसा से प्राप्त होता है, रोगमय एवं गरिष्ठ होता है। सभ्यता की दृष्टि से भी मांसाहार गलत है। मन की शांति के लिए आहार शुद्ध करना बहुत आवश्यक है। शुद्धाहार से मन पवित्र होता है और पवित्र मन एकाग्र होता है और एकाग्र मन ही बंधन-मुक्त होता है। यह मानव की कितनी निर्दयता है कि वह अपने जीभ-स्वाद के भ्रम में निरीह मूक प्राणियो का वध करता है। कबीर देव कहते हैं "जैसे मनुष्य का मांस घृणित होता है, वैसे पशु का मांस भी घृणित होता है। दोनों के खून भी एक समान अशुद्ध है। फिर मानव कैसा हैवान है कि वह मनुष्य के मांस को तो अशुद्ध समझ कर नही खाता; परन्तु पशु के मांस को खा जाता है[१]।" "जिस मांस को पाक कहते हो, उसकी उत्पत्ति घृणित रज-वीर्य से है और ऐसे घृणित मांस को तुम खा लेते हो[२]।" "पडित जी! एक बात बड़े आश्चर्य की लगती है, वह यह कि मनुष्य के मरने पर कहते हैं घर मे छूत लग गयी और जब तक शुद्धिकर्म न हो जाय उसके घर भोजन भी नही करना चाहिए। और पशु-पक्षियो को मार कर तथा पका कर मनुष्य खा जाता है, तब भी उसे छूत नहीं लगती। एक तरफ स्नान करना, देवपूजन करना तथा नौ गुण-सूचक जनेऊ कधे में डाले रखना और दूसरी तरफ हंडी मे हाड़-मांस पकाना, थाली में हाड़-मांस रखकर मुख से हाड़-मांस चबाना—यह कैसा घृणित एवं घोर कर्म है? क्या अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह की जगह पर यही षट्कर्म अपना लिये गये है? धर्म के नाम पर जीव-वध करना तो भाई, प्रत्यक्ष घोर अपकर्म है। ऐसी स्थिति मे तुम्हें ब्राह्मण कहा जाय तो बधिक किसे कहा जाय[३]?"

ब्राह्मण-युग में मांसाहार का जोर था। अधिक लोग मांसाहारी थे। स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं "याद रखो, ये आचार-प्रथा चिरकाल से बदलती

७. घाव काहि पर घालो, जित देखो तित प्राण हमारो॥ (बीजक, साखी ३४१)

१. बीजक, शब्द ७०।

२. बीजक, शब्द ८३।

३. बीजक, शब्द ४६।

आयी है। इसी भारत में कभी ऐसा भी समय था जब कोई ब्राह्मण बिना मांस खाये ब्राह्मण न रह जाता था; तुम वेद पढ़ो, देखोगे जब कोई संन्यासी या राजा या बड़ा आदमी मकान में आता था तब किस तरह बकरों और बैलो के सिर धड़ से जुदे होते थे[४]।" इसी मांसाहार के जोर के नाते स्मृति-ग्रंथों में भक्ष्याभक्ष्य का विचार किया गया और मांसाहार को भक्ष्य मानते हुए भी उसे केवल हव्य-कव्य के रूप में स्वीकार किया गया और अन्ततः मांसाहार त्याग पर जोर दिया गया। कहा गया "मैं जिसके मांस को यहां पर खाता हूं वह मुझे परलोक में खायेगा। विद्वान मांस शब्द का यही मांसत्व (मांस की व्याख्या) करते हैं। जीवों की हिंसा किये बिना मांस नहीं मिल सकता है और हिंसा स्वर्ग का साधन नहीं; अतएव मांसाहार को छोड़ देना चाहिए[५]।" "राय देने वाला, काट-काट कर अलग-अलग करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने या लाने वाला और खाने वाला—जीव वध में ये सभी घातक पातकी है[६]।"

दुनिया के समस्त प्राकृतिक चिकित्सक मांसाहार का घोर विरोध करते हैं, क्योंकि मांस हिंसक पशु-पक्षियों का आहार है, पवित्र मानव का आहार नहीं है। अमेरिका आदि के डाक्टरों का विचार है कि मांसाहार से जीवन-घातक कैंसर होता है। जल्दी पचने वाले फल, अन्न आदि ही मनुष्य का भोजन हैं। अतएव शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक पवित्रता के लिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मांसाहार का त्याग करके शुद्ध शाकाहारी बने।

३८

दूध त्याज्य नहीं

शुद्धाशुद्धि के आधार पर छुआछूत न मानकर वर्ण तथा जाति के आधार पर जो छुआछूत माना जाता है, वह अवैज्ञानिक तथा विवेक-विरुद्ध है।

४. स्वतंत्र भारत-जय हो, भारत का सनातन धर्म, पृष्ठ १०३, चतुर्थ संस्करण श्रीरामकृष्ण आश्रम धंतोली, नागपुर।
और भी देखिये ऐतरेय ब्राह्मण १/१५। वशिष्ठ धर्मसूत्र ४/८। एवं धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ७।

५. मनुस्मृति ५/५५, ४८।

६. अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥ मनुस्मृति ५/५१॥

इस छुआछूत की सारहीनता को बतलाते हुए कबीर देव ने कहा है "पंडित जी! तुम जाति पूछ करके उसके हाथ का पानी पीने और न पीने का निर्णय करते हो। तुम्हें शुद्धाशुद्धि की परवाह नहीं है; किंतु जाति के आधार पर किसी को छूत-अछूत मानते हो। परन्तु जरा विचार करो, जिस मिट्टी के घर में बैठे हो उसमें प्राणियों की सृष्टि समायी है। छप्पन करोड़ यादव, अट्ठासी हजार ऋषि गण तथा पद-पद पर गाड़े गये पैगम्बर—सब सड़कर मिट्टी में समाये हैं। अतएव तुम्हारी मिट्टी अशुद्ध है। जल की दशा देखो, नदियों में मछली, कच्छप, घड़ियाल आदि प्रजनन करते हैं। उनके रक्त पानी में मिले रहते हैं और मृतक पशु-मनुष्यादि की लाशें तथा शहरो व देहातो की गंदगी सड़-गल कर नदी मे मिलती रहती है, अतएव जल अशुद्ध है। दूध की दशा देखो हड्डियो के झरनो तथा मांस की गलियों से दूध झर-झर कर आता है। इसको लेकर तो पंडित जी जीमने बैठते हैं; परन्तु किसी के मिट्टी के घड़े में छूत लगाते हैं या पवित्र मनुष्य को जाति के आधार पर अछूत कहते हैं। ऐ पंडित जी! ये वर्ण तथा जाति के भ्रम को सिद्ध करने वाले वेद-किताब (धर्म शास्त्र) तुम्हे भ्रम में डाल रखे हैं। अतएव इनका पक्ष छोड़ कर स्वतन्त्र विचार करो। जाति-वर्ण की मिथ्या कल्पना तुम्हारी मानसिक सृष्टि है[1]।"

इस शब्द की सातवीं पंक्ति 'हाड़ झरी झरि गूद गली गलि, दूध कहां से आया' को लेकर कितने लोग यह अर्थ निकालते हैं कि कबीर साहेब ने दूध पीने-खाने का निषेध किया है। परन्तु पूरे शब्द को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यहां दूध का निषेध नहीं; किंतु वर्ण एवं जाति के आधार पर मानी गयी छुआछूत का निषेध है। यदि दूध का निषेध माने, तो मिट्टी और पानी

१. पाँड़े बूझि पियहु तुम पानी।
जेहि मटिया के घर में बैठे, तामें सृष्टि समानी॥
छप्पन कोटि यादव जहँ भीजे, मुनि जन सहस अठासी।
पैग-पैग पैगम्बर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी॥
मच्छ-कच्छ घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै, पशु मानुष सब सरिया॥
हाड़ झरी-झरि गूद गली-गलि, दूध कहाँ से आया।
सो ले पाँड़े जेवन बैठे, मटियहि छूति लगाया॥
वेद कितेब छाँड़ि देहु पाँड़े, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनो हो पाँड़े, ई सब तुम्हरो करमा॥
(बीजक, शब्द ४७)

का निषेध इसके पहले मानना पड़ेगा, क्योंकि उनको गंदगी से भरे हुए बताया गया है; परन्तु क्या कोई जीवन रहते हुए मिट्टी (पृथ्वी) और पानी का त्याग कर सकता है ? कबीर देव जैसे महाविवेकी कैसे यह राय दे सकते है, यह तो एक अल्पज्ञ भी नही कह सकता कि पृथ्वी और पानी का संबंध छोड़ दो; क्योंकि यह असंभव है। फिर दूध के त्याग करने की राय समझना गलत नही तो क्या है। गुरुदेव तो यह कहते हैं कि यदि गंदगियो से सनी पृथ्वी मे, जल में तुम निर्वाह लेते हो और हड्डी तथा मांस से स्पर्शित दूध लेते हो, तो पवित्र मानव के छुये हुए जल-भोजन लेना क्या अपराध है ?

जिदा हाड़-मांस अशुद्ध नहीं होते। यदि वे ही शरीर से कट कर अलग हो जायं, तो अशुद्ध लगेंगे। हमारे मुख मे दांत है, जिदे हैं; अतएव वे अशुद्ध नहीं। वे ही टूट कर गिर जायं, तो उन्हे पुनः मुख मे रखना कठिन हो जायगा। अतएव जिदा पशु के शरीर से दूध आने में कोई बुरा नही है।

दूध रक्त-मांस से नही बनता, अपितु खाये हुए चारे से बनता है। फिर कारण क्या है इस पर विचार न करके वर्तमान कार्य पर ही विचार किया जाता है। अन्न-साग उत्पन्न होने के कारणो मे टट्टी-पेशाब आदि गदी खाद मुख्य हैं; परन्तु अन्न-साग मे उनका कोई दोष नही रहता। और टट्टी-पेशाब के कारण शुद्ध अन्न-फल-मेवे, जल आदि है। अर्थात इन्हे खाने के बाद इनकी टट्टी-पेशाब बनती हैं; परन्तु कारण शुद्ध होने से इन्हे कोई समझदार नही ग्रहण कर सकता।

गाय-भैंस का दूध उनके बछड़े का प्रारब्ध है, तो उनकी सेवा करने वाले मनुष्य का भी तो कुछ हक है। बिना दुहे दूध बढ़ नही सकता, जैसे बनैले पशु का दूध नही बढ़ता। अतएव गाय-भैस तथा बछड़े के पेट ठीक से भर कर तथा उनकी पूर्ण सेवा करके दूध लेना कोई बुरा नही है।

यदि दूध की अशुद्धि दिखाने के लिए व्यर्थ तर्क दिये जायं, तो नदी-तालाब, कुआ का पानी उनमे रहने वाले जन्तुओं के कारण अशुद्ध ही है। नल पाइप के पानी को चाम के वार्सल ने अशुद्ध कर रखा है। चावल, कपास पैदा करने मे दवाई छिड़क कर या अन्य गोड़ाई-जोताई मे जो जीव-हत्या होती है और तेल-आटा के पेरने-पीसने मे जो उनमे जीव पिस जाते है और हवा की अशुद्धि से कोई कैसे बच सकेगा ? अतएव शक्ति चले तक जीवहत्या तथा अशुद्धि को बचाया जा सकता है और इसके आगे कोई चारा नही।

अतएव सद्गुरु कबीर ने बीजक में दूध का निषेध नही किया है। दूध सात्विक है, दूध ही मानव का पहला आहार है इसलिए वह प्रकृति के अनुकूल

है। इसलिए दूध सभी धर्ममतों एवं सात्विक पुरुषों द्वारा मान्य है। विवेकवान न दूध पीने की लालसा रखते हैं न उसका निषेध। सहज मिल जाने पर उसका उपयोग कर लेते हैं[२]।

३९
भूत-प्रेत मंत्र-तंत्रादि

यह भूत-प्रेत की कल्पना जो जंगली-युग की देन है, आज भी इससे मनुष्य का पिंड नहीं छूटा है। अशिक्षित और अल्प-शिक्षित ही नही चारों वेद, छहों शास्त्रों के विद्वान एवं अंग्रेजी आदि कई भाषाओं के पंडित भी उसी प्रकार नादान हैं। अंधविश्वास और भ्रांतिधारणा में पंडित और मूढ़ एक समान हैं। मिथ्या विश्वास में पड़े हुए अनपढ़ जितना नादान है, पढ़ा-लिखा भी उतना ही। अशिक्षित तो केवल मिथ्याविश्वास को मन में जमाये रहता है; परन्तु शिक्षित अनेक युक्तियों तथा वैज्ञानिक हथकण्डों से मिथ्या धारणाओं को सत्य सिद्ध करता है।

भूत-प्रेत की योनि होती, तो उनके बाल-बच्चे देखने में आते। उनके विवाह-शादी के रस्मोरिवाज का पता चलता। उनके व्यवहार-धंधा का भी सिनाक लगता। उनके मरने पर उनकी लाशें भी देखने को मिलती, परन्तु यह सब कुछ नही दिखता। सद्गुरु कबीर कहते हैं "यह भूत का भ्रम सब लोगों को भटका रहा है। जो मिथ्या भूत-प्रेतों के मानने और पूजने वाले हुए वे सब अपने को अंधविश्वास के गड्ढे मे गिराये। भूत के न सूक्ष्म शरीर है न प्राण और न जीव। यह केवल कल्पना और भ्रांति का रूप है। करोड़ों-करोड़ों लोग इस मिथ्याविश्वास में सिर पटक रहे हैं। हे मनुष्य, तू मिथ्या भूत की पुजाई में बकरी-मुरगियों के गला काटता है; परन्तु ध्यान रख, इसका बदला तेरे को मिलेगा। हे मनुष्यों, भूत को मानने और पूजने से तुम्हारे मन में भूत-प्रेत बने है, वास्तविकता में उनका कोई अस्तित्व नहीं[१]।"

२. इस विषय में रहनि प्रबोधिनी सटीक तथा बीजक सटीक में बहुत पहले लिखा जा चुका है।

१. ये भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया ॥
अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, कोटि कोटि जीव कौतुक देही ॥
बकरी-मुर्गी किन्हेउ छेवा, आगल जन्म उन्ह अवसर लेवा ॥
कहँहि कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई ॥
(बीजक, शब्द १०५)

जीव के साथ में लगे हुए सूक्ष्म शरीर में केवल संस्कारों को ग्रहण कर गमनागमन कराने की शक्ति है। केवल सूक्ष्म शरीर युक्त जीव दूसरे को तब तक सुख-दुख नही दे सकता जब तक वह स्थूल शरीर न धारण करे। और स्थूल शरीर जीव जहां भी धारण करेगा वहां वह सबके प्रत्यक्ष होगा। भूत भैंसा-हाथी आदि के शरीर संकल्प मात्र से धारण करके लुप्त हो जाता है यह अनाड़ियो द्वारा फैलाया हुआ भ्रम है। जहां दिन में भूत-प्रेत नही है वहां रात में कहां से आ जायेंगे ? अपने मन मे शंका होने से एकान्त में भय उत्पन्न होता है जो अपने मन का ही विकार है। मनःकल्पना को छोड़कर भूत का कोई अस्तित्व नहीं है।

लोग कहते है कि मैने भूत-प्रेत देखे हैं। वस्तुतः कभी-कभी दृष्टि-दोष, धुंधुलका आदि के कारण कुछ-का-कुछ दिख जाता है। वह भूत नही केवल भ्रम है। प्रेत का अर्थ जो जीव शरीर को छोड़ कर चला गया और कुछ समय बीत जाने पर वही भूत (बीता हुआ) हो गया। भूत-प्रेत कोई योनि नही।

पुत्र-धन की प्राप्ति के लिए, रोग कटने के लिए, दूसरे मनुष्यो को वश में करने के लिए तथा हानियों से बचने के लिए सोखा-ओझा, बैगा-गुनिया के पास झड़वाना-फुंकवाना पूर्ण अज्ञान है। ये सोखा-ओझा लोग भभूत आदि में फूकते और थूकते हैं और वही भभूत लोग चाटते है जो महा अशुद्ध है। झाड़ने-फूंकने से कुछ नहीं होता। एक मनोवैज्ञानिक असर पड़ना अलग बात है। परन्तु इससे अच्छा तो यह है कि भूत-प्रेत, झाड़-फूक माना ही न जाय, तो उस प्रकार के कष्ट ही नही होगे। कोई कष्ट होगा तो उसकी निवृत्ति संयम, चिकित्सा एवं विवेक से की जायगी।

सांप-बिच्छू के काट-छेद लेने पर झाड़-फूंक करवाना भी अल्पज्ञता ही है। क्योंकि विष द्रव्य होता है जो रक्त के साथ घुल जाता है। वह छू मंतर करने से कैसे दूर हो जायेगा ? जहां झाड़-फूक से सर्प या बिच्छू का विष उतरता हुआ प्रतीत हो, वहां समझना चाहिए कि सांप-बिच्छू जहरीले नही थे, या झाड़ने वाले ने झाड़-फूंक के साथ कोई दवाई का प्रयोग किया है। सांप-बिच्छू काटने-छेदने पर कटी जगह में तुरन्त आपरेशन करना चाहिए और फिर दवा करना चाहिए। झाड़-फूक बिलकुल अज्ञानमूलक है।

मंत्र शब्दमय है, यंत्र पदार्थमय तथा तंत्र टोटका को कहते हैं। अभिप्राय यह कि किसी प्रकार की शब्दयोजना मंत्र है, षटकोण, अष्टकोण आदि बनाकर तावीज आदि में पहनाते हैं यह यंत्र है और गेहू के आटे का मनुष्य-पिंड बनाकर उसे जला देने पर आदमी मौत से बच जायेगा आदि टोटका है। ये

तीनों केवल भ्रम हैं। राय, सम्मति, उपदेश आदि मंत्र हैं और ये काम करते हैं। छूमंतर का कोई मतलब नही होता।

जादू-टोना भी इसी प्रकार झूठे हैं। हाथ की सफाई, बात की सफाई, वस्तु की बनावट, दवाई आदि से जादूगर कुछ-का-कुछ दिखाते हैं। उनके हथकंडे होते हैं जो हम नही समझ पाते। मंत्र से वे कुछ भी नही बना सकते। इसे वे स्वयं भी बताते हैं। कोई स्त्री या पुरुष दूसरो को टोना मार देते है, जिससे लोगो के खून कट-कट कर गिरने लगते है, यह मानना भी केवल भ्रम है। टोना नाम की कोई चीज नही। इस प्रकार भूत-प्रेत, झाड़-फूक, मंत्र-तंत्र-यंत्र, जादू-टोना सब मनःकल्पना की सृष्टि हैं, अतएव इन भ्रांतियो से रहित होना चाहिए। सद्गुरु कहते है—

मंत्र तंत्र सब झूठ है, मत भरमो सब कोय।
सारशब्द जाने बिना, हंसा गया बिगोय ॥

४०

फलित-ज्योतिष, शकुन-अपशकुन तथा स्वप्न-विचार

गणित-ज्योतिष तो ठीक है जिससे सूर्य-चन्द्र ग्रहण आदि का विचार किया जाता है; परन्तु फलित[1]-ज्योतिष भ्रांतिमूलक है और इससे लोगों में अंधविश्वास तथा कायरता बढ़ती है। किसी को कोई तकलीफ हुई तो सोखा भूत-बाधा बतलाते है और पंडित ग्रह-बाधा। शनि, रवि, मंगल आदि ग्रह है जो आकाश में हमसे लाखो-करोड़ो मील दूर पर रहते हैं और वे जड़-कणो के पिण्ड निरे जड़ हैं। उनका मनुष्यों पर कुपित होने तथा कृपा करने की बात सर्वथा निरर्थक है। फिर पंडित लोग अपनी पूजा से ग्रहो को शांत कर देते हैं यह और निरर्थक है। सूर्य एक ग्रह है, जेठ की उसकी प्रचंड गरमी को यदि पंडित अपनी पूजा से शात कर दें तो मान लिया जाय कि इनकी ग्रह-पूजा

1. भारत में ईसा पूर्व बारह सौ वर्ष से ज्योतिष-विज्ञान है। यहां वैदिककाल में गणित ज्योषित था। फलित ज्योतिष पीछे यूनान से आया। विद्वानों की राय है कि फलित ज्योतिष के अनेक शब्द स्पष्टतः यूनानी व्युत्पत्ति के हैं। अतः भारत में सत्रहवी से उन्नीसवीं शताब्दी तक गणित ज्योतिष शिथिल हो गया और फलित की पढ़ाई होने लगी।

सफल होती है; परन्तु यह सब कुछ होने वाला नहीं। ये ग्रह भी अजीब हैं जो केवल हिन्दुओं से दुश्मनी रखते हैं और उन्हीं पर कुपित होते हैं, इसीलिए हिन्दुओं को ग्रह-शांति के लिए पंडितों से पूजा करानी पड़ती है और गैर-हिंदू— मुसलमान, इसाई, यहूदी आदि का वे कुछ नहीं कर पाते। तभी तो इनको शांत कराने का झगड़ा उनके यहां नही है।

ग्रह का अर्थ जो ग्रहण कर ले, पकड़ ले और वे हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, राग, द्वेषादि। इन ग्रहों की शांति के लिए हम भक्ति, वैराग्य, सत्संग, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय आदि करें। इन उपायों से इन ग्रहों का शांत होना स्वाभाविक है। अतएव हम विचार रूपी पूजा-द्वारा हृदयाकाश के कामादि ग्रहों को शांत करें जो संभव है, आकाश के शनि, रवि आदि ग्रहों से न हमारी कोई हानि है और न उन्हें शांत करने का उपाय या प्रयोजन है। कबीर साहेब ने कहा है "ऐ पंडित, मैं तुमसे पूछता हू कि किस क्षण काम-क्रोधादि द्वारा हृदय में ग्रहण लगता है। इन्हें शान्त करने की चेष्टा करो। यदि हृदय-ग्रहण का रहस्य नहीं जानते हो, तो तुम्हें, तुम्हारे गुरु ने क्या बताया है या तुम गुरु बनकर शिष्यों को क्या बताते हो[२] ?"

हिन्दू-समाज के संभ्रांत घरानों में पैदा होने वाले बच्चे आये दिन सत्तइसा में पड़ते रहते हैं। पंडित जी बतलाते हैं बच्चा सत्तइसा मे पड़ गया है। इसको अगर इसका पिता देख लेगा या इसकी आवाज तक सुन लेगा तो उसका अनिष्ट है। जो बच्चा अभी पैदा हुआ है और उसने अभी कोई अपराध नही किया है, उसे पंडित लोग अपराधी सिद्ध कर देते है। और इसके आड़ में है उनसे पूजा कराना तथा धन प्राप्त करना। उन्ही दिनो के पैदा हुए इसाई-मुसलमान आदि के बच्चे सत्तइसा में नही पड़ते और न उन्हें उनके लिए पूजा कराने की जरूरत पड़ती है। यह सत्तइसा, मूल-गड़त आदि ढकोसलों से भरे हैं।

किसी के घर में कोई व्यक्ति मर गया तो पंडित लोग उसका घर ही नहीं, कुल-परम्परा को अशुद्ध घोषित कर देते हैं। उसके यहा दशगात्र, तेरही, सोरही आदि हो जाने पर उसका घर शुद्ध मानते हैं। अर्थात जब वह काफी धन अपने घर से खर्च कर देता है, तब शुद्ध होता है और इधर.जितना धन ब्राह्मणों को देता या खिलाता है वह सब उसके पितर को मिलने की बात

२. मैं तोहि पूछौं -पंडित जना, हृदया ग्रहण लागु केहि खना।
कहहिं कबीर इतनो नहिं जान, कौन शब्द गुरु लागा कान॥
(बीजक, शब्द ४९)

बतायी जाती है जो केवल अन्धविश्वास है। मनुष्य को चाहिए कि वह जो कुछ कमाये अपने तथा परिवार की रक्षा करते हुए उसे अधिक-से-अधिक लोकमंगल के कार्य में लगाये। बहुत धन कमाकर बच्चो के लिए छोड़ना बहुत गलत है। इससे लडके मुफ्त का धन पाकर उसका दुरुपयोग करते है तथा कर्म से हीन और आलसी बनते हैं। इसलिए 'निर्वाह के अतिरिक्त धन धर्म-परोपकार मे लगाना चाहिए जिसमें सार्वजनिक मंगल है। यदि पिता अधिक धन छोड़कर मर जाये तो पुत्र का कर्तव्य है कि वह उसका अधिक अंश स्वय न उपयोग करके लोकमंगल कार्य मे दान कर दे। वस्तुतः मृतकर्म का यही असली स्वरूप है।

दायी, बायीं आंख या अंग के फड़कने, तेली, विधवा, काना आदि देखने, बिल्ली आदि का रास्ता काट देने, छीकने, छूछे घड़े देखने, दूध, गाय, मुर्दा आदि देखने से शकुन-अपशकुन मानकर भला-बुरा होने की मान्यता एक मानसिक पागलपन है जो समाज पर हजारो वर्षो से लदा है। रात मे झाड़ू लगाने पर माया चली जाती है। इसका मतलब यह है कि अंधियारे मे झाड़ू से कोई जरूरी चीज कचड़ा मे जा सकती है। यदि बिजली आदि का पूर्ण प्रकाश है तो झाड़ू लगाने मे कोई बुरा नही। किस दिन बाल बनवाना, किस दिन नही बनवाना, नये बर्तन या कपड़े किस दिन उपयोग करना, किस दिन किस दिशा की ओर जाना, किस दिन किस दिशा के लिए दिशाशूल या योगिनी है आदि मानना मन की एक महाभ्रांति है जो बड़े कहलाने वालो ने हमारे ऊपर हजारो वर्षो से लाद रखा है। और इतना ही नही, स्वप्न पर बड़े लम्बे-चौड़े विचार किये गये है। स्वप्न जागृति के संस्कारो के विकृत प्रतिबिम्ब हैं, उनमें कुछ हानि-लाभ नही। स्वप्न के भला-बुरा होने से हमारा कुछ नही बनता-बिगड़ता। बस, वर्तमान जागृति मे हम बुरे कर्मो से बच कर भले मे लगे रहना चाहिए। इस प्रकार की सारी मानसिक दासता, भय, कायरता, गलत संस्कारो को सर्वथा छोड़कर स्वस्थ मन वाला होना चाहिए।

लग्न-मुहूर्त इसी प्रकार सारहीन है। कितने ही ज्योतिषाचार्यो की लड़कियां विवाह के बाद से ही विधवा हो जाती है। उन ज्योतिषाचार्यो को यही पता नही चलता कि जिनको हम अपने दामाद चुनते है वे विवाह के बाद ही मर जायेंगे। लखनऊ के एक ज्योतिषी पंडित अपनी लड़की के लिए वर खोजते-खोजते इतने दिन बिता दिये कि लड़की की उम्र बत्तीस (३२) वर्ष की हो गयी। वे सदैव लड़की और लड़के की कुण्डली मिलाते रहे और उनके न मिलने से लड़का छोड़ते रहे। अंततः लड़की की ३२ वर्ष की उम्र में एक लड़के से उसकी कुण्डली खूब मिली तथा पंडित जी बहुत प्रसन्न हुए कि भले लड़की

की शादी में देरी हुई; परन्तु अन्ततः लड़का ऐसा मिला जिसकी कुण्डली लड़की से अच्छी तरह मिलती है। शादी ठनी। शादी की रात को जब विवाह के रस्म को पूर्ण करके वर जनवास में जाकर खा-पीकर सोया, तो दो घण्टे में उसका प्राणान्त हो गया। यह है कुण्डलो मिलने तथा फलित-ज्योतिष का धोखा। सद्गुरु कबीर कहते हैं "गुरु वसिष्ठ जैसे महान ज्ञानी (विश्वामित्र एवं सतानन्द मिलकर) सीता और राम की शादी का लग्न शोधे थे और सूर्य मन्त्र की दीक्षा उन्हें दी गयी; परन्तु जो सीता श्री राम जी से व्याही गयी उन्हें जीवन में पल मात्र भी सुख न मिला[३]।" सूरदास जी महाराज भी कहते हैं "गुरु वसिष्ठ जैसे ज्ञानी पंडित बड़ी सावधानी से राम-सीता का लग्न रखे; परन्तु दशरथ का मरण और सीता का हरण, विपत्ति-पर-विपत्ति आती रही[४]।" गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज भी इसी लाइन में बोल पड़ते हैं "जन्म, मुहूर्त और ग्रहयोग आदि का कोई महत्त्व नही है, जिसके राम अनुकूल हैं उसके सब अनुकूल हैं[५]।" वस्तुतः अपने कर्मों की पवित्रता ही राम की अनुकूलता है।

शुद्धज्ञान और सदाचार में चलने वाले के लिए कोई भय नहीं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह मिथ्या धारणाओं को छोड़कर सत्य में प्रतिष्ठित हो।

४१

सृष्टि एवं जगत

कुछ विद्वानों की राय है कि बीजक की शुरू रमैनी में सद्गुरु कबीर की विधेयात्मक सृष्टि-कल्पना है। वे अर्थ करते हैं "पहले अन्तर में ज्योति तथा शब्द रूप में एक पुरुष तथा माया नारी थी, उनसे हरि, हर, ब्रह्मा तीनों पैदा हुए और उनसे सृष्टि का विस्तार हुआ, परन्तु वे भी सृष्टि का आदि-अंत न

३. गुरु वसिष्ठ मिलि लगन सुधायो, सूर्य मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बियाही, पल एक संच न कीन्हा॥
(बीजक, शब्द ११०)

४. गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ कौ, विपति में विपति परी॥

५. जन्म मुहूरत योग ग्रह, तुलसी गिनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि॥

जान सके[1] ।" पारखी सन्तों का मत है कि यह अर्थ उपयुक्त नही हो सकता; क्योंकि कबीर साहेब ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव को सृष्टि रचयिता नही मानते। वे तो इन्हे एक विशेष कोटि के मायालिप्त मनुष्य मानते हैं। इन पंक्तियों पर पारखी सन्तों का विचार है कि "इस विविधिता भरे संसार को देखकर मनुष्य ने इसके रचयिता की कल्पना की और उसे ध्यान-योग द्वारा खोजने की चेष्टा की। ध्यान करने पर उसके अन्तर (मन) में शब्द और ज्योति की ईश्वर रूप मे कल्पना (नारी) हुई और इसी पर ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव भी लक्ष्य लगाये। इन लोगों ने कर्म, उपासना, योग के मार्ग चलाये; परन्तु उसका पता न पाये या सृष्टि का आदि-अंत न जान सके।"

पारख सिद्धान्तानुसार कबीर साहेब बीजक में सृष्टि-रचना का आरंभ नहीं सिद्ध कर रहे हैं; प्रत्युत वे सृष्टि का आरम्भ मानने वालों से प्रश्न कर रहे हैं कि यदि सृष्टि पहले नहीं थी, तो बताओ, वह कहां से आ गयी ? वे पूछते हैं "बताओ, सृष्टि-रचयिता का रूप-रेखा क्या है ? उसे सृष्टि रचते दूसरा किसने देखा ? उस ॐ वाची ब्रह्म का जब वेद भी रहस्य नही जानते, तब बताओ उसका सम्पूर्ण रहस्य तुम्हें किसने बताया ? जब पहले तारागग, रवि, चांद, पिता के बिंद, जल, थल, पवन कुछ नही थे तब ईश्वर या ॐ नाम किसने रखा और इस सिद्धान्त को चलाने की आज्ञा किसने दी ? उसमें दिन-रात, ज्ञान-अज्ञान कुछ नही थे, तो उसका गुण-धर्म क्या है[2] ?" सद्गुरु और कहते हैं "उस समय पवन, पानी, कली, फूल, शक्ति-संसार, गर्भ, वीर्य, विद्या, वेद, शब्द, स्वाद, पिंड, निवास, पर्वत्त, पृथ्वी, पवन, आकाश, गुरु-चेला, सरल-कठिन मार्ग कुछ नहीं थे, तब किसने क्या लेकर सृष्टि पैदा कर दी ? जिसका कुछ पता-लता नहीं उस अज्ञात बात की दशा को क्या कहते हो ? ऐसी तत्व-हीन बातो से क्या लेना-देना[3] ।" सद्गुरु कबीर मानो ऋग्वेद के नासदीय

१. अन्तर ज्योति शब्द एक नारी। हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।
ते तिरिये भग लिंग अनन्ता। तेउ न जानै आदिउ अन्ता ।। (बी०, रमैनी १)

२. बीजक, रमैनी ६।

३. तहिया होते पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उत्पानी ।।
तहिया होते कली नहिं फूला। तहिया होते गर्भ नहिं मूला ।।
तहिया होते विद्या नहिं वेदा। तहिया होते शब्द नहिं स्वादा ।।
तहिया होते पिंड नहिं बासू। नहिं धर धरणि न पवन अकासू ।।
तहिया होते गुरु नहिं चेला। गम्य अगम्य न पंथ दुहेला ।।
साखी—अविगति की गति का कहो, जाके गाँव न ठाँव।
गुण बिहूना पेखना, का कहि लीजै नाँव ।। (बीजक, रमैनी ७)

सूक्तों के रचयिता से पूछते हों कि जब सृष्टि पहले नही थी, तो कहां से आ गयी ? नासदीय[४] सूक्त इस प्रकार है—

"उस समय असत नही था, न सत ही था। न पृथ्वी थी और न उसके ऊपर आकाश था। आवरण भी कहां था ? क्या गहन गम्भीर जल था ? ॥१॥ उस समय न मृत्यु थी और न अमरता थी। रात और दिन का भेद भी नही था। वह एक निर्वात अपने स्वभाव से स्थित था। उसके अलावा कुछ नही था ॥२॥ उस समय अंधकार से अंधकार ढका था, अर्थात सर्वत्र अंधकार था; और यह सब जलमय था। एक अंकुर था, जो त्विष (भूसी) से ढंका हुआ था, वह तपस् (उष्मा) की शक्ति से पैदा हुआ ॥३॥ पहले काम उत्पन्न हुआ और मन से वीर्य पैदा हुआ। मनीषी कविगण अपने हृदय मे विचार करके असत के साथ सत के बंधन का पता लगाया ॥४॥ उसकी किरणे जो सर्वत्र फैली थी, ऊपर थी कि नीचे ? वीर्य (बीज) को धारण करने वाले थे और महिमायें (शक्तियां) भी थी। आत्मशक्ति नीचे थी और इच्छाशक्ति ऊपर थी ॥५॥ यह सृष्टि कहां से आयी, कैसे बनी, इसे कौन निस्संदेह जानता है और कौन इसकी निर्भ्रांत घोषणा कर सकता है ? देवता लोग भी सृष्टि होने के बाद ही पैदा हुए हैं, फिर कौन जानता है कि सृष्टि कहां से हुई ? ॥६॥ ये सृष्टियां कहां से हुई, किसने पैदा कीं, किसने नही पैदा कीं—यह सब वही जानता होगा जो इसका अध्यक्ष अंतरिक्ष मे स्थित है और हो सकता है वह भी यह सब न जानता हो[५] ॥७॥"

४. नासदीय सूक्त के पहले भी कहा गया है "देवोत्पत्ति के पूर्व असत से सत उत्पन्न हुआ, फिर दिशायें बनीं, उसके बाद वृक्ष पैदा हुए, वृक्षों से पृथ्वी पैदा हुई, पृथ्वी से दिशायें हुईं, अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुए।"
(ऋग्वेद १०/७२/३, ४ टीका रामगोविन्द त्रिवेदी)

५. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो न व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥
तम आसीत्तमसा गूल्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतकम् ॥३॥
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

दुनिया की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद के इस नासदीय सूक्त के सात मंत्रों में सृष्टि की धुंधली कल्पना पेश की गयी है और ऋषि द्वारा कहा गया है कि यह सब पहले नहीं था। यह कहां से हुआ, कह नहीं सकते। इसमें जो प्रथम जल होने की प्रश्नवाची कल्पना की गयी है, यहीं से उपनिषद् में यह बात गयी कि 'पहले यह जल ही था[६]।' इसके बाद मनुस्मृति में इसका विकास हुआ "उसने पहले जल की सृष्टि की और फिर उसमें शक्ति रूप बीज छोड़ा[७]।"

नये सिरे से सृष्टि-उत्पत्ति के सिद्धान्त मानने वालों से सद्गुरु कबीर पूछते हैं कि जब पृथ्वी-पवनादि कुछ नहीं था, तब अभाव से सृष्टि कैसे पैदा हो गयी, कौन पैदा कर दिया ? प्रकारांतर से यह सिद्ध हुआ कि सद्गुरु कबीर सृष्टि की अनादिता सिद्ध करते हैं। जहां पर उन्होंने कहा है "एक ओंकार रूपी अंडे से सारे संसार का फैलाव हुआ और ईश्वर की सब लोग पत्नी बन गये तथा उसे अविचल पुरुष भर्तार मान लिये[८]।" इत्यादि, यह सब पूर्वपक्ष की बातें हैं। कोई राम अपना पति है, इस कल्पना का सद्गुरु ने खंडन किया है। इसका विस्तार 'हरि मोर पीव की परख' में देखें।

जो कुछ सतात्मक पदार्थ है उसका निर्माण अभाव से नहीं हो सकता। सद्गुरु कबीर द्वारा नये सिरे से सृष्टि-उत्पत्ति मानने वालों से किये गये प्रश्नों का पारखसिद्धान्त में खूब विकास हुआ। पारखसिद्धान्त में जगत की अनादिता का सिद्धान्त खूब फला-फूला। इस पर पूर्ण विचार हम तीसरे अध्याय 'पारख-सिद्धान्त' में करेंगे।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
(ऋग्वेद १०/१२९/१-७)

६. आप एव इदमग्र आसुः ॥ बृहदारण्यक उ० ५/५/१ ॥
७. अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ मनुस्मृति १/८ ॥
८. बीजक, रमैनी—साखी २७।

४२

राम और आत्मा

'राम' शब्द सद्गुरु कबीर की भाषा में विधेयात्मक भी है और निषेधात्मक भी। 'राम' शब्द का अर्थ यदि हृदय-निवासी है तो वह विधेयात्मक है और यदि आकाशव्यापी है तो निषेधात्मक। सद्गुरु कबीर का राम कण-कण में नहीं, घट-घट में है जो सरल, स्वाभाविक और सच्चा है। बीजक की वाणियो पर गहराई से न सोचने पर तथा पूर्व-पक्ष और उत्तर-पक्ष का न विचार करने पर जो कि उसमे तथ्य रूप मे निहित हैं ईश्वर परक भी अर्थ आराम से लग सकता है। सरसरी निगाह से देखने पर कई पदो के अर्थ श्लेषात्मक, द्वयर्थक एवं उलझे हुए लगते हैं और वहा पर भिन्न सिद्धान्त का आरोपण बड़े सरल ढंग से हो जाता है। ऊपरी तौर पर देखने से ऐसा लगता है कि बीजक के कुछ पदों के अर्थ निर्विवाद होना एक कठिन कार्य है। अतः खीचतान करने की उनमें काफी गुंजाइश दिखती है; परन्तु किसी भी महापुरुष का एक मौलिक सिद्धान्त होता है। इस स्थिति मे हर पद के अर्थ का उतना मूल्य नहीं होता जितना कि उनकी सम्पूर्ण वाणियो के माध्यम से निकले हुए सिद्धान्त का होता है।

जो अपना परम प्रतिपाद्य विषय होता है, जो अपना सिद्धान्त होता है, कोई ग्रंथकार उसका एक वाक्य मे भी निषेध नहीं करता। यदि कबीर साहेब का ईश्वर रूप में माना हुआ राम प्रतिपाद्य है अर्थात यदि वे जीव से पृथक ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते है तो उसका खंडन वे कथमपि न करते; परन्तु वे कहते हैं "राम बड़ा है कि राम का जानने वाला[1] ?" यहां राम का अर्थ घट-वासी चेतन जीव नही, अपितु जीव से भिन्न कल्पित ईश्वर है। सद्गुरु कहते है कि ईश्वर बड़ा नही है; किन्तु ईश्वर की कल्पना करने वाला उसका सृजक बड़ा है। ईश्वर जीव का मनःप्रसूत है। "ब्रह्म बड़ा है कि जहां से ब्रह्म की कल्पना खड़ी हुई वह जीव बड़ा है[2]।" अर्थात जिस मनुष्य जीव ने ब्रह्म के विषय मे कल्पना की वह जीव ही बड़ा है। "ईश्वर का क्या रूप या रेखा बताते हो, दूसरा कौन है जो उसे देखा है[3]।" "हे फकीर, ईश्वर के द्वार की बात बताओ, वह किस वेष में रहता है[4] ?" "जिसका नाम अकथनीय कहते हो,

१. राम बड़ा कि रामहि जाना ।। बीजक, शब्द ११२ ।।

२. ब्रह्म बड़ा कि जहाँ से आया। वही।

३. वर्णहु कौन रूप औ रेखा। दूसर कौन आहि जो देखा ।। बीजक, रमनी ६ ।।

४. दर की बात कहो दरवेसा। बादशाह है कौने भेषा ।। बीजक, रमैनी ४६ ।।

उसकी क्या प्रार्थना करते हो[५] ?" "हे पंडित जी ! तुम मिथ्या विचार करते हो, न वहां से सृष्टि हुई है और न वह सिरजनहार ही है[६] ।" "सब प्रकार अपने पुरुषार्थ की आशा करो, ईश्वर का भेद कोई नहीं पाया[७] ।" "ईश्वर की कथा किसी की समझ में न आयी कि वह बिलकुल दूध है कि नितांत पानी है[८] ।" "कहो भाई ! निरंजन ईश्वर किस वेष में रहता है ? उसके हाथ, पैर, मुख, श्रवण, जिभ्या जब नहीं हैं तो हे प्राणी ! क्या नाम लेकर उसका जप करते हो[९] ?" और भी कहते हैं "ये लोग किसके भरोसे चुप्पी साध कर बैठे हैं। ऐसे आलसी एवं पराश्रयी लोगों को दुर्वासनायें उसी प्रकार लूटती हैं जैसे कसाई मांस को[१०] ।" "विष्णु ने बिना बस्ती के देश का अपने मुख से वर्णन किया, अतः लोग सूने घर का पहुना बने तथा मिथ्या धारणा से प्रेम लगाये[११] ।" "हरि तो एक कल्पना की ऊंची ज्योति है और तुम उसमें पतिंगे बनकर उलझ रहे हो और इस प्रकार अपने आप को कल्पना-वासना की भीड़ मे झोक दिये हो[१२] ।" "भूले लोगो ने कल्पित राम का पल्ला पकड़ा और अंततः उन्हें पछता कर चलना पड़ा[१३] ।"

यदि कबीर साहेब को ईश्वर इष्ट होता तो वे उसकी एक वाक्य में भी आलोचना न करते; परन्तु ऊपर के उदाहरणों को देखने से साफ हो जाता है कि वे अलग ईश्वर की कल्पना नही करते। वे जहां राम को विधेयात्मक ढंग से लेते हैं, हृदय-निवासी बताते हैं "जो राम हृदय में बसता है लोग

५. जाकर नाम अकहुवा रे भाई । ताकर काह रमैनी गाई ।। बीजक, रमैनी ५१ ।।
६. पंडित मिथ्या करहु विचारा । न वहां सृष्टि न सिरजनहारा ।। बी० श० ४३ ।।
७. आपन आश कीजे बहुतेरा । काहु न मर्म पावल हरि केरा ।। बी० श० ७७ ।।
८. समुझि न परलि राम की कहानी । निरबक दूध की सरबक पानी ।।
(बीजक, रमैनी ४५)
९. कहो हो निरंजन कौने बानी ।
हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहिं, काकहि जपहु हो प्रानी ।। बी० श० ६४ ।।
१०. लोग भरोसे कौन के, बैठ रहे अरगाय ।
ऐसे जियरहि यम लुटै, जस मटिया लुट कसाय ।। बीजक, साखी १६६।।
११. विष्णु जिभ्या गुण गाइया, बिनु बस्ती का देश ।
सूने घर का पाहुना, तासों लाइन हेत ।। बीजक, शब्द ८१ ।।
१२. हरि उतंग तुम जाति पतंगा । यम घर कियहु जीव को संगा ।।
(बीजक, रमैनी ६५)
१३. कबिरन ओट राम की पकरी । अंत चले पछिताई ।। बीजक, शब्द ८४ ।।

उसको नहीं जानते[१४]।" अतएव "अपने दिल में खोजो, दिल में खोजो, यही करीम और राम है[१५]।"

आत्मा का अर्थ ही है 'अपने आप', बीजक में आत्मा शब्द बहुत कम है, जीव शब्द का प्रयोग बहुत है। वैसे 'आतमराम पलक में बिनसे[१६]।' जीव ही के लिए प्रयोग हुआ है। बीजक पाठफल में आत्मा शब्द जीव के लिए आया है—

बीजक कहिये साख धन, धन का कहै संदेश।
आतम धन जेहि ठौर है, बचन कबीर उपदेश॥
अस्ति आत्मा राम है, मन माया कृत नास्ति।
याकी पारख लहे यथा, बीजक गुरुमुख आस्ति॥

राम और आत्मा के विषय में तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' में भी 'राम और आत्मा' संदर्भ देखें।

४३
राम नाम जप

सद्गुरु कबीर ने कहा है "राम नाम भजो, राम का स्मरण करो, काल ने केश पकड़ रखा है। राम-भजन के बिना गोबर-कीट के समान दुःख पाओगे। हे मोह में उन्मत्त ! तू राम में नहीं रमता। एक राम भजन बिना तुम्हारी सब चतुराई डूब जायगी। राम नाम के बिना तू ने अपना जन्म व्यर्थ खो दिया[१]।" यहां जपने का अर्थ रट लगाना न समझ लेना चाहिए, किन्तु राम को समझ कर उसके स्मरण का अभिप्राय है। वे कहते हैं "राम नाम क्या है अर्थात जिसका-राम ऐसा नाम है वह क्या है—इसको जाने बिना संसार के लोग डूब मरे[२]।" वे जीभ से दिखाऊ राम-नाम-रट का निषेध करके उस स्थिति में ठहरने को कहते हैं "राम-राम पुकारते-पुकारते इन लोगो की जीभ में घट्ठे पड़ जाते हैं। ये लोग सरल पात्र मे भरा स्वच्छ शीतल जल नही

१४. हृदया बसे तेहि राम न जाना॥ बीजक, शब्द ४१।
१५. दिल में खोज दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥ बीजक, शब्द ९७॥
१६. बीजक, शब्द ११।
१. बीजक, रमैनी १७, १९, शब्द ६१, ७२, कहरा ५, ६।
२. राम नाम जानै बिना, भौ बूड़ि मुवा संसार। (बीजक, रमैनी १)

पीते, खोद कर पीना चाहते हैं[३] ।" वे और खुलाशा करके कहते हैं "हे पंडित जी ! तुम जो राम-नाम-जप मात्र से तर जाने की बातें करते हो वह मिथ्या है । क्योंकि यदि राम-नाम जपने मात्र से जगत जीवों का कल्याण हो जाय तो शकर-शकर कहने से मुख मीठा हो जाना चाहिए । यदि आग-आग कहने से पैर गरम हो जाय, जल-जल कहने से प्यास मिट जाय और भोजन-भोजन कहने से भूख भग जाय, तो राम-राम कहने मात्र से संसार के लोगों का उद्धार भी हो जाना चाहिए । मनुष्य के साथ में सुग्गा भी राम-नाम रटता है; परन्तु राम क्या है, इसका महत्त्व नही जानता । यदि वह कभी पिंजड़े से निकल कर जंगल को भाग गया, तो राम का स्मरण भी नही करता । बिना देखे, बिना अर्स-पर्श किये केवल नाम लेने से क्या होता है ? यदि धन-धन कहने से कोई धनिक हो जाय, तो संसार मे कोई निर्धन न रहे । राम-भक्तो का तो प्रबल बंधन विषय-माया की आसक्ति है । एक राम के भजन बिना जीव वासना में बंधकर पुनः गर्भवास को जाता है[४] ।" पूरे शब्द पर ध्यान दे । वे एक तरफ कहते हैं कि राम-राम रटने से कल्याण नही होगा और दूसरी तरफ शब्द की अन्तिम पंक्ति में कहते हैं 'एक राम के भजन बिना जीव बंधकर यमपुर में जाता है ।' इसका अभिप्राय नौवी पंक्ति पर ध्यान देने से समझ मे आ जाता है । वे कहते हैं 'विषय-माया से सच्चा प्रेम लगाना ही राम-भक्तों का प्रबल बंधन है ।'

सद्गुरु कबीर हर विषय को बुनियादी ढंग से लेते हैं । वे यह कहने वाले नही थे कि 'नाम लेत भवसिन्धु सुखाही ।' वे धर्म में घुसे हुए सारे अंध-

३. रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रौंस ।
सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पिवन की हौंस ।। (बीजक, र०, सा० ३३)

४. पंडित बाद बदे सो झूठा ।।
राम के कहै जगत गति पावै, खाँड़ कहै मुख मीठा ।।
पावक कहै पाँव जो डाहै, जल कहै तृषा बुझाई ।।
भोजन कहै भूख जो भाजै, तो दुनिया तरि जाई ।।
नर के संग सुवा हरि बोले, हरि परताप न जानै ।।
जो कबहीं उड़ि जाय जंगल में, तो हरि सुरति न आनै ।।
बिनु देखे बिनु अर्स-पर्स बिनु, नाम लिये क्या होई ।।
धन के कहै धनिक जो होवै, निर्धन रहै न कोई ।।
साँची प्रीति विषय माया सो, हरि भक्तन की फाँसी ।।
कहहि कबीर एक राम भजे बिनु, बाँधे यमपुर जासी ।। (बीजक, शब्द ४०)

विश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहते थे; परन्तु धर्म के असली तत्त्व का उद्घाटन करना उनको अभीष्ट था। विषयासक्ति हरिभक्तों की फांसी है और विषयासक्ति का सर्वथा त्याग ही राम-भजन है। राम को जानना है कि राम क्या है 'राम नाम जाने बिना, भौ बूड़ि मुवा संसार[५]' जिसका नाम राम है उसको जाने बिना मिथ्या राम में विश्वास कर ससार के लोग डूब रहे हैं। सच्चा राम व्यक्ति का अपना चेतन स्वरूप है। "जिसके विषय में योगीजन रमते हैं वह राम है।" इस स्वरूप राम में स्थिति तभी होगी जब विषयासक्ति का सर्वथा त्याग हो। जब तक मन में विषयासक्ति है तब तक राम का स्मरण कैसे होगा? विषयासक्ति का सर्वथा त्याग हो जाने पर बोधस्वरूप, ज्ञानस्वरूप राम अपने आप स्थित हैं। अतएव अपने रामस्वरूप को सबसे पृथक समझ कर विषयासक्ति का सर्वथा त्याग करना चाहिए, यही राम-भजन है।

यदि राम हमसे अलग है तो कदाचित्त मिल भी जाय तो छूट जायगा। मिली हुई वस्तु छूटती है यह नियम है। जो वस्तु मिलती-बिछुड़ती है वह माया होती है। हमने राम को अपने से पृथक मानकर उसे माया बना दिया है; परन्तु यदि राम हमारा स्वरूप ही है तो न उसकी रट लगानी है और न उसे पाना है। अपितु जो हमारे मन मे विषय-माया का साम्राज्य हो गया है, जिससे हम अपने राम (चेतन स्वरूप) को भूले रहते हैं, उस विषय-माया का सर्वथा त्याग कर देना है, फिर तो न राम को पुकारना है और न कही अन्यत्र उसकी कल्पना करना है। "राम ऐसा नाम अपना ही है, यह समझ कर खोटी वस्तु (कल्पना) को छोड़ दो[६]।"

४४

हरि और पीव की परख

कितने विद्वान पूर्वापर का विचार किये बिना तथा शब्दों को परख की कसौटी पर कसे बिना व्याख्या करने लगते हैं और इसलिए बात ठीक नही पड़ती। कबीर साहेब ने बीजक भर में कही भी अपने को किसी परमात्मा की पत्नी मानने की बात नही कही है; प्रत्युत ऐसी धारणा का उन्होने जोरदार शब्दों में स्पष्ट खडन किया है। कबीर साहेब जैसा महातार्किक पुरुष जो सारे

५. बीजक, रमैनी, साखी १।
६. राम नाम निजु जानि के, छाड़ि देहु वस्तु खोटि ॥ बीजक, रमैनी साखी ३६ ॥

अंधविश्वासों एवं लचर धारणाओं को चुटकी बजाते उड़ा देता है, अपने आप को किसी तथाकथित ईश्वर की पत्नी मान ले, सर्वथा अनर्गल बात है। उन्होंने इस प्रकार की भक्ति तथा ईश्वर सम्बन्धित पत्नी तथा पति मानने की मिथ्याधारणा का खण्डन किया है।

जिस शब्द को लेकर विद्वान लोग कबीर साहेब को माधुर्य भक्ति करने वाला मान लेते हैं, वह यह है "हरि मेरा पति है, मैं उसकी पत्नी हूं। राम बड़ा है, मैं उसके तन का अंश हूं। परमात्मा मेरा चरखा है, मैं शुद्ध पिउनी हूं—इस प्रकार किसी ईश्वर को पति मानकर अपने को उसकी पत्नी मानने वाले भक्त उस हरि का नाम लेकर नाम का सूत कातते है। छह महीने के नाम-जप से अभ्यास बनता है तथा वर्ष भर के भजन से दर्शन होते हैं। ऐसे भक्तों को देखकर लोग कहते है बेचारी नाम-जप का सूत अच्छा काता। कबीरदेव कहते हैं सूत तो अच्छा काता, परन्तु यह परमात्मा रूपी चरखा मुक्ति का दाता नहीं हो सकता[1]।" इसमें 'हरि मोर पीव' से लेकर 'मैं रतन पिउरिया' डेढ़ पंक्ति तक पूर्व पक्ष की बात है और 'हरि का नाम ले कतति बहुरिया' इस आधी पंक्ति में उत्तर पक्ष (कबीर साहेब के) द्वारा पूर्व पक्ष पर व्यंग है कि ये बहुरिया बने भक्त लोग हरि नाम का सूत कात रहे हैं। अन्तिम पंक्ति में सद्गुरु स्पष्ट रूप से कहते हैं 'चरखा न होय मुक्ति का दाता' यह पति माना हुआ ब्रह्म-चरखा मुक्ति का दाता नही हो सकता। क्योंकि यह जगत-प्रपंच का कारण है।

अगले शब्द में सद्गुरु और कहते हैं "अपने चेतन स्वरूप से पृथक किसी हरि की कल्पना ही एक ठगाई विद्या है जिसके आधार पर भ्रमिक लोग दूसरे को ठगते हैं। इस विरह में तुम कैसे जीयोगे ? भला ! कौन किसका पति है और कौन किसकी पत्नी है ? यह तो न कहने योग्य पति-पत्नी की घृणित कथा जो दैहिक वासना का बदला हुआ रूप है; भूले लोगों ने फैला रखी है। भला ! कौन किसका पुत्र (अंश) है और कौन किसका बाप (अंशी) है ? कौन मरता है, कौन दुःख सहता है ? (जीव ही भटक कर दुःख सहता है)। भ्रमिकों ने सबको भटका कर स्वरूपविचार की शक्ति क्षीण कर दी; परन्तु

1. **हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया, राम बड़ो मैं तन की लहुरिया ॥**
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया, हरि का नाम ले कतति बहुरिया ॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकुरी, लोग कहैं भल कातल बपुरी ॥
कहहिं कबीर सूत भल काता, चरखा न होय मुक्ति का दाता ॥
(बीजक, शब्द ३५)

आश्चर्य है कि इस 'राम टगौरी' की कोई परख नहीं करता। लोग ठग की बात पर ही विश्वास करते है; परन्तु जब ठग परख में आ जाता है, तब वह (राम-ठगौरी) समाप्त हो जाती है[2]।"

इस शब्द के 'को काको पुरुष कौन काकी नारी' तथा 'को काको पुत्र कौन काको बाप' पर ध्यान देने योग्य है। ३५वे शब्द में भक्त और ईश्वर को पत्नी-पति तथा अंश-अंशी के रूप में पूर्वपक्ष मे चित्रित करके उसका खडन किया गया था। उसका यहां पुनः निराकरण है। जीव अविनाशी है, वह न किसी का अंश है न उसका कोई अंशी, न वह किसी की पत्नी है और न उसका कोई पति। पति-पत्नी, अंश-अंशी आदि भाव एक 'राम ठगौरी' है। ईश्वर का अतिवाद है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा "अपने ऊपर पति की कल्पना करना छोड़ दो और मिथ्या वाद मत करो, तब तुम्हारे मन का अहंकार टूट जायगा[3]।"

स्वतन्त्र जीव को किसी कल्पित ईश्वर के अधीन बताना पहली भूल है। दूसरी महा घृणित भूल है भक्ति के नाम पर जीव और ईश्वर की पत्नी और पति के रूप में धारणा बनाना। भारत में सखीपंथ की लीला इसी तथा-कथित भक्ति के नाम पर चलती है। ऐसा हिंदू ईश्वर को अपना पति मानता है और मुसलमान ईश्वर को पत्नी। मुसलमान सूफी साधक करते है कि पुरुष का स्त्री की तरफ स्वाभाविक आकर्षण रहता है। अतः यदि साधक अपने को पति तथा ईश्वर को पत्नी माने तो ईश्वर मे जम कर भक्ति होगी।

कहना न होगा ये विषयी-पामर मनुष्य ईश्वर भक्ति के नाम पर भी नायक-नायिका बन कर विषय-क्रीड़ा करना चाहते है। सखीपंथ वाले तो पुरुष होकर स्त्री का वेष पहनते है, नकली रजस्वला बनते है, यौन क्रिया का नाटक करते हैं तथा कृत्रिम बच्चा पैदा करते है। अर्थात पत्थर के बट्टे मे कपड़ा लपेट कर उसे खेलाते हैं।

कबीर साहेब ज्ञानी संत हैं, भावुक भक्त नही। वे न स्वयं किसी कल्पित ईश्वर की पत्नी बनते है और न दूसरे को पत्नी बनने की राय देते है। ये माधुर्य भक्ति के नाम पर स्वय पत्नी बनकर रास रचाने वाले लोग धर्म क्षेत्र मे कलंक लगाने वाले और ससार के पुरुषो को स्त्री बना कर उनमे कुसंस्कार उत्पन्न करने वाले हैं। यह भक्ति नही है, भक्ति के नाम पर दुश्मनी करना है

२. बीजक, शब्द ३६।

३. छाड़हु पति छाड़हु लबराई। मन अभिमान टूटि तब जाई॥
(बीजक, रमनी ६०)

तथा भक्ति के नाम पर अपनी वासना की पूर्ति करना है। इन सब मिथ्या एवं दूषित धारणाओं के कबीरदेव घोर विरोधी हैं।

४५

ईश्वर और अवतार

ऋग्वेद में आया हुआ 'ऋत' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। द्रव्य की गति ही ऋत है, अर्थात जिससे इस अनन्त ब्रह्मांड की निरन्तर व्यवस्था हो रही है वह ऋत[1] है। यह ऋत वस्तुतः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चांद, सूर्य, तारागण आदि भौतिक पदार्थों का गुण-धर्म है। जिन भौतिक नियमों से जगत निरंतर गतिशील है वह ऋत है। ऋषियों की कल्पना सत्य थी, वैज्ञानिक थी; परन्तु

१. "ऋत का शब्दार्थ है वस्तुओं की कार्यविधि। ऋत से तात्पर्य साधारणतः सब प्रकार के नियमों से है और न्याय के सर्वव्यापी भाव का भी यह द्योतक है। इस भाव का सुझाव प्रारम्भ में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रगण की नियमित गतियों एवं दिन और रात के नियमित परिवर्तनों से एवं ऋतुओं के नियमित क्रम के कारण हुआ होगा। ऋत से तात्पर्य विश्व की व्यवस्था से भी है। इस विश्व में प्रत्येक पदार्थ में जो व्यवस्था पायी जाती है वह ऋत के ही कारण है। यह वही नियम है जिसे प्लेटो व्यापक नियमों के नाम से पुकारता है। दृश्यमान जगत उसी ऋत की छाया मात्र है जो कि एक स्थिर सत्ता है और सब प्रकार की उथल-पुथल एवं परिवर्तन की विक्रियाओं में अपरिवर्तित रहती है। 'व्यापक नियम' विशिष्ट पदार्थ से पूर्व विद्यमान रहता है और इसीलिए वैदिक ऋषि का विचार है कि ऋत प्रत्येक घटना के प्रकाश में आने से पूर्व विद्यमान रहता है। संसार के परिवर्तनशील क्रम निरन्तर रहने वाले ऋत की ही भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियां हैं। इसलिए ऋत को सबका जनक कहा गया है। "मरुद्-गण ऋत के दूरस्थ स्थान से निकलते हैं। (ऋ० ४/२१/३) "विष्णु ऋत की अविकसित अवस्था का नाम है (१/१५६/३) "द्युलोक और पृथ्वी भी ऋत के ही कारण द्युलोक और पृथ्वी कहलाते हैं। (१०/१२१/१)" अपरिवर्तनीय सत्ता के रहस्यपूर्ण भाव के चिन्ह सबसे पूर्व यहीं दिखाई देते हैं। यथार्थ सत्ता अपरिवर्तनीय कानून है। जो दिखाई देता है वह अस्थाई प्रदर्शन है, एक अपूर्ण नकल है। यथार्थसत्ता वह है जिसमें विभाग अथवा परिवर्तन नही है जबकि अन्य सब परिवर्तनशील और नश्वर हैं। शीघ्र ही विश्व की यह व्यवस्था एक परम

आगे चलकर कुछ विद्वानों को यह अच्छा न लगा और उन्होने कहा कि जिससे जगत की व्यवस्था होती है - वह एक सर्वव्यापी मौन, निरीह चेतना (ब्रह्म) है जो इच्छारहित सत्ता मात्र है। वह कुछ इच्छापूर्वक करती नही; किंतु इसके सम्पर्क से सब कुछ होता है। आगे चलकर यह बात भी लोगों को खटकी और उन लोगों ने कहा कि वह जो सर्वव्यापी चेतना (ब्रह्म) है, इच्छा करती है, करुणा करती और उद्देश्यपूर्वक जगत बनाती है। क्या उद्देश्य है ? समझ पाना कठिन है; परन्तु वह अवतार नही धारण करती। यह भी लोगो को खटका और उन्होंने कहा वह ईश्वर जगत को केवल लीला-विलास के लिए बनाता है और वह भक्तो की रक्षा तथा दुष्टों के संहार के लिए अवतार भी लेता है; परन्तु हां, वह जीवों के कर्मानुसार ही उस पर अनुग्रह और क्रोध करता है। आगे चलकर यह बात भी खटकी और बताया गया कि ईश्वर कर्म-निरपेक्ष है। उसे जीवों के कर्मो से कोई मतलब नही। वह पापी भक्तों को भी तार सकता है और सज्जन को भी दड दे सकता है। वह परम स्वतंत्र है। ईश्वर क्या जब कर्म-निरपेक्ष न हो।

इस प्रकार ऋग्वेद का ऋत जो भौतिक पदार्थो का अनादि नियम था विकसित होते-होते निरीह ईश्वर, इच्छा वाला ईश्वर, अव्यक्त ईश्वर, अवतारी ईश्वर तथा कर्म-निरपेक्ष ईश्वर बन गया। यह ऋत का ईश्वर से विकास हुआ।

अनन्त ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, सूर्य, चांद, तारागण, दिन-रात, छह ऋतुएं आदि अनादि भौतिक नियमो मे बंधे चल रहे हैं जिनका ऋग्वैदिक नाम ऋत

ईश्वर की स्थिर इच्छा के रूप में परिणित हो जाती है, जो सदाचार एवं साधुता का भी नियम है। देवता भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकते। ऋत (त्रिकालाबाधित सत्य रूपी नियम) के भाव में भौतिक से दैवीय विकास को हम देख सकते हैं। ऋत का मौलिक तात्पर्य था 'संसार, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र-गण, प्रातःकाल, सायंकाल एवं दिन और रात की गति का नियमित मार्ग।' शनैः-शनैः यह एक ऐसे सदाचार के मार्ग, जिनका अनुसरण मनुष्य को करना चाहिए और साध्वाचार के नियम के अर्थो में व्यवहृत होने लगा जिनका पालन देवताओं के लिए भी आवश्यक है। "सूर्योदय ऋत के मार्ग का अनुसरण करता है जो ठीक मार्ग है, मानो वह पहले से ही उन नियमों को जानता था। वह देशों का अतिक्रमण कभी नहीं करता। सूर्य भी ऋत के मार्ग का अनुसरण करता है (१/२४/८)" समस्त विश्व ब्रह्माण्ड ऋत पर आश्रित है और इसी के अन्दर रहकर गति करता है।"

(सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, पहलाखंड, पृष्ठ ७०-७१, संस्करण १९६९)

है। यह जगत का सच्चा समाधान करता है; परन्तु एक करुणाशील ईश्वर इन सबका कारण मानने पर जबकि वह सर्वसमर्थ है, अतिवर्षण, अवर्षण, प्राकृतिक उत्पात आदि विभिन्न पीड़ाओ में पिसते हुए जगत का समाधान नही करता। इस विषय को हम 'पारख सिद्धान्त' खंड में ईश्वर की चर्चा करते हुए देखेगे।

हम कुछ समय के लिए मान लें कि एक सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त तथा सर्व-शक्तिमान सत्ता है; परन्तु वह किसी भक्त को बच्चा बन कर आनन्द देने के लिए तथा किसी दुष्ट को मारने के लिए देह धारण करती है, यह बात बिल-कुल समझ में नहीं आती। देश की अनन्तता हमारी कल्पना मे नही आ सकती। प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १ लाख ८६ हजार मील है और ऐसे भी तारे हैं जहां से हमारी पृथ्वी तक प्रकाश आने मे अरबो वर्ष लग सकते हैं। वैज्ञानिको की खोज के अनुसार जेष्ठातारा इतना बड़ा है कि उसमें हमारी पृथ्वी जैसी सात (७) नील पृथ्वियां समा जायं। अतएव जिसकी हम कल्पना भी नही कर सकते इस अनन्त ब्रह्माण्ड के सामने हमारी पृथ्वी सूर्य की रश्मियों में घूमती हुई एक कण के समान है। और उस पृथ्वी मे हमारा भारत एक छोटी जमीन का टुकड़ा है और उसमे भी केवल उत्तरी भारत मे ही भगवान अवतार लेता है। जिसकी प्रेरणा से कल्पना मे न आने वाला अनन्त ब्रह्माण्ड अवाधगति से चल रहा हो उसको शंखासुर, मधुकैटभ, हिरण्यकश्यपु, रावण, कंस आदि विरोधियो को मारने के लिए शरीर धारण करना पड़ता हो, कैसी बाल-कल्पना है? और इतना ही नही ये अवतार भले ही विरोधियों को मार डाले हों; परन्तु इन्हे जीवन भर धन्वा-बाण और तलवार लिये लड़ना पड़ा तथा असफलता मे ही इनके जीवन बीत गये। श्री राम को अयोध्या सूनी करनी पड़ी तथा श्री कृष्ण को हस्तिनापुर (दिल्ली) और द्वारका। अजीब बात तो यह भी है कि ईश्वर शापित होकर अपने पापक्षय के लिए अवतार लेता है।

मत्स्य, कच्छप, शूकर, नृसिंह आदि माने गये अवतार तो सर्वथा काल्प-निक ही हैं, श्री राम, श्री कृष्ण एवं महात्मा बुद्ध सुधरे हुए पुरुष हैं। एक बात अनोखी है। महात्मा बुद्ध ईश्वर की सत्ता ही नहीं मानते; परन्तु भोले हिंदू उन्हें कहते हैं कि आप ईश्वर के अवतार है। एक बात अवश्य है कि यह चतुर हिंदू-पडितों की बौद्धों के लिए मिलीमार है। हिंदू-पुराण कहते हैं कि भगवान ने राक्षसो की बुद्धि[२] भ्रष्ट कर उन्हें नरक ले जाने के लिए बुद्ध अवतार लिया और वैदिक कर्मकांडों का खंडन कर राक्षसो को वेद-विरोधी बना

२. भागवत १/३/२४ तथा देखिये पीछे 'कबीर के विषय में 'कुछ विद्वानों का बह-काव तथा रहस्यवाद का होहल्ला,।

दिया, एतदर्थ उनका नरक हुआ। वस्तुतः बुद्ध का विरोध करना पंडितों को कठिन लगा। इसलिए उन्होंने बुद्ध को अवतार कह कर उन्हें पूज लिया; परन्तु उनके उपदेश मानने वाले बौद्धों को राक्षस घोषित कर उनके उपदेशों को ही निष्फल करने की चेष्टा की।

ऋग्वेद[३] के अनुसार श्री कृष्ण आर्यों के विरोधी, वन्यजातियों-आदिवासियों के नायक थे जिनसे आर्यश्रेष्ठ इन्द्र लड़ा था और उन्हें परास्त किया था। सर राधाकृष्णन लिखते हैं "इन्द्र का एक अन्यतम शत्रु ऋग्वेद के काल में कृष्ण था, जो कृष्ण नामक वन्यजातियों का देवता स्वरूप वीर नायक था। छन्द इस प्रकार है, "फुर्तीला कृष्ण अंशुमती (यमुना) के किनारे अपनी दश सहस्र सेनाओं के साथ रहता था। इन्द्र ने अपनी बुद्धि से ऊंचे स्वर से चीत्कार करने वाले इस सरदार का पता लगाया। उसने हमारे लाभ के लिए इस लूट-मार करने वाले शत्रु का विनाश किया।" सायणाचार्य ने इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है और यह कथा कृष्ण-सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अपना कुछ महत्व रखती है। परवर्ती समय के पुराणों में इन्द्र और कृष्ण के विरोध का प्रसंग पाया जाता है। यह हो सकता है कि कृष्ण जो चरवाहों की जाति का देवता है और जिसे ऋग्वेद काल में इन्द्र ने परास्त किया था, भले ही भगवत-गीता के काल में उसने अपनी खोई हुई भूमि को फिर से विजय करके प्राप्त कर लिया हो और भागवतों के वासुदेव एवं वैष्णवों के विष्णु के रूप में फिर से अत्यधिक बल प्राप्त कर लिया हो। इस विविध प्रकार उद्‌भव एवं इतिहास ने उसे 'भगवतगीता' के रचयिता एवं परब्रह्म के अवतार और यमुना के किनारे बंसी बजाने वाले ग्वाल का रूप दिया[४]।" इस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त कृष्ण

३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ॥
अव द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे॥
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः॥
(ऋग्वेद मंडल ८५, सूक्त ८५, मंत्र १३ से १६)

ऋग्वेद के जिस संस्करण में ११ सूक्त खिल्य (परिशिष्ट) रूप रहते है, उसमें यह सूक्त ९६ संख्या में पड़ता है।

४. भारतीय दर्शन, पहला खंड, पृष्ठ ७९।

का विरोध करना आर्यों ने घाटे का सौदा समझा, अतएव उन्हें अपने में मिलाकर अवतार का रूप दिया।

श्री कृष्णजी का उपर्युक्त प्रकार से ऋग्वेद में तथा घोरआंगिरस के शिष्य के रूप में छांदोग्य[५] उपनिषद् में पता चलता है। अवतार के रूप में नहीं।

ऋग्वेद में एक जगह राजा दुःशीम, पृथवान तथा वेन के साथ असुर (बली) राम की चर्चा आती है[६]। यहां श्री कृष्ण की तरह साफ नहीं है कि यह राम वही हैं जिनके विषय मे रामायण महाकाव्य बना और जो अयोध्याधीश चित्रित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त समस्त वैदिक साहित्य उपनिषद् आदि या सूत्रग्रथ में श्रीराम की चर्चा नही आयी है। ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व तक महाभारत में श्री कृष्ण को अवतार मान लिया गया था। तब तक श्री राम को केवल शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ माना गया। गीताकार ने श्री कृष्ण के मुख से कहलवाया—मै शस्त्रधारियों मे राम हू—रामः शस्त्रभृतामहम् (१०/३१)। ईसा के करीब डेढ़ सौ वर्ष पूर्व बाल्मीकीय रामायण में श्री राम चारों भाइयो को विष्णु के अंशावतार के रूप नें प्रक्षिप्त किया गया। श्री राम को पूर्ण परब्रह्म ईसा के एक हजार वर्ष बाद माना गया है[७]।

कहा जाता है जब-जब पाप बढ़ता है, अधम, अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं तब-तब भगवान उन्हे मारने तथा सज्जनो को बचाने के लिए मानव शरीर धारण करके आते है[८]। इसको कसौटी मे कसना है। सत्युग, त्रेता,

५. छांदोग्य उपनिषद् ३/१७/६।

६. प्रतद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्ररामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शमास्मयु पथा विश्राव्येषाम्॥ (ऋग्वेद १०/९३/१४)
अर्थात—जैसे सब देवता पांच सौ रथों में घोड़े जोत कर यज्ञ में जाने के लिए, मार्ग में जाते हैं, वैसे ही उनके प्रशंसा युक्त स्तोत्र का पाठ मैंने दुःशीम, पृथवान, वेन और असुर (बली) राम आदि धनपतियों के पास किया है।
असु कहते हैं प्राण को और असुर कहते हैं प्राणवान-बलवान को। पहले असुर शब्द बलवान के लिए आदरसूचक था।

७. इसके विषय में देखिये मेरा लिखा 'रामायण रहस्य' व फादर कामिल बुल्के की 'राम कथा' विश्वविद्यालय प्रकाशन इलाहाबाद।

८. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। गीता ४/७, ८।
जब जब होय धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब हरि धरि मनुज शरीरा। हरहिं महा भव संभव पीरा॥
(रामचरित मानस)

द्वापर, कलियुग—चार युग हैं। कहा जाता है कि सत्युग चारों चरण पुण्य से पूर्ण होता है। उसमें पाप होता ही नहीं। त्रेता में तीन चरण पुण्य तथा एक चरण पाप रहता है, द्वापर में आधा पाप तथा आधा पुण्य और कलियुग में तीन हिस्सा पाप तथा केवल एक हिस्सा पुण्य रहता है। इस हिसाब से सत्युग में एक भी अवतार की आवश्यकता नही है; परन्तु उसमें चार अवतार होना मानते हैं—मत्स्य, कच्छप, सूकर और नृसिंह। त्रेता में एक चरण पाप होने से एक अवतार होना चाहिए; परन्तु उसमें तीन अवतार राम, परशुराम और वामन हैं। द्वापर में चूंकि आधा-आधा पाप-पुण्य था, तो दो अवतार श्री कृष्ण और बलराम ठीक थे; परन्तु कलियुग में तीन हिस्सा पाप है, इसमें तीन अवतार चाहिए, तो यहां केवल एक कल्कि है। वह भी अभी हुए नही। वैसे यह दूसरी बात है कि कलियुग में प्रायः हर समय भारत में दर्जनो अवतार रहते हैं जैसे कि आज हैं। सनातन धर्म कहता है कि भगवान पाप बढ़ने पर अवतार लेता है और यह भी कहता है कि अवतार केवल भारत में, और उसमें आर्यावर्त (उत्तरी भारत) में ही आता है। इसका मतलब संसार की अन्य जगहों में कोई पाप नहीं होता, पाप की जगह केवल भारत और उसमें उत्तरी भारत ही है, जहां कई अवतारों की जरूरत पड़ती रहती है।

जिस शक्ति से कल्पना में न आने वाले अनन्त ब्रह्माण्ड अनादि काल से अबाध गति से चल रहे हों उसे एक तुच्छ प्राणी को मारने के लिए इस कण सदृश पृथ्वी पर देह धारण करके जीवन भर नाना कष्ट सहना पड़े, यह कितनी हास्यास्पद धारणा है। गोस्वामी तुलसीदास जी श्री राम को अवतार सिद्ध करने के लिए अपने रामचरित मानस में ऐसे-ऐसे प्रसंग जोड़ते है जिनका बाल्मीकीय रामायण में नामोनिशान नही है और विवेक से तो उनका कोई मतलब ही नही है। वे पार्वती से प्रश्न कराते हैं "हे शिव जी! मैने एक बार सीता विरह में राम को पीड़ित देखकर उन पर शंका की थी, तो उसका फल खूब पायी; परन्तु अभी भी पूरा सदेह दूर नही हुआ। यह बताओ कि आप जिसको रात-दिन जपते हैं वे राम यही अवधपति है कि और अन्य कोई है। यदि वे राजकुमार ही हैं, तो ब्रह्म कैसे और ब्रह्म है तो नारि-विरह में व्याकुल कैसे? मेरी बुद्धि भ्रमित है। मुझे समझाओ[६]।"

शिव जी से गोस्वामी जी उत्तर दिलाते है "हे पार्वती! यद्यपि तुमने अज्ञान-वश कहा है; परन्तु तुम्हारी यह बात मुझे अच्छी नही लगी कि जिन्हें वेद गाते और मुनिजन ध्यान धरते हैं वे राम कोई भिन्न हैं। वो तो जो मोह-

६. रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १०८। गीताप्रेस संस्करण।

पिशाच से ग्रस्त हैं ऐसे पाखंडी, नीच, श्री रामपद से विमुख लोग जो सत्य-झूठ नही जानते वे ही ऐसा कहते रहते हैं। जो अज्ञानी, मूर्ख, अंधे, भाग्यहीन विषयासक्त, व्यभिचारी, छली, कुटिल, संत-समाज के दर्शन से रहित, हानि-लाभ के ज्ञान से हीन, मलिन हृदय, अंधे, सगुण-निर्गुण-विवेक-रहित, मायावश, उन्मादी, भूतावेश से अभिभूत, पागल, मोह-मदिरा पीने वाले हैं ऐसे अनाड़ी लोग ही वेद-विरुद्ध मनगढ़न्त बाते करते रहते हैं। उनकी बातों पर ध्यान नही देना चाहिए[10]। दशरथसुत श्री राम ही वेदवर्णित परमात्मा हैं[11]।"

पूज्य गोस्वामी जी महाराज की उपर्युक्त भोली बाते पढ़-सुन कर उन पर दया ही आती है। जिन श्री राम के वेद, मुख्य उपनिषदे तथा वेदानुसारी छह शास्त्रों में अवतार की चर्चा की गंध भी नही है उनके अवतार होने को वे वेदसंमत होने का दावा करते है और एक परम वास्तविकता के कथन करने वाले को पाखडी, नीच, पामर, अंधा आदि दर्जनो गालिया दे डालते है, जिनकी बाल्मीकीय रामायण में कही गंध नही है।

श्री राम जी स्वयं सीता हरण, लक्ष्मण-बाण-वेध, सीता-निष्कासन आदि में दुखी होते, रोते और विलाप करते हैं तथा लक्ष्मण को जमीन पर बाण से

१०. एक बात नहिं मोहि सुहानी। यद्यपि मोहबस कहेउ भवानी ॥
तुम जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥
दोहा—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न सांच ॥११४॥
अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुं संत सभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते वेद असम्मत बानी। जिनके सूझ लाभु नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना ॥
जिनके अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिनहिं कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन सम्हारे ॥
जिन्ह कृत महा मोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिय नहिं काना ॥
११. दोहा—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोई, कहि सिवँ नायउ माथ ॥
जेहि इमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान ॥
(रामचरित मानस, बालकांड दोहा ११६-११८)

विधा देख कर कहते हैं "मेरे लिए यहीं मर जाना अच्छा है। भाई-बंधुओं में जाकर उनकी कही हुई खोटी-खरी बातें सुनना अच्छा नहीं। मैंने पूर्व जन्म में कौन-सा अपराध किया था। जिसके कारण मेरे सामने उपस्थित मेरा धर्मात्मा भाई (लक्ष्मण) मारा गया[१२]।" राजा दशरथ से दुर्वासा मुनि कहते है "राजन! सुनिये, प्राचीन काल की बात है, एक बार देवासुर-संग्राम मे देवताओं से पीड़ित हुए दैत्यों ने महर्षि भृगु की पत्नी की शरण ली। भृगु-पत्नी ने उस समय दैत्यों को अभय दिया और वे उनके आश्रम में निर्भय होकर रहने लगे। भृगु-पत्नी ने दैत्यों को आश्रय दिया है, यह देख कर कुपित हुए देवेश्वर भगवान विष्णु तीखीधार वाले चक्र से उनका सिर काट लिये। अपनी पत्नी का वध हुआ देख भार्गव वंश के प्रवर्तक भृगुजी ने सहसा कुपित हो शत्रुकुल नाशक भगवान विष्णु को शाप दिया 'जनार्दन! मेरी पत्नी वध के योग्य नहीं थी; परन्तु आपने क्रोध से मूर्छित होकर उसका वध किया है, इसलिए आपको मनुष्य लोक में जन्म लेना पड़ेगा और वहां बहुत वर्षो तक आपको पत्नी-वियोग का कष्ट सहना पड़ेगा[१३]।" यहां पर श्री राम को विष्णु का अवतार सिद्ध करने का प्रयास किया गया है; परन्तु इतना वे भी कहते हैं कि विष्णु राम बनकर अपने पाप का परिणाम भोग रहे हैं। तुलसीकृत रामचरित मानस के बालकांड में विश्वमोहिनी की कथा में नारद द्वारा विष्णु को शाप

१२. इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।
किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि॥
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः।
(बाल्मीकीय रामायण, युद्धकांड, सर्ग १०१/१९-२०)

१३. शृणु राजन् पुरा वृत्तं तदा देवासुरे युधि।
दैत्याः सुरैर्भर्त्स्यमाना भृगुपत्नीं समाश्रिताः।
तया दत्ताभयास्तत्र न्यवसन्नभयास्तदा।
तया परिगृहीतांस्तान् दृष्ट्वा क्रुद्धः सुरेश्वरः।
चक्रेण शितधारेण भृगुपत्न्याः शिरोऽहरत्।
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा पत्नीं भृगुकुलोद्वहः।
शशाप सहसा क्रुद्धो विष्णुं रिपुकुलार्दनम्।
यस्मादवध्यां मे पत्नीमवधीः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्।
(वाल्मीकीय रा० उत्तरकांड, सर्ग ५१/११-१६)

दिलाया गया है। श्री राम, श्री कृष्ण जीवनपर्यंत सुख-दुःख भोगते रहे; परन्तु यह सब लीला कहकर टाल दिया जाता है।

मथुरा, अयोध्या, काशी के गोपाल मंदिर, राम मंदिर तथा शिव मंदिर तोड़कर मस्जीदें बनीं; किंतु अवतार एवं तैंतीस कोटि देवता कुछ न कर सके। सोमनाथ का मंदिर गजनवी द्वारा जब लूटे जाने की बात आयी, तब पुरोहित-पंडित समझते थे कि जिसके भृकुटि-विलास से संसार का लय होता है उन शिव के मंदिर की रक्षा करने के लिए मनुष्य को, जो कीट सदृश है परिश्रम करने की क्या आवश्यकता, शिव जी स्वयं सबको भगा देंगे; परन्तु शिव जी कुछ न कर सके और मंदिर लूट लिया गया तथा शिवलिंग तोड़ दिया गया। अवतारवाद की धारणा ही अंधविश्वास से है, फिर इससे मिथ्या विश्वास और बढ़कर मनुष्य साहसहीन और कायर होता है। अवतारवाद की धारणा मनुष्य का मूल्य घिराती है। वह यह सिद्ध करती है कि राम, कृष्ण, बुद्ध, कबीर आदि में जो विशेषता थी वह उनके अतिमानव तथा अवतार होने के नाते है, मानव में तो ऐसी शक्ति आ ही नहीं सकती। वस्तुतः परमादरणीय महाराज श्री राम, महाराज श्री कृष्ण, महात्मा बुद्ध, सद्गुरु कबीर—सब मानव थे। "मानव से बढ़कर कौन हो सकता है[१४]।"

सर राधाकृष्णन लिखते हैं "अविकसित मानव का धर्म संसार में सर्वत्र 'अवतारवाद' के रूप में ही रहा है। हम भौतिक जगत की अस्त-व्यस्तता को मानने को तैयार नहीं है। हम भौतिक जगत को किसी-न-किसी प्रकार से समझने की कोशिश करते है और जीवन के विषय मे एक-न-एक सिद्धान्त भी स्थिर कर लेते हैं, जिसे हम निश्चित रूप से यह समझ लेते हैं कि इससे अधिक अच्छा दूसरा सिद्धान्त नहीं होगा। स्वभावतः ही हम अपने संकल्प-शक्ति रूपी साधना को आगे बढ़ाकर घटनाओं का समाधान उनके आध्यात्मिक कारणों द्वारा करते हैं। हम सब बातों की व्याख्या अपने ही स्वभाव की उपमा से करते हैं और इसलिए सब भौतिक घटनाओं की पृष्ठभूमि में भी इच्छाशक्ति का होना यथार्थ रूप में मान लेते हैं[१५]।"

सद्गुरु कबीर कहते हैं "दशरथ सुत को सभी लोग अवश्य राम कहते हैं; परन्तु आध्यात्मिक ढंग से जिसे हम राम कह सकते है उसका भेद कुछ

१४. गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि। न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्॥

(महाभारत, शांतिपर्व २९९/२०)

अर्थात—मैं यहां एक गोपनीय बात बताता हूँ, मनुष्य से बढ़ कर कुछ नहीं।

१५. भारतीय दर्शन, पहला खण्ड, पृष्ठ ६५-६६, संस्करण १९६९।

दूसरा ही है[१६] ।" वह है "हृदय निवासी, घट-घट वासी[१७] ।" सद्गुरु विस्तार से कहते हैं "उस स्वामी की शरण लेकर शारीरिक-मानसिक एवं जन्म-मरण के दुःखों से मुक्ति लो जो पूर्णकाम, निष्काम, विवेक सम्पन्न है। उसने दशरथ कुल में अवतार नही लिया, लंकाधिपति रावण को नही मारा। न वह देवकी के गर्भ में आया और न यशोदा ने उसे अपनी गोद में खेलाया। उसने पृथ्वी पर दौड़-धूप नही की, पताल मे घुसकर बलि को भी नही छला। उसने न राजा बालि से झगड़ा किया, न हरणकश्यपु को मारा। वह न वराह बनकर पृथ्वी को अपने मुख में लिया न परशुराम बन कर क्षत्रियों का संहार किया। न वह गोवर्धन को हाथ पर धारण किया न ग्वालो के साथ जंगलो में घूमा। वह गंडकी नदी में शालिग्राम बन कर नही ढुलका और मत्स्य एवं कच्छप होकर जल में नही घूमा। वह द्वारका मे शरीर नही छोड़ा और न जगन्नाथ में अपना पिंड गड़वाया। सद्गुरु पुकार कर कहते हैं कि इस भ्रामक पथ में मत भूलो। तुम जिसको जगतकर्ता के रूप में अनुमान कर रखे हो, वह न स्थूल है और न सूक्ष्म[१८] ।"

४६

ब्रह्म

अद्वैत वेदांत कहता है कि जैसे घट और मृतका एक है, जल और तरंग एक है तथा स्वर्ण और भूषण एक है, वैसे ब्रह्म और जगत एक है। बर्फ और पानी एक ही वस्तु है, इसी प्रकार ब्रह्म और जगत एक ही वस्तु है। कहना न होगा यह अद्वैत ब्रह्मवाद भौतिकवाद का भाई बिरादर है। जड़-चेतन का विचार छोड़कर जब सब कुछ ब्रह्म ही है, तब बंध-मोक्ष का निर्णय ही नही हो सकता। इसी से सद्गुरु कबीर ने कहा है "हे अद्वैतवादी पंडित, विचार करके समझाओ, जिससे आवागमन का अंत हो। जब सब ब्रह्म ही है, तब अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष किस दिशा में बसते हैं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण तथा ऊपर या नीचे ? जब बिना ब्रह्म के कोई स्थान ही नहीं है, तब भला नरक कहां है जिसमें नास्तिक लोग जायेंगे[१] ?"

१६. दशरथ सुत तिहुं लोकहिं जाना। राम नाम का मर्म है आना ॥
(बीजक, शब्द १०९)

१७. हृदया बसै तेहि राम न जाना। बीजक, रमैनी ४१।

१८. बीजक, रमैनी ७५। और भी देखें ८ वां शब्द।

१. बीजक, शब्द ४२।

सद्गुरु पूछते हैं "यदि जगत का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही है तो ऐ ब्रह्मवादी पंडित ! दूसरी बात क्या करते हो ? एक ही ब्रह्म में मन, बुद्धि, अहंकार और तीन प्रकार के गुण—सत, रज, तम कहां से संभव हैं जिन्हें वश में करना या जीतना है ? संसार में सुख-दुख के अनेक फल फलते हैं और वेद उनसे तरने के लिए अनेक युक्ति बतलाते हैं । बात समझ में नही आती जब एक ही ब्रह्म है तब कौन किससे तरकर कहां जायेगा ? आस्तिक-नास्तिक, वैदिक-अवैदिक, निजमत-परमत, तू और मैं एक ब्रह्म में कहां संभव है ? इस मतानुसार कौन मुक्त हुआ और कौन बंधा रहा[२] ?"

तत्त्वमसि का सादा अर्थ किया जाय तो होगा तत् (वह) त्वम् (तू) असि (है)—'वह तू है' जिसको तू खोजता है वह तू है और यह ठीक है; परन्तु इसका अर्थ भी जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक मे लगाया गया है । उद्दालक से उनके पुत्र श्वेतकेतु के लिए कहलवाया गया है "वह जो यह अणिमा है, वही यह सब है, वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतो ! वही तू है[३] ।" "जैसे मधुमक्खियों द्वारा अनेक वनस्पतियो के रस मधु बन जाने पर अलग नही किये जा सकते, जैसे नदियां समुद्र में गिरने के पश्चात अलग नही की जा सकती, जैसे वट के छोटे दाने से वट वृक्ष हो जाता है, जैसे नमक पानी में घुल कर अलग नही होता, वैसे यह आत्मा यह सब कुछ है, वही तू है 'तत्त्वमसि' श्वेतकेतो[४] !" यहां भी आत्मा के स्वरूप का शुद्ध निर्णय नही है । आत्मा सत है और वह तू है, यह तो ठीक है; परन्तु वही यह सब है 'ऐतदात्म्यम् इदम् सर्वम्' । वह आत्मा ही यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु है, चाद, सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्र—सब कुछ है, तो यह बात जंच नही सकती । मै आत्मा ही यह सब हूं इसकी प्रतीति किसी को नहीं होती । जड़ दृश्य तुम से पृथक है और ये सब दूसरी आत्मायें तेरे ही समान हैं, यह अर्थ तो ठीक लगता है; परन्तु ब्रह्मवादी यह अर्थ नही करते । वे तो यही कहते है कि तू ही सारा विश्व-ब्रह्माड है, जो मिथ्याधारणा के अतिरिक्त कुछ नही है ।

२. जो पै बीज रूप भगवान, तो पंडित का पूछो आन ॥
कहँ मन कहँ बुधि कहँ हंकार, सत रज तम गुण तीन प्रकार ॥
विष अमृत फल फलै अनेका, बहुधा वेद कहै तरबेका ॥
कहहिं कबीर तै मैं क्या जान, को धौं छूटल को अरुझान ॥
(बीजक, शब्द ६७)

३. स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदंसर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ॥
(छांदोग्य उ० ६/८/७)

४. छांदोग्य उपनिषद् ६/८-१६ ।

सद्गुरु कबीर उपर्युक्त जड़-चेतन-अभिन्न अर्थ वाले तत्त्वमसि की आलोचना करते हुए कहते हैं "इन ब्रह्मवादियों के तत्त्वमसि के उपदेश है और इसी का संदेश उपनिषदें कहती हैं[५]। 'जड़-चेतन सब एक ही आत्मा है' इसका इन्हें बड़ा भारी निश्चय है और इसी का व्याख्यान ये अपने जिज्ञासुओं को देते हैं। 'जड़-चेतन एवं विविधता की अभिन्नता ही परमसत्ता है' इसको ये अपना प्रामाणिक सिद्धान्त मानते हैं। सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, नारद और शुकदेव[६] के मुख से इसी का व्याख्यान कराया गया है। इसी अद्वैत ब्रह्मवाद को लेकर याज्ञवल्क्य[७] और जनक का संवाद हुआ है और दत्तात्रेय जी ने इसी का रसास्वादन किया है। इसी अद्वैतवाद का श्री राम और उनके गुरु वसिष्ठ ने मिलकर योगवासिष्ठ में गायन किया है। इसी बात को श्री कृष्ण जी ने श्रीमद्भागवत में उद्धव को समझाया है[८]।"

'तत्त्वमसि इनके उपदेशा' यह ब्रह्मवादियों पर व्यंग है। इस रमैनी का अर्थ विधिपरक लगाने की चेष्टा एक दुस्साहस है। कुछ लोगों द्वारा कहा जाता है "कबीर साहेब सनकादि, नारद, शुकदेव, याज्ञवल्क्य आदि का विरोध नहीं कर सकते, उनका खंडन नहीं कर सकते, इसलिए यह रमैनी विधिपरक ही होनी चाहिए।" ऐसा कहने वालों की विचारधारा बड़ी संकुचित है। ऐसे लोग सनकादि का विरोध नही करना चाहते, इसलिए वे चाहते है कि कबीर साहेब भी उनका विरोध न करें; परन्तु जो तथ्य है उसको झुठलाया नही जा सकता। उन्होंने साफ विरोध किया है, उसको छिपाया नही जा सकता। बीजक भर में माते शब्द खंडनपरक है और कबीर साहेब कहते हैं "गोरख, दत्तात्रेय, वसिष्ठ, व्यास, हनुमान, नारद, शुकदेव, शिव, सनकादि, अम्बरीष, याज्ञवल्क्य, जनक, जड़-भरत, शेष, ध्रुव, प्रहलाद, विभीषण, शबरी, कृष्ण, उद्धव, अक्रूर

५. तत्वमसी इनके उपदेशा। ई उपनिषद कहैं सन्देशा॥
ई निश्चय इनके बड़भारी। वाहिक वर्णन करें अधिकारी॥
परमतत्त्व का निज परमाना। सनकादिक नारद शुक माना॥
याज्ञवल्क्य औ जनक सम्बादा। दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा॥
वोहि बात राम बसिष्ठ मिलि गाई। वोहि बात कृष्ण उद्धव समुझाई॥
वोहि बात जो जनक दृढ़ाई। देह धरे विदेह कहाई॥
(बीजक, रमैनी-८)

६. छांदोग्य उपनिषद ६/८-१६।
७. वृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय ३-४।
८. श्री मद्भागवत ११/२८, १।

आदि दीवाने हुए और माते[९]।" यहां तक वे कहते हैं "इनका अद्भुत रास्ता अकथनीय है, इसमें श्री राम जैसे महान तथा साधारण संसारी सब भूले[१०]।" पुनः कहते हैं "सनकादिक भंवरे ब्रह्मवाद-मायावाद की सुगंधी में भूल गये और जगत तथा चौरासी लाख योनि को अपना स्वरूप स्वीकार कर लिये[११]।" उपर्युक्त पंक्तियों तथा उनके भावों को कोई कहां उड़ा ले जायेगा ?

ब्रह्मवाद पर विचार करते हुए सद्‌गुरु कबीर कहते हैं "ब्रह्मा हाथ जोड़े सिर झुकाकर अपनी माता से पूछने लगे 'हे माता ! मुझे समझाकर बताओ कि वह पुरुष किस वर्ण का है ?' माता ने कहा 'उसके रेख-रूप नहीं है, वह अशरीरी है। उस विदेह स्वरूप ब्रह्म को, ब्रह्माण्ड मे ध्यान धारण करके देखो।' फिर तो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—तीनों वज्रकिवार लगाकर ब्रह्माण्ड में ध्यान धारण किये और अपनी मनः-कल्पना की परिछाईं देखकर तीनों खुश हो गये। इनको जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हुआ तब इनका मन शीतल हो गया; परन्तु जिस आग से संसार जल रहा है क्या वह पानी के समान शीतल हो सकता है ? फलतः जिस मूल स्वस्वरूप से जीव का अपना नाता है वह भूल गया और चौरासी चक्कर ससार को अपना स्वरूप मान लिया तथा कुछ-का-कुछ कहने लगा[१२]।" 'ये मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान' यह जड़चेतन मिश्रित ब्रह्मज्ञान पर व्यंग्य है। इसके पहले ही तर्क किया गया

९. बीजक, शब्द १२, बसंत १०।

१०. अद्‌बुद पंथ बरणि नहिं जाई। भूले राम भूले दुनियाई ॥

(बीजक, रमैनी १८)

११. सनकादिक भूले भँवर बोय। लख चौरासी जोइनि जोय ॥

(बीजक, बसंत १)

१२. ब्रह्मा पूछै जननि से, कर जोरे सीस नवाय।
कौन वर्ण वह पुरुष है, माता कहु समुझाय ॥
रेख रूप वै है नहीं, अधर धरी नहिं देह।
गगन मंडल के बीच में, निरखो पुरुष बिदेह ॥
धरे ध्यान गगन के माहीं, लाये बज्र किवाँर।
देखि प्रतिमा आपनी, तीनिउँ भये निहाल ॥
ये मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्मज्ञान।
जेहि बसन्दर जग जरै, सो पुनि उदक समान ॥
जासो नाता आदि का, बिसरि गया सो ठौर।
चौरासी के बसि परे, कहै और की और ॥

(बीजक, साखी ३४६-३५०)

है कि 'देखि प्रतिमा आपनी'। इन सबका स्पष्टीकरण अंत में है 'जासो नाता आदि का······'। इत्यादि।

जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्मवाद की आपातरमणीयता का दिग्दर्शन कराते हुए सद्गुरु कबीर कहते हैं "मैं जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक ब्रह्म हूं, यह जो पहले अहकार किया वह बारहबान (उत्तम सोना-जैसा) लगा; परन्तु जब उसे परख की कसौटी पर कसा गया, तव वह अंततः पीतल (खोटा) ठहरा[१३]।"

"ऐ संतो! जगत में ऐसी भूल है जिससे जीव मिथ्या में जाता है। पहले वे भूले जो अपने आप को जड़-चेतन-अभिन्न सर्वत्र व्याप्त अखंड ब्रह्म माने, क्योंकि वे अपनी मान्यता की परिछाईं में छले गये। इस धोखे मे पड़कर उन्होंने 'एकोऽहम् बहुस्याम् प्रजायेय' की इच्छा की। अर्थात यह भ्रमधारणा कर ली कि मेरे से ही यह संसार पैदा हुआ है। फिर तो विश्व अभिमानी बनकर अपने आप को सबका कर्ता माना और नाना ग्रंथों की रचना की। इनके जड़-चेतन मिश्रित ज्ञान के चक्कर में पड़कर सारा संसार भूला; किंतु लोग यह रहस्य नहीं जान सके कि हम भूल में हैं। लख चौरासी अपना स्वरूप मानना तथा अपने आप को जगत का उपादान कारण मानना यह भूल से ही है। यह सनातन जीव अपने स्वरूप को भूला है और वही भूल उसे आज तक भटका रही है। यह भूल तब मिटेगी जब पारखी गुरु मिलेंगे और वे पारख (परीक्षा दृष्टि) दे देंगे। सद्गुरु कबीर कहते है सबके लिए भूल की औषध पारख ही है[१४]।"

१३. प्रथम एक जो हौं किया, भया सो बारहबान।
कसत कसौटी ना टिका, पीतर भया निदान॥ बीजक, साखी २५०॥

१४. संतो ऐसी भूल जग माहीं, जाते जीव मिथ्या में जाहीं॥
पहिले भूले ब्रह्म अखंडित, झांई आपुहि मानी।
झांई में भूलत इच्छा कीन्हीं, इच्छा ते अभिमानी॥
अभिमानी कर्ता होय बैठ, नाना ग्रंथ चलाया।
वही भूल में सब जग भूला, भूल का मर्म न पाया॥
लख चौरासी भूल ते कहिये, भूलते जग बिटमाया।
जो है सनात .ई भूला, अब सो भूलहि ·· खाया॥
भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई॥
(बीजक, शब्द ११५)

'वृहत्वाद् ब्रह्म' जो बड़ा हो उसे ब्रह्म कहते हैं। जीव ही सबका कल्पक द्रष्टा एवं मता होने से वही बड़ा है। ब्रह्मवादी भी कहते हैं 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपरा:' जीव ब्रह्म ही है, दूसरा नही और यह बात ठीक है; परन्तु जब वे उसे अग-जग व्यापक जड़-चेतन-अभिन्न बताने लगते हैं, तब विवेकवान को उससे हटना पड़ता है। इस क्रम में तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धांत' का 'अद्वैत ब्रह्मवाद' संदर्भ देखें।

४७
विचारों का विरोध सनातन

कबीर साहेब द्वारा उपर्युक्त सनकादि महापुरुषों का विरोध करना कोई भयंकर बात नही है। यहां विरोध का भी अर्थ समझ लेना चाहिए। विरोध केवल किसी अंश में विचारों का होता है, न कि किसी के पूरे व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का। यहां न भारतीयता के विनाश का और न पूर्व पुरुषो के विषय मे श्रद्धा के विध्वंस का ही अर्थ करना चाहिए। विचारों के अतर को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना होनी है, इससे आत्मीयता नही लूट जाती। खुद सनातनी वैदिक परम्परा में ही देखे तो कबीर साहेब से कही अधिक खतरनाक आलोचक तथा आलोचनाये हैं। जिस वेद की दोहाई देते हम नही अघाते, उस वेद में सर्वत्र इंद्र ही सर्वोपरि देवता है और वही पूरे वैदिक ऋषियों पर छाया है; परन्तु उस परम वैदिक देव इंद्र को गोस्वामी तुलसीदास जैसे कट्टर सनातन-धर्मी कहलाने वाले संत ने सूखी हड्डी लेकर भागने वाला कुत्ता[1] कहा है। शंकराचार्य ने कहा 'कपिल की सिद्धि सापेक्ष-अधूरी थी[2]।' उन्होने बुद्ध को "असबद्ध प्रलाप करने वाला, प्रजा में विद्वेष फैलाने वाला, उन्हे विमोहित करने वाला[3]" कुपथगामी तो कहा ही है। शकराचार्य ने और कहा "मोक्ष योग-सांख्यादि से नही[4]।" महादेव द्वारा शंकराचार्य को कहलवाया गया है

१. सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥
(रामचरित मानस, बालकांड, दोहा १२५)

२. सिद्धेरपि सापेक्षत्वात् ॥ ब्रह्मसूत्र, भाष्य २/१/१ ॥

३. असम्बद्धप्रलापित्वं विद्वेषो वा प्रजासु विरुद्धार्थ-प्रतिपत्त्या, विमुह्येयुरिमाः प्रजाः इति। (ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य)

४. न योगेन न सांख्येन ॥ विवेक चूड़ामणि ५८ ॥

"वादरायण ने सम्पूर्ण वेदों का मंथन करके ब्रह्मसूत्र रचा है, जिसमें वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, जैन आदि वेद-विरोधी दुष्ट मतों का समूल खंडन किया गया है[५]।" शंकराचार्य पांचरात्र वैष्णवों को भी अवैदिक कहते ही हैं[६]। तो वैष्णव नारायण ने मध्वविजय में शंकराचार्य को दैत्य का अवतार बताया है[७]। प्रसिद्ध वेदांती श्री हर्ष ने न्याय-दर्शनकार महर्षि गौतम को पक्का बैल कहा है "मुक्त जीवों को अचेतन पत्थरवत बताकर शास्त्र रचने वाले गौतम अपने नाम के अनुसार ही तम से पूर्ण पक्के बैल थे[८]।" वैष्णव, वेदांती, आर्यसमाजी आदि वैदिक कहे जाने वाले मतावलंबियों में ऐसे अनेक प्रमाण भरे हैं जो कटुतर है। उनका यहां अधिक संकलन निष्प्रयोजन है।

उपर्युक्त वैदिक कहे जाने वाले महापुरुषों के समान सद्गुरु कबीर न किसी को दैत्य का अवतार कहते हैं और न नास्तिक। कबीर साहेब निर्मल हृदय के संत थे। उनका द्वेष तो किसी से था ही नहीं; किन्तु उन्होने देखा कि लोग या तो परमतत्त्व को अपने से बाहर खोज रहे हैं जो मिथ्या भ्रम है या अपने आप को अग-जग पूर्ण, जड़-चेतन अभिन्न अद्वैत मान रहे हैं, जो सर्वथा मिथ्या धारणा है। अतएव वे जिनको ऐसा पाते हैं उन सबको कहते है कि ये लोग कल्पना, भ्रम एवं मिथ्याधारणा में मतवाले हैं। यह कोई व्यक्तिगत विरोध नहीं, किन्तु विचारो का आंशिक विरोध है। इससे उन पूर्व पुरुषों के प्रति आस्था में कोई अंतर नहीं पड़ता। सनकादि, राम, कृष्ण तथा व्यास-वसिष्ठ सब हमारे आदरणीय, पूज्य एवं श्रद्धेय हैं; किन्तु सत्यासत्य निर्णय करने के लिए स्वतंत्रता बरतनी ही पड़ेगी।

४८

जीव

सद्गुरु कबीर जहां अपने ग्रंथ का नामकरण करते हैं वहां जीव ही अपना प्रतिपाद्य सिद्धान्त रखते हैं। वे कहते हैं "जैसे धनी लोगों का लिखा

५. संविभज्य सकलश्रुतिजालं ब्रह्मसूत्रमकरोदनुशिष्टः। यत्र काणभुजसांख्यपुरोगाण्युद्धृतानि कुमतानि समूलम्॥ शंकर दिग्विजय (माध्वाचार्य) ६/४६॥

६. शारीरिक भाष्य २/२/४२-४५॥

७. इसी अध्याय में देखें 'नास्तिक कौन ?'

८. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचेसचेतसाम्। गोतमं तमवेत्येव यथा वित्थ तथैव सः॥ नैषध १७/७५॥

बीजक (सांकेतिक शब्दों में अंकित धन का प्रमाण पत्र) गडे हुए गुप्त धन को बतलाता है, इसी प्रकार मेरे बीजक के शब्द हृदय-गुहा में स्थित अविनाशी जीव रूपी धन को बतलाते हैं; परन्तु इसे कोई बिरला ही समझेगा[1] ।" "लोग अमृतवस्तु नहीं समझते, किन्तु भास-दृश्य में मग्न हो रहे हैं। वस्तुतः जीव निष्काम तथा अविनाशी है और यही अमृत है[2] ।" अतएव "यदि तुम अपने जीव स्वरूप को समझते हो, तो उसका स्वागत करो—अपने आपका उद्धार करो। जीव इस शरीर में पहुना रूप में आया है, दुबारा शीघ्र आना कठिन है। यदि जगत में जीने की कला जानते हो और जीव को अपना स्वरूप समझते हो, तो हृदय की वासनाओं का शमन करो तथा अन्य वासनायें ग्रहण न करो[3] ।" जीव के विषय में आगे तीसरे अध्याय के 'जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन अस्तित्व' का मनन करें।

४६

पारख

सत्य और असत्य समझने की शक्ति को 'परख' कहते हैं। इसका दूसरा नाम है ज्ञान। इसी को कहते हैं 'पारख'। सद्‌गुरु कबीर किसी ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते न किसी महापुरुष को ही। वे परख को ही प्रमाण मानते हैं। अर्थात वे हमें राय देते हैं कि तुम हर बात को परख की कसौटी पर कसो और जो खरी उतरे उसे मानो तथा जो खोटी ठहरे उसे छोड़ो। वे कहते हैं कि

१. बीजक बित्त बतावै, जो बित गुप्ता होय।
ऐसे शब्द बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥
(बीजक, रमैनी, साखी ३७)

२. अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भया सब लोय।
कहहिं कबीर कामों नहीं, जीवहिं मरण न होय॥
(बीजक, रमैनी, साखी १०)

३. जो जानहु जीव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार॥
जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव।
पानि पचावहु आपना, तो पानी माँगि न पीव॥
(बीजक, साखी १०, ११)

हो सकता है तुम्हारे परखने में त्रुटि हो। अतएव तुम, विवेकवान संत पुरुषों से मिलकर सत्संग द्वारा परखने-परखाने की चेष्टा करो। क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि "जिसे हम सत्य समझते हैं, उसे विवेकी पुरुषों से परखाने पर वह खोटी सिद्ध होती है[१]।"

ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द आदि कई प्रमाण होते है; परन्तु सब पर परख की आवश्यकता होती है। कभी-कभी हम प्रत्यक्ष बातों मे भी धोखा खा जाते हैं। हम इस पर तीसरे अध्याय के 'प्रमाण' संदर्भ मे विचार करेंगे। सार यह है कि सत्य-असत्य को ठीक से समझने के लिए परख एवं पारख की महान आवश्यकता है। जीव का स्वरूप ही परख, पारख अर्थात ज्ञान है; परन्तु अनादिकाल से उसके ऊपर विषयासक्ति की काई लगी है। धीरे-धीरे परख द्वारा वह काई हटती है और जितनी काई दूर होती है उतनी परख दृष्टि तीव्र होती है। दर्पण ठीक है; परन्तु उस पर मैल जम गया है। उसके क्रमशः दूर होने पर उसमें चेहरा साफ दिखेगा। इसी प्रकार आंतरिक परखशक्ति प्रयास द्वारा मलरहित उद्घाटित हो जाती है और फिर उसके प्रकाश में हम सत्यासत्य को ठीक से समझ सकते हैं। सद्गुरु कहते हैं "अविवेकी, बुद्धिहीन लोग अंधे हैं वे साहु और चोर को नहीं पहिचान पाते। पारख न होने से ही यह अधःपतन है। अतएव परखो और विवेक करके जड़-दृश्यवर्ग से अपने आप चेतन स्वरूप को पृथक करो। वस्तु तो कही अलग है और खोजते हैं अलग, फिर वह कैसे हाथ लगेगी ? अतएव वही सज्जन प्रशंसनीय है, जो अपने पास पारख रखता है, केवल शब्द प्रमाण में नही भागता[२]।" सद्गुरु कहते हैं "सबकी गांठ में रत्न है, सबका अपना चेतन स्वरूप जीव ही परमदेव है; परन्तु लोग भेद नही जानते। जिसको परख होती है वह पा लेता है; परन्तु यदि मनुष्य ऐसे सुनहले अवसर को खो देगा तो फिर उसे रत्न न मिलेगा। अपने आप की परख करने का यही सुन्दर समय है[३]।"

१. परखत खरी, परखावत खोटी ॥ बीजक, रमैनी ७९ ॥

२. साहु चोर चीन्हें नहीं, अंधा मति का हीन।
पारख बिना विनाश है, कर विचार होहु भीन ॥
बस्तू अन्तै खोजै अन्तै, क्यों कर आवै हाथ।
सज्जन सोई सराहिये, जो पारख राखै साथ ॥ (बी०, साखी १५९, २४६)

३. गाँठी रतन मर्म नहिं जाने, पारख लीन्हा छोरी हो।
कहहिं कबीर यह अवसर बीते, रतन न मिले बहोरी हो ॥
(बीजक, कहरा ६)

"बिना पारख के, अर्थात निष्पक्ष होकर छानबीन किये बिना सत्य-असत्य का परिचय नहीं हो सकता। और बिना पारखी संतों का सत्संग किये पारख मिल नहीं सकता। वही ज्ञानी संत है जो सत्य-असत्य का पारख प्राप्त कर संदेह रहित निर्भय हो गया है[४]।" धर्म और अध्यात्म के नाम पर संसार में काफी असत्य बातों का प्रचार है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह जो सुने, उसी बात को लेकर न दौड़े। उसे ठीक से गम्भीरता पूर्वक विचारे। मौन होकर दीर्घकाल तक परखने से सत्य और असत्य का पता चल जायेगा। सद्‌गुरु बतलाते हैं "जीभ को बन्द रखो, वाक्य संयम की महान आवश्यकता है, अतएव बहुत बोलना छोड़ दो और पारखी विवेकी की संगत करो और गुरुमुख (निर्णय) वाणियों का विचार करो[५]।"

स्वरूप-भूल अर्थात अपने आप का अज्ञान एक महाव्याधि है जिससे सब जीव पीड़ित होकर भटक रहे हैं। इसकी निवृत्ति के लिए पारख ही परम औषध और पारखी गुरु परम वैद्य हैं। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं "अविद्या रोग तब मिटेगा जब पारखी गुरु मिल जायेंगे और वे तुम्हे पारख-बोध दे देंगे। हे भाई! अज्ञान-रोग की निवृत्ति हेतु, सबके लिए 'पारख' ही औषध है[६]।"

५०

स्वरूप-भूल और स्वतः जागरण

जीव को भटकाने तथा तारने वाला कोई दूसरा नही है। उसका अपना अज्ञान, अपनी भूलें, अपनी त्रुटियां तथा उसकी अपनी गलत आदतें उसे भटकाती हैं और उसके ज्ञान, विवेक तथा शुभगुण उसे तारते हैं। बाहरी प्राणी-पदार्थो के कुसंग-सुसंग उनमें अवश्य सहायक होते हैं; परन्तु कोई आकाशीय दैत्य या देवता उसे भटकाने या तारने वाला नही है। जीव स्वयं

४. पारख बिन परचै नहीं, बिन सत्संग न जान।
दुबिधा तजि निर्भय रहे, सोई सन्त सुजान॥ (बीजक, पाठफल ६)

५. जिभ्या केरे बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार॥ (बीजक, साखी ८२)

६. भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी, पारख देहिं लखाई।
कहहिं कबीर भूल की औषध, पारख सबकी भाई॥
(बीजक, शब्द ११५)

अपने आप को भूल कर भटक रहा है। सद्गुरु कबीर कहते हैं "यह जीव स्वयं अपने आप को भूल बैठा है। जैसे कुत्ता कांच के मन्दिर में अपने प्रतिबिंब को अपना प्रतिद्वन्द्वी कुत्ता मानकर भ्रमवश भूकते-भूकते मर गया, वैसे हम अपनी मान्यताओं के प्रतिबिंब में रात-दिन छले जा रहे हैं और अपने से पृथक कुछ मानकर भूक-भूक कर मरते हैं। जैसे सिंह ने कूएं के जल में अपना प्रतिबिंब देखकर तथा उसे अपना बैरी मानकर उससे लड़ने के लिए कूएं में कूद कर अपनी जान खो दी; वैसे ही जीव अपने ही अहंकार से अपनी मनोभावनाओं के अनुसार दूसरों में राग-द्वेष आरोपित कर कलह के कूएं में गिरता है। जैसे हाथी स्फटिक शिला में अपने प्रतिबिंब को अपना शत्रु मानकर और उसमे सिर मार-मार कर मर गया; वैसे मनुष्य अपनी मान्यताओ की परिछाईं को सत्य मान कर उसमें उलझ कर अपने आप को पतित करता है। बन्दर सुराही में रखे हुए चने को मुट्ठी में पकड़ कर निकालना चाहता है; परन्तु मुट्ठी फंस जाने से नहीं निकलती और चने के लोभ से वह मुट्ठी खोलता नहीं, फलतः कलंदर उसे पकड़ लेता है और घर-घर नचाता है, इसी प्रकार जीव ने विषयों को कस कर पकड़ रखा है। वह न उसे छोड़ता है और न बंधनों से छूटता है और इसके परिणाम में वह नाना योनियो में नाचता है। इसी प्रकार सुग्गा लाल मिर्ची लगी हुई चरखी पर बैठता है मिर्ची खाने के लिए। चरखी घूम जाती है और सुग्गा उसे कस कर पकड़ कर नीचे लटक जाता है। वह समझता है मुझे चरखी ने पकड़ लिया है और वह लाल मिर्ची खाने के लोभ तथा भ्रम-वश पकड़ कर पिंजड़े में डाल दिया जाता है; वैसे यह जीव विषयों के लोभ-वश सांसारिकता को पकड़ता है और जब वह उसमे दुःख पाते हुए भी उसे आसक्ति-वश छोड़ नहीं पाता, तब समझता है कि सासारिकता ने ही मुझे पकड़ रखा है और वह अच्छी तरह माया में उलझ जाता है। हे सुग्गे ! तेरे को किसने पकड़ रखा है ? तू ही लोभवश चरखी को पकड़ रखा है। तद्वत हे मानव ! तेरे को कोई दूसरे ने बन्धन में नही डाला है। तू स्वयं लोभ-मोह और भ्रमवश अपने को विषयों तथा संसार में उलझा रखा है[1]।"

१. आपन पौ आपुहि बिसर्यो ॥
जैसे स्वान काँच मन्दिर में, भरमित भूकि मर्यो ॥
ज्यों केहरि बपु निरखि कूपजल, प्रतिमा देखि पर्यो ॥
वसे ही गज फटिक शिला में, दशनन आनि अर्यो ॥
मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहुरे, घर-घर रटत फिर्यो ॥
कहँहि कबीर ललनी के सुवना, तोहि कौने पकर्यो ॥
(बीजक, शब्द ७६)

सद्गुरु-कृपा और सन्तों की संगत का आधार लेकर अंततः मनुष्य को अपनी आंखें स्वय खोलना पड़ेगा। तुम्हें अपने मन का बन्धन स्वयं तोड़ना होगा और अपने बाहुबल का भरोसा कर संसार-सागर को लांघना पड़ेगा। सद्गुरु कबीर कहते हैं "अपने बाहुबल का भरोसा करो, दूसरे की आशा छोड़ दो। जिसके आंगन में नदी बहती हो, वह प्यासा क्यों मरे[२]।" तू स्वयं अपने आपका स्वामी है, मैं दृढ़ होकर कह रहा हूं, अब तू मन के युद्ध में सम्हल जा[३]! सब प्रकार से अपने पुरुषार्थ का भरोसा करो, और जिसकी आशा पर पैर पसार कर सोना चाहते हो उस हरि का भेद तो कोई नही जाना[४]। तुम अपने ज्ञान गुणयुत स्वरूप को अवगुणयुत—अल्पज्ञ, किंचिज्ञ, प्रतिबिंब, अंश, परवश आदि कहते हो और यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि तुम उस पर विचार नहीं करते[५]।

अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह अपने महत्त्व को समझे। मनुष्य स्वयं अपनी भूल तथा दुराचरण से अपने को डुबाता है तथा स्वरूपज्ञान और सदाचरण से अपने को उठाता है। उसे चाहिए कि वह सत्संग द्वारा स्वस्वरूप को समझ कर अपने आपको भव-बन्धनों से छुड़ाये। मनुष्य का अपना वास्तविक चेतन स्वरूप परम शक्तिसम्पन्न है। यदि वह अपने आप में पूर्णरूपेण जग जाय तो इसी जीवन में तत्काल कृतार्थ हो जाय।

५१

मैं कौन हूं तथा मेरी स्थिति क्या है ?

मैं कौन हूँ यह सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। बिरले लोग इस प्रश्न को मन में उठाते तथा इसका समाधान ढूढते हैं। मनुष्य संसार की सारी चीजों को जानने का प्रयास करता है; परन्तु स्वयं को जानने का प्रयास नही करता। स्वयं को जानना पहली बात है। दूसरी मुख्य बात है यह समझना कि मेरी स्थिति क्या है ? कबीरदेव कहते हैं "हे बन्दे तू अपने आप को अच्छी तरह

२. करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥ बी० सा० २७७ ॥

३. हो हजूर ठाढ़ कहत हौं, अब तै सम्हर सँभार ॥ बी० सा० २२० ॥

४. आपन आश कीजै बहुतेरा, काहु न मर्म पावल हरि केरा ॥ (बीजक, श० ७७)

५. अपने गुण को अवगुण कहहू। इहै अभाग जो तुम न विचारहू। (बी० र० ६५)

समझ कर अपना छुटकारा कर ले। तू शरीर रहते-रहते अपने आप को जानने का प्रयास कर और फिर अपनी स्थिति बना। यह विचार कर कि शरीर के न रहने पर तेरी क्या स्थिति होगी। शारीरिक जीवन तेरा असली जीवन नही है। शरीर के न रहने पर भी तू रहता है। सारी आपदाओं का घर शरीर है। इसका मोह छोड़कर तू अपने आप में स्थित हो, जो सदैव एकरस तथा अमृत स्वरूप है। हे जीव! यदि तू ऐसे सुनहले अवसर में सावधान नही हुआ तो अन्त में तेरा कोई नहीं होगा। मनःकल्पनाओं तथा अज्ञान का घेरा बड़ा जबर्दस्त है, उससे छुटकारा ले[1]।"

व्यक्ति का अपना मौलिक स्वरूप चेतन है, जो शरीर से सर्वथा पृथक है। अतएव जड़-शरीर में अपना स्वत्व, अपनापन न समझकर चेतन में अपना स्वत्व समझना चाहिए। बहिर्मुखता से हटकर अन्तर्मुख होने पर इसका अनुभव होता है। चेतन ही अपना स्वरूप है और स्वरूपस्थिति ही अपनी स्थिति है। यही है आत्मलाभ इससे बढ़ कर कोई लाभ नही[2]। इस क्रम में तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' का 'जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन अस्तित्त्व' सन्दर्भ देखे।

५२

पुनर्जन्म और कर्म-फल-भोग

सद्गुरु कबीर पुनर्जन्म और कर्म-फल-भोग स्वीकार करते हैं। कर्म संस्कारों का ऐसा हिंडोला है जो अनादिकाल से चल रहा है और उस पर बैठे सारे जीव जन्म-मृत्यु के चक्कर में झूल रहे हैं। "यह हिंडोला बड़ा विचित्र है। पाप-पुण्य के खंभे हैं, माया का मेरु है, लोभ का भंवरा, विषय का मरुवा, काम का कीला, शुभ और अशुभ की डांड़ी और कर्म की पटरी है। इस पर बैठकर कौन-कौन नहीं झूल रहा है। गंधर्वगण, राजा, इन्द्र, मुनिवर आदि खानी-वाणी अर्थात स्थूल-सूक्ष्म माया के मोह में पड़े सब झूल रहे हैं। यह

१. बन्दे करिले आपु निबेरा ॥१॥
आपु जियत लखु आप ठौर करु, मुये कहाँ घर तेरा ॥२॥
यह औसर नहिं चेतहु प्राणी, अन्त कोई नहिं तेरा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, कठिन काल को घेरा ॥४॥
(बीजक, शब्द ८०)

२. आत्मलाभान्न परं विद्यते। आपस्तंब धर्मसूत्र १, ७, २।

हिंडोला कभी ऊपर जाता है और कभी नीचे आता है। यह अत्यन्त भ्रमित है, जरा भी नही ठहरता। अर्थात कर्म-संस्कारों की गति ऐसी विचित्र है कि उसके वश जीव ऊंची-नीची योनियों में तत्काल चला जाता है[1]। यह जीव अज्ञान-वश नाना शरीर धारण कर जन्म-जन्म पछताता रहता है[2]।' अबकी मानव जन्म में चूक जाने से फिर, जन्मादि चक्कर में पड़कर दुख पायेगा[3]।"

किये गये कर्मो का फल सबको भोगना पड़ता है। राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, पार्वती—सबको अपने कर्मो के फल भोगने पड़े। करोड़ो युग भले बीत जायं, किन्तु अपने किये गये कर्मो के फल भोगना निश्चित है[4]। सुर, नर, मुनि और देवता तथा सात द्वीप-नौ खंडों में रहने वाले—समस्त जीवों को अपने कर्मो के फल भोगने पड़ते है[5]।" इसलिए कर्मो के सुधार पर ध्यान देना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इस क्रम में तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' के 'पुनर्जन्म तथा कर्म-फल-भोग' संदर्भ देखे।

५३
बंध-मोक्ष और ज्ञान से कर्मों का दग्ध

संसार के जीव विषय और देह ही को अपना स्वरूप मानकर मिथ्या धारणा तथा विषयासक्ति नें अपने आपको बांधते आये हैं[1]। दृश्यों में अहंकार और विषय-मोह ही तो जीवों को बांधते हैं[2]। मन का मोह ही तो माया है और जीव के लिए बन्धन है[3]। परन्तु जो सन्तों की सगत में यथार्थ स्वस्वरूप को खोजता है, वह पुनः बंधनो मे नही पड़ता। विवेकवान, अनासक्त संत पुरुष को जन्म-मरण का भय नही रह जाता। सद्गुरु कबीर कहते है कि जिसे

१. बीजक, हिंडोला १, २।
२. जन्म जन्म पछिताय। बीजक, साखी २४४।
३. जाय परे भवचक्र में······। बीजक, साखी ११३॥
४. बीजक, शब्द ११०।
५. बीजक, साखी २९५।

१. बंधवत बन्धा छोरियो न जाई। विषय स्वरूप भूलि दुनियाई॥
(बीजक, रमैनी ३३)
२. बीजक, शब्द ७६॥
३. बीजक, शब्द ५९।

सत्य स्वरूपज्ञान और सच्ची रहनी रूपी सुकृत की प्राप्ति हुई, वह पुनः संसार में नही पड़ेगा और न जन्म-मरण के झूले में पुनः झूलेगा[४]।

अज्ञान-दशा में कर्मों के बन्धन इतने प्रबल होते हैं कि वे अपना फल-भोग दिये बिना करोड़ों युगों तक क्षीण नहीं होते[५]। परन्तु ज्ञानोदय होने पर कर्म उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर तारो का प्रकाश। स्वरूपज्ञान और वैराग्यपूर्वक पूर्ण ज्ञानोदय की ही देरी है, फिर तो जीव कर्म बन्धनो से निवृत्त होकर मुक्त हो जाता है[६]।

मुक्ति की प्राप्ति देह रहते-रहते ही होती है। जो लोग यह मानते है कि जीवनपर्यन्त चाहे जैसा करता रहे, चाहे जैसा बर्तता रहे तथा जिस प्रकार उलझा रहे; परन्तु वे केवल बौद्धिक तथा शास्त्रीय ज्ञान हो जाने से शरीर छूट जाने पर मुक्त हो जायेंगे, उनकी यह धारणा केवल धोखा है। विदेहमुक्ति के लिए सदेहमुक्ति की आवश्यकता है। आज ही सारी कलह-कल्पनाओ, अहंता-ममताओं, राग-द्वेष तथा सम्पूर्ण उलझनो से छुटकारा लेकर निर्द्वन्द्व, प्रशात एव मुक्त हो जाना चाहिए। जो आज नहीं मुक्त है, वह मरने के बाद क्या मुक्त होगा। मरना कोई खास परिवर्तन नहीं है, तथ्य तो वही रहता है। जो आज बंधा है वह मर जाने पर भी बंधा है और जो आज मुक्त है वह शरीरात में भी मुक्त है[७]।

५४

काया कष्ट नहीं, वासना का त्याग

कितने लोग समझते हैं कि शरीर को कष्ट देने से पाप तथा पूर्व बुरे कर्मों का क्षय होता है। कितने लोग समझते हैं कि जब शरीर को खूब तपाया

४. साधु संगति खोजि देखहु, बहुरि न उल ः समाय।
ये झुलबे को भय नहीं, जो होय संत सुजान।
कहँहि कबीर सतसुकृत मिले, तो बहुरि न झूल आन। (बीजक, हिण्डोला १)

५. बीजक, शब्द ११०।

६. तौ लौं तारा जगमगे, जौ लौं उगे न सूर।
तौ लौं जीव कर्मवश डोलै, जौ लौं ज्ञान न पूर। (बीजक, शब्द २०५)

७. जियत न तरेहु मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै॥
(बीजक, शब्द १४)

जायगा, तब वासनायें समाप्त हो जायंगी; परन्तु यह विचार छिछिला है। हां, मनःकल्पित भोगों का त्याग करने तथा इच्छाओं को अपने वश में रखने के लिए मध्यवर्तीय तितिक्षा रखना आवश्यक है, जिस प्रकार लोग जलशयन, अग्नितापन, उर्ध्वबाहु इत्यादि की साधनायें करते हैं और शरीर को सुखाते हैं वह विवेक-विरुद्ध है। "कितने लोग घर छोड़ कर जंगल में तपस्या करने चले जाते हैं और उपवास रहकर शरीर को तपाते हैं; परन्तु जब वे भूख के मारे मरने लगते हैं और उनकी काया निर्बल होने लगती है तब विवश होकर जंगल के साधारण फल बेर आदि उठा-उठा कर खाने लगते हैं[1]।" वस्तुतः जठराग्नि को तृप्त करने के लिए इसे कुछ देना आवश्यक है। यह स्वाभाविक दशा झुठलायी नहीं जा सकती। शरीर को स्वस्थ रख कर ही कोई साधना कर सकता है। यह ठीक है कि सहजतया घी, दूध, मेवे की कोई आवश्यकता नहीं। यदि मनुष्य स्वास्थ्य के अनुकूल नियमो के अनुसार रहे, तो उसको सहज प्राप्त सस्ते और सादे भोजन से शरीर को आवश्यक पौष्टिक तत्त्व मिलते रहेंगे; परन्तु उसे संतुलित भोजन लेना ही चाहिए। भोजन ज्यादा करना तो महापाप है; परन्तु बहुत कम करना भी हितकर नही है। नित्य कुछ भूख रखकर भोजन करना चाहिए और स्वास्थ्य को बनाये रखना चाहिए।

सद्गुरु कबीर कहते हैं "तुम्हारे कल्याण के लिए मैंने भ्रम का जंगल काट दिया है। अब हे चेतन! तू समस्त वासनाओं का त्याग कर; परन्तु ध्यान रहे, शरीर को कष्ट देकर इसे सुखाना नही। शरीर सुखाने से कुछ नही होगा। यदि शरीर सुखाने से कल्याण हो जाता तो मरने पर सबका शरीर क्षीण हो जाता है और तब सबका मोक्ष हो जाना चाहिए। अतएव मोक्ष की प्राप्ति के लिए शरीर नही सुखाना है, परन्तु वासनाओं का त्याग करना है जो विवेक-वैराग्य पर निर्भर करता है[2]।"

मोक्ष शारीरिक कष्ट देना नही है; किन्तु वासना का त्याग करना है। वासना ही जीव को संसार में घसीटती है। वासना की डोरी कट जाने पर जीव मुक्त ही है। अतएव साधक का कर्तव्य है कि वह शरीर को तप के नाम पर व्यर्थ कष्ट न देकर खान-पान व्यवहार आदि मध्यवर्तीय रखते हुए वासनाओं का क्षय करे। "वही भव-बंधनों से बच सकता है जिसके मन में मोह नही समाता[3]।"

१. बीजक, साखी ५३।

२. चंदन बास निवारहू, तुझ कारण बन काटिया।
जियत जीव जनि मारहू, मुये सबै निपातिया ॥ (बीजक, साखी ३७)

३. कहहिं कबीर सो ऊबरे, जाहि न मोह समाय। (बीजक, चाचर १)

५५

साधू होना चाहिए

आध्यात्मिक चिन्तन भारत में हजारों वर्षों से होता रहा। अतएव घर-गृहस्थी का परित्याग करके विरक्ति मार्ग का अनुसरण करने वालो की यहां सदैव बहुलता रही; परन्तु दुनिया के अन्य कोनों में भी विरक्त सत होते रहे। जब व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं के न पूर्ण होने से अतृप्त रह जाता है और दुनियादारी से ऊब जाता है, तब जिनके मन मे पूर्व के दिव्य संस्कार रहते हैं वे विरक्ति मार्ग का अनुसरण करते हैं। कितने तो इतने दिव्य संस्कार के होते हैं कि इस जीवन में दुनियादारी का कोई अनुभव होने के पहले ही वैराग्य मार्ग में आ जाते हैं। जब साधक के चित्त मे होता है कि 'मै कौन हूं, जगत क्या है, मेरा दुःख निवृत्त कैसे हो, परमशांति की उपलब्धि कैसे हो?' तब वह व्याकुल होकर आध्यात्मिक गुरु की खोज करता है और उसे पाकर वह यथार्थ बोध प्राप्त करता है और वैराग्य मार्ग में बढ़ जाता है।

केवल घर वालों से ठुकराये जाकर, आर्थिक संकट से, उत्तेजना में आकर तथा देखा-देखी घर नही छोड़ना चाहिए। वैराग्य का भाव मन में उठने पर भी कुछ काल घर ही में अपने आप को साधना में मांज लेना चाहिए। सद्गुरु के पास जाकर भी शीघ्र साधु वेष नहीं धारण करना चाहिए; किन्तु ब्रह्मचारी-वेष में वर्षों रहना चाहिए और अपने को खूब पक्का कर लेने पर ही साधु-वेष धारण करना चाहिए। सद्गुरु ने साधकों को साधु-वेष मे आने का स्वीकार किया है; परन्तु पक्का होकर। वे कहते हैं "साधु होना चाहिए, परन्तु अपने आप को पक्की साधना मे कस कर। यदि कोई कच्चेपन में साधु होगा तो जैसे कच्ची सरसो पेरने पर न वह खली होती है और न तेल, वही दशा उसकी होगी। न वह इधर का रहेगा न उधर का, उसे न खुदा ही मिलेंगे न विसाले सनम[1]।"

वैराग्य और साधुता के बिना वेष धारण करने से कोई फल नहीं, प्रत्युत उल्टा ही फल होगा। सद्गुरु ने आचरण और विवेक-रहित वेष को बिलकुल मान्यता नही दी है। उन्होने कहा "विवेकी पुरुष की बंदगी और सेवा करो, वेष तो कोई भी धर सकता है, क्या लगता है कपड़ा बदलने में।

१. साधू होना चाहिये, पक्का ह्वै के खेल।
कच्चा सरसों पेरिके, खरी भया न तेल॥ बीजक, साखी २८०॥

जिसमें शब्दों का विवेक नहीं, जो संतमार्ग पर चलता नहीं, उसकी सेवा करना तो बिलकुल गलत है[२] ।"

साधु की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है । उसे चाहिए कि वह वैराग्य, सदाचार और सद्गुणो द्वारा अपने जीवन को पवित्र कर ले तथा संसार के सामने एक उत्तम आदर्श स्थापित करे । ससार के लोग साधु-संत से यही आशा करते हैं । वे साधु-संतों से शीतलता चाहते हैं । सद्गुरु कहते हैं "सोना, सज्जन और साधुजन सौ बार टूट करके भी जुड़ जाते हैं; परन्तु दुष्ट लोग कुम्हार के घड़ा के समान एक बार टूट कर पुनः जुड़ने वाले नही[३] ।"

५६

भक्ति और सद्गुरु-संत

गुरुदेव कहते हैं "देह हिलाने से भक्ति नही होती । नाचना-कूदना और अनेक प्रकार स्वांगधारण करना भक्ति नही कहला सकते । जिसके हृदय में सत्य का बोध है, वह धींगी-धींगा को अच्छा नही समझता । मुख में कुछ हो तथा हृदय में कुछ और हो, वह स्वप्न में भी स्वस्थिति को नही समझ सकता[१] । लोग भक्ति नही जानते और भक्त कहलाते है, वे अमृत को छोड़ कर विष ही ग्रहण करते है[२] । हरि की भक्ति क्या है इस बात को समझे बिना संसार के लोग डूब रहे हैं[३] । अरब-खरब तक रुपये हों तथा उदय से अस्त तक राज्य हो; परन्तु भक्ति के महत्त्व को ये नही तुल सकते, क्योंकि ये सब नाशवान है[४] ।"

आध्यात्मिक गुणों के प्रति श्रद्धा समर्पण ही भक्ति है । भक्ति मन की अटूट आस्था को कहते हैं और यह वहां होनी चाहिए जहां से प्रेरणा पाकर श्रद्धालु एवं भक्त के मन मे आध्यात्मिक जागृति आये और जीवन बदले तथा उसका कल्याण हो ।

२. कर बन्दगी विवेक की, भेष धरे सब कोय ।
सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय ॥ बीजक, साखी २९४ ॥

३. सोना सज्जन साधुजन, टूटि जुरै सौ बार ।
कुजन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार ॥ बीजक, साखी २२५ ॥

१. बीजक, रमैनी ६७ ।   २. बीजक, शब्द ३२ ।

३. बीजक, रमैनी, साखी ७४ ।   ४. बीजक, साखी २२८ ।

व्यक्ति कल्पना करता है कि 'एक ऐसा सर्व सद्गुण सम्पन्न परमानन्द स्वरूप तत्त्व है जो किसी लोक विशेष में रहता है या हमारे चारों ओर व्याप्त है।' इस भावना में तदाकार होकर वह उपासना (चिन्तन) करता है और इसी मनःप्रसूत धारणा में वह श्रद्धा समर्पण करता है। इसी को वह भक्ति का रूप देता है। निश्चय ही इससे भी साधक का मन पवित्र होता है और उसकी आंशिक आध्यात्मिक प्रगति होती है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कड़ी धूप में चलते हुए आप जोर से कल्पना करें कि 'बड़ी जोर से ठंडी लग रही है' तो क्षण मात्र के लिए शरीर में सिहरन आ जायेगी और रोंगटे खड़े हो जायेंगे। इसी प्रकार कठिन ठंडी में जोर से गरमी की कल्पना करने से एक बार शरीर में उष्मा आ जायेगी। बच्चे के हाथ में जब मां चटुआ दे देती है, तब वह उसे मुख में डाल कर चाटता है और समझता है कि इससे दूध आ रहा है और इस मनोवैज्ञानिक प्रभाव से बच्चा रोना बन्द कर देता है। इसी प्रकार हम जब अपने ऊपर किसी विशेष तत्त्व की कल्पना करते हैं तब उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव हमारे मन पर पड़ता है। इससे मानसिक संतोष मिलता है। मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा आदि में जा कर शुद्ध भाव से जो लोग उपासना करते हैं, उनको उक्त फल मिलता है। उनका मन प्रसन्न एव साफ होकर आंशिक संतोष पाता है; परन्तु यही रुक जाने से साधक को यथार्थ बोध एवं परम शांति नही मिल सकती।

अपने से पृथक किसी कितने ही उच्च तत्त्व की कल्पना कर लीजिये, उससे आप गुण-गुणी न्याय समवेत सबद्ध नहीं हो सकते। बाहर की वस्तु तो बाहर ही रहेगी। जिस परमानन्द या परमशांति को हम चाहते हैं जब तक वह हमारा अपना स्वरूप न होगा तब तक हमें निरतिशय कल्याणदशा की प्राप्ति कैसे हो सकती है? अतः जिसको हम खोज रहे हैं वह हम स्वय हैं इसका बोध होना आवश्यक है। 'कोई परम तत्त्व किसी लोक विशेष में रहता है या हमारे चारों ओर व्याप्त है' यह एक धारणा है जो मन की कल्पना से पैदा है। किंतु वह तत्त्व मैं ही हू, यह एक तथ्य है। इसीलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं "जिसको खोजते-खोजते कल्पो बीत गये, वह मूल तत्त्व तो दिल के भीतर ही तुम्हारा स्वरूप हैं। तुम्हारे भ्रमवश बाहरी वस्तुओ एवं धारणाओं में तुम्हें अहंकार हो गया, इसलिए अपना मूलतत्त्व दूर-सा हो गया[५]।" अपने

५. जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि मांहि सो मूर।
बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते परिगई दूर॥
(बीजक, साखी २८२)

आप की विस्मृति ही तो अज्ञान है और अपने आप को समझ कर, बाहर से अपने आप की ओर लौट आना ही तो ज्ञान दशा है।

विषयासक्ति के निवृत्ति पूर्वक स्वस्वरूप का स्मरण एवं स्थिति ही भक्ति है। पर की निवृत्ति तथा स्व की स्थिति ही परम आध्यात्मिक गुण है और इसके प्रति हृदय-समर्पण ही भक्ति है। सद्गुरु कहते है "यदि तू मेरी भक्ति एवं मेरी स्थिति चाहता है तो तू सबकी आशा छोड़ दे, और मेरे समान निष्काम, स्व-रूपस्थ हो जा, बस सब सुख तेरे पास है[६]।" इसको हम पराभक्ति-सर्वोच्च भक्ति कह सकते हैं, जैसे स्वामी शकराचार्य कहते हैं "स्वस्वरूप का अनुसंधान-स्मरण-स्थिति ही भक्ति है[७]।" परन्तु आर्राम्भक जिज्ञासु इस ऊंचाई पर तुरंत नही पहुच सकता। यहां तक पहुंचने के लिए क्या आधार है? उसके लिए सद्गुरु कबीर कहते हैं "हे जिज्ञासु! जो धीर, गंभीर एवं अत्यन्त निश्चल पुरुष हो, अपने कल्याण के लिए विनम्रता पूर्वक उनकी शरण मे जाओ[८]। पूर्ण स्थितिवान पुरुष की सेवा करो जिससे तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो, छिछिले से प्रेम करने से तो मूल भी जायगा[९]। जिसको सच्चा सद्गुरु नही मिला वह कल्याण के लिए व्याकुल होकर दशों दिशाओ में भटकता है। उस पगले को आंखों से नही सूझता, घर जलता है और घूर बुझाता है[१०]। अत-एव सद्गुरु की सत्योपदेश रूप कृपा तथा सतों के सत्संग का सहारा लेकर कल्याण-द्वार पर चले आओ[११]।"

निराकार की भक्ति से हमारा कल्याण नही हो सकता। जैसे निराकार दाल, भात, रोटी से पेट नही भर सकता, वैसे निराकार की धारणा हमें तृप्ति नही दे सकती। झूठे गुरु से भी काम नही हो सकता। एक अंधा दूसरे अंधे को क्या रास्ता बतायेगा? गुरु-चेले दोनों अंधे, दोनों ठेलते-ठेलते कूएं में गिरेंगे[१२]। हमें सम्यक बोध देने वाले, सभी शंकाओं का समाधान करके पूर्ण

६. जो तू चाहै मुझ को, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास।। (बीजक, साखी २९८)

७. स्वस्वरूपानुसंधानम् भक्तिरित्यभिधीयते।

८. जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल, तहँ उठि मिलहु कबीरा।।
(बीजक, शब्द २९)

९. बीजक साखी ३०९।

१०. बीजक, साखी २४५।

११. बीजक, साखी ३०४।

१२. बीजक, साखी १५३, १५४।

संतोष देने वाले सद्गुरु की आवश्यकता है और वह इतना ही न हो कि केवल बातों से संतोष दे, उसमें ऊंची रहनी भी चाहिए। उसमें ज्ञान की पूर्णता के साथ सद्गुणों का भंडार होना चाहिए। उसे राग-द्वेष से हीन, निष्काम, अनासक्त एवं दिव्यगुणों का आदर्श होना चाहिए जिससे कि शुद्ध हृदय भक्त, जिज्ञासु एवं मुमुक्षुओं के हृदय-मंदिर का वह देवता बन सके। मनुष्य में जो पूजने की भावना है वह गलत नही है। हां, वह भूल-वश गलत जगह पूजने लगता है, यह उसकी गलती है। यदि वह पूजने योग्य को पूजता है, तो निश्चित ही ऊंचे उठ जाता है। हमें ऐसा सद्गुरु मिलना चाहिए जो ज्ञान और दिव्य सद्गुणों का समुच्चय स्वरूप आदर्श हो, जिसे हम पूज सकें, अपने हृदय में जिसकी मूर्ति बैठा सकें।

न तो पत्थर की मूर्ति में भक्ति करने से बोध मिलता है और न तो निराकार-निर्गुण की उपासना से बेड़ा पार लग सकता है। मै यह नही कहता कि ये किसी के लिए भी कुछ उपयोग के नहीं हैं; परन्तु सच्चा रास्ता यही है कि हमें मनुष्य के रूप में ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु मिलना चाहिए। ठीक ही कहा है "पूज्य के प्रति अनुराग होना भक्ति है[१३]।" यदि हम सगुण और निर्गुण को भक्ति की परिभाषा करे तो कह सकते है कि ज्ञान, वैराग्य, क्षमा, शील, विचार, संतोष आदि सद्गुण सम्पन्न संत पुरुष ही सगुण भगवान हैं और उनके प्रति आत्मसमर्पण एवं श्रद्धासमर्पण सगुण-भक्ति है और सत्त्व, रजस, तमस इन तीन गुणों से रहित जो सबका अपना चेतन स्वरूप है, यही निर्गुण भगवान है। अतएव दृश्य-विषयो से लौट कर स्वस्वरूप चेतन मे स्थित हो जाना निर्गुण भक्ति है।

कुछ लोग कहते है कि मनुष्य की पूजा गलत है। मैं कहता हूं मनुष्य की पूजा न की जाय तो किसकी की जाय, पत्थर की या शून्य की? किसी पत्थर की मूर्ति की पूजा की जाती है तो वह भी एक मनुष्य की आकृति है और शून्य निराकार आदि एक धारणा है। यह ठीक है कि मनुष्य मे राक्षस और पशु भी हैं; परन्तु मनुष्य ही मे संत, सद्गुरु, देव और भगवान भी है। जनाब 'हाली' ने ठीक ही कहा है "जानवर, आदमी, फरिश्ता, खुदा—आदमी की सैकड़ो किस्में होती हैं[१४]।"

यथार्थ ज्ञान और दिव्य रहनी से सम्पन्न मनुष्य ही संत या सद्गुरु है। वे ही साधकों के भक्ति-भाजन हैं। उनकी प्रेरणा और साधक के अपने पुरुषार्थ

१३. पूज्येष्वनुरागो भक्तिः।
१४. जानवर आदमी फरिश्ता खुदा, आदमी की भी हैं सैकड़ों किस्में॥

से स्वस्वरूपस्थिति रूपी पराभक्ति की दशा प्राप्त होती है। इस क्रम में आप तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' का 'गुरुतत्त्व' संदर्भ पढ़ें।

५७
शिष्यत्व

हर मनुष्य के भीतर ज्ञान की शक्ति है; अतएव हर मनुष्य में गुरुत्व विद्यमान है; परन्तु उसके उद्घाटन के लिए बाहरी गुरु की आवश्यकता है। किसी दिशा में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय के गुरु की आवश्यकता होती है। मनुष्य को डाक्टर बनना है तो किसी योग्य डाक्टर के साथ रह कर अभ्यास करना होगा, वकील बनना है तो वकील के साथ, विद्वान बनना है तो विद्वान के साथ अभ्यास करना पड़ता है। जो लोग चोर-डाकू बनना चाहते हैं वे निपुण चोर-डाकुओं के साथ अभ्यास करते हैं। कौन ऐसी दिशा है जिसमें पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता न होती हो? जो कोई लाखों-करोड़ों में एक परम तेजस्वी पुरुष होते हैं, उन्हें भी इशारे की आवश्यकता पड़ती है; फिर साधारण साधकों के लिए तो आवश्यक है कि वह किसी समर्थ सद्गुरु की विनम्रता पूर्वक शरण लेकर अपना कल्याण करे।

मनुष्य का स्वभाव है कि उसे जहां लाभ निश्चय होता है उसके लिए उसको त्याग और पुरुषार्थ करने का साहस आ जाता है। जिन्हें काम-वासना में सुख निश्चय है वे अपने आप को किसी स्त्री या पुरुष के हाथों में बेच देते हैं और उस मार्ग में आये हुए सारे विघ्नों को सहते हैं। जिसे पैसे में सुख निश्चय है वह अपने परिवार को छोड़ कर विदेश में पैसे कमाने चला जाता है और उसके लिए नाना कठिनाइयों को प्रसन्नता पूर्वक झेलता है, इत्यादि। इसी प्रकार जिसे आत्मकल्याण निश्चय है वह उसके लिए दुःख-सुख की परवाह तजकर समर्पित हो जाता है। किसी कामी को स्त्री-प्रेम संबंधी महिमा नहीं बतानी पड़ती और स्त्री-प्रेम की ट्रेनिंग नहीं देनी पड़ती है। किसी मां को पुत्र के प्रति प्यार करने का तथा किसी भूखे को भोजन के प्रति ललक करने का अभ्यास नहीं कराना पड़ता। इसी प्रकार किसी साधक को सद्गुरु तथा साधना में प्रेम कराने की ट्रेनिंग नहीं देनी पड़ती। जिसे कल्याण निश्चय है, तो जहां से कल्याण की सक्रिय प्रेरणा मिलने वाली है उस सद्गुरु में उसकी स्वाभाविक श्रद्धा हो जाती है। 'सद्गुरु, संतों में श्रद्धा रखनी चाहिए' यह बात निरर्थक-जैसी लगती है जो शिष्यों पर जबरदस्ती थोपी हुई है। ज्ञान और

आचरण से शिथिल गुरुओं ने ऐसा डिंडिमघोष युगों से किया है कि 'गुरुओं में श्रद्धा न रखने वाले नरक में जाते हैं।' भला इस प्रकार डराने-धमकाने से किसको श्रद्धा हो जायगी ? श्रद्धा-प्रेम लाभ-निश्चय की वस्तु है। जहां मनुष्य को लाभ निश्चय होगा अपने आप वहां प्रेम एवं श्रद्धा हो जायगी।

निर्मान, निष्छल, निर्मल, बालहृदय होकर समर्थ सद्गुरु की शरणो मे अपने आप को समर्पित कर देना शिष्यत्व है। "जहां ग्रहण करने की बुद्धि है वहां अहंकार नही होता[1]।" शिष्य गर्भस्थ[2] शिशु है और सद्गुरु मा है। जैसे गर्भस्थ शिशु को अलग से कुछ खाना-पीना, सांस लेना आदि क्रियाये नही करना पड़ता, मां के खाना, पीना, सांस लेना आदि गर्भस्थ शिशु के खाना, पीना, सांस लेना हो जाते हैं, इसी प्रकार शिशुहृदय शिष्य जब मांहृदय पूर्ण गुरु को पा जाता है तब यही उत्तम शिष्य और गुरु का बानक है। फिर तो ऐसे बालहृदय शिष्य के जीवन में समर्थ सद्गुरु के ज्ञान और आचरण अपने आप उतरते जाते हैं। ऐसे शिष्य और गुरु दोनों दुर्लभ होते हैं; परन्तु गुरु-शिष्य की यही पूर्ण योग्यता है।

ज्ञान-वैराग्य से पूर्ण सद्गुरु अमृत-रस से टपकता हुआ एक व्यक्तित्व है और शिष्य उसे पीने वाला एक खुला हृदय पात्र है। शिष्य को यह उपदेश देने की आवश्यकता नहीं कि गुरु में श्रद्धा रखो, उसकी सेवा करो। शिष्य को गुरु से मिलने वाला जो लाभ है इसका उसे परिचय मिलना चाहिए, फिर तो श्रद्धा और सेवा स्वयमेव आ जायेंगी। नन्हा हो कर ही मां का दूध पिया जाता है। विनम्र बनकर ही गुरु से कुछ प्राप्त हो सकता है। आत्मसमर्पण-भाव सर्वोच्च शिष्यत्व है; परन्तु उस योग्य गुरु की भी आवश्यकता है। जैसे अधूरा शिष्य आत्मसमर्पण नहीं कर सकता, वैसे अधूरा गुरु सच्चे शिष्य को निभा नही सकता।

साधक को चाहिए कि वह पूरे सद्गुरु की खोज करे और जब उसे ऐसा मिल जाता है, तब सारे अहंकारों को छोड़ कर वह अपने आप गुरु मे मिल जाता है।

१. जहाँ गाहक तहाँ हौं नहीं ।। बीजक, साखी २८६ ।।
२. आचार्य उपनयनमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।। (वेद)
अर्थात—उपनयन (दूसरी दृष्टि-ज्ञानदृष्टि) देने के लिए आचार्य ने ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में ले लिया।

५८

वचन सुधार

हम जोश में बेहोश होकर न कहने योग्य बातें कह कर पीछे बहुत समय तक पछताते रहते हैं। हर बात कहने के पहले विचार लें तब कहे तो निश्चित है हमें पीछे पछताना न पड़े। अतएव जिसे शांति प्रिय है उसे चाहिए कि वाक्य संयम करे, विचार करके बोले। बात बोलने मे इन बातो का विचार करना अति आवश्यक है—बात सत्य हो, प्रिय हो, हितकर हो, उसका सुनने वाला पात्र हो, समय अनुकूल हो, कहने की अपनी योग्यता हो, स्वयं संतुलित हो और कही जाने वाली बात पर पूर्ण विचार कर लिया गया हो। इन सारी योग्यताओं के सहित बात करने पर बात सफल होती है और पीछे शांति मिलती है। कोई साधक उपर्युक्त योग्यताओ के बिना बात करके शांति नही पा सकता। कबीरदेव कहते हैं—

"बात किससे करना चाहिए इसका विचार रखना अति आवश्यक है, क्योंकि अपात्र से बात करके उसका तत्व नष्ट करना एवं महत्त्व घटाना है। अपात्र से बात करते जाने से विवाद-दोष बढ़ सकता है; अतएव किसी से वही बात करना चाहिए जो उसका पात्र हो और विचार के अनुकूल हो। विचारवान संत-सज्जन मिल जायं उनसे निर्णय की दो बाते कर लो और दुष्टों के मिलने पर मौन हो जाना ठीक है। पंडित एव समझदार से ही हित की बात कही जा सकती है; मूर्ख से तो झुक कर नमस्कार कर लेना चाहिए और उसके सामने मौन हो जाना चाहिए। आधा घड़ा पानी छलकता है, इसी प्रकार अधूरा आदमी आवश्यकता से अधिक बाते करता है; किंतु पूर्ण गंभीर विचारवान पुरुष विवेक पूर्वक ही बोलता है[१]। जिसके वचन मे संयम नही है और हृदय में सच्चाई नही है, उसका साथ मत करो, वह बीच रास्ते मे छोड़ देगा, गंतव्य तक नहीं पहुंचा सकता। जिसका मन चंचल है, उसकी वाणी चचल है और वह गलत बातें करके सदैव दुःख पाता है। अतः जीभ मे संयम का ताला लगाओ और बहुत बोलना छोड़ दो। पारखी-विवेकी की संगत करो, और गुरुमुख-निर्णय वचनो का विचार करो। यदि कोई बात बोलना जाने, तो बोली तो अनमोल होती है। मनुष्यको चाहिए कि हृदय तराजू पर तौलकर बात को मुख से बाहर निकाले। मीठी बातें औषध के तुल्य हैं तथा कटु बातें तीर के समान जो कान-द्वार से प्रवेश कर सारे शरीर को पीड़ा देती हैं[२]।"

१. बीजक, रमैनी ७०।

२. बीजक, साखी ८३, ८४, ८२, २७६, ३०१।

मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वह अपने और दूसरे को उद्वेग पहुंचाने वाला वचन न बोले और न ऐसी क्रिया करे। वाणी के सुधार बिना किसी को शांति नही मिल सकती। अतएव संयमपूर्वक एवं विवेकपूर्वक वचन बोलने का अभ्यास रखे। देश, काल, पात्र, योग्यता, परिणाम विचार कर बोलने से ही व्यवहार मे सफलता तथा मन में शांति आती है।

५६
अपात्र से मौन तथा निर्विवादित्व

जो उपदेश का पात्र न हो उसको उपदेश देना अपना समय नष्ट करना तथा उपदेश का महत्त्व घटाना है। कितने उपदेष्टा होते है जिनको कुछ बोले बिना रहा नहीं जाता। उनका मुख हर समय कलकलाता है। वे पात्र-अपात्र सबके सामने उपदेशों की झड़ी लगाये रखना चाहते है; परन्तु हर उपदेष्टा को यह समझ लेना चाहिए कि यदि सुनने वाले के मन मे जिज्ञासा एवं श्रद्धा नही है, तो उपदेश व्यर्थ है। सद्गुरु कबीर कहते है—

"उपदेश क्या बांटते फिरते हो, सबको अपने आप को ज्ञानी होने का अहकार है। जो उपदेश का भूखा-प्यासा होगा, वह स्वय विनम्र होकर ग्रहण करेगा। मूर्ख आदमी को उपदेश देने से वह अवहेलना करता है और इससे उपदेष्टा की शांति भंग होकर उसकी अपनी ही हानि होने लगती है और मूर्ख मनुष्य तो कोयले के समान है, सौ मन साबुन लगाने से भी वह उज्ज्वल नही हो सकता। जो मूढ़-कर्मी मनुष्य है वह तो नख से शिखा तक मानो लोह का झिल्लम पहन रखा है, उसको ज्ञानोपदेश के बाण नही लग सकते। मूर्ख से क्या बोलना तथा शठ से क्या अपना वश चलेगा, चोखा तीर पत्थर मे मारने से कोई फल नही। जैसे गुबज में गोली मारने से वह नीचे गिर जाती है वैसे मूर्ख के हृदय में ज्ञानोपदेश नहीं ठहरता। जिसके बाहर-भीतर के चारो नेत्र फूटे हैं उसको समझाने का क्या उपाय है? प्रमाद से अधे लोग निर्णय-वचन नहीं मानते। उनके तो हित की बात कहो और वे उठ कर दुश्मन बन जाते हैं। निर्जय वचन एवं ज्ञान की बाते हैं; परन्तु उनके ग्राहक जिज्ञासु कहां है? बहुत कम हैं। श्रद्धा-जिज्ञासा रूपी दाम अदा किये बिना ज्ञानोपदेश काम नही करता और आदमी किंकर्तव्यविमूढ़ होकर भटकता है। किसी की धारणा को गलत कह कर उसे दुःख मत दो। वह ऐसा कहने से तलमला जायेगा। अतएव उसे परख दो। कोई वनमुर्गे के समान दिन भर बोलने वाला बकवासी

हो तो उसे बकने दो, उसे छेड़ो मत। तुम्हें दूसरे बकवासी से क्या मतलब ? तुम अपने आप का समाधान करो। अपनी बातें कहे और मेरी बातें सुने और कह-सुन कर विचारों की एकता कर ले, ऐसे लोग संसार में कम हैं। मैं देश-विदेश में घूमा; परन्तु सर्वत्र देखा कि लोगों के मन में मिथ्या धारणाओं का ही बोलबाला है। जिस सत्पात्र को मैं खोजता फिरता हूं, उसका दुष्काल पड़ा है[1]।"

अतएव सत्पात्र को उपदेश देना तथा सर्वत्र निर्विवाद रहना साधक का काम है।

६०

कथनी-करनी की एकता

हम सोचते कुछ हैं, कहते कुछ हैं तथा करते कुछ हैं, इसलिए हमारे जीवन में न सामंजस्य एवं संतुलन है और न हमारी बातों का जिज्ञासुओं पर प्रभाव है। जो सत्य समझा जाय और कहा जाय वह किया जाय तो निश्चित ही हमारी आध्यात्मिक प्रगति हो और हम जनता को भी कुछ प्रेरणा दे सकें। हाथ से फेंकी हुई गोली यदि दूसरे को लग जाय तो थोड़ी चोट कर सकती है, जान से नहीं मार सकती; परन्तु वही गोली बन्दूक में भर कर मारी जाय तो निशाने पर वार करेगी और लगने वालों का प्राणांत करेगी। इसी प्रकार आचरणहीन व्यक्ति के उपदेश श्रोताओ पर प्रभावशाली नहीं होते और आचरणसम्पन्न पुरुष के मुख से बाते श्रोताओं पर प्रभाव डालती हैं। हम उपदेश देकर जो सद्गुण दूसरे में देखना चाहते है, वह हमारे में पहले होना चाहिए।

जो सुख आचरणों में है वह भाषण देने में नही है। आध्यात्मिक प्रगति के तीन स्तर हैं—कथनी, करनी, और रहनी। पहले ज्ञान की चर्चा होती है। यह कथनी है। इसकी बड़ी आवश्यकता है। फिर करनी होती है। पवित्र आचरण को करनी कहते हैं। इसके बिना कथनी का कोई मूल्य नही है। करनी के बाद रहनी का स्तर आता है। राग-द्वेष विहीन मन की परमशांति दशा को रहनी कहते हैं। मन का रहना, रुक जाना, ठहर जाना, स्वस्वरूप में

1. बीजक, साखी १२, १६१, १६२, १७६, १७७, १७८, १८६, ३२६, ६८, २४८, ३१५, १८५।

स्थित हो जाना—रहनी है। यही आध्यात्मिकता की सर्वोच्च स्थिति है[1]। मन का विकारहीन शांत होते जाना ही तो साधक की अपनी सफलता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

"सत्य वही समझ सकता है जिसकी कथनी और रहनी में एकता हो। जब साधक की कथनी के अनुसार करनी और रहनी भी हो जाती है, तब उसका ज्ञान चुम्बक के समान आकर्षक हो जाता है। इस चुम्बकीय ज्ञान बिना कैसे कोई मन के संग्राम में विजयी हो सकता है ? जो साधक जैसा कहता है, वैसा करता है और राग-द्वेष का त्याग करता तथा इस रहनी में अचल रहता है, वह आत्मकल्याण तथा लोककल्याण करता है। जो ज्ञान की बातें तो बघारता है; परन्तु आचरण में नहीं चलता और रहनी में नही ठहरता उसका मन वासनाओं की धारा में कैसे ठहरेगा ? ज्ञान के लम्बे-चौड़े भाषण करने वाले तो बहुत मिलते हैं; परन्तु उसके आचरण करने वाले कम मिलते है। जो आचरण न ग्रहण करे उसके भाषण का क्या महत्त्व है[2] ?" अतएव हमें कथनी के साथ करनी और रहनी धारण करना चाहिए।

६१
गुणग्राह्यता

हम अपने गांव या मुहल्ले से गदगी इकट्ठा करके अपने घर में ले आयें तो हमारा घर गंदगी से भर जायेगा और यदि हम हर जगह से सुगंधी लायें तो हमारा घर सुगंधी से भर जायेगा। हमारे आस-पास फैले जितने मनुष्य होते हैं; उन सब में गुण-दोष दोनों हैं और हमें अपने आपको भी वैसा ही मानना चाहिए। साधक को चाहिए कि पास के व्यक्तियों के दोषों पर अपनी दृष्टि न ले जाये; प्रत्युत उनके सद्गुणों को देखे। दूसरे के गुणों को देखने से अपने मन में शांति आयेगी और उनके दोषों को देखने से अशांति। हमारे आस-पास के लोग चाहे वे छोटे हो या बड़े उनमें सूक्ष्मता से देखने पर ऐसे-ऐसे अच्छे गुण मिलेंगे जो ग्रहण करने योग्य होगे। वह आदमी सौभाग्यशाली है जिसका स्वभाव गुणग्राही है। पत्थर में से सोना छीन लिया जाता है, मिट्टी में से पानी, तेल, पेट्रोल आदि अलग कर लिये जाते हैं, छिलके-बीज आदि से चावल, फल के गूदे आदि निकाल लिये जाते है, इसी प्रकार विवेकवान हर मनुष्य से केवल सद्गुण ही लेता है।

१. करनी करै सो पूत हमारा, कथनी कथ सो नाती।
रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी॥ कबीर साखी॥

२. बीजक, शब्द ७६। साखी ३१४, २५७, ७६, ८०।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी नाक में सदैव दुर्गन्धी ही आती रहती है। उनको सर्वत्र, सबमें, सब समय दुर्गुण-ही-दुर्गुण दिखते हैं। वे कहते है 'कहां आज कोई सज्जन है, कहां संत है, कहां सदाचार और प्यार है? सब तरफ दुर्गुण-दुराचार और पापियों का ही साम्राज्य है।' परन्तु ऐसे लोगों की समझ दुर्भाग्यपूर्ण है। इस विचार को रखकर कोई आस्थावाला नही हो सकता और न उसके जीवन में उन्नति हो सकती है। तथ्य यह है कि आज भी अच्छाइयां अधिक है, बुराइयां कम। आज भी अच्छे लोग खूब हैं। आज भी अच्छे सत, साधक और ज्ञानी है। हमारी दृष्टि ही पापी है जो उन्हें देख नही पाती। हम जब स्वयं दूध के धोये नही हैं, तब दूसरे को क्यों दूध का धोया देखना चाहते है और फिर दूसरा दूध का धोया नही है इसकी हमें कहां परख है। विवेकवान तो सबकी बुराइयों को छोड़ता हुआ; केवल अच्छाइयो को ले लेता है। नीतिकार ने ठीक ही कहा है "ऐसा कोई वर्ण (अक्षर) नही है जिसे किसी रचना में न प्रयुक्त किया जा सके; ऐसा कोई गुल्म, लता या पौधा नही है जिसकी औषध न बन सके और ऐसा कोई व्यक्ति अयोग्य नही है जिससे कुछ काम न लिया जा सके। हा, इनका संयोजन करने वाला दुर्लभ है[1]।" अभिप्राय यह है कि सद्गुणो की कमी नही है; किन्तु उनके ग्रहण करने वालो की कमी है। सद्गुरु कबीर ने कहा है "सद्गुणग्राही सर्वत्र सद्गुण ही ग्रहण करता है और दुर्गुणी सद्गुणों से घृणा करता है। बैल को जायफल जैसा सुगन्धित उत्तम फल दिया जाय तो वह क्या उसे समझेगा और क्या खायेगा[2]?" कोई सद्गुणी सौभाग्यशाली ही सद्गुणो का मूल्यांकन कर उन्हें ग्रहण करता है, दुर्गुणी यह काम नही कर सकता। अतएव हर कल्याणार्थी का कर्तव्य है कि वह सबसे केवल सद्गुण ले, किसी के दोषो पर ध्यान न दे।

६२
लघुता-विनम्रता

धन, शरीर, जवानी, रूप-सौदर्य, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, विद्या, बुद्धि, चतुरता, जाति-पांति — सबकाविनाश एक दिन रखा रखाया है। फिर मनुष्य किसका

१. अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥ शुक्रनीति॥

२. गुणिया तो गुण ही कहै, निर्गुणिया गुणहि घिनाय।
बैलहि दीजे जायफर, क्या बूझै क्या खाय॥ बी० साखी २६३॥

अहंकार करता है। जिन वस्तुओं का अहंकार ले कर हम दूसरे को तुच्छ समझते हैं उनका आज-कल में छिन जाना निश्चित है। जो हमारे हो नहीं सकते उन्ही का हमें अहंकार है। इससे अधिक भूल क्या होगी? हमारा यह अहंकार अनादिसेवित है, इसलिए इसमें प्रबलता हो गयी है। अहंकार ऐसी आग है जिसमें पड़कर हम हरक्षण जलते हैं।'

साधना का पथ विनम्रता का है। झुकने वाला ही ऊपर उठता है। धूल में मिली हुई चीनी को हाथी नहीं निकाल सकता; परन्तु चींटी उसे धूल से निकाल कर उसका उपयोग कर लेती है। रूप-सौदर्य-विद्या आदि से हीन होने पर भी विनयी व्यक्ति सबके हृदय में घर बना लेता है और लोगों द्वारा प्यार पाता है तथा सभी बातों में सम्पन्न होने पर भी अहंकार के कारण मनुष्य सबकी नजरों में खटकता है। व्यावहारिक और आध्यात्मिक—दोनो उन्नतियों के लिए विनयशीलता की महान आवश्यकता है। व्यापारी, एजेण्ट, वकील, डाक्टर, अध्यापक, राजनैतिक, किसान, उपदेष्टा, साधु—सभी की प्रगति के लिए विनम्रता अपेक्षित है। साधक को तो विनम्रता का स्वरूप ही होना चाहिए।

बरसात में पानी सर्वत्र बरसता है; परन्तु जहां जमीन गहरी होती है वहां पानी टिक जाता है और जितनी अधिक गहरी होती है उतना अधिक टिकता है। विनम्रता, लघुता एक गहराई है। जिसमें यह होती है उसमे सद्गुण इकट्ठे होकर भर जाते हैं। अहंकारी व्यक्ति टीले के समान है जहां पानी की बूंद भी नही टिक सकती। जिसमें विनयशीलता है वही अपने दोषो को देखकर उसके विषय में पश्चात्ताप कर सकता है और वही बड़ों या दूसरो के सामने अपनी त्रुटियों को स्वीकार कर या अपनी कमजोरियों को प्रकट कर उससे उद्धार पाने का रास्ता पा सकता है। अहंकारी व्यक्ति के चित्त में धुन्ध रहता है। उसे सत्यासत्य का ज्ञान नही होता। वह अपने आप की त्रुटियो को नहीं देख पाता, प्रत्युत दूसरे में त्रुटियो को देखता रहता है; परन्तु विनयशील व्यक्ति दूसरे के सद्गुणो को देखता है और अपनी त्रुटियो को परखता तथा होने पर स्वीकार करता है; अतएव वह उससे उद्धार पाकर कल्याण का भागी होता है।

लघुता, विनम्रता एवं शालीनता जीवन की सुगन्धी है। फलों से लदी हुई डगालियां झुक जाती हैं, तराजू का वजनदार पलड़ा नीचे हो जाता है। जिसमें सद्गुण आते हैं उसमें गम्भीरता आती है, जिसमें गम्भीरता आती है, वह झुक जाता है और झुकने वाला बड़ा माना जाता है। गुरुदेव कहते हैं "सबसे उतम गुण लघुता है; क्योकि लघुता से ही सारी उन्नतियां होती हैं और

विनम्र के आगे ही लोग झुकते हैं। जैसे दुतिया के विनम्र-दुबले चन्द्रमा के आगे लोग सिर झुकाते हैं[1]।"

६३
ब्रह्मचर्य

ब्रह्म कहते हैं बड़ा को और चर्य का अर्थ है करने योग्य आचरण; अतएव ब्रह्मचर्य का सरल अर्थ हुआ बडा आचरण। अपने मन तथा इन्द्रियों को अपने वश में रखना ही बड़ा आचरण है। संयम सुख का साधन है। सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए भी संयमशीलता की आवश्यकता है और आध्यात्मिक सुख पाने के लिए तो पूर्ण संयम की आवश्यकता है ही। कहावत सच है कि 'धन खोया तो कुछ नहीं खोया, स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया और यदि चरित्र खोया तो सब कुछ खोया।'

शरीर में वीर्य एक मूल्यवान वस्तु है, उसकी रक्षा करना प्रत्येक विवेकी का कर्तव्य है। गृहस्थ को भी केवल संतान के लिए वीर्य खोना चाहिए, शेष समय उसकी रक्षा उसे भी करना चाहिए। फिर ब्रह्मचारी, साधु एवं साधक को तो सदैव सावधान रहना चाहिए और जान-बूझ कर कभी वीर्य का ध्वंस नही होने देना चाहिए। केवल वीर्य का ध्वंस न होना ही ब्रह्मचर्य नही है; अपितु मन का निर्विषय, शुद्ध, संयत रहना अत्यन्त आवश्यक है। मन, वाणी, इन्द्रियो में विषयासक्ति का पूर्ण अभाव ही ब्रह्मचर्य है। इस स्थिति को प्राप्त हुए बिना आध्यात्मिकता की ऊंचाई पर नही पहुंचा जा सकता। विषयासक्ति रूपी गंदगी से निकले बिना कोई दिव्यता नही पा सकता। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

"जैसे कुत्ते गंदी वस्तु में खुश हैं, इसी प्रकार संसारी विषयों में डूबे हैं[1]। वे दिन-दिन विषयो में पड़े जलते हैं। उनमे इतने गड़े हैं कि जरा भी निकलने की चेष्टा नही करते। जो विषय-सेवन, विषयवार्ता आदि में ही सदैव लीन रहता है, उसके उद्धार का क्या रास्ता है? बंधनदायी कर्म करके छुटकारा कैसे होगा। केवल शास्त्रज्ञान और परोपदेश से कुछ बनने वाला नही है। इस

१. सबते लघुता भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नावे सब कोय॥ बीजक, साखी ३२३॥

१ बीजक, शब्द ५६।

प्रकार जीवन व्यर्थ चला जाता है। हे भाई ! चेतो[२]। तुम्हारे घर में ही भारी झगड़ा मचा है। पांच ज्ञानेन्द्रियां रूप पांच लड़के तथा वासना रूपी एक पत्नी—ये छहों तुम्हें हर समय परेशान करते हैं। तुम्हारी हर इंद्रिय अलग-अलग भोग चाहती है। पांचों इन्द्रिया अत्यन्त विषयासक्त हैं। ये सहमति-रहित अपनी-अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगी रहती हैं। सच्चा गुरुभक्त वही है जो वासना की प्रवलता को मिटाकर इंद्रियों को अपने वश मे कर ले[३]।" मन-इन्द्रियों को अपने वश में किये बिना सारा ज्ञान दो कौड़ी का है। जीवन में आत्यंतिक शांति एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए विषयासक्ति की पूर्ण निवृत्ति अत्यन्त अपेक्षित है।

६४

निर्लिप्तवाद गलत

बेईमानी, हरक्षेत्र में अपनी जगह बना लेती है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य जो मुमुक्षु के लिए परम साधन हैं, उनमें भी सुविधावादियो तथा लचर आचरण वालों ने बेईमानी को जगह दे दी। भक्ति, जो दिव्य संतों, दिव्य गुणो के प्रति आत्मसमर्पण एवं स्वस्वरूप की स्थिति है; उसकी परिभाषा की गयी कि अमुक नाम जप लेने, मूर्ति के दर्शन कर लेने तथा अपने आपको ईश्वरार्पण समझ लेने से उसके सारे पाप धुल जाते है। उसके द्वारा जो भी कर्म हो, उसे कोई दोष नही पड़ता। यहां तक जो भक्ति के आधार हैं राम, कृष्ण, विष्णु, शिव आदि जब विषय-सेवन करते हुए कृतार्थ थे, तो हम उनके भक्त होकर विषय-सेवन करे तो साधना में क्या बुरा है ? ईसा की याद में गिड़गिड़ा देने से सारे पाप कटते देखे जानें लगे। भगवान का नाम लेते ही पाप उसी प्रकार उड़ जाते हैं जैसे आग को देख कर पारा। यहां तक कि अंजान में भी भगवान का नाम मुख से निकल पड़े तो अजामिल की तरह उसका उद्धार हो जाता है। भगवान का भक्त दुराचारी हो तो भी तर जाता है। सांसारिक वासनाओं को भक्ति मे भी बनाये रखने के लिए ईश्वर को पति माना और स्वयं पत्नी बने। पुरुष होकर स्त्री का वेष बनाना, महीना पूरा होने पर अधोद्वार में लाल रग में डूबा हुआ कपड़ा लपेट कर रजस्वला होने का स्वांग करना, नकली संतान को जन्म देकर उसे खेलाना, स्त्रियों की तरह चमकाना-मटकाना, रास-

२. बीजक, रमैनी ५६। ३. बीजक, शब्द ३।

लीला नाम रखकर नाचना-कूदना—इन सबको कहा जाता है माधुर्य भक्ति। भक्ति के नाम पर लल्ली-लल्ला सारा दुराचार करने को तैयार रहते हैं और यह सब करते हुए वे तथाकथित भगवान के धाम में जाते हैं। सूफीमत वाले अपने को पति तथा भगवान को पत्नी मानकर उसमें अपने आप को आसक्त होने का स्वांग करते हैं।

ज्ञानमार्ग में भी शिथिल आचरण वालो ने कम धांधलेबाजी नही की। संभोग में समाधि की धारणा रखने वाले आज ही के तथाकथित ज्ञानी नही है; अपितु सदा से होते आये है। बताया गया "कृष्ण भोगी थे, शुकदेव त्यागी थे, राम एवं जनक राजा थे और वसिष्ठ कर्मी थे; परन्तु सब समान ज्ञानी थे[1]।" माधवाचार्य ने शंकरदिग्विजय में शंकराचार्य के मुख से कहलवाया है "चाहे वह सौ अश्वमेध यज्ञ करे, चाहे ब्राह्मणों की अगणित हत्या करे; परन्तु परमार्थ को जानने वाला पुरुष सुकृत या दुष्कृत से लिप्त नही होता; क्योंकि इन कार्यो के करने मे उसका कर्तृत्व भाव नष्ट हो गया रहता है। जिस प्रकार गोपियो के संग में रहने पर भी श्री कृष्णचंद्र मे किसी प्रकार की काम-वासना उत्पन्न नही हुई थी, उसी प्रकार आसक्ति रहित मनुष्य के हृदय मे काम उत्पन्न नही होता, हे वत्स, इस बज्रोली नामक योग से हमारे व्रत में किसी प्रकार की क्षति नही होगी[2]।"

स्वामी शंकराचार्य का मृतक राजा अमरूक के शरीर में प्रवेश करके उनका सौ से अधिक रानियो के साथ जो एक मास से अधिक काम-क्रीड़ा करने का वर्णन है, वह किसी कामशास्त्र को लज्जित कर देने वाला है[3]। यहां मैथुन को ब्रह्मानन्द कहा गया है। यह निर्लिप्तवाद का खुला वीभत्स रूप है। ये सब बाते गीता-भागवत से पुष्ट कर ली जाती हैं। "जिसके हृदय में अहंकार नही है और जिसकी बुद्धि लिपायमान नही होती। वह सारी दुनिया के

१. कृष्णो भोगी शुकस्त्यागी नृपौ जनक राघवौ।
वसिष्ठः कर्मकर्ता च ते सर्वे ज्ञानिनः समाः॥

२. तदयं करोतु हयमेधशतान्यमितानि विप्रहननान्यथवा।
परमार्थविन्न सुकृतैर्दुरितैरपि लिप्यतेऽस्तमितकर्तृतया॥
असङ्गिनो न प्रभवन्ति कामा हरेरिवाऽऽभीरवधूसखस्य।
वज्रोलियोगप्रतिभूः स एष वत्सावकीर्णित्वविपर्ययो नः॥
(माधवकृत शंकर दिग्विजय ६/६६, ६०)

३. माधव रचित शंकर दिग्विजय १०/११-१६। पं० बल्देव उपाध्यायकृत टीका, द्वितीय संस्करण सं० २०२४। प्रकाशक श्री श्रवणनाथ ज्ञानमन्दिर हरिद्वार।

लोगों को मार डाले तो भी उसने न किसी को मारा और न बंधा[४] ।" इसीलिए मान लिया गया कि "ज्ञानी युवती स्त्री का उपभोग करते हुए भी सदैव संन्यासी है। हे शिष्य, यह अद्भुत बात है[५] ।"

यह निर्लिप्तवाद का धोखा बड़े-बड़े ज्ञानियों में समाया है। स्वामी शंकराचार्य उपर्युक्त कृत्य किये हो या न किये हों; परन्तु इन सब से निर्लिप्त-वाद की पुष्टि की गयी है। और यह ज्ञान-मार्ग का शत्रु है। यदि ज्ञानी ही विषय-क्रिया एवं वासना में लिप्त हो तो उसका आदर्श क्या है। दूषित विषयों का सेवन करते हुए वह वासना-रहित कैसे माना जायगा। सद्गुरु कबीर निर्लिप्तवाद के कट्टर विरोधी हैं। वे कहते हैं "इनके समाज मे मत बैठो, इनके यहां बाघ, गधा और गाय एक ही खेत में चरते हैं। अर्थात इनके यहां सब धान साढ़े बाइस पसेरी है[६] । ये दीवार और स्त्री का स्पर्श करना एक समान समझते हैं, नरक और चंदन, पागल और बुद्धिमान, लपसी और लौग एक समान समझते हैं। फिर ये शकर की जगह पर धूल क्यो नही फाकते है ? इनके जड़-चेतन, भोग-योग मिलाऊ ज्ञान ने साधको की ज्ञान-शक्ति तथा साव-धानी को नष्ट कर दिया है[७] । परन्तु भला, चूहा और बिल्ली एक साथ कैसे रह सकते हैं ? सनकादिकों (त्यागियो) के साथ में माया नहीं शोभती। कारी हडी हाथ में लिये रहने से वह कहीं-न-कही अवश्य दाग लगा देगी[८] ।"

अतएव साधक को चाहिए कि वह शुद्ध जीवन निर्वाह अनासक्ति पूर्वक लेते हुए दूषित भोगों से बचे। निर्लिप्तवाद साधना-क्षेत्र की एक बेईमानी एवं पतन का पंथ है।

४. गीता १८/१७।

५. भोगै युवति सदा संन्यासी, शिष लखि यह अद्भुत संवाद।

(विचार सागर ५/१६६)

६. बीजक, साखी १५५।

७. बीजक, रमैनी ७१।

८. मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज एक देखो हो संतो, हस्ती सिंहहि खाय॥

(बीजक, रमैनी साखी ७२)

सुन्दरी न सोहै, सनकादिक के साथ।
कवहुक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ॥

(बीजक, रमैनी साखी ६९)

६५
कुसंगवर्जन और सत्संग में निवास

गलत आचरण वालो की संगत करने से अपनी बुद्धि में गलत धारणायें जमने लगती हैं और गलत बुद्धि होने से गलत आचरण करके मनुष्य नीचे जाता है। अच्छे लोग भी कुसंग करके पतित होते देखे जाते हैं। संगत का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। लोगों का मन बुराइयों का इतना अभ्यासी हो गया है कि उस पर अच्छी संगत का प्रभाव तो चाहे शीघ्र न पड़े; परन्तु बुरी संगत का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है। बड़े-बड़े ज्ञानी-तपस्वी भी कुसंग के कारण गिर जाते हैं। धूप से अधिक गरम, धूप से तपी बालुका होती है, इसी प्रकार बुराइयो से अधिक बुरा, बुराइयो में लिपटा आदमी होता है; वह समझा-बुझा कर अपने सक्रिय दुराचरणो द्वारा व्यक्ति को पतित करता है। जब आदमी रात-दिन सुनता है 'सदाचार आज कौन धारण करता है, जीवन भर ब्रह्मचारी कौन रह सकता है, कहां है कर्म-फल-भोग, पुनर्जन्म और मोक्ष, भक्ति-धर्म, त्याग-वैराग्य एक ढकोसला है, विषयो से कोई अलग नही हो सकता' इत्यादि ? ये बाते निरन्तर सुनते-सुनते यही सदेह दृढ हो जाता है, फिर मानो नींव की ईंट ही खिसक जाती है। आदमी जैसे सुनता, सोचता, देखता और कहता है वैसे हो जाता है[1]। रात-दिन बुरा देखने, सुनने, कहने और सोचने वाला भला कैसे बन सकता है। सीधी गाय भी हरहाई गाय के साथ दूसरे की फसल चर कर मारी जाती है, इसी प्रकार सज्जन भी दुर्जन की संगत करके नीचे गिरते और लज्जित होते हैं। कुसंग पतन का सीधा रास्ता है।

केवल गलत मनुष्यका ही कुसंग नही होता; अपितु स्थान, वस्तु, वातावरण आदि भी कुसग रूप होते है। जिन व्यक्ति, वस्तु, स्थान, वातावरण आदि के सम्पर्क मे आने से मन में गलत धारणायें, चंचलता, उद्विग्नता, क्रोध, काम, मोह, लोभ आदि पैदा हों, वे सब कुसंग है। प्रयत्न पूर्वक हर समय हर प्रकार के कुसंग से बचकर ही मनुष्य सुखी, निश्चिंत और प्रसन्न रह सकता है। सद्गुरु कहते है "कुसंग से आदमी की उसी प्रकार दुर्गति होती है जैसे बेर-पेड़ के साथ केला के पत्तों की चीथी-चीथी उड़ती है[2]।" अतएव ऐसे भयंकर पतनकारी कुसग का प्रयत्न पूर्वक त्याग करते रहना चाहिए।

अच्छी संगत मनुष्य को ऊंचा उठाती है। कितने अधम लोग अच्छी संगत से महान बन जाते हैं। प्रसिद्ध रत्नाकर व्याध साधु संगत से ही आदि-

१. बीजक, रमैनी साखी २४।
२. बीजक, साखी २४२।

कवि महर्षि बाल्मीकि बन गये। विद्वान की संगत से विद्वता आती है और सज्जन की संगत से सज्जनता आती है। पानी के पास जाने से शीतलता, आग के पास जाने से गर्मी और खुली हवा में जाने से स्वच्छ वातावरण मिलता है। जहां ज्ञान, विवेक, वैराग्य, क्षमा, दया, शील, संतोष, निजदोष दर्शन, प्रेम, समता, परोपकार, शांति आदि का वातावरण है, वहां दुर्जन भी जाकर कुछ समय के लिए सद्वृत्ति वाला हो जाता है और यदि वह वहां की बातों पर ध्यान दे तो साधु भी हो जाता है। यह ठीक है कि सच्चे साधु संसार में कम मिलते हैं; परन्तु जो सच्चा खोजी होगा, उसे अवश्य मिल जायेंगे। विवेकी सज्जन एवं सतों की सगत कामदमणि है। सज्जन और साधु अपने संगियों को विविध प्रकार से प्रबोध दे गलत रास्ते से हटाकर अच्छे मार्ग में लगाते हैं। दुर्बल-बुद्धि का आदमी भी श्रद्धापूर्वक सत्संग में लगा रहे तो उसका बेड़ा पार हो जाता है। साधारण सज्जनो की संगत भी सुखद होती है, फिर विवेकी संत मिल जाय तो क्या पूछना। "हींग या इतर बेचने वाले के साथ में रहने से यदि वह कुछ न दे तो भी उससे सुगंधी तो मिलती ही है। इसी प्रकार संतों के पास में रहने से यदि वे उपदेश न दे, तो भी उनसे शांति मिलती है[३]।"

संत पुरुष साधना एवं बर्ताव द्वारा जो कुछ अपने जीवन में अनुभव किये रहते हैं उसका सार श्रद्धालु साधक को थोड़े में बता देते है। जिनके जीवन मे दीर्घकाल से साधना एवं संतुलन है, उनकी संगत साधको एवं साधारण जनता के लिए भी सत्प्रेरणा का स्रोत है। जो ममता, विषयासक्ति और प्रपंच रहित है वे संसार के लोगो को तारने के लिए बलवान नाविक हैं। राग-द्वेष-विहीन संत-सज्जन समाज के आदर्श होते हैं। जैसे फूलों के बाग में जाने से वहां के वातावरण में भरी हुई सुगंधी अपने आप मिलती है, वैसे विवेकवान संतों की संगत में जाने से वहां के राग-द्वेष-विहीन, समता, शील और त्याग से भरे हुए बर्ताव से साधक को अतुल मानसिक बल मिलता है। साधक के लिए परमार्थ का उपदेश मात्र पर्याप्त नही होता, अपितु उसके सामने उज्ज्वल चरित्र का आदर्श चाहिए।

जब साधक देखता है कि साधु-गुरु कहलाने वाले लोग राग-द्वेष एवं नाना कलह-कल्पनाओ में उलझे है और जब वह ऐसी कई घटनाये देखता है, तब वह समझने लगता है कि परमार्थ का केवल उपदेश हो सकता है, उसका

३. कबीर संगत साधु की, ज्यों गंधी को बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥

आचरण नही और वह किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है; परन्तु ऐसी बात नहीं है। राग-द्वेष-विहीन विवेकी संत होते हैं। अब उनके पास जाकर भी कोई बांस के समान नीरस, खोखला तथा गांठदार बनकर सुगंधी से वासित न हो, तो यह उसकी त्रुटि है। अपनी अल्प बुद्धि एवं चित्त दोष के कारण भी हम रहनी सम्पन्न संत के गुणों को नही समझ पाते हैं। सच्चे संतों को समझने के लिए पहले हमें अपने मन को शुद्ध करना पड़ेगा। बिना श्रद्धा और बुद्धि के हम कुछ नही समझ सकते। सद्‌गुरु कहते हैं—

"विवेकवान संतों की संगत करो। वे दूसरे के मन के विकारों, पीड़ाओ को दूर करते हैं और दुष्ट की संगत छिछिली होती है, जो आठों पहर उपाधि लाती है। अच्छी संगत से सुख-शांति मिलती है तथा बुरी संगत से दुःख उत्पन्न होता है। अतएव वहां जाओ जहां अच्छी संगत हो। अरे अनाड़ी मनुष्य! तू क्या अंधकार में डूबता है? सद्‌गुरु की उपदेश-कृपा और विवेकी संतो की संगत से कल्याणद्वार पर आ जा[४]।"

६६

परोपदेश के चक्कर में अपने आप को मत छलो

अपने आप को स्ववश किये बिना परोपदेश का बीड़ा उठाना अपने आप को छलना है। परोपदेश करने से मान-कीर्ति बढ़ जाती है, भौतिक वस्तुयें उपलब्ध होने लगती हैं और अधूरा साधक इन्ही मे फूल और भूलकर अपनी वैराग्य-साधना से शिथिल हो जाता है। योग्य सद्‌गुरु के संरक्षण मे रहकर समय पड़ने पर समाज में ज्ञान-चर्चा कर देना बुरा नही है; किन्तु विवेक-वैराग्य की पूर्ण परिपक्वता हुए बिना एवं वासनाओ को जीते बिना अपने आप को गुरु या उपदेशक मान लेना और भक्ति, सेवा, स्वाध्याय, साधना आदि को छोड़कर उपदेश देते घूमना अपने आप को धोखा देना है। स्वयं अपूर्ण होकर पूर्ण मान लेना और अपने उपदेशों द्वारा दूसरों को सावधान करने की कोशिश करना अपनी साधना में घाटा लगाना है। आज-कल हजारों उपदेष्टा ऐसे ही घूमते हैं जो स्ववश नही हैं। थोड़ी-थोड़ी बातो में जिन्हें क्रोध, ईर्ष्या, कामना, लोभ, मद आदि पराभूत करते रहते हैं, वे दूसरे के तारक होने का भ्रम करते हैं। गुरुदेव कहते हैं "बिना अनुभव किये केवल सुनी-सुनायी

४. बीजक, साखी २०७, २०८, ३०४।

बातों के आधार पर मोक्ष एवं परमार्थ की बात करना भूल है। यह स्वयं निस्सार खली या नमक खाना और दूसरे के लिए कपूर देने का दावा करने के समान है[1]।" परोपदेश के चक्कर में पड़कर अपने को साधनाविहीन जगत-वासनाओं का गुलाम बना लेना अविवेक है। सद्गुरु कहते हैं "दूसरे को उपदेश देते-देते अधूरे साधकों के मुख में धूल पड़ जाती है, जैसे एक किसान ने दूसरे के अन्न की ढेरी की रक्षा करने में अपने घर की फसल बनैले पशुओं से चरवा दिया था[2]।"

जो साधक भक्ति, सेवा, स्वाध्याय, साधना से अपने आप को संयत, स्ववश एवं इन्द्रिय-मन पर विजय कर लेता है, वह उपदेश करता है तो दूसरों पर उसका प्रभाव पड़ता है और अपना भी हित होता है; क्योंकि दूसरों को सुनाने के लिए स्वयं पढ़, सुन, विचार कर ज्ञान का खजाना इकट्ठा करना पड़ता है; इस प्रकार अपनी जानकारी बढ़ती है। जो बात दूसरों के सामने बार-बार कही जायगी; उसका प्रभाव अपने ऊपर भी पड़ेगा। "मैं दूसरे को ज्ञान की बातें बताता हूं, मुझे स्वयं भी धारण करना चाहिए।" यह भाव मन में उठकर रहनी पर ध्यान जायेगा। जिसमें साधना, विनम्रता और रहनी है, वह परोपदेश के साथ अपना भी कल्याण-साधना करते चलता है।

६७

सत्य

सत्य पदार्थ का ज्ञान, सत्य मनोभाव, सत्यवाणी और सत्याचरण—यह सत्य का चतुर्व्यूह सत्य की पूर्णता है। संसार में जड़ और चेतन—दो सत्य पदार्थ है जो दृश्य और द्रष्टा के रूप मे विद्यमान है। जड़ दृश्य को छोड़ कर चेतन द्रष्टा ही अपना स्वरूप है और यही परम सत्य पदार्थ है। जड़ पदार्थ भी अपनी जगह पर सर्वथा सत्य एवं त्रयकाल हैं; परन्तु वह परस्वरूप है और चेतन स्वस्वरूप है, इसलिए यह परम सत्य है। अपने स्वरूप में स्थित होना ही परम सत्य को पाना है। यह तो दार्शनिक सत्य हुआ। नैतिक सत्य में मन, वाणी और कर्म है; इनमें सत्यता की महान

१. बीजक, साखी ३४।

२. औरन के सिखलावते, मोहड़े परिगौ रेत।
राख बिरानी राखते, खाइन घर का खेत॥ बीजक, साखी ३११॥

आवश्यकता है। जो सत्य लगे, मन में उसी को स्थान देना सत्य का भाव है और जो मन में है, जैसा देखा, सुना और विचारा गया है, वैसा ही कहना सत्यवाणी है। यद्यपि जो बातें सुनी गयी हैं, उन्हें उन्हीं शब्दों, वाक्यों आदि में ज्यों-का-त्यों कहना असम्भव है, तथापि सरलता और ईमानदारी से उस भाव को प्रकट करने से वह सत्य ही है।

महाभारत हमें राय देता है कि शाब्दिक सत्य की अपेक्षा परहित अधिक सत्य है। इसलिए हर जगह केवल शाब्दिक सत्य के चक्कर में न पड़ कर उसके परिणाम और जनहित को देखना चाहिए। मूल पाठ इस प्रकार है "सत्य बोलना श्रेयस्कर है; परन्तु सत्य को यथार्थ रूप से जानना कठिन है। मैं तो उसी को सत्य कहता हूं, जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता है। सत्य बोलना सबसे श्रेष्ठ है; परन्तु सत्य से भी श्रेष्ठ है हितकर वचन बोलना। जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता है, वही मेरे विचार से सत्य है[1]।" सत्य में चाहे जितना अपवाद हो, परन्तु जहा तक समझ-बूझ तथा शक्ति मे आये सत्य बोलना अत्यन्त श्रेष्ठ है। जिसे सत्य समझा जाय उसी का व्यवहार करना, कर्मों में उन्ही को स्थान देना, सत्य-उपासक का काम है। सद्गुरु कबीर कहते है—

"यदि तू ज्ञान का सच्चा व्यापारी है तो सच्ची हाट लगा और भीतर झाड़ू देकर कूड़ा को दूर फेंक दे। यदि सचाई दिल में आ जाय तो उससे भला कुछ नही है। चाहे कोई करोड़ो उपाय करे, सचाई के बिना सुख नहीं है। अपने मन में समझ-बूझ कर सत्यज्ञान का सौदा करो। सचाई से ही सत्य का हीरा मिलेगा और झुठाई में पड़ने से मूल की भी हानि होगी। लोग सत्य वचन को नही मानते और स्वयं विचार नही करते। संसार के लोग स्वप्नवत चले जा रहे हैं। सत्य को शाप, निंदा आदि नही लगते, सत्य को काल नही खाता। जो सत्य-ही-सत्य पथ पर चलता है, उसका कोई क्या बिगाड़ेगा[2]? सत्य के बराबर तपस्या नही और झूठ के बराबर पाप नही। जिसके हृदय

१. सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यज्ञानं तु दुष्करम्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं ब्रवीम्यहम्॥
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम॥
(महाभारत शांतिपर्व, २८७/२० तथा ३२९/१३ गीता प्रेस)

२. बीजक, साखी ७५, ६४, ६५, ६६, ३०८।

में सच्चाई है, उसके हृदय में अपने सत्य स्वरूप की स्थिति है[३]। महाभारत-कार ने सच ही कहा है। "जो वेदों को जानता है वह वेदों के उस भेद को नही जानता जो जानने योग्य है जो सत्य में स्थित है वही वेदो के जानने योग्य भेद को जानता है[४]।"

६८

दया

मन, वाणी तथा कर्मो से किसी को चोट न पहुंचाना अहिंसा है तथा दुखियों के दुःखों को देखकर द्रवित हो जाना दया है और शक्ति चले तक उनके दुःखो को दूर करने का प्रयत्न करना दया का व्यावहारिक स्वरूप है। किसी के दुःखों को देखकर प्रसन्न होना अपने मन की घोर मलीनता है और इसके रहते हुए कोई मनुष्य मानसिक प्रसन्नता नही प्राप्त कर सकता। जिसे सुख-शांति एवं कल्याण इष्ट हो, उसे चाहिए कि वह अपने दिल को दया की भावना से भर ले। वह दूसरों के दुःखों को देखकर द्रवित हो जाय और दूसरो के सुखों को देखकर प्रसन्न हो। जो अपने ही समान दूसरो को देखने लगता है, वह दूसरों के प्रति संवेदनशील हो जाता है। उसके चित्त मे हिंसा तो रह ही नही जाती है; प्रत्युत वह सबके लिए उदार, दयालु और परदुःखकातर होता है।

दया मन के मैल को दूर करने का साबुन है। साधक वही हो सकता है जो दया से भरा हो। जो केवल मानव नही अपितु प्राणी मात्र के प्रति दया रखता है, उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। यहां दया का अभिप्राय यह नही समझ लेना चाहिए कि वह दया के चक्कर में पड़ कर अपने आपको प्रपंच मे उलझा ले। व्यक्ति को अपनी श्रेणी और शक्ति के अनुसार ही परोपकार का बीड़ा उठाना चाहिए। अन्यथा कहीं-कहीं परोपकार आत्म-अपकार हो जाता है और आत्म-अपकार करके, अर्थात अपने आपको बंधनो में जकड़ कर कोई सच्चा परोपकारी नही हो सकता, अतएव सबमें विवेक की आवश्यकता है।

सद्गुरु कबीर कहते है "जीव ही जीव के सहायक हैं, इसलिए जीव-

३. साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदया साँच है, ताके हृदया आप॥ बीजक, साखी ३३४।

४. यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यम्।
सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम्॥ (महाभारत, सनत्सुजातीय पर्व)

दया पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। सब तो अपने प्राणप्रिय हैं, किस को चोट पहुंचाया जाय[1] ?"

६८

क्षमा

अपराधी को क्षमा करते जाने से अपराध बढ़ता है। व्यवहार और राज व्यवस्था में न्याय तथा दण्ड को नकारा नहीं जा सकता। कहावत है 'बनिया को नरम तथा राजा को गरम होना चाहिए।' परन्तु यह भी देखा जाता है कि पुलिस दण्ड दे-देकर अपराधियों को सुधार नहीं पाती। क्षमा करने से कितने अपराधी सज्जन बन जाते हैं। फिर भी सामूहिकता में न्याय और दण्ड की आवश्यकता है।

बात है व्यक्तिगत जीवन की, जहां क्षमा पद-पद पर आवश्यक है। पत्नी, पुत्र, भाई, माता, पिता, नौकर, स्वामी—सबसे कुछ ऐसा व्यवहार हो सकता है जो हमारे मन के अनुसार न हो। इन सबसे यदि हम हर समय लड़ते रहें और क्षमा न करे तो व्यवहार बिगाड़ लेना और अपने को दुखी बना लेना होगा। जहा-जहा जिनसे हमारा संबंध होता है वहां-वहां ही कुछ हमारे मन के प्रतिकूल भी हो सकता है और वहां-वहां ही हमें क्षमा-सहन की आवश्यकता होती है। न क्षमा करके जो लोग जावन भर लड़ते रहते हैं, वे सदैव दु:खो के पात्र बने रहते हैं। क्षमाशील सदैव सुखी और शीतल होता है।

जो शांति और कल्याण का साधक है उसे तो क्षमा ही परम साधन है। क्षमा न करने से उद्वेग, क्रोध, हिंसा की भावना-क्रिया, अपने और दूसरे के समय तथा शक्ति का दुरुपयोग, मन का कुसंस्कारों से ग्रसित हो जाना, आध्यात्मिक प्रगति का अवरोध एवं जीवन दु:खो से भर जाना आदि पतन का पूरा रूप उपस्थित हो जाता है। क्षमाशील व्यक्ति निर्द्वन्द्व सब से मैत्रीभाव वाला, सरल, सन्मार्गगामी, सुखी और संतुष्ट होता है। प्रश्न होता है 'यदि कोई हमारे प्रति अपराध करता ही जाय तो हम कब तक क्षमा करते रहें ?' साधक के लिए यह प्रश्न ही गलत है। उसे तो जीवनपर्यन्त क्षमा के ही पथ में चलना है। उसे तो रात-दिन अपने को ही गढ़ना, बनाना एवं तराशना है।

१. बीजक, साखी १८२, २४१।

यदि हमारे प्रति कोई अपराध कर रहा है, तो निश्चित ही पहले हमसे कोई अपराध उसके लिए बन गया होगा। फिर वह हमसे बदला ले रहा होगा, और यदि ऐसी बात है तो हमें क्षमा करनी चाहिए और अब आग मे घी नहीं डालना चाहिए। यदि हमसे उसके प्रति कभी कोई अपराध नही हुआ है, फिर भी वह हमारे प्रति अपराध या हमारा विरोध कर रहा है, तो निश्चित है हमारे प्रति उसे भ्रम है, भूल है या अज्ञानवश ईर्ष्या है। ऐसी अवस्था में वह दया का पात्र है। भ्रम, भूल और अज्ञान में रहने वाला व्यक्ति बालकवत ही है और उसके प्रति दया-क्षमा का व्यवहार ही उचित है। गलत भावना, गलत बातें तथा गलत आचरण करने वाला व्यक्ति घोर अधकार मे पड़कर अपना ही अहित कर रहा है। हम भी जब घोर अंधकार मे पड़ते है तब ऐसी गलत भावनायें, वचन और क्रियायें हमारे जीवन मे आती हैं। जब तक हम ज्ञान-प्रकाश में रहेगे तब तक हम कैसे अविवेकी जैसा कार्य कर सकेगे।

क्षमा न करने से अपना ही मन क्रूर एवं गन्दा बन जाता है, फिर वह शांतिपथ का राही कैसे बन सकता है। जो पुरुष सदैव शाति में समाया है, वह तो क्षमा की मूर्ति होता है। उससे क्षमा के विपरीत कुछ हो ही नही सकता; परन्तु जो शांति का साधक बनना चाहता है या है, उसे चाहिए कि वह प्रयत्न पूर्वक सबसे निर्वैरी बनकर क्षमा को धारण करे। सद्गुरु कबीर कहते है "वह तो गलत होने से गलत आचरण कर रहा है; परन्तु तू तो सद्गुणी है, फिर तू उसी प्रकार कैसे आचरण कर रहा हैं? तू अपने आप को ऐसे लोगो के आचरण में मत मिलाये[1]।"

७०
धैर्य

धैर्य सभी नैतिकता की धुरी है। जिसमें धैर्य नही होता, वह किसी दिशा में सफल नही हो सकता। धैर्य एक ऐसा चट्टान है जिससे सभी विघ्न-बाधायें टकरा कर चूर हो जाती हैं। राजनैतिक, व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक—सभी क्षेत्रों की सफलता के लिए धैर्य महान साधन है। किसान वीज खेत में डालकर चार-छह महीने धैर्य से उसके फल की प्रतीक्षा करता है। आम

१. वो तो वैसा ही हुआ, तू मति होहु अयान।
वो निर्गुणिया तै गुणवंता, मति एकहि में सान ॥ बीजक, साखी २७८ ॥

आदि के वृक्ष लगाकर तो उसके फल की प्रतीक्षा वर्षों करनी पड़ती है। जो व्यक्ति खेत में बीज डालकर उसे प्रतिदिन खोद-खोद कर देखता रहता है कि जम रहा है या नहीं, उसके बीज कैसे जमेगे और कैसे उसके फल मिलेंगे। इसी प्रकार जो साधक थोड़ी साधना के बाद इच्छित फल न पाकर घबराता है, वह साधना में कैसे सफल हो सकता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं "जैसे शुरू में साधना में लगे, वैसे उसे अंत तक ले जाये। एक-एक कौड़ी जोड़कर धीरे-धीरे लाख-करोड़ रुपये हो जाते हैं। हे भाई, धीरे-धीरे उसी प्रकार अपने लक्ष्य को पाकर निराधार हो जाओगे जैसे बिना स्तम्भ के मन्दिर का गुम्बज स्थिर हो जाता है[1]।"

७१

संतोष

स्वार्थ हो या परमार्थ, व्यवहार हो या धार्मिक क्षेत्र तृष्णा हर जगह अपना घर बनाती है। धन, पुत्र, यश, शिष्य, पूज्यता, प्रतिष्ठा चाहे जितने मिल जायं, बड़े-बड़े पूजीपति और जगद्गुरु भी तृप्त नही हो सकते। तृप्ति का एकमात्र साधन है संतोष। सतोष का तात्पर्य निकम्मा बनकर अपनी दिशा में उन्नति न करना नही है। आदमी को अपनी-अपनी दिशा में उन्नतिशील होना चाहिए। हां, सारी उन्नतियों का फल होना चाहिए भौतिक और आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति, बल्कि कहना चाहिए प्रसन्नता की प्राप्ति। प्रसन्नता ही जीवन की सच्ची उपलब्धि है और वह बिना आध्यात्मिक उन्नति हुए संभव नहीं है।

मनुष्य चाहे जितनी उन्नति या प्रगति कर ले, परन्तु उसे तृप्ति तभी मिलेगी जब उसके मन में संतोष हो। अप्राप्त वस्तु की आशा और प्राप्त वस्तु की तृष्णा जब चित्त मे नही रहती, तब मन की यह अवस्था संतोष कहलाती है। संतोष का मतलब सब काम-धन्धा ठप्प कर देना नही है; अपितु प्राप्त वस्तु, प्राणी, परिस्थिति आदि में तृप्त एवं प्रसन्न रहना है। खाने, पहनने, आसन-बिस्तर, निवास, आदर, रुपये, वस्तु आदि सभी मे जो यथाप्राप्त में संतुष्ट रहता है, वही जीवन मे सुखी रह सकता है। कामनाओ से भरा आदमी सदैव अशांत रहता है चाहे वह पद्मपति हो, और संतुष्ट आदमी सदैव शीतल

१. बीजक, साखी २०८। ज्ञानचौंतीसा १६।

रहता है चाहे वह सूखी रोटी खाता हो। गुरुदेव कहते हैं "हे संतो! संतोष मे सुख है, यदि संतोष रखो तो हृदय शीतल हो जायेगा[1]।"

७

विचार

भोजन से भूख का दुःख दूर होता है, पानी से प्यास का तथा औषध से रोग का; परन्तु सब दुःख विचार से दूर होता है। विचार करते ही वासनाये तिरोहित होती हुई दिखती हैं। जब हम अपने जीवन की पूर्व घटनाओ पर विचारते हैं, तब वे सपने के समान प्रतीत होती हैं और लगता है कि जीवन की भावी घटनायें भी इसी प्रकार सारहीन होकर अतीत के पर्दे में छिप जायेंगी। किसी वस्तु पर विचारते ही, वह मोहक नहीं रह जाती। वह सूक्ष्म कणों के रूप में प्रतीत होने लगती है। जब हम अपनी काम-वासना पर विचार करते हैं, तब हमें अपनी मूढ़ता का आभास होता है। जब हम अपने क्रोध पर विचार करते हैं, तब हमें अपने छिछिलेपन पर पश्चाताप होता है। जब हम अपने द्वारा होते हुए परदोष दर्शन एव पर-निन्दा पर विचार करते हैं, तव हमें अपने मिथ्या अहंकार और ईर्ष्या के दर्शन होते हैं। जब हम शरीर-संसार एवं प्राणी-पदार्थो के प्रति अपनी अहंता-ममता एवं मोह पर विचार करते है तब पता चलता है कि हम कितने भ्रम एवं धोखे में हैं।

विचारहीन स्थूल बुद्धि वाला मनुष्य धोखे में जीता है। वह "जहा अपना कुछ नहीं है वहां सब कुछ मानता है तथा जहां है, वहा कुछ नही समझता; परन्तु जहां है वहां पहचानना चाहिए[1]।" विचार करने पर लगता है कि जो कुछ दृश्य है छूटने वाला है, क्षण-क्षण छूट रहा है। विचारवान विचारता है 'मै कौन हूं, जगत क्या है, मेरा और जगत का सम्बन्ध क्या है, उसका विच्छेद कैसे होगा, जीवन का परमलक्ष्य क्या है?' विचारवान जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओ पर विचारता है और उसका समुचित समाधान पाता है। विचारवान विचार कर बोलता है, विचार कर करता है, विचार कर खाता है, विचार कर बैठता-उठता और चलता है। वह सारा काम विचार पूर्वक करता है; इसलिए पीछे उसे पश्चाताप नहीं करना पड़ता।

१. संतो सन्तोष सुख है, रहहु तो हृदय जुडाय। बीजक, रमैनी साखी ३८।

१. बीजक, ज्ञानचौंतीसा १०।

विचार करने वाला व्यक्ति विवाद में क्यों पड़े ? वह विचार द्वारा सबका समाधान कर लेता है। विचारवान के सामने न कोई समस्या है न दुःख। सद्गुरु कहते हैं "विचार करो, जिससे सारे दुःख दूर हों। विचार करने से असत्य वस्तुओं का राग मिट जायेगा[२]।"

७३
विवेक

विचार का व्यावहारिक पक्ष ही विवेक है। 'स्व' और 'पर' तथा शुभ और अशुभ को पृथक कर देना ही विवेक है। विवेक दिव्य प्रकाश है जिसमें अपने स्वरूप का साक्षात्कार होता है। अपने चेतन स्वरूप को जड़ से सर्वथा पृथक समझ लेना ही विवेक है। हर व्यक्ति अपने आप को देहादि दृश्य पदार्थों में मिलाकर सोचता है, इसलिए मन में उठे हुए सारे संकल्पों एवं हर्ष-शोक के विकारों को अपने में आरोपित करता है; परन्तु जब वह समझ लेता है कि समस्त दृश्यों से मैं सर्वथा पृथक शुद्ध चेतन हूं और इस रहनी में अवस्थित हो जाता है तब वह दुःखों से मुक्त हो जाता है। जड़ दृश्यों में से अपने आप को निकाल लेने वाला व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। "सबके चित्त को संशय ने विखंडित कर दिया है। संदेह का खंडन करने वाला बिरला है। सारासार शब्दों का विवेकी संदेहों को पार कर जाता है। जो कुछ जड़ दृश्यो को अपना माना है, सब नाशवान हैं। यह सब केवल मन की कल्पना से ही रम-णीय प्रतीत होते हैं अन्यथा सारहीन हैं। कोई बिरला सत्संग द्वारा विवेक प्राप्त करके निर्भ्रान्त होता है। मन समुद्र है, इच्छायें तरंगें हैं, इसमें बहुत से अविवेकी डूब गये है। इससे वे ही बचेंगे जिसके हृदय में विवेक होगा[१]।"

७४
वैराग्य

विवेक की परिपक्वता ही वैराग्य है। विवेक द्वारा जब जड़-दृश्यों की असारता स्पष्ट हो जाती है तब उनसे स्वयमेव वैराग्य हो जाता है। आरम्भ

२. बीजक, रमैनी २३।

१. बीजक, साखी ८८, २६२, १०७।

में ही अंत को देखना वैराग्य है। सब कुछ का वियोग और परिवर्तन निश्चित है, फिर किसमें राग किया जाय! गुरुदेव कहते हैं—

"मोह के मंदिर में कोई मत घुसो, अन्यथा अपने को मिटा लोगे। विषयों में अल्प सुख है और दुःख आदि से अंत तक भरे हैं। स्वरूप-संतोष को छोड़कर छुटकारा का दूसरा पथ नही है। विषयों में पतिंगेवत मत जलो। विचार करो जिससे सारे दुःख दूर हों। मिथ्या भोगो का मोह छोड़ो। लालच में तुम्हारा जीवन बीत जायगा और वृद्धावस्था तथा मृत्यु आ जायेगी। जीव भ्रम में बंधकर जन्म-मरण के प्रवाह में भटकते हैं। ऐसा उत्तम तन पाकर अपने को मत खोओ। इस संसार से जरासंध, शिशुपाल, सहस्रार्जुन, रावण, दुर्योधन, पांडव—सब चले गये। श्री राम तथा लक्ष्मण चले गये और उनके साथ मे सीता जी न जा सकी। कौरव, हरिश्चन्द, भोज—कौन रहा? सब मायिक वस्तुओं को अपना-अपना करके रोते हैं। हम-हम करते रावण चला गया और पुत्र-ममता में दशरथ चले गये। मूढ़ मानव! शरीर छूट जायगा, यह काम न आयेगा। यह धोखा है। अंततः इसे गाड़ना, जलाना तथा पानी मे फेंकना होता है। मछली के जाल में फंसने के समान तुम कर्मबंधन में फंसे हो। स्वरूप राम को समझे बिना तुम गोबरकीटवत व्यर्थ जन्म खो रहे हो। तुम्हें पीछे पछताना पड़ेगा। मूर्ख, टेढ़ा होकर क्या चलता है? आंख, नाक, कान, आदि दशों द्वारो से नरक में डूबा तू गंदगी का जहाज बना है। तेरे नेत्र फूटे है, हृदय से भी नहीं सूझता। तू काम, क्रोध, तृष्णा आदि में उन्मत्त है। शरीर अंततः राख होगा, इसे मिट्टी खायेगी या यह सियार, कुत्ता तथा कौआ का भोजन बनेगा, यही शरीर की विशेषता है। विमोहित पागल मनुष्य, सावधान होकर देख तेरे से काल दूर नहीं है। इस शरीर को रखने का करोड़ों यत्न करो, अंत में यह धूल में मिलेगा। अनाड़ी, तू बालू के घर में बैठा है, तो भी सावधान नही होता। एक स्वस्वरूप राम के भजन बिना बहुत बुद्धि के अहंकारी डूब गये।

"क्या अहंकार में फूले-फूले घूमते हो। क्या औंधे मुख पड़े गर्भ के भोगे हुए दुःख को भूल गये? मधुमक्खी के समान तू धन बटोरता है; परन्तु तेरे जीते-मरते उसे लूटने के लिए लोग तैयार रहते हैं। मर जाने पर तेरे शरीर के साथ तेरी प्रिय पत्नी केवल दरवाजे तक जायेगी, आगे श्मशान तक मित्र-साथी जायेंगे और चिताभूमि तक तुम्हारी खटिया (अर्थी) जायेगी। परन्तु हंसा तो अकेला जायगा। यह काया जलाने पर भस्म हो जायेगी, गाड़ने पर इसे माटी खा जायेगी, मिट्टी के कच्चे बर्तन मे पानी भरने पर जैसे वह टिक नही सकता, वैसे यह काया क्षणभंगुर है। मोह में उन्मत्त मानव! स्वरूप-

राम में नहीं रमता और कल्पनाओं के वश संसार-कूये में पड़ा है। सुग्गा के नलिका यंत्र में लोभ और भ्रम-वश बध जाने के समान तू अपने को विषयों के मोह में बंधा रखा है। हे मोहांध, जिस घर-मकान में तू भूला है वह तेरा नही है। हाथी, घोड़ा, बैल, सवारी तू ने बहुत संग्रह किया; परन्तु अंततः तेरा निवास श्मशान में होगा, फिर घर वालों से कोई सम्बन्ध नही रख सकेगा। तू ने अपने आपको विषयों में उलझा कर खो दिया है। तुम्हें घर, परिवार, धन, शरीर आदि का बड़ा मद है; परन्तु ध्यान रहे, खीर-खाड़-घृत से सेवित यह तुम्हारा शरीर एक दिन फेंक दिया जायगा। जिस सिर में पाग बांधते हो, कागड़ा उसे फोड़ेंगे। जंगल की लकड़ी की तरह तुम्हारी हड्डियां जलेंगी, घास के समान बाल जलेंगे। न आते समय माया साथ आयी है और न जाते समय साथ जायेगी, फिर फौज, हाथी, शासन, स्वामित्व किस काम के। तू मन भर माया का रस लेने नही पायेगा और बीच ही में तुम्हे काल उठा लेगा। अरे मूढ़ ! तू आज भी नहीं सावधान होता है, काल की मुगरी तेरे सर पर बैठ जायेगी। हे मानव ! स्वस्वरूप-राम का स्मरण कर और मन में साव-धान होकर देख ! धन का अहंकार मत कर। तू भीतर-बाहर क्यो अंधा होता है। तेरे दादा, बाबा, परपाजा क्या ले गये ? वे क्यो सब छोड़ गये ? अरे, इस संसार का सारा धधा अंततः सारहीन है। बादल की छाया के समान इनके बनते-मिटते देर नही है। अततः कुछ भी अपना न होगा। नाता, गोता, कुल, कुटुम्व—इनकी क्या विशेषता है। स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति बिना सब थोथा है[1]।"

वैराग्य के बिना ज्ञान थोथा है। पूर्ण वैराग्य उदय हुए बिना साधना में सफलता नही हो सकती। सद्गुरु कबीर पूर्ण वैराग्यवान संत पुरुष थे। वे अनासक्त, निष्काम एवं कृतार्थ रूप थे। कुछ लोग वैराग्य का अर्थ लगाते हैं कि इससे मनुष्य निकम्मा हो जाता है। जब वह सब कुछ सारहीन समझ लेता है तब निकम्मा हो जाता है। परन्तु यह वैराग्य का गलत अर्थ लगाना है। वैराग्य कर्म करने को नही रोकता। कबीर देव स्वयं कर्मनिष्ठ थे। कपिल, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द—सब वैराग्यवान थे; परन्तु सब कितने कर्मनिष्ठ थे। वैराग्य होने से व्यक्ति सब प्रकार की लोलुप्ताओ से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार उसके द्वारा ससार के कलह की मात्रा घटती है। जिसके जीवन में सच्चा वैराग्य होगा, उसके जीवन में समता, शांति एवं निर्द्वंद्वता का राज्य होगा।

1. बीजक, रमैनी २२, २३, ४७, ५५, शब्द ६१, ७२, ७३, ८४, ९९, कहरा ५।

वैराग्य केवल साधु के लिए ही नहीं, मानव मात्र के लिए आवश्यक है। वैराग्य मन की अनासक्ति अवस्था है। जब आदमी सब कुछ नश्वर समझता है, तब उसे सबके प्रति रहा हुआ मोह क्षीण होता है और जब पूरा वैराग्य उदय हो जाता है, तब आसक्ति का सर्वथा ध्वंस हो जाता है। जो पूर्ण अनासक्त होता है वही शांत मन वाला होता है। साधक जो शिकायत किया करते हैं कि 'मन शांत नहीं होता' इसके मूल में यह है कि उनके मन में वैराग्य नही है। जिसका मन सर्वत्र आसक्त है, क्या शांत होगा। आदमी चाहे जितने दिन भूल-वश आसक्ति में बिता दे, यदि वह शांति चाहता है, तो उसे विषयो से वैराग्य करना ही पड़ेगा, जब सब कुछ नश्वर है, देखते-देखते सबका अन्त होता है, तब उनसे अपना मन छुड़ा लेना ही बुद्धिमानी है।

चाहे कितने ऐश्वर्य मिल जायं, कितने मोहक प्राणी मिल जायं, कितनी प्रतिष्ठा मिल जांय—सबका विनाश एक दिन रखा-रखाया है। उस सुखद अंत को देखने वाले का मन कहां भटकेगा? मृत्यु का दिन, जिस समय सब कुछ का अंत होता है भयंकर नही, अपितु उसका स्मरण सुखद है। विवेकवान उसे अपनी दृष्टि में रखकर सारी अहंताओं से मुक्त होते हैं। मृत्यु का भावपूर्ण स्मरण चित्त को अहंता-शून्य बनाकर परम शांति का कारण होता है।

वैराग्य के समान ऊंचा पद संसार में नही है। जान-अंजान मे इसकी सब प्रशंसा करते हैं। अखण्ड वैराग्य की प्राप्ति बिना मन की जलन, राग-द्वेष, कलह-कल्पनायें, आशा-तृष्णा, ललक, इच्छायें-वासनायें न समाप्त होंगी और न जीव को शांति मिलेगी। इसीलिए सद्गुरु कहते हैं "वही संसार के बंधनों से मुक्त हो सकता है, जिसके मन मे मोह नहीं समाता।"

कहहिं कबीर सो ऊबरे, जाहि न मोह समाय।

७५

माया, मन और उसका निग्रह

ऋग्वेद में कहा गया है "इन्द्र माया से अनेक रूप बना लेता है। उसके अन्य व्यवहार भी मायापूर्ण हैं[1]।" अतएव ऋग्वैदिक काल में छलपूर्ण कार्य को माया कहा जाता था; किंतु संसार के लिए ऋग्वेद का यथार्थवादी दृष्टिकोण है। वह संसार को मिथ्या नहीं, अपितु सत्य मानता है। आगे चलकर अद्वैत

१. ऋग्वेद ६/४७/१८। तथा १०/५४/२।

वेदान्त में भौतिक द्रव्यात्मक समस्त जगत को माया कह डाला गया। अर्थात कहा गया कि यह जगत केवल माया या भ्रम है। स्वामी शंकराचार्य ने कहा "इस माया को सत नहीं कह सकते, क्योकि इससे अद्वैत का विरोध होगा और इसको हम असत भी नहीं कह सकते, क्योकि इसका कार्य जगत दिखाई देता है, अतएव यह महान अद्भुत अनिर्वचनीय (कथन में न आने योग्य) रूप है[२]।" माया को दुस्तरा भी कहा गया, माया को पार करना असंभव तक बताया गया। माया ऐसा रहस्य बनकर रह गयी कि उसे लोग ठीक से समझ नहीं सके।

सद्‌गुरु कबीर ने बीजक में जहां जगत को झूठा एवं मिथ्या कहा है वहां उनका दृष्टिकोण जगत के सम्बन्ध से है। अर्थात जीव और जगत का सम्बन्ध झूठा है, न कि यह विश्व-ब्रह्मांड झूठा है। फिर उनका दृष्टिकोण जगत से वैराग्य कराना है "तेहि कारण मै कहत हौं, जाते होय उबार[३]।" सद्‌गुरु कबीर ने मन के मोह को माया कहा है। संसार के प्रति जो मन मे मोह है, वही माया है। वे कहते है "मन ही माया की कोठरी है, माया मन मे समायी हुई है, इसलिए माया मन का स्वरूप बन गयी है; परन्तु त्रिगुणी जीवो को माया के विषय में संशय है कि वह कही ऊपर बैठी है और सिर पर कूद पड़ती है और उससे तरा नही जा सकता। मैं किसको-किसको समझा कर कहूं कि माया कही बाहर नही, वह मन मे स्थित संसार का मोह है[४]।" माया का कितना स्पष्ट स्वरूप यहा बताया गया! मन मे जो काम, क्रोध, राग, द्वेष, वासना, तृष्णा आदि भरे है, यही तो जीव को छलते रहते हैं। अतएव यही माया है। विवेक द्वारा इनका नाश होना स्वाभाविक है। मन का मोह मिट जाने पर माया शेष नही रहती। हम शहर-बाजार मे बैठे हों और मन निर्मल तथा एकाग्र हो तो माया नही है और कही जंगल में बैठे हो परन्तु मन में काम, क्रोध, लोभ विद्यमान हो तो जानो हम माया मे डूबे है। इसका अर्थ यह नही है कि कुसंग के त्याग तथा साधु-संगत एव एकान्त सेवन की आवश्यकता नही है। अभिप्राय है मन की मलीनता ही माया है और उसकी शुद्धि ही मायातीत होना है।

२. विवेक चूड़ामणि ११।

३. बीजक, रमैनी साखी ६०।

४. मन माया की कोठरी। साखी १०४॥

मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय परी, मैं काहि कहौं समुझाय॥ साखी १०५॥

मन क्या है ? आज के मनोवैज्ञानिक मन और चेतन को एक में मिला देते हैं जो महाभ्रामक हो जाता है। बौद्धों ने भी मन और चेतन को एक मे मिला दिया है; परन्तु चेतन जड़-प्रकृति से सर्वथा भिन्न, अविनाशी, निर्विकार एवं साक्षी है। चेतन देह-इन्द्रिय संघात से दृश्यों को ग्रहण करता है। देखना, सुनना, सूंघना, खाना, छूना, सोचना—यही दृश्यो को ग्रहण करना है और यही जाग्रति अवस्था है। इसी समय जो संस्कार बनते है आगे मन के रूप हो जाते हैं। सूर्य और वृक्ष के सम्बन्ध मे जैसे छाया बन जाती है, वैसे जीव और देह के सम्बन्ध में संस्कार बन जाते हैं, वही मन है। कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि मन द्रव्य है कि अद्रव्य ? यह समझने की बात है कि संस्कारो का ग्रहण केवल शुद्ध जीव नहीं कर सकता। उसके साथ अनादिकाल से स्थूल शरीर से भिन्न एक सूक्ष्म शरीर है, तत्वों के सूक्ष्मकणो की एक गांठ है, जहां सस्कार ग्रहण होकर सग्रहीत होते हैं। यदि हम संस्कारो के धारक को जो जीव के साथ में रही हुई अनादि जड़ग्रंथि है, मन कहते हैं तो निश्चित ही मन द्रव्य है और यदि केवल संस्कारों को मन कहते है, तो वह द्रव्य नही, केवल स्मरण, मानना या मान्यता है। यहां तो हम उस मन की चर्चा कर रहे है जो संस्कारो का समुच्चय है, जिसे बदल कर शुद्ध करना है।

अपने अविवेक-वश मन बंधन का कारण बनता है और विवेक उदय हो जाने पर वह मोक्ष का कारण हो जाता है। इसीलिए सद्गुरु कहते है "मन चंचल है, चोर है, ठगहार हैं और इसके विपरीत शुद्ध भी है[५]।" यदि भ्रम-दृष्टि, अविद्या एवं अज्ञान है तो मन चंचल-चोर आदि बना रहता है और यदि यथार्थ ज्ञान हो गया और मोह मिट गया, तो मन शुद्ध होकर कल्याण का कारण बन जाता है। गुरुदेव मन को परख कर उसे शात करने को कहते है "मन के नाना विषयो के तरग है। मन भवरा अंधा बना विषय के पुष्परस मे प्रलुब्ध है। हे कल्याणार्थी ! तू मन को वश मे करने के लिए सत्संग मे परख की कला समझ ले। जो मन का संचालक, उसका मूल है वह जीव है, चेतन स्वस्वरूप है। अतः स्वरूपज्ञान मे ठहरो, इधर-उधर भरमो-भटको मत। मन समुद्र है और इच्छाये तरगे हैं, उनमें बह कर कही मत जाओ। मन-समुद्र की इच्छा-लहरो में बहुत से असावधान लोग डूबते रहते है। इससे वही बचते है जिसके हृदय में विवेक होता है[६]।"

५. बीजक, साखी ९६।

६. बीजक, साखी ९४।

मूल गहे ते काम है, तैं मत भरम भुलाव।
मन सायर मनसा लहरि, बहे कतहुँ मत जाव॥ बीजक, साखी ९०॥

साधक को चाहिए कि वह संकल्पों का द्रष्टा बनकर उनसे अपने को अलग कर ले। जब साधक अपने आप को मन से सर्वथा पृथक समझ कर मन के तरंगो का द्रष्टा बन जाता है, तब तरंग शांत हो जाते है। मन में मिल जाने से जीव मन का रूप बना भवसागर मे भटकता है और जब जीव मन को अलग देखता है, उसका द्रष्टा बन जाता है, तब मन शांत हो जाता है और जीव स्ववश स्थित हो जाता है। इसकी विस्तृत व्याख्या हम तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धांत' के 'पारख समाधि' संदर्भ में करेंगे।

६७

हद, बेहद और उससे परे

हद गृहस्थी है, बेहद विरक्ति दशा है तथा इन दोनो से परे जीवन्मुक्ति दशा है। पहला हद है। गृहस्थी सभी आश्रमों का मूल है। यही बच्चे जन्म लेकर सभी क्षेत्रों में फैलते हैं; अतएव गृहस्थी का समुचित सुधार होना चाहिए। विवाह ही गृहस्थी जीवन का आरम्भ है। हर माता-पिता चाहते हैं कि हमारे बच्चे सुशील, सदाचारी, आज्ञाकारी, विवेकी और सभ्य मानव बनें और इसके लिए माता-पिता को स्वयं वैसा बनना चाहिए। जिससे माता-पिता के रज-वीर्य से ही बच्चे सद्गुणो का संबल पाये। माता-पिता के पवित्र वातावरण मे पलकर वे उच्च बनें। लड़के-लड़कियो को केवल स्कूली ही नही सदाचरण और अध्यात्म की शिक्षा देकर उन्हे व्यवहार तथा परमार्थ मे उन्नत बनाया जाय। जो लड़के-लड़की आजीवन ब्रह्मचारी रह कर समाज या धर्म की सेवा करना चाहे उनको छूट दी जाय तथा जिनका विवाह करना हो उनकी २५ वर्ष के ऊपर उम्र हो जाने पर जब वे अपने कदमो पर खड़े हो जायं उनका विवाह किया जाय। एक-दो सतान होने पर वे संयम का पालन करें। शुद्धाहार, सदाचार, सद्ग्रंथ अध्ययन, सत्संग, भक्ति, सेवा, दान, परोपकार आदि शुभगुणों को लेकर जीवन यापन करें। इस प्रकार गृहस्थी के उत्तम आदर्श के अनुसार जो चलता है वह मनुष्य है।

जो पूर्ण वैराग्य-दशा उदय होने पर किसी यथार्थ सद्गुरु की शरण लेकर विवेक, वैराग्य, शम, दम, क्षमा, संतोषादि सद्गुण पूर्वक अपना कल्याण

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक॥

करता है तथा शक्ति के अनुसार लोक-मंगल का भी प्रयत्न करता है, वह साधु है और जो सारी आसक्तियों, सांप्रदायिक भावनाओं एवं समस्त अहंकारों का विसर्जन करके अपने अविनाशी स्वरूपबोध में स्थित है, वह हद और बेहद से परे है। उसका मत अगाध है। सद्गुरु ने कहा है—

हद्द चले सो मानवा, बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोऊ तजे, ताकर मता अगाध ।। साखी १८६ ।।

७७
चतुर्दिक सावधानी

चाहे व्यवहार-क्षेत्र हो या परमार्थ-क्षेत्र, हर दिशा की सफलता के लिए सावधानी की बड़ी आवश्यकता है। जो हर समय सावधान नहीं रहता, वह सर्वत्र अशुभ के दर्शन करता है। सावधानी से बात-व्यवहार न रखने से अपने परिवार, समाज, साथी-संगी से ही अनमिलता हो जाती है। सावधान न रहने से रास्ता चलते ठोकर लगती है, भोजन करते समय अधिक खा लिया जाता है जो रोग तथा दुःख का कारण बनता है। सावधानी न रखने से आदमी कुसंग में फंस कर कुपथ में जाता है। सावधानी न रखने से ही मनुष्य अपव्यय करके पीछे तंग होता है। जवानी की असावधानी ही अनेक दुर्गुणों का संग्रह कर जीवन तथा बुढ़ापा को दुःखमय बना देती है। दिन भर के व्यवहार में सावधान न रह कर ही रात में खाट पर बैठकर पश्चाताप करना पड़ता है। जो व्यक्ति अपने दुस्स्वभाव तथा मन-इन्द्रियो से सावधान नही रहता, उससे ऐसे-ऐसे घिनौने कर्म हो जाते हैं कि वह समाज में मुख दिखाने योग्य नहीं रहता। असावधानी में मन, वाणी, इन्द्रियों द्वारा किये गये कर्म व्यक्ति के चित्त को निरन्तर पीड़ित करते हैं। मोक्ष-साधना करने योग्य इस उत्तम नर-जन्म का अवसर असावधानी मे खो देने से एक दिन इसका समय बीत जाता है और पीछे केवल पश्चाताप हाथ आता है।

अतएव सावधानी ही साधना है। मन में वासनायें हैं, साथ में इन्द्रियां हैं, बाहर प्राणी, पदार्थ एवं पांचों विषय हे इन सबके बीच मे रह कर जो हर क्षण जाग्रत नही रहेगा उसका बेड़ा कैसे पार होगा! "शरीर रूपी खरगोश, मन रूपी शिकारी कुत्ता और वासना रूपी बधिक एक जगह ही उपस्थित है, तो हे मित्र! क्या कुशल पूछते हो[1]?" अर्थात असावधान रहने से

१. बीजक, शब्द १५८।

कहां कुशल है ? इसीलिए गुरुदेव कहते है 'आगे सावधान रहो, पीछे सावधान रहो, दाहिने सावधान रहो, बांये सावधान रहो, सावधानी पर सावधानी रखना यह मेरी सावधानी है[२] ।" 'सावधानी हटी कि दुर्घटना हुई' यह आप रेलवे यार्ड में लिखा देखते हैं। उससे कही अधिक शीघ्र-शीघ्र और बहुत अधिक दुर्घटनायें हर क्षण तुम्हारे भीतर होती रहती हैं। जरा-सा असावधान हुए और फिसले-फिसले-फिसले ! सावधानी सर्वोच्च साधना है। जो हर समय सावधान है उसे वासना-काल आहत नही कर सकता। जो कभी असावधानी की झपकी नही लेता, जो हर समय जाग रहा है, वही जीवन्मुक्त है। गुरुदेव कहते हैं "हे संतो ! जागते रहो; नींद न लो। तुम्हे काल खा नही सकता, तुम्हारे में कल्प आदि समय की अवधि व्याप नही सकती, तुम्हारे स्वरूप को बुढ़ापा लग नहीं सकता। तुम अजर-अमर हो। जागते रहो[३] ।" सब समय सावधान रहो।

७८

जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति

हमारे मन में जो सुख का मोह है, वह हमे दुःखों से अलग नही होने देता। सुख की आसक्ति छोड़कर दुःख नही है। अहंता, ममता, मान्यता एव आसक्ति दुःख-सुख की सृष्टि करते हैं। जो इनका त्याग करता है, वह दुःख-सुख से ऊपर उठ जाता है। शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है "सुख और दुःख के कोई मौलिक स्वरूप नही होते अपितु हमारा सोचना ही उन्हे बनाता है[१] ।' अपने अविनाशी चेतन स्वरूप की भूल से हम अपने आपको सबसे जोड़ते रहते है और वह दुःखो का कारण बनता रहता है। अपने आप को सब में से निकाल लेना जीवन्मुक्ति है। विवेक-वैराग्य की सतत साधना-द्वारा एक ऐसी उच्च स्थिति आती है जहा संसार की सारी चीजे—धन, ऐश्वर्य, परिवार, शिष्य, प्रतिष्ठा, कीर्ति—छोटी हो जाती हैं। जब व्यक्ति की अंतरात्मा सभी

२. फहम आगे फहम पाछे, फहम दाहिने डेरि।
फहम पर जो फहम करे, सो फहम है मेरि ॥ बीजक, साखी १८८ ॥

३. बीजक, शब्द २।

१ There is nothing either good or bad but thinking makes it so. (Shakespear)

चीजों से ऊपर उठ जाती है, तब वह शरीर में रहते हुए सुख-दुःख, हानि-लाभ, हर्ष-शोक, मान-अपमान—सभी से मुक्त हो जाता है। मन ही सारे उपद्रवों का कारण है और विवेकवान मन ही को अपने से पृथक कर देते हैं। जो सदैव मन का साक्षी है, वह मन के हर्ष-शोक से मुक्त होता है।

आध्यात्मिकता की ऊंची चोटी पर चढा हुआ पुरुष इस शारीरिक जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को नही देखता। उसको तो यह पूरा जीवन एक छोटा बिंदु मात्र दिखता है। वह सारे संबंधों को स्वप्नवत समझकर सबके हर्ष-शोक से मुक्त रहता है। गुरुदेव कहते हैं "यदि तुम मेरे समान स्थिति चाहते हो तो सबकी आशा-वासना छोड़कर मेरे समान ही निष्काम हो जाओ, फिर सब सुख तुम्हारे पास है[२]।" यहां का सुख वैषयिक नही है, यह आत्मिक सुख है जिसे जीवन्मुक्ति सुख कहते है। सद्गुरु ने जीवन्मुक्ति स्थिति का 'सब दुःख रहित' तथा 'सब सुख पूर्ण[३]।" निषेधात्मक तथा विधेयात्मक दो तरीको से वर्णन किया है। सब दुःखो का अंत और सब सुखो की प्राप्ति ही तो मुक्ति है। वस्तुतः दुःखों के अन्त होने पर सुखो की लालसा ही नही रह जाती और यही सब सुखों की प्राप्ति है। कबीरदेव ने शरीर रहते-रहते मुक्ति स्वीकार की है। वे कहते है "जीते जी यदि भव-बंधनो से छूट कर मुक्त नही होगे, तो मर जाने पर क्या मुक्त होगे[४]।"

मरना कोई बड़ी घटना नही है और न उससे मौलिक वस्तु मे बदलाव ही होता है। जो तथ्य शरीर रहने पर है, वही शरीर की समाप्ति में भी है। अतएव जिस स्थिति को सदैव के लिए चाहते हो, उसे आज ही अपनाना चाहिए। संसार से छुटकारा चाहते हो तो आज ही सबसे क्यों नही मर जाते। आखीर विदेहमुक्ति में जब अकेले रहोगे तब सदेह में ही क्यों नही सबसे अनासक्त एवं असंग हो जाते? गुरुदेव कहते हैं "संसार के सभी लोग तो अंततः मरते ही हैं; परन्तु वे मरना नहीं जानते। वे इस प्रकार नही मरते कि पुनः न मरना पड़े। अर्थात देह मे रहते हुए सारी अहंता-ममताओं को मार कर नही मरते जिससे भवजाल से छुटकारा हो जाय। जगत के सब लोग मरते ही हैं; परन्तु वे विवेक नही कर पाते। एक मरना है सबसे अनासक्त होकर और

२. जो तू चाहे मूझको, छांड़ सकल की आश।
   मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥ साखी २६८॥
३. करहु विचार जो 'सब दुख जाई' (रमैनी २३)।
   'सब सुख तेरे पास' (साखी २६८)।
४. जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरे॥ शब्द १४॥

दूसरा मरना है मोह के वश होकर। जो सबसे अनासक्त होकर शरीर छोड़ता है वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है[५]।" सद्गुरु कबीर ने साफ शब्दों में स्वीकार किया है कि मुक्त जीव पुनः देह में नही आता। वे कहते हैं "निर्मल पुरुष जब सत्य स्वरूप की स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तब वह पुनः जन्म-मरण के झूले में नही झूलता[६]।"

मोह एवं वासना ही जीव को कहीं ले जाने में कारण हैं, जिनकी वासनाये मिट जाती हैं वे देह रहते हुए मुक्त हैं और वे ही शरीरांत में विदेह होकर सदैव के लिए मुक्त हो जाते हैं। इस क्रम में आप तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' का 'मोक्ष' सन्दर्भ पढ़े।

७९

यथार्थ ज्ञानियों की समान और निर्द्वन्द्व स्थिति

मूलभूत पदार्थो के गुण-धर्म वही रहते हैं चाहे वे जिस देश-काल में हो। जल, आग, हवा, मिट्टी या कह लो आक्सीजन, हाइड्रोजन, फास्फोरस आदि जहां भी हों अपने गुण-धर्मो के युक्त रहते हैं। इसी प्रकार चेतन-जगत की भी बात है। जहां देहधारी होता है, अपने उन्ही संस्कारों को लेकर रहता है। उनमें सामान्यतया स्वार्थ-परार्थ, क्रोध-क्षमा, कठोरता-शील, मोह-त्याग आदि द्विविध गुण रहते हैं। जड़ द्रव्यों का स्वभाव तथा वासनावशी देहधारियों की प्रवृत्ति सर्वत्र प्रायः एक जैसी ही है। इसी प्रकार राग-द्वेष से निवृत्त, देहाभिमान से रहित एवं इंद्रिय-विषयो से अनासक्त पुरुष कहीं के हो एक समान स्थितिवान होते हैं। सारे जाल मन की भ्रांति से खड़े हैं। जिनके मन की भ्रांति के जाल टूट गये हैं, जो स्वरूप भाव को प्राप्त कर सबसे अनासक्त और असंग हो गये हैं, उन सबकी स्थिति समान हो जाती है। गुरुदेव कहते हैं "जिन्होंने सत्य-असत्य के सारे भेदों को समझ लिया है और असत्य को छोड़कर सत्य मे स्थित हैं, उन सब ज्ञानियों की दशा एक समान होती है। उनमें विवाद नही

५. मरते मरते जग मुवा, मुये न जाना कोय।
ऐसा होय के ना मुवा, जो बहुरि न मरना होय॥
मरते मरते जग मुवा, बहुरि न किया विचार।
एक सयानी आपनी, परवसं मुवा संसार॥
(बीजक, साखी ३२४, ३२५)

६. कहहिं कबीर सतसुकृत मिलै, तो बहुरि न झूलै आन॥ हिंडोला १॥

होता। वो तो जो बीचके अधकचरे लोग हैं, कुछ-का-कुछ कहकर उवलते है[1]।"

जो महा शांति-सागर को पा गया है, वह उलझन में नहीं पड़ता। ऐसे पुरुष सारे अहंकारों को छोड़ कर विनम्र हो जाते हैं। तेल में जब तक पानी रहता है तपाने पर कलकलाता है। जब पानी समाप्त हो जाता है तब तेल में कलकल की आवाज नही होती। इसी प्रकार व्यक्ति के भीतर के विकार जब समाप्त हो जाते हैं, तब वह शांत हो जाता है। उसके अन्दर उद्वेग नहीं रहता। उसे ज्ञान का भी मद नहीं रहता। गुरुदेव कहते है "वह सब कुछ समझ-बूझ कर, स्वरूपज्ञान में विज्ञ होकर भी भोला-भाला बन जाता है। वह इतना सरल बन जाता है कि मानो वह कुछ जानता ही न हो। वह सारे अहंकारों को छोड़ देता है। वह शरीर बल, धन बल, जन बल, स्वामित्व बल, ज्ञान बल, शासन बल—सारे बलों का अहंकार त्याग कर निर्मानी हो जाता है, मानो उसके पास कुछ है ही नहीं। ऐसे जीवन्मुक्त संत का कोई पल्ला नही पकड़ सकता। ऐसे निर्लेप, निर्मानी संत को कोई बाध नही सकता[2]।" ज्ञानियों की यही निर्मान स्थिति है। ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं "जब ज्ञानी अपने अविनाशी आत्मा को जानकर पुत्रैष्णा, वित्तैष्णा तथा लोकैष्णा को छोड़ देता है, तब वह पांडित्य छोड़कर बालवत सरल हो जाता है। फिर वाक्यसंयम रखकर स्वरूपस्थ हो विचरता है। वही ब्राह्मण है। स्वरूपज्ञान में रमने वाला ही ब्राह्मण है। चाहे जिस साधन से हो, साधक को यही स्थिति प्राप्त करना चाहिए—'येन स्यात् तेन ईदृशः एव'। इससे भिन्न मार्ग दुःख पहुंचाने वाला है[3]।"

स्वरूपस्थिति की उच्चावस्था में पहुंच कर ज्ञानी के सारे अहंकार गल जाते हैं और वह तृणरहित अग्नि के शांत हो जाने के समान सदा के लिए शांत हो जाता है।

पहला अध्याय समाप्त

१. समझे की गति एक है, जिन समझा सब ठौर।
कहहिं कबीर ये बीच के, बलकहिं और कि और ॥ १९० ॥

२. समुझि बूझि जड़ हो रहे, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरै कोय ॥ (बीजक, साखी १९७)

३. बृहदारण्यक उपनिषद् ३/५/१।

२

पारखी संतों का परिचय और उनका ग्रंथसार

सद्‌गुरवे नम.

कबीर-दर्शन

दूसरा अध्याय

पारखी संतों का परिचय और उनका ग्रंथसार

१

प्रस्तावना

सद्‌गुरु कबीर के प्रमुख शिष्यों में से श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री जागू साहेब तथा श्री धर्मदास साहेब प्रसिद्ध हैं। किन्तु कुछ उदाहरणों एवं वैज्ञानिक कसौटियों के आधार पर श्री धर्म साहेब सद्‌गुरु कबीर साहेब के काल से पीछे लगते हैं। यदि ऐसा हो, तो भी श्री धर्म साहेब को कबीरदेव के विचार उनकी परम्परा से ग्रहण हुए ही।

सद्‌गुरु कबीर बीजक के पद बोलते थे और शिष्यजन लिख लेते थे। संग्रह हो जाने पर सभी शिष्य उसकी प्रतिलिपि कर लेते थे। उसका फल प्रत्यक्ष है कि कबीरपन्थ भर में बीजक का पाठ-पठन सद्‌गुरु कबीर के समय से अवाधगति से चला आ रहा है। अनेक हाथ लगने से और उसकी सैकड़ों प्रतिलिपियां होती रहने से उसमें पाठान्तर हो जाना स्वाभाविक बात है। प्रसिद्ध ग्रन्थों का पाठान्तर प्रायः हो जाया करता है। उदाहरणस्वरूप गोस्वामी तुलसीदास का रामचरित मानस ही ले सकते हैं, इसमें बहुत पाठान्तर मिलता है।

काशी कबीरचौरा सद्‌गुरु कबीर का मुख्य केन्द्र होने से तथा श्री श्रुति-गोपाल साहेब जैसे समर्थ विद्वान और संत के वहां उत्तराधिकारी होने से वहां

तो बीजक का पाठ-पठन होता ही रहा। श्री जागू साहेब की शाखा में भी होता रहा। श्री धर्मदास साहेब की शाखा में पंथ संवलित पौराणिक धारणा अधिक होने से विवेकप्रवण ग्रंथ बीजक के पाठ-पठन का जोर अवश्य कम था; परन्तु इसका सर्वथा अभाव वहां भी नहीं था। बीजक पर गहराई से सोचने वाले पुरुष उनकी शाखा मे भी थे। यह बात निर्विवाद प्रसिद्ध है कि उस समय बीजक का अधिक अध्ययन-अध्यापन श्री भगवान साहेब की शाखा में होता था जिसका प्रसिद्ध मठ बिहार प्रदेश के सिवान जिले में धनौती ग्राम में आज भी उपस्थित है।

२
श्री भगवान साहेब
(अनुमानतः १४६४—१५४५ ई०)

कहा जाता है कि श्री भगवान साहेब पहले प्रसिद्ध हरिव्यासी (निंबार्काचार्य मत के) वैष्णव संत थे। वे सद्गुरु कबीर साहेब के विचारों से पूर्ण प्रभावित हुए और उन्होंने सद्गुरु कबीर की शिष्यता स्वीकार कर ली। कहा जाता है कि कबीर साहेब ने उनके वैष्णव-भेष का यह विचार कर परिवर्तन नही किया कि वेष बदला हुआ देखकर इनके बहुसंख्यक भक्तो मे एक प्रश्न उठेगा और उसका समाधान करने के लिए इन्हें परिश्रम करना पड़ेगा। अतएव वे उनका वेष वैष्णवी ही रहने दिये। इसलिए आज भी धनौती शाखा के संतों का वेष प्रायः वैष्णव जैसा ही रहता है। वैसे वैष्णव तथा कबीरपंथ के वेष में कोई खास फरक भी नहीं है, अधिक चदन तथा अधिक माला हटा दें तो कबीरपंथी वेष हो जाता है; क्योंकि दोनो के वस्त्र श्वेत होते हैं।

३
बीजक टीका त्रिजो व गुरुभगवद्गूश

सद्गुरु कबीर के बीजक का जो मौलिक जीव सिद्धान्त है, श्री भगवान साहेब ने उसका गहराई से मनन-चिन्तन किया और बीजक अर्थ करते तथा सन्तो में पढ़ाते रहे। जीववाद एवं पारख सिद्धान्त परक बीजक की टीका (धनौती कबीर मठ की) कबीरपन्थ मे प्रसिद्ध है जिसका नाम 'त्रिजा' है। यह

संभवतः श्री भगवान साहेब या उनके शिष्य-प्रशिष्य द्वारा बनी थी। इसी 'त्रिजी' टीका को कहा जाता है सद्‌गुरु श्री पूरण साहेब रीवां से देखने गये थे। उनका ख्याल था कि मै भी बीजक पर टीका लिखूं और उसके पहले त्रिजी टीका देखने को मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो; परन्तु उसे देखने का अवसर उन्हें धनौती मे नही मिला। फिर लौट कर उन्होने बीजक त्रिज्या नाम की टीका लिखी, जो प्रसिद्ध है।

धनौती में बीजक की टीका-व्याख्या करते तथा उसकी उन्नति होते देखकर पीछे के काल में कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने श्री भगवान साहेब पर यह आरोप लगाया कि वे कबीर साहेब के पास से बीजक की कापी चुराकर भाग गये थे और इसका एक ग्रन्थ में चित्रण भी किया "कलिकाल खरा गया है, भागूदास बीजक ग्रन्थ चुरा ले गया। सद्‌गुरु ने कहा कि वह ऐसी हरकत करने के कारण निगुरा है। बीजक चुरा ले जाने से उसका क्या कल्याण होगा[1]।" परन्तु ऐसी बातें कुछ अनुदारो तथा ईर्ष्यालुओं द्वारा हर संप्रदाय एवं पंथ मे कही-सुनी जाती हैं और विवेकवानो की दृष्टि में इनका कुछ महत्त्व नही होता। इसी प्रसंग को लेकर श्री भगवान साहेब पर रीवांनरेश ने भी छीटाकसी की है। रीवांनरेश तथाकथित साकेतवासी श्री रामचन्द्र के उपासक थे और इसे बीजक की अपनी टीका में बैठाना चाहते थे। उधर श्री भगवान साहेब बीजक के मौलिक जीव-सिद्धान्त के व्याख्याता थे, इसलिए उन पर नरेश जी का और कटाक्ष था। श्री भगवान साहेब के जीववादी बीजक टीका की आलोचना करते हुए रीवांनरेश कहते हैं "कोई जीवात्मा मे (अर्थ) लगावै[2]। भागूदास के शिष्य प्रशिष्य ते बीजक को वितंडावाद अर्थ करिकै कबीर जी के सिद्धान्त को अर्थ जो रामनाम है ताते जीवन को विमुख करि डार्‌यो[3]।" इन सबका अभिप्राय यही है कि श्री भगवान साहेब तथा उनके शिष्य-प्रशिष्यों का बीजक का जीववादी अर्थ रीवांनरेश को खटकता था और इसलिए उनके मुख से जो बन पड़ा निकला है। बघेलवंश विस्तार ग्रन्थ में किसी अनुदार ने श्री भगवान साहेब की परम्परा की सुकीर्ति को न सहन कर छीटाकसी की ही थी, फिर क्या था रीवांनरेश को उसकी प्राचीन प्रामाणिकता के बल पर और खरा-खोटा कहने का अवसर मिल गया[4]।

१. बघेलवंश विस्तार—रीवांनरेश टीका का आदि मंगल पृष्ठ २६।

२. वही, पृष्ठ २४। ३. वही, पृष्ठ २६।

४. श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने रीवांनरेश का उपर्युक्त उद्धरण देकर और उसे सत्य मानकर लिखा है "जिस भागूदास की यह व्यवस्था है, उसके हाथ में पड़कर बीजक की क्या दशा हुई होगी, इसे ईश्वर ही जाने।" हरिऔध

इन सब बातों से यह सिद्ध हुआ कि श्री भगवान साहेब जीववाद परक बीजक के व्याख्याता थे और उनके द्वारा, या उनके उपदेश पाकर उनके किसी शिष्य-प्रशिष्य के द्वारा बीजक की 'त्रिजी' नाम की जीववादी टीका बनी। परन्तु धनौती मठ में ग्रन्थों के प्रकाशन एवं प्रचार आदि का शौक न होने से आगे चलकर असावधानी बरती गयी और आज-कल वह 'त्रिजी' नही दिखाई देती। बतायी जाती है कि वह लुप्त हो गयी। यद्यपि वहां के एक हस्तलिखित बीजक मूल के अन्त में त्रिजी के कुछ उद्धरण हैं और वहां त्रिजी नाम का भी उल्लेख है[५]। इसी त्रिजी के आधार पर 'गुरुगमबूझ' नाम की एक दूसरी बीजक टीका है। इसके शुरू में लिखा है—

"जीला छपरा, प्रगना पचलष, मौजा धनवती महंथ वाली बड़ी मठ मे। महंथ सरूप गोसाई साहेब के साहीवि मे। लीषने वाला चेतन भक्त।

एक छिछिले आलोचक हैं। किसी की बात की परख किये बिना निर्णय दे देना विद्वता नहीं है। श्री भगवान साहेब तो कबीर साहेब के शिष्य थे। वे अपने गुरु की कृति बीजक को चुरायें तथा बिगाड़ें क्यों ? वह तो उनका था ही तथा आदर की वस्तु थी। कोई कहे पुराणानुसार वेदों का चुरानेवाला शंखासुर वेदों को जरूर खराब किया होगा, और जब वेद ही खराब हो गये तब पूरे वैदिक मत की क्या दशा होगी ? तो यह तर्क भी छिछिला होगा। किसी की मजाकी आलोचना विद्वानों पर प्रभाव नहीं डालती। क्या वैदिक मत मे एक दूसरे का विरोधी एवं ठग-चोर कहने वाले नहीं है। क्या वैष्णव नारायण दास के शंकराचार्य को दानव कहने से वे दानव हो जायेंगे ? इसी प्रकार हरिऔध जी ने श्री पूरण साहेब की बीजक टीका का गहराई से मनन न करके केवल ग्रंथ चुम्बक बन कर उस पर कुछ छिछिला तर्क उपस्थित किया है। जब तक संबंधित विषय में गहरा ज्ञान न हो तब तक उस पर कुछ लिखना साहस मात्र है। और फिर श्रद्धा की भी आवश्यकता है। जिस पर श्रद्धा न हो उस ग्रंथ की आलोचना करने के हम अधिकारी नहीं है। हरिऔध ने अपनी 'कबीर वचनावली' में कबीरदेव तथा कबीरपंथ पर छिछिला तर्क ही उपस्थित किया है।

५. जब मैं ५ मई १९७८ को धनौती मठ में गया और छोटे महन्त श्री मुनेश्वर गोस्वामी से कहा आज से करीब डेढ सौ वर्ष पूर्व सद्गुरु श्री पूरण साहेब त्रिजी देखने आये थे; परन्तु उन्हें यह दिखायी नही जा सकी थी। इतने दिनों के बाद आज मैं देखने आया हूं। आप दिखाने की कृपा करें।' उन्होंने हंस कर बताया 'वह कापी लुप्त हो गयी है। उसके आधार पर बनी एक दूसरी टीका है।' उन्होंने दूसरी टीका को मुझे दिखाया और उसे मैंने लाकर उसकी पूरी फोटो-कापी ले ली तथा उसकी प्रतिलिपि करवाकर मूल कापी उनको भेज दी।

समत वोनइस सै अरसठ । १९६८ । साल भादौ सुदी तीज । ३ । सन तेर से अठारह । १३१८ । साल भादौ सुदी तीज । ३ । गुरुगमबूझ ग्रंथ परारंभ चेतन भगत भनीत क्रीत हंस कवीर गुरु ऊर भासे अभ्यासे ।"

इसमें यह साफ नहीं है कि चेतन भगत की लिखी यह टीका संवत १९६८ में ही लिखी गयी या इसकी प्रतिलिपि करने वाले ने उक्त संवत में प्रतिलिपि की। वैसे धनौती मठ की गुरुप्रणाली में श्री स्वरूप गोस्वामी सत्तहवें महन्त थे, ऐसा ग्रंथों से पता चलता है[६]। उनके बाद श्री रामरूप गोस्वामी, श्री रघुनन्दन गोस्वामी हुए तथा वर्तमान वयोवृद्ध श्री रामधारी गोस्वामी विराजमान हैं और उनके सहायक महन्त श्री मुनेश्वर गोस्वामी हैं।

धनौती द्वारा बीजक की यह प्राप्त टीका (गुरुगमबूझ) जिसकी प्रतिलिपि तथा फोटो कापी हमारे पास मौजूद है, जीववादी है। और यह भी निर्विवाद है कि इस पर श्री पूरण साहेब की टीका 'त्रिज्या' का प्रभाव किंचित भी नही है।

गुरुगमबूझ के उद्धरण इस प्रकार है—

'सेई अक्षर पढ़ि गुनि के षानी (खानी) वानी कै राह चलाये[७] है।'

"हे जीव अवुध श्रोता मन कै वीस्तार षानी वानी छोडो। हंस गुरुपद छीर थीर गह रहो। सर्व माया काल जाल पारब्रह्म ते न्यार[८]।"

"हे जीव अलह राम हंसै अंसे तुहई से हैं साई मालिक तुहइ है। जेह नर पर मेहर दया करोगे तेई भल होये प्रसीध। तुहरै सामीले सर्व षानी वानी तीरथ मुरत देवा देवि अलह राम वने वनाये है[९]।"

"तीर्थ मुर्त तुहई कीए तुहई बड़ है हंसै अंसे तु हंसै है मालीक एह सर्व तजो अपने पद में रहो[१०]।"

"पारष (पारख) वुध बिना विनास। हरि राम हीरा हरिजन भक्त जवहरी हीरा वाला हाट गुरवाई पसारे है। संत हंस गुरगमी जब पारषी

६. धनौती से प्रकाशित 'मूलबीजक' गुरुप्रणाली पृष्ठ ४१। तथा उत्तरी भारत की संत परम्परा, दूसरा संस्करण, पृष्ठ २८०।

७. अक्षर पढ़ि गुनि राह चलाया। बीजक, रमैनी ५।

८. अवधू छाड़हु मन विस्तारा॥ बीजक, शब्द ४९।

९. अल्लह राम जियो तेरी नाई। जेहि पर मेहर होहु तुम साईं॥ (बीजक, शब्द ५२)

१०. झगड़ा एक बड़ो राजाराम॥ शब्द ९१॥

(पारखी) आए तव हीरा कै साट षोट छीपल ता पोलैगे गुरवाई झूठ करैंगे। हे हीरा जीव हंस गुरुगम वीचार षोटी हाट पछवादी कीहा न पोलना न कहना मवनता साधे ऊपर भीतर हस गुरगम गमते रमना। आस्ति हसपद कहे त कोई न वुझै वीना आस्तिका ब्रह्म सुझै। हीरा जीवै हीरी मने वीकट नारी वेधै मारै। ज्ञान रतन हंस गुरगम कोठरी देह मे ताला चुपक लावै। जव पारषी वुझै वाला मीलै तव षोले मीठे वचन से वुझावै सुनावै। सतगुर ब्रह्मा विष्न महेस गायत्री आदिक गुरवन्ह कै वात सुनके तजना सीर भार धारना नही मानना नही। कर्हहि कबीर गुरहस हजूर पास मे हे जीव सभारना[11]।"

"हसगुर कवीर छीर पाच ततु छठम जीव ते जानना[12]।"

इस टीका मे श्री चेतन भगत ने पूर्वपक्ष को वकमुख तथा उत्तरपक्ष को जो सद्गुरु कबीर का सिद्धान्त है हंसमुख कहा है। इससे कहीं-कहीं 'हंसै अंसे' शब्द सहसा भ्रम उत्पन्न करता है; परन्तु कुछ ही पृष्ठ पढ़ जाने पर साफ हो जाता है कि अंसे का अर्थ स्वरूप है। अतएव 'हंसै अंसे' का तात्पर्य है हंस स्वरूप, चेतन स्वरूप। धनौती मठ में आज भी किसी प्रकार धर्माचरण के बाहरी आडम्बर नही हैं। यहां नित्य संध्या में बीजक का पाठ होता है। यहा किसी प्रकार का जड़पूजन नही है। आज भी यहां जीववादी पारखी सत पाये जाते हैं। धनौती कबीरमठ अपने प्राचीन युग से जीववादी बीजकपाठी रूप में प्रसिद्ध है। आजकल कुछ लोग भले भिन्न विचार रखते हों।

धनौती शाखा मे जो जीववाद एव पारख सिद्धान्त की विचारसरणी अति प्राचीनकाल से मिलती है, वह वहां के किसी एक साधु की कल्पना नही है; किंतु सद्गुरु कबीर से प्राप्त अति प्राचीन वहां की समृद्ध परम्परा की देन है। उस पर सैकड़ों वर्षो से हजारो साधु-भक्त चिंतन, प्रवचन एवं आचरण करते आये हैं।

४

श्री गुरुदयाल साहेब

(अनुमानतः जन्म १६८० मृत्यु १७६० ई०)

विहार प्रदेश के पटना जिले में फतुहा एक वड़ा कस्वा है। उसमें श्री कवीर साहेव का वहुत वड़ा और प्रसिद्ध मठ है। उस मठ की परम्परा अति

११. बीजक, साखी १५७, १८५, १८१, २१४, २३६, २४८।

१२. बीजक, साखी ११०।

(यहां बीजक के पद्यों की संख्या इसी टीका के अनुसार है)

प्राचीन है। श्री गुरुदयाल साहेब इस मठ के आज[1] अध्यक्ष के पूर्व दशवें अध्यक्ष थे। यदि एक महंत का समय पचीस वर्ष माना जाय तो श्री गुरुदयाल साहेब का समय आज से पूर्व दो सौ वर्ष होता है। श्री रामरहस साहेब जो श्री गुरुदयाल साहेब के शिष्य बताये जाते हैं का जीवनकाल वि० सं० १७८२-१८६६ था[2]। तो निश्चित ही श्री गुरुदयाल साहेब का जीवनकाल विक्रमी १८वीं सदी रहा होगा। अतएव उनका जीवनकाल आज से दो सौ वर्ष पूर्व ठहरता है। खोज करने पर भी श्री गुरुदयाल साहेब का कोई जीवन वृत्त नही मिलता। इतना कहा जाता है कि वे यादव कुल से आये हुए एक प्रतिभावान एवं विद्वान संत थे।

कबीर परिचय

सद्गुरु कबीर के समय से ही बीजक की पढ़ाई-गुनाई चलती रही तथा उस पर लोग टीका-व्याख्या करते रहे और उसके सिद्धान्त पर मौलिक रचनायें भी करते रहे; जैसे मैं अभी धनौती की बीजक टीका का उल्लेख कर आया हूं। बीजक के बाद उसके जीववादी पारख सिद्धान्त पर मौलिक ग्रंथ जो प्रकाश में आकर प्रचलित है वह है श्री गुरुदयाल साहेब रचित 'कबीर परिचय'। कबीर परिचय का रचना काल विक्रमी सं० अठारहवी है। श्री गुरुदयाल साहेब के विषय में यह पता नहीं चलता कि उनका जन्म स्थान कहां था तथा उनके माता-पितादि कौन थे। इतना निर्विवाद है कि आज से पूर्व दशवी पीढ़ी में वे स्थानाध्यक्ष थे और वैराग्यवान परम पारखी संत थे। फतुहा कबीरमठ प्राचीनकाल में पारखी संतों का केन्द्र था।

आपकी एकमात्र रचना 'कबीर परिचय' को देखने से पता चलता है कि आप की शास्त्रों में गहरी पैठ थी। आप बीजक के विज्ञाता के साथ वैदिक शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता थे तथा जैन, इस्लाम आदि मतों का भी आपको अच्छा ज्ञान था। आपके 'कबीर परिचय' के ज्ञान एवं तर्क प्रवणता पर रीझ कर एक विज्ञ पंडित श्री रामरूप पाण्डेय ने ग्रंथ के प्रत्येक साखी और शब्द को श्लोक तथा शिखरणी में रच डाला; परन्तु उन्होने यह गलती की कि संस्कृत श्लोकों तथा शिखरणियों को पहले मूल रूप में रख कर श्री गुरुदयाल साहेब के हिंदी

१. आज विक्रम सम्वत् २०३६। श्री हनुमान साहेब कृत कबीर परिचय टीका, पृष्ठ ६।

२. पंचग्रंथी टीका श्री राघव साहेब।

साखियों एवं शब्दों को टीका रूप में उनके नीचे रखा तथा ग्रन्थ के ऊपर 'कबीर कृत कबीर परिचय' छाप दिया और गुरुदयाल साहेब का कही नाम नही रखा। यह सत्य का लोप करना हुआ; परन्तु कबीर परिचय श्री गुरुदयाल साहेब की रचना प्रसिद्ध थी। उसे श्री काशी साहेब ने पंचग्रंथी आदि के साथ वि० सं० बीसवी के उत्तरार्ध में संपादित करके मूल रूप में बंबई वेंकटेश्वर प्रेस में छपवाई थी और पीछे श्री राघव साहेब ने उसकी टीका लिखी जो वि० १९८८ में बड़ोदा से प्रकाशित हुई। पंडित श्री रामरूप पाण्डेय का दो साखियों पर अनुवाद यहां नमूना रूप मे दिया जाता है—

मूल साखी—कबीर काहू अस कही, कान काग लिये जाय।
कान न टोवै बावरा, खोजै दहु दिश धाय ॥१॥
चोर चले चोरी करन, किये साहु का भेष।
गल्ले सब जग मूसिया, चोर रहा अवशेष ॥२॥

अनुवाद श्लोक—कश्चित्कर्णं गृहीत्वा ते काकोयातीदमब्रवीत।
प्रमादी कर्णमस्पृष्ट्वा दिक्षु धावति वीक्षितुम् ॥
चोरश्चोरयितुयातो वेषंकृत्वा वणिकपतेः।
शेवधिं जगतां नीत्त्वा चोरएवावशिष्टवान्[३] ॥

कबीर परिचय में ३४६ साखियां तथा ११ शब्द है। वाद, जल्प और वितंडा—तीनों प्रकार के कथन इसमे पाये जाते है। सात्त्विक चर्चा 'वाद' है, निज मत का प्रतिपादन तथा दूसरे मत का खंडन जल्प है और अपना कोई मत न रख कर केवल दूसरे मत का खंडन या उस पर तर्क करते जाना वितंडा है। इसमे बड़ी गहराई और तर्कपूर्ण ढंग से तीनो कथनो का विस्तार है।

आलोचना

किसी ने कहा तुम्हारे कान को काट कर काग उड़ा जा रहा है, सुनने वाला पागल व्यक्ति अपने कान न टटोल कर काग को खोजने दशो दिशाओं में दौड़ता है। इसी प्रकार तुम्हारा परम लक्ष्य अलग है ऐसा किसी अनद्गुरु के कहने से व्यक्ति उसे अपने में न खोज कर वाहर दौड़ता और खोजता है। शब्द जड़ विपय हे और ब्रह्म-ईश्वर भी शब्द ही है। गुरुजनों का शिष्यों को स्वस्वरूप चेतन का परिचय न देकर केवल शब्द हो की उपासना में लगाना माता द्वारा ही पुत्र को विप देने के समान हुआ और अपनी बातों को आगे

३. श्री राघव साहेब कृत कबीर परिचय टीका, भूमिका पृष्ठ ६।

ही कानों से न सुनने-जैसी बात हुई। जीव की कल्पना जीव ही को दुःख दे रही है[४]।

न कही देवलोक है, न उसमें उर्वशी है; वस्तुतः जो सबके उर (हृदय) में वासना वसी है वही उर्वशी है और अपने आप को छले वह वासना ही अपछरा-अपसरा है। यह काली सुंदरी (वाणी) ही अल्लाह होकर बैठी है। लोग कल्पित वस्तु की वंदना करते है और जो प्रत्यक्ष सबका कल्पक चेतन जीव है उसको तुच्छ कहते है[५]।

जो लोग जड़-चेतन तथा विधि-निषेध से आंखें मूद कर सब एक ब्रह्म सिद्ध करने की चेष्टा करते है उनकी बात तब मानी जायगी जब जहर और खोया-दूध में एक सदृश गुण हो, जल तथा आग के भी गुण समान हों। जब तत्त्व एक ही है तब कौन किसको उपदेश कर रहा है ? पहले रस्सी और सर्प को देखे बिना रस्सी देखकर उसमें सर्प का भ्रम कैसे होगा ? ज्ञाता-ज्ञेय, ध्याता-ध्येय और द्रष्टा-दृश्य को एक मे मिलाने का प्रयत्न शब्द मात्र है। अद्वैत की बात करना, द्वैत को ही सिद्ध करना हुआ; क्योंकि द्वैत की प्रतीत हुए बिना बात करना संभव नही। इस रहस्य को न परख पाना सूक्ष्म अज्ञान हैं। यदि ब्रह्म तुम्हारा प्राप्य पदार्थ है तो तुम कौन हो ? कौन उपदेश करता है तथा कौन सुनता है[६] ?

सयाने लोग कहते हैं कि मिट्टी से घड़ा उत्पन्न होने के समान ब्रह्म से ही जगत उत्पन्न हुआ है, अतएव जगत के मूल ब्रह्म का त्याग किये बिना जगत का त्याग कहा संभव है ? ब्रह्म जगत का बीज है, अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, अतः यदि ब्रह्म का त्याग नहीं किया तो जगत ब्रह्म मे लीन होने के कारण जगत से वैराग्य कहां हुआ ? सूर्य जैसे अपनी किरणों को अपने से अलग नही कर सकता, वैसे ब्रह्म जगत को अपने से पृथक नही कर सकता। अतएव जिसे जगत-बंधन से छूटना है, उसे ब्रह्म-बधन से छूटना पड़ेगा[७]।

पंडित ! तुम चौबीस अवतारो की कल्पना करते हो और उन्हे जभत का कर्ता बतलाते हो; जगत तो पहले से था और अवतार जगत के भीतर ही हुए, फिर वे कर्ता कैसे ? जब एक भी अवतार नही हुआ था, तब क्या मनुष्यो का कल्याण नही होता था ? ब्रह्म की इच्छा से जगत का उत्पन्न होना कहते

४. साखी १, १३, १५, १६, १७, २६।

५. साखी ३४, ३५, ४६।

६. साखी ६६, ६७, ६९, ७५, ८८, ९८, १०८।

७. साखी ३२३, ३२४, ३२५।

हो और उसे इच्छातीत भी कहते हो, यह विरोधी बातें हैं। तुम कहते हो ईश्वर या ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है; जब देहधारी जीव शरीर छोड़ देता है तब तुम्हारे ईश्वर के व्यापक रहते हुए भी शरीर सड़ जाता है। अतएव जीव सत है, और व्यापक ईश्वर एक धारणा है। प्रकृति का संचालन अपने गुणों से होता है, यह वोध होने पर व्यापक चेतन का भ्रम मिट जाता है[८]।

स्व-सिद्धान्त

जो कहता है कि 'अपना स्वरूप पृथक है और वह साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है,' वह धोखा में पड़कर खो गया। जो अपने आप को वाह्य मन-इन्द्रियों-द्वारा जानना चाहता है, वह व्यक्ति डांवांडोल है। अरे, यह जीव ही तो सबका ज्ञाता है। सबको जानने वाले का कौन जाने ? अधिक मत संचालक आचार्यगण जीव को अंश, प्रतिविम्ब, अल्पज्ञ, तुच्छ आदि कहकर उसका निरादर करते हैं। यह बड़ा आश्चर्य लगता है कि वे किसको कल्याण का उपदेश कर रहे हैं। जब जीव स्वयं तुच्छ है तो महान कैसे हो सकता है ? क्या उधारी के सौदा से। जिसमें स्वयं पूर्णता नहीं होगी, वह दूसरे से पूर्णता नही पा सकता। जीव पूर्ण है, महान है। वह केवल अपने स्वरूप को भूला है। उसे अपने आप की याद हो जानी चाहिए, वस वह पूर्ण है। जीव के बिना आत्मा, ब्रह्म, शिव किसी की सिद्धि नहीं होती; अतएव जीव ही सर्वोपरि है। यह तो न विनशने वाला नित्य है। स्वस्वरूपज्ञान बिना सब धोखा है। जीव ही सत्य है। यह अपने को न जान कर भव-बंधनो मे बंधा है और अपने को जान तथा स्थित होकर कृतार्थ हो जाता है[९]।

नास्तिक कौन ?

एक दूसरे को लोग नास्तिक कहते हैं; परन्तु विचार नही करते। वस्तुतः जो कृत्रिम, कल्पित, ज्ञेय को कर्ता कहते है वे ही नास्तिक है। जिसका इष्ट प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक न हो, जो किसी अज्ञात कल्पित वस्तु का स्वप्न देखता है, उसे नास्तिक कहना चाहिए। जो सबका द्रष्टा-मंता है उसका निरादर करना और जो नही है उस कल्पित वस्तु एवं मिथ्या धारणा का सम्मान करना अज्ञान एवं नास्तिकता है। जिसके वचनो मे जीव को अंश, प्रतिबिम्ब, प्रतिभास आदि कह कर तुच्छ बतलाया जा रहा है, वह आस्तिकता की चादर में छिपा हुआ महान नास्तिक है[१०]।

८. शब्द १।
९. साखी २२, २३, २५५, २५६, ३४५, ३४६।
१०. साखी ७०-७३, २५९।

नैतिकपक्ष

जो सेवापरायण और विनयी होता है, वही आगे चल कर सेव्य एवं पूज्य हो जाता है। मनुष्य को लघुता से ही गुरुता मिलती है। सभी सम्प्रदाय, पंथ, समाज, शाखा, शैली का मूल गुरु होता है। यदि बोधदाता सद्गुरु को छोड़कर कल्याण-प्राप्ति के लिए अन्य परम्परा कही या मानी जाय तो उसमें भी बोधदाता सद्गुरु ही होंगे। जो लोग प्रत्यक्ष बोधदाता ज्ञान-आचरणनिष्ठ संत-गुरु की अवहेलना करके किसी अदृश्य कल्पना के अधीन अपना कल्याण चाहते हैं वे धोखे में हैं और अंततः दुःख के पात्र हैं। यथार्थ सद्गुरु की शरण बिना, संदेह दूर नहीं हो सकता। गुरु कृपा से ही संशय का शमन होकर बोध का प्रकाश होगा। संसार का जितना ज्ञान है सबका अंत है; संत या गुरु वही है जो नाशवान वस्तुओं का मोह नहीं करता। जीव का संसार से संबंध मन द्वारा ही होता है। यदि मन को निग्रंथ एवं अनासक्त कर लिया जाय तो जीव जगत से अनाकृष्ट एवं असंग हो जाय। सामने पड़ने वाली ज्ञानवृत्ति ही जीव के लिए आवरण है। ज्ञेय को हटाकर ज्ञान शुद्ध पारख है। द्रष्टा अभ्यास या समाधिकाल में जगत का उसे अत्यन्त अभाव रहता है। परन्तु व्यवहार-काल में भी विवेकी विषयों से अत्यन्त अनासक्त रह कर स्वरूप-विचार मे शात रहते हैं। जब तक संसारासक्ति का अत्यन्त अभाव नही होता, तब तक वह पूर्ण संत नही। साधु का सौदर्य उसकी ज्ञान-वैराग्यमय दिव्य रहनी है, जैसे मोती में उसकी चमक। मोती मे चमक न हो तो वह बेकार है, साधु मे दिव्य रहनी न हो तो वह बेकार है[११]।

अकर्तव्य कर्म न करना तथा कर्तव्य कर्म करना—बस सारे वेद-शास्त्रों का यही मत है। अब चाहे इसे कागज मे लिखकर सुनावे और चाहे मुख से सीधे सुना दे। बात-बात में शास्त्रो की दोहाई देना बेकार है। जो बात विवेक पूर्ण है वह कही की हो, मान्य है। जैसे पूर्वा पवन से फल और जल फीके हो जाते हैं इसी प्रकार गुरु उपदेश रूप स्वरूपबोध की स्थिति से कर्मबन्धन निस्तेज होकर नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान की बात तो सब करते हैं; परन्तु कोई तो बंधनो में अधिक फंस जाता है, कोई इन्द्रिय भोगो मे फंस जाता है, कोई अपने मार्ग में अन्य रोड़े अटका कर रुक जाता है। ससार मे जीव, ईश्वर और गुरु—ये तीन की माया प्रबल है। विषयों में लोभवश फसकर दुःख उठाना यह जीव की माया है, जगत को देखकर इसके बनाने वाले किसी ईश्वर की कल्पना में पड़ कर भटकना यह ईश्वर की माया है और आंख मूद कर किसी गुरु के पक्ष में

११. साखी १४७, १४८, १४६, ३०३, ३०४, ३०८, ३३२।

पड़ जाना यह गुरु की माया है। जीव की माया खानी जाल, ईश्वर की माया वाणी जाल इन दोनों से छूट सकते हैं; परन्तु गुरु का मिथ्या पक्ष रूप माया जो वाणी का ही एक सूक्ष्म रूप है, छूटना कठिन है। वह जीव को ढांकने वाली हो जाती है। अर्थात व्यक्ति विवेक छोड़कर गलत गुरु के पक्ष मे पड़ा-पड़ा अपना जीवन नष्ट करता है। दूसरे प्रकार की तीन और माया है—द्रष्टा, आग्रही और निर्वचनी (मौन, कथन से परे)। ब्रह्म-जगत की भिन्नता का भास यह द्वैत द्रष्टा माया है; जीव, ईश्वर तथा प्रकृति मत आग्रही माया है तथा अद्वैतवाद निर्वचनी (मौन एव कथन के परे की) माया है जिनकी परम्परा में ही भ्रांति और मलीनता चली आयी हो, उनके उद्धार का क्या रास्ता है? विषयासक्ति जीव को जन्मादि में भटकाने वाली है, उसको त्याग कर ही जीव का कल्याण है। जीवन में कर्म की आवश्यकता है। ध्यान रहे, हर कर्म जीव को वंधन में नही डालता। बीज को खेत में बोना एक कर्म है जिससे फसल होती है और बीज को आग में भूनना भी एक कर्म है उससे जरा भी अंकुर नहीं उगता। इसी प्रकार विषयासक्तियुत कर्म जीव को बांधता है और अना-सक्त होकर अपने और दूसरे के कल्याण के लिए किया गया कर्म जीव के मोक्ष में सहायक होता है। अपने-अपने ढंग से सब मोक्ष मानते हैं; परन्तु मेरे ख्याल से वासना त्यागकर वर्तमान में ही संतुष्ट हो जाना मोक्ष है[१२]।

५

श्री रामरहस साहेब

(जन्म सन् १७२५ मृत्यु १८०६ ई०)

विहार प्रदेश में टेकरी नाम का एक छोटा राज्य था। उनके समसाम-यिक राजा श्री मित्रजीत सिह थे। वे धर्मात्मा और न्यायी थे। उनके मंत्री विद्वान ब्राह्मण 'भगवानदेव द्विवेदी' थे। संवत १७८२ में उनको एक बालक हुआ जिसका नाम 'रामरज द्विवेदी' रखा गया। लड़का अपनी माता से नया गया की राजकीय पाठशाला में संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया।

रामरज द्विवेदी ने वैवाहिक जीवन स्वीकार नहीं किया और वैराग्य मार्ग अपनाकर आजीवन साधु दशा से रहे। आप [illegible] नाम [illegible]

१२. साखी १५०, १५१, १५२, १५३, १८६, १८७, १८८, ३३५, ३३६, १८९, २५३, ३३८, ३४४।

'रामरहस दास' पड़ा, जिनको हम श्री रामरहस साहेब कहते हैं। कुछ संतों एवं विद्वानो के विचार से आपका घर से सीधा सम्बन्ध काशी कबीरचौरा के पन्द्रहवें महंत श्री शरण साहेब से पड़ा और आप उनके शिष्य हुए और कुछ संतों एव विद्वानो के विचार से आपने पहले वेदान्त-मार्ग का अनुसरण किया और पीछे फतुहा के श्री गुरुदयाल साहेब से सम्पर्क होने पर आप उनके शिष्य हो गये और उनसे बीजक आदि ग्रन्थ पढ़े-समझे। पीछे काशी कबीरचौरा के उक्त श्री महत साहेब से सम्पर्क हुआ और फिर काशी कबीरचौरा से जीवन के आखीर तक पूरी घनिष्टता रही।

श्री रामरहस साहेब को राजा मित्रजीत सिंह ने गया मे एक बाग देकर तथा उसमें एक गुफा बनवा कर वहां रहने का आग्रह किया और वे भारत के अन्य क्षेत्रों में समय-समय से भ्रमण करते हुए भी गया के उस बाग में रहते रहे। आज भी उस बाग का नाम 'कबीर बाग' है और काशी कबीरचौरा के अधिकार में है। वस्तुतः श्री रामहरस साहेब फतुहा के श्री गुरुदयाल साहेब तथा काशी कबीरचौरा के श्री शरण साहेब—दोनो से प्रभावित थे। श्री रामरहस साहेब का शरीरांत वि० सं० १८६६ मे गया के कबीर बाग में हुआ।

पंचग्रंथी

श्री रामरहस साहेब एक महान विद्वान, प्रतिभा के धनी तथा मेधा-सम्पन्न पारखी संत थे। आप-द्वारा रचित 'पंचग्रंथी' जैसी सर्वांगीज पुस्तक पारख सिद्धान्त एवं कबीरपंथ मे तो है ही नही, अन्यत्र भी उसका जोड़ा मिलना कठिन है। आपने उसमें साधारण मनुष्याचरण से लेकर वेद-वेदान्त के उच्चतम माने जाने वाले सिद्धान्तों का विविध विधि से विश्लेषण किया है। पंचग्रन्थो यद्यपि दोहा, चौपाई, शब्द आदि के रूप में पद्यात्मक है, तथापि उसे बीजक की प्रथम भावात्मक टीका मानी जाती है; क्योंकि बीजक के वास्तविक सिद्धान्त का इसमें स्पष्टीकरण है। पारख सिद्धान्त के विशेषज्ञ को यह विदित ही है, आलोचक विद्वान भी मानते है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं 'कबीरपथी रामरहस साहेब ने इस युग के ही आरम्भ में 'बीजक' के वास्तविक रहस्य को स्पष्ट करने के लिए अपनो प्रसिद्ध पुस्तक 'पंचग्रंथी' का निर्माण किया। अपने पांडित्यपूर्ण सिद्धान्त-विवेचन द्वारा आगे आने वाले टीकाकारो के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर दिया। पूरन साहेब की 'त्रिज्या' नाम की बीजक-टीका तथा भिन्न-भिन्न विचारों के आधार पर निर्मित अन्य अनेक टीकाओं के

लिए भी उक्त व्याख्या आगे चलकर पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुई[1] ।" सद्गुरु कबीर के बीजक के बाद पारख सिद्धान्त का प्रसिद्ध और प्रकाशित दूसरा ग्रन्थ श्री गुरुदयाल साहेब-रचित 'कबीर परिचय' है जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं और तीसरा ग्रंथ श्री रामरहस साहेब-रचित पंचग्रंथी है जिस पर हम आगे कुछ निवेदन करेंगे । श्री रामरहस साहेब ने अपने सिद्धान्त के सभी विषयों को पुष्ट करने के लिए बीजक के पदों का खूब प्रमाण दिया है । प्रायः हर प्रसंग के अन्त मे बीजक के प्रमाण हैं। पंचग्रथी मे पांच प्रकरण हैं—पंचकोश, समष्टिसार, मानुषविचार, गुरुबोध और टकसार । ये उत्तरोत्तर विस्तृत है ।

पंचकोश

पहला प्रकरण पंचकोश है । इसमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय (आनन्दमय) कोशो का विस्तृत वर्णन है । इसमें प्रत्येक कोश के देह, आश्रम, चिन्ह, आचार, प्रलय, दशा, अवस्था, साधन, मुक्ति, अभिमान, दीक्षा, आनन्द, आकार, देवता, शक्ति, अग्नि, पाद, मुद्रा, मात्रा, गुण, द्वार, ब्रह्म, स्थान, दिशा, कर्म, भेद, वर्ण, उच्चारण, वेद, तत्त्व, कोणदिशा, अभिमानी देवता, स्वर, वायु, आकाश, चक्र, कमलदल, मार्ग, ऋचा, कला, लोक, विचार, भूमिका, अभाव आदि अगो का वर्णन है । ये सारा वर्णन वैदिक और आगम शास्त्रों के अनुसार करके इनके जालों से पृथक पारखबोध का संकेत दिया गया है । इसके वर्णन करने का तात्पर्य यही है कि इस वाणीजाल मे उलझो मत, स्वस्वरूप विचार में शांत होओ । ग्रंथकार ने बताया है कि लोग नाना वाणियो मे इस प्रकार उलझे हैं । बिना पारखबोध हुए इस कालजाल से छूट पाना असंभव है[2] ।

समष्टिसार

विषयो मे डूबे लोग पारख-ज्ञान बिना कैसे पार पा सकते है । भ्रम का अनिश्चय का वृक्ष है, अनेक मत तथा उनके आचार्यगण उनकी शाखाये हैं तथा उनकी विविध वाणियां तथा मान्यताये पत्र हैं जो महा भवचक्र है । यह संदेह का वृक्ष फूलता-फलता रहता है । यह संसार का स्वरूप अनेक संदेहों का ...

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ७६८, द्वितीय संस्करण, लीडर प्रेस इलाहाबाद ।
२. पंचग्रंथी, पंचकोश, दोहा १४, १५ ।

है। इसके समाधान मे जो ब्रह्म की कल्पना की गई है उससे समाधान न होकर वह स्वयं एक संदेह बनकर उपस्थित हो गया है[३]।

इस प्रकरण में घटाकाश, मठाकाश, महदाकाश, भूर्भुवः स्वः तथा एं, ह्रीं, क्लीं तथा अनेक त्रिपुटियों का वर्णन है। तुरीयातीत, चारों वेदों के ब्रह्म विषयक विचार एवं निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप कथन है। प्रणव का स्वरूप, उसकी तथा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति वैदिक साहित्यानुसार वर्णित है। जैसे रज-वीर्य से शरीर की उत्पत्ति और विनाश है, वैसे पृथ्वी की भी—इस दूसरे की मान्यता का स्वरूप बताया गया है। नित्य प्रलय, जलामय प्रलय, एकांतिक प्रलय तथा महाप्रलय और प्राग, प्रध्वंस, अन्योन्य तथा अत्यन्त[४] अभावो का वर्णन है। पिंड, उसमें सूक्ष्म पंचवायु तथा रेचक, पूरक, कुंभक का वर्णन है। वैदिक साहित्यानुसार चतुष्टय अंतःकरण, पिंड के पांच वायु, ज्ञान-इन्द्रिय, पांच कर्म-इन्द्रिय, पांच विषय, पचीस प्रकृति आदि का उत्पत्तिकथन है। तीन, पांच, छह, सात, आठ, नौ आदि अंगो की माया का वर्णन है। मतो की अनेकता, व्यावहारिक तथा पारमार्थिक चर्चा और मन के भास को ही ब्रह्म मान लेने का वर्णन है। योगियों का शरीर में ही सात स्वर्ग, सात पाताल मानना तथा वर्ण, श्वास, कमलदल आदि का वर्णन है। पन्द्रह इन्द्रिया, उनके विषय तथा देवताओं का क्रमशः अध्यात्म, अधिभूत और अधिदेव के रूप में वर्णन है। अनेक मतो का दिग्दर्शन, एक से लेकर अनेक अकों पर वस्तु एवं व्यक्तियों के वर्णन हैं। अंततः कुछ मुसलिम विचारो का दिग्दर्शन कराकर यह दूसरा प्रकरण समाप्त हो जाता है। प्रकरण के अत में ग्रंथकर्ता कहते हैं कि उपर्युक्त सारे जजालो की शब्दोके विवेकी पुरुष परख करते हैं। वे सब संदेहो से तर कर निर्भ्रांत हो जाते हैं। ग्रंथकर्ता कहते है कि मनुष्य नाले, नदियो तथा समुद्र को भी पार कर जाता है; परन्तु मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के चतुष्टय अंतःकरण में गोता खाता है। अतएव मन की धारा से पार होने वाला ही संसार से पार है।

मानुषविचार

इस तीसरे प्रकरण में मानव के शुद्ध आचार, विचार एवं व्यवहार पर जोर दिया गया है। ग्रंथकर्ता ने इस प्रकरण के आरम्भ मे बीजक साखी[५] का

३. पं० समष्टिसार, साखी २, ३। चौकड़ी १।

४. चार प्रकार का अभाव है प्राग्, प्रध्वंस, अन्योन्य तथा अत्यंत। इसके लक्षण आगे चौथे अध्याय के 'वैशेषिक दर्शन' के सातवें पदार्थ में देखें।

५. बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल ल कीजिये, बिना बास का फूल॥ २३३॥ बीजक, साखी॥

प्रमाण देकर कहा है कि मनुष्य-मनुष्य तो सब कहलाते हैं; परन्तु मनुष्य की बुद्धि विरले व्यक्ति के पास है। भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा तथा मोह—ये छह पशुकर्म मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब देहधारियों में हैं। इनमें सब देहधारी प्रवीण हैं। यदि मनुष्य भी केवल इन्हीं में निपुण है तो वह पशु-पक्षी से अधिक नहीं है। वह भले वेष-भूषा एवं विद्या से बना-ठना हो; परन्तु वह अपने और समाज को धोखा ही दे रहा है। मनुष्य-शरीर दुर्लभ है; परन्तु उससे अधिक संसार में मनुष्य-बुद्धि दुर्लभ है। मनुष्य में विचार, शील, दया और वीरता—ये चार मुख्य गुण हैं। जो व्यक्ति इन सद्गुणों से युक्त होता है वह सब प्रकार से अपना तथा दूसरे का कल्याण करता है।

छह पशुकर्म सुधार

मनुष्य को चाहिए कि वह शरीर के रक्षार्थ वस्त्र तथा मकान का उपयोग करे, विलास के लिए नहीं। मनुष्य के चरित्र का आच्छादन एवं रक्षा करने वाला सुसंग है। अतएव वह यदि अपना भला चाहे तो कुसंग को विषवत त्याग कर सुसंग में रहे, क्योंकि अच्छी संगत से अच्छी बुद्धि और बुरी संगत से बुरी बुद्धि होती है। दूसरा भोजन का सुधार है। वह अपनी मेहनत की कमाई या दूसरे द्वारा श्रद्धा से दी हुई पवित्र वस्तु का पवित्रता पूर्वक आहार करे। नशा की सारी वस्तुओं का त्याग करे चाहे वह तम्बाकू हो या शराब या अन्य मादक द्रव्य। अण्डा, मांस, मछली कभी न खाये। साग, फल, अन्न आदि शुद्धता पूर्वक खाये। वृक्ष, वनस्पति, गुल्म, लता आदि निर्जीव होते हैं[६]। जैसे शरीर के बाल काटने से दर्द नहीं, वैसे अन्न-फलादि काटने-तोड़ने में उन्हें दर्द नहीं; क्योंकि वे निर्जीव हैं। अतएव मनुष्य का आहार अंकुरज फल, अन्नादि है; मांस तो कुत्ता आदि अधम प्राणियों का भोजन है और जीव वध करने के लिए तो स्वयं पूरा काल बन जाना पड़ता है, जिसका फल अधोगति है[७]।

तीसरे मैथुन कर्म पर विचार करना चाहिए। इसमें क्षण मात्र भ्रम-जनित सुख है और परिणाम में नाना दुःख है। एक कामवासना के पीछे संसार के सारे उपद्रव आते हैं। गृहस्थ को भी एक-दो संतान उत्पन्न हो जाने पर संयम से रहना चाहिए और साधु को तो सदैव ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। चौथे भय का सुधार भी अति आवश्यक है। सारा भय शरीर को लेकर है और यह रहने वाला नहीं है। पांचवें नींद का सुधार करना चाहिए।

६. वृक्ष-वनस्पतियां निर्जीव हैं, इस सिद्धान्त का साहित्य में बीजारोपण पारख-सिद्धान्त में यहीं शुरू होता है (चौपाई ४) और गुरबोध प्रश्न १०।

७. साखी-५।

शरीर की विश्रांति के लिए नीद लेना चाहिए; परन्तु जो गला तक खाता है और चद्दर तान कर अधिकांशतम समय सोता है, वह भोदू यह नही जानता कि मैं कौन हूं और संसार क्या है ? छठा मोह है, इसका त्याग आवश्यक है। क्योकि परिवार, साथी आदि का मिलना स्वप्न के समान झूठा है, फिर इनमे मोह रखने से जीव आज बन्धनो मे पड़ा रहता है तथा आगे आवागमन से निवृत्त नही हो सकता। सत्य रहनी-गहनी की आवश्यकता है। जिस प्रकार जीव का कल्याण हो लज्जा छोड़कर वही काम करना चाहिए[८]।

शील

उपर्युक्त छह पशुकर्मो का सुधार एक विचार सद्गुण की व्याख्या में वर्णित है। विचार के बाद दूसरा सद्गुण शील है। अपना माना हुआ सब कुछ का एक दिन विनाश समझ कर विनम्र होना चाहिए। बुरे कर्मो से लज्जा करना चाहिए और बिना विचार किये कही पैर नही रखना चाहिए। अपने मन, वाणी तथा कर्मो से यदि किसी अन्य का उपकार हो जाय तो उसे विचार पूर्वक कर ले। अपनी शक्ति चले तक परोपकार करने मे न चूके, जो शक्ति के बाहर है उसके न कर पाने मे कोई दोष नही। जो परोपकार करने से अपनी आंखे छिपाता है वह पशु है। उसे स्वप्न मे भी मनुष्य-बुद्धि नही हो सकती। जिनकी आंखों में शील नही है वह क्रूर है। मनुष्य मे सद्गुणों की विशेषता है। उसकी देह की क्या विशेषता है जिसे मर जाने पर सियार-कुत्ते आदि खा जायेंगे। मृतक देह आग मे जल जाय या गाड़ देने पर मिट्टी में गल जाय, यही इस हाड़-चाम की देह की विशेषता है। यदि इस जीवन मे श्रद्धा, भक्ति, सदाचार न बन पड़े, तो बिना गुरुबोध उसे भव से कौन छुड़ावेगा। हे गुणवान! विचार करके देख, भक्तिहीन व्यक्ति पशु है[९]।

दया

मानव का तीसरा सद्गुण दया है। निर्दय आदमी निज-पर कल्याण का क्या विचार कर सकता है ? जिसके हृदय मे दया धर्म नहीं है, वह वासना-वश नाना योनियों में दुःख भोगता है। विवेकवान अपनी ओर से सब पर दया करते हैं, वैसे जीव अपने कर्मवश दुःख पाते ही हैं। यह संसार तो मृत्यु का स्थान है, यहां कोई किसी को मृत्यु से सर्वथा कहां बचा सकता है ? जीव संसार-बन्धनो में उलझकर जन्म-मरण के चक्कर में पड़े है। बिना यथार्थ सद्गुरु से बोध पाये यह जीव भवबन्धनो से नही छूट सकता। एक तो संसार

८. मानुषविचार, चौपाई ३-८।

९. मानुषविचार चौपाई ९।

के जीव अज्ञान-वश स्वयं दुःखी हैं, फिर यदि उनको ऊपर से और दुःख दिया जाय तो क्या विचार की बात हुई ? अतएव समझदार व्यक्ति संसार मे सबसे निर्वैरी होकर व्यवहार करता है और मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को चोट नहीं पहुंचाता। वह शक्ति चले तक परोपकार करने में मुख नही छिपाता; भूखे-नंगे को भी यथाशक्ति संतुष्ट करता है। वह विचारवान सद्गुरु के ज्ञान के वचनों में ध्यान रखकर अपना कल्याण करता है। सच्चे गुरु तथा सत्यज्ञान से ही जीव का कल्याग है। झूठे गुरु तथा मिथ्या उपदेशों से तो मूल की भी हानि है। व्यक्ति को मुख्य दया तो अपने ऊपर करनी चाहिए जो अपने आपको भव-बन्धनों से छुड़ाना है। जो अपने आप का उद्धार कर लेता है, वही दूसरे का कल्याण करता है। यह सब यथार्थ सद्गुरु के मिले बिना और उनमे अनन्य निष्ठा हुए बिना संभव नहीं है। हे मनुष्य ! यदि तू इस संसार में आया है तो माता-पिता, सद्गुरु-सन्तों एवं प्राणियों की सेवा कर और भूखे को कुछ दे।

वीरता

चौथा मानवीय गुण वीरता है। वीर पुरुष ही अपने लक्ष्य की ओर सारे विघ्नों को रौदता हुआ बढ़ता जाता है। दुर्बल-हृदय व्यक्ति कुछ नही कर सकता। पक्का निश्चय वाला ही आत्मकल्याण कर सकता है। पक्का निश्चय वाला व्यक्ति कभी चलायमान नही होता। जो लोग जुगनू के समान केवल रात में क्षगिक चमकने वाले हैं और दिन में जिनका कोई महत्त्व ही नही है, जो कछुआ तथा लोमड़ी के समान हरक्षण भयभीत रहने वाले हैं, वे क्या कर सकते हैं ? सच्चा मनुष्य तो वह है जो बिना विचार किये कुछ नही करता और विचार पूर्वक जो करना ठान लेता है, वह टल नही सकता। ऐसे विवेकी व्यक्ति से यदि भूलवश कोई गलत काम हो जाय, तो वह उसे समझते ही तुरन्त त्याग देता है। वह तो मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का अनुसरण करने वाला होता है और धोखाधड़ी वालों की संगत वह नही करता। उसको अंध परम्परा अच्छी नहीं लगती। वह किसी बात को बिना स्वयं परख लिये नही मानता। वह जब तक अपने विवेक नेत्रों से नही देख लेता, तब तक गुरु की बात को भी नहीं स्वीकार करता[१०]। गुरु का उपदेश करना शिष्य को सत्य बोध देना है; परन्तु जो गुरु नामधारी स्वयं अचेत एवं विवेकहीन है वह क्या बोध देगा ? सच्चे मानव या साधु को पक्का होना चाहिए। कच्ची सरसों पेर कर न खली

१०. **आँधरि गुष्ट न भावै कोई। बिन देखे परतीत न होई॥**
जौ लौं देखिये न अपने नैना। तौ लौ मानिये न गुरु के बैना॥

होती है न तेल। वीर नर-नारी सदैव सत्यपथ पर दृढ़ होकर चलते हैं, उनके कदम सदैव आगे बढ़ते हैं[११]।

जिज्ञासा

जिसमें पूर्ण मनुष्य-बुद्धि आ जाती है, वह अपना और लोक का कल्याण करता है। वह असत्य का त्यागकर सत्य विचार में लीन रहता है। वह जिस प्रकार कल्याण हो, लज्जा त्याग कर वह काम करता है। कल्याण से असावधान व्यक्ति ही लोक-लाज और जाति-मर्यादा के मिथ्या भ्रम में पड़कर सत्संग से रहित हो भटकते हैं। जिससे जीव का कल्याण हो वह काम करना चाहिए। व्यर्थ में झूठी मर्यादा में पड़कर क्यों पच-पच कर मरे? वह कौन श्रेष्ठ गुरु है जिससे अज्ञान दूर होता है? किसे परम गुरु मानकर उसकी सेवा की जाय[१२]? यह सब जाने बिना सब अंधेरा है। जब गुरुमत-मनमत का विचार होगा, तभी जीव भव-बंधनोंसे छूटेगा। बिना गुरुपद पाये गुरु बनने वाला क्रूर है। वे स्वयं सारहीन खलो खाते हैं और दूसरों के लिए सुगंधित कपूर बेचते फिरते है[१३]।

शब्द की प्रधानता

पृथ्वी मोटी है, अतः उसकी ऊपरी सतह पर ही देखा जा सकता है। उससे जल सूक्ष्म है, अतएव स्वच्छ जल में गहरे तक देखा जा सकता है। जल से अग्नि और सूक्ष्म है; अतएव उसमे हम धरती-आकाश सब देखते है; परन्तु अग्नि से भी वायु सूक्ष्म है; इसलिए वायु के गुण शब्द मे भूत-भविष्य-वर्तमान सब दिखता है। हम प्राचीनतम तमाम बाते पूर्व लिखित पुस्तकों से ही जानते है। वर्तमान में भी सारा व्यवहार, व्यापार, कथोपकथन, ग्रन्थ, पन्थ, पत्रिका, समाचार पत्र, बही, खाता आदि शब्द मे ही चलते है। भविष्य के लिए यथामति शोधकर उसके अनुमित ज्ञान शब्दो मे पिरो कर रखे जाते है। अतएव ज्ञान के माध्यमो में स्पर्श, रूप, रस, गंध की अपेक्षा शब्द प्रबलतम है। इसलिए शब्दों की परख न करने से मनुष्य भटकता भी खूब है। अतः शब्दों को परख कर उनका उपयोग करना चाहिए[१४]।

गुरु और उनके उपदेशों की निष्पक्ष परख

इस संसार में नाना गुरु हैं और नाना उपदेश हैं। सच्चे तो बिरले हैं और झूठे बहुत है; परन्तु बिना सच्चे के निर्णय तथा छुटकारा नही हो सकता।

११. मानुषविचार, चौपाई-११।

१२. कस्मै देवाय हविषा विधेम। ऋग्वेद १०/१२१ की याद दिलाता है।

१३. मानुषविचार, चौपाई १२।

१४. मानुषविचार चौपाई १३।

एक असल पर अनेक नकलें होती हैं; परन्तु वे अनेक नकलें एक असल की तुलना नहीं कर सकतीं। गुरु के वेष में अनेक ठग होते हैं और वे ज्ञान-दान के नाम पर ठगाई ही करते हैं। अतएव समझ-बूझ कर साधना-मार्ग में लगो। अपने को व्यर्थ में धोखे के हाथों मे मत बेचो। इसलिए खूब समझ-बूझ कर किसी को सद्गुरु रूप में स्वीकार करो। "गुरु कीजिये जान। पानी पीजिये छान।"

वेद, पुराण, किताब, कुरान, दोहा, साखी, छंद—अनेक प्रकार की वाणियों का पसारा है, इनकी परख किये बिना कल्याण नही है। जिस वाणी में किसी मतवाद, संप्रदाय एवं परम्परा का पक्ष है, वह मन्मत है। जो निष्पक्ष निर्णय वाणी है, वही गुरुमत है। निर्णय वाणी ही सबका हितकारी है। निर्णय वचन को ही सारशब्द कहते हैं, इसी से जीव का कल्याण है। वही गुरु निष्पक्ष एवं सच्चा है जो पोथी-परम्परा आदि का महत्त्व न मानकर निर्णय का महत्त्व मानता है। जो निर्णय एवं न्याय का आधार लेता है, वह सच्चे सत-गुरु जनों की सेवा करके अपना कल्याण कर लेता है वही सच्चा शिष्य है और जो इष्ट रूप में अतिमानव की कल्पना करता तथा आकाशमें हाथ उठाता है वह मनमती है। संसारी बुद्धि वाले कितने कहते हैं "हमारे भी एक गुरु हैं, जिनके हम शिष्य हैं।" परन्तु वे भ्रम-वश यत्र-तत्र भूत-भैरव, देवी-देवता, पानी-पत्थर एवं पेड़ पर सिर पटकते रहते हैं तथा उनकी सेवा करते घूमते हैं। अपने गुरु को सभी पूर्ण मानते हैं; परन्तु पूर्ण गुरु वह है जो यथार्थ स्वरूप बोध एव दिव्य रहनी सम्पन्न है[१५]।

कितने गुरु सभी नैतिक बातों से लापरवाह होकर केवल 'नामजप' के माहात्म्य पर जोर देते हैं और कहते हैं नाम जपने से मरने के बाद मोक्ष हो जायगा। कितने गुरु दिखावा, चातुरी, चमत्कार, कला, ऋद्धि-सिद्धि आदि का प्रदर्शन करते हैं; परन्तु धर्म के नाम पर ऐश्वर्य की कमाई करने वालो को समझना चाहिए कि यह सब नाशवान पदार्थों के लिए छल-कपट पतन का रास्ता है। ऐसे गुरु लोग स्वयं डूबे हैं और शिष्यो को भी डुबाते हैं। वे मोटी अविद्या से दूसरों को छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं और झीनी अविद्या में स्वय लीन रहते हैं; परन्तु पारखबोध में स्थित सद्गुरु को न किसी प्रकार का संदेह होता है न वासनाओं का बंधन। वे धन्य हैं जो परख एवं समझ-बूझ कर पैर रखते हैं। विवेक न रखने वाले भटक-भटक कर दुखी होते हैं। उन्ही व्यक्तियों की प्रशंसा हैं जो सत्य स्वरूप से परिचित हैं और सब कुछ के परखने वाले हैं[१६]।

१५. मानुषविचार चौ० १६। १६. मानुषविचार चौ० १७।

गलत गुरु लोग गुरु महिमा की आड़ में कहते हैं "अपने विवेक-विचार का भरोसा छोड़ दो और बड़े पुरुष का कहा मानो। यदि गुरु कामी है तो उसे श्री कृष्णरूप समझो, क्रोधी है तो नृसिह या परशुराम समझो, यदि गुरु लोभी है तो उसे वामन मान लो और मोही है तो श्री राम। गुरु के कुकर्म को देख कर उनमें शंका करता है तो उस शिष्य का नरक होता है। एक बार नारद ने अपने गुरु में 'परन्तु' भर लगाया था तो उनको बड़ा दुःख उठाना पड़ा। यदि गुरु मछली-मछली और भैंसा-भैंसा जपना बतावे तो उसी से शिष्य का कल्याण हो जायगा। जो पूरा शिष्य होता है वह आचरणहीन गुरु के प्रति भी विरह व प्रेम रखता है। पतिव्रता के समान आचरण रखता है। वह अपने गुरु को छोड़कर दूसरे संत-गुरु के पास नही जाता है। पतिव्रता व्यभिचारी और कुष्ठ गलित पति से भी अपना अनन्य भाव रखती है, इसी प्रकार सच्चा शिष्य आचरणहीन गुरु की भी भक्ति करता है। अतएव गुरु चाहे गूगा हो, चाहे बावरा हो, चाहे जैसा हो, वह देवो का भी देव है। हे शिष्य ! यदि तू समझदार है, तो गुरु की सेवा कर[17]।"

उपर्युक्त गुरु की महिमा एक धोखाधड़ी और मलिनता है। ऐसे कहने वाले आचरण-ज्ञान-हीन गुरुवा लोग इतने सस्ते हैं कि एक कौड़ी के पचासो बिकते हैं। इन्हें अपने आपका होश-हवाश नही है, केवल चेला मूड़ने की आशा है। साधक को चाहिए सच्चे गुरु की खोज करे और उनकी सेवा करके आत्म-कल्याण करे और झूठे गुरु के निकट भी न जावे। कामी, क्रोधी, लोभी, मोही गुरु काहे का ? वह तो दुष्ट व्यक्ति है। जो स्वयं तृप्त नही है, वह दूसरे को कैसे तृप्त कर सकता है ? स्वयं गुरु ही अज्ञानग्रसित है, तो शिष्य का बेड़ा क्या पार करेगा ? कुछ लोग धन, मठ, महंती के लिए अनेक प्रकार वेष बना लेते हैं और ठगाई करते घूमते हैं। वे शिष्य को कहते है नारीवत पतिव्रता बनो; परन्तु वे स्वयं किसी कल्पित पुरुष की नारी बने हुए है। ऐसे लोग कुछ सत्य का आभास पा भी जायं तो भी उसे स्वीकार नही करते, शर्माशर्मी पंच-पच कर मरते हैं। सच्चे गुरु तो बिरलें है। अतएव हे साधको ! जो निर्णय वचन के अनुसार हो वहीं काम करो, ये गुरुवा लोग बड़े लंबरे हैं। ये अपने-अपने स्वार्थ के लिए जगह-जगह राहजनी कर रहे है। गुरु तो सिकलीगर के समान शिष्य के मन को मांजने वाला होता है। वह स्वयं विकारो से दूर तथा शिष्यो के विकारों को भी दूर करने वाला होता है[18]।

१७. मानुषविचार चौ० १८।

१८. मानुषविचार, चौपाई १९।

इसके आगे अनेक पौराणिक मिथ्या धारणाओं की आलोचना की गयी है और यथार्थ बोध की ओर सुझाव दिया गया है। आगे गलत गुरुओं का लम्बा-चौड़ा व्याख्यान देकर उनका पर्दाफाश किया गया है और नाना कल्पित साधनाओं की आलोचना की गयी है।

सत्सुकृत, मुनींद्र, करुणामय और कबीर पर विचार

कबीरपंथ के एक बड़े वर्ग मे यह पुरानी धारणा है कि कबीर साहेब चारों युगों मे सत्सुकृत,[१९] मुनीद्र, करुणामय और कबीर नाम से संसार मे प्रकट होकर जीवो को यथार्थ ज्ञान देते है। अथवा चारो युगो मे उक्त चारो महापुरुष एक दूसरे से भिन्न रहे हैं और अपने-अपने युग के पारख सिद्धान्त के प्रचारक रहे हैं। पहली धारणा मे कबीर साहेब को ईश्वर रूप मानकर उनके प्रतियुग में अवतार लेने जैसी बात कहकर ईश्वरवाद और अवतारवाद की नकल की गयी है, जो अपने आप में भ्रांतिपूर्ण है। दूसरी धारणा मे यह है कि पारख का बोध करने वाले चारों युगो में सत्सुकृत, मुनींद्र, करुणामय और कबीर नाम के चार सद्गुरु हुए हैं। इसमें भी चारो युगो की कल्पना मिथ्या ही है। दश-पांच हजार वर्षो का कोई लेखा-जोखा नही रख पाता और उसके इतिहास का भी ठीक-ठिकाना नही लगता, फिर लाखो वर्षो के युगों का कौन हिसाब रखेगा ? युग इत्यादि की आलोचना तो ग्रंथकर्ता ने स्वयं की है[२०]। इसके अतिरिक्त उक्त चार गुरुजनो की कही कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ में चर्चा भी नही है। केवल पुराणो के उपाख्यानों के समान है। अतएव यह धारणा भी ठीक नही है।

फिर प्रश्न होता है कि श्री रामरहस साहेब जैसे तार्किक विद्वान संत पुरुष नें उक्त धारणा का उल्लेख अपने प्रामाणिक ग्रंथ मे क्यो किया है। तो इसका कारण यह प्रतीत होता है कि बहुत दिनो से चला आया हुआ स्वपक्ष के विश्वास का सभी प्रकार से एकाएक विरोध नही कर मिलता। सद्गुरु कबीर ने अपने युग में सभी प्रकार के अंधविश्वासो को अस्वीकार कर दिया। उसके बाद संत परम्परा में पुनः काफी अंधविश्वास घुस आये। तो एक समय आया श्री रामरहस साहेब का। उन्होने सारे अंधविश्वासो को छिलके की तरह उतार फेका; परन्तु इस बात पर वे भी रहम कर गये। यह ठीक है कि सत्य अनादि है और उसके द्रष्टा भी अनादिकाल के जगत मे होते ही आये रह सकते हैं; परन्तु वह किसी काल्पनिक नामधारी पुरुष मे सीमित नही किया जा सकता।

१९. मानुषविचार, चौपाई २६।

२०. टकसार, चौपाई ५३।

इसके अतिरिक्त ग्रन्थकर्ता ने चौथे प्रकरण 'गुरुबोध' के आरम्भ में ही 'गुरुशतक सार' नाम देकर एक प्रकरण कहा है। इसमे गुरु के सौ नामो का वर्णन है। इसमें उक्त चारों नाम हैं। इसमें सद्‌गुरु के सद्‌गुणो तथा चेतन के लक्षणों के नामों का ही वर्णन है। जो सत्य और सत्कर्म मे प्रीति रखे तथा दूसरे को उसका उपदेश करे, वही 'सत्सुकृत' है। जो करुणामूर्ति हो वही 'करुणामय' है। जो मुनियों में श्रेष्ठ हो वही 'मुनीन्द्र' है। जो काया में वीर-जितेन्द्रिय हो वही 'कबीर' है। वस्तुतः सद्‌गुरु कबीर ऐतिहासिक पारखी संत पुरुष हुए हैं। उन्ही या उन्ही जैसे विवेकी पुरुष के लिए यह सब नाम विशेषण है।

श्री रामरहस साहेब ने इस प्रसंग में यह बताया है कि जिन-जिन बंधनों में मनुष्य बंधे हैं उनका विवरण देते तथा आलोचना करते हुए सद्‌गुरु कबीर ने 'बीजक' ग्रन्थ की रचना की है और उसके ज्ञान से बहुत लोगो का हित हुआ; परन्तु लोग अपने गुरुओं तथा कल्पित नाना देवी-देवताओ के डर-वश सद्‌गुरु कबीर के बीजक-ज्ञान को खुलाशा नही ग्रहण कर पा रहे थे। अतएव कबीर साहेब ने साधुवेष का पथ लिया। उन्होने तिलक लगाया, माला पहनी तथा लगोटी बांधी, टोपी लगायी और साधु का स्वतंत्र वेष कफनी गले में डालकर जनता को उपदेश करने लगे।

कबीरपंथ में भी नाना मत

सद्‌गुरु कबीर के त्याग, वैराग्य, रहनी और ज्ञान से प्रभावित होकर हर योग्यता के लोग उनके अनुगामी हुए और आगे चलकर अनेक लोग अपने सड़े-गले संस्कारों को कबीरपंथी जामा पहना कर कबीर साहेब के नाम को बदनाम करने लगे जैसा कि हर महापुरुष के पीछे होता है। फिर तो कबीर-पंथ में अनेक पंथ हो गये। उनकी वाणियां एक दूसरे से न मिलने वाली अनेक हैं। कोई ओहं जप रहा है, कोई सोहं जप रहा है, कोई केवल 'अ-अ-अ' चिल्ला रहा है, कोई निःअक्षर की स्थापना कर रखा है। कोई र रा या राम-राम जप रहा है कोई सत्यनाम। कोई व्यापक आत्मा का सिद्धांत मान रहा है। कोई श्वासा को उलटाकर साधना कर रहा है और सद्‌गुरु को शब्द स्वरूपी मानकर उनकी उपासना कर रहा है। हजारो वर्षो से जैसे वैदिक परम्परा की अनेक अनमिल पोथियो में भ्रम की धारा बही आ रही थी, वैसे कबीरपंथ में बहने लगी। वैसे-वैसे जाल यहां भी रचा गया। इस प्रकार कबीर साहेब के नाम से नाना पंथ चल पड़े। वासना का काम ही है माया जाल फैलाना। इस प्रकार अनेक भ्रमों मे पड़ कर लोग भटक रहे हैं। बिना यथार्थ सद्‌गुरु द्वारा पारख (परीक्षा) प्राप्त हुए कैसे सारासार जाना जाय[२१]?

२१. मानुषविचार चौपाई २६।

बीजकनिष्ठ की विशेषता

तीसवीं चौपाई में कहा गया है कि जिनको बीजक-विचारों में निष्ठा है, वह निर्णयी होता है और 'स्व' तथा 'पर' का विवेक करता है। वह पारख-ज्ञान का प्रकाश पाकर आलोकित हो जाता है। वह अनुमित मुक्ति को नही मानता न यह मानता है कि मरने पर मुक्ति होगी। वह पारख (ज्ञान) मे रमने वाला वर्तमान में ही मुक्त होता है। वह दिव्याचरण और उच्च रहनी में रहता है और माया के जाल में नही भटकता। जहां अहकार है वहा आपत्ति है, जहां सदेह है वहां शोक है। वही सज्जन प्रशसनीय है जो मन की भ्रांतियों को तोड़ देता है। भला दो अंधे मिल कर कौन किसको मार्ग बताये। बंधनों में बंधे लोग दूसरे को बंधनों से क्या छुड़ायेगे? अतएव साधक को चाहिए कि वह निर्बन्ध सद्गुरु की सेवा करे जो शीघ्र बंधनो से छुड़ा ले। उसी साधु की प्रशंसा है जो खुले मैदान में सत्यासत्य का निर्णय कर देता है। इससे या तो श्रोता के बंधन छूट जाते हैं या उससे वक्ता को छुट्टी मिल जाती है। बिना साफ निर्णय किये भ्रम नही जा सकता। वही प्रशंसनीय असली हीरा है जो घनों की चोट खाकर न टूटे। इसी प्रकार सिद्धान्त वही सच्चा है जो तर्कों से न कटे। 'बीजक के पारख वचनो पर मन दो और गुरु द्वारा उसके अक्षर-अक्षर का निर्णय कर-कराकर सभी संदेहो से मुक्त हो जाओ[२२]।"

आगे योगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश तथा ब्राह्मण—इन छह दर्शनो, उनके जप, सिद्धान्त आदि का वर्णन है। इससे आगे छह आश्रम, छानबे पाखण्ड, वैदिकी चार मुक्ति का वर्णन किया गया है और अंततः कुछ पंक्तियों में पुनः असद्गुरु तथा अंधविश्वास से बचने के लिए उद्बोधन दिया गया है।

गुरुबोध

गुरुबोध चौथा महत्वपूर्ण प्रकरण है। इसमें शुरू ही में 'गुरुशतक सार' नाम से एक संदर्भ है जिसमे गुरु के सौ विशेषणों का वर्णन है। इसके आगे यह पूरा विस्तृत प्रकरण गुरु-शिष्य के संवाद रूप में उपस्थित हुआ है। इसमें शिष्य द्वारा कुल २३ प्रश्न किये गये हैं और गुरु द्वारा उसके विस्तृत उत्तर

२२. बचन बसावहु पारखी, बीजक है सो नाम।
अक्षर-अक्षर गुरु से लखो, संशय मेटहु तमाम।।
(पंचग्रंथी, टकसार ३२२)

दिये गये हैं। पहला प्रश्न है मैं कौन हूँ, यह देह क्या है आदि। गुरु ने उत्तर दिया है तू कहने मात्र को तो सच्चिदानन्द है; परन्तु तू स्वतः आनन्द स्वरूप है[२३]।"शिष्य प्रश्न करता है कि वेद और ऋषिगण कहते हैं ब्रह्म में स्थित होओ और आप कहते हैं कि ब्रह्म बंधन है। इसका भेद क्या है ? गुरु ने बताया कि ब्रह्म मनुष्यो की एक ऐसी धारणा है जिसमें जगत का निरन्तर उत्पाद, स्थिति और विलय होता है और अंततः ब्रह्म और जगत जल-तरंग न्याय एक है। अतएव जब दुःखपूर्ण विकारी जगत ब्रह्म ही का दूसरा नाम है, तब उससे मुमुक्षु एवं कल्याणार्थी को विरत होना परम आवश्यक है। हे शिष्य ! जब दुखपूर्ण जगत-उत्पत्ति का कारण ब्रह्म है, तो ब्रह्म का त्याग किये बिना मोक्ष कैसे संभव है ? श्री रामरहस साहेब पहले ब्रह्मवादी महापुरुष थे। जब वे पारखी गुरु द्वारा उसकी भ्रमरूपता समझ गये तब उन्होने उसका तीव्र खंडन किया। इस विषय पर इस ग्रंथ में विस्तृत विवेचन है।

स्वतः बोध होने के प्रकार

अबोधदशा में पड़े-पड़े अनादिकाल के दिन बीत गये। यह जीव सदा से अनुमान-कल्पना के अधीन पड़ा दुःख भोगता रहा है। अनेक जन्मो के शुभ संस्कार के उदय होने से कोई सुज्ञ जीव एक दिन बंधनो मे अत्यन्त व्याकुल होकर सत्यशोधन की जिज्ञासा करता है। उसे स्वरूपबोध तथा स्वरूप शांति में प्रबल श्रद्धा जग जाती है। हृदय मे सत्य के प्रति प्रेम-पुकार होने से मन शुद्ध तथा स्थिर हो जाता है। उसका वासना-वायु शांत हो जाता है और वह गुरु हो जाता है। वे अपने द्वारा पूर्व मे बनाये अपने मन के जाल को देख लेते हैं और उन्हे त्याग कर तथा स्थूल-सूक्ष्म सभी मान्यताओ के द्रष्टा बनकर कृतकृत्य हो जाते है। वे सुज्ञजीव स्वतः आंतरिक सत्याभिलाषा एवं पारख-दृष्टि द्वारा स्वरूपज्ञान पाकर गुरुत्व-पद को प्राप्त हो जाते है और उसी पारख बोध को दूसरे के लिए प्रकाशित करने लगते हैं। ऐसे विवेकवान स्वयं गुरुरूप हो जाते है[२४]।" अनेक जन्मो के शुद्ध संस्कार तथा वर्तमान के पुरुषार्थ से जिनका अंतःकरण शुद्ध हो गया है, जो अपने आप को दुखो से छुड़ाने के लिए अपने आप पर ही दया से पिघल गये है, जिन्हे आत्मविरह एवं सच्चा आत्म-प्रेम है; उनकी अनादिकाल से ढंपी अपनी स्वतः आंखे खुल जाती हैं और

२३. तू कहबे मात्र सच्चिदानन्द। तू हंस स्वतः आनन्द ॥ गुरुबोध, चौकड़ी १। इसका खुलाशा तीसरे प्रकरण 'पारख सिद्धान्त' के 'आनन्द, सुख और शांति' संदर्भ में किया जायेगा।

२४. प्रश्न ५।

अपने हृदय के पूर्व से सुरक्षित भ्रम दिखाई देने लगते हैं। यथार्थ सद्गुरु की शरण लेने से ही साधक का कल्याण होता है। स्वयं गुरुपद पा जाने की योग्यता इस संसार में कभी किसी को हो सकती है और ऐसे पुरुष असंख्यो में कोई एक होता है।

असंख्यों में कोई एक शुद्ध संस्कारी पुरुष संसार के अनेक व्यवहार तथा अनमिल विचार देखकर सबसे उपराम हो गये और वे अपने आप का शोधन किये। इस स्वरूप शोधन में उनके हृदय में बसे हुए सत्य, विचार, धैर्य, दया और शील सहायक हुए। वे सत्य संबंधी आंतरिक प्रेम की पुकार से एवं दुःखनिवृत्ति की अत्यन्त अभिलाषा से स्वरूप साक्षात्कार कर लिये जिससे उनके सारे भ्रम मिट गये। वे स्थिर होकर परख द्वारा सबकी छान-बीन करने लगे और परख के प्रकाश में अपने स्वरूप को पहचान गये। जिनकी स्वतः परख-दृष्टि एवं स्वरूपबोध हो गया, वे स्वतः गुरु रूप हो गये और दूसरे को भी परखाने लगे। विवेकवान स्वरूपज्ञान में स्थित हो जाते है। उनको इस अपनी उच्च स्थिति का अहंकार नहीं होता। उन सद्गुरु के वचनो को सुनकर जो ग्रहण करता है वह शिष्य भी वही गुरुपद पा जाता है। स्वयं परखना तथा दूसरे को परखाना, यह साधु-गुरु का यथार्थ व्यवहार है[२५]।

हंसरहनी व गुरुलक्षण

जिन्हें हम उच्चतम मानव, संत एवं सद्गुरु कहते हैं, वे सत्य, धैर्य, दया, शील और विचार से संपन्न होते हैं। उनमे विवेक, वैराग्य, गुरु-भक्ति तथा त्यागभाव होते हैं। उनमें निर्णय, निर्विषयीभाव, ज्ञान, स्थिरता, क्षमा, मिथ्या-त्याग, सत्यमत ग्रहण, संदेहहीनता, साधुसेवा, अहकारहीनता, अद्रोह, समता, जीव मात्र के प्रति मित्रता, निर्भयता, स्थिरदृष्टि, संतोष, प्रियवाणी, शांतिबुद्धि, पारख प्रत्यक्ष, सब सुख प्रकट, अस्तिनास्तिपद निर्णय, यथार्थता, शुद्ध व्यवहार, यथार्थ परख टकसार, बोध के लिए वेदादि समस्त शास्त्रों से सारग्रहण—ये सारे सद्गुण विराजते हैं। शुद्ध वैराग्य, अहंकारो का अंत, साधु-गुरु के प्रति भक्ति-विनम्रता एवं त्याग भाव—इन्ही सद्गुणों से मनुष्यो का कल्याण है।

संतजन जिज्ञासुओं को सद्गुरु की उपासना करने को कहते हैं और सद्गुरु जिज्ञासुओं को बताते हैं कि संतों की सेवा करो। इस प्रकार संत तथा सद्गुरु के सत्संग एवं सेवा में उस स्वरूपबोध एवं स्वरूपस्थिति का बोध हो जाता है जिसे हम सदियो से अगम्य कहते आ रहे है। वस्तुतः सद्गुरु और साधु का एक ही स्वरूप है। अंतर इतना है कि सद्गुरु दया कर जिज्ञासुओं

२५. परख प्रखावन जीवन केरा। यह व्यवहार यथार्थ निबेरा॥ प्रश्न ७।

को अपनी शरण में लेकर उनकी कल्याण-प्रेरणा का भार वहन करते हैं और साधु स्वच्छंद होते हैं[२६] ।"

सद्गुरु उनको कहना चाहिए जो स्वरूपबोध में शांत हैं, कही कभी भी अपनी स्थिति से विचलित नही होते, स्वयं वासनामुक्त होकर सुखी रहते हैं और शरण में आये हुए मुमुक्षुओं को अपने संपर्क मात्र से सुखी करते हैं[२७] । त्याग-वैराग्य सम्पन्न संत चाहे जिस मत के हों अनादिकाल के जगत में होते आये षड्दर्शनी सभी साधुओं की एक ही उत्तम जाति तथा एक गोत्र है। समस्त सम्प्रदायों की साधु-परम्परा में जो विशेष सद्गुण सम्पन्न होते है, वे संतजन मति के महान कहे जाते है । उनमे जो सत्य के पारखी और स्थिति-वान संत हैं, वे अथाह आनन्द के समुद्र होते हैं । उन पारखयुत पारखी साधु के सत्य, विचार, संतोषादियुत पवित्र आचरण होते है[२८] ।

साधुवेष और सच्चे साधु में अंतर

कोई संसार की वस्तुओं की प्राप्ति के लिए साधुवेष धर लेता है और कोई लोकान्तर कल्पित भोगो एव देव, ईश्वर आदि की प्राप्ति के लिए वेष धारण करता है; परन्तु सच्चा साधु तो वह है जो निर्वासनिक होकर विहरने के लिए साधुवेष धारण करता है । सत्य, न्याय और सदाचार का धारण ही साधुता है । साधु की उत्तमदशा वैराग्य है । द्रष्टा और दृश्य मे जितना फरक है, साधु तथा केवल साधुवेष में उतना अतर है । हा, गुरु और साधु में कोई अंतर नही है । साधु-गुरु सबके द्रष्टा बन कर सबके अहंकार छोड़ देते है और स्वरूपज्ञान मे प्रसन्न रहते हैं । वे दया, शीलादि समस्त सद्गुणो को सर्वांग धारण कर कृतार्थ होते है[२९] ।

मनुष्य की सर्वोपरिता

वृक्ष-वनस्पतियां तो निर्जीव जड़ हैं । अंडज, पिंडज, उष्मज इन तीन सचैतन्य खानियो मे मनुष्य श्रेष्ठ है । यह विवेकवान समझता है कि मनुष्य में

२६. इस विषय को तीसरे अध्याय के 'गुरुतत्त्व' संदर्भ में देखें ।

२७. गुरु बोधित निज थीर पद, डोलै कतहूं नाहिं ।
आपु सुखी दूसर सुखी, सद्गुरु कहिये ताहिं ।। दोहा ६२ ।।

२८. तेहि माँहि परख गुरु ठहर साध । आनन्द लहरि के समुद्र अगाध ।।
ते साधु पारखी पारखयुक्त । उत्तम क्रिया सत्यादि युक्त ।।
(प्रश्न ८)

२९. प्रश्न ९ ।

उसके विवेक की ही प्रधानता है। विवेकवान मनुष्य किसी की वाणी से उसके स्वभाव को परख लेता है। जो सच्चा मनुष्य बना उसकी विलक्षण एवं निर्मल दृष्टि हो जाती है। जब सच्चा मनुष्य बनकर उसके द्वारा गुरुमुख से सत्य को समझ लिया जाता है, तब वह मनुष्य उस सत्य को परखाने लगता है। जो मनुष्य दया, शील, विचार, धैर्य, सत्य को धारण करके सत्संग के न्याय को ग्रहण कर लेता है। वही गुरु हो जाता है और वही जीवन्मुक्ति में विहार करता है। हे शिष्य! यह परम उज्ज्वल धर्म है। जो इसको धारण करता है वह मनुष्य काल-जाल से बच जाता है। मनुष्य ही अज्ञान के भेद को समझ कर उसे त्याग सकता है, पशुवत पक्षपाती नही। यहां मनुष्य का अत्यन्त उच्च स्वरूप है। श्री रामरहस साहेब की भाषा मे सच्चा मनुष्य ही जीवन्मुक्त है। वे मनुष्य में अन्य कोई विशेषण लगाना उचित नही समझते। मनुष्य शब्द अपने में परिपूर्ण है। मनुष्य के पूरे गुण-लक्षण जिसमें उद्घाटित हो जायं वह पूर्ण जीवन्मुक्त है। वस्तुतः मनुष्य वही है जो अंध-परम्परा न मानकर निर्णय को मानता है। विवेकवान सत्य-असत्य का पारखी होता है। मानवीय बुद्धि अत्यन्त महान है। मनुष्य कौन है? हे शिष्य! सुनो, मनुष्य वही है जो विवेक-द्वारा खानी-वाणी, मोटी-झीनी माया की परख कर उन्हें त्याग देता है। केवल मनुष्य देह से कोई मनुष्य नही है, अपितु उसके दिव्य लक्षण से वह मनुष्य है। बिना सत्यासत्य का पारखी हुए कोई मनुष्य नही हो सकता है। जिसमें दया, क्षमा, शील और पारखविचार हैं, वह मनुष्य है। जिसने भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह का सुधार किया, वह मनुष्य है। जो सत्संग करता, सद्गुरु की शरण लेकर उनके विवेक का अनुगामी होता है, जो समता, शांति को धारण करके इच्छाजित हो जाता है, वह मनुष्य है। जो वर्तमान में सब अहंकार छोड़कर स्वस्वरूप में ठहर जाता है और सुख-दुःख में सम होकर प्रसन्नता पूर्वक जीवन निर्वाह करता है, वह सच्चा मनुष्य है। मनुष्य शरीर ही भवबन्धनो से छूटने का स्थान है। जो अपने आप को भवबन्धनो से बचा ले, वह मनुष्य है[३०]।

सच्चे और कच्चे मनुष्य के अंग, तत्व, इन्द्रियो में कोई अंतर नही होता अंतर केवल समझ में होता है और समझ के अंतर से जीवन की भिन्न दिशा हो जाती है। यदि मनुष्य, ज्ञान तथा आचरणहीन लोगो की उपासना कर कल्याण चाहे तो व्यर्थ हो है। सारे मन का जाल मनुष्य की कल्पना है। मनुष्य को विवेकवान पुरुषों का सत्संग करके स्वयं की ओर घूमना पड़ेगा।

३०. गुरुबोध, प्रश्न १०, ११।

दो हाथ-पैर वाले घूमते हुए करोड़ों मनुष्य सब मनुष्य नही हो सकते; अपितु जिनको स्वस्वरूप का बोध हुआ हो, वही मनुष्य है। मनुष्य के गुग-लक्षणों को मनुष्य समझकर वास्तविक मनुष्य बन जाता है। जो क्षमा, दया, सत्य, धीर, विचार के संयुक्त हो वह मनुष्य है। जिसकी बुद्धि सदैव एकरस ज्ञान मे प्रकाशित रहती है, जो न तो कभी कल्पित वस्तु की चर्चा करता है और न उसकी आशा करता है। हे शिष्य! जिसमें ऐसे सर्वोच्च गुण आ गये हैं वही सच्चा मनुष्य है। मनुष्य का यही गुण है कि वह अवगुणो का सर्वथा त्याग करे और सत्य निर्णय करके सत्यता मे ठहरे [३१]।

स्वरूपभूल

यह हंस (जीव) अहन्ता-वश अपने को भूल कर चौरासी मे भटक रहा है। इस प्रकरण में ऊपरी दृष्टि से देखने पर वर्णन ऐसा लगता है कि मानो जीव पहले मुक्त था और पीछे भूल गया। इसी प्रकार का वर्णन श्री पूरण साहेब रचित निर्णयसार तथा बीजक प्रथम साखी की टीका में है। ऐसा पता चलता है कि पहले इस प्रकार वर्णन करने की कुछ शैली थी। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि करने से साफ हो जाता है कि मनुष्य शरीर निवासी जीव को कहा जाता है कि वह विषयों में फंस कर अपने कल्याण करने योग्य समय को खो देता है। जैसे धैर्य, शील आदि सभी तत्त्व इस जीव के पास थे; परन्तु यह झांई में भूल गया [३२]। यहां यह देखना है कि मानव शरीर में ही धैर्य, शील आदि सद्गुणों की भूमिका होतो है। सार यह है कि स्वरूपभूल अनादि है और जीव कल्याण करने योग्य मानव-शरीर मे आकर भी भूलता रहता है; परन्तु जीव इसी मानव शरीर मे यथार्थ बोध प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकता है।

हंसरहनी एवं जीवन्मुक्ति दशा

विवेकी पुरुष सत्सग में निवास करते हुए स्वरूपस्थिति के आनन्द महल में विहार करते हैं। वे प्रेम, धीरज, दया' शील, विचार की शोभा से शोभायमान, दोषों-दुर्गुणों को जीतने में वीर तथा राम (स्वस्वरूप) की स्थिति में निमग्न रहते हैं। नाशवान पदार्थों की इच्छा कर मनुष्य दीन होता है, सत

३१. दया क्षमा सत धीर विचारा। मानुष लक्षण सहित निरधारा॥
सदा एक सम बुद्धि प्रकाशा। भाखै वचन न कल्पित आशा॥
अस विवेक शिष्य जेहि घट आवा। सो गुण मानुष केर कहावा॥
मानुष गुण अवगुण को त्यागे। निर्णय वचन यथारथ पागे॥
(प्रश्न १३)

३२. दोहा १७०।

सत्य आत्माराम में रमने वाले होते हैं[३३]। हंस मुमुक्षु संतों की संगत में विहार करते हैं और गुरु निर्णय में तद्गत रहते है । वे मन के जाल से न्यारे रहते हैं। कल्याणार्थी मुमुक्षु एवं भक्त ऐसे संतों की मन, वाणी, कर्म, धन आदि से सेवा करते है[३४] । पारख (स्वस्वरूप चेतन) ही सबका अपना स्थिर पद है, सत्संग द्वारा उसका भेद जानकर विवेकवान स्वपद में ठहर जाते हैं और मन तथा माया के गुणों को क्षणभंगुर समझते है । शरीरादि भौतिक पदार्थों मे मै-मेरी का संकल्प ही दुःखो की खानि है; अतएव उसका त्याग करके विवेकवान गुरुपरख मे रहते तथा माया के द्रष्टा हो जाते है । परख एवं द्रष्टा-अभ्यास से समस्त स्थूल-सूक्ष्म दुःख मिट जाते है । मानव की जब विवेकवती दृष्टि हो जाती है तब सारे बंधन देखने में आ जाते है । वही सच्चा मानव का स्वरूप है जो समस्त माया-प्रपंच को उदासीनता की दृष्टि से देखता है । वह स्वरूप-स्थिति धाम में विहरता है । उसके चरण, वंदना करने योग्य है । जो हंस सबका द्रष्टा बनकर स्थिर हो जाता है, वह सदैव सुखी रहता है और सबके देखते-देखते कृतार्थ हो जाता है । पारखी संत इसका वर्णन करते हैं और बीजक में सद्गुरु कबीर ने इसी पारख का वर्णन किया है[३५] । जो सारे दृश्यो का द्रष्टा बन कर सब में से अपने आपको निकाल लेता है, वह सब जीवो के रहस्य को जानता है । सब जीव अहंकार में फसे है, कोई संत ही अहंकार का द्रष्टा बन कर उसे त्याग देते हैं । वे सदैव अहंकार से अलग रह कर स्वरूपज्ञान मे लीन रहते हैं[३६] । बुद्धिमान लोग जगत के सुखों को अनित्य समझ कर चराचर व्यापक ब्रह्म की भावना के सुख में लीन होते है; परन्तु वास्तविकता का द्रष्टा दोनों को मिथ्या समझकर अपने आप में रमता है[३७] । वास्तविकता का द्रष्टा एवं पारखी पुरुष अपनी परखदृष्टि की शक्ति से, सद्गुरु के विशेष उपदेश से तथा सत्संग के प्रभाव से स्वरूपस्थिति एवं जीवन्मुक्ति सुख का निरन्तर अनु-

३३. सवैया ६, दोहा १६५ ।

३४. प्रश्न १८ ।

३५ हे शिष्य ऐसे मत कहै, गुरु पारख बलथीर ।
सत्य शब्द टकसार विधि, पारख कहहि कबीर ॥

३६. हंता मा सबही परे, हंता देखै साध ।
हंता ते न्यारा रहे, गुरुमुख दृष्टि अबाध ॥

३७. जग सुख अनित विचार बुद्धि, ब्रह्म सुखहि लौलीन ।
द्रष्टा दोऊ सुखन को, मिथ्या जानहु लीन ॥
(गुरुबोध, दोहा २२७, २३१, २३३)

भत्र करते हैं[३८]। उसी पुरुष में पारख एवं सत्य ज्ञान का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण समझना चाहिए और उसी को गुरु समझना चाहिए जिसमें अनुमान, कल्पना एवं भ्रम नहीं हैं, जिसमें मन की एकाग्रता एवं चेतन स्वरूप के स्थिति विषयक प्रत्यक्ष, पूर्ण, निर्मल एवं वास्तविक सुख विद्यमान है। ऐसे हंस सदैव आनन्द-मय हैं। जो भी मन का द्रष्टा बन जायेगा, वही उक्त जीवन्मुक्ति के आनन्द में मग्न हो जायेगा[३९]।

सद्गुरु और शिष्य

गुरु-ज्ञान, स्वरूपज्ञान को जो सुने, समझे तथा आचरण करे वह शिष्य है और जो उसका बोध दे, उपदेश करे वह सद्गुरु है। फिर यथार्थ स्थिति में पहुंच कर वे दोनों स्वयं तारण-तरण हैं; क्योंकि सभी हंसों (जीवों) की स्थिति दशा एक समान है[४०]। हे विवेकियो! गुरु का सिद्धान्त ऐसा सर्वोच्च है कि जिसको उसका बोध हो जाता है, वह जन्म-मरण में पुनः नहीं आता और वह जगत की बेगारी से मुक्त हो जाता है। शिष्य का कर्तव्य है कि वह विवेकवान सद्गुरु की सद्शिक्षा माने और सद्गुरु-संतो का आज्ञाकारी रहे। ऐसा शिष्य ही मोक्ष पदार्थ पाता है और उसकी रहनी जागतिक वासनाओं से भिन्न हो जाती है। संतों के वेष सात्विक भावना के प्रेरक होते है और उनकी रहनी सत्य से पूर्ण होती है। ऐसे निर्मल संतों के दर्शन से जिज्ञासु का मन निर्मल होता है। उसके हृदय से जड़ मे चेतन होने का भ्रम दूर हो जाता है। वह सारे जड़ाध्यासों को छोड़ चेतनस्वरूप का बोधवान हो जाता है। वे ही सद्गुरु के पारखबोध के पात्र हैं। गुरुमुख निर्णय वचनों के अनुसार रहनी-गहनी में चलने का सुख, अनुमान, कल्पना एवं भ्रमरहित स्थिति है। ऐसे पुरुष सदैव जीवन्मुक्ति आनन्द की अट्टालिका पर निवास करते हैं। सद्गुरु कबीर पुकार कर कहते हैं कि यह सब विवेकी सद्गुरु एवं संतो के चरणों में प्रेम, श्रद्धा एवं सेवा करने से प्राप्त होते हैं[४१]।

३८. अपनी दृष्टि प्रताप बल, गुरु उपदेश विशेष।
सत्संगति सुख नित्य प्रति, द्रष्टा पारखी देख॥

३९. हे शिष्य ऐसे शिष्य की, दृष्टि स्वतः आनन्द।
ते आनन्द की प्राप्ति को, द्रष्टा लहै स्वचछन्द॥

४०. गुरुमत लखै सो शिष्य है, बोधै सो गुरुदेव।
तारण तरण सो आपुही, एकै हंसा भेव॥
(गुरुबोध, दोहा २३४, २३६, २५७)

४१. हंसा ऐसो गुरुमत भारी॥१॥
लखे ते भव में आवत नाहीं, भव के बहोत बेगारी॥२॥

सत्य निर्णय को समझने तथा धारण करने वाला ही कृतार्थ होता है और वही सद्गुरु का सच्चा शिष्य है, सद्गुरु है, संत है और कृपालु त्राता है[४२]। यहां बड़ी उदारता पूर्वक सत्य का उद्घाटन किया गया है। जिसने सत्य स्वरूप को समझकर अपना उद्धार कर लिया वही शिष्य, सद्गुरु, साधु और दूसरे का रक्षक है। जो सत्य को समझ जाता है वह अहंकार क्यों करेगा? गुरुज्ञान जिसके हृदय मे उद्घाटित हो गया वह शान्ति पा गया। वही जीवन्मुक्ति का अधिकारी हो गया। वही सद्गुरु हो जाता है। वही साधु-साधको का प्रियतम हो जाता है। यह सबने माना है विवेक-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु तथा सतो का पद सर्वोच्च है; अतएव साधक को चाहिए कि अपने आपको उनका दास समझकर मन, वाणी, कर्मो से उनकी सेवा करे। जिसमे सेवाभाव है, दासता एवं विनम्रता है, वह अहकार मे नही पड़ता है। वह शांति को प्राप्त करता है[४३]। जिसमें विनम्रता, सेवाभावना, भक्ति, श्रद्धा आदि हैं, जो अपने को संत-गुरु का दास मानकर शुभ रहनी में चलता है उस हंस को बंधन नही है। सेवक को कोई चक्कर नही[४४]।

उपदेश देने की शैली

प्रश्न २१ में शिष्य ने प्रश्न किया कि दूसरों को उपदेश देने का क्या प्रकार है? उपदेष्टा को किस प्रकार दूसरों को उपदेश देना चाहिए? सद्गुरु उत्तर देते हैं—उपदेशक को चाहिए कि वह जिसको उपदेश दे रहा या समझा रहा हो, उसे तुच्छ न समझे। उसे भी अपने समान समझकर उस पर करुणा

शिष्य सिखापन गुरु की माने, गुरु साधुन के आज्ञाकारी ॥ ३ ॥
तेई मुक्ति पदारथ पावै, यमते रहनि निन्यारी ॥ ४ ॥
सत्य भेष सत्यरहनि साधु की, संत दरश अविकारी ॥ ५ ॥
ते अधिकारी गुरु पारख के, निर्जिव धोख निवारी ॥ ६ ॥
गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनन्द अटारी ॥ ७ ॥
प्रेम भाव साधुन सेवकाई, कहहिं कबीर पुकारी ॥ ८ ॥
(सत्यनिर्णय शब्द ३, प्रश्न २०)

४२. हे शिष्य निर्णय जो लखै, तेही भया निहाल।
तेई गुरु तेई शिष्य गुरु, तेई साधु दयाल ॥ दोहा २५८ ॥

४३. गुरु साधु पद दीर्घ जग, हे शिष्य सबन प्रमान।
त्रिविधि ताहि सेवन करै, आपु दास पद मान ॥ दोहा २६५ ॥

४४. दासभाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरु केर।
यह प्रकार हंसा बसै, सेवक को नहिं फेर ॥ २६८ ॥ (प्रश्न २०)

दृष्टि करे। फिर श्रोता की जहां-जहां आसक्ति, मोह एवं पक्ष हो उसको वक्ता स्वयं पहले समझने की चेष्टा करे। फिर उसे इस प्रकार कोमल एवं मीठे वचनों में परीक्षा करावे जिससे उसका मन दुखे नहीं और सत्य को समझ जाय। उपदेशक को चाहिए कि श्रोता का मन जिसके पक्ष में हो पहले उसी की प्रशंसा कर उसके मन में अपने वचनों के लिए श्रद्धा उत्पन्न करे। फिर धीरे से उसके गलत पक्ष में रही हुई कसर-खोट की परख करावे। जब वह तुम्हारे वचनों में श्रद्धावाला हो जायेगा तब वह तुम्हारे सत्य न्याय को सुनकर तुमसे दूर नहीं भागेगा; प्रत्युत विचार करेगा। जब धीरे-धीरे कुछ समय मे उसे स्वपक्ष में धोखा दिखेगा, तो उसके मन में अपने गलत सिद्धान्त के प्रति उचाट हो जायगा और उसका मन उसमें नही लगेगा। वह बेचैन होकर किसी तरफ रास्ता नही पायेगा; क्योंकि सत्सग एवं निर्णय द्वारा उसके मत का पर्दाफाश हो चुका है। इस प्रकार चारो तरफ से थक जाने पर उसका अपना पूर्वपक्ष छूट जायेगा। तदनन्तर वह सत्य का इच्छुक होगा। तब उपदेशक को चाहिए कि उसे जड़-चेतन का यथार्थ निर्णय दे। यदि वह सत्य-असत्य ठीक नही समझ सका तो पुनः भटकेगा। अतएव उपदेशक को चाहिए कि उसे सत्य और असत्य का सारा भेद विधिवत समझाने का प्रयत्न करे। थोड़ी-थोड़ी बात को भी खोल-खोल कर बता दे। समय पड़ने पर अबुध को समझाने के लिए स्वयं अबुध सरीखे बनकर उसे धीरे से रास्ते पर लावे। मेल-मिलाप, समता और प्रेम की भावना से कोमल वचनों द्वारा समझाने पर श्रोता को असंतोष नहीं होता। सभी अपने सजाति बधु हैं, सब से मेल-मिलाप के सहित ही बर्ताव करना तथा उन्हे शिक्षा देना चाहिए। 'एकता सुख की खानि है' ऐसा सद्गुरु कबीर ने बीजक ग्रथ में कहा है "हे मनुष्यो! मै तुम्हे भाई, पिता तथा पितामह के समान मान कर तुम्हारे चरणो की वंदना कर सकता हू; परन्तु तुम इस जीवन में सत्य को समझ कर अपना कल्याण कर लो[४५]।"

गृहस्थ की रहनी

जो मनुष्य गृहस्थी धर्म के संयुक्त है, वह शील, विचार, निर्णय, सत्संग तथा सेवा-भक्ति का आचरण कर अपने जीवन का कल्याण करता है[४६]।" वह सेवाभाव का उच्च आदर्श रखता है और अपने मन में कभी अहकार नहीं लाता। वह सत्य निर्णय को स्वीकार करता है और संतों के प्रति श्रद्धा वाला

४५. बीजक, साखी ३२२। गुरुबोध प्रश्न २१।

४६. जो मानुष गृहधर्मयुत, राखै शील विचार।
गुरुमुख वाणी साधु संग, मन वच सेवा सार॥ ३३४॥

होता है। वह सत्य, शील और दया के साथ जगत का व्यवहार बरतता है, विवेकवान गुरु-सन्तों के अधीन होकर रहता है और विनम्र वचन बोलता है। वह पांचों विषयों के भोगों का बहुत ज्यादा संग्रह नहीं करता; किन्तु विवेक पूर्वक मध्यस्थिति में निर्वाह लेता है। जगत का व्यवहार घट-बढ़ रूप समझ कर वह कहीं आसक्त या उद्विग्न न होकर भंवरे के समान सब जगह से केवल सार का ग्रहण करता है। वह ज्ञान तथा सदुपदेश के अनुसार यथाशक्ति आचरण करता है। वह जगत के उत्तम-मध्यम व्यवहारो को न्याय तथा विवेक पूर्वक बरतता है। गृहस्थी धर्म में बड़े झगड़े है। उसमें रहकर बहुत सावधान रहना चाहिए। उसमें समय-समय पर लोक तथा वेद के अनुसार कुछ-न-कुछ चलना पड़ता है, उन स्थितियों में विचार पूर्वक व्यवहार करे। गृहस्थ को चाहिए कि वह शक्ति चले तक छोटे-बड़े जीवो की हत्या करने से बचे, जहां तक बने उनकी रक्षा करे। किसी से अप्रिय वाणी न बोले, बल्कि सबके हित की बात कहे। ज्ञान में ठहरे, भक्ति-भावना रखे। सभी जीवो के प्रति जहां तक बने सेवा-भाव रखे, जितना बन सके सेवा करे[४७]।"

विरक्त की रहनी

घर-गृहस्थी के त्यागी विरक्त संत को चाहिए कि वह अपने शरीर को कठोर एवं सहनशील बनावे, मन को ज्ञान द्वारा समझाता या संतुष्ट करता रहे, अष्ट मैथुनों का बाहर-भीतर से त्याग करें, पृथ्वी पर यत्र-तत्र ठहरते हुए भ्रमण करता रहे और अनादिकाल के दुःखो से छूटने के लिए मनोनिग्रह रूपी समाधि-अभ्यास करता रहे। विषयासक्ति को जीतने के लिए कष्टो का सहन करे, अपने पद से मन, वाणी, कर्म से कही पतित न हो। सब प्रकार भ्रष्ट बुद्धि का त्याग करे और आठों पहर मन-माया-कुसंग से सावधान रहे। अपने मन में कभी अहंकार न लावे कि मैं उत्तम हू और दूसरा नीचा है। मनुष्य खानि के बीच में सबको एक समान समझे[४८]।"

गृहस्थ-विरक्त में उच्च रहनी ही प्रधान है

गृहस्थ तथा साधुवेष—दोनों में अज्ञान तथा भ्रम का बोलबाला है; अतः दोनों का आवश्यक कर्तव्य है कि वे विवेकी सद्गुरु की शरण लेकर अपना कल्याण करें। यथार्थ स्वरूपज्ञान जिसके हृदय मे उदय हो जाता है और वह

४७. दोहा ३३५—३४१

४८ दोहा ३४३—३४५।

अहंकार आनै नहीं, मै उत्तम यह नीच।
एकत्व सबही सम लखै, मानुष खानि के बीच ॥ ३४५ ॥

सब प्रकार से विषयों से निवृत्त होकर स्वरूपस्थिति की रहनी में चलता है तो गृहस्थी में रहता हुआ व्यक्ति भी श्रेष्ठ रूप एवं कृतार्थ हो जाता है और वह सहज रूप में स्वयं अपना कल्याण करता है तथा दूसरे का भी अपनी सद्प्रेरणा से उद्धार कर देता है[४९]।" भक्ति और वैराग्य पूर्वक रहते हुए भी गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह संत-गुरुजनो के प्रति सेवक बना रहे; क्योकि गृहस्थ का कर्तव्य है सेवा करना और विरक्त साधु का कर्तव्य है कि वह त्याग भाव पूर्वक रहे। गृहस्थ गुरु-साधु की सेवा करता है। फिर विवेकवान गृहस्थ और विरक्त दोनों का कल्याण हो जाता है। मुमुक्षु को चाहिए कि वह गुरुमुख वचनों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन एवं साक्षात्कार करने का प्रयत्न करे और संतों की सगत करे, तब धीरे-धीरे उसमें साधुता आयेगी, फिर वह गुरुपद (कल्याण दशा) को भी पा जायेगा। विवेकवान को चाहिए कि वह दूसरे को उपदेश दे; परन्तु स्वयं अपने में गुरुत्व एवं साधुत्व का अहंकार न करे। जीव को कुछ प्राप्त करना नहीं है। उसका स्वरूप तो उसे नित्य प्राप्त ही है। उसे केवल सारे अहंकारों को छोड़ भर देना है। सारा अहंकार छोड़ देने पर अपना स्वरूप अवशेष कृतार्थ रूप ही है। फिर उसका कर्तव्य है कि वह दूसरे को अपने समान जानकर उन्हें अपनाये, प्रेम पूर्वक सन्मार्ग मे लगाये[५०]।"

चाहे गृहस्थ हो या विरक्त सेवा, भक्ति, विनम्रता, बोध एवं दिव्य आचरण धारण करने से सबका भ्रम मिटकर उनका कल्याण हो जायेगा। शांति एव मोक्ष की प्राप्ति के लिए कोई गृहस्थी मे रह कर भक्ति-साधना करता है और कोई साधुवेष मे होकर; किंतु जिनको भी सत्यज्ञान प्राप्त हुआ और उनकी दिव्य रहनी हुई वे ही कृतार्थ रूप होकर स्थित हो जाते है। हे शिष्य ! गुरुज्ञान अत्यन्त निर्मल है। जो व्यक्ति उसे पाकर निर्विषय आचरण बना लेता है वह अपने पद मे स्थित हो जाता है। उसे गृहस्थी-वेष मात्र कल्याण में बाधक नही बन सकता। और जो विवेकवान विरक्त दशा में रहते है; यदि वे स्वच्छ गुरुपारखबोध पा गये और उनका सब समय स्वरूपज्ञान मे लक्ष्य रहने लगा, तो उनका माया कुछ नही कर सकती। भ्रम में पड़े हुए चाहे गृहस्थ हों या साधु, दोनो अबोध-वश भटकते है। और जिनमें बोध-वैराग्य की रहनी है वे स्वयं तरते हैं तथा दूसरे को तारते हैं चाहे वे विरक्त हो, गृहस्थ हों या राजा-रंक हो[५१]।" गृहस्थ और विरक्त—दो रूप मे कल्याण-साधक होते हैं; जिनके

४९. दोहा ३४७—३४८।

५०. प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दया युत, दीन जानि अपनाव ॥ ३५२ ॥

५१. दोहा ३५४-३५८, ३६०।

हृदय में गुरुन्याय एवं स्वरूपज्ञान का पूर्व प्रकाश हो गया है वे न्याय से एक ही हैं। जो साधुवेष और सत्स्वरूपज्ञान पूर्वक सत्य में स्थित हो जाते है, वे पारखी संत गुरु-सिद्धान्त के अधिकारी सम्राट हैं। साधुओं के अनेक वेष एवं पंथ हैं तथा गृहस्थों के अनेक रस्मो-रिवाज एवं चाल-चलन हैं; परन्तु गुरु-विचार एक न्याय है जो दोनों को कृतार्थ करता है। हां, जहां पर गृहस्थ-विरक्त, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र आदि की जो मर्यादा हो, वहां उसी प्रकार बर्ताव करना चाहिए। इससे सत्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा; प्रत्युत कर्तव्य रूप धर्म और ज्ञान उज्ज्वल ही होंगे। हे शिष्य ! असावधान नहीं होना, अहंकार और कल्पना में नही पड़ना। सदेव निर्मल बुद्धि बना कर साधु-गुरु की सेवा करते हुए आत्मकल्याण करना[५२]।"

सारशब्द

सारशब्द की प्राप्ति बिना व्यक्ति को शांति नहीं मिल सकती। जिससे भवबंधनों की परख हो वही सारशब्द है। सारशब्द निर्णय वचन को कहते हैं जिससे जीव का कल्याण होता है[५३]। सारशब्द सत्यासत्य परख करने की वाणी है, जिससे सभी भ्रमकृत वाणियों का जाल कटता है। सारशब्द से निर्णीत जीवन में धारण करने योग्य अंग हैं—विचार, शील, धैर्य और दया। पशुवत आचरण छोड़ कर शुद्ध रहनी धारण करे। सत्य अपना आत्म स्वरूप है और उसके बाद सारा पसारा छूटने वाला है। यह सत्य आत्मदेव झूठे देह-गेह में रमकर मोह-मूढ़ हो गया है। अतएव धीरे-धीरे इस झूठ की ममता का त्याग करे; किसी प्राणधारी को न सतावे; मांस, मछली आदि अशुद्ध भोजन न खाये; स्वच्छ सात्विक आहार करे। असत्य का पक्ष छोड़कर सत्यस्वरूप में स्थित होवे। किसी से कठोर वचन न बोले, न बुरे वचन सुने। जिसमें जीव का कल्याण हो, वह काम निर्भय होकर करे। मै-मेरी एवं अहंता-ममता दूर करे। आत्मा (चेतन) सत्य है और जगत परिवर्तनशील तथा छूटने वाला है। अंध-विश्वास छोड़कर स्वरूपज्ञान का सौदा करे। किसी मिथ्यावाद में न पड़े, मृत्यु का डर न करे। वीरता पूर्वक सारे दोषों को नष्ट कर अपनी स्वरूपस्थिति की शाहन्शाही गद्दी में विराजमान होवे। सबसे प्रेम का बर्ताव करते हुए जीवों

५२. मर्यादा जेहि जौन विधि, बर्ते तौन प्रमान।
जमा माहि कछु फेर नहि, उज्ज्वल धर्म अरु ज्ञान ॥
(३६१, ३६३, ३७०, ३७५, ३७८)

५३. सारशब्द निर्णय को नामा। जाते होय जीव को कामा ॥ चौकड़ी १ ॥
(गुरुबोध, सारशब्द निर्णय)

पर दयावान हो। गुरु-पूजा तथा संतों का सत्कार करे और गुरु-संतों को एक समान समझे। संत-गुरु को प्रत्यक्ष देव समझे। इनके अलावा देवी-देवता का जाल भरम-भुलावा समझे। जिसके मुख से विशेष ज्ञान जानने में आया हो, जिस महापुरुष से अपने कल्याण में ज्यादा बल मिला हो, वे ही सच्चे सद्गुरु हैं। उनके समान दूसरा गुरु नही। वे धन्य हैं जिन्होने संसार की परख कर उसके मोह का निवारण कर दिया। वे स्वयं कृतार्थ हुए तथा दूसरे का कल्याण करते हैं[५४]।

टकसार

वेद तथा छह शास्त्रों के भिन्न मत

टकसार पंचग्रंथी का वृहद् प्रकरण है। इसके आरम्भ में वंदना के बाद चारों वेदों के भिन्न विचारों पर कहा गया है। श्री रामरहस साहेब के अनुसार ऋग्वेद में निर्गुण-निराकार ईश्वर, सामवेद में अद्वैत ब्रह्म, यजुर्वेद में अवतार की परिकल्पना तथा अथर्ववेद में भौतिकवाद के सिद्धान्त हैं। निश्चित ही ग्रन्थकर्ता के इस कथन का वेद के कोई भाष्य आदि आधार रहे होंगे; परन्तु वेदों को देखने से चारों वेदो के कुछ ऐसे साफ मत नही दिखते। वेदों में कर्म-काण्डों पर जोर है। एक ही अर्थ के हजारों-हजारो मन्त्र चारो वेदों में भरे हैं जो कल्पित देवताओं या प्राकृतिक शक्तियो को देवता मानकर उनको खुश करने के लिए गाये गये हैं। कही-कहीं बीच-बीच में बड़े काम की बाते अवश्य मिलती हैं; परन्तु अधिकांशतम मन्त्र कर्मकांडपरक उबा देने वाले हैं। वेदो के मन्त्र द्वयर्थक और उलझे हुए हैं यह अलग बात है। वेदों में अवतार की चर्चा नहीं है।

सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, योग तथा वेदान्त—वेदानुसारी ये छहों शास्त्र अपने भिन्न विचार रखते हैं। मीमांसा कर्मकांड को प्रधानता देती है। वैशेषिक समय या अदृष्टि के अनुसार सब होना बतलाता है। न्याय दर्शन कर्ता ईश्वर सिद्ध करता है तथा पातंजलि योगदर्शन योगाभ्यास पर जोर देता है। सांख्यवादी नित्य पुरुष (आत्मा) एवं अनित्य (परिवर्तनशील) प्रकृति का विवेक करना बतलाता है और वेदाती अद्वैत ब्रह्म का अनुमान करता है। इन

५४. प्रत्यक्ष देव साधु गुरु मान। मान महातम भरम भुलान।
जा मुख निर्णय लखे विशेष। ते गुरु सम न और कोइ लेख॥
(गुरुबोध, सारशब्द)

सबमें केवल सिद्धान्तों की भिन्नता ही नहीं है; अपितु विरोध भी है। सांख्य में अद्वैतवाद का खंडन है तथा वेदान्त (ब्रह्मसूत्र) में सांख्य का खंडन है। इसी प्रकार अन्य शास्त्रों का अन्य में भी। इसलिए कही अंधश्रद्धालु न बनकर सबकी बातों पर निष्पक्ष होकर ही विचार करना चाहिए।

सात गुरु तथा आठवां सद्गुरु

जन्मदाता व पालक माता-पिता पहले गुरु हैं। दूसरा गुरु दाई है जो बच्चे के जन्मकाल मे नाल छीनती तथा सेवा करती है। तीसरा गुरु नामकरण करने वाला है जो नाम जीवन और मृत्यु पश्चात भी चलता है। चौथा गुरु विद्या, कला, राजनीति, लोकनीति आदि का ज्ञान देने वाला है। पांचवा गुरु वह है जो ॐ, राम, कृष्ण आदि किसी मंत्र को सुनाकर दीक्षा देने वाला है। छठवां गुरु वह है जो नाना देवी-देव, तीर्थमूर्ति आदि का पाखण्ड छुड़ाकर एक ईश्वर की उपासना में साधक को लगाता है। सातवां गुरु वह है जो जगत को मिथ्या बताकर साधक को सत्य ब्रह्म का उपदेश देता है। ससार में ये सात प्रकार गुरु है, संसार के लोग उनके शिष्य हैं। लोगो को चाहिए कि उक्त सातो गुरुओं का उपकार मानकर उनकी यथाशक्ति यथायोग्य सेवा करे; परन्तु सब प्रकार वंदना करने योग्य वह गुरु है जो सब कसर-खोट को बताकर सत्य को परखाने वाला है। उपर्युक्त सातों गुरुओ का ज्ञान नाशवान शरीर या मनः-कल्पनाओं तक हैं; इसमें उनके सब ज्ञान नाशवान हैं। भौतिक पदार्थो तथा मनः कल्पनाओ के राग से धोखा और ताप है; किन्तु इन सब का द्रष्टा इन सबसे भिन्न अपना चेतन पारख स्वरूप है—इसका बोध देने वाला पारखी सद्गुरु है और वही सर्वोच्च निर्भ्रान्त है। भौतिक पदार्थो का सम्बन्ध मन और इन्द्रियो द्वारा है तथा ईश्वर-ब्रह्म आदि मनःप्रसूत होने से उनका सम्बन्ध केवल मनः-कल्पनाओं द्वारा है जो विजाति, भास छूटने वाले है; परन्तु अपने पारख चेतन स्वस्वरूप का कभी वियोग नहीं। अतएव उसका बोधदाता ही सच्चा सद्-गुरु है।

ब्रह्मवाद निरास

पारखी सन्तों को वेदान्त के जड़-चेतन की अभिन्नता खटकती रही है। श्री रामरहस साहेब ने अपने पूर्ववर्ती श्री गुरुदयाल साहेब के समान ही ब्रह्म-वाद के निरास में बहुत विस्तार से कहा है। एक तरफ ब्रह्म को निर्विकार तथा मायातीत बताना तथा दूसरी तरफ उसे सारे प्रपंचों का नित्य अधिष्ठान कहना पूरा असंगत लगता है। वेदान्ती लोग 'अज्ञानी को ज्ञानी करते है तथा ज्ञानी को अज्ञानी' अर्थात वे साधारण आदमी को उपदेश करते है कि तुम

देह नहीं, चेतन हो और उनके द्वारा ज्ञान की उच्च स्थिति में पहुंचे हुए लोगों को यह बतलाया जाता है कि देह से लेकर सारा विश्व तुम्हारा स्वरूप है[५५]।

विविध विषय

टकसार प्रकरण में बहुत विषय हैं। उन सब पर संक्षिप्ततः भी व्याख्या करना यहां सभव नही, अतएव संक्षिप्त सूची मात्र यहां प्रस्तुत की जा रही है।

मन:कल्पनाओं को छोड़कर स्वरूपज्ञान की ओर प्रेरणा है। आगे पांचों कोशों का संक्षिप्त वर्णन है। शुद्ध रहनी सहित पारख स्थिति का वर्णन है। वेष और आचरण की असमानता को अनुचित बताया गया है। कर्म, उपासना, ज्ञान आदि पर जतसारी लगनियां नामक गीतों में रोचक ढंग से वर्णन है। काल-जाल से हटकर स्वरूपज्ञान के लिए प्रेरणा है। पारखी सद्गुरु की विशेषता तथा स्वतःबोध की ओर संकेत है। पारख के प्रकाश से सब भ्रमो का नाश तथा पारख के द्वारा ही गहन अज्ञान से छुटकारा हो सकता है, इसका वर्णन है। आगे सद्गुरु की महानता बतलायी गयी है। कल्पना जाल का वर्णन है तथा पारखज्ञान द्वारा मोह का अन्त बताया गया है। माया और ब्रह्म से जगत-उत्पत्ति की कल्पना का दिग्दर्शन है। पुनः माया तथा ब्रह्म से ब्रह्माण्ड एवं पांच तत्वो की उत्पत्ति, पाचो के रंग, देवतादि का शास्त्रोक्त वर्णन है। इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा और उनके देवताओ का चित्रण है। पिंड-ब्रह्माण्ड के विषय में अनेक कल्पनायें तथा उनको आगे कहने की प्रतिज्ञा है। शरीर की उत्पत्ति का प्रकार, पांचो तत्वों के स्थान, द्वार, देवता व आहार का वर्णन है। पचीस प्रकृति, उनके देवता, तीन तथा नौ नाड़ी, शरीर में सात कमल, पर्वत, समुद्र आदि पर खुलाशा है। शरीरस्थ प्राणादि दश व तीन वायुयों, षट्उर्मियो, अष्ट अंगों तथा उनमे लोको का वर्णन है। स्त्री-पुरुष के आसक्ति-दोष को बताकर उससे वैराग्य का वर्णन है। नर-नारी के अंग-चिन्ह आदि लक्षणों से ज्योतिष जिस तरह अर्थ निकालता है उसे बताकर वैराग्योपदेश है। कर्म-वासनाओ की प्रबलता और चारो खानियो मे जीवों के जन्म का वर्णन है। स्त्री और पुरुष के चार भेद, कोकशास्त्र का थोड़ा रूप बताकर, वैराग्य की चर्चा है। रूप, रंग, गढ़न आदि की सारहीनता पर विचार है। आगे भूत-प्रेत आदि कल्पित योनियों का खण्डन है।

५५. अज्ञानी ज्ञानी करै, ज्ञानिहि करै अचेत ।। टकसार, दोहा ३२ ।।

विश्व-उत्पत्ति के विषय में कल्पनाओं का दिग्दर्शन है। ब्रह्मांड की काल्पनिक उत्पत्ति, चंद्र-सूर्य-ग्रहण तथा नौ नाड़ी और नौ ग्रह का वर्णन है। रात-दिन संध्या तथा भिन्न दिशाओं में योगिनी का वर्णन है। पिंड में ब्रह्माण्ड की कल्पना तथा अनस्थिर संसार का हिंडोला रूप में कथन है। स्वर-व्यंजनादि की उत्पत्ति, उनके स्थान तथा देवतादि का वर्णन है। आगे 'सोऽहम्' की उत्पत्ति, ॐ की उत्पत्ति तथा गायत्री का वर्णन है। 'राम' शब्द की उत्पत्ति तथा उसके स्वरूप का वर्णन है। व्याकरण, पिंगल, लिपि, गणित, सगीत, काल, ज्योतिष, भविष्यज्ञान, सिद्धि, गणित तथा फलित ज्योतिष, श्वास सरोदय द्वारा फलाफल विचार आदि का अलग-अलग प्रसंगों मे वर्णन कर उनमें रहे हुए भ्रमों का निरास करके स्वरूपज्ञान की ओर प्रेरणा है। योगाभ्यास से शरीर को अमर बनाने की दुराशा पर विचार है और योग तथा ब्रह्म विचार पर आलोचना है। झीनी माया की परख बतायी गयी है और शाबर मंत्र, यंत्र, तंत्र, भूत-प्रेत, सिद्धि आदि तथा सांसारिक प्रपंचो का निरास है। आगे भ्रम का खण्डन कर सत्यार्थी को उद्बोधित किया गया है। वैद्यक, चिकित्सा शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र आदि का वर्णन है। ब्रह्म और माया, त्रिदेवो का ब्रह्म के लिए प्रश्न, रज-वीर्यमय सृष्टि और अष्टांगी का महादेव को उपदेश, विष्णु और ब्रह्मा के मार्ग, अष्टांगी का ब्रह्मादि को सावित्री आदि का देना, अष्टांगी का जगत-कारण-विषयक उपदेश तथा त्रिदेवो का राज्य बटवारा, तीनों देवताओं के राज्य तथा कर्म, जप और अष्टांगी के अंतर्धान आदि का विस्तृत वर्णन है।

इतना ही नहीं, चारो वेदों तथा उनकी मान्यताओ का पुनः वर्णन है। सामवेद के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण, वर्णव्यवस्था, चित्रगुप्त तथा कर्मजाल का विस्तार कथन है। उपासना मे घुसे हुए अविवेक का कथन है और नाना भ्रमकृत साधनाओं का दिग्दर्शन है। राजनीति, चौदह विद्या तथा चौदह रत्नों का वर्णन है। अपना चेतन स्वरूप जड़-चेतन अभिन्न अद्वैत नही, अपितु जड़ से भिन्न है और संसार की नश्वरता, वाणीजाल की प्रबलता, विदेशी मतों का परिचय तथा हिंदू और मुसलिम मान्यताओ मे साम्य का वर्णन है। मन के जाल से हटकर स्वरूपस्थिति की ओर चलने की प्रेरणा है। बीजक संवलित पारखज्ञान की विशेषता का वर्णन है। माया की प्रबलता बताकर उससे सावधान किया गया है, हिताहित की परख और सद्गुरु के महत्त्व का वर्णन है। मोहनींद से सावधान करते हुए मुमुक्षु को उद्बोधित किया है। पारखज्ञान ही कठिन भवबधनो से बचा सकता है, वही ज्ञान निष्पक्ष है इन सारी बातो का वर्णन है। आगे सत्य रहनी का उपदेश देकर सबसे सार ग्रहण करने की बात

बतायी गयी है और कहा गया है—"जिस सर्वोच्चपद मोक्ष की प्राप्ति के लिए सुर, नर, मुनि जन अनेक प्रकार से योग, जप, तप करते हैं और अगम कहकर गाते हैं; पारखी संत भ्रम के आदि-अंत को परखा कर और सब गांस भास मिटाकर उस निश्शंक निर्भय स्वस्वरूप पारख में ठहर जाते हैं[५६]।"

सत्ताईस रमैनी

टकसार प्रकरण के अंत में सताईस रमैनियां हैं, जो 'सत्ताईस रमैनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें अन्य बातो की चर्चा करते हुए मुख्य काल, संधि, झांई और सार वाणियों का वर्णन किया गया है। पहले है परा, पश्यती, मध्यमा और बैखरी—इन चार वाणियो का वर्णन। वैखरी जो मुख से निकली हुई है, वह वाणी है। उसके पहले वह मूलाधार, नाभि तथा हृदय मे या नाभि, हृदय, कंठ में क्रमशः परा, पश्यंती तथा मध्यमा रूप मे मानी जाती है।

कोई वाणियो का वर्गीकरण रोचक, भयानक तथा यथार्थ के नाम से करता है; कही रूपकथन, अतिशयोक्ति कथन तथा वस्तुकथन मे वाणियां हैं। रामचरित मानस में उसके विज्ञजन वाक् विलास, चित्विलास, रमाविलास तथा आत्मविलास के नाम से विभाजित करते हैं। कोई विधि-निषेध तथा पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दो ही रूपो मे बाट देता है। बीजक टीकाकार रीवानरेश ने बीजक में गुरु-उक्ति, साहेब-उक्ति, माया-उक्ति, जीव-उक्ति तथा ब्रह्म-उक्ति पांच प्रकार वर्णन किया है[५७]। धनौती मठ की 'त्रिजी' बीजक टीका से संबलित श्री चेतन भक्त रचित बीजक टीका 'गुरुगमबूझ' में अपनायत-परायत दो तथा मायामुख, मनमुख, वेदमुख, आत्ममुख, बकमुख एव हंसमुख का वर्गीकरण है। श्री पूरण साहेब ने जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख तथा गुरुमुख के रूप मे वर्गीकरण किया है। इनके पूर्व श्री रामरहस साहेब ने काल, संधि, झांई और सार के नाम से वाणियो का चार विभाग किया है। काल, संधि और झाई भ्रमपूर्ण वाणियां है और सार निर्णय वाणी है[५८]। स्थूल अज्ञान की बाते काल (कल्पना) की वाणी है, सब भ्रम कट जाने के बाद भी अपने से पृथक अपना

५६. जेहि हेतु सुर नर मुनि जना, बहु योग जप रट लावहीं।
नहिं ओर छोर बेकार पावहि, अगम कहि कहि गावहीं॥
सो आदि अन्त जे सुजन जन, पारख करहिं परखावहीं।
सब गॉस भास मिटाय, अभय अशंक सोइ पद पावहीं॥
(१०३ चौपाई में छन्द १५)

५७. आदिमंगल पृष्ठ २७।

५८. भरमिक झांई संधि और काल। सार शब्द काट भ्रम जाल॥ (रमैनी २)

लक्ष्य खोजने की बात संधि वाणी है, अपने स्वरूप को जड़ चेतन सब में देखने की बात झांई वाणी है और अपने स्वरूप का व्याप्य-व्यापक वर्जित सबसे भिन्न सबका द्रष्टा रूप से कथन सार वाणी है। श्री रामरहस साहेब कहते हैं "जिन्होंने संसार की परख कर सबसे अपने आप को छुड़ा लिया उन तारण-तरण, बंदीमोचन सद्गुरु कबीर ने पारख ज्ञान का उद्घाटन किया। उनको बारम्बार धन्यवाद है[५९]।" अंत में ग्रथकार विनम्रता पूर्वक कहते हैं "ब्रह्म-वादी भले जड़-चेतन अभिन्न ब्रह्म का विचार करें; परन्तु हे निष्पक्ष विवेकी! तुम गुरु-कृपा से जड़ से सर्वथा पृथक अपने पारख स्वरूप चेतन का ही विचार करो; क्योंकि यहां सबमें मिलना नहीं, अपितु परख कर सबसे पृथक असंग, निराधार ठहरना होता है, अतएव जीव का कल्याण होता है[६०]।"

६

श्री कुंजल साहेब तथा उनकी पंचग्रंथी

(ई० सन् १९ वीं शताब्दी)

बिहार प्रदेशस्थ पावा स्थान के संस्थापक श्री कुंजलदास साहेब की एक दूसरी पंचग्रंथी है। यह किस सन्-संवत में रची गयी इसका उल्लेख तो नहीं मिलता; परन्तु ग्रन्थकर्ता द्वारा लिखित विक्रम संवत १९०९ की हस्तलिपि कापी से सन् १९५४ अर्थात विक्रमी संवत २०११ में श्री राम प्रेस, बुलानाला, वाराणसी में पावा स्थान द्वारा प्रथम बार छपी है। इस ग्रथ के आरम्भ में 'दो शब्द' लिखा है "यह ग्रंथ कब बनाये हैं, सो ग्रंथकर्ता पुस्तक में नही दिये हैं। स्वयं ग्रंथकर्ता की हस्तलिखित कापी का ता० संवत विक्रम १९०९ स्थान में पाया जाता है।" निश्चित है यह पंचग्रंथी गया निवासी श्री रामरहस साहेब की पंचग्रंथी के बाद लिखी गयी है।

इस पंचग्रंथी में भी पांच प्रकरण हैं, उनके नाम हैं निर्णय परख विलास, निर्णय विचार, विवेकसार, पारख बानी तथा निर्णय पारख। इसके अतिरिक्त

५९. धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार।
बन्दीछोर कबीर सों, परगट गुरु विचार॥ (साखी २४)

६०. ब्रह्म विचारै ब्रह्म को, पारख गुरु परसाद।
रहित रहै पद परखिके, जीव का होय उबार॥ (साखी ३१)

इस ग्रंथ के परिशिष्ट में सात प्रकरण हैं निर्णय रहस विलास, निर्णय विचार, दरियादास जी की जीवनी, ज्ञान रत्न, ग्रंथ उपदेश, पारख परकाश तथा ग्रंथ अर्जी। इस ग्रंथ में पारख सिद्धान्त एवं जीववाद का पूर्णरूपेण प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार धनौती, फतुहा, पावा आदि मे पारखी संत पारख सिद्धान्त का विचार, सत्संग, उपदेशादि करते रहे और उस पर लिखते-पढ़ते रहे हैं। इससे पता चलता है कि शताब्दियों पूर्व से ही बिहार प्रदेश पारख सिद्धान्त से कितना प्रभावित था।

इस पंचग्रंथी के कुछ वचन

माया दोऊ अपरबल भाई। झीनी मोटी दोउ दुखदायी ।।
मोटी माया नारि है खानी। झीनी है गुरुआ की बानी ।।
मोटी तजि के साधु कहाये। झीनी मांहि पुनि गये बंधाये ।।
कर्म मर्म सब करने लागे। तीरथ बर्त माह अनुरागे ।।
प्रतिमा पूजा जप तप करही। योग साधना ध्यान सो धरही ।।
कोऊ ईश्वर ब्रह्म को ध्याना। कोऊ कथै ज्ञान विज्ञाना ।।
कोऊ आपे ब्रह्म कहावे। आपे बहोरि जगत हो जावे ।।
कहै जगत मह हमही अहहो। ऐसी बात साधु कोउ कहहीं ।।
जिन जिन कियो जहां अध्यासा। तहां तहां तिनको भो बासा ।।
झीनी माया मे पचि रहही। निरनय रहस परख नहि गहहीं ।।
तब लगि कैसे छूटै भाई। बंधमान सो सदा रहाई ।।
निरनय रहस परख जब पाई। तब सब बंधन कटि सो जाई ।।
साखी—मिले संत गुरु पारखी, निरनय देहि लखाय।
　　मोटी झीनी माया तजे, तब नहि बंध रहाय[1] ।।

७

श्री पूरण साहेब

(जन्म सन् १८०६ मृत्यु १८३८)

मध्य प्रदेश, खानदेश, जिला जलगांव के अन्तर्गत एक छोटे से गांव में 'पूरणसिंह जी' क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे। आपके बड़े भाई का नाम

१. श्री कुंजल साहेब कृत पंचग्रंथी दोहा ५३, पृष्ठ २८, सन् १९५४।

गुलाबसिंह तथा बहन का नाम सोनाबाई था। श्री पूरण साहेब थोड़ी अवस्था से ही साधु हो गये। बड़े भाई गुलाबसिंह कुछ दिन गृहस्थी में रह कर साधु हुए। बहन सोनाबाई भी साधना ही में रहने लगी थी। पूरणसिंह जी सद्गुरु की खोज में रीवां शहर में श्री सुखलाल साहेब[1] जी के पास पहुंचे। उन्ही के पास रह कर आपने अध्ययन-मनन किया और पूज्य श्री सुखलाल साहेब द्वारा साधुता की विधिवत दीक्षा भी ली। गुरु द्वारा आपका नाम पूरा न बदल कर 'पूरणसिंह' से 'पूरणदास' रखा गया।

पूज्य श्री पूरण साहेब (पूरणदास) विद्वान, प्रतिभा के धनी और वैराग्यवान संत थे। कहा जाता है कि उन्होंने बिहार प्रदेश के अनेक कबीर मंदिरों का भ्रमण किया था। हो सकता है उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में भी घूमे हो। वे बुरहानपुर शहर के पूर्व तरफ ताप्ती नदी के तट पर रहने लगे और उन्होंने वही निर्णयसार, वैराग्यशतक, शब्दावली तथा बीजक की प्रसिद्ध टीका 'त्रिज्या' की रचना की। आप निराले वैराग्यवान और मस्तमौला संत थे। सद्गुरु कबीर ने जितनी निर्भीकता से मूल बीजक की रचना की है उतनी ही निर्भीकता से श्री पूरण साहेब ने उसकी टीका की है।

आपने बीजक की त्रिज्या नाम की टीका विक्रमी सं० १८६४ की कार्तिक पूर्णिमा को लिखकर समाप्त की और दो दिन बाद अगहन बदी तृतीया को ३२ वर्ष की उम्र में आपका शरीर छूट गया। आपकी समाधि बुरहानपुर निर्णय मंदिर के प्रांगण में बनी हुई है। आपकी समाधि के दाहिनी ओर एक दूसरी समाधि है जो धनौती शाखा के दामोदरपुर लोहमड़ी मठ के पारखी संत श्री प्रयाग गोस्वामी की है। आप श्री पूरण साहेब के साथ रहते थे। दोनो समाधियों पर शिवालयनुमा दो छोटे-छोटे मंदिर पुराने जमाने से ही बने है।

बीजक टीका त्रिज्या

हम पीछे चर्चा कर आये है कि श्री पूरण साहेब ने बीजक की टीका विक्रमी संवत १८६४ में समाप्त की। आपकी बीजक टीका त्रिज्या बड़ी प्रसिद्ध

१. श्री पूरण साहेब ने अपनी गुरु परम्परा इस प्रकार बतायी है—

पारख गुरु कबीर कहावै। पारख धर्मदास बतलावै॥
पारख में सब संत कहाई। पारख अमरदास गुरु पाई॥
तहवाँ ते सुखलाल कृपानिधि। पारख पाय सकल बीजक विधि॥
पूरण तिनका चरण को चेरो। कृपादृष्टि उनहिन प्रभु हेरो॥
हौं मतिमंद सकल विधि हीना। दया कीन्ह पारख पद दीन्हा॥
(निर्णयसार, चौपाई ३५)

है। आपकी टीका के वाक्यों में बड़ा ओज है, क्योंकि स्वयं आप एक तेजस्वी पुरुष थे। आपकी टीका सद्गुरु कबीर के विचारों को फैलाने में बहुत सहायक हुई। इसका उद्धरण यहां न देकर मैं उनके बनाये दो मौलिक ग्रंथ निर्णयसार एवं वैराग्यशतक का पूर्ण सारानुवाद नीचे देता हूं, जिनसे आप उनके विचारों को सरलता से समझ सकेंगे।

निर्णयसार

निर्णयसार आपकी मौलिक रचना है। इसमें आपने बड़ी शालीनता और क्रम से भौतिकवाद, ब्रह्मवाद आदि की आलोचना करते हुए ग्रंथांत में पारख सिद्धान्त तथा रहनी की बातें कुशलता पूर्वक बतायी है। यह पूरी पुस्तक गुरु-शिष्य के संवाद रूप में रची गयी है। प्रथम वन्दना के बाद शिष्य पूछता है।

जीव का विवेचन

१. शिष्य—"हे गुरुदेव! इस संसार में क्या सत्य है जिसके आधार पर ज्ञान-विज्ञान का सारा व्यापार चल रहा है? काल, कर्म, कर्ता, सांख्य, योग, वेदान्त आदि सभी मतो का निर्धारक कौन है?

सद्गुरु—"जीव ही सत्य है, अविनाशी है। जीव ब्रह्म, ईश्वर, सांख्य, योग, वेद, शास्त्र आदि सबका कल्पक संस्थापक है। अतएव जीव ही सर्वोपरि है।"

२. शिष्य—"हे गुरुदेव! आपने ठीक ही कहा कि जीव ही सर्वोपरि है; परन्तु जीव है क्या? जीव पाच तत्व है कि तीन गुण है कि वीर्य, रक्त, तेज, श्वास या शून्य है? जीव क्या है, समझ में नही आता है, कृपया बतलावें?"

सद्गुरु—"बेटा! जिनके तुम नाम लिये हो पांच तत्व, तीन गुण, वीर्य, रक्त आदि—ये सब तो जड़ परिवर्तनशील हैं। जो बनता है वह नष्ट होता है। जीव तो अविनाशी है। जो पांच तत्वों को जानता है, जो तीनों गुणों का विचार करता है, जो वीर्य, रक्त, तेज, तम, श्वास को जान-जान कर उन्हें मानता है, वह जीव उन सबसे भिन्न है। क्या शून्य को जानने वाला शून्य हो जायेगा? जो जड़ दृश्यो को जानता है वह जड़ दृश्य कैसे हो जायेगा? जीव तत्व होता तो तत्वो की व्याख्या कौन करता? जीव तो केवल ज्ञानस्वरूप[२] है और उससे बढ़कर कोई नही। यह जगत पंच तत्वमय है। जो इसको जानता

२. जानहि मात्र जीव है सोई। जान ते अधिक और नहिं कोई॥

(निर्णयसार, चौपाई १०)

है वह इससे पृथक अविनाशी जीव है। जीव जो कल्पता है वह कल्पना कहलाती है और वह जिसे मान लेता है वह मानन्दी है[१]।"

३. शिष्य—"हे गुरुदेव ! जब जीव सर्वोपरि है, तब यह बंधनो मे क्यों पड़ा, यह तो कुछ ज्ञान धर्म का लक्षण नही कि अपने आप को बंधनो मे डाल ले। फिर अविनाशी अखण्ड में बंधन होना भी नही चाहिए। जीव किसी द्वारा निर्मित है कि स्वतः है, यदि निर्मित है तो इसके मां-बाप कौन है ? यदि स्वतः है तो बंधनो मे कैसे पड़ा ?"

सद्गुरु—"इस जीव के कोई माता-पिता नही हैं। यह तो अपने आप, अनादि, अविनाशी है इसके ऊपर कोई दूसरा कर्ता नही; प्रत्युत यही सबका मंता, बोद्धा, द्रष्टा और कल्पक है। यही ईश्वर की कल्पना करता है। यह स्वयं भौतिक पदार्थों तथा कल्पनाओ में अहंता-ममता कर बंधता है। यह अपने भूलजनित कर्मो में स्वयं बंध जाता है। जैसे सुग्गा नलिकायंत्र में लाल मिर्ची के लोभ से तथा कीट अपने कोशा में ममतावश फंस जाते है। इसी प्रकार यह जीव मोहवश स्वयं फंस जाता है और स्वरूपतः ज्ञानी होकर भी अज्ञानी बन जाता है।"

हंसदेह

४. शिष्य—"हे प्रभो ! वह शुद्ध-बुद्ध जीव कैसे अपने आप को भूलकर माया में फंस गया ? जीव की प्रथम कौन देह थी जिससे वह परिछाईं में भूलकर भ्रमवश बंधन मे पड़ा ?"

सद्गुरु—"जीव की पहली देह हंस की थी, इसका विवरण मैंने बीजक टीका में दिया है। वह सब यहां कहने से विस्तार होगा। संक्षिप्ततः यह है कि क्षमा, दया, सत्य, धैर्य, विचार—ये पांच तत्व की हंस-देह जीव की थी और इसी का ब्रह्माण्ड था। इसी के हर्षातिरेक मे पड़कर जीव भूल गया और फिर पक्की से कच्ची देह काम, क्रोध, लोभ, मोह संयुक्त हो गई। फिर तो सारे बन्धनों में उलझ गया।"

यहां का वर्णन कुछ ऐसा है जो आपाततः भ्रामक जैसा लगता है; परन्तु थोड़ा विचार करने पर साफ हो जाता है कि स्थूल देह में ही दया, क्षमा, धीर, विचार आदि होते हैं। दया-क्षमादि की कोई अलग देह नहीं होती। सार अर्थ यह कि जीव अनादिकाल से भवबन्धनों में है। मानव-शरीर ही बंध तथा मोक्ष

१. पाँच तत्व यह जगत सब, जानै सो जीव जान।
कल्पै सोई कल्पना, मानै सो अनुमान ॥ दोहा ४२ ॥

का स्थान है। जिस मानव शरीर में स्वाभाविक मानवीय सद्गुण दयादि है, उसी में रह कर जीव मनःकल्पनाओं में भूल कर कामादि के वश हुआ भटकता है। उक्त कथन की शैली का प्रयोग आपने बीजक की प्रथम साखी 'जहिया जन्म मुक्ता हता' की टीका में किया तथा कुछ-कुछ इसी प्रकार आपके पूर्ववर्ती श्री रामरहस साहेब ने भी अपनी पंचग्रंथी के गुरुबोध प्रकरण के ५वें तथा १४वें प्रश्न में वर्णन किया है।

सद्गुरु पुनः कहते हैं—"तत्, त्वम् तथा असि, ये वैदिक उपदेश है; परन्तु इनकी मानन्दी में भूलकर जीव बधनों से पड़ा है।"

५. शिष्य—"हे प्रभु! मैने पहले समझ रखा था कि जीव के ऊपर दूसरा कर्ता है, इसलिए उसके पूजा-पाठ मे खूब भटक रहा था। मैं उसकी प्राप्ति के चक्कर में बेहाल था; परन्तु आपके समझाने से लगा कि यह तो सब मन का जाल है। परन्तु गुरुदेव! आपने जो अभी एक नया नाम 'तत्त्वमसि' कहा है, यह क्या बला है, इसे समझाइए?"

तत्त्वमसि

सद्गुरु—"हे शिष्य! तुम बड़े सौभाग्यशाली हो जो तुम्हें इतनी तीव्र जिज्ञासा है। वैसे मुझे बोलने की इच्छा नही है; परन्तु तुम्हारे श्रद्धावश बोल रहा हूं। न मैं कवि हूं न भाट, मैं वाद-प्रतिवाद के चक्कर मे कभी पड़ता नही। क्योंकि गुरुवाई, मान-बड़ाई तथा ऋद्धि-सिद्धि सब एक दिन नष्ट हो जायेंगे। इसी में सब जीव फसे हैं। मुझे इनकी आवश्यकता नही। केवल तुम्हारे भक्ति-वश उत्तर दूंगा। 'तत्' ईश्वर को, 'त्वम्' जीव को तथा 'असि' अविनाशी ब्रह्म को कहते है[४]। जो आत्मा भी कहलाता है और जो अचल तथा सहज आनन्द स्वरूप है या यों कहो कि 'तत्' ज्ञान है, 'त्वम्' अज्ञान है और 'असि' दोनों की एकता ब्रह्म है। जिसे विज्ञान कहते हैं।"

६. शिष्य—"गुरुदेव! यह सब बड़ा जटिल लगता है, जरा इसे साफ-साफ कहिये?"

सद्गुरु—"जो अखिल ब्रह्माण्ड में निवास करता हुआ ब्रह्माण्ड अभिमानी चेतन है वह ईश्वर है, जो पिंड (देह) में निवास करने वाला पिंड अभिमानी चेतन है वह जीव है और दोनों का वाचाश (ब्रह्माण्ड और पिंड) छोड़ देने पर जो सामान्य चेतन है वह ब्रह्म है। उसमें द्वैत-अद्वैत का बन्धन नही। या ज्ञानी को 'तत्' अज्ञानी को 'त्वम्' तथा विज्ञानी जो परमहंस सर्वोच्च हैं उनको 'असि' कह सकते हैं। उदाहरणार्थ 'तत्' जैसे समुद्र, 'त्वम्' जैसे कूप-

४. तत्त्वमसि का सीधा अर्थ है 'वह तू है'—तत् = वह, त्वम् = तू, असि = है।

तड़ागादि, 'असि' दोनों में पानी। इसमें दो प्रकार है। एक परोक्ष जो विशेष कहलाता है तथा दूसरा अपरोक्ष जो सामान्य कहलाता है। अज्ञान, ज्ञान तथा विज्ञान—तीनों में परोक्ष-अपरोक्ष तथा विशेष एवं सामान्य होते हैं। जो निरुपाधि है वह अपरोक्ष है और उपाधियुत परोक्ष है।"

७. **शिष्य**—"अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान—ये दो-दो प्रकार के कैसे है ? कृपया पहले अज्ञान का विवरण दें ?"

अपरोक्ष अज्ञान

सद्गुरु—"विशेष अज्ञान अपरोक्ष अज्ञान कहलाता है, वह इस प्रकार है—विषयों में आसक्त रहना, ऊंच-नीच कुछ न मानना, वेद-मर्यादा, पडितो की मर्यादा न मानना, कुल-गोत्र की परवाह छोड़कर विषयलीन रहना, मास खाना, शराब पीना, परस्त्रीगमन करना, शृङ्गाररस के गीत गाना, वेश्यागमन करना, इसी मे द्रव्य उड़ाना, बाममार्ग का आचरण करना, ज्ञानी से झगड़ा करना, सांच को झूठ तथा झूठ को सांच सिद्ध करना और इतना ही नहीं, यह कहना कि "ज्ञानी कहलाने वाले तो भूले है। जगत मे स्त्री, द्रव्य तथा भोग के समान कोई उपलब्धि नही है। मृगनयनी सब सुख की खानि है। इसको त्याग कर जो ब्रह्मज्ञानी बने बैठे हैं, इन ज्ञानियों की बुद्धि मारी गई है। साधुओं की संगत करके लोग पागल ही हो जाते हैं। ये कर्महीन, दरिद्र तथा आलसी हैं, ये परान्नभोजी अभागे है। हम लोग विषयो को भोगने वाले बड़े भाग्यशाली हैं। अतः हम ज्ञानी हैं, ये अज्ञानी है। मरने पर तो सबकी मुक्ति है। ये नाहक में उसके लिए पच-पच कर मरते हैं। हे भाई ! जो कुछ है वह देह है। उसकी अच्छी तरह सेवा करो। खूब इन्द्रियो से भोगो को भोगो। बहुत विचार करने के चक्कर मे क्या पड़ना ! मरने के बाद कौन जन्मता है, यह किसने देखा है ? अतः पुनर्जन्म मिथ्या समझो, जीव-ब्रह्म भी मिथ्या समझो। पृथ्वी आदि पांच तत्वो का शरीर बना है और अंत मे उन्ही पांचो में यह मिल जायगा। जैसे वृक्ष से पत्ते झड़कर उसमे पुनः नही लगते, वैसे मरे पर सब खतम ! पांच तत्व ही मूल हैं और कुछ नही। इसलिए हमारा कहा मानो और बोध-विचार को भूल-भुलैया का खेल समझो। जब तक शरीर है खूब खाओ, और इन्द्रियों से मौज करो। इन साधुओ का कहा कोई मत मानो तथा बूढ़े-बड़ों को जाहिल समझो"—यह सब अपरोक्ष (घोर) अज्ञान है। ऐसी धारणा कर वे पगले पामर विषयों में जीवनपर्यंत बहकर अंततः महादुख पाते हैं।

"उपर्युक्त अज्ञान यदि दूसरे की इच्छा से हो तो उसे समानाधिकरण[५]

५. अधिकरण कहते हैं आधार को।

समझना चाहिए तथा स्व-इच्छा से हो तो विशेषाधिकरण समझना चाहिए। विशेषाधिकरण अज्ञान का वर्णन श्री कृष्ण भगवान ने गीता में किया है 'तू तम को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान जो देहधारियों को भ्रम में डालता है और उन्हें प्रमाद, आलस्य तथा निद्रा में बांधता है[६]।''

परोक्ष अज्ञान

"अब परोक्ष अज्ञान बतलाता हूं जिसको समानाधिकरण भी कहते हैं। ईश्वर, देवी, देव, मंत्र, तंत्र, तीर्थ, व्रत, उपासना कांड को मानना; वेद, शास्त्र प्रमाण मानना; जाति-पांति और परम्परा का आचार मानना; वेद-पुराण की कथा सुनना और मनन करना; वर्णाश्रम के कर्मो के अनुसार चलना; विधि-निषेध मानना; कर्मकांडको सच्चा मानना; गऊ-ब्राह्मण की पूजा करना; जगत-नीत का आचरण करना—यह सब परोक्ष अज्ञान है।

"कर्म के भी दो प्रकार है एक समान तथा दूसरा विशेष। योग, ध्यान, समाधि करना, ऋद्धि, सिद्धि और चमत्कारके चक्कर में रहना। धन-दौलत के लिए ऐसे महाराज लोग मत्र-तत्र साधते है। ऐसे लोग पुत्रधन का प्रलोभन देकर लोगों के लिए मन्त्र लिखते, पूजा करते तथा देवी-देवता की आराधना करते हैं; शाप देने, वर देने की साधना करते हैं। ऐसे लोग नियमपूर्वक कायाकल्प करते हैं और जगत में बहुत बड़ाई चाहते है, स्वर्गादि की इच्छा करते, उसके लिए तपस्या और गंगादि मे स्नान करते है—यह सब विशेष कर्म है। और ईश्वर की पूजा, मुक्ति की वासना, दुष्कर्म त्याग कर सुकर्म करना; मोक्ष के लिए विरह रखना, लोक-परलोक के भोगो से वैराग्य, शम-दमादि साधन आदि सामान्य कर्म हैं। पर-इच्छा से किये गये कर्म-अकर्म समानाधिकरण है तथा स्व-इच्छा से किये गये विशेषाधिकरण। इसकी भी साक्षी श्री कृष्ण जी दे रहे हैं—'रजगुण को रागमय समझो, यह लोभ और आसक्ति से उत्पन्न होकर जीव को कर्मों से जकड़ता है[७]।' समानाधिकरण कर्म पर वे कहते हैं—सतगुण निर्मल, प्रकाशमय एव निरोगकर है, यह सुख तथा ज्ञान की आसक्ति में जीवों को बांधता है[८]।"

जीव तथा अज्ञान

८. शिष्य—"सद्गुरु, आप धन्य हो। आपने अज्ञान का विधिवत स्वरूप बताया; परन्तु यह बताइये कि जीव और अज्ञान दो है कि एक?"

सद्गुरु—"जीव और अज्ञान कभी एक नही, जैसे रोगी और रोग एक नही। यदि रोगी और रोग एक होते तो रोगी का रोग विरोधी न होता और

६. गीता १४/८। ७. गीता १४/७। ८. गीता १४/६।

न रोगी को रोग-वश रोना पड़ता। इसी प्रकार यदि अज्ञान जीव का स्वरूप होता तो जीव को अज्ञान से दुःख न होता; क्योंकि अपना स्वरूप अपना विरोधी नहीं होता। अतएव जीव से अज्ञान सर्वथा भिन्न है।"

६. शिष्य—"हे गुरुदेव ! यह अज्ञान कैसे नष्ट हो तथा ज्ञान कैसे मिले इसका भेद बतलाइये और ज्ञान के कितने प्रकार हैं ?"

परोक्ष ज्ञान

सद्गुरु—"हे शिष्य ! मैंने तुम्हें ऊपर 'त्वम्' पद के दो प्रकार के अज्ञान को अच्छी तरह समझा दिया है, अब 'तत्' पद के दो प्रकार के ज्ञान का रहस्य बतलाऊंगा। एक समान ज्ञान है और दूसरा विशेष ज्ञान है। विशेष या विशेषाधिकरण ज्ञान को परोक्ष तथा समान या समानाधिकरण ज्ञान को अपरोक्ष कहते हैं। विशेषाधिकरण ज्ञान अर्थात जिस ज्ञान का आधार विशेष स्थिति है वह उपाधि (विशेष लक्षण) वाला है और जो समानाधिकरण अर्थात सहज ज्ञान है वह निरुपाधियुत मुक्तिपद है। खुलाशा यह है कि जो विशेष ज्ञानयुत जीव होता है वह ईश्वर कहलाता है और समान ज्ञानरत जीव को वेदान्त ज्ञानी कहता है।"

१०. शिष्य—"हे गुरुदेव ! विशेषाधिकरणयुत जो परोक्षज्ञान है और जो ईश्वर का लक्षण है उसे पहले बतलाने का कष्ट करे ?"

सद्गुरु—"जो अपने और दूसरे के शरीरों के लक्षणों एवं उनकी स्थितियों को जानता है, जो सुख-दुःख, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा अन्य सारे व्यवहारों को समझता है, जो शरीर इंद्रिय, इंद्रिय-व्यवहार तथा स्थूल-सूक्ष्म का निर्णय करता है और इस प्रकार जान-बूझ कर जो इन्हें इन्द्र-जालवत मिथ्या समझता है, जो यह ज्ञान रखता है कि ये सब नाशवान हैं तथा मैं अविनाशी चेतन हूं, जिसे यह विवेक है कि यह सब असत्य है और मैं त्रिकाल सत्य हूं तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों देह माया के जाल हैं—इस प्रकार बारम्बार स्फुर्ण होना परोक्षज्ञान है। परन्तु यह परोक्षज्ञान भी दो प्रकार है। एक तो यह है कि जो पूरी सत्ता और समर्थ का अपने को अधिष्ठाता समझता है और ऋद्धि-सिद्धि से सम्पन्न होकर व्यवहार करता है, वह होने योग्य को तो करता ही है, असंभव को भी कर डालता है, जिसमें ज्ञान, ऐश्वर्य, ब्रह्मांडता (विश्व प्रसिद्धि), यश, विद्या, बल—ये छह गुण विराजते है, ये जीव सिद्ध तथा ईश्वर कहलाते हैं[६]। दूसरे परोक्षज्ञान वाले वे हैं जो निरुपाधि हैं। वे ऋद्धि-

६. ज्ञान श्री ब्रह्मांडता, यश विद्या बल होय।
ये षट गुण जहं पाइये, ईश जानिये सोय॥

सिद्धि नहीं मानते। वे कहते हैं कि ऋद्धि-सिद्धि, ऐश्वर्य और देवता तथा ईश्वर और माया सब नाशवान हैं। जगतजाल तो मृगजलवत है, न कुछ करना है न कराना है, मन-माया के लक्षण वाले पदार्थ नाशवान हैं, मै नित्य और सबका मूल हूं, त्रिगुण लक्षण वाले सब व्यवहार नाशवान हैं और मै सबका साक्षी, सबका ज्ञाता हूं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर क्यों न हों मुझे कोई नहीं जान सकता। मैं त्रिगुणातीत, सर्वद्रष्टा, अद्वैत अखंड हूं। हे भाई व्यष्टि और समष्टि सब मिथ्या हैं, मैं शुद्ध चेतन हूं—इस प्रकार जिसे तीनों कालों में स्फुर्ण हो, उसकी सब अविद्या नष्ट समझो। ऐसा ज्ञानी हो उच्च परोक्ष ज्ञानी है।"

अपरोक्ष ज्ञान

"हे शिष्य ! अब तुम्हें अपरोक्ष ज्ञान बतलाता हू। जिसे भूत, भविष्य तथा वर्तमान—तीनों काल प्रतीत नही होते, जो सुषुप्ति के समान सबको भूल गया है, जिसे तीनों कालों में द्वैत का स्फुर्ण नही होता, जिसकी ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय तथा ध्याता, ध्यान, ध्येय—सारी त्रिपुटियां लीन होकर एकरस वृत्ति रहती है, जिसको तीनो कालों मे केवल अपने आप का भाव है, और द्वैत की उपाधि जिसमें नही समाती, जिसकी वृत्ति सदैव चिन्मय, पूर्णानंद एवं शुद्धब्रह्म सच्चिदानंद है, इस प्रकार का ज्ञान ही अपरोक्ष ज्ञान है। इसमे भी दो प्रकार है। एक तो योग धारणा करके मन को शांत करना और एकरस वृत्ति धारण करना है जिसे आगम-निगम मध्यम पक्ष कहते हैं; परंतु दूसरा वह है जो श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके साक्षात्कार की वृत्ति प्राप्त की जाती है। इस अभ्यास में स्थित होकर द्वैतभाव से सर्वथा मुक्त हो जाना यह उत्तम पक्ष का ज्ञान है। इसे धारण करने वाला ज्ञानस्वरूप एवं शिवस्वरूप है।"

११. शिष्य—"हे गुरुदेव ! जान तथा ज्ञान में क्या अंतर है ?"

सद्गुरु—"हे प्रिय शिष्य ! जान और ज्ञान में स्वरूपतः अंतर नही है, तथापि संतो ने कुछ अंतर बताया है। जान तो सबमे है; परन्तु बंधा है और ज्ञान होने पर मुक्ति हो जाती है[10]। जब जीवो मे ज्ञान की विशेषता होती है तभी उन्हे मोक्ष की प्राप्ति हाती है। जैसे दर्पण का मैल निकल जाने से वह साफ हो जाता है, जैसे दीपक का ढक्कन हट जाने से उजाला हो जाता है, इसी प्रकार अविद्या से ढंके हुए जीव ज्ञान के उद्घाटित हो जाने पर कृतार्थ हो जाते हैं। जैसे मेघ हट जाने पर सूर्य प्रकाशमय निकल आता है वैसे अविद्या के छिन्न हो जाने से जीव दिव्य मंगलमय हो जाता है। यही जान और ज्ञान में अंतर है। जीव जान मात्र है; किंतु अविद्या के हटने पर वह ज्ञानमय मुक्त है।"

१०. जान सबन में बंध रहाई। ज्ञान के उदय मुक्त होय जाई॥

१२. शिष्य—"हे गुरो ! क्या ज्ञान में भी कोई कसर रहती है ?"

सद्गुरु—"बेटा ! ज्ञानियों ने कहा है कि तीनों देहों को विस्मृत कर केवल जानीवदशा रहती है। उसमें वेद कसर बतलाते हैं। इसलिए ज्ञानियों ने इसका भी निषेध किया है। वह कसर यह है कि जानीवदशा में एकोऽहं का भाव विद्यमान रहता है। इसीलिए बहुस्याम् का विस्तार होता है और अविद्या का फैलाव होता है। इसी जानीव एवं स्फुरित दशा को कोई-कोई सबल ब्रह्म कहते हैं। इसी को कोई मूल माया एवं मायोपाधियुक्त होना बतलाते हैं। अतएव संसार का सारा प्रपंच जानीव (जानने की दशा) में होने से वह त्रुटिपूर्ण है। जीवन्मुक्ति तो तब होती है जब स्वजाति, विजाति एवं स्वगत[11] तीनों भेद समाप्त हो जायं, मैं-मेरी भावना तथा संसार के अस्तित्त्व की अविद्या समाप्त हो जाय। और मैं कहां हूं और कहां नहीं हूं इसका भेद मिटकर विज्ञानदशा आ जाय। वेद-शास्त्र का यही मत है।"

विज्ञानदशा

१३. शिष्य—"गुरुदेव उस सर्वोच्च विज्ञानदशा का वर्णन कर मेरा भ्रम काट दें।"

सद्गुरु—"प्रिय ! ज्ञान से पूर्ण होने के बाद जड़वत हो जाय। जानना न जानना दोनों छोड़ दे। उन्मत्त जैसे शरीर का सम्हार नहीं करता वैसी दशा आ जाय। इस प्रकार सब समय सहज दशा होकर महदानन्द की मग्नता में पूर्ण रहे। सभी भावनाओं तथा परिसीमाओं से परे, अवस्थातीत एवं दशातीत में वर्तमान करे। एक तथा अनेक का भ्रम छोड़कर आत्मा की कूटस्थता में विराजमान रहे। एक ही तत्त्व में स्वजाति, विजाति तथा स्वगत का भेद करते नहीं बनता—यह विज्ञानदशा है। परन्तु हे शिष्य ! इसमें भी दो प्रकार है। एक विज्ञानी तो ऐसे घूमते हैं जो केवल ऐसी बातें करते हैं और दूसरे है जिनकी इस प्रकार दशा हो गयी है। जो कहने मात्र है वह मिथ्या ज्ञान है और जो उस विज्ञानदशा में विचरता है वही सच्चा है। उसे द्वैतभाव कभी नहीं आता। वह सदैव अद्वैत-तत्व में स्थित रहता है। हे शिष्य ! उस दशा का आश्चर्य कहते नहीं बनता। वहां तो वह स्वयं ही कारण और कार्य दोनों है। वह स्वयं बोलने वाला तथा बोलाने वाला तथा खेलने और खेलाने वाला है। वह स्वयं करने तथा कराने वाला है। उसके लिए द्वैत का संताप समाप्त है।

११. स्वजाति भेद—एक मनुष्य से दूसरा मनुष्य पृथक है, विजाति भेद—मनुष्य से पशु, मिट्टी से जल पृथक है। स्वगत भेद—हाथ, पैर, आंख आदि जैसे भेद।

स्वयं आत्मा देखने तथा दिखाने वाला है। उसे दुःख रूप द्वैत का प्रतीत नहीं होता।"

१४. शिष्य—"गुरुदेव ! यह विषय बड़ा गूढ है। जरा इसे दृष्टान्त देकर समझाने की कृपा करें ?"

सद्‌गुरु—"सौम्य ! यदि आत्मा से कुछ पदार्थ अलग हो, तो मैं दृष्टांत दूं। भिन्न तो कुछ है नही ! विज्ञानदशा दृष्टातो से परे है। यहां न कुछ नित्य है और न अनित्य। यहां द्रष्टा, दृश्य, दर्शन का भेद समाप्त होकर सब आत्मा हो जाता है। सारे नाम, रूप, कहना, सुनना मिथ्या है 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्[12]' सब वाणी का विकार मात्र, कहने मात्र का है। स्वर्ण-भूषण, घट-मृत्तिका तथा जल-तरंग न्याय जगत-ब्रह्म एक है, बोध दे रहा तथा बोध पा रहा है—इतना भी कहते नही बनता। आत्मा एक अखण्ड है—यह भी कहते नही बनता, क्योंकि एक कहने पर दूसरे की सत्ता सिद्ध होती है और कहने वाला कोई अलग है नही। आत्मा मे सब कुछ सभव है। सारी विविधता उस एकता में समाहित हो जाती है। उसमे कुछ विधि-निषेध करने की सभावना नही है। उसमें कुछ कहते-सुनते उसी प्रकार नही बनता जेसे गूगा गुड़ खाकर बता नहीं सकता[13]।"

१५. शिष्य—"हे सद्‌गुरु ! यदि आत्मा और जगत एक है और विधि-निषेध कुछ नहीं है, तो आत्मा बनना ही बेकार है; बल्कि अहितकर है क्योकि इतना सब मेहनत करने के बाद आत्मा जगत ही ठहरा। यह बात कुछ जचती नही। गुरुदेव ! आप सर्वज्ञ है; भेद बतलाने की कृपा करें ?"

सद्‌गुरु—"बेटा, आत्मा बनना कहां है। अरे तू सदैव आत्मा ही है। तू तो एकरस अखण्ड परिव्याप्त है। तू क्या भ्रम करता है।"

१६. शिष्य—"हे सद्‌गुरु ! जब ज्ञान-विज्ञान नही थे, तब भी तो आत्मा था ही, या विज्ञान पाकर आत्मा बना ?"

सद्‌गुरु—"सौम्य ! तुम आश्चर्य की बाते करते हो। अरे, जब ज्ञान-विज्ञान नही हुए थे तब भी आत्मा स्वयसिद्ध था। जब ज्ञान-विज्ञान हुए तब भी वही आत्मा सम्पूर्ण व्याप्त है। ज्ञान-विज्ञान अनेक बार होते और जाते है तथा अनेक बार अज्ञान मिटते हैं; आत्मा तो आकाशवत निर्विकार, उत्पत्ति-विनाश-रहित एकरस है।"

१२. छांदोग्य ६/४।

१३. मिलान कीजिये विवेक चूड़ामणि २३१; २३२, ३९१।

१७. शिष्य—"हे गुरुदेव ! जब आत्मा सदैव निर्विकार है, तब ज्ञान-विज्ञान की क्या आवश्यकता ?"

सद्गुरु—"प्रिय शिष्य ! केवल भ्रांतियों की निवृत्ति के लिए ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता है।"

१८. शिष्य—"हे गुरुदेव ! भ्रांति मिटे या न मिटे आत्मा तो सदैव निर्लेप है। क्या जब तक भ्रांति नही मिटती, तब तक यह आत्मा नही रहता ? आपने कहा कि आत्मा अद्वितीय, अखंड और सबका अधिष्ठान है। यदि इसमे कुछ भी सम-विषम करियेगा, तो सब कथन निरर्थक होगा।"

सद्गुरु—"प्रिय शिष्य ! भ्रांति मिटे या न मिटे, आत्मा तो मिटता नहीं। आत्मा अनादि, अखण्ड और निर्लेप है, इसको मान लो।"

१९. शिष्य—"गुरुदेव ! आपने यह अच्छा बताया कि मै आत्मा सदैव निर्लिप्त हूं और इसमें कुछ करना-धरना नहीं। फिर वेदवाक्य, उनके उपदेश और गुरुवाई सब मिथ्या हुए।"

सद्गुरु—"प्रिय बेटा ! मैं कहता हूं न कुछ मिथ्या हैं न सत्य। यदि कुछ हो तो उसका द्रष्टा कहा जाय। यहां तो न द्रष्टा है और न दृश्य। यह सारा प्रतीत आत्मा का विलास है। यह स्वयं नाना रूपों में बन कर खेल रहा है। इसमें कुछ घटना-बढ़ना नहीं है। अपनी जगह पर चुपचाप हो जाओ। अनन्त आत्मा में सभी वाणियों का अन्त हो जाता है। ब्रह्म तो जैसा का तैसा है। उसको न मुक्त कहते बनता है और न बद्ध।"

२०. शिष्य—"गुरुदेव ! आपके कहने से तो बोलना जरूर नही रहा; परन्तु मन मे संदेह तो बना ही है। मै वचन मात्र ज्यों का त्यो रहा; परन्तु स्थिति की प्राप्ति नही हुई। मै निर्विकार आत्मा हूं—इतना कह लेने मात्र से मेरा कौन-सा प्रपच छूटा ? आपके उपदेशो की भी क्या विशेषता हुई ? आपके कथन के अनुसार सब कुछ तो मेरा विलास ठहरा, फिर यह जन्म-मरण का बन्धन कैसे मिटे ?"

सद्गुरु—"सौम्य ! दो के बिना आवागमन हो नही सकता। आत्मा एक है तो आवागमन कैसा ? अतएव इस आवागमन के भ्रम को भी उड़ा दो। केवल आत्मा की ही एकरस सत्ता है; द्वैत है ही नही। यह द्वैत ही भय का कारण है। 'जो नानत्व को देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है[१४]।" अतः विधि-निषेध सब भ्रम है।

१४. मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। बृहदा० ४/४/१९।

२१. शिष्य—"गुरुदेव ! मुझ अद्वितीय आत्मा को भ्रम कहां से आया, जिससे मैं पीड़ित हूं ?"

सद्गुरु—"प्रिय शिष्य ! भ्रम का कोई अलग अधिष्ठान तो है नहीं। तेरा भ्रम तुझ ही में है जैसे सर्प-भ्रांति का अधिष्ठान रस्सी ही है। जैसे सीपी में चांदी का भ्रम होता है, वैसे तुझ ब्रह्म में जगत्भ्रांति प्रतीत होती है।"

२२. शिष्य—"गुरुदेव ! रज्जू में सर्प भ्रांतिवत यदि जगत-भ्रांति का अधिष्ठान मैं ही हूं तो यह छूटेगी कैसे; क्योंकि अधिष्ठेय अपना अधिष्ठान छोड़कर कहां जा सकता है ? अतः आत्मा को छोड़कर भ्रांति कहां जावेगी ?"

सद्गुरु—"बेटा ! भ्रांति तब तक है जब तक तू अज्ञानी है। ज्ञान होने पर भ्रांति मिट जाती है, फिर आत्मा न अज्ञ है न विज्ञ है।"

२३. शिष्य—"गुरुदेव ! आत्मा सर्वदेशी है और भ्रांति भी सर्वदेशी है। और ज्ञान-समाधि एकदेशी है, कोई बिरला जीव उसे साधता है। फिर एक-देशी समाधि से सर्वदेशी भ्रांति कैसे मिटेगी ?"

सद्गुरु—"बेटा ! अंततः तो ज्ञान-समाधि भी भ्रांति है और जगत तथा ब्रह्म भी भ्रांति है। आत्मा मे जगत का अध्यारोप (मिथ्या प्रतीत) और फिर उसका अपवाद (निषेध) यह सब विषादमय भ्राति है। कहना, सुनना, पूछना, संकल्प, विकल्प—सब भ्राति है। तू तो समुद्रवत परिपूर्ण आनन्द ब्रह्म है और जगत मिथ्या नाशवान तरंग है।"

२४. शिष्य—"गुरुदेव मै समुद्रवत ब्रह्म हूं ठीक है; परन्तु जगत-तरग तो मेरे में ही रहती है, उसके शात हुए बिना मुझे कहां शांति मिलेगी ?"

सद्गुरु—"सौम्य ! बिना वायु के तरगें नही उठतीं, इसी प्रकार चित्त-वायु से ही जगत-तरंग उठती है, उसके शात हो जाने पर तुम शांत ही हो।"

२५. शिष्य—"गुरुदेव ! चित्त-वायु का अधिष्ठान कौन है, वह कहां से उठता है।"

सद्गुरु—"हे शिष्य ! तू ही सबका अधिष्ठान है। तुम से कुछ अलग हो तो मैं बताऊं।"

२६. शिष्य—"हे महाराज ! जबमैं ही अधिष्ठान हू और आत्मा और जगत अभिन्न एक ही है, तो यह रोग स्वाभाविक है, इसका छूटना ही असभव है और छूटे बिना कल्याग होगा नही। मैं जगत-रोग से परेशान हूं।"

सद्गुरु—"प्रिय ! जगत तुमसे अलग नही हो सकता, इस प्रकार यह रोग असाध्य तथा स्वाभाविक है। तुम्हे छोड़कर वह अपना नाम क्या

धरायेगा। सब कुछ तो ब्रह्म है। अतएव सब प्रकार से सब कुछ तुम्हीं हो। चुपचाप हो जाओ और इस विषय में सोचना छोड़ दो।

२७. **शिष्य**—"हे गुरुदेव ! मुझसे तो कुछ कहते नहीं बन रहा है; परन्तु इस ब्रह्मज्ञान में मुझे कुछ विशेषता नहीं दिखती। मैंने आपसे पहले पूछा था कि 'जन्म-मरण के बन्धनों का भेद बतावें। यह ज्ञान स्वरूप जीव किस कारण से जन्म-मरण में पड़ा ?' तब आपने कहा तत्त्वमसि की मान्यता के बंधन मे जीव फंसा है। मैंने उसका भेद पूछा, तो आप उसका भेद बताते चले। मैंने उसका श्रवण, मनन आदि भी किया; परन्तु खेद है कि मै तत्त्वमसि का भेद पहचानते-पहचानते ज्ञानी से अज्ञानी बन गया। आप भी कहते-कहते गुरु से आत्मा बने। मैं भी आत्मा, आप भी आत्मा और जगत दृश्य भी आत्मा। अब हे प्रभु ! मुक्त कौन होगा और किससे होगा ? जड़-चेतन अभिन्न एक अद्वितीय आत्मा में तो भव का रोग ज्यों-का-त्यों बना है और सारे दुःख भी बने है। हां, इसमें यही विशेषता हुई कि ब्रह्मोपदेश करते-करते आप थक गये और उसे सुनते-सुनते मै थक गया। अब दोनों चुप होकर जहां के तहा खड़े है।"

उत्तरपक्ष : पारख-उपदेश

सद्गुरु—"बेटा ! अब तुम घबराओ मत। मैंने पहले जो बातें कही थीं, उनका तुम्हें ध्यान नहीं रहा। तुमने पहले पूछा था कि कितने प्रकार की मानन्दियां होती हैं। मैंने उत्तर दिया तत्-त्वम्-असि—तीन की मानन्दियां होती हैं। उनके विवरण में मैंने अज्ञान, ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप बताये और उनमें दो-दो प्रकार के भेद। यह सब सुनकर तुम इन्हें मेरे विधिवाक्य समझ लिये। तुम्हें यह ख्याल नही रहा कि मैं तुम्हे बन्धनो का स्वरूप एव मानन्दी के प्रकार बतला रहा हू।

"अच्छा, अब तुम निर्णय करो, 'तत्-त्वम्-असि' का निर्णय करने वाला उसका द्रष्टा, ज्ञाता तू उससे पृथक है कि नही ? और तेरा ही भास तेरे को खाता है। तू ही 'तत्-त्वम्-असि' शब्द की रचना करके और उसका अर्थ जड़-चेतन-अभिन्न मानकर बन्धनो मे पड़ा है। इसका त्याग करो।"

२८. **शिष्य**—"गुरुदेव ! तत्त्वमसि को छोड़कर मैं कौन हूं ?"

सद्गुरु—"हे शिष्य ! तत्त्वमसि शब्द की कल्पना करने वाला तू शुद्ध पारख स्वरूप चेतन है। दृश्य से द्रष्टा पृथक होता है। जब 'तत्त्वमसि' यह सारा दृश्य ही है तो तू उससे पृथक शुद्ध चेतन है। जो तुम्हे प्रतीत हुआ उसी को तुम अपना स्वरूप मान लिये। मैं प्रतीत दृश्य से पृथक हू—इसकी परख तुम्हे नही हुई। जो प्रतीत हो, वह मेरा स्वरूप है—यह महा भवबन्धन

तथा अंधाकुप्पा है। सबसे भिन्न होते हुए तू अपने आपको भिन्न नही समझता, इसलिए सब कुछ को अपना स्वरूप मानकर बन्धनों में पड़ा है[१५]।"

२९. शिष्य—"हे गुरुदेव ! तत् और त्वम् की एकता असि—विज्ञान दशा में एक-दो, ज्ञान-अज्ञान, भेद-अभेद, सगुण-निर्गुण चार अवस्थायें—कुछ भी संभव नही है। जहां मन-वाणी की पहुंच नहीं, उसमें कौन-सी मानन्दी मैने कर ली ?"

सद्गुरु—"यदि ब्रह्म निर्गुण-सगुण तथा मन-बुद्धि एवं वाणी से परे है तो उसको तुमने कैसे जाना ?"

३०. शिष्य—"आपके प्रथम कथनानुसार गूगे के गुड़ खाने वत।"

सद्गुरु—"ठीक है गूगा गुड़ खाकर केवल उसका स्वाद जानता है, उसका वह वर्णन नही कर सकता; परन्तु स्वाद चखने वाला स्वाद से भिन्न होता है। क्या गूगा गुड़ हो जाता है ? अनुभविता भासमान से पृथक होता है। तुम सभी दृश्यो से पृथक हो इसका विवेक करो।"

३१. शिष्य—"महाराज ! पृथक और मिला क्या ? मै तो एक अद्वितीय आत्मा प्रलय जलवत सब कुछ हूं।" (शिष्य को उलट कर पूर्वपक्ष का भ्रम सत्यवत दृढ़ हो गया। गुरुदेव उसका शमन करते है)।

सद्‌गरु—"जिसको सबका प्रतीत होता है वह कौन है ? सूक्ष्म विचार कर भास से पृथक होकर अपने पारख स्वरूप मे ठहरो।"

३२. शिष्य—"मै आत्मा ही सबका प्रतीत करने वाला हूं।"

सद्‌गुरु—"तू कौन है ? किस आधार से दृश्य को परखता है ?"

३३. शिष्य—"जो मेरे अनुभव में आता है वही मैं हूं, वही जगत[१६] है। शेष कुछ नही।"

सद्‌गुरु—"हे सौम्य ! जो तेरे को प्रतीत होता है, तू उससे पृथक है। तू दृश्य कैसे हो जायगा ? विचार करो।"

३४. शिष्य—"गुरुदेव ! आपके संकेत से अवश्य समझ में आता है कि जो दृश्य है, उससे मुझे पृथक होना चाहिए। यदि मैं दृश्य से पृथक हूं, तो कौन हूं ? मै तो समझता हू कि जो कुछ मुझे प्रतीत होता है वही मैं हूं।"

१५. जो भासे सो मोर स्वरूपा। यह बन्धन अंधियारी कूपा॥
भिन्न अछत अरु जानत नाहीं। मानि मानि बन्धन के पाहीं॥

१६. अहम् एव इदम् सर्वम्—मैं ही यह सब हूं। (छांदोग्य उपनिषद् ७/२५/१)

सद्गुरु—"प्रिय ! इसी को कहते हैं झांईं, परिछाईं, मन का धोखा। यह जान-बूझकर अचेत होना है। इसमें खोटा ही सत्य तथा जड़ ही चेतन प्रतीत होता है। इस झांईं में सुर, नर, मुनि सब उलझे हैं। पारख पाये बिना कोई सुलझता नहीं दिखता। यह सब कुछ को ब्रह्म मान लेने की बात एवं विज्ञान की दशा ज्ञानसुषुप्ति है, ज्ञानी कहलाकर एक बदहवासी में पड़े रहना है।"

३५. शिष्य—"गुरुदेव ! कितने प्रकार की सुषुप्ति होती है ?"

सद्गुरु—"सुषुप्ति दो प्रकार की है—अज्ञानसुषुप्ति तथा ज्ञानसुषुप्ति। गाढ़ी नींद में सो जाना अज्ञानसुषुप्ति है तथा उपर्युक्त कथित विज्ञान दशा, जिसमें जड़-चेतन का विवेक खोकर सब कुछ एक हो जाता है यह ज्ञानसुषुप्ति है, अर्थात जान-बूझकर गाफिली करना है।"

३६. शिष्य—"गुरुदेव ! इस ज्ञानसुषुप्ति में क्या त्रुटि है ?"

सद्गुरु—"बेटा ! बहुत बड़ी त्रुटि है। जैसे अज्ञानसुषुप्ति अर्थात गाढ़ी नींद में कुछ विकार नहीं दिखता; परन्तु उसमें बीज न रहे तो स्वप्न तथा जागृति उसके बाद कैसे हो ? इसी प्रकार विज्ञानदशा रूपी ज्ञानसुषुप्ति में आपाततः कोई त्रुटि नहीं दिखती; परन्तु उसमें त्रुटि न हो तो जगत कहां से आये। बीज ही से तो वृक्ष होता है। इसी प्रकार ब्रह्म से ही जब जगत पैदा होता है तब ब्रह्म बनकर जगत से अलग कहां हो सकते हैं ? जैसे बीज और वृक्ष का अधिष्ठान खेत है, वैसे ब्रह्म तथा जगत का अधिष्ठान आत्मा है। अतएव यह अद्वैतवाद का आत्मा सारे विकारो का कारण है। इसलिए हे शिष्य ! इस जड़-चेतन के अभिन्नवाद का बखेड़ा छोड़कर सबके साक्षी तुम शुद्ध-बुद्ध पारख रह जाओ।"

३७. शिष्य—"गुरुदेव ! मैंने सारे भासों को परख कर छोड़ दिया, फिर मैं क्या रहा ?"

सद्गुरु—"प्रिय शिष्य ! तुम यह बताओ कि बंधनों को क्यों पकड़ा था और क्यों छोड़ दिया ?"

३८. शिष्य—"अज्ञानवश बंधनों को पकड़ रखा था, अब समझ लिया तो छोड़ दिया[१७]।"

सद्गुरु—"बंधनों को त्याग देने के बाद क्या रहा, जो शेष रह गया उसका विचार करो।"

१७. अनजाने बंधन गहि लीन्हा। जानि बूझि त्यागन सब कीन्हा॥

३९. शिष्य—"हे गुरुदेव ! सारे भासों को बंधन समझ कर जब उन्हें छोड़ दिया, तब तो केवल मैं ही शेष रहा।"

सद्गुरु—"सौम्य ! जिससे तू ने 'तत्-त्वम्-असि' तथा सारे संसार की परख की वह पारख (ज्ञान) तुम्हारा स्वरूप है कि नही ?"

४०. शिष्य—"हे गुरुदेव ! पारख मेरा स्वरूप है। मै स्वयं पारख-स्वरूप न होता तो सबको कैसे परखता। अतएव सबका पारखी मै शुद्ध चेतन पारख-स्वरूप हूं। अब मैने अपने को जड़ दृश्यों से पृथक शुद्ध चेतन समझा।

सद्गुरु—"हे शिष्य ! वह पारख (ज्ञान) ही तुम्हारा स्वरूप है। पारख अविनाशी, अचल, सबसे परे शुद्ध चेतन है। अतः ब्रह्म, जगत और शरीर की आशा छोड़कर पारख में ठहरो। पारख सबको परखता है, उसे दूसरा कौन परख सकता है ? पारख-विचार अत्यन्त सूक्ष्म है। कोई परख-प्रवीण ही इसे समझ सकता है। यह नियम है कि निकट की वस्तु को देखना कठिन होता है। जिन आंखों से बड़े-बड़े पर्वत देखे जाते हैं, वे आंखे स्वयं नहीं देखी जा सकतीं। जीव सबको जानता है; परन्तु अपने आप को नही जानता। कोई विवेकवान ही दृश्य से लौटकर अपने आप को समझता है। जो अपने आप चेतन-स्वरूप को सबसे पृथक समझ लिये, वे भ्रम मे नही पड़ते। जो अपने पारख-स्वरूप मे स्थित हो गये वे जानो गुरु कबीर को पा गये। अर्थात् अपने स्वरूप की स्थिति ही गुरु को पाना है। पारखपद सर्वोपरि भूमि है। अर्थात जहां से सबकी परख होती है वह चेतन की भूमका ही सर्वोपरि भूमि है। छिप्रा[१८], गतागत, सौलेष्ठता, सुलीन, अभाव तथा सत्य (सदाचार, हंसरहनी) छह भूमिकाये हैं और सातवी पारख भूमिका है जो सर्वोपरि है। इसी में तुम्हारी स्थिति होनी है। इसे कोई बिरला प्राप्त करता है। जो पारख में स्थित हो गया वह भास, अध्यास, अनुमान, कल्पना से मुक्त हो गया। पारख और

१८. (क) जागृति अवस्था में तीव्र गति एवं व्यवहार बुद्धि होने से छिप्रा (शीघ्र-गामी) भूमिका है। (ख) सूक्ष्म शरीर गमनागमन एवं जन्म-मरण का कारण है; अत. इसकी गतागत भूमिका है। (ग) सुषुप्ति ही सौलेष्ठता भूमिका है। सौलेष्ठता का तात्पर्य है एकबद्धता। (घ) जीव का ब्रह्म में लीन होना मानना सुलीन भूमिका है। (ङ) ब्रह्मज्ञानियों की विज्ञानदशा अभाव भूमिका है। (च) दया, क्षमा, शील, विचार, सत्य, धैर्य, विवेक, वैराग्य, भक्ति, स्वरूपज्ञान तथा हंस रहनी, विवेकियों की छठीं सत्य भूमिका है जो कल्याणकर है। (छ) और अंततः सर्वोपरि स्वस्वरूप चेतन पारख भूमिका है जो समस्त ऐश्वर्यों से रहित शुद्ध-बुद्ध है।

पारखी-अर्थात् ज्ञान और जीव एक है और जगत-ब्रह्म मन का भास है—यह कृपालु सद्गुरु कबीर का निर्णय है जो जीवों के कल्याण के लिए कहा है। हे प्रिय शिष्य ! सद्गुरु कबीर रचित बीजक सद्ग्रंथ के ज्ञान की जो स्थिति है, वह सब मैंने तुमको बता दी और आगे भी बताऊंगा। परख के नाते साधु प्रिय हैं, परख के नाते गुरु प्रिय हैं और परख के नाते ही कबीर प्रिय हैं; अतएव तुम पारखपद को पहचानो। और पारख के प्रताप से सब भ्रम मानन्दियों से मुक्त हो जाओ[१६]।

ग्रंथकर्ता का गुरुपरंपरा वर्णन

सद्गुरु कबीर ने पारखज्ञान का उपदेश किया। श्री धर्मदास साहेब ने भी पारख का उपदेश किया। उसके बाद सब संत भी पारख की स्थिति तथा उपदेश करते रहे। उसी क्रम में श्री अमरदास साहेब ने पारखज्ञान का उपदेश पाया। उनसे कृपालु श्री सुखलाल साहेब को पारख का बोध हुआ जो पूर्ण बीजक-ग्रंथ के अनुकूल है। यह पूरणदास उन्हीं के चरणों का चाकर है। उन्होंने कृपा करके दास को पारख बोध दिया। मैं तो अल्पबुद्धि-सब प्रकार से अकिंचन हूं; परन्तु गुरुदेव कृपा करके पारखपद का बोध दिये।

गुरु शिष्य और पारख-स्थिति

प्रिय शिष्य ! उसी पारखपद का उपदेश मैने तेरे को किया है। पारखी की स्थिति पारख (ज्ञान) में रहती है, उन्हें अन्य किसी की आशा-वासना नही होती। जब गुरु और शिष्य—दोनो देह के अहंकार को छोडकर पारख में स्थित हो जाते हैं तब दोनो एक समान स्थिति वाले हो जाते हैं। पारख-स्थिति में समता हो जाती है, और उसमें शिष्यता और गुरुता, कमी एवं वेशी नहीं रहती। इस प्रकार पारख-स्थिति के भाव से दोनों की दशा एक हो जाती है; परन्तु देह-भाव से शिष्य अपने आपको गुरु का दास ही मानता है। जिस परख से मैंने सब कुछ परखा, जिस ज्ञान से मुझे सबकी परीक्षा हुई है, वह पारख वह ज्ञान मैने तुम्हें हर्ष पूर्वक दिया है। हे प्रिय शिष्य ! पारखस्थिति की दृष्टि से मैं और तुम—दोनों समान हैं, देह-भाव से गुरु-शिष्य का नाता है।

१६. परख का तात्पर्य विवेक-ज्ञान है। विवेक-ज्ञान उदय होकर सब दुःखों की निवृत्ति हो, इसीलिए तो साधु, गुरु तथा कवीरदेव को मानना है। अतएव निष्पक्ष होकर विवेक-ज्ञान को जगाओ। जहां से परख एवं विवेकज्ञान का उदय होता है वह तुम्हारा स्वरूप ही है, वही पारख एवं ज्ञानस्वरूप है।

परख साधु गुरु परख, कवीर, पारखपद पहिचान।
पारख के परताप से, सब भ्रम जाला मान॥

पारख स्थिति की रहनी

पहले विचार को ग्रहण करो और सत्य तथा असत्य का निर्णय करो। छान-छान कर असत्य को उड़ा दो तब सारतत्व को पाओगे। शरीर असत्य एवं नाशवान है। इसकी ममता से ही जीव भयभीत तथा तनाव की स्थिति में है। भय करने से धैर्य छूट जाता है। धैर्य के छूट जाने से अधीरता आती है। अतएव नाशवान तथा असत्य वस्तु शरीरादि की अहंता-ममता छोड़ दो और भय-धोखा में कभी मत उलझो। अधैर्य के चले जाने पर अपने आप धैर्य रह जाता है। शरीर का जो होनहार है वह होकर रहेगा। उसे मान-मान कर रोने से क्या लाभ? तू अविनाशी है, दु:ख-रहित होने से सुखपूर्ण है—यह समझ कर धैर्य रखो। शील पूर्वक मीठे वचन बोलो और अभिमान छोड़कर जो सुख-दु:ख उपस्थित हों, उन्हें सहन करो। सुख-दु:ख के सारे भोग नाशवान हैं, अतएव शील-भाव से रहना हमारा कर्तव्य है। दिल में सदैव दया रखो। बिना दया के तुम्हारा कार्य सफल नहीं होगा। ममता और अहंकार छोड़कर संतो की सेवा करो। संतों के चरणों में अपने को झुका दो। उनका आदर करना ही उनकी मुख्य पूजा करना है। शक्ति के अनुसार संतों की पूजा-सेवकाई करके उनके ज्ञान-वचन रूप महाप्रसाद को ग्रहण करो। इन संतो मे जिनकी पारख की रहनी-गहनी एव बोध-स्थिति है वे प्रत्यक्ष गुरुमूर्ति है। यथार्थ पारखी संत और गुरु में कोई भेद नही है। इसके अतिरिक्त परोक्ष सेव्य निषिद्ध हैं। शरीर छूटते तक सदैव स्वरूप-विचार में लीन रहो। पारख में स्थित रहना, सबकी परख करना; परन्तु कुछ ग्रहण नही करना। हे प्रिय! भूत और भविष्य की कल्पना तथा आशा छोड़कर वर्तमान मे विवेक पूर्वक बरतो। दु:ख और सुख मे उद्वेगित तथा मोहित नही होना और मानव की एक जाति मानना। वर्णाश्रम के चक्कर में नही पड़ना। जो पारखस्वरूप में स्थित है, वे ज्ञान से आलोकित होते है। वे सदैव पारख स्वरूप एवं मुक्त रूप है। यह पारख-विचार सभी निर्णयो का सार है। हे प्रिय शिष्य! वह सब मैने तुम्हे समझा दिया है। अब जो तुम्हे अच्छा लगे वह करो[२०]।"

यह ग्रंथ संवत् १८९२ चैत्र शुक्ल दशमी तिथि को लिखकर समाप्त हुआ[२१]।"

२०. सो अब सकलों तोहिं बतावा। करु विचार जो तुम मन भावा॥

२१. अष्टादश नौ दोय, चैत्र शुद्ध दशमी तिथि।
ग्रंथ समापत होय, पारख बोध भौ शिष्य को॥

वैराग्यशतक

बीजक टीका त्रिज्या तथा निर्णयसार के बाद श्री पूरण साहेब का तीसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ वैराग्यशतक है। यह मुमुक्षुओं के हृदय में वैराग्य का जोश भरने वाला है।

वैराग्य की महिमा

पारख का पूर्ण प्रकाश करने वाले सुखस्वरूप कबीर गुरु के युगल चरणो की वंदना करता हू जो कल्पना-जनित,पीड़ा को हरने वाले है। वस्तुतः काल-पीड़ा उन्ही की मिटती है जिनको विषयों से दृढ़ वैराग्य है। इसके बिना सब जीव दुखी हैं और अभागे विषयो में पच-पचकर मरते है। विषयो में विमोहित होकर इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शेषादि सब देवता दुखी है। वे वैराग्य के बिना दुःखो से छूटने का रहस्य नही जानते। निर्णय करके देखो, राजा-प्रजा, स्वामी गरीब, वेषधारी, धनवान तथा निर्धन—वैराग्य बिना सब दुखी है। बिना वैराग्य के सारे शरीरधारी दुखी हैं। आशा, तृष्णा, मन की उमगे, झगड़ा, राग-द्वेष तथा मनःकल्पनायें जब तक समाप्त नही हुई, तब तक वैराग्य का होना नहीं माना जा सकता। अखण्ड वैराग्य ही अखण्ड समाधि है। वैराग्यवान ही बड़भागी हैं, वे चाहे साधु हों, संत हो या सिद्ध हो। बिना वैराग्य के न मुक्ति है न ज्ञान है न भक्ति, बल्कि पतन है। इसलिए सभी मुमुक्षुओं के लिए यह वैराग्य ही प्रमुख साधन है। जिस पर गुरु-कृपा हुई वह बड़भागी पूर्ण वैराग्य का फल पाता है। वैराग्यवान के ही चरणोदक, महाप्रसाद, दर्शन और शरणाधानता मुमुक्षु के लिए हितकर है; क्योकि उनकी मानसिक जलन मिट चुकी है। जिनके हृदय से राग की अंधियारी मिटकर दृढ़ वैराग्य है, उन्ही की सुर, नर, मुनि तथा राजा-प्रजा वंदना करते हैं। सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, शुकदेव, जड़ भरत, कपिलदेव, विदेही, रघुगण, ऋषभदेव, कद्रू, कर्दम, विदुर जी, अष्टावक्र, बलख के शाह सिकन्दर, राजा भर्तृहरि, गोपीचन्द, गोरखपंथी अनेक योगी—ये सब बड़े वैराग्यवान पुरुष हो चुके हैं[२२]।

बिना वैराग्य सर्वत्र भय

विद्या में विवाद का भय, तपस्या में क्षय का, द्रव्य मे राजा और चोर का, सभी भोगोमें रोग का, काया में काल का, सभी साधनाओ में इन्द्रियो का, तरुणी को तरुणता का, योगियो को स्त्रियों का, स्वर्गवासियो को अवधि का,

२२. वैराग्यशतक, दोहा १-१४।

मन्त्र को यन्त्र का, यन्त्र को तन्त्र का, तन्त्र को सिद्धि का, सिद्धों को माया का, मायावी को ज्ञान का भय बना रहता है। संसार के सारे ऐश्वर्य भयपूर्ण हैं, अतएव इनका त्याग ही उचित है। सज्जनों को दुर्जनो का, मित्रता में उसकी हानि का, मिलने में बिछुड़ने का, आने मे जाने का, पडितो को निन्दा का, मूर्ख को मार का, रण में शत्रु का, कुल में नारि का, कर्म में अकर्म का, पुण्य में पाप का, इष्ट में अनिष्ट का, उपासना में विक्षेप का, ज्ञान में अज्ञान का, चतुरों को मूर्खो का, सत्यवादियों को पाखंड का भय बना रहता है। अतएव संसार के सारे सुख दुःखपूर्ण हैं, इसी प्रकार ब्रह्मांड के सुख भी हैं[२३]।

वैराग्योत्कर्ष

सबकी आशा छोड़कर एकान्त में बसना अच्छा है, जहां कोई अविवेकी मनुष्य पास में न फटके। बल्कि जंगल का बसना और अच्छा है जहां शरद निशा की चांदनी है, नदी का ठंडा जल है और स्वतन्त्र फल का भोजन है। जब विषयो में दोष-दर्शन और दृढ़ निर्वेद होता है, तब वैराग्य उत्पन्न होता है, वही मुमुक्षु सौभाग्यशाली भी है। जो मरने की दशा का विचार पहले कर लिये हैं, उन्ही का वैराग्य सच्चा होता है। जिसे सर्वत्र त्याग निश्चय है वही त्रयलोक में सुखी है। चाहे उसे ओढ़ने की गुदड़ी तथा पहनने की लंगोटी भी न मिले; परन्तु वह वैराग्य मे तृप्त पुरुष चचल नही होता। उसके सामने इंद्र क्या मूल्य रखता है? वैराग्यवान बिना इच्छा किये जो भोजन, वस्त्र, निवास आदि मिल जायं उन्ही को सुख एवं संतोष पूर्वक ग्रहण करते है तथा कुछ आधार नही रखते। न वे सज्जनो से मांगते है और न दुष्टो के पास जाते हैं, जो प्रारब्ध में मिल गया उसका वर्तमान करते हैं। मरने की दशा को जो पहले समझ लिया है उसी वैराग्यवान की मै बातें करता हूं। उनकी दृष्टि से ब्रह्मा तथा इंद्रादि के सुख काकविष्ठा के समान तुच्छ हैं। मैंने तो देह के अंत में होने वाली मृतक दशा को आज ही ले ली है और कफनी पहनकर समाधि में बैठ गया हू और जगत की अहंता-ममता भूल गयी है। अतएव जो मर चुका उसे अब पुनः मरना कहां? निर्धन को चोरो का डर कहां? भिक्षु को अभिमान कहां? त्यागी को मित्रता किससे करना? सब लोग दरिद्रता से डरते है और संपत्ति से प्रेम करते है, और हम तो दरिद्रता मे ही प्रसन्न है, फिर प्रेम-व्यवहार के चक्कर में कौन पड़े? हम तो दरिद्रता मे ही सुखी हैं, बल्कि संपत्ति मे दुःख मानते हैं। भिक्षा करके भोजन कर लिया तथा नदियों में पानी पी लिया और राह-बाट में पड़ी हुई चिथड़ी को जोड़कर गुदड़ी बना ली, हाथ में तुमड़ी

२३. वैराग्यशतक, दोहा १५-२३।

ले ली और भूमि को शय्या बना ली। वन हो, बाग हो, उपवन हो, मन्दिर हो या श्मशान हो—जहां समय पड़ा निश्चित सो गये, न हर्ष है न शोक है और न मान-अभिमान है। शिला को पलंग तथा जंगल को घर बना लिया। शरद निशा की चांदनी मे वायु पंखा कर रहे है और हम स्वच्छद विश्राम कर रहे हैं। हमारे लिए ध्यान ही धूनी है, स्वरूपस्थ वृत्ति ही पत्नी है, बस उसी से निरन्तर केलि हो रही है और भूख लगने पर लज्जा तथा मान को भूल कर घर-घर भिक्षा माग ली। मै संसारियो के कठोर वचनो को सहन करता हू और धन, स्त्री एव भोगो को नहीं चाहता हू। दुष्ट लोग मेरी हंसी उड़ाते है; परन्तु मुझे इसका कुछ हर्ष-शोक नहीं है। यह तो मन के मानने से ही कोई हमारी दृष्टि में वैरी तथा कोई मित्र दिखता है। जब मन ही विलीन हो गया तो न कोई शत्रु है और न कोई मित्र। अतएव चाहे कोई हमे अपशब्द कहे, चाहे कोई हसी उड़ाये और चाहे कोई हमारे सिर पर धूल डाले, चाहे कोई हमारी स्तुति करे या निंदा, चाहे हमें कोई ज्ञानी कहे या क्रूर। मुझे इन सव किसीसे आवश्यकता नहीं है, चाहे कोई राजा हो या रङ्की। इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से भी मुझे क्या लेना-देना है! मैं तो अपने ज्ञान की स्थिति में ही कृतार्थ हूं। मैं तो नही समझता कि जगत से मुझे सुख-दुःख मिलते हैं; क्योकि काल, कर्म, देवादि सब जड़ हैं। मैं चेतन हू और ये सब जड़ रूप है, ये हमें क्या सुख-दुःख दे सकते हैं। जो अज्ञानी है, वे ही कहते हैं कि हमें किसी ने दुःख दिया है[२४]।

वैराग्य मन-मानन्दी से रहित

कर्म, काल, ग्रह, देवता, जगत-चक्कर, रज-सत-तम त्रिगुण, स्वामी, सेवक, शत्रु, मित्र, वर्ण, आश्रम, पुत्र, दास, पत्नी, कुटुम्ब, पराया, अपना, जप, योग, तप—सब मन की मान्यता है। जो मन को हो नहीं मानता, वह आशा-तीत साधु सदैव सुखी है। अतएव भोग-रोग, पाप-पुण्य, क्रिया-कर्म तथा जड़ मे चेतन और शून्य की मान्यता—सब मन का व्यापार है। ऐसे प्रपंच मन-मानन्दी को मै मानता ही नही हू, अतएव मुझे न भोग में पड़ना है और न त्याग का मद लेना है। मन की मानंदी मे पड़े रहना प्रपंचपूर्ण वैराग्य है। मतवादियों को मतवाद का भय है, त्यागियों को स्त्री का, युद्ध मे मार का, गृहस्थियों में जात-पांत का, वेषधारियों में वेष का भय है। निर्णय करके देखने पर सारा संसार दुःखो से भरा लगता है[२५]।

२४. वही २४-४५।
२५. वही ४६-५३।

तृष्णा-आशा के स्वरूप और उनका त्याग

मैं तृष्णा की विशेषता कहां तक बताऊं, देह और इंद्रियों के मर जाने पर भी तृष्णा नही मरती। यह तृष्णा क्या, राक्षसी है या जीवों का काल है। यह सदैव आगे कदम रखती हुई जीवो को परेशान करती है। तृष्णा तो प्रलय की अग्नि है, यह कभी तृप्त नही होती। यह सुर, नर, मुनि, राजा, रंक— सबको रात-दिन जलाती है। जो निर्धन हैं वे कुछ धन चाहते हैं, धनिक अधिक धन चाहते हैं, अधिक धनी और अधिक धन चाहते है, यहां तक राजा बनना चाहते हैं और राजा इंद्र होना चाहते हैं और इद्र दिग्विजयी होना चाहते है, यही तृष्णा का व्यवहार[२६] है।

धन, स्त्री, पुत्र, जीवन, स्वर्ग, सिद्धि, मुक्ति आदि की आशा मनुष्य के मन में होती है; परन्तु सब आशा बंधन है। इंद्रियोके दुर्बल हो जाने पर स्थूल विषय छूट जाते हैं; परन्तु मन की आशा नहीं मरती। देह मरती है; परन्तु आशा अमर बनी हुई जीव को पुनः देह धराती है। आशा यम की फासी है, सब जीवों के लिए दुःखों की खान है। यह जीव को भटका कर ज्ञान को हर लेती है; अतएव यह त्यागने योग्य है। हे मनुष्य! सारे भोग-विषय और कुटुम्बी अंततः तेरे को छोड़ देंगे; इसलिए समझ-विचार कर तुम उन्हे पहले क्यो नही छोड़ देते[२७]।

अहो, मोह की प्रबल महिमा है। यह सबको व्याकुल कर देता है। यह ज्ञान, संपत्ति और प्राणो का भी तत्काल हरण कर लेता है। किसी मायिक वस्तु में जिनकी आशा लगी है उनके समान कोई दूसरा दुखी नही हो सकता, आशा त्याग कर निराश हो जाना सुख की जगह पर पहुच जाना है। आशा आदि, मध्य और अंत में दुःखो की ढ़ेरी ही है। यह आशा की प्रबल फांसी स्वर्ग-नरक की कल्पनाओ में भटकाती रहती है। अतएव देह-गेहादि समस्त पदार्थो की आशा त्याग कर सुखी हो जाओ। विषयो के क्षणिक सुख मे पड़कर क्यो बंधनो मे बंध रहे हो? केवल मुक्ति की आशा भी यदि शेष है तो यह भी बंधन है। तात्पर्य यह है कि यदि मुक्ति हो चुकी है तो उसकी आशा क्यो होगी बल्कि उसका उपभोग होगा। यदि अभी उसकी आशा है तो अर्थ यह है कि वह अभी प्राप्त नही हुई है, अतएव अभी बंधन की ही अवस्था है। हे वैराग्य-निधान! सुनो, आशा से मुक्त व्यक्ति ही सदैव सुखी रहते हैं। आशा के समान कोई दूसरा दुःख नहीं है। जिसकी सारी आशाये निवृत्त हो गयी हैं, वह सुखिया सुखस्वरूप है[२८]।

२६. वही ५४-५८। २७. वही ५९-६२। २८. वही ६३-६८।

क्रोध तथा उसका त्याग

क्रोध सबके लिए भयंकर है । क्रोध जी का जंजाल है। देखो, शिव और दुर्वासा क्रोध के वश बहुत दुःख उठाये । कपिल मुनि के क्रोध ने सगर के पुत्रो का विध्वंस कर दिया और सनकादिकों ने क्रोधावेश में पड़कर विष्णुदूतो को राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। इस प्रकार यदि साधु क्रोध करता है तो यह तमोगुण का वैराग्य कहा जायेगा और उसका ज्ञान भी तामसयुत कहा जायेगा । श्री कृष्ण जी ने गीता में इसे अज्ञान का स्वरूप तथा जीव का अहित-कर एवं नरक का द्वार कहा[२९] है । अतएव क्रोध मत करो । यह महा अज्ञान है । समझो और विचारो कि जगत के सभी जीव तेरे अपने समान हैं। जब अपने हाथ अपने शरीर में लगकर चोट लग जाती है और अपनी उंगली अपनी आंखों में चली जाती है तथा अपने ही दांतों से जब अपनी जीभ कट जाती है तब किस पर क्रोध किया जाता है, किसे गाली दी जाती है ? इसी प्रकार सब प्राणियों को अपने ही अंग एवं अपना ही स्वरूप समझ कर किसी पर क्रोध मत करो । सब प्राणी तुम्हारे अपने हैं और तुम सबके हो, फिर किसको पराया मानकर उस पर क्रोध[३०] करे ?

काम विकार और उसका त्याग

जो लोग जमीन पर सोते हैं, नगे रहते हैं, फल खाते है, रात-दिन जंगल में रहते हैं; उनको भी काम-वासना परेशान करती है । इसे काम नही, काल कहना चाहिए । काम प्रबल वीर है । यह जब देह में उमगता है, तब ज्ञानियो को भी अधीर कर देता है । अतएव जिन्होंने कामवासना को सर्वथा जीत लिया वही ज्ञानी है, वही सिद्ध है । अन्यथा केवल साधु का वेप वना लेना छिछिली बात है । ऐसे अधकचरे साधक तो द्वार-द्वार मारे-मारे फिरते हैं । यह काम-वासना संसार में विष बेलि है । इसने सुर, नर, मुनि तथा देवताओं को खालिस खा लिया । शरीर में क्या रखा है, हाड़, चाम, मांस, रक्त, टट्टी, पेशाब आदि इस नरक की देह में क्या रमण करना ? जिस शरीर को लोग आकर्षक समझते है वह क्या है ? सीना मांस की गांठ है, मुख थूक-

२९. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ (गीता १६/२१)
अर्थात—आत्मा को पतन में ले जाने वाले तीन नरक के द्वार हैं—काम, क्रोध और लोभ । इसलिए इनका त्याग करना चाहिए ।

३०. वैराग्यशतक ६९-७४ ।

खखार की पोटली है, गंदे बालों से यत्र-तत्र भरे हैं। यह काम-वासना ज्ञान, पुरुषार्थ, बल, वीर्य, लज्जा, यश, धन, कीर्ति, तप तथा मुक्ति समाज—सत्संग—इन दशों से वंचित कर देता है। लोग कुछ दिन मोह में मतवाले होकर मलीन क्रियाओं में रमण करते हैं, अंततः पुनः उसी गर्भवास में प्रवेश करते हैं। अतः सभी सुखों का नाशक तथा दुःखपूर्ण काम-वासना को मन, वाणी तथा कर्म से त्याग देना चाहिए। यह काम-वासना है सिंहनी; परन्तु दिखती है कोमल गाय के समान। इसीलिए इसमें लोग फंस जाते हैं। यह ऐसी बेड़ी है जो भ्रम-वश सुखरूप लगती है। यह काम-वासना विश्वासघातिनी है। यह सुख की आशा देकर दुःख देती है। अग्नि के पास घी रखने से वह पिघलता है, इसी प्रकार कुसंग से मन खराब होता है। मदिरा बुद्धिनाशक है; परन्तु काम-वासना प्रबल मदिरा है जो पूर्णतः पतित करने वाली है। जो काम-वासना में पड़ गया, उसके ज्ञान को धिक्कार है। इस शरीर तथा मन की शक्ति के विध्वंसक काम से मुक्ति लो। हे साधक! सब तरफ से अपने चित्त की रक्षा करो, उसको इधर-उधर भटकने न दो। इस ससार में वही पक्का ज्ञानी है, जो काम-वासना से मुक्त है[३१]।

वर्षाऋतु का वैराग्योद्गार

मेघ अखंड विधि से बरस रहा है, वन की घास हरी-भरी है और हम पर्वत की गुफा मे बैठे हैं, कोई पास में आने वाला नही है। पशु-पक्षियों के झुंड जो वन में विचरते है, वे ही हमारे मित्र है। भादौ की अंधियारी रात है; परन्तु हमें किसी का भय नहीं है। हम सर्प-सिंहो के बीच में रह कर भी अपनी स्वरूपस्थिति में निर्भय होकर दृढ़ है। हमारे लिए गांव, पुर, बाजार, नगर, धनिक, राजा, स्वामी किस प्रयोजन के! इस संसार में न कोई हमारा है और न हम किसी के मित्र हैं। हम तो सत्संग के प्रताप से मोहगढ़ को जीत रहे हैं। बाहर मेघ की धारा बरसती है और भीतर प्रेम की धारा बरसती है। हम तो बिना नियम के रात-दिन आनन्दमग्न बैठे हैं। ऊपर आकाश में बिजली चमकती है और भीतर ज्ञान का प्रकाश है। ऊपर बादल गरजत है तथा भीतर अनाहतनाद (विवेकज्ञान) की गर्जना हो रही है और हमारी जगत की आशा छूट गयी है। ऊपर जमीन पर पानी बहता है और हृदय के भीतर वैराग्यजनित आनन्द की धारा बहती है। सब दिशाओ में वायु चल रहा है। मुझे न हर्ष है और न शोक। पपीहा पीव-पीव का शोर लगाते है, चारो ओर मोर कूज रहे हैं। हम आनन्द में बैठे कानो से उनके शोर-गुल सुन रहे हैं[३२]।

३१. वही ७५-१०२। ३२. वही १०३-११०।

शरदऋतु का वैराग्योद्‌गार

इस प्रकार वर्षा बीत गयी तथा स्वाभाविक शरदऋतु आ गयी। आकाश निर्मल हो गया और चारों ओर कास नाम की घास फूल गयी। सुहावनी शरद की चांदनी और स्वच्छ शिलायें हैं, नदी का निर्मल जल है तथा जंगल में मंगल का विहार है। जब भूख लगती है तब तराई में उतर कर गावों में एक बार भिक्षा कर लेते हैं और उसे खाकर जल पी लेते है। जब नींद लगती है तब एकांत में गुदड़ी ओढ़ कर और चित्त को शांत करते हुए सो जाते हैं। स्वतन्त्रता पूर्वक चलते-फिरते हैं। किसी की आशा नहीं रखते। हमारे लिए राजा-रंक एक समान हैं। हम किसी के पास नही रहते। हम श्मशान में, शून्य घर में या धूनी के पास में घास-पुवाल आदि बिछाकर और गुदरी ओढ़ कर विश्राम करते हैं। शरद ऋतु की चांदनी चारों तरफ फैली है। हम उसमें स्वच्छंद विहार कर रहे हैं। भूमि पर शयन करते है, वृक्षों के छाल के वस्त्र पहनते हैं और कंद-मूल, फलादि का आहार करते हैं[३३]।"

वसन्तऋतु का वैराग्योद्‌गार

इस प्रकार शीतकाल बीत गया और रसपूर्ण वसंत आ गया। आम तथा पलाश के वृक्षों में मौर एवं फूल आ गये। वन का दृश्य सुन्दर दिखता है। अब पर्वत की शिलाओं को पलंग, दिशाओ को वस्त्र, वापी, कूप, तड़ाग को जलपात्र और वृक्षों की शीतल छाया को घर बना लिये और इस प्रकार निर्विकल्प वैराग्य में मस्त हैं। हम वन के रसपूर्ण उत्तम फल खाते है, शीतल जल पीते हैं, वैराग्य के गीत गाते है और शीतल-मंद-सुगंध वायु में विहार करते हैं। इस वैराग्य सुख के आगे मन्दिर-महल, संपत्ति और स्त्रियों के भोग किस खेत की मूली हैं। इनमें क्या रखा है ? ये सब तो क्षणभगुर हैं, अविचल समाधि ही परम सुख है[३४]।

उपसंहार

न किसी से मांगना है और न किसी को देना है। विना इच्छा किये जो मिल जाय बस उसी का विवेकपूर्वक शुद्ध रीति से निर्वाह के लिए उपयोग कर लेना है। जिस शरीर के मोह को लेकर सब मनुष्यो को डर उत्पन्न होता है, वह नाशवान है, अंततः वह मिटकर ही रहेगा। जो नाशवान है, वे देहादि पदार्थ कहां ठहर सकते है—ऐसा मन में निश्चय कर मोह-क्षोभ को छोड़ देना चाहिए। जो सबको जानने वाला अविनाशी चेतन है, वही तुम्हारा स्वरूप

३३. वही ११०-११७। ३४. वही ११८-१२१।

है—यह अपने मन में निश्चय करके सुखपूर्वक पृथ्वी पर विहार करो। यह चेतन ज्ञान-स्वरूप है, सबका द्रष्टा है, वही तुम हो—यह समझ लो। तुम्हें दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। पूरणदेव कहते हैं जिस परमतत्व एवं कल्याण-दशा को अगम-अपार कहकर कोई थाह नहीं पाता, वह पारखी सद्गुरु की कृपा से उनकी शरण में सहज प्राप्त हो जाता है। सच है, बिना सच्चे सद्गुरु की शरण गये कुछ नही होता[३५]।

शब्दावली

श्री पूरण साहेब की चौथी पुस्तक शब्दावली है, जिसमें उनके महत्व-पूर्ण पदों-शब्दों (गीतों) का संकलन है।

८

श्री प्रयाग साहेब

(ईसा १९वीं शताब्दी)

गया (बिहार) जिले के लखमोहना स्थान के श्री प्रयाग साहेब एक अच्छे पारखी संत हो गये है। उन्होंने बीजक की एक अच्छी टीका बनायी है। उसमें भी चारमुख द्वारा वर्णन कर पारख सिद्धान्त का खुलाशा किया गया है। यह टीका 'इंदुप्रकाश' प्रेस बंबई में सन् १९११ में छपी है।

९

श्री राम साहेब

(मृत्यु १८९६ ई०)

बुरहानपुर कबीर निर्णय मन्दिर के श्री पूरण साहेब के पीछे चौथे गद्दीनशीन श्री राम साहेब हुए हैं। आपके पूर्व जीवनवृत्त का कुछ पता नहीं चलता; किन्तु यह मालूम होता है कि आप वेदान्त के विशेष मर्मज्ञ थे। आप-का पूरा साधु-वेषकाल विक्रमी संवत १९२१ से १९५३ बताया जाता है। आपका पौष बदी सप्तमी वि० स० १९५३ में बुरहानपुर मे निधन हुआ[१]।

३५. वही ११९-१२७।

१. श्री रामस्वरूप साहेब की संयुक्त षटग्रंथ टीका, पृष्ठ ८३४, ८३७, सन् १९५४ ई०।

आपकी अन्य कोई रचना तो नहीं मिलती, किन्तु आपके इक्कीस प्रश्न पारख सिद्धान्त में बड़े प्रसिद्ध तथा महत्वपूर्ण हैं। ये प्रश्न ईश्वरवादी तथा विशेषतर ब्रह्मवादियों पर हैं, वे साररूप में इस प्रकार हैं—

१. जब जीव और ईश्वर एक दूसरे के ज्ञाता हैं तब दोनों की एकता कैसे ?

२. ब्रह्म निर्विकल्प और जीव नानात्व विकारपूर्ण है, तब एकता क्योंकर ?

३. जीव प्रतिबिम्ब कैसे जब उसे सुख-दुःख होते हैं, क्योंकि प्रतिबिम्ब को सुख-दुःख नही होते ?

४-५. निरवयव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब भी असंभव है, फिर बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब का द्रष्टा तीसरा कौन ?

६. जड़तत्व सावयव पदार्थ हैं, यह वेद की भी स्वीकृति है फिर यह निरवयव, निर्गुण ब्रह्म से कैसे पैदा हो सकते हैं ?

७. सर्वज्ञ, सर्वदेशी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब अल्पज्ञ, एकदेशी जीव कैसे ?

८. सावयव महतत्व का निरवयव ब्रह्म में क्या उदाहरण ?

९. सर्वदेशी निरवयव ब्रह्म का जीव प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। प्रतिबिम्ब तो एकदेशी सावयव सूर्य, चन्द्र आदि के होते हैं और उन्हे मनुष्य देखते हैं। प्रतिबिम्ब को प्रतिबिम्ब कैसे देख सकते हैं ?

१०. ब्रह्म निरवयव, सर्वदेशी तथा निर्विकार है और उसका प्रतिबिम्ब जीव सावयव, एकदेशी तथा विकारयुत कैसे ? फिर आप के कहने से हम थोड़े समय के लिए जीव को प्रतिबिम्ब ही मान लें, तो प्रतिबिम्ब को उपदेश करने का क्या मतलब होता है ?

११. जब संपूर्ण जीव ईश्वर है, तब केवल अवतार की ही क्यो बड़ाई ?

१२. यदि जीव ही ईश्वर है, तो उसका नाना योनियो मे भटकना तथा स्वर्ग-नरक भोगना बताना कहां तक उचित है ?

१३. जब जीव को असमर्थ तथा ईश्वर को समर्थ कहोगे, तो दोनो की एकता कैसे होगी ?

१४. श्री विष्णु की छाती में भृगुमुनि का चरण चिन्ह पड़ा—यदि सब जीव ईश्वर है, तो सबकी छाती में वह चिन्ह क्यो नही ?

१५. जब रावण शिशुपाल हो के जन्म लिया तब उसकी मुक्ति कहां हुई ?

१६. जब आत्मा एक है, तब किसी की मुक्ति हो गयी और कोई बद्ध है, यह कैसे ?

१७. मिले हुए दूध तथा पानी को हंस अलग करता है, इसी प्रकार विवेकवान जड़-चेतन को अलग करते हैं, फिर दोनों एक कैसे माना जाय ?

१८-१९. जैसे सुषुप्ति के बाद जागृति होते ही सब व्यवहार आते हैं, वैसे ब्रह्म में लीन होकर समय आने पर पुनः उसमें से सब प्रकट होते हैं, अद्वैत में यह कहां संभव है ?

२०. एक तरफ ब्रह्म को निरुपाधि कहना और दूसरी ओर माया को उससे अभिन्न कहना क्या यह असाध्य रोग नहीं ?

२१. जब ब्रह्म निरवयव तथा निरीह है, तब उसमें अविद्या कहां से आयी ?

१०
पारख विचार

श्री पूरण साहेब के बाद बुरहानपुर में कई अच्छे-अच्छे पारखी संत होते गये और उनके अथक आचरण तथा पुरुषार्थ से पारख सिद्धान्त का काफी प्रचार होता गया। पारख विचार नाम की एक छोटी पुस्तक बुरहानपुर में मिलती है जिसके लेखक का पता नहीं चलता। वस्तुतः कोई विवेकी संत इसे कापी में लिख दिये और उसे लोग लिखते-पढ़ते रहे; परन्तु लेख के साथ लेखक का नाम न होने से उनका पता नही चलता। सामग्री थोड़ी है; परन्तु महत्वपूर्ण है। भाव इस प्रकार है—

'शिष्य ! तू इस देह में कौन है ?'

'गुरुदेव ! मैं पारखी हूं।'

'शिष्य ! तू पारखी क्यों है ?'

'गुरुदेव ! मै देह तथा काल, संधि, झांई आदि को परखता हूं, इसलिए।'

'प्रिय शिष्य ! तू किस साधन से परखता है ?'

'पूज्य गुरुदेव ! पारख (ज्ञान) से।'

'सौम्य ! पारख तेरे में है कि तू पारख में है ?'

'पूज्य ! मैं पारख में हुआ तब पारख स्वाभाविक मेरे में है।'

'सौम्य ! क्या तू इस देह में एड़ी से चोटी तक भरा है।'

'गुरुदेव ! मैं तो देह से सदैव पृथक पारखी (द्रष्टा) हूं। मै देह मे भरा हूं ऐसा कहा जाय तो क्या मैं नाक में हूं कि कान मे, मूड़ में, नाभि में, पांव मे, आंख में, हाथ में, जीभ में, पांच तत्व मे या दश इन्द्रियों मे ? मै तो इन सबकी परख करता हूं; अतः मै इनसे न्यारा पारख में हूं। पारख भूमिका सबसे न्यारी, पारख और मै दो नही, मैं ही पारखी हूं।'

'प्रिय शिष्य ! तू पारखी, पारख रूप सबसे पृथक है, तो इस देह में कौन है ? सिर या पांव में कांटा गड़ने या चोट लगने पर उसे कौन जानता है ?'

'गुरुदेव ! यह शरीर मेरे कर्तव्य से बना है, अतः इसमें मेरी सत्ता है। मुझे जान, चेतन एवं द्रष्टा कहते हैं। मैं अपनी सत्ता से देह के सुख-दुःख आदि को जानता हूं। मेरी सत्ता से ही देह में विचार, ज्ञान, कल्पना, अनुमान, भास आदि होते हैं। देह में मेरी सत्ता मात्र है, मै देह में कुछ लिप्त नही। मैं तो सदैव पारखी हूं। विचार करूं तो भी मै पारखी और चुप बैठा रहूं तो भी मैं पारखी।'

'सौम्य ! जब शरीर छूट जायेगा, तब तू कहां रहेगा ?

'गुरुदेव ! आपकी कृपा से अब मुझे कहीं आना-जाना नही। मैं पारखी पारख रूप। देह रहे तो भी मै पारख तथा वह छूट जाय तो भी मै पारख। मैं सदैव पारख भूमिका पर हूं, कुछ देह में लिप्त नहीं। देह छूटे तो क्या तथा वह कुछ दिन रहे तो क्या ? मै देह में सत्तामात्र हूं। मै जिस ज्ञानशक्ति से देह का व्यवहार जानता हूं वह सत्ता मेरे पास है। जब तक शरीर है तब तक उसमें मेरी ज्ञान-सत्ता है और जब शरीर छूट जायगा, तब वह मेरे पास रहेगी, फिर वह बाहर प्रकट नही होगी। मैंने जो कर्तव्य बनाया उसमे मेरी सत्ता रही और जब कर्तव्य नाश हुआ, तब मेरी सत्ता मेरे पास रही। आगे न कुछ कर्तव्य है न कल्पना जो उसमें द्रष्टा की सत्ता जावे। अतः आपकी कृपा से द्रष्टा पारखी हुआ। पारख भूमि पर रहा। आवागमन से मुक्त हुआ।'

उपर्युक्त पंक्तियां बहुत थोड़ी है; परन्तु ये समाधि की भाषा मे कही गयी हैं। मुमुक्षुओं के लिए यह अत्यन्त मननीय है।

११

श्री काशी साहेब

(जन्म सन् १८५८ मृत्यु १९२४ ई०)

श्री पूरण साहेब के बाद 'श्री कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर' में कई विवेकवान पारखी सन्त हुए। श्री पूरण साहेब के बाद प्रसिद्ध प्रतिभावान वैराग्यप्रवर श्री काशी साहेब हुए। महाराष्ट्र में एक क्षेत्र का नाम 'कोकड़देश' है। वहां के बसे हुए ब्राह्मणों को कोकड़ी ब्राह्मण कहते हैं। श्री काशी साहेब कोकड़ी ब्राह्मग के घर के बालक थे। वे खानदेश जिला जलगांव के गाल्हन रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर थे। एक भक्त से परिचय प्राप्त कर बुरहानपुर के प्रसिद्ध संत श्री भगवान साहेब से उन्होने सत्संग किया और कुछ दिनो में पत्नी, दो पुत्र, एक पुत्री आदि का भरा-पूरा परिवार एव नौकरी छोड़कर पकी जवानी में विरक्त हो गये और बुरहानपुर के संत श्री रामसुख साहेब से दीक्षित होकर बुरहानपुर में रहने लगे। उस समय गद्दीनशीन श्री नरोत्तम साहेब थे। श्री काशी साहेब की प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे स्थान का अधिकारी बनाया गया। वे अपने अधिकारकाल मे सत्यज्ञान बोध नाटक, तत्त्वयुक्त निज-बोध विवेक, जड़-चेतन भेद प्रकाश तथा निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन नाम के चार ग्रंथ रचे। श्री नरोत्तम साहेब के शरीर छूट जाने पर श्री काशी साहेब विक्रमी संवत १९७७ मे गद्दी पर बैठाये गये।

श्री काशी साहेब वैराग्यवान, प्रतिभावान तथा विद्वान पुरुष थे। आपने कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर की कुशलता पूर्वक व्यवस्था की; बीजक-पंचग्रंथी के पठन-पाठन पर जोर दिया; कबीर परिचय, पंचग्रंथी, वैराग्यशतक, निर्णयसार, बीजक टीका त्रिज्या आदि का सम्पादन कर उन्हें मुद्रित कराया और अंततः सबसे उपराम हो स्थान छोड़कर भड़रा (सतना) मे विचरते हुए आगरा की ओर जाकर कुछ दिन एकान्त निवास किये और यमुना नदी के किनारे पौष कृष्ण सप्तमी विक्रमी संवत १९८१ तद्नुसार १८-१२-१९२४ को शरीर त्याग कर विदेहमुक्त हो गये।

श्री काशी साहेब पारख सिद्धान्त के ग्रंथो के आदि संपादक हैं। श्री भगवान साहेब, श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब तथा श्री पूरण साहेब तक पारख सिद्धान्त का सादे और सरल ढंग से उपदेश होता रहा; परन्तु श्री काशी साहेब ने पारख सिद्धान्त के विविध विषयों पर व्यवस्था पूर्वक प्रकाश डाला। आपको पूरी सामग्री पंचग्रथी, त्रिज्या तथा निर्णयसार में मिली

और उसको आपने निखार देकर व्यवस्थित ढंग से सजा दिया। जैसा कि पहले बताया गया है कि आपकी चार रचनायें महत्त्वपूर्ण हैं—सत्यज्ञान बोध नाटक, तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक, निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन तथा जड़-चेतन भेद प्रकाश। इन पर हम आगे निवेदन करेंगे।

सत्यज्ञान बोध नाटक

यह आपकी पहली कृति है। यह नाटक के ढंग पर लिखी गयी है। इसमें पहला प्रकरण विषय-वासना के सुधार पर है। इसमें विदूषक, कुलीन स्त्री, पतिव्रता, वेश्या, ब्रह्मचारी, शास्त्री आदि पात्र हैं। बड़ी कुशलता पूर्वक विषयों से ऊपर उठाने का इसमें सचोट उपदेश है। दूसरा प्रकरण मद्य, मांस एवं हिंसा निषेध पर है। इसमें विदूषक के साथ ग्राम जोसी, जैनी बनिया, देवी भक्त और पंडित पात्र हैं। तीसरा प्रकरण कर्म मार्ग है। इसमें विदूषक के साथ सुधारक और ब्राह्मण पात्र है। चौथा प्रकरण उपासना व भक्ति मार्ग है। इसमें विदूषक के साथ पटेल, वैष्णवभक्त और हरिदास पात्र हैं। पंचम प्रकरण योग मार्ग है। इसमें भी विदूषक तो है ही, साथ में वैरागी, हठयोगी और राजयोगी पात्र हैं। छठा ब्रह्मज्ञान प्रकरण है। इसमें विदूषक के साथ ब्रह्मज्ञानी और एक साधु पात्र हैं। सातवां प्रकरण सत्यज्ञान रहनी और जीवन्मुक्त स्थिति है, जिसमें विदूषक के साथ एक संन्यासी तथा पारखी संत पात्र हैं। इसमें सातों प्रकरणों में तत्-तत् स्थलों पर तत्-तत् विषयों पर रोचक ढंग से अच्छा प्रकाश डाला गया है।

तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक

इस ग्रंथ में जड़-चेतन का पृथक निर्णय, तत्वों के भेद, उनके गुण-धर्म तथा पंचग्रंथो में वर्णित विविध विषयो का संक्षिप्त संग्रह है। माया के अनेक प्रकार का तथा उनके अनेक अंगों का भी वर्णन है। इस पुस्तक में नाना मतों का परिचय देकर स्वरूपज्ञान तथा शुद्ध रहनी का अन्त मे दिग्दर्शन कराया गया है।

निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन

यह बड़ी पुस्तक है। इसमें जगतकर्ता दर्शन, नास्तिक मत दर्शन तथा जीवों के लक्षण मुक्त दशादि दर्शन—ये तीन प्रकरण है। यह पूरा ग्रन्थ प्रश्न तथा उत्तर के रूप लिखा गया है। इसमें कुल १३६ प्रश्नोत्तर है। प्रथम प्रकरण

में पूर्वपक्ष द्वारा जगतकर्ता के समर्थन में प्रश्न उठाकर उत्तरपक्ष द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि जगत का कोई कर्त्ता नहीं है, यह स्वयं प्रवाहरूप अनादि है। इस प्रथम प्रकरण में जगतकर्ता के समर्थन में पूर्वपक्ष द्वारा ७३ मतों का प्रस्ताव रखा गया और उनका उत्तरपक्ष द्वारा उत्तर दिया गया है। इसमें समस्त भारतीय-अभारतीय तथा वैदिक-अवैदिक मत आ गये हैं।

दूसरे प्रकरण 'नास्तिक मत दर्शन' में पूर्वपक्ष द्वारा स्थूल देह, इन्द्रियां, प्राण, मन, बुद्धि आदि १४ प्रकार जीव मानने का भ्रम आरोपित किया गया है और उसका उत्तर देकर जीव की सबसे पृथकता तथा उसके अविनाशित्व का प्रतिपादन किया गया है।

तीसरा प्रकरण 'जीवों के लक्षण मुक्तदशादि दर्शन' में जीवों के स्वरूप तथा उनके गुण-लक्षण आदि का वर्णन, अष्ट प्रमाण, जीवो के आवागमन, पशु-मनुष्यो के लक्षण, अष्ट मद, स्थूल देह में नाना विधि मानना, छह पशु कर्म आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है। आगे ज्ञानियो के भेद, वैदिक चार आश्रम, कबीरपन्थ मे आश्रम, दान करने के पात्र-कुपात्र, नाम-स्मरण के भेद, संचित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण, वैराग्य लक्षंग, जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति, साधुओं के चार प्रकार तथा अंत मे जीवन्मुक्त संतो की रहनी एवं स्थिति का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रन्थ कबीर साहित्य, कबीरपथी साहित्य से लेकर वेद, अनेक उपनिषद्, छहों शास्त्र, गीता, पुराण, कुरान, बाइबिल, बौद्धग्रंथ, जैनग्रंथ, सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय, सूर्य सिद्धान्त, पदार्थ विज्ञान, हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्या, नवीन भूगोल विद्या, चार्वाक दर्शन, स्मृतियां आदि ससार के महत्वपूर्ण १०८ ग्रन्थों का उदाहरण देकर लिखा गया है। इस ग्रंथ से श्री काशी साहेब की बहुज्ञता एव प्रतिभा का पता चलता है।

जड़-चेतन भेद प्रकाश

यह उनका अन्तिम लघुतम किन्तु महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इसमें कुल ७२ चौपाइयां तथा १७ दोहे है। अर्थात यह उनका पद्यात्मक ग्रंथ है। इसमें थोड़े में पारख सिद्धान्त के सारे विषय आ गये हैं। इसका मैं नीचे संक्षिप्त भावानुवाद देता हू।

सद्गुरु कबीर ज्ञानियों में सिरमुकुट हैं, अतएव मैं अपने ज्ञान की पुष्टि के लिए उनके चरणो की वन्दना करता हूं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा

आकाश—ये पांच तत्व अनादि हैं। इससे पृथक अनेक अविनाशी जीव हैं। इस प्रकार जड़-चेतनमय जगत स्वतः अनादि है। मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज ये चार खानियां हैं। उनमें पहले के तीन माता-पिता से पैदा होते हैं तथा अन्तिम उष्मज खानि मां-बाप रहित अयोनिज जड़ पदार्थों में शरीर धर लेते हैं। उद्भिज, अंकुरज और पत्थर—ये तत्वों के संयोग से पैदा होते हैं। इनमें ज्ञानयुत क्रिया नही है और न जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थायें है; अतः ये निर्जीव हैं। बीज-वृक्ष अंकुरज जड़ हैं, ये चेतन नहीं। इधर जो तनधारी जीव हैं वे वासना के वश हैं। जैसे कपूर के जल जाने पर भी पात्र में गंध रह जाती है, वैसे देह छूट जाने पर जीव के पास उसकी वासना सूक्ष्मदेह में रहती है, इसलिए जीव पुनः दूसरा शरीर धारण करता है। सब जीव प्रवाह रूप से अनादि काल से देह धरते-छोड़ते आये हैं। इसलिए वे विषयों के वश अंधे हो गये हैं। निर्णय करने पर जीव एकदेशी तथा नाना ठहरते हैं। इसलिए उनके मोक्ष के लिए विवेकवान संत उन्हें बोध देते हैं (यदि जीव एक तथा सर्वत्र व्याप्त होता, तो बंध-मोक्ष का प्रसंग ही न उठता)। जीव और देह का सम्बन्ध केवल अध्यास एवं वासना का है, उसी को देहोपाधि मे सम्बन्ध संयोग कह सकते हैं; परन्तु यह वासनात्मक ही संबंध है। जीव किसी का कारण व कार्य नहीं है; बल्कि अखंड, अजर, अमर तथा अगणित हैं। पारखी संत बताते हैं कि उनके ज्ञान ही नित्य गुण हैं।

विषयभोगों में सुख का भ्रम कर जो उसमें मन तृप्ति मानता है, वह क्षणिक है और उसका परिणाम सदैव दुःखप्रद है। जीवन्मुक्ति सुख भी नित्य रहने वाला नहीं है और शुद्ध स्वरूप जीव मन रहित होने से उसमें भी कोई वृत्ति-जनित सुख-दुःख का प्रश्न नहीं। (अतएव सुख की आसक्ति छोड़कर ही अनन्त शांति मिल सकती है)। आकाश शून्य एवं निराकार है। अन्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु स्थूल-सूक्ष्म पदार्थ है। जीव को साकार तथा निराकार न कहकर ज्ञानाकार कहना चाहिए। जो सुखों मे सूक्ष्म अहंकार होता है, इसी को अध्यास-वासना का लक्षण समझो। सब जीव सुखाध्यास के वश हैं और वे इच्छाशक्तियुत अनेक कर्म करते हैं। अन्न, जल की शक्ति शरीर को बल देती है, प्राण प्रारब्ध-वेग से चलते हैं और इच्छाशक्तियुत उठना-बैठना आदि अनेक क्रियायें होती हैं। ये सारी क्रियायें देहोपाधि में है। जीव के विदेहमुक्त होने पर उसमें कोई क्रिया नही होती। अतएव आकार (स्थूल शरीर), सुख-दुःख की अनुभूति, शरीर बल तथा क्रियायें—ये सब देहोपाधि तक ही समझो। जीव के विदेहमुक्त होने पर अंततः चारों छूट जाते है। जब जीवन्मुक्ति स्थिति को प्राप्त जीव देह को छोड़ता है तब वह जड़ प्रकृति से सर्वथा मुक्त होकर अपने

आप चेतन मात्र स्थित हो जाता है। पारख (ज्ञान) गुण है तथा चेतन गुणी है और स्वरूपतः एक है।

शरीर तथा अनेक जड़ वस्तुये हैं। जीव ही इनके द्रष्टा हैं। जब जीव विदेहमुक्त हो जाता है तब न उनके सामने दृश्य रहता है और न वह द्रष्टा रहता है। जैसे सूर्य के पास कभी अंधकार नही रहता। वह सदैव स्वयं प्रकाशी रहता है। वैसे मुक्त चेतन विदेह में अकेला स्वस्वरूप मात्र रहता है। देखो, नेत्र सबको तो देखते है; परन्तु अपने आप को नहीं देखते। इसी प्रकार जीभ बाहरी स्वाद को ग्रहण करते हुए भी अपने आपका स्वाद नही ले सकती। इसी प्रकार जीव सबका द्रष्टा है फिर वह अपने आपका द्रष्टा कैसे बने? उसे बुद्धि, इन्द्रिय आदि जो जड़ हैं कैसे जान सकते हैं। जीव तो अपने आप सबका ज्ञाता है; इसलिए उसके अपने ज्ञानस्वरूप की सत्ता स्वयंसिद्ध है। इन्द्रियों का ज्ञान बहिर प्रत्यक्ष (पांचों विषयों) का है तथा बुद्धि आदि द्वारा अंतरज्ञान मनोमय का होता है। जीव इन्द्रिय तथा मन को सत्ता देकर बाहरी तथा भीतरी ज्ञान कर लेता है तथा सुख-दुःख का अनुभव करता रहता है। विदेह-मुक्ति में देहोपाधि का नाश हो जाता है और जीव स्वय ज्ञान मात्र रह जाता है। जब तक जीव शरीर में रहता है, उसकी वृत्ति बिजली के समान तीव्रता पूर्वक शरीर के सारे अगों का ज्ञान करती रहती है। चेतन का स्वरूप ही ज्ञान मात्र है और वह सदैव एकरस है। केवल देहोपाधि तथा शरीर की अवस्था के भेद से उसके ज्ञान में घट-बढ़ प्रतीत होता है। विषयभोगो मे सुख की कल्पना कर उसके प्रति अहता-ममता एवं राग ही मुख्य माया है। साधक को चाहिए कि दृढ़ परख दृष्टि रखकर उसे त्याग दे और दुःखनिवृत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति करे।

आकाश को केवल पोल-शून्य समझो और पृथ्वी तथा जल को स्थूल आकार वाले तथा अग्नि और वायु को सूक्ष्म आकार वाले तत्व समझो। ये चारो तत्व क्रमशः हलके और सूक्ष्म हैं। तत्वो के परमाणु अत्यन्त झीने होते हैं। उनका सदैव एक दूसरे तत्वो के परमाणुओ से संयोग रहता है। स्थूल तथा सूक्ष्म दोनो प्रकार के तत्व कारग रूप से नित्य है और उनसे बने कार्य पदार्थ सब अनित्य हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु इन चार जड़ तत्वो से बारम्बार कार्य पदार्थ बनकर पुनः उन्ही में लीन होते रहते हैं। इस प्रकार तत्वो के कारण-कार्य की प्रवाहरूपता की धारा अनादिकाल से स्वतः चली आयी है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारादि—ये भी अनादि स्वाभाविक पदार्थ है। तत्वो का देश (स्वरूप) परमागु (अन्तिम इकाई) है। और उनसे सर्वथा भिन्न अविनाशी जीवों का देश (स्वरूप) ज्ञानमात्र है। इस प्रकार तत्वो की अतिम

इकाई तथा जीव अखंड हैं, अतः इनके भीतर आकाश नही हो सकता; प्रत्युत वह उनसे बाहर एकदेशी है। जहां तत्वो के परमाणु एक दूसरे से मिले होते हैं, वहां उनके मिलाप में संधि होती है। उस संधि मे शून्य आकाश की उपस्थिति होती है। इसलिए आकाश सर्वथा व्यापक नही सिद्ध होता। वह अखंड जीव तथा तत्वों की अंतिम इकाई के भीतर नही हो सकता। आकाश निराकार शून्य को कहते है; इसलिए उसमे न कुछ विकार होगा और न परिणाम। उसका प्रतिबिम्ब होना असभव है और न उससे शब्द और ध्वनि हो सकती है।

पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्व हैं, इनमे धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति स्वाभाविक एवं तात्विक हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु मे क्रमशः कठोर, शीत, उष्ण (प्रकाश) तथा कोमल—ये चार धर्म (स्वभाव) है। वायु सदैव समान या विशेष रूप से गतिमान ही रहता है। शब्द इस वायु का ही गुण है, शून्य आकाश का नही। समान वायु की अनहद ध्वनि है और विशेष वायु की वर्ण ध्वनि है। दो पदार्थो के टकराव से पास के वायु मे धक्का लगता है और उसमें एक तंरग उठती है जो हमारे कान के परदे पर टकराती है, इसलिए हमे शब्द सुनाई देता है। कही ऊंची जमीन या ऊंचा मकान होता है, वहां शब्द जाकर रुक जाता और उनमे टकरा कर पीछे प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इस गतिशील वायु मे गरम, ठंडा, कठोर तथा कोमल—चार प्रकार के स्पर्श होते हैं; परन्तु वायु का केवल कोमल स्पर्श है और कठिन, शीत, उष्ण—ये पृथ्वी, जल तथा अग्नि के है। वायु तत्व में स्पर्श गुण है, अग्नि का गुण रूप, जल का रस तथा पृथ्वी का गुण गंध है। विषय और गुण समानार्थक शब्द हैं।

पृथ्वी की क्रिया खड़े चाक के समान पश्चिम से पूर्व तरफ है, जल की क्रिया नीचे बहना है, अग्नि ऊंची जाती है तथा वायु सदैव तिरछा चलता है। वायु में ऐसी क्रिया होती है जैसे आंधी, बवंडर आना, वनस्पतियो को हिलाना, वस्तुओं को मिलाना, पत्ते तथा झीने कण एवं धूल को उड़ाना, तत्वयुक्त शब्द, गंधादि विषयो को तत्-तत् इद्रियो के पास पहुंचाना, आग जलाना, पानी मे लहर उठाना, वृक्ष को झुकाना या गिराना, डगाली तोड़ना, मुर्दे को फुलाना, छत्ते-खपड़ा आदि को दूर ले जाकर डाल देना, नाड़ियो मे कफ, पित्त, वात की गति होना, श्वास चलना, शरीर भर में रस पहुचा कर वल देना—ये सब वायु की शक्ति से होते है। तीव्रता से चलना, जलाना, जल तथा अन्न को पकाना, पिघलाना, सुखाना, जलन तथा गरम होना—आग की शक्ति से होते है।

जल वस्तुओं को शीतल करता है, पदार्थ भिगाता है, पिंड बांधता है, प्यास मिटाकर तृप्त करता है, घी जमाता है, सीपी मे मोती जमाता है, लोक कहावत के अनुसार केले में कपूर, सर्प में मणि तथा हाथी मे मुक्ता जमाता है, वृक्ष, तृण, अंकुरज को जमाता है जिसमें पत्र, फूल, फल उत्पन्न होते हैं, आम आदि पेड़ो में बांदा बन जाता है, डगालियो में कलम लग जाती है। यह सब जल की शक्ति से होते हैं। पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण तथा धारणाशक्ति—दोनों शक्तियां विद्यमान हैं। पृथ्वी, चंद्रमा, सूर्यादि का परस्पर आकर्षण ही गुरुत्वा-कर्षण शक्ति है। संसार की छोटी-बड़ी सारी वस्तुयें इसी शक्ति से स्थिर रहती हैं। यह शक्ति ही किसी वस्तु को गिरने नही देती न पृथ्वी में धंसने देती, अपितु नित्य थामे रहती है। दूसरी धारणाशक्ति है जो मुख्य पृथ्वी तथा कुछ जल मे भी है। इसीलिए रात-दिन पृथ्वी के घूमते रहते हुए भी उस पर का कोई मनुष्य गिरता नही। विशाल पृथ्वी के सामने मनुष्य चीटी के समान है। वे पृथ्वी पर बिना घबराहट के काम करते है और उन्हे पृथ्वी के उल्टे-सीधे होने का ज्ञान नही रहता।

चारो तत्वों के परमाणुओं में रसायन शक्ति है। तत्वों के सूक्ष्मकणो में एक नये कार्य-पदार्थ के रूप में उपस्थित होने की जो शक्ति है वह रसायन शक्ति कहलाती है। यही शक्ति सारी जड़ वस्तुओ के निर्माण होने में हेतु है और यही तत्वो का परस्पर संबंध कराती रहती है। अष्टधातु, सोना, पारा, अभ्रक, रत्न, पत्थर, कालादि पत्थर, कोयला, सोडा, गंधक, अनेक प्रकार के नमक, बेलि, पेड़, तृण—ये सब पदार्थ जड़-तत्वो में रसायन शक्ति विद्यमान होने से ही बनते हैं। तत्वो के परमाणुओ मे स्नेहाकर्षण नाम की भी शक्ति है। स्नेह का अर्थ है चिकनापन या चिपचिपापन। इस शक्ति से तत्वो के सूक्ष्मकण एक दूसरे से चिपक कर नाना कार्य पदार्थ बनते रहते हैं। यह स्नेह-खिचाव की शक्ति ही तत्व कणो का मेल कर पदार्थ बनने में सहयोग देती है; अन्यथा कुछ कार्य-पदार्थ बनता ही नही। अतएव गुरुत्त्व, धारणा, रसायन एवं स्नेह—ये चार शक्तियां यदि तत्वकणों में न हो, तो तत्वो के परमाणु (इकाइया) सदैव पृथक-पृथक ही बने रहें और यह स्थूल संसार कभी दृश्यमान ही न हो। इस प्रकार भौतिक जगत की व्यवस्था जिससे होती है, निर्माण, विनाश जिससे चलते हैं तत्वों के उन मेल, आकार, गुण, धर्म, क्रिया और शक्तियों का यहां वर्णन किया गया। पृथ्वी, जल, अग्नि, तथा वायु—इन चार तत्वो के गुण-धर्म आदि षट्भेद उपर्युक्त प्रकार से अनादि स्वयंसिद्ध हैं और इन सबके द्वारा जगत की प्रवाह रूप नित्य स्थिति है। इन सबका कोई कर्ता-धर्ता नही है। कर्ता की कल्पना में लोग व्यर्थ भटकते हैं। यह काशीदास कृपालु पारखी संतों

की वंदना करता है और उनसे यही आशीर्वाद चाहता है कि यह यथार्थ बोध मेरे हृदयस्थ रहे और कहीं भ्रांति में न पड़ू ।

१२

श्री मेंही साहेब

(ईसा १९वीं शताब्दी)

विक्रमी संवत १९५० के बाद के समय में श्री काशी साहेब बुरहानपुर में विराजमान थे । उसी समय में श्री मेंही साहेब एक अच्छे पारखी संत कबीर-चौरा काशी में विराजमान थे । सद्गुरु कबीर के प्रसिद्ध शिष्य श्री श्रुतिगोपाल साहेब थे जो काशी कबीरचौरा के प्रथम गद्दीनशीन थे । उनके समय से ही सद्गुरु कबीर के बीजक की पढ़ाई-लिखाई वहां होती रही और वहां सद्गुरु कबीर के जमाने से ही अच्छे-अच्छे पारखी संतों का निवास होता रहा । पंच-ग्रन्थी लेखक परम पारखी श्री रामरहस साहेब का कबीरचौरा से जो घनिष्ठ सम्बन्ध था, जिसका साक्षी गया का कबीरबाग काशी कबीरचौरा के आधिपत्य में रह कर आज भी दे रहा है, वह सबको प्रत्यक्ष है । श्री रामरहस साहेब के जीवनकाल के करीब सौ (१००) वर्ष बाद श्री मेंही साहेब काशी कबीर-चौरा को सुशोभित कर रहे थे । आपका कोई लिखित जीवन दर्शन नही मिलता, इसलिए इतने से ही संतोष करना पड़ता है ।

बीजक टीका

आपकी लिखी बीजक टीका ईस्वी सन् १९१५ में 'मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ' में छपी है, जिसमे पूर्णरूपेण पारख सिद्धान्त का वर्णन है । यह ८७५ पृष्ठों में छपी हुई विस्तृत टीका है । थोड़ा उदाहरण द्रष्टव्य है—

"भूल मिटै गुरु मिलै पारखी, पारख देहिं लखाई । सो हे जक्त जीव ! तुम पारखी गुरू जो सबते परे साधु संत हैं तिनकी शरण मे सेवा-सहित जाय मिलो । उनसे अपनी भूल कहो और सारशब्द का विचार करो तब दयाल गुरु पारख टकसार दर्शाय के औ खरा खोट परखाय लखाय के, सकल खानि बानी तुम्हारे मन की भूल मिटा देवेंगे और पारख के प्रकाशक गुरु आप समान कर लेवेंगे । क्योंकि कहहिं कबीर भूल की औषध पारख सबको भाई । सो पारख के प्रकाश गुरु कहते हैं कि तो भूल मन रोग की औषध सोई पारख गुरु संत ह

जो हमेशा सत्संग में रहते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, आशा, तृष्णा ओ नाना भास अध्यास कलह कल्पना चिंता सो सकल भूल दुख दूर करके और अभय, अशंक, अचित्य करके ओ सत्संग में तुम्हारा पौ परखाय के शांत कर लेवेंगे सोई पारखी गुरु साधु से मिलो जाय हे भाई जक्त जीव। यह अर्थ[1]।"

१३
श्री निर्मल साहेब

(जन्म १८८४ ई० मृत्यु १९२० ई०)

जिन निराले संतों से कबीरदेव का उपदिष्ट पारख सिद्धान्त उजागर होता रहा, उनमें श्री निर्मल साहेब का भी एक प्रमुख स्थान है। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के पनेरा बाजार के पास बड़ब्रारे नामक ग्राम में सन् १८८४ ई० में सैंथवार परिवार में हुआ था जो अपने को क्षत्रिय मानता है तथा कहता है कि शस्त्रवार (हथियार धारण करने वाला क्षत्रिय) के अपभ्रंश से सैंथवार शब्द बन गया है। गोरखपुर जिले के अजगैबा ग्राम में, जो आमी नदी तट पर है एक पुराना कबीर आश्रम है। उसमें उस समय गद्दीनशीन श्री राम साहेब थे। श्री निर्मल साहेब के पिता पहले से ही श्री राम साहेब का शिष्यत्व स्वीकार कर साधु रूप मे अजगैबा मे रहते थे। श्री निर्मल साहेब ने भी विरक्ति मार्ग का अनुसरण कर श्री राम साहेब की शिष्यता स्वीकार कर ली।

आप जब तक घर में थे भैंस चराते, उसका दूध पीते और खेलते थे। सत्संग एवं संस्कारवश आप किशोर अवस्था मे ही साधु-मार्ग में आ गये। साधु-मार्ग में आने के बाद आप केवल छह महीने स्कूल में पढ़ने गये; किंतु संतो के साथ में रहकर जो आपने अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया उसने आपकी प्रतिभा मे चार चाद लगा दिया। आश्चर्य तो यह है कि आपकी थोड़े दिनों मे शास्त्रो में गहरी पैठ हो गयी। यह पहले गाय-भैस चराने वाला और पीछे केवल छह महीने स्कूल मे पढ़ा हुआ उदीयमान बालक थोड़े दिनों मे तर्क शिरोमणि, उच्चतम विवेचक, अध्यात्म दर्शन का मर्मज्ञ, आशुकवि, शास्त्रार्थ महारथी, प्रतिवाद भयंकर, प्रखर उपदेष्टा, पारख सिद्धान्त की महत्वपूर्ण कड़ी और निर्मल वैराग्यवान संत हुआ।

1. बीजक टीका सहित, पृष्ठ ४५३।

आप एक बार नासिक के कुंभ मेले में गये थे और लौटते समय बुरहानपुर श्री कबीर निर्णय मन्दिर में आये। उस समय वहां उस गद्दी पर परम वैराग्यवान युगपुरुष श्री काशी साहेब विराजमान थे। आप ५-६ दिनों तक उनका सत्संग-लाभ लेकर अजगैबा लौट आये। इसके अतिरिक्त आप जीवन पर्यन्त बस्ती तथा गोरखपुर जिले में विचरण करते, एकांत में साधना तथा काव्य लेखन करते एवं उपदेश करते रह गये। आपकी अल्पायु (३७ सैंतीस वर्ष की उम्र) में ही खलीलाबाद कबीर मंदिर में सन् १६२० मे शरीर छूट गया। आपकी सेवा में श्री महंत सुखसागर साहेब जी, जो आज (१६७६ ई०) भी खलीलाबाद (बस्ती) में विराजमान है, समय-समय से रहते रहे।

श्री निर्मल साहेब मस्तमौला संत थे। इसके साथ स्वमत मंडन एवं परमत खंडन तथा वादविवाद करने मे अत्यन्त निपुण और पूर्ण निर्भय थे। वे जहां रहते थे, सदैव सभा लगी रहती थी। वे जहां पहुंचते लोग खुश हो जाते और समझते कि अब वादविवाद व सत्संग सुनने को मिलेगा। वे कविता या गद्य लिखकर जहां-तहां स्थानों पर छोड़ देते रहे। इसलिए आपकी बहुतसी कापियां लुप्त हो गयी। जितने का संग्रह हो सका उतना 'निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर' नाम से श्री सुखसागर साहेब ने छपवा कर प्रसिद्ध किया है। आपकी वाणियां बड़ी तीव्र, ओजस्वी, तर्कपूर्ण, युक्तियुत एवं शास्त्रीय ढंग से है। आप की जितनी वाणियां कुल छप सकी हैं छोटे-बड़े छन्दों मे सब २२८ है। आपके छन्द विविध विषयों पर हैं। वह सब यहां दे पाना असंभव है। उनमें ज्ञान-वैराग्य के साथ राष्ट्रीय भावना एवं भारतीय महापुरुषों के प्रति अटूट श्रद्धा है। वे कहते हैं "यदि महान पुरुष न हुए होते जैसे बाल्मीकि, नारद, शुकदेव, सनकादि, गुरुदेव वशिष्ठ, राम, कृष्ण, तुलसी, सूर, कबीर, दयानन्द आदि तो भारत का आज घोर पतन हो गया होता। उन महान पुरुषो की कृपा से हम लोगों को भी आज सुपथ मिल रहा है[1]।" मैं आगे उनके न्यायनामा प्रकरण के सात छंदों का अनुवाद दे रहा हूं जो मनन करने योग्य है।

न्यायनामा

भवाब्धि से पार पाने के लिए मैं सदैव सद्गुरु का स्मरण करता हूं। यदि किताब कुरान तथा सृष्टि खुदा के बनाये होते तो हिन्दुओं के वेद तथा जगत-रचयिता न होते। यदि हिन्दू का ईश्वर सृष्टि व वेद-रचयिता होता तो उसे मुसलमान नहीं हटा सकते। यदि ईश्वर और खुदा एक ही बात है और

१. निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर कव्वाली १४२। भारत चला जात पातल यदि वे...।

उसी की वाणी वेद, कुरान, बाइबिल सब हैं, तब नाना महजबी रास्ते क्यों है ? इसाई बाइबिल सिद्धकर वेद और कुरान दोनो को अस्वीकर कर देते हैं। हिन्दुस्तान में वेद, अर्बिस्तान में कुरान तथा अन्य देशो में बाइबिल का जोर है। अतएव ये सब मनुष्य के बनाये हैं। इन पर खुदाई करार देकर मात्र अपना रोब गाठना है। सब मनुष्य की अक्ल की करामात है। उसने व्यर्थ ही खुदाई वचन का द्वंद्व खड़ा कर रखा है। यदि वेद, बाइबिल, कुरान खुदाई होते तो इनके वचनो को कौन हटा सकता था ? जो बात अपने अक्ल मे नही आती, कमअक्ल आदमी उसे खुदाई कह देता है। देखो, हवाई जहाज, अग्नि-बोट, तार, गाड़ी, सारे मत-मजहब—इन सबका निर्माण-विकास करने वाला मनुष्य ही तो है। सभी कला-कल्पनाये मनुज की है, तुम्हारा नही तो तुम्हारे अनुज की है। देखो पशु-पक्षियो में ईश्वर-अल्ला की कोई पुकार नहीं। इसाई लोग मनुष्य मात्र पर ही अनुग्रह करना बताकर पशु-पक्षियों को अपना खाद्य कहते हैं; परन्तु न्यायी-दयावान सब पर दया रखता है। सब लोग अपने किताबो को कहते है कि आसमान से गिर पड़ी हैं। यदि सारी सृष्टि कुदरत ही कर देती है तो जीव और जड़ तत्वो की क्या आवश्यकता ? हे प्रिय ! बिना कारण के ही कार्यो का हो जाना ही तो कुदरती कर्म है। यदि ब्रह्म को जगत का उपादान कारण कहोगे तो जगत और ब्रह्म में क्या भेद रहा ? यदि ईश्वर ही सब करता है तो जीव कर्मफल का भागी बन कर क्यो दुखी है ? वेद, कुरान, बाइबिल—सबके विचार परस्पर विरोधी है। यह तो अबोधी बनकर आपस मे लड़कर मरना है। वस्तुत: जो विवेक-शून्य और व्यसनी हैं उन्ही को ईश्वर और ईश्वरीय किताब की दोहाई देने की जरूरत है। विवेकी तथा सदाचारी को गिड़गिड़ाने की क्या आवश्यकता ? इस प्रकार परस्पर विरोधी खुदाई किताबो एव कानूनों के चक्कर में पड़कर आदमी विपथ मे ही जाता है। बुरा कर्म करना तो शुरू से ही बुरा है और उसके परिणाम से अपयश, निन्दा और चिन्ता की प्राप्ति है। बुरा कर्म करके ही नाना रोग, दरिद्रता, गरमी, प्रमेह आदि के आदमी शिकार होते है। इसी बुराई की लहर मे वर्णाश्रम धर्म डूब चुका है। बुरा कर्म करके कौन सुखी हुआ है ? जो जहर पीयेगा वह मरेगा, जो आग छूयेगा वह जलेगा। यदि हम बुरे है तो संसार बुरा लगता है। तुम अपने कर्मो को सुधार लो तो तुम्हारे ऊपर ईश्वर-खुदा कोई जुर्म नही कर सकते। जो सबका द्रष्टा है, सबकी याद करता है, वह चेतन ही तुम्हारा अपना स्वरूप है। यह तत्व समझकर अपने शरीर-मन पर नियंत्रण करो[२]।

२. निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर, न्यायनामा दिगर १।

हे द्रष्टा चेतन ! तू ही सबको देख रहा है; परन्तु स्वयं नहीं दिखाई पड़ रहा है। तुम्हीं सबको पकड़ने और छोड़ने वाला है। तेरी जैसी समझ होती है वैसे कर्म कर सुख-दुख भोगता है। इस अनादि जड़ प्रकति जाल में भूल-वश तू घुसा पड़ा आनन्द मान रहा है। गुण और गुणी एक ही है। यदि त्रिगुणात्मक जगत का गुणी एवं अधिष्ठान ब्रह्म ही है तो वह जड़ तत्व ही ठहरा। अतएव त्रिगुणात्मक जड़ तत्व तो अनादि है; परन्तु उसका गुणी ब्रह्म बतलाना एक विवाद मात्र खड़ा करना है। पृथ्वी, जल, अग्नि आदि जड़ तत्व नित्य हैं। इनके संयोग-वियोग, समान-विशेषता से जड़-पदार्थों का निर्माण-ध्वंस होता रहता है। जड़-तत्वों में महान शक्तियां भरी है। मैं संक्षेप में ही कहता हूं, तुम जरा ध्यान दो। यदि ईश्वर जीवो के कर्मो की अपेक्षा रखे बिना उन्हें बंध या मुक्त करता और सुख-दुःख देता है, तो ऐसे उच्छृङ्खल ईश्वर को तुम बिना विवेक के ही हृदय में पाल रखे हो। यदि सारी इन्द्रियो का प्रेरक ईश्वर ही है तो जीव कर्मो का कर्ता सिद्ध नही होता। फिर उसे सुख-दुःख क्यों हों ? वेदों में ईश्वर को हृदय के भीतर ही बताया गया है[३]। तो हृदय के भीतर जो चेतन देव निवास करता है वही ईश्वर है, वही तुम्हारा स्वरूप है; परन्तु मैले दर्पण में जैसे चेहरा नही दिखता, वैसे मलिन बुद्धि में स्वरूपज्ञान नही होता। जैसे दीपक की ज्योतिशिखा को वायु हिलाता है; वैसे विषय-वासनायें जीव को चंचल करती हैं। जैसे जल के हिलने से उसमें पड़ा प्रतिबिम्ब हिलता है, वैसे विषय-वासनाओं में पड़ा जीव भटकता है। योगी लोग यदि अपनी बुद्धि भी निर्मल करते है, तो वे अपनी कल्पना रूपी ईश्वर की परिछाईं देखते रहते है। अपने द्रष्टा स्वरूप को नहीं समझते। वस्तुतः जब तक तुम सांसारिकता एवं विषयासक्ति नही छोड़ोगे, तब तक सच्चे ईश्वर—आत्मस्वरूप के ज्ञान से दूर ही रहोगे[४]।

जब तक विषयासक्ति की दुर्बलता नही छोड़ोगे, तब तक अल्ला-ईश्वर कह कर गिड़गिड़ाते रहोगे। एक तरफ विषयो की मिथ्या मोहकता में फसे हो और दूसरी तरफ वचन मात्र ईश्वर का हठ पकड़ रखे हो। न दया है न धर्म है न विनम्रता है, प्रत्युत छिप-छिप कर बुराई करते हो, केवल 'सब ईश्वर की कृपा' कह कर छुट्टी पाना चाहते हो ! अल्ला या ईश्वर से मिलने का क्या साधन है इसे नही जानते या नही करते हो, इसी से पतन है। न जानने से ईश्वर अपने से दूर लगता है और जब जिसे बोध हो गया वह समझ लेता है

३. अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो ॥ मु० उ० ३, ५।

४. निर्मल सत्य० न्यायनामा दिगर २।

ईश्वर कहीं बाहर नहीं, जीव ही शीव है। विषयाकर्षण छोड़ो, सारी बुरी आदतें छोड़ो। बीबी-बच्चों की ममता भी दूर करो। क्योंकि इनसे तुम्हारी मनोवृत्ति बहिर्गत है। इसलिए खुदा दूर लगता है। जब विषयासक्ति तथा मोह छूट जायेंगे, तब वृत्ति अंतर्मुख हो जायेगी, फिर तो तुम्हें अपना मूल स्वरूप उपलब्ध हो जायेगा। जहां तक तुम कहते, सुनते और विचारते हो वह सब ज्ञेयवृत्ति है जो ज्ञान को ढंक रखी है। जहां तक ख्याल में आता है, मन में विचारा जाता है, देखा-सुना तथा मुख से बोला जाता है,यह सब स्वस्वरूप चेतन से पृथक जड़ विषय हैं जो जड़ तत्वों के स्वरूप है। ममता एवं अज्ञान की सृष्टि मन द्वारा रची गयी है और मन के भीतर ही दुनिया की फोटो खिची हुई है। सूक्ष्म इन्द्रियां (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) सूक्ष्म कर्म मनन, चिन्तन, निश्चय, कर्तव्य करती रहती हैं। शरीरांत में स्थूल इन्द्रियां तो मर जाती हैं; परन्तु सूक्ष्म इन्द्रियां नहीं मरती। स्थूल इन्द्रियो मे सूक्ष्म के संस्कार रहते हैं और सूक्ष्म मन में स्थूल के संस्कार रहते हैं। इस प्रकार मनोमय में सब कारण विद्यमान रहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि सारे प्रमाणो का निर्धारक तू ही है। ससार के समस्त क्षेत्रो का द्रष्टा तू ही है। यदि जल-तरंग न्याय संसार ईश्वर का अंश है, तो दोनो मे अंतर कहां है? यदि जगत का उपादान कारण ब्रह्म ही है तो स्वर्ण और उसके भूषण जैसे अंततः एक हैं, वैसे ब्रह्म-जगत एक है। वैदिक तत्त्वमसि का यही निर्णय है कि जैसे समुद्र और लहर एक है वैसे ब्रह्म और जगत एक है। फिर साधन-तितिक्षा एवं मोक्ष लेने का पुरुषार्थ बेकार ही है। जब ब्रह्म-जगत एक ही है, तब वेश्या और सती की गति भी एक ही है। यदि जड़ तथा चेतन को अकारण, अनादि, स्वतः कहोगे, तो तुम ईश्वरवादियो द्वारा नास्तिक कहलाये जाकर जन्म भर उनकी निन्दा सहोगे। यदि जीव तथा जड़—माया का कारण कहोगे तो वही कुछ घिसे-पिटे शब्द ईश्वर-ब्रह्म के जो बहुत दिनों से चले आये हैं, उन्हें ही दोहराओगे। फिर तो ब्रह्म बनने के बाद भी तुम्हे जगत बनना पड़ेगा और इस प्रकार जड़-चेतन एक में मिलाकर अविवेक ग्रहण कर लोगे[५]।"

प्रमाण तथा प्रमेय अर्थात उदाहरण और जिसकी सिद्धि के लिए उदाहरण दिये जायं, दोनों प्रत्यक्ष ही होते हैं तब दोनों का महत्व होता है। प्रमेय को जाने बिना उसकी सिद्धि के लिए प्रमाण देने का क्या महत्व है? किसी व्यक्ति ने किसी समय में बाघ तथा बिल्ली को देख रखा है, तब पीछे कहता है

५. निर्मल स० न्यायनामा दिगर ३।

कि बाघ बिल्ली की आकृति का होता है। कारण, कार्य तथा कर्ता—तीनों देखकर ही, पीछे कार्य देखकर कर्त्ता का अनुमान किया जाता है। जैसे पहले कुम्हार को चक्र, दंडा और मिट्टी से घट बनाते देखा गया है, तब पीछे घट देखकर कुम्हार तथा चक्र, दंड एवं मिट्टी का अनुमान होता है। प्रत्यक्ष के बिना अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे जीव पिड की वस्तुओं का कर्ता है, वैसे वह यह कल्पना करने लगता है कि ब्रह्मांड का भी कोई कर्ता होगा; परन्तु यह उसकी भूल है। जड़ ब्रह्माण्ड तो अपने गुण-धर्मो से नित्य चल रहा है। हम कहते हैं वेद, कुरान, बाइबिल आदि ईश्वर ने भेजा है। जिसको हम सर्वत्र व्याप्त कहते हैं वह कहां छिप कर बैठा है? उसने मनुष्यो के लिए वेद-कुरान आदि में अपना संदेश भेज दिया है, तो क्या वह किसी दूर देश मे रहता है या दिवंगत हो चुका है? जब वह वेदों द्वारा हमारे मन मे प्रेरणा करना चाहता है, तो वह हर जगह व्यास होने से हमारे मन में है ही, फिर सीधे मन में क्यों नहीं प्रेरणा करता? वह हमें बुरे कर्मो से क्यों नही रोकता? यदि हम न मानें तो वह हमें माता-पिता वत डांट कर क्यों नही सुधारता? यदि वह हमे बुरे कर्मो से नहीं रोक सकता, तो हमें दंड देने का भी वह अधिकारी नही है। क्या वह दंडदाता सुधार करने के समय कही सोता रहता है? हम स्वयं कह रहे हैं कि वह अंतर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्यास, न्यायी और दयावान है? फिर वह पाप-ताप से पिसते हुए संसार को क्यों नहीं उबारता? राजा एक जगह रहने वाला और अल्पज्ञ होता है, इसलिए वह किसी की भावी पाप-प्रवृत्ति को नही जानता, इसलिए उसे पहले उससे नहीं रोक पाता। यदि जान जाय तो पहले रोक दे। हां, जब वह प्रजा द्वारा आवाज सुनता है कि अमुक चोर है, बदमाश है, तब वह उसे दंड देता है। और जो सर्वज्ञ, सर्वत्र, सर्वशक्तिमान है वह पहले से सबको सुधार सकता है, फिर वह इतना ठंडा क्यों पड़ा है? हमे स्वयं जब बुरे कर्म करने होते हैं तब मनुष्य से छिपाते हैं कि कोई देख न ले। इसलिए हम केवल जबान से ही ईश्वर-ईश्वर कहते है। यदि उसकी प्रेरणा के बिना हमसे कोई कर्म नहीं होते हैं और इस प्रकार सारे कर्म-कुकर्म वही कराता है और वही हमे भव-बंधनो मे डाले रखने का इंतजाम करता है, तो वह मुक्ति-दाता कहां हुआ? फिर तो वह बेचारा इतना भोला-भाला ठहरा कि बिना हमारे स्वतंत्र कर्म किये ही हमे अकारण दुःखो में गिराता रहता है। वस्तुतः बात ऐसी है कि जहां तक देहो की रचना है वह जीवों के अपने कर्मो से होती है और ज्ञान-विज्ञान का काम जीवों से ही होते हैं; और वर्षा, ठंडी, गरमी आदि जड़ तत्वो का स्वाभाविक व्यापार है। यह सब जड़ की स्वाभाविक क्रियाओं से होती है। इसीलिए प्राकृतिक घटनायें कभी प्रियकर होती हैं और

कभी कटुतर। जड़ तत्व अचेत होने से उनकी क्रिया अनियम तथा छिन्न-भिन्न रूप से होती हैं। इसीलिए अतिवृष्टि, अनावृष्टि,[६] भूचाल, समुद्री तूफान आदि से धन-जन की हानि होती रहती है। न तो ईश्वर पानी भर-भर कर बरसाता है और प्रकृति जड़ होने से न तो वही ईश्वर की आज्ञा मानकर बरसती है। प्रकृति को हानि-लाभ का ज्ञान नहीं है। इसलिए वह अपने स्वाभावानुसार काम करती है। कही सूखा पड़ा है तो कही बाढ़ से चौपटाध्याय है। यह प्रकृति कहीं पाला, पत्थर और अग्नि में सबको जला रही है और कही ठंडी-गरमी उगल रही है। जड़ प्रकृति के तत्वों में परस्पर आकर्षण-विकर्षण एवं गुण-धर्म होने से और रासायनिक परिवर्तन होने से ब्रह्माड का कार्य संपादित होता है। इस जड़ प्रकृति को कोई तथाकथित ईश्वर पकड़ कर नही बैठा है जो वही यह उत्पात कर रहा है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—इनमें उनके गुण, धर्म, क्रिया, शक्ति आदि हैं। वायु और गरमी पानी को भाप बना कर ऊपर खींच लेते हैं फिर वही प्रकृति की अनुकूल योग्यता पाकर धीरे से उतर कर बरसने लगता है। जड़ तत्वों में ब्रह्मांड की सारी क्रिया संपादित करने की अपार शक्ति है; परन्तु अचेत एवं जड़ होने से उनमे ज्ञान नही है। इसलिए संसार के हानि-लाभ से उन्हें कोई सरोकार नही। अग्नि पदार्थो को जलाकर उन्हे सूक्ष्मकणो मे बदल देती है और वायु उन कणों को उड़ा ले जाता है। जल रसयुक्त होने से सूक्ष्मकणो का पिंड बाध देता है। मिट्टी, पानी, आग, हवा तथा शून्याकाश सब स्वाभाविक हैं। इनमें कुछ भी ईश्वरीय चमत्कार देखने की आवश्यकता नही। चलने, बल देने, दौड़ने, फैलाने, गिराने उठाने आदि क्रियाओ में वायु कारण है। स्पर्श और शब्द वायु के गुण हैं। आकाश तो अवकाश मात्र (शून्य) है। आग में गरमी, प्रकाश, स्पर्श, शब्द, रूप आदि पाये जाते है। आग पत्थर, लोहा को भी पिघला कर जलवत द्रव बना देती है और धुवा द्वारा उसके परमाणु ऊपर उड़ जाते हैं। सूर्य, तारे, चंद्रमा, निहारिकायें आदि अग्नि पदार्थ या अन्य जड़ पदार्थ है। आग कठिन पदार्थो को पिघला देती है और मिट्टी की ईंटों आदि को साधारण स्थिति से पकाकर कठिन कर देती है। श्री निर्मल साहेब कहते है हे प्रिय बन्धुओ, निष्पक्ष विचार करो, ये पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—चार तत्व जगत की रचना करते रहते है[७]।

६. इस वर्ष सन् १९७९ ई० का देशव्यापी विकराल सूखा (अकाल) प्रत्यक्ष प्रमाण है।

७, निर्मल सत्य० न्यायनामा दिगर ४।

जगत के स्वरूप को मैंने संक्षिप्तः बताया। सारा संसार पंच विषयों से
हरा-भरा है। जड़ तत्वों की क्रियायें ठीक रहने से जगत की प्रक्रिया ठीक
चलती है और उसमें विषमता होने से गड़बड़ होता है। जीव विषयो के
आसक्तिवश बारम्बार देह धारण करता है। जीव जिसकी वासना बनाता है
उसी स्थिति को प्राप्त होता है। जीव ही अपने कर्मों का विधाता है। वह जिसे
चाहता पकड़ता है और जिसे चाहता छोड़ता है। उसको विवश करने वाला
कोई नहीं है। जो विद्या पढ़ता है वह आनन्द पाता है। जो कर्म किये जाते
हैं उनके फल स्वयं को ही होते है। तुम्हारी जैसी वासना होगी, वैसी स्थिति
होगी। जो जागृत अवस्था में देखे, सुने तथा भोगे हुए विषय रहते हैं उन्हीं के
स्वप्न होते हैं। जैसे बीज में वृक्ष सूक्ष्म रूप में रहता है और जहां कही बीज
रहता है समय-भूमिका पाकर जम जाता है। जैसे बीज खेत में पड़े रहते हैं
वे सड़ते-गलते नहीं, अनुकूल सयोग तथा समय पाकर वे जमते हैं। वैसे अपने
किये गये कर्म देर-सबेर स्वयं को भोगने पड़ते हैं। जो घर बनाता है स्वयं
उसमें रहने का आनन्द पाता है। अपना किया पुरुषार्थ-कर्म ही अपने को
जिलाता है। एक जीव दूसरे जीव के रक्षक दिखते हैं। मनुष्य ही एक दूसरे
को बुद्धि, कला, विद्या, रोजी आदि के देने वाले होते हैं। आंधी, बिजली,
पत्थर, ओला-पाला, पानी की बाढ़, सूखा, वर्षा यह सब जड़ तत्वों की स्वा-
भाविक क्रिया से होते हैं। इधर चेतन जगत मे माता-पिता बच्चों को नाना
प्रकार से पालते-पोषते हैं। माता, पिता, जीव के अपने कर्म और आसक्ति—
इन्हीं से जीवों के जन्म-मरण होते हैं। माता-पिता साकार हैं, अन्न खाते हैं,
अतएव जीवों के देहों के वे उपादान कारण बनते है। देह का निमित्त कारण जीव
के संचित कर्म हैं। दूसरे ढंग से सोचें तो जड़ तत्व उपादान कारण हैं, जीव
निमित्त कारण तथा माता-पिता साधारण कारण। निराकार ईश्वर साकार
जगत कैसे रच सकता है? कुम्हार दृश्यमान पृथ्वी, चक्र तथा दंडा से घट को
बनाते है। जड़ तत्वों के परमाणु साकार है, सृष्टि भी साकार है; फिर इसका
सयोजक निराकार कैसे होगा? अंतःकरण-इंद्रिय-विहीन निराकार, निर्गुण
गुणमय जड़ तत्वो का संयोग कैसे कर सकता है? निराकार तथा साकार में
बड़ा अंतर है। निराकार तो शून्य को कहते है जो कोई वस्तु नहीं। चेतन जीव
भले अति सूक्ष्म हैं; परन्तु वे निराकार नही है। चेतन जीव और जड़ तत्व
दोनो साकार एवं पदार्थ हैं तभी उनका संयोग होता है। यहां चेतन को
साकार कह देने का मतलब उसका जड़ होना नही है, किंतु उसका सत्तावान
द्रव्य होना है। जीव से इन्द्रियों का संयोग है यह बात ठीक हैं; परन्तु यह
कहना कि इन्द्रियों से परमात्मा का संयोग है, बिलकुल गलत बात है।

क्योंकि निराकार का संयोग किसी से नहीं हो सक्ता। यदि ईश्वर बिना इंद्रियों के कर्म करता है, तब तो वह भला-बुरा सब कुछ करता होगा। यदि ईश्वर को मन तथा इंद्रियों में न आने वाला कहोगे तो उसको तुम किस साधन से सुनोगे और धारण करोगे ? यदि कहो ईश्वर ही इन्द्रियों का प्रेरक है, तो यह निश्चय हुआ कि जीव और ईश्वर दो नहीं हैं। इंद्रियों का प्रेरक घटवासी चेतन ही है, उसे चाहे कोई जीव कहे या ईश्वर"।

कहते हैं ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र व्यापक है; परन्तु जिस दिन एकदेशी जीव शरीर छोड़ कर चला जाता है, तो देह-इन्द्रियों से कर्म नहीं होते। अतः व्यापकवाद एक धारणा मात्र है। यदि जीव ब्रह्म का ही लिंग (चिन्ह) है, तो वह अपने लिंगी (ब्रह्म) से अलग कैसे हो सकता है ? फिर तो शरीर मुर्दा क्यो हुआ, उसमें चेतना क्यों नही रही ? अतएव व्यापक ब्रह्म एक कल्पना ही है। जगत रूपी कार्य तो दिखता है; परन्तु उसका मूल कारण या कर्ता जो ईश्वर या ब्रह्म माना है वह दिखता ही नही। कार्य जो छोटा है वह जगत दिख रहा है और कारण जो बड़ा होता है उसे निराकार (शून्य) कहते है। लहर तो दिख पड़े और समुद्र न दिखे ऐसे अचरज की बाते ऋषियो ने लिख रखी है। संसार-लहर दिखती है; परन्तु ब्रह्म-समुद्र नही दिखता। इसी प्रकार पृथ्वी या सृष्टि रूपी घड़ा तो दिखता है; परन्तु ईश्वर-कुम्हार किंचित भी नही दिखता। यदि तुम पूछो कि ईश्वर तो नही दिखता, परन्तु जीव कहा दिखता है ? तो भाई तुम नही देख रहे हो कि वह स्वयं पूछ या कह रहा हे। बोलने वाला ही तो जीव है। यदि कोई अपनी आखों को देखना चाहे तो स्वच्छ दर्पण में देख ले। इसी प्रकार निर्मल बुद्धि द्वारा अपने स्वरूप का बोध हो जाता है कि सबको देखने वाला मै ही तो हूं। अपने आपकी सत्ता निर्विवाद है। जीव तो स्वतंत्र है। वह कर्म करे तो उसमें फंसे, अन्यथा मुक्त। परन्तु ईश्वर तो जीवों के कर्मो के वश है, क्योकि उसे उसके कर्म-फल-भोग देने के लिए सदैव प्रवृत्त रहना पड़ेगा। ईश्वर जीवो के कर्मों के वश में होकर सृष्टि रचता है, इसलिए वह विवश है। पूर्वपक्षानुसार ईश्वर द्वारा सृष्टि रचने से सृष्टि तो ईश्वरीय हुई; परन्तु फिर भी जड़-चेतन स्वतः अनादि होने से वे अनीश्वरीय ही रहे। ईश्वर स्वयं अनीश्वरीय रहेगा; क्योंकि उसका रचयिता अन्य ईश्वर नही। हे विज्ञ-जन ! विचार करो, जीव स्वतन्त्र है; परन्तु ईश्वर ही परतंत्र हुआ। यदि चोर चोरी न करे तो न न्यायालय हो तथा न जेलखाना हो। जीव तो छोटे घर की चिन्ता मे हैं। जीव असंख्य हैं, जो कर्मबंधनो को छोड़ दे वह मुक्त हो जायेगा;

८. निर्मल सत्य० न्यायनामा दिगर ५।

परन्तु ईश्वर की चिन्ता तो पूरे विश्व की है । वह जगत का स्वाभाविक कर्ता भी है, तो वह जगत-बन्धनों से कैसे छूट सकता है ? वेदांती लोग ईश्वर और जगत एक ही बताते हैं; अतएव उनके ख्याल से सब धान साढ़े बाईस पसेरी है । जब ईश्वर (ब्रह्म) का जगत से सम्बन्ध आधार-आधेय तथा समवाय है तो ईश्वर की माया से अलग स्वतंत्र सत्ता कहां है ? सामान्य व्यापक ईश्वर तथा विशेष अवतारी ईश्वर भी एक अखड में संभव नहीं है। अग्नि, आदित्य, अंगिरा और वायु—इन ऋषियों के भीतर यदि ईश्वर ज्ञान की प्रेरणा कर सकता है तो क्या दूसरे के भीतर वह सुप्त है जो नहीं कर सकता ? यदि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान जगत का व्यवस्थापक होता तो सृष्टि का कायदा ठीक से चलाता । फिर ये सूखा, बूड़ा, पाप और ताप से जलता संसार न दिखता। मनुष्य स्वतन्त्र कर्मकर्ता है, उसी ने वेदादि को रचा है, तथाकथित निराकार ईश्वर ने नहीं रचा है । बावन हरफो के स्थान जिह्वा, तालू, ओष्ठ, दन्त, मूर्धा, कंठ आदि जिसके नहीं हैं वह निराकार ईश्वर आदित्यादि चारों ऋषियों को उपदेश कैसे दे सकता है ? यदि कहो निराकार रूप से उसने ऋषियो में प्रेरणा की तो फिर भूत-प्रेत की योनियों का खंडन कैसे करोगे ? भूत वाले भी कहते हैं कि वे निराकार रूप रहकर लोगों को सताते हैं । निराकार का अर्थ शून्य होता है । एक शून्य आकाश, दूसरा शून्य ईश्वर, तो शून्य में शून्य का प्रतीत कैसे ? निराकार शून्य की कोई सीमा नही होती । जो वस्तु या सत्तावान पदार्थ है उसकी सीमा होती है; क्योंकि उसमें कुछ आकार होता है । मिट्टी, जल, अग्नि, वायु साकार पदार्थ हैं तथा पांचवें चेतन जीव जो असंख्य एकदेशी तथा अविनाशी हैं, ये भी सत्तायुत चेतन पदार्थ होने से कुछ-न-कुछ तो इनमें भी आकार है ही । यह जीव देह में रहकर संसार का ज्ञान प्राप्त करता है। जीव निराकर, व्यापक होता तो जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओं के पर्दे नहीं पड़ते और न उसका गमनागमन एवं जन्म-मरग होता । साकार जड़ तत्व तथा ज्ञानाकार जीव का सम्बन्ध तो बन सकता है, जो प्रत्यक्ष है; परन्तु निराकार ईश्वर और साकार जगत का संबंध नही हो सकता । फिर निराकार ईश्वर साकार जगत का कैसे नियमन कर सकता है ? पांचों विषय साकार एवं पदार्थ हैं, जिनमें दुःख-सुख की अनुभूति होती है । गुणी द्रव्य अपने गुणों का प्रकाश करता है जैसे सूर्य उष्णता एवं रोशनी देता है । इसी प्रकार पृथ्वी, जल, वायु भी अपने गुणों को प्रकट करते हैं[६] ।

जड़ तत्वो के गुगो को जानने वाले चेतन जीव भी अपने आप को ज्ञान-क्रिया द्वारा प्रकट कर रहे हैं । अब इस जड़-चेतन के अतिरिक्त तीसरा ईश्वर

६. निर्मल सत्य० न्यायनामा दिगर ६ ।

कहां है ? इसका पता नहीं चलता। जीव पांचों विषयों का मनन करता है; अतएव जो मनन में आता है वह पांचों विषयों से पृथक नही है। आदमी जो देखता तथा सुनता है उसी का मन में विचार करता है। बिना देखे-सुने विषयों का ध्यान नही आ सकता। कोई कभी कुछ देखा है तो वह दूसरे को सुनाता है। इसलिए बिना किसी के देखे सुनना भी सिद्ध नही होता। देखो, वंध्यापुत्र को कोई नही सुनाता है। अतएव जहां तक सुना, गुना, विचारा जाता है सब पांच विषय हैं। ईश्वर शब्द मात्र है कि शब्दार्थ भी है ? यदि कुछ शब्दार्थ न हो तो शब्द मात्र कोई प्रयोजन नही रखता। तत्त्वमसि=वह तू है, यह ब्रह्म या ईश्वर ने कहा था ये भूले थे और जीव ने कहकर चेताया ? क्या मनुष्य द्वारा वेद नही रचे जा सकते ? यदि मनुष्य द्वारा रचे गये तो ईश्वर का प्रयोजन न रहा। ध्यान किसका और कैसे करते हो ? ईश्वर कैसे मिलेगा, किसने उसका परिचय दिया ? ध्यान करने वाला स्वय ध्यान में आयेगा नही, जो ध्यान में आता है, उसको वेद विषय कहते[10] हैं। बिना किसी के देखे उसको सुनने की बात नही उठ सकती। जिसे देखा-सुना नही, उसका ध्यान में आना असंभव है, और जो ध्यान में आये वह विषय होता है। ब्रह्म को ब्रह्म कहने का क्या प्रयोजन है ? ब्रह्म को जानने का किसका कर्तव्य है ? वस्तुतः लोगो ने अपने स्वरूप को न समझकर अपने तारक की अलग कल्पना की। उसी की चर्चा चारों तरफ फैली और सब लोग उसी बात को कहने, सुनने तथा सोचने लगे। बस यही बात मनुष्यों के मन में गड़ गयी। अतः एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को इस प्रकार भ्रम दृढ़ करता गया और लोग स्वरूप-शोधन न कर बाहर भटकते गये। जीव के बिना ईश्वर की कल्पना कौन करे ? जीव ही ईश्वर को मान रहा है। देखो, सभी शास्त्रो में बताया गया है कि अपरोक्ष—स्वस्वरूप चेतन के बाद जो दृश्य है, सब जड़ का विस्तार है। साक्षी का साक्षी नही होता। यदि दूसरा साक्षी है तो इसका मतलब यह है कि वह सजाति है। ससार में चेतन की जाति तो एक है; परन्तु उनके व्यक्तित्व असंख्य हैं। वे सभी चेतन एक दूसरे से सर्वथा पृथक एवं सजाति हैं। इसके अतिरिक्त जो जड़ है वह विजाति है। इस प्रकार व्यापकवाद अनर्गल है। दो प्रकाश सजाति हैं। इसी प्रकार अनेक चेतन सजाति है। जड़ तो विजाति है, वह द्रष्टा व ज्ञाता नही। जितने ज्ञाता-ज्ञाता है सब सजाति चेतन हैं। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष, अर्थात जड़-चेतन दो ही अनुभव में आते है। अब चेतन पुरुष के ऊपर अन्य चेतन पुरुष की बात करना एक मिथ्या पक्ष है। यह चेतन जीव ही सारी इन्द्रियों के विषयों को जानता तथा उनका अध्यास ग्रहण करता है। जीव

१०. केन उपनिषद् १, ४-८।

इन्द्रियों से अग्राह्य, इन्द्रियों का प्रेरक तथा उसका पालन-पोषण करने वाला है। स्वस्वरूप चेतन के अलावा सब जड़ है। द्रष्टा से पृथक सब दृश्य है। ये अगणित चेतन जीव साक्षी, परीक्षक, ज्ञाता, ध्याता एवं विषयी (विषय के द्रष्टा) हैं। ये ही जड़ जगत के जानने वाले हैं। जड़ तत्वों से ससार की सारी चीजें बनती हैं, इसीलिए वही जगत का उपादान कारण है। शरीर के भी उपादान कारण जड़ तत्व ही हैं; परन्तु इसका निमित्त कारण जीव है,. माता-पिता साधारण कारण हैं और पूर्व कर्मो से जीव शरीर धारण करते हैं। जीव विषय-वासनावश गर्भवास को प्राप्त होता है। इसे अध्यास नचाता रहता है। यदि तुम कहो कि मुझको ईश्वर नचाता है, तो वह मुक्तिदाता एवं कल्याणकर्ता कहां हुआ ? वस्तुतः आसक्ति पूर्वक कर्म करना ही नाचना है और जीव अनादिकाल से कर्मो का कर्ता बना भटक रहा है। शरीर-द्वारा ही सभी कर्म-फलों का भोग होता है और जीव नाना कलह-कल्पनाओं में अपने आपको पतित करता रहता है। हे कल्यागार्थी ! जो मन-इन्द्रियगोचर स्थूल-सूक्ष्म त्रिजाति दृश्य हैं, सबकी परख कर उन्हें छोड़ दो और विवेकवान पारखी संतों की शरण में जाकर सत्य को परख लो, फिर तुम्हारे भ्रम-भास नष्ट हो जायेंगे, और तुम स्वस्वरूप में स्थित होकर कृतार्थ हो जाओगे[११]।

१४

श्री लाल साहेब

(जन्म १८६६ ई० मृत्यु १९४६ ई०)

श्री लाल साहेब के पूर्वाश्रम का नाम था "रामविधाता प्रसाद चौबे"। सतना जिला (मध्यप्रदेश) के हटिया खम्हरिया गांव में आपका जन्मस्थान था। आप ने पत्नी, दो पुत्र तथा एक पुत्री घर में छोडकर साधु जीवन स्वीकार किया था। आप सतना जिले के भड़रा ग्राम की कुटी पर उस समय के महत श्री पूरण साहेब के पास आकर रह रहे थे। आपका साधु-वेष प्रसिद्ध बीजक टीकाकार श्री पूरण साहेब के गुरु रीवां के श्री सुखलाल साहेब की गद्दी पर विराजमान श्री हनुमान साहेब से हुआ था। आपको भड़रा स्थान का महंत नियुक्त किया गया। आपने बुरहानपुर जाकर समसामयिक गद्दीनशीन परम वैराग्यवान श्री काशी साहेब से बीजक-पंचग्रंथी का विधिवत अध्ययन किया।

११. निर्मल सत्य० न्यायनामा दिगर ७।

आपकी महान प्रतिभा देखकर आगे चलकर आपको बुरहानपुर की भी महंती दी गयी; परन्तु आप स्थान का व्यवहार न लेकर केवल बीजक-पंचग्रंथी पढ़ाते रहे। आगे चलकर आपने अध्यापन का भी काम छोड़ दिया और स्थान से हटकर केवल भक्तों में ही विचरने लगे। इस प्रकार आपके दीक्षागुरु रीवां के श्री हनुमान साहेब तथा शिक्षागुरु बुरहानपुर के श्री काशी साहेब थे। आप लम्बे संत समाज के सहित भारत के अनेक प्रांतों में भक्तों के आग्रहवश भ्रमण करते रहे। आप छत्तीसगढ़ (रायपुर जिला) के चिंवरी ग्राम के भक्त नूरसिंह के बंगले में इन्दल गौटिया तथा कृपाल गौटिया, श्यामलाल गौटिया आदि द्वारा सेवित काफी दिन निवास करते रहे। जीवन के आखीर मे आप शंकर भक्त (बस्ती, उत्तर प्रदेश) के मुहम्मदनगर ग्राम की कुटिया पर निवास किये। वहा से एक आपरेशन मे आपको लखनऊ मेडिकल कालेज पे जाना पड़ा। आपरेशन तो अच्छा हुआ। आप प्रसन्नवदन रहते थे, परन्तु दो दिन बाद आपका शरीरांत हुआ तथा लखनऊ के ही डालीगंज स्टेशन के पास मेंहदीगंज पुराने कबीर मन्दिर के प्रांगग में आपके शव की समाधि दी गयी। आपके शरीरांत की तिथि चैत्र कृष्ण द्वितीया सं० २००२ तद्नुसार १९ मार्च १९४६ ई० है। इस प्रकार यदि आपका शरीरांत अस्सी वर्ष की उम्र से माना जाय जैसा कि चित्र या चर्चा से पता लगता है तो आपका जन्मकाल वि० सं० १९२२ के लगभग तथा गृह त्याग १९६० के लगभग माना जा सकता है। मृत्यु तिथि तो निश्चित ही है।

श्री लाल साहेब श्री काशी साहेब के मानसपुत्र थे। लम्बा कद, आजानुबाहु, बड़ी-बड़ी आंखें, खुला मस्तक, गेंहुआ रंग, अत्यन्त शीलवान, निर्मल वैराग्यवान, पूर्ण निर्मानी, प्रतिभा के धनी—ऐसा था उनका व्यक्तित्व। दो जीवन्मुक्तो श्री लाल साहेब तथा श्री विशाल साहेब का परस्पर घनिष्ट संपर्क था। दोनों में अत्यन्त प्रेम था, खूब सत्संग चलता था। श्री लाल साहेब ने ही श्री विशाल साहेब की सुकीर्ति पहले पहल छत्तीसगढ़ मे फैलायी थी। गद्दी, महंती, स्थान, समाज, वेरा आदि किसी प्रकार का बंधन आपके मन में नहीं था। आप स्नेह और वैराग्य—दोनो के भंडार थे। नाना मत के साधु आपके पास आकर और आपका स्नेह तथा पारखबोध पाकर आपके हो जाते थे; आज भी पारख सिद्धान्त के अनेक पुराने साधु ऐसे मिलेंगे जो श्री लाल साहेब को अपना शिक्षा गुरु मानते हैं। कबीरचौरा काशी के पूज्य श्री महाराज राघव साहेब, बाराबंकी के पूज्य श्री प्रेम साहेब, श्री वासुदेव साहेब, श्री चेतन साहेब, श्री निराश साहेब, हमारे पूज्य गुरुदेव श्री रामसूरत साहेब तथा बुरहानपुर के पूज्य श्री रामस्वरूप साहेब जैसे पारख सिद्धान्त के बड़े-बड़े पुरुष

भी श्री लाल साहेब द्वारा बीजक तथा पंचग्रथी की शिक्षा पाये थे। श्री लाल साहेब ने कोई पुस्तक तो नहीं लिखी; किन्तु अपनी दिव्य रहनी, उदार व्यक्तित्व तथा मौखिक प्रचार द्वारा समसामयिक जनमानस को काफी प्रभावित किया। आपने बुरहानपुर की कई पुस्तकों का संशोधन एवं प्रकाशन किया और इस प्रकार पारख सिद्धान्त के विस्तार में आपका महान योगदान है।

१५

श्री विशाल साहेब

(जन्म १८८५ ई० मृत्यु १९७७ ई०)

विशालदेव इस बीसवीं सदी के एक महान पारखी संत हैं। उत्तर प्रदेश, बाराबंकी जिला, डफ्फरपुर ग्राम के एक कुर्मी परिवार में श्री सीताराम वर्मा के औरस से आपका शारीरिक जन्म हुआ। इस परिवार को गुजरात में पटेल तथा मध्यप्रदेश में चंद्रवंशी एवं चंद्राकर नाम से जाना जाता है। आपके माता-पिता डफ्फरपुर से सरैया आकर अपना निवास बनाये और वही विशालदेव का वैरीशाल नाम से बालकपन व्यतीत हुआ। आप बचपन से ही बड़े परिश्रमी, उद्देश्य की पूर्ति में दृढ़ संकल्प एवं पक्के निश्चय के थे।

आपको किशोरावस्था में ही पारखी संत श्री रघुवर साहेब मिले जो बाराबंकी क्षेत्र मे विचरणशील थे। गुरु के उपदेश-पवन पाकर राख में ढंकी हुई आग के प्रदीप्त हो जाने के समान आपका वैराग्य उदय हो गया। आप कभी स्कूल में जाकर विद्याध्ययन नही किये थे; किंतु बचपन में एक पुरोहित पंडित आपके घर पर ही आकर आप को हिंदी वर्णमाला का, नागरी लिपि में ज्ञान करा दिये।

आप कुछ दिनों में श्री रघुवर साहेब से साधुवेष पाकर सरैया के ही बंधियाबाग में साधना-तपस्या करने लगे। तथा एक बार श्री रघुवर साहेब के उपदेश से बधियाबाग भी छोड़कर ग्राम, वाग, वन, नदीतट आदि पर ठहरते हुए विचरने लगे तथा तपस्या पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। आप जगत से निष्फिक्र रहने के लिए कई दिनो तक गेहूं तथा चने भिगाकर खा लेते, नीम के पत्ते या अन्य कोमल पत्ते उबाल कर खा लेते और एकांत साधना में लीन रहते थे। आपको सबसे हटकर निष्फिक्र जीवन बहुत प्रिय था। आपने बीजक, पंचग्रंथी, त्रिज्या, निर्णयसार, वैराग्यशतक, निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, गीता, रामचरितमानस, विचार सागर आदि का खूब अध्ययन किया। इनमे वीजक त्रिज्या तथा वैराग्यशतक आदि का अनगिनत बार अध्ययन किया। अपने

निरन्तर अध्ययन, साधना एवं एकान्त सेवन से अपनी स्वरूपस्थिति का साम्राज्य प्राप्त कर लिया। आपके प्रबल तेज से प्रभावित होकर सैकड़ों भक्त, मुमुक्षु आपको घेरने लगे; किन्तु आप सबको कुछ शिक्षा-उपदेश देकर सबसे दूर हटते रहे। अंततः आपके लिए एकांत में भक्त-साधु लोग कुटी बनाकर रोकने का प्रयास करते रहे। हटाते-हटाते आपके पास पचासों साधु शिष्य एवं सहस्रों भक्त हो गये। आपके ठहरने के लिए भारत तथा नेपाल में पचासों कुटिया बनी; परन्तु आपने किसी को अपना करके नहीं माना; किन्तु जब जहां गये, रह कर चल दिये।

आप पचास-साठ वर्ष की उम्र में पहुंचने पर कुछ पद्य बनाकर गाने लगे। शिष्यों ने सुनकर लिखना आरम्भ किया, तो धीरे-धीरे भवयान नाम का वृहद ग्रंथ बन गया। फिर पीछे मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा एवं नौ नियम नामक तीन ग्रंथ और बने। आपने कभी अपने हाथ से कुछ नही लिखा; परन्तु आपके चारों ग्रंथ केवल आपके मुख से निकले वचन हैं। उनमे कोई एक अक्षर भी फेर-फार नही किया है। आपके सामने ही श्री प्रेम साहेब ने चारों ग्रथो की सुन्दर सुबोध टीका बना दी है।

आपकी दूरदर्शिता, गंभीरता, एकांत-चिंतन, त्याग, वैराग्य आदि का विवरण श्री प्रेम साहेब ने 'विशाल जीवन दर्शन' तथा 'विशालवृत्तात'—इन दो ग्रंथो में तथा श्री आज्ञा साहेब ने 'विशाल विभूति' मे दिया है। आपके चारों ग्रंथ उनके प्रबल साक्षी है हो। सन् १९५३ से १९७७ ई० तक इन पंक्तियो के लेखक को भी समय-समय से आपके दर्शन, सत्संग एवं सहवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो आजीवन अविस्मरणीय है।

फाल्गुन बदी ६ विक्रमी संवत २०३३, तदनुसार ९ फरवरी १९७७ ई० को प्रातः ६ बजे इन महान संत का बाराबकी जिले के मूजापुर ग्राम में शारीरिक अंत हुआ; परन्तु वे अपनी वाणी तथा सुकृति से आज भी जीवित हैं तथा आगे जितने दिन बीतेंगे वे अधिक चमकेंगे और पारख सिद्धान्त के आलोचक उनकी ओर दिनोदिन अधिक आकर्षित होगे। विशालदेव पारख सिद्धान्त के याज्ञवल्क्य एव सनत्कुमार हैं। उनकी वाणियों पर जितना सोचा जाय, उतना रस मिलता है।

विशाल वचनामृत

सद्गुरु श्री विशाल साहेब ने भवयान, मुक्तिद्वार, सत्यनिष्ठा एवं नौ नियम—इन चार ग्रंथों की रचना की है; और इन ग्रंथों का नामकरण भी

उन्होंने ही किया है; परन्तु इन चारों ग्रथों का श्री प्रेम साहेब ने संयुक्त नाम दिया है—विशाल वचनामृत।

पहला ग्रंथ : भवयान

भवयान पहला ग्रंथ है जो अन्य तीनों से काफी बड़ा है। इसमें सात प्रकरण, इक्कानबे प्रसंग तथा सैकड़ों पद एवं साखियां हैं। इसके सातों प्रकरणों के नाम हैं—विनय विधान, भक्ति भरण, इच्छा परीछा, जगत जहर, वैराग्य वित्त, साखीसुधा-अपनाबोध तथा जड़-चेतन निर्णय।

१. २. विनय विधान तथा भक्तिभरण

हर साधक को विनययुक्त (विनम्र) एवं भक्तियुक्त (श्रद्धालु) होना चाहिए। साधक का हृदय बालकवत सरल होना चाहिए। मोक्ष-मन्दिर में पहुंचने के लिए विनय और भक्ति प्रवेशद्वार हैं।

डाक्टर बनने के लिए विनय एवं श्रद्धायुत किसी डाक्टर के पास रहकर डाक्टरी की प्रैक्टिस करना पड़ता है, वकील बनने के लिए वकील के पास तथा विद्वान बनने के लिए विद्वान के पास रहकर अभ्यास करना पड़ता है। इसी प्रकार जीवन्मुक्त बनने के लिए किसी जीवन्मुक्त के पास विनय एवं भक्ति पूर्वक रहकर उनके आदेशो का पालन, आचरण एवं ज्ञानाभ्यास करना पड़ता है। साधारण गृहस्थ भक्त तथा साधक मुमुक्षु दोनों को संसार सागर से पार होने के लिए वैराग्यवान संतों की भक्ति ही सुदृढ़ नावका है। हमें विषयासक्ति से सर्वथा छूटने के लिए किसी पूर्ण अनासक्त संत पुरुष का आदर्श चाहिए और चाहिए उनमें अविचल श्रद्धा-भक्ति तथा साथ-साथ उनके प्रति सेवाभाव।

सच्चे साधक मुमुक्षु को जब पूर्ण वैराग्यवान सच्चे संत पुरुष मिल जाते हैं तब समझ लो उस मुमुक्षु का महाभाग्योदय हो गया। मुमुक्षु को चाहिए कि ऐसे पूर्ण अनासक्त संत पुरुष के चरणों में अपने आप को डाल दे और बालकवत सरल बनकर उनकी गोद में समर्पित हो जाय। किसी महात्मा पुरुष के शरणागत होकर जब साधक अपने मन को उनके मन में मिला देता है और ऐसे संत पुरुष की रुचि ही उसकी रुचि हो जाती है, तब वह भवबंधनों के जालो से ऊपर उठकर सुरक्षित हो जाता है।

जिनकी विषयासक्ति पूर्ण निवृत्त हो गयी है, जो सर्वत्र ममता और वैर से सर्वथा मुक्त है, जिनके-शोक मोह बीत गये हैं, जिनके मन से हानि अनुभव नाम की वस्तु समाप्त हो गयी है, जो स्वरूपज्ञान की स्थिति मे महाशान्त हो

गये हैं, ऐसे पूर्ण महात्मा के चरणों में लिपट जाने का अवसर जिस साधक को मिल गया है, जो साधक ऐसे महापुरुष को अर्पित होकर विनय-भक्ति पूर्वक उनकी सेवा में तत्पर हो गया है, वह धन्य है।

वैसे विशालदेव को गुरु के साथ रहने तथा उनकी सेवा करने का प्राय: अवसर नही पडा; परन्तु वे अपने पूर्व जन्मों में न मालूम कितनी गुरु सेवा कर आये होंगे। जैसे किसी पथिक को सोकर उठने के बाद चला हुआ रास्ता नही चलना पड़ता है, अपितु बचा हुआ रास्ता ही चलना पड़ता है; वैसे महान संस्कारी पुरुष चले हुए पथ से आगे बढ़कर शीघ्र स्वरूपस्थिति का साम्राज्य ले लेते है। हां, ऐसे महान संस्कारी पुरुष को भी किसी पूर्ण महात्मा के पास रहने और सेवा करने का अवसर मिल जाय, तो सोने मे सुगंध ही है। तीव्र संस्कारी पुरुष साधारण गुरु से भी प्रेरणा पाकर महान हो जाते हैं; परन्तु साधारण व्यक्ति महान सत की शरण पाकर ही महान बन सकता है।

श्री विशाल साहेब को अपनी साधना के प्रारम्भिक काल में जिन संत-गुरुजनो के संग-साथ का अवसर पड़ता था, उनसे विनय-भक्ति पूर्वक व्यवहार करने में वे निपुणता रखते थे। उनका हृदय विनय-भक्ति से पूर्ण था। श्री विशाल साहेब गुरु से अभयदान की याचना करते है। वे कहते है—

"हे गुरुदेव ! मुझे निर्भयता का दान दे दो, अर्थात् मुझे पूर्ण निर्भय बना दो। मै धन की चिंता न करूं, न शरीर की ममता रखू और मन की कम-जोरियो को मै किंचित भी न रहने दू। जो लोग मेरे मन के अनुकूल हैं और मेरे शरीर की रक्षा करते हैं, उनके प्रति मेरे मन मे आसक्ति न हो; क्योकि सब प्राणी अपने-अपने हित के लिए काम कर रहे है। मेरा कोई साथी नही है। मैं तो अजर, अमर और अविनाशी हूं। यह तो अपने स्वरूप की भूल से दृश्य प्रपंच की अहंता का महान भ्रम खड़ा हो गया है, इन देहादिक दृश्य प्रपंचों के सम्बन्ध के कारण ही अन्य प्राणी-पदार्थो का सम्बन्ध है; परन्तु हे गुरुदेव ! मेरा यह भार उतार लो। मै अपने मोक्षकार्य की सिद्धि में परिश्रम से न डरूं (अथक परिश्रम करूं)। जो मेरा मन सुखाभ्यास-वश मान-भोग चाहता है, उसका शमन कर दू। मैं मान-भोग की इच्छा से विरत हो जाऊं। सारे अहकारो का मूल शरीर विवशतापूर्ण है और सब प्रकार से नाशवान है। इसका भोग अदृश्य है। किस क्षण इस शरीर पर क्या बला आ जाय, कौन जानता है ? असंख्यो जन्मो के बीच मे भी मै 'सबसे निष्काम होकर स्वस्वरूप में स्थित होना' रूपी अपना मुख्य काम नही सिद्ध कर सका; परन्तु इस काम में आज किंचित भी ढिलाई न करूं। असयम से तो रोग बुलाऊं ही नही;

परन्तु प्रारब्धवश शरीर में आये हुए रोग जो कल्याण-साधना के पुरुषार्थ में विघ्न उपस्थित करते हैं, उनकी भी परवाह न करूं; अपितु ज्ञान की अग्नि से उन सारे विघ्नों को भस्म कर दूं। स्वरूपस्थिति-प्राप्ति की अटल निश्चयता से विषय सुख की आशा अवश्य टल जायगी। मैं अपने कल्याण के लिए अपने आप को पुरुषार्थ में समर्पित कर रहा हूं। मैंने उपर्युक्त जो कुछ कहा है मैं उन्हें उसी प्रकार अपने कर्तव्यों में उतारूं। इसमें जरा भी न पछतावा करूं और न पीछे हटूं। हे गुरुदेव ! मेरी उपर्युक्त अभिलाषा पूर्ण कर मुझे संसार सागर से पार उतार दो[1]।

उपर्युक्त शब्दों को कह देना कोई बड़ी भारी बात नहीं है। अनेक विद्वान या साधारण लोग भी इससे अधिक सुगठित और व्यवस्थित ज्ञान-वैराग्य के पद कह सकते हैं और कहते रहते हैं। विशेषता यह है कि श्री विशाल साहेब ने इन शब्दों के अनुसार अपना जीवन बनाया था। श्री विशाल साहेब के विनय तथा भक्ति के पदों में भी ज्ञान तथा वैराग्य के रस पूर्ण हैं।

३. इच्छा परीक्षा

कुछ पाने की ललक इच्छा है। जीव से जो कुछ अलग है, सब विषय है। इन विषयों की इच्छाओं में जीव निरन्तर भटकता रहता है। सारी विषय-इच्छायें मृगतृष्णा मात्र हैं।

जीव अपने पूर्ण तृप्त स्वरूप को भूल कर विषयों की इच्छा करता है; इच्छा से भोगों में प्रवृत्त होता है; भोगों को भोगनेसे इच्छायें बलवती होती है। इस प्रकार भूल से इच्छा, इच्छा से भोग तथा भोगों से इच्छाओ की वृद्धि। यह ऐसा भयंकर चक्कर है कि इसमें पड़े हुए व्यक्ति का न कभी उद्धार है न उसे सुख-शांति।

भोगों से इच्छायें पूरी नही होती; अपितु बढती हैं और इच्छाओं की धारा में पड़ा व्यक्ति सुखी नही हो सकता। उन्होंने कहा है जिस व्यक्ति को ससार के सारे सुख-भोग मिल जाते हैं, तब भी उसकी इच्छा पूरी नही होती। क्योंकि जिन इच्छाओं की उत्पत्ति भोगों से हुई है, उन्हीं भोगो में लगने से इच्छायें कैसे पूर्ण होंगी[2] ?

१. भवयान, विनय विधान, शब्द ८।
२. जग सुख सब जेहि को मिले, तवहुं न इच्छा पूर।
जेहि उतपति तेहि से भई, ताहि मिले कस दूर॥
(मुक्तिद्वार ६/३२)

इस प्रकरण में मन का सूक्ष्म विश्लेषण है। आध्यात्मिक दृष्टि से मन की सूक्ष्म परख की गयी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि की निरर्थकता पर विस्तृत विचार किया गया है।

सब जीव सुख की इच्छा से दुखी हैं और सद्गुरु विशाल साहेब कहते हैं कि विषयों में सुख नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। बिना भूख के भोजन में तथा बिना प्यास के पानी में सुख नही लगता। अघाये हुए व्यक्ति को भोजन तथा तृप्त को पानी दो, तो उसे वे बुरे लगेंगे। बिना रोग हुए रोग-निवृत्ति जनित सुख कहां मिलेगा ? क्या कोई व्यक्ति रोग-निवृत्ति जनित सुख के लिए पहले रोग को निमंत्रण देगा ?

वस्तुतः इच्छा उठने पर जीव चंचल होकर दुखी हो जाता है। जब उसे इच्छानुकूल भोग मिल जाते हैं और वह उन भोगो को भोगने में लग जाता है, तब उस भोग-क्रिया में इच्छाये दब जाती हैं और इस प्रकार इच्छाओ के शांत होने से उसे सुख की अनुभूति होती है। यह सुख है इच्छा की तृप्ति एवं अपनी स्थिरता का; परन्तु व्यक्ति समझता है कि सुख भोगो से आ रहा है; "है सुख निज स्थिरता केरा। खोजत भूलि के विषयन हेरा।"

भोग-क्रिया में जो इच्छा की तृप्ति-सी लगती है, वही इच्छा की वृद्धि का कारण है। जैसे एक दौड़ता हुआ आदमी थककर रुक जाय और रुकने में उसे विश्रांति लगे; परन्तु विश्राति से पुनः शक्ति भरकर दौड़ने लगे, तो उसका रुकना दौड़ने के लिए शक्ति-ग्रहण (पावर-चार्जिंग) मात्र हुआ। इच्छा मे दौड़ता हुआ व्यक्ति भोग-क्रिया में रुक कर पुनः इच्छाओ के पीछे दौड़ने के लिए शक्ति भरता है; और इस प्रकार भोगी व्यक्ति अपार इच्छाओं के जाल में पड़ा हुआ भटकता रहता है। इसीलिए सद्गुरु विशाल साहेब ने कहा है कि "भोगै सुख सब छिन रहत दुखी[३]।" अर्थात व्यक्ति सुख माने हुए विषयो का उपभोग हरक्षण करता है; परन्तु हरक्षण दुखी भी बना रहता है; क्योकि इच्छाये पूरी नही होती।

व्यक्ति खाली-खाली बैठा घबराता है और अपने मन की बेचैनी समाप्त करने के लिए वह ताश खेलने लगता है। जब ताश खेलने मे उसकी आसक्ति बन जाती है तब उसे बिना ताश खेले रहा नही जाता। व्यक्ति ने जिस विषय को बेचैनी दूर करने का साधन बनाया, वही बेचैनी का कारण बनकर बैठ गया।

३. भवयान ३/४०।

व्यक्ति भूल-वश यह नहीं जानता कि मेरा स्वरूप अजर-अमर, अखंड और निराधार (असंग) है। जितनी इच्छायें हैं, मन के भीतर हैं और व्यक्ति के अपने शुद्ध चेतन स्वरूप से मन सर्वथा पृथक है। इसलिए व्यक्ति का जो अपना सच्चा स्वरूप है वह मन तथा इच्छाओं से सर्वथा रहित है। व्यक्ति जब इस भेद को तत्वतः समझ लेता है, तब वह इच्छाओं से ऊपर उठकर परम शांति का अनुभव करता है।

विषयों में सुख का भ्रम होने से मनुष्य उनकी इच्छाओं के जाल में फंसता है। जब उसे यह पता चल जाता है कि विषयों में सुख की कल्पना एक धोखा है, छलावा है, तब वह इच्छाओं को छोड़कर सुखी हो जाता है।

संसार में अनेक ऐसे पदार्थ हैं जिन्हें हम न सुने हैं, न देखे हैं, न भोगे हैं। उनके विषय में हमें कोई इच्छा नही होती; परन्तु जिन विषयों को हमने देख, सुन तथा भोग लिया है उनके विषय में हमें इच्छा हो जाती है। हम जिस विषय को जितना अधिक भोगते हैं उसके विषय मे हमें उतनी ही अधिक इच्छा होती जाती है। अतएव हम निरर्थक आदतों को बनाकर इच्छा के जाल में पड़ते जाते हैं।

जब व्यक्ति को अपने स्वरूप का ठीक ज्ञान हो जाता है और वह यह समझ लेता है कि मेरा स्वरूप मन तथा तज्जनित इच्छाओं के जाल से सर्वथा पृथक शुद्ध, बुद्ध, चेतन है और इस प्रकार समझदारी के अनुसार जब व्यक्ति दीर्घकाल तक साधना कर स्ववश हो जाता है तब वह अपने आपको इच्छाओ के जाल से छूटा हुआ पाता है।

मन को इच्छाओं से मुक्त कर स्वरूपस्थिति में शांत होने का साहस आपको निम्न पद में मिल सकता है—

"हे मन ! हम जानते हैं कि तुम हमें भुलाने के लिए ठेका (जिम्मेदारी) लेकर बैठे हो; परन्तु हम विषयों की इच्छाओ से तुम्हे वैराग्य करायेंगे। हम तुम्हें उन विषयों की परख करा देंगे कि वे सारहीन, दुःखपूर्ण एवं क्षणभंगुर हैं। विषयों में दुःखदर्शन कराकर हम तुम्हें पदे-पदे सावधान करेंगे। जो विषयों में सुख की कल्पना की जाती है वह सर्वथा झूठी है। हे मन ! यह सब जान जाने पर तुम विषय भोगों की ओर कैसे जाओगे ?

"साधनापथ में अनन्त स्थायी सुख है—इस लोभ में हम तुम्हें बांध देंगे। भोगरहित जीवन प्रपंचरहित जीवन है। अतएव हम तुम्हे निरुपाधि शय्या पर लेटा देंगे और निश्चिन्तता के विधिवत पंखे चलाकर तुम्हे सुला देंगे;

और इस निर्विषय, इच्छारहित, निरुपाधि, निश्चित सुख का बारम्बार स्मरण करायेंगे।

"जब तुम उक्त स्थिति से चंचल होने लगोगे, तब हम तुम्हें गुरुनिर्णय युक्त काम बतायेंगे। जैसे—सेवा, सत्संग, स्वाध्याय आदि। यदि तुम इसमें आनाकानी करोगे, तो तुमको खदेड़कर पकड़ेंगे और खींच लायेंगे तथा उक्त साधनाओं में तुम्हें बलपूर्वक लगा देंगे और हम इस हठ को नहीं छोड़ेंगे।

"बीड़ी, तम्बाकू, गांजा, भांग, शराब, कबाब, नाचरंग, सिनेमा, फैशन, मैथुन आदि जिन विषयो से तुम्हें सुख का निश्चय है, तुम सदैव उन्हीं की खोज में रहते हो। उसी प्रकार प्राणपण से तुम्हें कल्याण मार्ग की साधना में अर्पित होना पड़ेगा और इतना होना पड़ेगा कि तब शांति और उसकी साधना के अतिरिक्त तुम्हे कुछ अच्छा न लगे। हे मन! विषयो की सारी सारहीनता की परख कराकर हम तुमसे उन्हें दूर कर देंगे।

"हे मन! तुम जहां अपना कल्पित लाभ देखते हो, वहा तुरन्त दौड़ जाते हो। तुम्हारा स्वार्थ पूर्ण होना चाहिए फिर दूसरे को दुःख मिले या सुख, उसकी हानि हो या लाभ—इसकी तुम्हें परवाह नही। परन्तु हे मन! हम तुम्हें ऐसा सच्चा पथ बता देंगे कि अपने स्थिर गंतव्य पर पहुच कर शांत हो जाओगे।

"हे मन! तुम्हारे में पूर्ण विवेक उदय हो जाने पर जब तुम्हे विषय-विकारों मे कही किंचित भी सुख का स्थान नही दिखेगा, तब तो विषयो से मुड़कर तुम अपने आप शांत हो जाओगे और तुम्हारा भटकना समाप्त हो जायेगा। हे मन! हम तुमसे यही करायेंगे।

"हे मन! तुम्हारा सहारा लेकर ही हम बलपूर्वक तुम्हारा विनाश कर डालेंगे, फिर तो वासना तथा तज्जनित गमनागमन की समाप्ति हो जायेगी। मन को देखने वाला स्वयं मै शुद्ध चेतन अपने आप ही स्थित हो रहूगा, फिर सारा उपद्रव समाप्त हो जायेगा और केवल मै स्वतः पारख स्वरूप शेष रहूंगा।

"जहां तक इच्छायें चलती है, वे ही बधन है। साधक का काम है इन्हें परीक्षा कर-कर छोड़ता रहे। इच्छाये ही मन को बाहर भटकाती हैं। यदि इच्छायें छूट जायें तो मन कही चंचल न होगा। इच्छारहित होने पर तो मन स्मरण-रहित होकर शांत रहता है।

"मोक्षसाधक का काम है कि सारी मान्यताओ, अहंता-ममताओं एवं विषयों में सुख की आशाओं का सर्वथा परित्याग करे और उसकी क्रिया (भोग)

का भी सर्वथा त्याग करे। रहा शरीर निर्वाह ! उसे आसक्ति-रहित होकर बेगारवत वर्तमान कर दे । वासना-इच्छा ही जन्म आदि का बीज है और उसे ज्ञानाग्नि से भस्म कर दे । फिर धोखे से अपनी मानी हुई देह का बंधन कट जायेगा और जीव मुक्त हो जायेगा[४] ।"

४. जगत ज़हर

जो जायमान और गत हो—बने और बिगड़े उसे जगत कहते हैं । यह जगत जड़, विकारी एवं परिवर्तनशील है । परन्तु व्यक्ति का अपना चेतन स्वरूप शुद्ध, शांत एवं जगत से सर्वथा रहित है । इसका आनुभविक प्रमाण सुषुप्ति तथा समाधि में मिलता है ।

ऐसा होते हुए भी भूलवश जगत मान्यताओं का जहर व्यक्ति पर चढ़ा है । व्यक्ति का जो अपना नही है वह उसे ही अपना मानकर उसके अहंकार का जहर अपने ऊपर चढ़ा रखा है । श्री विशाल साहेब कहते हैं—

"जगत के लोग एक दूसरे पर जगत का जहर चढ़ाकर उन्हे दुःख देते हैं । माता-पिता बच्चे की देह को पैदा करके मोह का पाठ पढ़ाते है और उन्हें बलपूर्वक कुसंग में प्रवेश कराते हैं। बालक, जवान, बुड्ढे, नर तथा नारी—सब प्रायः कुमार्ग की शिक्षा देने वाले होते हैं । विषयों के गीत बनाकर उसे सुनाते हैं, सर्वत्र विषय चर्चा का बाजार गर्म रहता है ।

"माता-पिता शीघ्रातिशीघ्र बच्चेका विवाह देखना चाहते हैं और उसके तुरन्त बाद पोते-प्रपोते को । छल, चोरी, लूट-खसोट कर धन संग्रह करना—इसको बुद्धिमानी मानते हैं । जो ऐसा करके धनी बन जाय उसे लोग लायक मानते है । जो सीधा, सदाचारी, भक्त हो, लोग उसे कुलबोरन कहते है । नाच, सिनेमा, जूवा, शराब, कुसग, कुकर्म में यदि लड़के जायं तो लोग बुरा नही मानते; परन्तु यदि वह साधु-संगत में बैठने लगे तो घर के लोग उससे घृणा करने लगते हें । कितने लोग कहते हैं "यह कलंकी पुत्र हमारी कोख मे जन्म लेकर हमारा नाम डुबा देगा ! साधुओ के साथ बैठ-बैठ कर कुल को रसातल पहुंचा देगा । हाय, न हम मरते है और न यह मरता है[५] ।"

यह जगत तो एक मदिराशाला है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, राग, द्वेषादि का मद्य पीकर लोग अचेत है, उन्मत्त है । कोई धन मे उन्मत्त है, कोई परिवार मे, कोई जवानी में उन्मत्त है, कोई अधिकार में, कोई विद्या मे उन्मत्त

४. भवयान, इच्छा परीक्षा, शब्द ६ ।

५. भवयान, जगत जहर, शब्द 1 ।

है तो कोई मान-बड़ाई में। यह संसार ऐसा मालूम होता है कि मानो इसे पागलों का घर बनाया गया है। कितने ही लोग देवी-देवता की मान्यता में उन्मत्त हैं, कितने लोग भूत-प्रेत के नशा मे, कितने हो लोग साम्प्रदायिक प्रमाद में उन्मत्त हैं तो कितने लोग मोक्ष और ईश्वरदर्शन की ठेकेदारी में। यहां सद्-गुरु कबीर की बात याद आती है—"सबही मद माते कोई न जाग।"

विशालदेव कहते हैं "जगत की सारहीनता को समझो। मदार के भुवा (रोवांटा) के समान यहां सब कुछ निस्सार तथा चंचल है। आशा मात्र ही इसकी सत्यता है। सेमल फूल के समान ही यह केवल दिखाऊ है। जैसे शून्य भार नही पकड़ सकता, वैसे जगत भोगों में मनुष्य की महत्वाकांक्षाये पूरी नही हो सकती। सुख रूप माने गये सारे पदार्थ क्षण-क्षण परवश हैं। स्त्री-पुरुष आदि के सारे सम्बन्ध झूठे हैं। शरीर का अहंकार एकदम खोखला है। जिन प्राणी-पदार्थों को अपना मानकर मनुष्य भूलता है और उनके लिए सारा अत्याचार करता है, वे प्रतिक्षण केवल कष्ट देने वाले हैं।

"जैसे दीपक की शिखा क्षण-क्षण बदलती है वैसे मनुष्यो का मन क्षण-क्षण बदलता है। ऐसे मनुष्यों से सुख की आशा कर उनके मोह मे बध जाना कितनी बेवकूफी है? पागल हाथी पर बैठकर कुशल चाहना तथा उन्मत्त मनुष्यों से अपने सुख-लाभ की आशा रखना—दोनो नादानी है। जो लोग विषय-सुख और सम्मान को ही सब कुछ माने बैठे हैं, ऐसे सकामी जीवों से खतरा पैदा होने के सिवा और क्या हो सकता है?

"माना हुआ विषय-सुख दुःखपूर्ण और छीना-झपटी की वस्तु है 'इस मयकदे में काम नही होशियार का' वाली कहावत है। खरगोश के सीग तथा कच्छप के पीठ पर रोम नहीं होते, वैसे संसार की वस्तुओ में सुख नही है जिसके लिए प्रमादी लोग लड़ रहे हैं। सब जीव विषयों में पच-पच कर मरते हैं और उनकी विषय-पिपासा बढ़ती जाती है। आपको सुनने में यह बात असंभव लगेगी कि विद्या और बुद्धि के बड़े-बड़े अहंकारी भोग-सम्मान की मृगतृष्णा में नाच रहे हैं। यद्यपि यह बधन अधकार मात्र है जो विवेक-प्रकाश उदय होने पर सर्वथा समाप्त हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह महात्माओं का शरण में जाकर विवेक प्राप्त करे[६]।"

"व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को न जानकर तथा इस विकारी जगत को देखकर भटका हुआ है। इसने देह, नाम, रूप, वर्ण, आश्रम, माता, पिता,

६. भवयान, जगत जहर, शब्द ३।

भाई, जाति, घर, धन, देश आदि कितने नाम लिये जायं अपना मान रखा है जो वस्तुतः झूठे हैं। शरीरादि विजाति वस्तुओं को अपनी मान-मान कर ही सारे बंधन खड़े हुए हैं। सभी चेतन अपने आप अनादि स्वरूप एक दूसरे से असंग हैं। वस्तुतः कोई किसी का नही है। प्रपंच संबंध स्वप्नवत है[७]।"

"इस संसार मे रहते हुए बड़ी सावधानी से सबसे बचा-बचा कर चलो। पहले तो यह समझो कि इस संसार मे तत्वतः अपना कोई नही, कुछ नही है। अन्य अपने माने हुए लोग तुम्हें बंधनो में बांध कर अलग हो जायेंगे। अपने मनःकल्पित सुख के लिए कितने जीव अन्यायी हैं। वे दया, क्षमा, परोपकार बिलकुल भूल गये है। अपना ही मन जो रात-दिन साथ मे रहता है, भयंकर है। जरा-सा असावधान हो जाओ तो यह कुवासनाओ और कुकर्मो मे डुबा देता है। संसारी देह स्वभाव-वश विषयासक्त हैं। वे अहंता-ममता में पागल हैं। वे नीति-अनीति का विचार छोड़कर समता तथा सत्यता से दूर हैं। जो अपने तथा दूसरे के सच्चे हितकारी हैं ऐसे संतों की स्थिति का उनको ज्ञान नहीं है। न वे अपनी सच्ची हानि जानते हैं और न लाभ। वे सामने मिले हुए विषयों में लट्टू हैं और सुख के मूल स्वरूपस्थिति से दूर हैं। ऐ मनुष्य! तू ऐसे संसार में निवास कर रहा है जहा अपने और दूसरे शरीर के विकट वन हैं। यह जगत का जहर तभी नष्ट होगा जब व्यक्ति एकरस सावधानी और विवेक रूपी अमृत का पान कर लेगा[८]।"

"जगत में दुःख-नदी की धारा बह रही है। यहां सदैव दूसरे के मन को प्रसन्न रखने का भार पड़ता है। शरीर का कष्ट कुछ-न-कुछ बना ही रहता है। यहां सब प्राणियो को सबसे भय बना रहता है और एक दूसरे को पीड़ित करते और पीसते रहते हैं। जीवन-निर्वाह की चिंता में जीव को विश्रांति नही मिलती उसके लिए वह नित्य बोझा ढोता है। विषयासक्ति वश स्त्री-पुरुष एक दूसरे की अधीनता स्वीकार करते रहते हैं। पुत्री-पुत्रादि में झगड़ा तथा राग-द्वेष देखकर माता-पिता जलते रहते हैं। जहा दश आदमी है, वहां सबकी समझ एवं स्वभाव अनमिल तथा विरोधी भी रहेगे ही। यदि ऐसी अवस्था में क्षमा, समता, दया और संतोष का वर्ताव न बरता जाय तो रात-दिन जलते रहने के अलावा कोई चारा नहीं है। भूत की स्मृतिया, वर्तमान की इच्छायें तथा भविष्य की कल्पनायें ये व्यक्ति को स्थिर नही रहने देती। इन्द्रियां अलग विषयों के लिए खीचती है।

७. वही, शब्द ४।

८. वही, शब्द ६।

संसार में जड़ और चेतन दो ही वस्तुयें हैं, तीसरी नहीं है। जड़ और चेतन विपरीत स्वभाव वाले हैं। दोनों का कोई मौलिक संबंध नही, केवल भूल से यह सम्बन्ध है। जड़ न तो जीव को पकड़ सकता है न कुछ मान सकता है न अपनी ओर खींचने के लिए झगड़ा कर सकता है और जीव शुद्ध चेतन होने से इच्छारहित तथा अचल है। दुख और सुख का कोई पृथक स्वतः स्वरूप भी नहीं है, केवल भूल-वश जीव महान जलन में पड़ा है। व्यक्ति अज्ञान-वश हानि और लाभ मानता है, बहुत और थोड़ा मानता है, प्रेम तथा प्रेम का अभाव मानता है। सब अज्ञान की लीला है[९]।"

"अज्ञान-वश प्रायः मनुष्य सन्मार्ग की कठिनाइयों को नहीं सहन कर पाता। आखीर में उसे संसार में रहकर चारो ओर सहना है। बिना सहे बच नही सकता। माता, पिता, भाई ,बहन, भतीजे, भाभी, पुत्र, पुत्री आदि के रगड़े-झगड़े में पड़े हुए लोग उनकी सारी बातों को सहते ही हैं। विषयासक्ति में पड़कर व्यक्ति जहां-तहां की ओर ठोकरें खाता रहता है। वह अनेक विपत्तियों में जलता रहता है। वह अनेक इच्छाओ में पड़ा हुआ राग-द्वेष में डूबा रहता है। मनुष्य सदैव काम-क्रोध मे जलता है और शत्रु-मित्र की मान्यता में पस्त होता रहता है। वह लोभ-मोह के भ्रम-जाल मे उलझा हुआ दूसरे का ही गुलाम बना रहता है; परन्तु साधना मार्ग की कठिनाइयो को नही सह पाता। यह उसका अज्ञान है[१०]।"

"मनुष्यो ! कल्याणकारी सद्गुण ग्रहण करते चलो। तुम अपने जीवन में दुर्गुणो को रखकर कभी न सुख से सो सकते हो न निश्चिंत रह सकते हो। दुर्बुद्धि व्यक्ति का नाश करती है और पड़ोसी का भी। हित चाहने वालो ! विचार करो, अपने और पराये की हानि करके तुम्हें सुख-शांति कैसे मिल सकती है ? इसलिए हृदय मे सुबुद्धि को स्थान दो जो शुभगुणों की जननी है। शुभगुण ही तुम्हे नित्य सुखी रख सकते है और कष्ट से बचा सकते हैं अतएव अपने और दूसरे का सुधार करो। संत तुम्हे अच्छी बातें बताने वाले है। वे सदैव सबके सहायक है वे स्वयं स्वच्छ मन के हैं तथा तुम्हारी स्वच्छता के प्रेरक हैं, क्योंकि उन्होने अपने मन की परख कर उसे अपने वश कर लिया है।

"ऊची-नीची माया की स्थिति में फूल-पचक कर मनुष्य ने चिंता-शोक बटोर रखा है। वह भ्रम के समुद्र में पड़ा हुआ उसी लहर में बहता तथा डूबता रहता है, स्थिर नही होता। वे मनुष्य बड़े भाग्यशाली हैं जो सन्मार्ग को

९. वही, शब्द ८। १०. वही, शब्द १६।

स्वीकार कर उस पर सदैव चलते हैं। वे पवित्रता पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए अंततः स्वस्वरूप में स्थित हो जाते हैं[११]।"

"हे मन ! गुरुज्ञान का आधार पकड़ो। संसार का आधार लेकर रहते हुए तो तुम्हारे बहुत दिन बीत गये। उसमें तुम्हारा लाभ तो कुछ नहीं हुआ, हां अपने आप का सर्वनाश कर डाले। तुम्हें लाभ यही हुआ कि राग-द्वेष और तृष्णा का धन मिल गया और उसी के बीच पड़े तुम मन के शिकार बने हो। उसी में तुम रात-दिन सुख की आशा करते हो; परन्तु तुम्हें उसमें बरबस दुःख ही मिलते हैं। हम अपने मूर्खता-वश सब पर अपना अधिकार चाहते हैं, जहां भय, परवशता और गुलामी है। हम शरीर, धन तथा मान्यताओं को सत्य समझ कर क्षणभंगुरता की धारा में बहते हैं[१२]।"

५. वैराग्य वित्त

विषयों में राग करके सब जीव निरन्तर पीड़ित हैं। वैराग्य से ही इस दुःख का संहार हो सकता है। वैराग्य का अर्थ न तो केवल घर छोड़कर कहीं चला जाना है और न कपड़ा बदलना मात्र है। वैराग्य कहते हैं मोह के सर्वथा परित्याग को। जो व्यक्ति घर-गृहस्थी में हो, वह वहां अपने उचित कर्तव्यों का पालन करते हुए सबसे निर्मोह रहे तथा जो घर छोड़कर साधु-संन्यासी वेष में विचरता हो वह पुनः अपने माने हुए घर-परिवार का संबंध बिलकुल न रखते हुए अखंड वैराग्य का आदर्श स्थापित करे।

सद्गुरु विशालदेव कहते हैं "सांसारिक विषय-सुखों का परित्याग करो। सच्चा वैराग्य कोई दुःख नही रहने देता। यह सबको अनुभव है कि गाढ़ी नींद में निश्चित सुख होता है। वहां न कोई भय है न चिंता न दुख न पीड़ा। उसके सामने राजा बादशाह भी कुछ नही है; परन्तु जागृत मे ही जो पुरुष इच्छाओं से मुक्त है उसके पटतर में वह भी नहीं है। इच्छाशून्य एवं शांत मन के सुख का दूसरा उदाहरग हो नही सकता। अतएव अपने मन-इन्द्रियों को अपने वश में करो जिससे रोज के दुखों की किचकिच मिट जाय। जैसे लोभी धन के लिए, कामी अनुकूल कामिनी के लिए, मोही प्रिय पुत्रादि के लिए अपने आप को अर्पित कर देते हैं; वैसे तुम वैराग्य एवं त्याग के लिए अपने जीवन को अर्पित कर दो। तुम्हें संसार भर को अपने कब्जे में कर जो सुख पाने की लालसा है उससे अच्छा तो यह है कि तुम अपने आप को स्ववश कर लो, फिर अखण्ड सुखी हो जाओ। सबसे अनासक्त एवं इच्छाजीत व्यक्ति सर्वोच्च हो जाता है।

११. वही, शब्द १७।
१२. वही, शब्द १८।

निष्काम पुरुष के लिए कोई उपलब्धि शेष नही रहती। मनुष्य रोगी हो, ऋणी हो या अन्य विवशता में जकड़ा हो, यहां तक उसे महान भयंकर दुःखदायी घाव लग गया हो और प्राणान्त का समय ही क्यो न आ गया हो; परन्तु उसे इस वैराग्य एवं निष्काम सुख को भूलना नही चाहिए; प्रत्युत वैराग्य ही परम प्यारा होना चाहिए[१३]।"

"तुम्हारा कोई साथी नही है, सब जीव अपने मन के स्वार्थ में बिके हुए हैं। वे अपनी इन्द्रियों के सुख-स्वार्थ हित अदलते-बदलते रहते है। इसमें वे अपना-पराया नहीं समझते। हे पगले! नेत्र खोल कर देख, ऐसे मनवशी मनुष्यों का क्या भरोसा है? जिन वस्तुओ में तुम सुख मानते हो और बड़े कष्ट पूर्वक उनका संग्रह करते हो, सब मनुष्य उन वस्तुओ की छीना-झपटी कर अपनी-अपनी ओर उन्हें खीचने वाले हैं; अतएव संसार के माने गये सुख-भोगो में छल, बलात्कार, तृष्णा और झगड़ा लगे है। संसार के सभी पदार्थ विवशतापूर्ण है, उनके छूटने मे देरी नही लगती। जो प्राणी-पदार्थ आज अपने हैं, वे ही कल बिलकुल पराये हो जाते हैं। संसार के समस्त प्राणियो के शरीर एव समस्त पंचविषय भोग पदार्थ जड़ कारण-कार्य के अखंड प्रवाह की कड़ियां हैं। उनके स्थायित्व में क्षग भी स्ववशता नही है। फिर उन्ही में सत्य-सुख मानकर आशा पकड़ने से दुःख की क्या सीमा रहेगी?

"विषयासक्ति-वश धन, पुत्र, कुल, परिवार मे ममता बनाकर और नर-नारी परस्पर मोह मे आबद्ध होकर कामाग्नि को उत्तेजित कर जलते है। व्यक्ति अपने मूढ़तावश क्षणिक विषयो में सुख खोजता है और उसके लिए जीवनपर्यन्त उद्योग का पर्वत सिर पर उठाकर प्रवृत्ति के वन में भटकता है। वस्तुत. व्यक्ति का अपना स्वरूप विषयो से सर्वथा मुक्त एवं अचल है। अतएव जो विषयो का अभाव कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, वह कृतार्थ हो जाता है[१४]।"

"तुम साधु का वेष धर कर भी संसार के चक्कर में क्यों नाचते हो? किसलिए साधु-वेष धारग किये थे और किस चक्कर में जा रहे हो? तुम पुनः सब प्रकार की मान्यताओ को पकड़ कर बधन बना रहे हो और शरीर की आरामतलबी, धन का अनुचित संग्रह एवं स्त्री की रागधारा में बहे जा रहे हो। अब तो तुम किसी को अपना प्रेमी मानते हो और किसी को बैरी। बस राग-द्वेष मे पड़कर कल्याण-साधना को छोड़ बैठे हो और संसार-सागर में डूब-उतरा रहे हो। तुम क्या लक्ष्य कर साधु-वेष धारण किये थे और अब क्या

१३. भवयान, वैराग्य वित्त, शब्द १।　　१४. वही, शब्द ६।

बन गये ? इस संसार को किसने अपनी मुट्ठी में बटोर रखा है ? कौन इसे कहां ले गया ? सब जीव अपने-अपने मन के चक्कर में बह रहे हैं, कोई किसी के हानि-लाभ के भागीदार नहीं हैं। हे वेषधारी ! यदि तू वैराग्य मार्ग ढीला कर विषयासक्ति, कुटुम्ब के मोह तथा प्रपंचासक्ति में फंसता है, तो तू ही सबसे बड़ा मूढ़ है[१५]।"

"हमारे केवल हम हैं—यह हमें स्मरण रहे। स्वरूप के बाद जितने स्मरण हों, उन्हें हम व्यर्थ ही नहीं, पीड़ाप्रद समझकर मिटाते रहें और स्वरूप-विवेक तथा स्वरूपस्मरण में निरन्तर निमग्न रहें। संसार की मान्यताओं में न भटकें। सम्पूर्ण सुख-शांति अपने आप में है—यह हमें अटल निश्चय हो। जो विषयाग्नि के समुद्र से ऊपर उठकर स्वरूप में ही विश्राम पा गया है, वह पूर्ण सौभाग्यशाली है। स्वरूपस्थिति अविचल खजाना है। वह मिल गया है। अब वह छूटने न पाये; प्रत्युत सब समय उसी में स्थिति हो। हम उस स्वरूपस्थिति को अनादिकाल से खोजते रहे; परन्तु नहीं मिली थी, अब आज मिलकर भी छूट जाय तो हमारी स्थिति कहां होगी[१६] ?"

"मुझ चेतन के पास कोई विजाति वस्तु खोजने से भी नहीं मिलती। माता, पिता, भाई, बहन आदि समस्त सम्बन्धियों का जब स्मरण होता है तब मालूम होता है कि उनसे हमारा संबंध है। यदि याद न हो तो उसका पता भी नहीं चलता। आखीर वे सब मेरे हैं—यह मान्यता भी उल्टी एवं असत्य ही है, क्योंकि देखते-देखते सबका सर्वथा वियोग हो जाता है। इसी प्रकार गांव, देश तथा सारे दृश्यों का सम्बन्ध मान्यता और स्मरण मात्र है। इन सबसे हम सर्वथा पृथक और अछूते हैं; क्योंकि इनकी यदि याद न हो तो इनका कुछ सम्बन्ध नहीं।

"हम जहां-जहां गये, निवास किये और उनमें मोह किये उनका सबंध बहुत दिनो से छूट गया है। अब देखता हूं कि उनके बिना न हमारे शरीर-निर्वाह के कार्य में कोई अड़चन पड़ता है और न जीव की कल्याण-साधना में; परन्तु यदि भावपूर्वक उनका आज भी स्मरण करूं तो उनके विषय में सुख-दुःख की तरंगें आ सकती हैं। इस प्रकार मुझ चेतन का बाह्य दृश्यो से संबंध केवल मान्यता एवं स्मरण का है, वस्तुतः नहीं।

"सारे रूप नेत्र तक, सारे शब्द कान तक, इसी प्रकार गंध नाक तक, रस जिह्वा तक और स्पर्श त्वचा तक ही पहुंचते हैं। मुझ चेतन तक कोई विषय नहीं पहुंचता। इसलिए मैं चेतन प्रत्यक्ष विषयों से भिन्न हूं।

१५. वही, शब्द ७। १६. वही, शब्द १८।

"जब मैं किसी स्मरण में तदाकार होता हूं तब उसमें श्रवण, नेत्रादि कोई इन्द्रिय नहीं रहती; परन्तु सुख-दुःख आदि सारा ज्ञान होता है। इसलिए स्पष्ट हुआ कि हम जागृति अवस्था में ही इन्द्रियो से पृथक रहते हैं। स्वप्न में तो जागृत के व्यवहार का बिलकुल अभाव हो जाता है; परन्तु भीतर-भीतर सारा प्रपंच चलता है। इसलिए जागृत का व्यवहार मेरे में बिलकुल नहीं है।

"फिर हम स्वप्न-जगत को भी छोड़कर गाढ़ी निद्रा में पहुंच जाते हैं, वहां स्मरण का कोई दृश्य नही रहता। वहां सब कुछ का अभाव हो जाता है। इसलिए सिद्ध हुआ कि मै स्वप्न के जगत से भी भिन्न हू; परन्तु सबके अभाव को देखने वाला चेतन वहा भी विद्यमान है, तभी तो जाग कर कहता कि मै सुख से सोया। मैं ऐसा सोया कि कुछ नहीं जाना। जागृत तथा स्वप्न में जाना, सुषुप्ति में कुछ नही जाना; परन्तु कुछ नही को कौन जाना? मै ही तो। इसलिए तीनों अवस्थाओ का द्रष्टा चेतन उनसे पृथक है। ये तीनो अवस्थायें सिनेमा चित्रवत जीव के सामने बारम्बार आती-जाती रहती है। इसलिए तीनों अवस्थाओं तथा उनके व्यवहारों से जीव सर्वथा पृथक है। इस प्रकार केवल देह आदि दृश्यो को मान-मान कर दुखी है। वस्तुतः चेतन मे शरीरादि दृश्यों का लेश भी नही है[१७]।"

"अतएव हे मन! अमृतमय मोक्ष की स्थिति अपनाओ और उसी का स्मरण करो। इस मोक्ष की महिमा सदाकाल से अपार रूप से वर्णन किया गया है। सुर, नर, मुनि और क्रूर प्रवृत्ति के व्यक्ति भी उसको चाहते हैं; परन्तु बिना यथार्थ सद्गुरु के उसका रहस्य वे नही समझते। वस्तुतः जहां मन और उसकी सम्पूर्ण इच्छाये मूलसहित नष्ट हो जाती है और सारे विकार समाप्त हो जाते हैं, वही मोक्षतत्व है। जीव भ्रमित होकर उस अचल सुख को विषयों में खोज रहा है; परन्तु भला मृग को धूप की लहरियो में जल का सागर कहां मिलेगा?

"कोई किसी कल्पित ईश्वर में मिलना मोक्ष मानता है, कोई जड़-चेतन अभिन्न अग-जग व्यापक की कल्पना में मोक्ष मानता है; परन्तु सद्गुरु ने बताया कि तुमसे पृथक माया है। तुम स्वयं मुक्तस्वरूप हो। तुम बाहर से लौटकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ फिर उसमे कोई व्यापार, चिन्ता, परवशता, असंतोषादि नहीं है। वहा न परतंत्रता है, न इच्छा, न राग-द्वेष और न शोक-मोह। वहां काम, क्रोध, लोभ, भय—सबका अत्यन्ताभाव है। वस्तुतः जहां सारी कामनाओ का अंत हो जाता है, वही मोक्षस्वरूप की स्थिति है[१८]।"

१७. वहीं, शब्द १९। १८. वही, शब्द २०।

वैराग्य का फल मोक्ष है। किसी ने बड़ा सुन्दर कहा है—

मोक्ष विषय वैराग्य हैं, बंधन विषय सनेह।
यह सदग्रंथन को मता, मन माने सो करेह ।।

६. साखी सुधा

साखी सुधा प्रकरण में अनेक युक्तियों से निर्णय किया गया है कि विषयों में सुख की कल्पना निराधार हैं। सुख नाम की वस्तु विषयों में है ही नही।

"विषयों में सुख की कल्पना ही व्यक्ति को दुःख देती है। अन्य कोई दुःखदाता नहीं है। यदि व्यक्ति विषय-वासनाओं को छोड़ दें, तो उसे स्वप्न में भी दुःख न हो। यदि कभी इन्द्रियजीत को भी कष्ट होता है, तो वह केवल शारीरिक ही।

"सुखरूप माने गये पदार्थ सामने होते हुए भी व्यक्ति की सुख की चाहना नहीं मिटती। वह क्षणमात्र विषयों में लगकर भले संतुष्ट-सा लगता है; परन्तु पीछे पुनः असंतोष की धारा में बहता रहता है। भोगक्रिया मे लगने से क्षणमात्र के लिए कामनायें मिट जाती हैं और व्यक्ति को सुख लगता है। यह सुख वस्तुतः कामना-नाश का है; परन्तु मूढ़ मानव समझता है कि विषय का है।

"ये सुखरूप माने गये पदार्थ अनेक मनुष्यों के खीचतान में पड़े है। वे क्षणभंगुर तो हैं ही। अपनी इन्द्रियां ठीक हो, भोग पदार्थ प्राप्त हों और उनके सहायक मनुष्य अनुकूल हो, तब कही व्यक्ति को क्षणिक सुख मिल भी पाता है; परन्तु शरीर-इन्द्रियो की शक्ति सीमित होने से वे भोग-क्रियायें भी क्षणिक ही होती हैं। वस्तुतः भोग पदार्थ क्षणभंगुर, नाशवान, परतन्त्र और छूटने वाले है तथा उनके उपभोग से इच्छाये बन तथा पुष्ट होकर केवल दुःख-दायी बनती है। अतएव भोगों में सुख की कल्पना मृगतृष्णा मात्र है। इस भोगावरण से हटे बिना परम कल्याण एव मोक्ष असंभव है।"

१. अंतर-बाहर एकान्त अर्थात भीतर मन शांत होना और बाहर प्रपंच से रहित रहना, २. स्वरूपस्थिति का दृढ़ अभ्यास करना, ३. अपने आप में परीक्षा की शक्ति प्राप्त करना, ४. सद्ग्रंथो का अध्ययन करना, ५. निष्काम महात्मा पुरुष की भक्ति करना, ६. सत्संग करना, ७. कुसंग का त्याग करना, ८. विषयों से वैराग्य करना, ९. बन्धन निवृत्ति के लिए युक्ति, दांवपेच और कायदा अपनाना, १०. विघ्नो को हटा देना, ११. संयम रखना, १२. निमान रहना, १३. निर्विवाद रहना, १४. संतोष धारण करना, १५. आशा-रहित होना

और १६. क्षमा को धारण करना—इन सोलह आचरणों को अपनाकर मनुष्य को चाहिए कि दुःखों से मुक्त हो जाय ।

अपना बोध (साखी सुधा अन्तर्गत)

"जिसकी कभी उत्पत्ति नही हुई है, जो अनादि-अनन्त है, जो स्वतः है, अकेला है, जिसमें अन्य का किंचित भी सम्बन्ध नहीं है, वह चेतन (मैं) किससे मोह करे ? मैं अविनाशी हू और पंच विषय दृश्य क्षण-क्षण उत्पन्न होकर मिटने वाले हैं । जड़ दृश्य मेरे सामने आते और चले जाते हैं । न वे मेरे साथ संबद्ध हैं और न मेरे सदृश चेतन हैं । मैं तो ज्ञान रूपी सूर्य हू जिसमें ज्ञान प्रकाश है और दृश्य तो जड़तारूपी अंधकार से पूर्ण है । उस जड़ दृश्य के लिए दुखी होना अज्ञान के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? मृगतृष्णा मे जल कहा ? परिछाइं में सत्यता कहां ? बाह्य कल्पनाओ में आनन्द कहां ?

"जहां कोई प्रतिकूलता ही नही है किसलिए क्रोध करे ? मै तो दुःख-सुख के प्रपचों से रहित, निष्काम स्वरूप हूं । मैं लोभरहित हू, मेरे में दुःखों का किंचित ताप नहीं है । जब दुःख ही नही, तब किसे मिटाने के लिएं वस्तुओ की इच्छा करे ? न मेरे में इन्द्रियां हैं, न शरीर है और न कोई कामना है । मेरे में जड़ देश का स्थान नही है, वहां काम के अधीन होकर गर्जी बनना नही है; क्योंकि दुःखपूर्ण शरीर का मेरे में गंध भी नहीं है ।

"मेरा विश्राम तो अभय स्वरूपदेश में है । वहां भय की कोई वस्तु नहीं है । वह हानि-लाभ से परे अपने आप है । वह निर्भय, निष्काम, निर्लोभ, निर्मोह, निष्क्रोध और जगतप्रपंच से शून्य है । वहां तो अचल स्वतन्त्र स्वराज्य है । वहां सारी बाधाये समाप्त हैं, क्योंकि शुद्ध चेतन मन के आयाम से परे है । जिसका स्वरूप ऐसा महान और मायातीत है, वह संसार में क्यो दीन बना भटक रहा है ? यदि वह अपनी अपार ज्ञानशक्ति की याद करे तो उसे निर्भयता-पूर्ण अखंड साहस की प्राप्ति हो । यदि जीव अपने शुद्ध स्वरूप को जान जाय कि वह सबसे पार है तो वह अवश्य भवधार से पार पा जाये । जीव मे अपनी निश्चयता की कमी है । निश्चय अपनी ओर हो जाने पर वह शिव (कल्याण) स्वरूप है ।

"भूल गुरु के ज्ञान से मिटती है, मन की पीड़ा प्राणियो की भीड़ छोड़ देने से मिटती है । अतएव साधक को चाहिए कि सारी दुर्बलताओ को दूर कर अपने आप में मुड़े । दुःखप्रद जानकर दुष्टों से दूर रहे; परन्तु सज्जनो से भी निष्काम रहे और जड़सहित दुर्गुणों का नाश करे, तब व्यक्ति को अपना स्वरूपस्थिति-घर मिलता है । स्वरूपस्थिति का एकवृत्ति से दृढ़ अभ्यास करे

और इसी में लीन होकर शांत हो जाय। स्वरूपस्थिति का जब भार-रहित सुख मिल जाय, तब व्यक्ति को भार-सहित विषय-सुख तुच्छ हो जायगा। यह काम जिस प्रकार से बने रात-दिन उसी का शोधन करो। यह काम पूरा हुए बिना कभी दुःखों का अन्त नहीं होगा।

"उपर्युक्त प्रकार से विचार कर दुर्गुणों को मिटाने के लिए कमर कस लो, फिर कामादि कल्पित शत्रुओं के बीच तुम्हारी विजय निश्चित है। मैं अजर, अमर और निर्विकार हूं। न मेरा जन्म है न अन्त। मैं अब मन से अविचल युद्ध करूंगा, फिर विजय क्यों नहीं होगी? उपर्युक्त प्रकार स्वस्वरूप स्मरण सारे दुःखों का शमन करने वाला है। इससे कल्याण मार्ग में धैर्य, साहस और शक्ति बढ़ती है और मन के खींचतान का बंधन टूट जाता है। कामादि मन शत्रु से युद्ध करने में ही विश्राम समझो। यदि युद्ध करना छोड़ दोगे तो शत्रु घेर लेंगे और तुम दुःखों में फंस जाओगे—ऐसी निश्चयता कर शीघ्र मन शत्रु को जीतो[१६]।"

"मुक्ति स्थिति में हानि-लाभ, सुख-दुःख, मिलन-विछोह, भूख-प्यास, नींद आदि का अत्यन्ताभाव है। वह घट-बढ़ रूप विकार से सदैव परे है। जन्म, मरण, बाल्य, युवा, वृद्धता, स्त्री-पुरुष की देहें, चारों खानियों का चक्कर—इनकी एकदम समाप्ति है। वह मोक्षदशा काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय आदि से सर्वथा परे है। वहां दावानल के समान जलाने वाली ममता नहीं है और संसार के सारे उपद्रवों का नितांत उपशमन है।

"मन-मान्यताओं में लीन होकर जो क्रियायें की जाती हैं, उनकी वासनायें सामने होती रहती हैं—यही शरीर का संबंध है। यदि जीव का प्रारब्ध-देह से सम्बन्ध न हो, तो उसका किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। जीव अपने स्वरूप के भूलवश विषयों के सुख की आशा में पड़ा हुआ दुःखदायी आदतों में उलझा है। अनेक भौतिक तत्व सब जड़ हैं। उनमे धर्म, गुण, शक्ति भिन्न हैं। इसलिए जड़ तत्वों में परस्पर स्वाभाविक संयोग बना रहता है; परन्तु जीव जड़ से सर्वथा पृथक चेतन है। वह दृश्य नहीं, अपितु द्रष्टा है, दृश्य से परे है। इसलिए चेतन का जड़ से स्वाभाविक संयोग नहीं है। यह बात स्वय प्रत्यक्ष है कि पास की वस्तुयें जिनका स्मरण नहीं है उनसे जीव का कोई सम्बन्ध नहीं है; परन्तु हजारों कोस की दूरी के प्राणी-पदार्थ जिनके प्रति ममता या वैर है स्मरण होते ही चित्त में खटकने लगता है। अतएव जीव का जड़ से सम्बन्ध केवल अहंता-ममता तथा स्मरण मात्र है। जो कारण तत्व रहता है वह निरा-

१६. भवयान, अपनाबोध, साखी १-२४।

धार रहता है और उसका कार्य पदार्थ उसी के आधार में रहता है; परन्तु जो चेतन किसी का न तो कारण है और न कार्य; वह किसी का सहारा न लेकर मोक्ष में अपने आप रहता है। अतएव जीव निराधार स्वरूप से अविचल है। वह भूल दशा में वासना-वश भ्रमता है, भूल और वासनाओ से मुक्त होकर अचल स्थित हो जाता है। जैसे जड़ तत्व तीनों काल में अपनी शक्ति से अपने आप रहते है; वैसे मुक्त चेतन भी अपनी शक्ति से अपने स्वरूप मात्र सदैव स्थिर रहते है। जड़ तत्व ज्ञान रहित होने से उनमें स्वाभाविक क्रिया है। इसलिए उनकी क्रिया बंद भी नही हो सकती, जीव ज्ञान स्वरूप है, वह मान्यता करके क्रिया करता है। वह जब ज्ञानवान बनकर मान्यताओंके जाल को तोड़ देगा तब क्रियाओ से मुक्त हो जायगा। जीव के तो धर्म, गुण, आकार—सब ज्ञान मात्र ही हैं। उनमे ज्ञान लक्षण छोड़ कर कुछ नही है। जीव केवल ज्ञान का अखंड स्वरूप है।

"विषयों में सुख की मान्यता तथा आसक्ति छोड़ देने पर जीव प्रारब्धांत मे जड़ तत्वो के सम्बन्ध से सर्वथा अलग हो जाता है। वहा शरीर, इन्द्रिय, मन आदि का अत्यन्ताभाव रहता है। अतएव वह दुःख-सुख के चक्कर से मुक्त कल्याण रूप है। फिर वहा कहा अहंता-ममता, कहां भूल, कहा अपने-पराये का दुःख, कहा मिलना-बिछुड़ना ? वह तो जानने और जनाने की परे दशा है। जिस समय कुछ भी याद नही रहता (जैसे गाढ़ी नीद में) उस समय क्या दुःख रहता है ? शरीर, मन तथा मान्यताओ के बोझा से रहित शान्त मात्र मोक्ष सुख का घर है।

"मोक्ष-साधक को चाहिए कि वह विषय-सुखो की आशा, वासना, जड़ पदार्थों की प्रियता तथा मोह छोड़ दे और अनासक्त होकर शारीरिक निर्वाह ले और स्वरूपस्थिति पूर्वक जीवन व्यतीत कर दे, फिर तो उसका देहपात होने पर वह प्रकृतिजाल से पृथक शुद्ध स्वरूप चेतन मात्र रह जायेगा[२०]।"

"जीवन्मुक्त सत के लक्षण ये है—वे किसी को पीडा नही देते, निर्मान चित्त होते है, ज्ञान, वैराग्य तथा सहनशीलता धारण करते हैं। वे दूसरे को कल्याण की बात बताकर उसे सुखी करते है और उसके दुःखों को हर लेते हैं। वे सबको संतोष देते हुए शरीर-निर्वाह लेते हैं और वे मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को कभी दुःख नही देते। वे न तो किसी से वैर करते हैं और न मोह। वे जगत-भोगो से विमुख होकर वैराग्य-साधना में तत्पर रहते है। मोह और

२०. वही, साखी १४१-१५७।

वैर दोनों विकट बंधन हैं जिनमें पड़कर सब जीव पीड़ित हैं। इसी को त्याग-कर और विवेकपूर्वक अच्छे आचरण में चलकर साधु सुखी रहते है।

"विवेकवान मन के मोह को अंधकार रूप जानकर त्याग देते हैं और मान-सम्मान की इच्छा से बहुत दूर रहते हैं। सम्मान प्राप्ति की इच्छा रखना दुःखों का घर है। उसमें अपनी स्ववशता छूट जाती है। कितने साधु, महन्त नामधारी जिस वैराग्य एवं मोक्ष के लिए पहले घर-द्वार का त्याग करते हैं, धन, सम्मान पा जाने से उसकी उन्हें याद नहीं आती और सांसारिक प्रलोभनों के फंदे में पड़कर बालक के समान बिलबिलाते हैं; परन्तु विवेकवान सावधान होते हैं। उनकी बुद्धि स्थिर होती है। वे धैर्यवान होते हैं। वे मन के उद्वेग से रहित होते हैं। इधर-उधर से मन को समेट कर विवेकपूर्वक अपने कल्याण-पथ पर चलते हैं। अनासक्त एवं निष्काम महात्मा पुरुष को छोड़कर साधु साधक का कोई सहायक नहीं है। अतएव साधक को चाहिए कि वह सारा प्रमाद छोड़कर वैराग्यवान महात्मा की शरण ले और सब जगह सावधान रहे। विवेकवान अपने शरीर निर्वाह या किसी बात को लेकर अन्य किसी को कष्ट नहीं देते हैं। वे अपने साधना मार्ग में चलते रहते है और उनको कोई कमी नहीं रहती। संसार के सभी जीव राग-द्वेष के सर्प से डसे जा रहे है। कोई साधु ही अपने शरीर, इन्द्रिय तथा मन को अपने वश में कर उससे बचते रहते हैं। वे अजर, अमर, अविनाशी स्वरूप का बोध तथा सद्गुण धारण किये हुए रहते हैं और उसी की अन्य से चर्चा करते हैं। जो व्यक्ति उनके अमृत वचनों का श्रवण करता है वह भी कृतार्थ हो जाता है[२१]।"

७. जड़-चेतन निर्णय

भवयान के सात प्रकरणों में सोलह पाठ हैं। उनमें केवल सातवें प्रकरण जड़-चेतन निर्णय में पांच पाठ हैं। अतएव यह प्रकरण ग्रंथ मे सबसे बड़ा है। इसमें जड़-चेतन का भिन्न निर्णय किया गया है।

विशालदेव ने विविध प्रसंगों में यह बताया है कि जड़ तत्व केवल जड़ है। उनमें चेतना है और न इसलिए उनके संयोग से न चेतना आ सकती है। चेतना एक अलग गुण है। गुण किसी द्रव्य में रहता है और वह द्रव्य चेतन है। चेतन जाति में एक है; परन्तु व्यक्तित्व में अनेक तथा एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। वे सब चेतन अजर, अमर, अविनाशी हैं। वे किसी ईश्वर के न अंश हैं न अंशी, न कारण हैं न कार्य, न व्यापक हैं न व्याप्य; किन्तु वे सब निरा-

२१. वही, साखी १५८-१६८।

धार एवं असंग हैं। वासनावश वे भटकते हैं, वासना त्याग कर मुक्त हो सकते हैं। इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए तदस्थल ही देखना चाहिए।

इस प्रकरण में जड़-चेतन का विस्तार पूर्वक वर्णन है। वृक्ष-वनस्पतियों में जीव नही होते—इसका भी वृहद विवेचन इस प्रकरण में किया गया है। यह ठीक है कि कुर्सी, टेबल, गेंद आदि के समान वृक्ष-वनस्पति निष्क्रिय नही होते। उनमे उगना, बढ़ना, पकना, गिरना आदि होते हैं। वस्तुतः जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति, सुख-दुःख का अनुभव आदि एवं मन-इन्द्रियो का व्यवहार देहधारी जीवो में होता है; परन्तु ये सब बातें वनस्पतियो में नही है। अतएव वे निर्जीव हैं। बीजी असर तथा तत्वो के संयोग से उनकी उत्पत्ति तथा नाश होता है। जैसे शरीर में बाल निर्जीव हैं; परन्तु बढ़ते हैं, जैसे कंकर, पत्थर बनते तथा बढ़ते हैं, वैसे वृक्ष-वनस्पतियां भी उगती और बढ़ती हैं; परन्तु वे निर्जीव है।

साधक-बाधक तत्वों से वृक्षों का हरा-भरा रहना या सूख जाना होता है। जगदीश चन्द बसु ने वृक्षों मे जीव की व्याख्या करके दुनिया मे एक भ्रम पैदा कर दिया है। उन्होने तो ठोकर से कांपते हुए सूखे काष्ट मे भी जीव की कल्पना कर डाली। वृक्ष-वनस्पतियां निर्जीव है—इसकी विस्तृत व्याख्या देखना हो, तो आप इस प्रकरण का तदस्थल पर टीका सहित मनन करें।

दूसरा ग्रंथ : मुक्तिद्वार

मुक्तिद्वार में सात प्रकरण, बहत्तर प्रसंग, सैकड़ो साखियां एवं अनेक पद हैं। विशालदेव ने भवयान रचने के बाद ईसवी सन् १९५०-५५ के बीच इस ग्रंथ की रचना की है। सातो प्रकरणो पर हम थोड़ा अलग-अलग विचार करेगे।

१. सद्गुण शतक

सद्गुण शतक मुक्तिद्वार का पहला प्रकरण है। मनुष्य दुर्गुणों में फंसकर दुखी है। सद्गुणों के धारण से ही उनका उद्धार संभव है। गुरुभक्ति, वैराग्य, दया, क्षमा, संतोष, सत्य, विवेक, धैर्य, वीरता, शील, विचार, निर्मानता, निष्कामता, निष्क्रोधता, निर्लोभता, निर्मोहता, निर्भयता, आसक्तिहीनता, प्रतिष्ठा एव सम्मान से उदासीनता—इन उन्नीस (१९) सद्गुणो के लक्षणो पर विशालदेव ने विस्तृत चर्चा की है।

कल्याणइच्छुक व्यक्ति को यह आवश्यक है कि वह किसी बोधवान निष्काम महात्मा पुरुष की शरण लेकर उनका तन, मन, वचन से सेवापरायण,

आज्ञाकारी होकर उनको सर्वतोभात्या अर्पित हो। उसे विषयों से पूर्ण वैराग्य हो। वह दया पालन करे और अपने अपराधी का भी अहित न सोचे। उसे हर दिशा में संतोष हो और आशा-तृष्णा से सर्वथा मुक्त होकर संतोष पूर्वक जीवन यापन करे। उसे सत्य स्वस्वरूप का बोध हो, साथ-साथ वह अपने व्यवहार और वाणी में सत्य का पालन करता हो। वह अपने स्वरूप को देहादि जड़ पदार्थों से विवेक द्वारा पृथक करता रहे और सारा काम विवेक पूर्वक करे।

उसे हर समय धैर्यवान होना चाहिए। थोड़ी विपत्ति में घबरा जाने वाला किसी दिशा में सफल नहीं हो सकता। अतएव घोर विपत्ति आने पर भी वह सतपंथ से विचलित न हो। उसमें दुर्गुणों पर विजय करने के लिए वीरता हो। वह किंचित भी दोषों को अपने में न रहने दे। उसे शीलवान होना चाहिए। वह मन, वाणी, कर्म से कठोरता बिलकुल छोड़ दे। उसे विचारवान होना चाहिए और जीवन के गहन-गंभीर तथा साधारण पहलुओं पर भी उसे विचार कर ही कार्य करना चाहिए।

कल्याण-साधक को अहंकार से एकदम दूर रहना चाहिए। अहंकारी व्यक्ति साधक नहीं बन सकता। अहंकार करने योग्य कोई वस्तु है भी नहीं; क्योंकि यहां का सब कुछ नाशवान है। उसे मन, वाणी, कर्म से मैथुन कर्म को छोड़कर निष्काम होना चाहिए। उसे शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन अत्यन्त आवश्यक है। उसे क्रोध पर भी विजय पाना चाहिए। क्रोधी व्यक्ति तो अंधकार से पूर्ण होता है। क्रोध को सर्वथा छोड़ दिये बिना किसी का कल्याण संभव नहीं। लोभरहित हुए बिना कोई साधक नहीं बन सकता। अधिक धन का संग्रह तो दुःख को ही बटोरना है। धन का सदुपयोग करते हुए निर्लोभ होना चाहिए।

मोह महा पिशाच है। मोह पर विजय हुए बिना बंधन कट नहीं सकते। संसार में कोई अपना है भी नहीं। मेला, पथ, बाजार में मिली हुई भीड़ के समान सारे प्राणियों का संबंध है। इस संसार में कोई किसी का नहीं है। अतएव मोह निरर्थक है; प्रत्युत दुःखप्रद है। साधक के जीवन में निर्भयता की महान आवश्यकता है और निर्भयता तभी आयेगी जब वह नाशवान देहादि पदार्थों की आसक्ति छोड़ देगा। अतएव समस्त पीड़ाओं का कारण आसक्ति है। उसे सर्वथा त्यागना अत्यन्त आवश्यक है।

साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वह मान-प्रतिष्ठा मिलने पर अहंकार में फूले नहीं और हृदय से उसका अभाव रखते हुए निर्मान रहे। मान-प्रतिष्ठा का भूखा व्यक्ति साधक नहीं बन सकता।

उपर्युक्त सद्गुणों को जीवन में धारण करने में लगे हुए व्यक्ति के लिए समय ही नहीं है कि वह दूसरे के दोषों को देखे व प्रपंचासक्ति मे डूबे । जीवन थोड़ा और क्षणिक है; अतएव इस काम को शीघ्र कर लेना है ।

उपर्युक्त सद्गुण ही जीव के उद्धार-मार्ग में सच्चे साथी हैं । ये न धोखा देते हैं, न इन्हे कोई चुरा सकता है और न ये कही खो सकते है, बस केवल इन्हें याद रखना चाहिए, इन्हे अपनाये रखना चाहिए । ये बिना दाम के मजदूर हैं । यदि साधक इन्हें पूर्णतया जीवनपर्यन्त अपनाये रहे तो उसका उद्धार होना निश्चित है । उक्त सद्गुणो को अपनाकर तुम सबके प्राणप्रिय बने रहोगे । यदि तुम अपनी भूल छोड़कर सद्गुणग्राही बने रहो, तो तुम्हारा कोई वैरी नही है । सब जीव तो सजाति मित्र हैं । वस्तुतः न बाहर कोई मित्र है न शत्रु । तुम्हारे दुर्गुण ही तुम्हारे शत्रु बन जाते है तथा सद्गुण ही मित्र । अतएव सदैव सद्गुणग्राही बनो ।

२. जगत अनादि शतक

नाना मत के लोगों ने नाना प्रकार से जगत की उत्पत्ति मानी है जो सब काल्पनिक हैं । वर्तमान में भौतिकवादी वैज्ञानिको की दृष्टि से एक काल्पनिक सूक्ष्मतम ईथर नामक द्रव्य से नीहारिकाये तथा उनसे सूर्यादि ग्रह तथा उनसे पृथ्वी आदिकी उत्पत्ति मानी गयी है । पृथ्वी आगका गोला थी, पीछे ठंडी हुई । अमीबा नाम के एक कोषीय जंतु हुए उन्ही से विकास होकर मछली, मेढक, शशक, बन्दर, वनमानुष तथा मनुष्य करोड़ों वर्ष में हुए—यह उनकी धारणा है; जिसका नाम विकासवाद है ।

इस प्रकरण में उपर्युक्त धारणा का खण्डन है । ईथर अनादि-द्रव्य है, तब उसमें रही हुई क्रिया भी अनादि होना चाहिए और तब सृष्टि भी अनादि होना चाहिए । फिर ईथर में अमुक काल में क्रिया मानना सर्वथा अयुक्त है । यदि ईथर में स्वभावसिद्ध अनादि क्रिया नही है, तब उसमे अमुक काल में क्रिया उत्पन्न करने वाला कौन द्रव्य है ? यदि कोई द्रव्य है तो वह अनादि स्वभावसिद्ध क्रियावान होगा । यदि उसका भी अन्य प्रेरक है, तो कौन है ? फिर प्रेरक का प्रेरक मानते जाने से कही विराम न होगा । अंततः तो कोई एक अनादि क्रियावान पदार्थ मानना होगा जिससे जगत का निर्माण संभव होता है और जब अनादि क्रियावान कारण मिल गया तब सृष्टि अनादि सिद्ध हो गयी । फिर सृष्टि के विषय में अनेक लालबुझक्कड़ी अटकले निरर्थक हैं ।

विकासवाद का सारा सिद्धान्त चट्टानो की खोदाइयो तथा उनमे पाये गये चिन्हों के आधार पर गढ़ा गया है जो केवल पौराणिक गपोड़ो से स्वस्थ

लगता है; परन्तु थोड़ा विचार करने पर वह भी लालबुझक्कड़ी अटकलबाजियो से अधिक नही है। नर का भ्रूण (गर्भ) पहले शशक, शूकर, बन्दर आदि के भ्रूणों से कोई अधिक भिन्न नहीं दिखता, तो इस आधार पर हम यह कैसे मान लें कि मनुष्य इन जंतुओं से विकसित होकर आया है ? चट्टानो के स्तरो में किसी विलक्षण प्राणी के चिन्ह मिले तो हम उसको अपना नगड़दादा कैसे मान लें ? जब सभी प्राणियों की खानियों की सृष्टि एक दूसरे से भिन्न निरन्तर दीख रही है, तब सबको एक में मिलाकर विकासवाद का हौआ खड़ा करना निरर्थक है ?

एक पहिये की भद्दी साइकिलों का उत्तरोत्तर विकास होकर जब आज की अच्छी साइकिलें बन गयीं, तब उन भद्दी साइकिलों का बनना बंद हो गया। यदि अमीबा, मेढक, बन्दर आदि भद्दे प्राणियों का उत्तरोत्तर विकास होकर उन्नत प्राणी मनुष्य का विकास हो गया तब वे पहले के भद्दे प्राणी क्यो रह गये ?

वस्तुतः यह अनन्त ब्रह्मांड एवं जगत अनादि है। सृष्टियां प्रवाह रूप अनादि हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहिये या आक्सीजन, हाइड्रोजन आदि शताधिक सूक्ष्म तत्वों के समूह ठोस, तरल, वायव्य एवं अतिवायव्य कहिये—ये सभी तत्व जड़ हैं। इनमें उनके अपने गुण, धर्म, स्वभाव, क्रिया, आकार आदि स्वभावसिद्ध अनादि है। इन्हीं से सारी जड़ात्मक सृष्टि है और इनसे सर्वथा पृथक अविनाशी असंख्य चेतन जीव हैं, जो अनादिकाल से स्वरूप-भूल-वश एवं वासना-वश पुनर्जन्म में घूम रहे हैं। इस प्रकार जड़-चेतन मिलकर जड़-चेतनात्मक सृष्टि है और यह प्रवाह रूप अनादि है। जगत और सृष्टि इस प्रकार अनादि जड़-चेतन के आधार में अनादि है।

इस 'जगत अनादि शतक' में सद्गुरु विशाल साहेब ने विकासवाद का खण्डन कर जगत अनादि सिद्ध किया है।

३. स्वतन्त्र जीव शतक

भौतिकवादी कहते है कि चेतन जीव जड़ पदार्थों का बना उसका ही परिणाम है और ईश्वरवादी एवं ब्रह्मवादी कहते है कि जीव, ईश्वर या ब्रह्म का अंश, प्रतिबिम्ब, आभास आदि है; अतः वह परिछिन्न, किंचिज्ञ, अल्पज्ञ आदि है।

सद्गुरु कबीरदेव को उपर्युक्त बातें बहुत खटकी और उन्होंने कहा 'झगरा एक बढ़ो राजा राम···। ब्रह्म बड़ा कि जहां से आया ?···राम बड़ा कि

रामहि जाना[२२]...।' आदि। अर्थात ब्रह्म एवं ईश्वर बडे हैं कि उनकी कल्पना करने वाले जीव बड़े हैं ? वस्तुतः जीव ही श्रेष्ठ हैं।

उन्हीं विचारों को लेकर सद्गुरु विशालदेव कहते हैं 'परतन्त्र कहैं सब जीव को, जो स्वतन्त्र पद नित्य......।'

जड़ तत्वों में चेतना का कोई लक्षण नहीं है। अतएव चेतन जड़ तत्वों से सर्वथा पृथक हैं। मस्तिष्क, हृदय, शरीर, इन्द्रिय—सब जड़ हैं; किन्तु मैं-मैं कहने वाला, निरन्तर ज्ञान-ज्योति से आलोकित निश्चित चेतन है।

ये असंख्य चेतन जीव जड़ तत्वों से सर्वथा पृथक अजर, अमर, अखण्ड हैं। कारण-कार्य, अंश-अशी, व्याप्य-व्यापक भाव से रहित शुद्ध, बुद्ध स्वतन्त्र हैं—इन्ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस प्रकरण मे विविध प्रकार से हुआ है।

"जहां देहधारी जीव होते हैं वहा सुख की चेष्टा, तीन अवस्था, बुद्धि, त्याग, ग्रहण, पश्चाताप, छल, प्रियता, भय देना-लेना, बदला लेना, अहंभाव, दीनभाव, लोभ, दभ, चेष्टा, सावधानी, चलना, रुकना इत्यादि देहोपाधि युक्त अनेक क्रियाये रहती हैं। जीव का शुद्ध स्वरूप केवल ज्ञान है। उसे अपने आप की सत्ता का भास निरन्तर होता है। जीव पांचो विषयो से पृथक एवं जड़ प्रकृति से सर्वथा परे है। उसपे संसार का कोई उदाहरण घट नही सकता।

"संत अपने शुद्ध चेतन स्वरूप के शोधन में अपने शरीर, वाणी और मन को अर्पित कर उसके बोध की उपलब्धि कर लेते हैं और पूर्णकाम होकर कृतार्थ हो जाते है। भला, जो भोगों में रात-दिन उलझा है वह स्वस्वरूप के विषय में क्या जान सकता है ? उसकी शक्ति व्यर्थ है जिसने अपने चेतन स्वरूप की शक्ति को नहीं समझा। केवल जड़ प्रकृति की छानबीन कर मनुष्य बाह्य जगत में अवश्य आगे बढ़ गया; परन्तु वह अपने आप को भूलकर बन्धनो मे जकड़ गया है। अपने आप को प्रवीण मानकर भी मनुष्य इन्द्रिय-मन के अधीन बना हुआ दीन है।

"जिसे जड़-चेतन के लक्षणों का विचार नही है, जो मोह में प्रमत्त होकर विश्व अभिमान मे चूर है, जिसकी दृष्टि सदैव स्वार्थ से घिरी है, जो मन-इन्द्रियों का दास है, जो क्षणमात्र भी प्रपंच छोड़कर सारासार पर विचार नही करता, जो निर्मान, निष्कपट और शांत होकर न कभी साधु संगत में बैठकर सत्संग करता है और न सद्ग्रथो का मनन करता है, वह भला स्वरूप-ज्ञान के विषय में क्या जान सकता है ? पान, सुपारी, गन्ना, धान, गेहूं, अरहर

२२. बीजक, शब्द ११२।

आदि के बीज बिना अपनी अनुकूल भूमिका पाये पैदा नहीं होते, इसी प्रकार शुद्ध, सरल और तर्कयुक्त अंतःकरण हुए बिना कोई स्वस्वरूप का ज्ञान कैसे पा सकता है ?

"तुम इंगलिश, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं के विद्वान भले हो जाओ; परन्तु स्वरूपज्ञान बिना तुम केवल भोग-पदार्थों के ही ज्ञाता हो। सो वह तो अनपढ़ लोग भी कम-बेश जानते है, पशु भी भोग भोगते हैं। शुभगुण धारण बिना सारी विद्या निरर्थक ही नहीं विघातक भी है। यदि मनुष्य सावधान न रहा तो विज्ञता एवं बाह्य ज्ञान उसके लिए महान कुसंग एवं पतनकारक हैं। सारे दुर्गुण एवं अहंकार की अंधियारी इस विद्या प्रमाद में घर कर जाती है। वस्तुओं को स्वयं जानना और दूसरे को जना देना इतना ही विद्या (भाषा तथा लिपि) का प्रयोजन है। इससे अधिक इसमें क्या रखा है ? अतः सावधान[२३]।"

"सारी वस्तुये केवल आंखों से नही देखी जाती। शब्द, गंध, स्पर्श और रस—इन चारों का ज्ञान आंखों से संभव नही। आंखों से तो केवल रूप दिखता है। अपने आप चेतन स्वरूप को देखा कैसे जा सकता है ? वह तो सबको देखने वाला है। जो सबको देखता है वह देखने मे कैसे आ सकता है। अपने आप का तो केवल अनुभव किया जा सकता है। जीव सत्य, अनादि तथा अविनाशी है। वह जड़-वासना-वश जन्मांतरों में भटकता है। जीव का शुद्ध स्वरूप माया से सर्वथा रहित है। माया तो मन है और जब मन को बटोर लिया जाता है, तब बंधन समाप्त हो जाता है। जीव तो अगोचर है। वह बाह्य चक्षु से नही दिखता; किन्तु ज्ञान से समझ में आता है कि मैं ही सबका द्रष्टा हूं। जब माना हुआ विषयसुख दुःखपूर्ण लगे, अहंकार तथा मन की उलझनो का त्याग हो और हृदय शांत हो, तब स्वस्वरूप के विषय में मनुष्य कुछ जान सकता है। सारे बंधन भूल से है, भूल में बुद्धि उल्टी होती ही है; फिर बुद्धि को सीधी किये बिना यथार्थ कैसे जाना जा सकता है ? जब मन पवित्र हो, पांचों विषयों से कुछ विरति हो, अच्छे आचरणो एवं सद्गुरु, सत-महात्मा पुरुषों में निष्ठा हो, तब मनुष्य अपने आप चेतन स्वरूप को शोध सकता है।

"विचार करो, जानी हुई सारी बातें एक ही समय स्मरण में नहीं आती, फिर कोई विरोध एवं वादविवाद कर सत्य न्याय को कैसे समझ सकता

२३. मुक्तिद्वार, स्वतंत्र जीव शतक, साखी ३-१६।

है ? मन क्रोधरहित शांत, निर्भय, निश्चित, निष्फिक्र एवं विषय-विरत हो, तब कहीं व्यक्ति सत्य स्वरूप को समझ सकता है[२४]।"

"अन्य इन्द्रियों के विषय अन्य इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते; जैसे नेत्र से शब्द एवं कान से रूप आदि; परन्तु सभी इन्द्रियों से सारे विषयो का ज्ञान जीव को होता है। अतएव जीव सभी इन्द्रियों पर स्वतन्त्र है। वही मान-मान कर क्रिया करता है और सबको जानता है; परन्तु जड़ पदार्थ उसे नही जान सकते। जिस पर सारा दारमदार है, व्यक्ति उस अपने स्वरूप को ही भूल गया है; इसलिए उसको अनन्त कष्ट है।

"मस्तिष्क और हृदय पंचविषय के कार्य हैं। भोग पदार्थ, सुख-दुःख मानकर भोगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न नही करते और न भोग, भोगों को भोगते ही हैं। दाल-भात को पीढ़ा-लोटा नहीं खाते। चेतन ही जड़ का उप-भोग करता है। विषय को विषय नहीं जानते; किन्तु सारे विषयों को चेतन जानता है। जीव ही सबको जानता-मानता है। यदि जीव न जाने-माने, तो जड़ पदार्थो की सारी महत्ता खोयी हुई है। रूप के अतिरिक्त अन्य चार विषयों—शब्द, स्पर्श, रस तथा गंध का किसने चित्र ग्रहण किया है ? फिर जो पांचों विषयों से पृथक है उस चेतन का चित्र लेना कैसे संभव है ? जो तत्वो के सम्मिश्रण से बनता है वह सब जड़ है; परन्तु जो सबका ज्ञाता, ध्याता ज्ञान स्वरूप चेतन है उसमे जड़ता का कोई लक्षण नही है। वह जड़ तत्वो एव उनके कार्यो को जानता है और उनसे पृथक रहता है। साक्षी, ज्ञाता, द्रष्टा कभी साक्ष्य, ज्ञेय एवं दृश्य नही हो सकता। जीव स्वतः चेतन है, जड़ से पृथक है। वह चाहे कही भी रहे, किसी में मिलकर वह एक रूप नही हो सकता। कपड़े को पहना हुआ व्यक्ति कपड़ा नहीं है, इसी प्रकार शरीर को धारण किया हुआ जीव शरीर नही है। यंत्र और यंत्र का चालक, घट और उसमें भरा हुआ जल, पथ और उसमें चलता हुआ पथिक, ग्राम-घर तथा उसमें रहने वाले व्यक्ति एवं पुस्तक और उसके लेखक पृथक-पृथक हैं, इसी प्रकार शरीर तथा शरीर का चालक चेतन जीव पृथक-पृथक है—इतना भी ज्ञान जिसको नही हो, उसको बुद्धिमान कहना वैसे लगता है जैसे कुए में भांग घोलकर सब लोग उसका जल पी लिये हो, और सबकी बुद्धि मारी गयी हो[२५]।"

"पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्व (महाभूत) हैं। इनमें धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल और आकार—ये छह भेद है। पृथ्वी का धर्म (स्वभाव)

२४. वही, साखी ६४-७२। २५. वही, साखी ८५-९९।

ठोस, जल का शीतल, अग्नि का गर्म एवं वायु का कोमल है। पृथ्वी का गुण (विषय) गंध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु के स्पर्श और शब्द हैं। चारों तत्वों के परमाणुओं में क्रिया है। पृथ्वी में धारणा एवं गुरुत्वा शक्ति है, जल में बांधने की शक्ति है, अग्नि में दाहक एवं वायु में तोड़ने-जोडने आदि की शक्ति है। चारों तत्वो में स्थूल-सूक्ष्म आकार हैं एवं चारो मे चारो मिले हैं। इन्हीं छह-छह भेदों के कारण तत्वों में कारण-कार्य भाव बना रहता है। वैज्ञानिकों द्वारा माने गये शताधिक तत्वों के ये ही चार समूह हैं जिन्हें वे ठोस, तरल, वायव्य तथा अतिवायव्य कहते हैं।

"उक्त चार या शताधिक तत्व-भेदों के स्वरूप जड़ हैं। चेतन जीव उक्त तत्वों से सर्वथा पृथक हैं। जैसे जल में उष्णता रहती है; परन्तु दिखाई पड़ता है वहां जल; परन्तु उष्ण पानी नही, आग है। इसी प्रकार देह में चेतना है; परन्तु दिखती है यह देह, परन्तु जीव देह नहीं है। जीव ज्ञाता है, ज्ञेय-जड़ नहीं। जीव का स्वरूप तो जड़ माया से पृथक है। वह भूल-भ्रम कर मनोमय में भटकता है। जीव का स्वरूप पारख (ज्ञान) है। जब वह अपने आप को सबसे पृथक परख लेता है, तब उसका भवजाल नष्ट हो जाता है। सामने संकल्प आने पर ही जीव जगत को देखता है। संकल्प न हो तो जीव से संसार का सम्बन्ध नहीं। ज्ञानी जब ज्ञान की कथा कहता है तब जैसे वह ज्ञानी रहता है, उसी प्रकार वह मौन होने पर भी ज्ञानी ही रहता है। इसी प्रकार जीव देह में रहे या विदेह, उसका स्वरूप ज्ञान है। देह में स्मरण वृत्तिपूर्वक रहता है तथा देहोपाधिरहित विदेह स्थिति में स्मरणरहित रहता है; परन्तु उसका स्वरूप वही रहता है—ज्ञान स्वरूप। जो जीव न कारण है और न कार्य; प्रत्युत स्वयं प्रत्यक्ष एवं सत्य है, वह बंधन या मोक्ष कही भी रहे, स्वयं सत्तायुत रहता है। जैसे पुरुष रागवश विवाह करके रहता है और वही वैराग्य होने पर स्त्री को छोड़कर अकेला हो जाता है, तो व्यक्ति वही रहता है। एक समय बंध है दूसरे समय मुक्त। इसी प्रकार जीव सदेह हो या विदेह वह अपनी सत्ता में रहता है। शरीर नाशवान है और जीव अविनाशी है। वह शरीर बंधन से मुक्त होकर अपने आप रहता है।

"यह जीव सब अनुमान की कल्पना करने वाला और जड़ तत्वो का प्रत्यक्ष करने वाला, उन अनुमित परोक्ष मान्यताओं एवं प्रत्यक्ष जड़ पदार्थों—दोनों से पृथक एकरस सत्य है। अमर जीव विदेह अवस्था में जड़ से पृथक एकरस निराधार (असंग) रहता है। उसमें देहोपाधि न होने से संशय एव मन का अभाव है। उस मुक्तिस्थिति में शक्ति अक्षय है[२६]।"

२६. वही, साखी १०७-१३१।

४. बन्धमोक्ष शतक

विशालदेव ने इस प्रकरण में अविनाशी जीवों के वासनावश जन्मांतरों में भटकने के संबंध में अनेक प्रबल युक्तियां दी हैं। और वासनाओं से छूट कर मुक्त होने में भी स्पष्ट निर्णय दिया है।

आवागमन, कर्म-फल-भोग, जीव का स्वरूप, वासना की उत्पत्ति, वृद्धि, संहार, वासना की शक्ति गमनागमन कराने में हेतु, कर्म होने तथा भोगने का मुख्य हेतु, अदृश्य प्रारब्ध भोग की प्रबलता, पूर्व जन्म-जन्मांतरों में जीवों के रहते हुए भी उनके न स्मरण रहने का भेद, वैराग्य तथा मोक्ष—इन महत्वपूर्ण प्रसंगो पर इस प्रकरण में काफी छानबीन की गयी है।

"हर समय जीव के सामने इन्द्रिय भोगो की आसक्ति एवं वासनाये रहती हैं। जीव अंतःकरण के संयुक्त मन में आसक्त हुआ उसको प्रेरणा देता रहता है। कर्मो की वासनायें जीव के अंतःकरण में इकट्ठी होती रहती हैं। जीव के साथ सूक्ष्म शरीर रहता है जो स्थूल शरीर के छूट जाने पर भी नही छूटता। उसी सूक्ष्म शरीर मे वासनाये रहती है जो जन्म-मरण के बीज हैं। वासना-वश जीव योनिज तथा अयोनिज खानियो मे जाता है। जीव स्वयं प्रत्यक्ष है; किन्तु वासना के वश भटकता है। जैसे बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज बनता है, वैसे वासना से देह तथा देह में कर्म करने से वासनाये बनती हैं[२७]।"

स्थूल शरीर से पृथक वासनाओं का एक अलग जगत है। स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं के बंद हो जाने के बाद भी उसी मे स्वप्न की क्रियाये संपादित होती है। जीव प्रकृति से पृथक है। वह प्राकृतिक वस्तुओं की वासना रख कर भटकता है; जब तक जगत की वासनाये सर्वथा समाप्त नही होती, तब तक जीव जन्म-मरण के प्रवाह से मुक्त नहीं होता।

अपने किये हुए कर्मो का फल सब जीवों को भोगना पड़ता है। पूर्व जन्मों के जो कर्म है वे अदृश्य प्रारब्ध के रूप में जीव के साथ रहते हैं और वे अचानक भोग देने के लिए उसके सामने प्रस्तुत हो जाते हैं। न चाहते हुए अनुकूल प्राणी-पदार्थो का वियोग हो जाता है और प्रतिकूल का संयोग हो जाता है और कभी अनुकूलता आ जाती है।

सब जीवो की देहे, रूप, स्वास्थ्य, बुद्धि, योग्यता की भिन्नता उनके भिन्न पूर्व कर्मो के स्पष्ट प्रमाण देते हैं।

२७. मुक्तिद्वार, बन्धमोक्ष शतक, साखी ३-८।

पूर्व जन्मों की याद इसलिए नहीं होती, क्योंकि पूर्व जन्म की देह ही आज नहीं है। जीव स्मरणों से ही दृश्य को देखता है और स्मरण परिवर्तनशील है, इसलिए पूर्व की बातें भूल जाती हैं। वर्तमान घटना या एक स्मरण के आधार में अन्य स्मरण उठते हैं। ये सब कोई आधार न होने से पूर्व जन्मो का स्मरण नहीं होता।

पूर्व जन्म की बातें छोड़ दीजिये, इसी जन्म के शिशुपन का स्मरण नहीं होता। बचपन की सारी बातें याद नहीं होतीं। कल इतने ही समय हम क्या सोचते थे, इसी का स्मरण नहीं होता।

वस्तुतः यह सारा जड़ दृश्य जीव से सर्वथा पृथक है; अतएव उसका भूल जाना स्वाभाविक है।

जीव प्रकृति से भिन्न चेतन है। उसको अपनी प्रतीति हरक्षण होती है। उसका मुख्य कर्तव्य है जड़ प्रकृति की वासना छोड़कर मुक्त हो जाना। उसको देहाभिमान, विलास, विषयवासना का त्यागना आवश्यक है।

कल्याणार्थी का कर्तव्य है कि वह इच्छाओं को जीते, कुसंग का त्याग करे, शरीर-निर्वाह आसक्ति रहित होकर ले, किसी के मिलने-बिछुड़ने में हर्ष-शोक न करे; पहले स्वस्वरूप को जाने, फिर बंधनों को परख कर छोड़े; कुवाक्य, कटु, अश्लील, असत्य वचनों का त्याग करे; वह काम विचार कर करे; शीत, उष्ण, भूख, प्यास का सहन करे; शरीर-निर्वाह में आवश्यक स्पर्श के अतिरिक्त उन स्पर्शों का त्याग करे जो केवल सुख मानकर किया जाता है; भोजन सात्विक एवं हल्का करे; वस्त्र, पात्रादि सादे, सरल, मध्यवर्ती रखे; विक्षेप-रहित जमीन एवं मकान में रहे।

सुनने, देखने, सूंघने, खाने, छूने की बिलकुल इच्छा न करे; केवल शरीर निर्वाह के लिए अनासक्ति पूर्वक सुने, देखे, सूघे, खाये एवं छूये। सुखासक्ति एवं विषयासक्ति की किंचित भी गंध जीवन में न रहने दे।

जीव अनादिकाल से बन्धनों में बंधा है। वह केवल हठ करके बंधनों से नहीं छूट सकता। विवेक एवं साधना-द्वारा जड़ासक्ति छोड़ने पर ही वह बंधनों से मुक्त होगा।

५. निवृत्ति साहस शतक

इस प्रकरण में विशालदेव ने बंधनों से छूटने के लिए साधकों में साहस का बल भरा है। उन्होंने बताया है कि चेतन जड़ से सर्वथा पृथक अविनाशी है। वह स्वरूप की भूल से विषयों की इच्छा कर भवबंधनों में बंधा है।

स्वरूपज्ञान प्राप्त कर जब वह विषयों की इच्छा से निवृत्त हो जायेगा, तब उसका भवबंधन कट जायेगा।

यदि मनुष्य वर्तमान को सुधार ले तो भूत और भविष्य सुधर जाते हैं। जो साधक वर्तमान में वासनाओं को क्षीण कर रहा है उसके हृदय की भूत की वासनायें क्षीण हो जाती हैं। वर्तमान सुधरा होने से और सारा भविष्य वर्तमान होते जाने से भविष्य भी सुधरता जाता है। वर्तमान सुधर जाने से भूत की वासनाये मिट जाती हैं और भविष्य के लिए वासनाओं का आकर्षण नहीं होता। इसलिए वर्तमान का सुधार ही भूत और भविष्य का सुधार है।

हम जिसे नेत्रों से नही देखते, कानों से नहीं सुनते, मुख से नही बोलते और जिसके विषय में सुख की निश्चयता भी छोड़ देते हैं—इन चारो के छोड़ देने पर उसके विषय में हमारी वासनाये क्षीण हो जाती हैं। जिसमे हमारा प्रेम, निश्चयता और कर्तव्य होगा, वही कार्य सिद्ध होगा। अतएव यह सब आत्मकल्याण की ओर हो जाने से भवबंधन कट जाते हैं। मनुष्य माने हुए किंचित विषय-सुख की प्राप्ति के लिए कितना घोर कष्ट सह लेता है, फिर भी वह विषय-सुख छूट जाता है और मुक्ति तो उसी प्रकार प्रत्यक्ष, सरल एवं सहज है जिस प्रकार हाथ का गेंद। केवल बंधनो को समझ लेने की देरी है। मुक्ति एकरस और अचल है। विषय-सुख पाने के लिए मनुष्य क्या-क्या नहीं करता। जिसे मोक्ष का निश्चय है वह उसके पथ के कंटको को नही डरेगा। वह शरीर निर्वाह-कार्य से भी अधिक श्रेय मोक्षकार्य को देगा और विवेकी महात्मा की शरण लेकर साधना में डट जायेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि वर्तमान में बोध-वैराग्य की स्थिति हो जाने पर भी पूर्व तथा वर्तमान जन्म के भूलदशा मे किये गये शुभाशुभ रूप संचित कर्म जीव को नाना योनियों में भटकायेंगे। विशालदेव कहते है यह बात सही नही है। क्योंकि वर्तमान के अज्ञानयुत क्रियमाण कर्म के आधार पर ही भूत के संचित कर्म फल देने में समर्थ हैं। जब व्यक्ति वर्तमान मे बोध-वैराग्य की अखण्ड धारणा में ठहर जाता है, तब संचित कर्म शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाते हैं।

दूषित क्रियाये और विषयासक्ति जितनी मिटती जाती हैं, उतना ही पूर्व के संचित कर्म भी क्षीण होते जाते हैं। जब विषयासक्ति सर्वथा मिट जाती है, तब जीव बंधनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो दीर्घकाल से वैराग्य-साधना में एकरस लगा है उसकी उत्तरोत्तर देहासक्ति क्षीण होकर वह मुक्त होता जाता है। जिसका मोक्ष ध्येय अडिग है, उसके वैराग्य का पुरुषार्थ एकरस चलता है।

जीव के बन्धन तीन कर्म हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। वर्तमान में अज्ञानयुक्त जो पाप-पुण्य कर्म होते हैं वे क्रियमाण कर्म हैं, पूर्वजन्मों या इस जन्म के भूलदशा के पाप-पुण्य कर्म संचित कर्म हैं और सुख-दुःख भोग के लिए प्रस्तुत शरीर प्रारब्ध कर्म है। क्रियमाण ही संचित और प्रारब्ध होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि जीव पूर्व संचित (संस्कार) के अनुसार ही क्रियमाण कर्म करता है। यदि उसके मन में पाप के संस्कार है तो वह पाप करता है, पुण्य के संस्कार है तो पुण्य करता है। विशालदेव कहते है बिलकुल यह मानना ठीक नही। यदि ऐसा हो तो जीव के साथ पाप या पुण्य एक ही प्रकार का कर्म होना चाहिए। पुण्य संचित, तद्नुसार पुण्य कर्म तथा उसी प्रकार पुनः पुण्य ही संचित और क्रियमाण; परन्तु ऐसा नही देखा जाता। एक ही जीव के साथ पाप-पुण्य के विविध संस्कार एव कर्म रहते हैं। अतएव मनुष्य स्वतंत्र है। वह बुरे संचित संस्कारो को दबा कर भला क्रियमाण (कर्म) कर सकता है तथा भले संस्कारो को दबा कर बुरे कर्म कर सकता है। मनुष्य संगत और समझ बदलने तथा तद्नुसार कर्म करने में स्वतंत्र है। अतएव अच्छी संगत-समझ अपनाकर वह अच्छा बन सकता है चाहे वह पहले कितना ही पापी रहा हो। जीव ही तो कर्मो का निर्माता है, अतः वह कर्मो को उखाड़ फेंकने में भी समर्थ है।

जो लोग साधु-भक्त के वेष तथा परमार्थ मार्ग में आकर भी कल्याण के हेतुभूत सत्संग के लाभ से वंचित रहते हैं, उसका कारण विशालदेव बतलाते हैं—"वे अपने मन की प्रतिकूलता नही सह पाते, दूसरे की ईर्ष्या और तिरस्कार करते हैं। वे परमार्थ की आड़ में भोग-मान की इच्छा रखते हैं। अपने में त्रुटि न देखने वाले अहंकार के वश बेहोश रहते हैं। वे सत्संग की बात सुन-कर प्रसन्न नहीं होते। भोग की इच्छा, अपने दोषो को न देखना और दूसरे में थोड़ा भी दोष देखकर आग बरसने लगना। अपनी बुद्धि के मदवश या देह के दुर्स्वभाववश सत्संग में छिपाव-दुराव रखना। हिताहित पर विचार न कर सबको जीतने में आनन्द मानना। दूसरे का मान भंग करके अहंता मे फूलते रहना। संकोच, क्षमा, निर्विवादिता छोड़ देना, केवल सम्मान का भूखा रहकर स्वकर्तव्य से वंचित रहना, साधुनीति छोड़कर मन का भटकते रहना। स्वरूप-बोध, वैराग्य और साधना के विना केवल वाक्यज्ञान के मद से मन जीता नहीं जा सकता। जो सद्ग्रंथो को तिलांजलि दे देता है, महात्माओं मे उपासना नहीं रखता, सबका अभाव कर स्वरूपस्थिति में ठहरना नहीं जानता। जो भीड़-भड़क्का में हरक्षण रहते हुए अपनी स्थिति मानता है और चाहे जैसे रहकर

अपने को निर्बन्ध समझता है। दूसरे को रिझाने के चक्कर में स्वयं जगत का गुलाम बना भटकता है। इस प्रकार जो भोग-प्रतिष्ठा में बंधा है, ऐसे व्यक्ति की जब कामना भंग होती है तब उसे अगम अपार दुःख होते हैं। वह भले ही वाणी बोलने में धाराप्रवाह हो; परन्तु वह अपने शरीर और मन के समुद्र में पड़ा डूबता रहता है। वह लड़ने-भिड़ने की प्रवृत्ति लेकर अपना मान बढ़ाने के पक्ष में पड़ा है और राग-द्वेष से पीड़ित मेढक के समान व्यर्थ बकवाद करता है। जिसके मन में यह भावना है कि मैं सारे विश्व पर विजयी हो जाऊं, वह शांति कहां पा सकता है? उपर्युक्त दुर्गुणों को पास में रखकर कोई सत्संग का लाभ नहीं पा सकता, अतएव इनका सर्वथा परित्याग कर सत्संग-साधना का लाभ लेना चाहिए[२८]।"

विशालदेव कहते हैं कि जो जिस प्रकार ध्यान देता है सत्संग से समझ बढ़ती है, हानि-लाभ का ज्ञान होता और जीवन का लक्ष्य मिलता है। शांति, सुबुद्धि, समता, तृष्णा-क्षय, संतोष आदि शुभगुण सत्संग से मिलते हैं। सत्सग पाकर जो व्यक्ति जितना पुरुषार्थ करेगा, वह उतना निर्दोष होता जायगा। मनुष्य स्वभाव से ही दुःख नही चाहता, वह सत्संग पाकर जब बन्धनों की दुःखरूपता समझ लेगा, तब वह उन्हें तोड़ने में देरी नहीं करेगा।

मनुष्य अपने निश्चय के अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र है। राजा के अधिकार में प्रजा, पिता के अधिकार में पुत्र, पति के अधिकार में पत्नी प्रायः रहते हैं; परन्तु उनकी जो निश्चयता होती है वह करते रहते हैं। यहां तक जेल में पड़ा हुआ व्यक्ति भी इससे छूटने के लिए रात-दिन सोचता रहता है। अतएव बन्धनों को तोड़ने के लिए जिसे पक्का निश्चय हो जायगा वह उसे तोड़ डालेगा चाहे जितने विघ्न हो। सभी शास्त्रो में समस्त शुभकर्मो का फल विवेकयुक्त मानव शरीर की प्राप्ति बताया गया है और उसे आज पाकर भी क्यो न बन्धनों को तोड़कर मोक्ष लिया जाय।

विशालदेव कहते हैं कि मनुष्य में सदैव सावधान रहने की शक्ति होने से वह कर्म-बन्धनों का सर्वथा परित्याग कर मुक्त हो सकता है। मनुष्य दीर्घकाल तक जो काम एक निष्ठा से करता है, जागृत मे उसी का हरक्षण मनन रहता है, स्वप्न में उसी के संस्कार रहते हैं और सुषुप्ति में उन्हीं वासनाओ का बीज रहता है। इसी प्रकार जो दीर्घकाल से बोध, वैराग्य और स्वरूपस्थिति की साधना एक निष्ठा से करता है उसको उसी का स्मरण, स्वप्न तथा सुषुप्ति में

२८. मुक्तिद्वार, निवृत्ति साहस शतक, साखी ४६-५८।

लयता रहती है । साधक को कायर नही होना चाहिए । उसे शूरवीर की भांति राग का विध्वंस कर मोक्ष प्राप्त करना चाहिए ।

जिस वैराग्य के स्मरण, ध्येय, ध्यान, चर्चा, धारणा—सबमें शांति-ही-शांति है, उसको छोड़ कर साधक क्यों दुःखपूर्ण विषयों में भटके ? वस्तुतः मन के अविवेक मे पड़े हुए लोग ही भटकते हैं.।

असली प्रेम का लक्षण है कि प्रिय के अतिरिक्त कुछ अच्छा न लगे। जैसे लोभी को धन, कामी को कामिनी तथा मोही को पुत्र-मित्रादि अच्छे लगते हैं और इनका कभी वियोग हो जाय तो उन्हे प्राणपीड़ा जैसी लग जाती है। इसी प्रकार जिनको वैराग्य और स्वरूपस्थिति प्रिय है, उन्हे उनके अतिरिक्त कुछ अच्छा नही लगता । वे शरीर के प्रेमियों का मोह छोड़ देते है, संसार के समस्त भोगों से अचाह हो जाते है । वे शरीर का अभिमान छोड़कर स्वरूप-स्थिति राज्य में विहरते हैं ।

विशालदेव कहते हैं "हे स्थितिवान ! हम सब मित्रों से मिले, उन्हे देखे, उनसे बाते करें, उन्हें अपनी बातें बतायें तथा उनकी बातें जाने—इनमे अपना क्या हानि-लाभ है, जो इनके लिए परेशानी उठायी जाय ? अरे, प्रकाश, रूप, स्पर्श, रस, शब्द और गंध—ये पांचो विषय अविनाशी चेतन के लिए निष्प्रयोजन हैं । देहोपाधि में मन-इन्द्रिय संघात से इन विषयो को जान-जान तथा भोग-भोग कर ही उपद्रव है और हर्ष-शोक का उद्वेग है । यदि इन्हें न ज़ाना जाय, तो जीव अपने स्वरूपस्थिति धाम में विश्राम पा जाय । जहां तक प्राणी है, उनसे मिलने में तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है । प्राणियो से मिलने पर सावधान न रहे तो उनसे राग होगा या द्वेष; अतएव असंगताही अच्छी है । भौतिक शरीर, इन्द्रिय और संकल्पों में राग करने से इच्छायें बाहर की ओर चलती है और यह सब प्रपंच व्यक्ति के कल्पित हैं और यह बिना प्रयोजन दुःखो को निमंत्रित करना है । यहां पारख (ज्ञान) की अविचल समाधि लगी है जो देहाभिमान से पृथक स्वरूपज्ञान की स्थिति है । अब देह कुछ दिन बनी रहे या अभी मिट जाय, समान दृष्टि रखकर मै कृतार्थ हूं । हे साधक ! यही रहनी तुम भी अपनाओ, यही सर्वोच्च स्थिति है । इसके अतिरिक्त कुछ अच्छा नहीं है, क्योंकि सब छूटने वाले हैं । सबसे उत्तम अपनी स्वरूपस्थिति है, जिसमे पहुंचने पर अन्य सब तुच्छ एवं त्याज्य हो जाते है । जब से मान्यताओं का जाल टूट गया तब से अब तो मन में कोई बंधन नही रह गया । गुरूपदेश रूपी उनकी कृपा और अपनी बोध-शक्ति से मै अपने आप स्थित हो गया और मन का राग बंधन टूट गया । जिस अनन्त शांति के लिए हम अनादिकाल से सब कुछ करके

हार गये थे और जो नहीं मिली थी, वह आज मिल गयी। अब तो कुछ भी कामना शेष नहीं है, केवल स्वतः पारख स्वरूप की स्थिति है[२९]।"

६. शांतिशतक

निवृत्ति साहस शतक के विषयों के क्रम में ही शांतिशतक कहा गया है, प्रत्युत शांतिशतक में विषय और गहन गंभीर होते गये हैं।

विशालदेव कहते हैं कि अबोध और राग से मन में कर्म उत्पन्न होते हैं और बोध तथा वैराग्य से कर्मों का नाश होता है और जीव शुद्ध मुक्त हो जाता है। व्यक्ति अपने से पृथक राग कर दुःखी है। जब वह पृथक की वासना छोड़ देता है, मुक्त हो जाता है। भक्ति, बोध, वैराग्य का अभ्यास जीवनपर्यन्त बने रहने से कभी बन्धन नहीं ठहरते। जीवन निर्वाह में जितने प्राणी-पदार्थ मिले, सबका अहंकार छोड़कर विवेकपूर्वक वर्तमान करे।

इच्छा ही जीव को बांधती है। जो इच्छा को छोड़ देता है वह बंधनो को जीत लेता है। इच्छा छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं है। जब व्यक्ति अपनी प्रिय पत्नी को जान लेता है कि यह भ्रष्ट हो गयी है और यह मेरी जान ले

२९. जानि जनाय देखे सुने, सब मित्रन दिल हाल।
हानि लाभ इसमें कहाँ, जो तेहि हेतु बेहाल॥
प्रकाश रूप स्पर्श रस, शब्द गंध बेकाम।
हर्ष शोक जाने खटक, बिन जाने निज धाम॥
हेतु न मिलने में कोई, जहँ तक जग का साथ।
प्राणी मात्रन के मिलत, राग द्वेष दुख हाथ॥
तन मन इन्द्रिन प्रेम से, चाह होत बहिरंग।
सो सब कल्पित जीव के, बिना हेतु ही तंग॥
पारख अटल समाधि है, देह भिन्न सब काल।
देह रहे या न रहे, यकसम जानि निहाल॥
सोई रहस्य अपनाइये, और कहूं नहिं नीक।
सबसे आपै नीक है, जहाँ रहे सब फीक॥
अब तो सनमुख कुछ नहीं, जब से मानव छूट।
गुरु कृपा निज बोध बल, ठहरि आप मन टूट॥
जेहि हित सब कुछ करि थके, सो सब पाया आज।
अब तो बाकी कुछ नहीं, पारख स्वतः विराज॥
(मुक्तिद्वार, निवृत्ति सा० श० साखी १३१-१३८)

लेगी, तब वह उसको या तो मार डालता है या सर्वथा त्याग देता है। अपने प्राण का घातक समझकर मनुष्य धन को भी छोड देता है। इसी प्रकार विषयों की इच्छाओं को जिस दिन वह दुःखप्रद समझ लेगा, उसे छोड़ देगा। मुक्ति ऐसी वस्तु है जो अन्य सब कुछ की वासना छोड़ देने पर ही मिलती है। हां, देह रहे तक निर्वाह की आवश्यकता है; परन्तु बोधवान उसको भी इच्छारहित होकर ही लेते हैं।

उल्टी समझ से मनुष्य बंधता तथा सीधी समझ से छूटता है। धर्म, भक्ति, सत्संग करने से बुद्धि शुद्ध होती है। शुद्ध बुद्धि बिना सतपथ पर चलना असंभव है। शुद्ध बुद्धि वाला अपने हृदय को देखता है कि मै स्ववश हूं या मनेन्द्रियों के अधीन ? वह पराधीनता को मृत्यु से बढ़कर दुःखप्रद समझ कर स्ववश होने के लिए प्रयत्न करता है।

लोग भूलदशा में यज्ञ, तप, तीर्थादि या चोरी, हिंसा, व्यभिचारादि शुभाशुभ कर्म करते हैं; परन्तु जब उनको स्वरूपज्ञान हो जाता है और वे सत्संग, सद्ग्रंथ-अध्ययन तथा सद्साधना में दीर्घकाल व्यतीत करते हुए वर्तमान करते हैं, तब धीरे-धीरे उनकी पूर्व की दोनो वासनाये मिटकर वे स्वरूपस्थिति को पा जाते हैं। दृढ़ बोध-वैराग्य के ठहराव से कर्मबंधन दग्ध हो जाते हैं।

जिनकी अहंता-ममता का जाल टूट गया है, वे मुक्त ही हैं। राग की अंधियारी ही अबोध है और उसका त्याग ही सबेरा होना—मोक्ष है। वासना-बीज को नष्ट करने के लिए ज्ञान तथा रहनी दोनों की आवश्यकता है। भोग-रहित रहकर जीवनपर्यन्त साधना में रहना चाहिए; क्योकि जब तक देह है तब तक बंधनों का कारण है; अतएव शरीरान्त तक सावधानी की आवश्यकता है।

मनुष्य में अमित शक्ति है। उसमें परख की महान शक्ति है! जब वह अपने को परख लेगा तब बन्धनो को नष्ट करने मे वह विलम्ब न करेगा। यह मनुष्य जी-जान से जहां लगता है सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। यह जब अपने कल्याण के लिए लग जायगा, उसे करके ही छोड़ेगा। मनुष्य में साहस, सावधानी और बन्धनों को नष्ट करने की प्रबल क्षमता है। जब यह मोक्ष का लाभ समझ लेगा तब अन्य विघ्नों को तृणवत हटाकर मोक्ष ले लेगा।

मान्यता अर्थात अहंता-ममता ही बंधन है। जब बोधपूर्वक व्यक्ति साधना में लगता है और जब उसकी सारी अभिलाषाये समाप्त हो जाती हैं और वह चेष्टा-रहित हो जाता है तब मुक्त हो जाता है। चेष्टाएं भी दो

प्रकार की होती हैं, एक मनभोग की, दूसरी तनभोग की। मैथुन, नशा, विषय-विलास आदि मनभोग हैं तथा खाना-पीना, सोना-जागना, चलना-फिरना आदि तनभोग हैं। बोधवान मनभोग का सर्वथा परित्याग कर केवल तनभोग अर्थात जीवन-निर्वाह लेते हैं। वह भी आसक्तिरहित होकर। अतएव शरीर निर्वाह की चेष्टा वस्तुतः चेष्टा नहीं है। जैसे बीज को आग में सेंक देने पर वह उगता नही, इसी प्रकार ज्ञान-वैराग्य युक्त निर्वाह लेने से आसक्ति बंधन बनता नहीं। बोधवान अपने को पथिकवत समझकर सर्वत्र अनासक्त होकर व्यवहार करते हैं। वे पथ में मोहते नही। भूला व्यक्ति तो अपने शरीर, इंद्रिय, बाहरी पदार्थ, प्राणी आदि को देख-देख कर रीझता रहता है। वह यह नही समझ पाता कि मैं इन सबसे पृथक हूं; परन्तु बोधवान सबके द्रष्टा रहकर सबसे अनासक्त रहते हैं!

सद्गुरु विशाल साहेब स्मरणो का द्रष्टा बनकर पारख-समाधि मे स्थित होने पर अधिक बल देते है। उन्होने इस प्रकरण के अन्त में बताया है—

"कौन मनुष्य होगा जो स्मरणो को मिटाये बिना आपत्ति-रहित होकर सुखी होगा? अतएव दुःखों से मुक्त होने के लिए स्मरणो को शांत करना आवश्यक है और यह काम करने के लिए मनुष्य मात्र स्ववश है, फिर साधक साधु का तो यही मुख्य काम है। जिस मनःशक्ति से हम इन्द्रियो को बटोरते और फैलाते हैं, उसी से हम स्मरणो को भी रोक सकते है; क्योकि हम स्मरणों से पृथक है। यह जीव स्वय भूलवश विषयो एवं दृश्य प्रपचो मे आकर्षित होकर नाना स्मरण उठाता है। जब वह आकर्षित नहीं होता तब स्मरण शांत हो जाते हैं। कदाचित स्मरण आये तो उसका अभाव हो जाता है। स्मरण की जितनी क्रियाये है सब जड़ हैं; अर्थात देहोपाधिजनित है। जीव एक स्मरण को छोड़ता और दूसरे को लेता है। साधक को चाहिए कि वह अपने परखबल के द्वारा सभी स्मरणो से अपने आप को पृथक ज्ञानस्वरूप एवं अकेला समझे। अर्थात चलवृत्ति छोड़कर स्थिरवृत्ति अपनाये और अन्ततः स्थिरवृत्ति का भी द्रष्टा बनकर अपने को सबसे असग समझे।

"जैसे स्मरण रुकते है वैसे साधक को शांति मिलती है और जब कुछ स्मरण होने लगता, तब चंचलता आ जाती है। स्मरणो को देखने की जितनी सावधानी रहेगी, स्मरण शांत रहेगे। सावधानी हटी और स्मरणो की दुर्घटना हुई। अतएव एकांत में स्थिर आसन से बैठकर सावधानी से मन का द्रष्टा बने। यह दशा बड़ी सूक्ष्म है। इसे जल्दीबाजी करके कोई नहीं समझ सकता।

इसको वे बोधवान पुरुष धैर्यपूर्वक समझते हैं जिन्हें देह-बंधन और संसार के दुःखों का ज्ञान है। जन्म, रोग, बुढ़ापा, विपत्ति, मरणादि समस्त दुःखो का कारण विषयासक्ति है—इस बात को समझ पाना बड़ा कठिन है। संसार की सारी बातें सरल हैं; परन्तु विषयासक्ति को दावानल के समान दुःखपूर्ण समझना बड़ा कठिन है। देहासक्ति एवं देहाभिमान में दोष समझे बिना स्वरूप-स्थिति की बात कैसे प्रिय लगेगी? शव में आसक्त व्यक्ति शिव कैसे बने? सात्विक बुद्धि बिना कोई धीर-गंभीर विचार नहीं पा सकता। अतएव कल्याण की पूरी रहनी लेकर चलने से ही यह धर्म मार्ग का अंतिमी फल—स्वरूप-स्थिति मिल सकती है।

"साधक को चाहिए कि वह एकान्त में स्थिर आसन से बैठ जाय और यह निश्चय कर बैठे कि मैं इस समय केवल संकल्पों को देखूगा। इस समय सारी चिन्तायें छोड़कर केवल मन को देखे कि वह क्या कर रहा है। जब तक स्मरणों को देखने की सावधानी रहेगी; स्मरण शांत रहेगे और जब सावधानी हटेगी तब स्मरण चलने लगेगे। साधक को चाहिए कि मन के भुलावे को छोड़-छोड़ कर देखने की सावधानी करे। यही अपना कर्तव्य है ऐसा समझकर घबराये नही। साधना के आरम्भ-काल से मन को देखने की यह दशा अर्थात 'द्रष्टा-अभ्यास' शीघ्र-शीघ्र छूट जाया करेगा और मन का भुलावा आकर कुछ-न-कुछ स्मरण होने लगेगा; परन्तु अभ्यास करते जाने पर कुछ दिनों के पीछे विलम्ब तक मन को देखने की दशा बनी रहेगी और यह 'द्रष्टा-अभ्यास' परिपक्व हो जाने से इसमें पूरी स्ववशता हो जायेगी और आप जब चाहेंगे मन को देखने लगेंगे और उसे शांत पायेगे। सिद्ध पुरुष जब चाहता है संकल्पों को शांत कर निर्विकल्प दशा मे स्थिर हो जाता है।

"स्मरणों को देखते समय उसमें लीन न हो—यह सावधानी बरतनी चाहिए। अपनी चेतन-सत्ता को स्मरणों में न लगाकर अपनी ओर लौटाता रहे। इस प्रकार स्मरण जब जीव की सत्ता नही पाते, तब शांत हो जाते हैं। जितना ही संकल्प के तागे टूटेंगे उतना ही साधक स्ववश होगा और उतना ही आगे मन की चाल परखने और जीतने में आयेगी। मन को जीतकर साधक अपने आप स्थित हो जाता है और उसका जगत-बंधन कट जाता है। साधक को चाहिए कि समय निकालकर उपर्युक्त अभ्यास प्रतिदिन करे। फिर उसके सारे दुःखों का शमन हो जायेगा और वह अचल स्वरूपस्थिति मे ठहर जायेगा।

"ऐसे स्थितिवान को न तो किसी से मिलने की इच्छा रहती है और न छूटने की चिंता। वे धन, प्राणी और शरीर-निर्वाह के व्यवहारों में—कहीं भी

आसक्त नहीं होते। वे शरीर-निर्वाह और शरीरांत की यात्रा के सम्बन्ध में निःसंशय बोधयुक्त होते हैं। हाथी के गले माला की कब टूट कर गिरी इसका उसे पता नहीं चलता, इसी प्रकार शरीरयात्रा सहित शरीरांत तक के लिए बोधवान निश्चित होते हैं। वे तो समस्त संदेहो से रहित अपने निराधार असंग स्वरूप में ही निरन्तर रमण करते हैं। वे शरीर-निर्वाह की वस्तुओं को चाहते हैं अवश्य, परन्तु बिना चाह के। उसके लिए वे न दीन होते हैं न उनमे आसक्त होते हैं। वे अनासक्ति-पूर्वक संयमित निर्वाह लेते हुए स्वरूपबोध मे विचरते हैं[३०]।"

"उक्त पारखस्थिति एवं स्वरूपस्थिति के मिलने पर व्यक्ति दीनता से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। अतएव सारी कामना छोड़कर अपने आप में स्थित होना चाहिए। यही सब कर्तव्यों का कर्तव्य है, सब जपों का जप है, सब ज्ञानों का ज्ञान है, क्योकि यहां पहुंच कर सारे संतापों की समाप्ति है। यह स्वरूपविचार ही सब वेदों का वेद तथा सब शास्त्रो का शास्त्र है। जीव ही की तो सब रचना है। जहां जीव को अपने स्वरूप का बोध न मिले वहां सब अवेद और अशास्त्र है। चेतन जीव के बिना कोई मत, पथ, ग्रंथ का निर्माण नहीं हुआ है। यह जीव ही नाना मत, पथ, ग्रंथ खड़ा करता है। यदि मनुष्य देह न हो और वह मुख से न बोले तो वेद आदि समस्त वाणियां कैसे अस्तित्व में आयें। जीव को छोड़कर कही अन्य कल्पना करने वाला नहीं है। सबका कल्पक मनुष्य जीव ही है। सारे जड़ दृश्यों को छोड़कर अपने आप में ठहरना ही सब रहनी की रहनी है, यह स्वरूपस्थिति ही सब धामों से बढ़कर परम-धाम है। अतएव जिससे स्वरूपज्ञान तथा स्वरूपस्थिति की प्राप्ति हो, वही साधन और कर्तव्य सर्वोच्च है[३१]।"

७. शब्द विभाग

मुक्तिद्वार ग्रंथ का अंतिम प्रकरण 'शब्द विभाग' है। इसमें प्रायः शब्दो का संग्रह है। इस प्रकरण के आरम्भ में विशालदेव ने उपदेश दिया है "हे मनुष्यो! निष्काम संत पुरुषों के पास जाओ। मन को इधर-उधर न भटका कर उसमें भक्ति भाव को स्थान दो। संतो को अपना परम हितकारी मानकर उनकी सेवा करो और अन्तःकरण शुद्ध करो। देहाभिमान छोड़कर जीव का कल्याण करो। अमीरी, श्रेष्ठता तथा बड़प्पन का अहंकार छोड़कर निष्काम

३०. मुक्तिद्वार, शांतिशतक, साखी १०२-११८।
३१. मुक्तिद्वार, शांतिशतक, साखी ११९-१२४।

महात्मा पुरुष के मन के अनुसार चलो। उनका मन बन जाओ। उनके विविध निर्णय सुनकर मन को संदेह रहित बनाओ। हठता, कुतर्क और मन की चाल को छोड़कर अपनी कल्याण-साधना करो। सर्वत्र सद्गुण ग्रहण करते हुए दुर्गुणों का त्याग करो और मन के हानि-लाभ की चिन्ता छोड़कर संत-समागम करते हुए अपना कल्याण करो[३२]।"

विशालदेव प्रमादी साधको को फटकारते हुए कहते हैं—',अरे! तू दुनिया की वाहवाही की भूलभुलैया मे पड़ गया है। तू सबसे यही तो चाहता है कि तुमसे लोग बड़ा निर्छल प्रेम करें। वे निर्मान रहे और तुम्हे सम्मान दे और वे खूब परिश्रम पूर्वक तुम्हारी हरक्षण सेवा करते रहे। तुम्हे अपने तन, मन, धन अर्पित कर दें और वे उसमें जरा भी दुःख न माने और कभी सुख-सुविधा न चाहें। तू जैसे चाहे वे प्रेमी वैसे ही बर्ताव करे, कभी तुम्हारी मनसा के विरुद्ध न जाये। वे प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें अपने हृदय में बसाये रहे और दूसरे को किंचित भी न चाहे।

"हे पागल! उपर्युक्त कामनाओं को लेकर तू दर-दर का भिक्षु बना है और इसके लिए सब कर्तव्य करने के लिए तू सदैव तैयार रहता है। यदि तेरे उपर्युक्त कामनानुसार कोई व्यक्ति तुम्हे मिल जाये, तो तू निश्चय ही उसके हाथों बिक जायेगा और तुम्हें अपने आप का होश-हवास न रहेगा। नादान! ध्यान रख, अंततः तेरा कोई काम न देगा; प्रत्युत उलट कर तेरे को सारा दुःख-द्वन्द्व सहना पड़ेगा। तू जिसके लिए सब कुछ का त्यागकर साधनापथ में उतरा था उस दुःख-निवृत्ति एव कल्याण का रास्ता भूल कर भटक गया है[३३]।"

संसार के सभी महापुरुष समय-समय पर संसार से खीज कर अपने आप की ओर मुड़े हैं। विशालदेव भी लोगों से खीज कर अपने आप को संबोधित करते हुए कहते हैं—

"हे विशाल! कोई कैसा भी आचरण करे तुमसे क्या प्रयोजन है? चाहे कोई अच्छा आचरण कर अपने आप को बना ले या बुरा आचरण कर अपने आप को बिगाड़ ले और तुम्हारे लिए कोई प्रेम करे या वैर करे—तू इन सब बातों की चिंता छोड़ दे। तू अपना मार्ग पकड़ और अपने स्वरूपज्ञान में अविचल भाव से स्थित रह। आंधी-तूफान चलने पर भी पृथ्वी उसे सहन कर अडिग रहती है। तुम भी वैसे बन जाओ। बाहरी प्राणी-पदार्थों के उपद्रव या

३२. मुक्तिद्वार, शब्द विभाग, शब्द १। ३३. वही, शब्द २।

भीतरी मन के उपद्रव आयें तो उन्हें हटा दो। अपने हृदय-द्वार पर विवेक-वैराग्य पहरुये रखो और उनसे कह दो कि वे किसी को भी हृदय में घुसने न दें। कोई प्राणी या मन के संकल्प धन, सम्मान, मंदिर, प्रचार आदि का लोभ देकर तुम्हारे हृदय में घुसना चाहे तो उनसे इच्छारहित होकर मचल जाओ कि हमें कुछ नही चाहिए।

"अरे! तू स्वयं पूर्ण है, फिर बाहरी तुच्छ अपूर्ण वस्तुओं को बटोर कर क्यों पूर्णता पाने की कल्पना करता है? अतः इस बोध का स्मरण रख, फिर तेरे हृदय में गलत कल्पनायें नहीं भरेंगी।

"तू तीनों कालो में हानि से रहित है। तेरी कभी कोई हानि हो ही नही सकती। कल्पना उठा-उठा कर तू व्यर्थ ही हानि की अनुभूति में फंस गया है। तू दुनिया के जालों में फंसा हुआ लाभ खोज रहा है। तेरी कभी हानि ही नही, तो हानि को क्यों डर रहा है? वस्तुतः तेरी हानि तो तभी होती है जब तू अपने आप को भोगों, जगत प्रपंचो एवं कल्पनाओ में अर्पित कर देता है; परन्तु तू इस अपनी मूढ़ता पर कभी विचार ही नही करता।

"जो अनमिल है, तुमसे नही मिलने वाला विजाति, जड दृश्य पंचविषय है, उसे अनमिल (दूर) ही रखो। देखो अन्याय का बर्ताव छोड़ दो। जो तुम्हारा नहीं है उस पर तुम अपना अधिकार मानते हो यही अन्याय का बर्ताव है और विवेक करके देखो, अपने माने हुए शरीर से लेकर धन, प्राणी, मठ, मंदिर, समाज, मान, प्रतिष्ठा यावत दृश्यमान पंच विषय हैं—कुछ भी तुम्हारा नही है और उन्हें तुम अपना मानकर आसक्त होते हो। यह अन्याय का बर्ताव है, इसे सर्वथा छोड़ दो।

"स्वरूपस्थिति रूपी परमपद जो नित्य प्राप्त है, उसी में रमण करो, भोगों के लिए उठ-उठ कर दौड़ना छोड़ दो। सारी चिन्ताओं को छोड दो; परन्तु निश्चितता न छूटने पावे, इसके लिए सतत सावधान रहो। हे विशालदास! अपना मंगल चाहो तो अमंगल रूपी सारी क्षणभगुर वस्तुओ की ममता छोड़ दो और जिस प्रकार अपना सकुशल अविनाशी स्वरूप धाम है उसी प्रकार निष्काम होकर उसमें स्थित होओ, फिर तो इस दास का सद्गुरु के घर—मोक्ष में विश्राम है[२४]।"

आगे विशालदेव ने मन पर काफी कहा है। यह मन सबका राजा बन बैठा है। लोग भूलवश मन के दास बन गये। जो मन के चक्कर में आराम-

२४. वही, शब्द ३।

तलबी, विद्या-प्रमाद एवं विषयासक्ति में पड़ते है, उनको मन खूब रुलाता है। मनुष्य अज्ञानवश ही मन के भुलावे में पड़ता है और इससे उसका पतन होता है। हां, जो मन को जीत लेता है वह सर्वोच्च एवं सच्चा सुखी हो जाता है।

आगे विशालदेव कहते हैं कि यहां सब कुछ छूटने वाला है। जिन प्राणियो में ममता कर तुम उनके लिए अन्याय करते हो, वे ही तुम्हारी पीड़ा के कारण बनेंगे। अंत में तुम्हारे साथ क्या जायेगा ? परिवार, मित्र, धन, घर, जमीन, मंदिर, वस्त्र, वाहन, शासन, मान-प्रतिष्ठा एवं तुम्हारी मानी हुई देह तक एक दिन छूट जायेगी। अतएव सारा प्रमाद छोड़कर भजन करो।

विशालदेव हमें बतलाते हैं कि जीव का किसी से भी नाता नहीं है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि, वेद, शास्त्र, मत, पन्थ, ग्रन्थ, गुरु, शिष्य आदि किसी से भी जीव का मुख्य नाता नहीं है। बस, दुःखो से छूटने का ही उसका नाता है। यह दुःख निवृत्ति का काम जिस प्रकार बन जाय, वही सम्बन्ध, शास्त्र, संगत आदि का थोड़े समय के लिए नाता है।

आगे उन्होंने कामवासना निवृत्ति पर जोर दिया है और जीव को जड़ तत्वों से पृथक बताने का प्रयास किया है।

तीसरा ग्रन्थ : सत्यनिष्ठा

सत्यनिष्ठा में विविध शिक्षा, गुरुनिर्णय तथा शब्द विभाग—ये तीन प्रकरण है, जिनमें चौबीस प्रसंग तथा लगभग पौने तीन सौ साखियां और अनेक शब्द हैं।

१. विविध शिक्षा

विविध शिक्षा प्रकरण में बारह प्रसंग हैं। उनमें अनेक विषयों का वर्णन है। पहले प्रसंग में यह बताया गया है कि बोध हो जाने पर पहले वाली अज्ञानपूर्ण मान्यतायें, क्रियाये समाप्त हो जाती है और व्यक्ति अपने बनाये हुए पूर्व के जालों को तोड़ डालने में समर्थ हो जाता हे। व्यक्ति का लक्ष्य जब बोध-वैराग्य की ओर दृढ़ता से हो जाता है, तब उसके सारे बन्धन कट जाते हैं।

आपने दूसरे प्रसंग में यह बताया है कि स्वप्न, सुषुप्ति आदि विवश अवस्थाओं में शरीर छूटने से बोधवान की कोई हानि नहीं है। जीव जागृत अवस्था में जो निश्चय रखता, कर्तव्य करता, जहां प्रेम रखता, वही की वासनायें, सुख-दुःख, हानि-लाभादि की खटक स्वप्न में रहती है। जागृत अवस्था के राग या द्वेष अनेक जागृत में खटकते हैं; परन्तु किसी स्वप्नावस्था के राग-

द्वेष अनेक स्वप्नों में नहीं खटकते। जागृत अवस्था का मोह स्वप्न में अपना प्रभाव प्रकट करता है; परन्तु स्वप्न का मोह जागृत अवस्था में अपना प्रभाव नही प्रकट कर पाता। अतएव मनुष्य शरीर की जागृत अवस्था ही कर्मो की भूमिका है। जागृत में ही कर्म बनते तथा ज्ञान द्वारा उनका नाश भी होता है। स्वप्न अवस्था मात्र जागृत का प्रतिबिम्ब है; अतः वह बन्धन का कारण नहीं बन सकता। सूर्य पर बादल आते और चले जाते हैं, वे उस पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाते। इसी प्रकार स्वप्नावस्था बोधवान को बन्धन नही दे सकती। जिसने अपने आप को जागृत में निर्बन्ध कर लिया, वह हर समय निर्बन्ध है। इसलिए स्वरूपबोध हो जाने के बाद व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने प्रबल पुरुषार्थ के बल पर स्वरूपस्थिति बनाये। अज्ञान छूट जाने पर देहाभिमान का निश्चय हट जाता है और वहां केवल स्वस्वरूप चेतन की ही प्रियता रह जाती है।

तीसरे प्रसंग में बंधन और निर्बन्धता की स्थिति बतायी गयी है। भोगासक्ति बन्धन है, उसका त्याग मोक्ष। भोगों से तृप्ति तो होती नही, प्रत्युत तृष्णा बढ़ती है। भोगो को सब छीनते हैं और उनमें बड़े उपद्रव है। मानसिक जलन का तो उनमें पारावार नही है। सुख भोगों की इच्छा छोड़ देने वाला स्वाभाविक सुखी रहता है। बिना भोगों के जो विश्राति है वह एकरस है। जहां सबका अभाव है, वही मोक्ष है। अतएव सत्य, क्षमा, निष्कामता, निर्छलता, निर्मानिता, सदैव हितकर्तव्यता, निर्मोहता और सद्विवेक—ये एकरस सुख की खानि हैं[३५]।

विशालदेव चौथे प्रसंग में बतलाते है कि विषयो में जो सुख माना है वही जीव के लिए फांसी (बन्धन) है। यद्यपि किसी ने उस सुख को देखा नही है, फिर भी सब उसकी खोज में हैरान है। उस सुख को पाकर आज तक कोई तृप्त नही हुआ। वस्तुतः विषयों में माना हुआ सुख छोड़ देने से ही एकरस आत्मिक सुख मिलता है और विषय सुख की वासना रखने से कभी विश्राति नही मिल सकती।

पांचवें प्रसग मे यह बतलाया गया है कि बोधवान कल्याण साधना में असावधानी न करे; क्योकि भविष्य में तो देह छूटने वालो है, वह चाहे अगले क्षण हो चाहे कुछ दिन बाद, अंधकार में है और भूत जो बीत गया वह तो हाथ में आ नही सकता। अब यदि व्यक्ति वर्तमान मे चिंता, शोक या प्रमाद मे

३५. सत्य क्षमा निष्कामता, निर्छलता निर्मान।
नित्य हितैषी मोह तजि, सद्विवेक सुख खान॥

प्रकार हमारा श्रेष्ठ कबीरपन्थ तथा पारख सिद्धान्त है—ऐसा केवल हमें अहंकार बना रहा; परन्तु उसकी वस्तुस्थिति को जानकर जीवन में आचरण नहीं किया तो केवल अहंकार का बोझा ही लादा गया है। परन्तु दूसरे ने आकर हमारे पन्थ एवं सिद्धान्त की वस्तु को पहिचान कर धारण कर लिया तो वह उसी की हो गयी। सद्गुरु कबीर ने भी कहा है—'कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे[३६]।'

सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि सबके हैं। इसी प्रकार सत्य सबका है। सत्य पर किसी की बपौती नहीं है। क्या विश्व के सभी कबीरपंथी नामधारी सत्य को प्राप्त होते हैं? फिर पन्थ का अहंकार निरर्थक नहीं तो क्या है? घर में धन गड़ा होने पर भी तब तक किस काम का जब तक उसे खोदकर उपयोग में न लाये।

बोधवान सद्गुरु का शरीर चाहे जिस वर्ण एवं जाति में पैदा हुआ हो, वे चाहे जिस देश-प्रदेश के हों उनके बोध से जीव का कल्याण है। सोना चांदी चाहे जिसके घर में मिलें यदि वे खरे हैं तो उपयोगी है। इसी प्रकार यथार्थ ज्ञान चाहे जिस व्यक्ति एवं संत-गुरु से मिले कल्याणकर है।

सद्गुरु-सन्तों के मुख से निकले हुए निर्णय वचन जब मनुष्य को बोध देते हैं, तब उनकी बनायी पुस्तकें निश्चय ही मनुष्यों का कल्याण करेंगी। अतएव पारख सिद्धान्त के मूल ग्रन्थ बीजक से लेकर पीछे-पीछे के सैकड़ों पारख-प्रदर्शक ग्रंथ समान हितकारी होंगे। सुज्ञजन तो नाना मतों की पुस्तकों से, पशु, पक्षी, तृण, पेड़ से भी शिक्षा ग्रहण करते हैं, तब सत्य सिद्धान्त के ग्रन्थों से जनहित है इसमें क्या संदेह?

जो बोध दे वह सद्गुरु तथा जो उसे पुष्ट करें, वे संत। अंततः सद्गुरु तथा संत एक समान पूज्य हैं; क्योंकि दोनों की एक समान निष्कामदशा में स्थिति होती है। जिसे वर्तमान संत-गुरु में निष्ठा है और बोध तथा रहनी के अनुसार चलते हैं, वे ही समझो पन्थमूल सद्गुरु मे श्रद्धा रखते हैं।

जहां गुरु तथा शिष्य दोनों देह-स्वार्थ तथा मान-बड़ाई के लिए चतुर बनते हैं, वहां न गुरुपद है और न शिष्यपद है। विशालदेव कहते है कि गुरु तथा शिष्य स्वार्थ में अनाड़ी बन जायं, अर्थात स्वार्थ-कामना का त्याग कर आपस में सुन्दर प्रेम करें। गुरु शिष्य को स्नेह दे तथा शिष्य गुरु को श्रद्धा समर्पित करे। फिर इसका परिणाम अनमोल ज्ञान, सुन्दर व्यवहार और स्वरूप-

३६. बीजक, शब्द २।

स्थिति होगा। जो गुरु उपदेश के बदले में शिष्य से धन, सम्मान, सेवा आदि चाहता है तथा जो शिष्य गुरु की सेवा कर यह चाहता है कि गुरुदेव हमारा एहसान एवं आभार मानें, तो समझ लो दोनो अपने पद से गिर कर दुःखों के हाथों में बिक गये।

विशालदेव कहते हैं कि गुरु और शिष्य—दोनों को अपना-अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। यही उत्तम समझ तथा धर्म है कि स्वार्थ-कामना का कीचड़ सर्वथा धो दिया जाय। मोक्ष तो कामना-रहित होने पर होगा। कामना-वश होने से तो बंधन है। बोधवान गुरु और शिष्य सन्तोष, क्षमा, दया के सहित शरीर-निर्वाह लेते हैं। जो सबके हितचिन्तक है और जिनकी सम्मान की कामना सर्वथा मिट गयी है, वे किसी की अवहेलना व अपमान नही करते। वे हृदय से किसी को दुखाना नही चाहते और न दूसरे की बुराई देख कर अहंकार में ही फूलते हैं। विवेकी गुरु तथा शिष्य उपाधियुक्त बन्धनदायी कर्मो का त्याग करते हैं और दूसरे प्रपंचियों के भी कुसंग से सावधान रहते है। वे मन की सारी चालबाजियो को छोड़कर अपनी कल्याण-साधना मे लगे रहते हैं। वे दूसरे क्षमा करे या मुझसे क्षमा मागे—ऐसी कामना छोड़कर स्वयं क्षमा भाव रखते हैं। वे दूसरे को अपने मधुर व्यवहार से सुखी रखते हुए स्वय निर्बन्ध रहते हैं। वे न दूसरे को विवश करते हैं और न स्वयं किसी के विवश होते हैं। वे राग-द्वेष की क्रिया को दुःखों का व्यापार समझते है। वे सत्यबोध, सत्यव्यवहार, सत्यवचन, सरलता, समता एवं साधुनीति का आचरण करते है। वे स्वरूपज्ञान के लक्ष्य से बरतते है, देह-स्वार्थ की दृष्टि नही रखते। विशालदेव कहते हैं जो मन की मान्यताओ, एवं, राग-द्वेष से सर्वथा परे हैं, जिनकी संसार में न तो कुछ हानि है और न लाभ तथा जिनको संसार फीका हो गया है, ऐसे पारखी सद्गुरु और संत हमारे शिरमौर हैं।

जीव में पारख (ज्ञान) गुण है। इसी को लेकर गुरु परखाता है तथा शिष्य परखता है। गुरु तो पूर्ण पारखी बन कर पहले से निष्कामदशा में स्थित होता है और जब गुरु द्वारा शिष्य भी सारासार को पूर्ण परख लेता है और असार को छोड़कर सारस्वरूप एवं निष्कामदशा मे स्थित हो जाता है, तब गुरु और शिष्य का देहभाव छूटकर दोनो का समान निष्काम स्वरूपस्थिति में ठहराव हो जाता है।

३. शब्द विभाग

इस प्रकरण में अनेक विषयों का निर्णय है परन्तु गुरु-शिष्य के विषय में पुनः सविस्तार कहा गया है। विशालदेव कहते है "गुरु और शिष्य के बीच

में केवल धर्म का नाता है। सद्गुरु शिष्य पर न जबर्दस्ती करता है न भय देता है और न किसी प्रकार कष्ट, न वह शिष्य से यह कहता है कि तुम मेरे में प्रेम करो; किंतु शिष्य अपनी श्रद्धा से गुरु में स्वयं प्रेम करता है। सद्गुरु तो शिष्य के सारे भ्रम को दूर कर उसे स्वरूपबोध देकर निष्काम स्थिति बताते हैं और स्वयं ममता के बधन तथा अन्याय आचरण से रहित है फिर किस प्रयोजन को लेकर शिष्य के साथ जबर्दस्ती करेगे ? यदि कोई गुरु ऐसा करता है, तो वह स्वयं घोटाले में है। अतएव गुरु को सावधान हो जाना चाहिए और उन्हे सम्हल-सम्हल कर चलना चाहिए; जिससे वह स्वयं तथा शिष्य का उद्धार कर सके। जो जितने बड़े पद मे हो, उसे उतना ही धैर्यवान तथा विवेकी होना चाहिए; फिर गुरुदर्जा तो सर्वोच्च है। इसीलिए कहा जाता है कि बिना पूर्ण निष्कामदशा प्राप्त किये किसी को गुरु नही बनना चाहिए; अन्यथा वे अधूरे शिष्य को लेकर डूबेगे। विशालदेव कहते है कि बड़े दर्जे वाले को बहुत बचाकर चलना चाहिए। जिन गुरुओं के हाथो मे अपना और दूसरे सहस्रो के सुधार का दायित्व है, उन्हे बहुत बचाकर, सोच-विचार कर चलना चाहिए। गुरु लोग धीर, गंभीर एवं निष्काम होकर चलेंगे, तभी वे स्वयं सुखी होकर दूसरे को सुख-शांति दे सकेंगे और उनके स्वार्थ एवं परमार्थ सुचारु रूप से पूर्ण होंगे। विशालदेव कहते हैं हे गुरु-शिष्यो ! परखज्ञान मे विचरो और परस्पर प्रेम और विश्वास रखो[३७]।"

"विशाल साहेब कहते हैं कि साधु-गुरु बड़े संतोषी होते है। वे उसी ज्ञान में लगे रहते है जिससे मन की सारी कामनायें मिट जायं। वे असत्य को छोड़कर सत्य ग्रहण करते हैं। स्वयं निर्दोष, सत्यपरायण होते हैं। ये निर्दयता को छोड़ कर दया धारण करते हैं और दयापूर्ण होकर ही दूसरे को उपदेश करते हैं। वे असहनशीलता को छोड़कर सहनशीलता को धारण करते है। वे अपने अपराधी को क्षमा करते हैं। वे गम खाते और अपने होशहवास मे रहते हैं। वे बिना विचार किये कुछ नही करते और अहंकार, उन्मत्तता एवं असावधानी से दूर रहते हैं वे सदैव जाग्रत रहते है[३८]।"

"कोई संत ही ममता त्याग करते हैं। वे मोह को छोड़कर उस स्वरूप में स्थित रहते हैं जिसका जन्म, मरण तथा नाश नही है और जो समस्त बाधाओ से रहित अक्षय है तथा जिसके माता-पितादि नही होते। विवेकी संत-गुरु जगत दुःखों से छूटकर अपने पारख स्वरूप मे विराजते है। वे स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई एवं घर की ममता से रहित होकर एवं मन की मान्य-

३७. शब्द ४। ३८. शब्द ६।

ताओं और शरीर के अहंकार तथा समस्त जड़ाध्यासों को त्याग कर समाधि में विराजते हैं[३६]।"

विशालदेव ने सद्गुरु कबीर को अपना परम इष्ट बताया है और इस प्रकरण के अंत में यह बताया है कि श्री रघुवर साहेब नाम के पारखी संत मेरे सद्गुरु हैं उन्हीं से मुझे बोध तथा साधुवेष दोनों प्राप्त हुए हैं; अतएव उनका मुझ पर अमित उपक है।

चौथा ग्रन्थ : नौ नियम

सद्गुरु विशालदेव का यह अत्यन्त लघुकायग्रंथ है। इसमें कल्याणार्थियों के लिए ९ नियमों का विधान है, वह इस प्रकार है—

मन सोहरौना नहीं बनावै। सहनशील बनि आप रहावै ॥
मन संकल्प करै नहिं पूरा। जानि के बंध तजै तेहि शूरा ॥
वस्तुन प्राप्ति माहिं तजि संचय। खास अवश्यक राखि असंचय ॥
नहिं समाज को पीड़ा देवै। बनै तहाँ तक हित हो सेवै ॥
त्यागि जगत को घूमि न देखै। मानुष जन्म सुफल करि लेखै ॥
बनि प्रतिकूल न गुरु के रहिये। पालन राय सदा दिल चहिये ॥
जो कुछ आपन मानि जहाँ लो। सो सब इष्ट काहि दिल गुनलो ॥
गुरु उपकार मानि दिल धरई। गुरु की निन्दा कबहुँ न करई ॥
धर्ममयी अतस यहि भाँती। मारग विघ्न न ताहि भेटाती ॥
सावधान हो इष्ट सदाही। अपने काम मे पूर रहाही ॥

स्ववश शक्ति अपने बनै, प्राप्ति साज मग केर।
सिद्धि होय कल्याणपद, करि परिशर्म न देर ॥

एक बार सद्गुरु श्री विशाल साहेब काठमाण्डू (नेपाल) के ऊपर तारे-श्वर पर्वत पर विराजमान थे। वहां कुछ ब्रह्मचारियों को आपने साधुवेष दिया। उन साधुओं को आप भारत भेजने लगे, तो साधुओं ने आपसे प्रार्थना की कि हम लोग किस नियम से रहें? विशालदेव ने कहा—मै तुम लोगो के लिए नौ नियम देता हूं और ये समस्त मुमुक्षुओं के लिए उपयोगी होगे।

पहला नियम

मन सोहरौना नहीं बनावै। सहनशील बनि आप रहावै ॥

३६. शब्द ८।

अर्थात—अपने मन को सम्मान तथा भोगों का व्यसनी न बनावे स्वयं सहनशील बनकर रहे ।

कई बच्चे ऐसे होते हैं कि उनको गोद में लिये रहो, उनकी पीठ या सिर सहलाते रहो, उन्हें दुलारते रहो एवं उन्हें चूमते-चाटते रहो, तो वे प्रसन्न रहते हैं और ऐसा करना जैसे छोड़ दो, वैसे वे रोने लगते हैं । 'सोहरौना' का अर्थ है सहलाना, स्पर्श करना, हाथ फेरना । बैल, कुत्ते आदि को भी सहलाने से वे प्रसन्न होते हैं ।

"मुझे कोई अच्छा कहता रहे, कोई मेरी पूजा, वन्दना, आरती किया करे, कोई मुझे भोजन पकाकर खिलाये, मेरा आसन लगाये, पैर धोये, स्नान कराये, पात्र-वस्त्रादि धोये, मुझे सबसे ऊंचे खाट आदि पर बिठाये, मेरे पैर दबाये, मुझे सब सुख-सुविधायें दे और वह यह सब दूसरे के लिए न करे, केवल मेरे लिए करे, लोग मेरी प्रशंसा करते रहें और मेरे सामने दूसरे की प्रशंसा न हो, इस प्रकार मुझे ही लोग भोग तथा सम्मान अर्पित करते रहे"—ऐसी भावना रखना और ऐसी चीजो को पाकर मन में खुश होना यह अपने मन को 'सोहरौना' बनाना है और साधक को ऐसा करने से सदैव बचना चाहिए ।

सेवा तथा सम्मान प्राने की इच्छा साधक की शत्रुणी है । कितने साधक वेष धारण कर नाना वस्तुयें, धन तथा सम्मान पाने के ही भूखे हो जाते है । सुखाध्यास, आरामतलबी तथा सम्मान की भूख साधक को पतित करके ही रहती है । इनकी इच्छा मात्र का हो जाना ही साधक का पतन है । अतएव ऐसी इच्छाओ का परित्याग करते रहना चाहिए । जो व्यक्ति आरामतलब होता है, जो सम्मान का भूखा होता है वह साधक नहीं बन सकता ।

साधक किसी से अपने शरीर की सेवा न कराये न सेवा पाने का इच्छुक हो । वह वस्तुओ की कामना न करे और थोड़ी वस्तुओं से निष्काम भाव पूर्वक अपने शरीर का निर्वाह ले । साधक दूसरों द्वारा अपनी प्रशंसा, आरती, वंदना, पूजा आदि कराने की जरा भी इच्छा न करे । साधक इनका अपने हृदय से विरोध रखे । जो बलात उसे सम्मान दे उसमे वह फूले नही ।

साधक को अपने शरीर का सारा काम स्वय करना चाहिए । स्वावलम्बी ही साधक बन सकता है; सुखाध्यासी, परावलम्बी नही ।

साधक को सहनशील होना चाहिए । भूख-प्यास, ठंडी-गरमी, अनुकूल-प्रतिकूल, सुख-दुःख, मान-अपमान को सहन कर सम रहना चाहिए । इनमे फूलना-पचकना नहीं चाहिए । जो ऊंची-नीची, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में हर्ष-शोक रहित सम नही रह सकता, वह साधक नही बन सकता । अतएव

साधक को चाहिए कि वह सुखाध्यास, स्वाद, प्रशंसा, सम्मान की वासना त्याग कर कष्टसहिष्णु एवं धैर्यवान हो।

दूसरा नियम

मन संकल्प करै नहिं पूरा। जानि के बन्ध तजै तेहि शूरा॥

अर्थात—मन की भोग-इच्छाओं को पूर्ण करने में न लगे। इच्छाओं को बन्धन समझ कर जो उन्हें सर्वथा त्याग देता है, वह शूरवीर है।

मन की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है, एक पूर्ण होने पर दूसरी उठ खड़ी होती है और मनुष्य इच्छाओं के पूर्ण करने के चक्कर में अपनी सुख-शांति को खो देता है। इच्छायें सब पूरी भी नही हो सकती। जो इच्छायें पूरी हो सकती हैं, उन्हें भी पूर्ण करने में जो साधक अपनी शक्ति या समय लगा देगा वह अपना कल्याण कब करेगा ? अतएव साधक को चाहिए कि वह मन की इच्छाओं को तोड़ता रहे। इच्छाओं को जीत लेने वाला अमृत स्वरूप ही है।

तीसरा नियम

वस्तुन प्राप्ति माहिं तजि संचय। खास अवश्यक राखि असंचय॥

अर्थात—जो वस्तुये प्राप्त हों उनमें आवश्यकता मात्र रखकर शेष को दूसरों के हित में लगाते रहना चाहिए, इस प्रकार अधिक संग्रहवृत्ति से दूर रहना चाहिए।

साधक होकर भी कितने लोग मधुमक्खी के समान धन एवं वस्तुओं का सग्रह करते हैं। आवश्यकता से अधिक संग्रह अशांति का कारण बनता है; अतएव विवेक पूर्वक रहते हुए संग्रहवृत्ति से उदासीन रहना चाहिए। अति संग्रह तथा अति उदारता के बीच मध्यवर्तीय व्यवहार सीखना चाहिए।

चौथा नियम

नहिं समाज को पीड़ा देवै। बनै तहाँ तक हित ही सेवै॥

अर्थात—समाज को कष्ट न पहुंचावे, जहां तक बने समाज का हित करे।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। हर व्यक्ति को समाज का आधार लेना पड़ता है। हमारे जीवन-निर्वाह तथा कल्याण में समाज का बहुत बड़ा हाथ रहता है। अन्न, वस्त्र, औषध, पुस्तक, वाहन, पथ, मकान, सत्संग, सद्बुद्धि कितने नाम लिये जायं अगणित ऐसी वस्तुयें हैं जिनसे हमारे स्वार्थ-परमार्थ

सधते हैं और सारी वस्तुयें हमें समाज से मिलती हैं; अतएव जिस समाज से हमारे स्वार्थ-परमार्थ सधते हैं उसे हमें कष्ट नहीं देना चाहिए; प्रत्युत जितनी शक्ति चले उतना समाज का हित करना चाहिए।

पांचवा नियम

त्यागि जगत को घूमि न देखै। मानुष जन्म सुफल करि लेखै॥

अर्थात—साधक को चाहिए कि वह कुल, कुटुम्ब, घर, धन, विषय-भोग आदि रूप जगत का त्याग कर, पुनः उस ओर दृष्टिपात भी न करे। सच्चा वैराग्य धारण कर मानव जीवन को सफल बना ले।

जब तक पक्का वैराग्य न हो साधक घर-गृहस्थी का त्याग न करे और जब पक्का वैराग्य उदय हो जाय तब स्वयमेव त्याग हो जायेगा। त्याग मार्ग में आकर फिर घर, कुटुम्ब, भोग तथा सम्मान के लालच में न पड़े। साधु मार्ग में आकर सच्चा वैराग्य करना चाहिए। सद्गुरु कबीर ने ठीक ही कहा है—

साधू होना चाहिये, पक्का होय के खेल।
कच्चा सरसों पेरिके, खरी भया न तेल[४०]॥

छठां नियम

बनि प्रतिकूल न गुरु के रहिये। पालन राय सदा दिल चहिये॥

अर्थात—सद्गुरु के विरोधी बनकर मत रहो! साधक को सदैव गुरु की सम्मति का पालन करना चाहिए।

जो अहंकार कामना से निवृत्त हैं, जो सबके हितैषी हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है; ऐसे सद्गुरु का विरोध करने का अर्थ है शिष्य का घोर पतन। निष्काम सद्गुरु के चरणों में अपने को अर्पित कर साधक को स्वच्छन्द हो जाना चाहिए। निष्काम महात्मा पुरुष की मति के अनुसार चलना साधक का परम कर्तव्य है। इसी में उसका मंगल है।

सातवां नियम

जो कुछ आपन मानि जहाँ लो। सो सब इष्ट काहि दिल गुन लो॥

अर्थात—जो कुछ संसार के प्राणी-पदार्थ एवं तन, मन, धन अपने माने गये है, अपने मन में निश्चय कर लो कि वे सब इष्टदेव के हैं।

४०. बीजक, साखी २८०।

जिनकी अहंकार-कामना सर्वथा निवृत्त हो गयी है ऐसे बोधवान संत पुरुष के जीवन-आचरण से साधक को सन्मार्ग में चलने के लिए अनन्त प्रेरणा मिलती है; अतएव ऐसे संत ही साधक के आराध्यदेव एवं इष्ट होते हैं। साधक को चाहिए कि ऐसे इष्ट को पाकर वह अपना सब कुछ उसे अर्पित कर दे और स्वयं अहंकार के भार से मुक्त हो जाय।

भक्ति की दृष्टि से सब कुछ उपास्य को अर्पित कर भाररहित होना चाहिए तथा ज्ञान-वैराग्य की दृष्ठि से सब कुछ नश्वर एवं स्वप्नवत समझ कर उससे निःभार रहना चाहिए।

आठवां नियम

गुरु उपकार मानि दिल धरई। गुरु की निंदा कबहूं न करई॥
धर्ममयी अन्तस यहि भाँती। मारग विघ्न न ताहि भेटाती॥

अर्थात—सद्गुरु का अनन्त उपकार अपने ऊपर मानकर उसे अपने हृदय में निश्चय करे। गुरु या सद्गुरु की कभी निंदा न करे। इस प्रकार अपना अंतःकरण धर्ममय एवं कर्तव्यनिष्ठ बनाये। ऐसे साधक के पथ में रोड़े नही पड़ते।

साधारण गुरु द्वारा जो साधारण ज्ञान व्यक्ति को मिलता है, उसका उपकार भी बहुत होता है और सद्गुरु का जो शिष्य के प्रति बोध-प्रदान है वह उनका शिष्य के प्रति महान उपकार है। अतएव गुरु या सद्गुरु का उपकार कभी नही भूलना चाहिए। उनकी निंदा करने की तो बात ही नही उठनी चाहिए, जबकि साधक को किसी की भी निंदा नही करना चाहिए।

इस प्रकार जो साधक अकर्तव्य का त्याग तथा कर्तव्य का पालन करता है उसका हृदय निर्मल हो जाता है और जो साधक निर्मल चित्त है वह जीवन पर्यन्त अपने कल्याणपथ मे चलता रहता है।

नवां नियम

सावधान हो इष्ट सदाही। अपने काम में पूर रहाही॥

अर्थात—पूज्य एवं सद्गुरु को चाहिए कि वे सदैव सावधान होकर अपने कल्याण कार्य में पूर्ण रहें।

सद्गुरुओं या बहुतों के आधारस्तंभ पूज्य संत-महात्माओ की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। बड़े पुरुषों के सुधार एवं बिगाड़ से बहुतों का सुधार तथा बिगाड़ होता है। सद्गुरु पद सर्वोच्च है; पूर्ण निष्काम अवस्था प्राप्त कर ही

किसी का सद्गुरु बनना चाहिए। इष्ट सद्गुरु को काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष, मान-भोग की इच्छा से सर्वथा रहित रहना चाहिए। पूर्ण निष्कामदशा ही संत, महात्मा तथा सद्गुरु की दशा है। इनकी अपनी पूर्णता से इनका तो कल्याण है ही, पीछे वालों का भी कल्याण है।

जिन इष्ट एवं सद्गुरु में रहनी की पूर्णता नहीं होती, साधक एवं शिष्यों की श्रद्धा उनके प्रति दृढ़ नहीं होती। इष्ट एवं सद्गुरु में सब प्रकार से पक्की रहनी देखकर ही साधक एव शिष्यों की श्रद्धा उनमें अविचल हो जाती है। पूर्ण निष्काम महात्मा एवं सद्गुरु पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान हैं तथा सच्चे साधक एवं शिष्य का हृदय समुद्र के समान। जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार आ जाता है, वैसे पूर्ण सद्गुरु एवं महात्मा को देखकर साधक एवं शिष्य के हृदय में श्रद्धा का ज्वार आ जाता है। समुद्र का ज्वार तो भाटे के रूप में घटता भी है; परन्तु साधक के हृदय में श्रद्धा का दृढ़ धरातल हो जाता है।

अतएव जो इष्ट महात्मा एवं सद्गुरु पद में हो, उसे चाहिए कि वह सदैव सब ओर से जाग्रत रहकर अपनी रहनी में पूर्ण रहे।

स्ववश शक्ति अपने बनै, प्राप्ति साज मग केर।
सिद्धि होय कल्याण पद, करि परिशर्म न देर॥

१६

श्री निष्पक्ष साहेब

(जन्म सन् १८८५ मृत्यु १९८५ ई०)

श्री निष्पक्ष साहेब का पूर्व नाम श्री रामशब्द पांडेय था। आपके पिता का नाम श्री महावीर पांडेय था। आप का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के 'मारुख चक' नाम के गांव में हुआ था जो डुमरियागज तहसील में पड़ता है।

श्री रामशब्द पांडेय जी तीन वर्षों तक सेना में रहे। उसके बाद आप का विवाह हुआ। किन्तु कुछ दिनों में आप के हृदय में वैराग्य की तरंग उठने लगी और आप पचीस वर्ष की उम्र में घर छोड़ कर विरक्त हो गये।

श्री अयोध्या जी में श्री तुलसीदास जी की छावनी में वैष्णव संत श्री सुखराम दास जी महाराज के द्वारा आप की मंत्र-दीक्षा हुई। आप गौर वर्ण, लंबी कद के नौजवान थे। आप उस समय लंबी जटायें रखते, खाक लगाते तथा रामशब्द दास जी नाम से प्रसिद्ध होने लगे।

आप करीब पचास वर्ष की उम्र मे सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब से, जो श्री कबीर मन्दिर बड़हरा के पारखी सत थे, मिले और धीरे-धीरे आप को सद्गुरु कबीर के पारख सिद्धांत का रंग लग गया और आप ने जटा कटा ली तथा खाक लगाना छोड़ दिया और आप पारख सिद्धांतानुसार ही अपने वेष, टकसार तथा सिद्धांत अपना लिये। आप बड़हरा के श्री रामसूरत साहेब को ही अपना सद्गुरु मान कर उनकी उपासना, समय-समय से दर्शन-भेंट करते तथा अलग रह कर साधना एवं प्रचार करने लगे।

आप ने कुछ दिनो के बाद फतेहपुर जिला (जो इलाहाबाद-कानपुर के बीच में पड़ता है) में जाकर बैरी नामक ग्राम में स्थान कायम किया और उस जिले में आप ने व्यापक प्रचार किया तथा कई जिलो मे आप के प्रचार बढ़ते गये। जीवन के आखीरकाल में बड़ोदा तथा कलोल आदि की तरफ आप का प्रचारक्षेत्र कायम हुआ।

आप ने फतेहपुर जिला में 'बैरी' तथा 'चकबसवा' दो ग्राम में स्थान बनाये और करीब साठ (६०) विरक्त शिष्यों को दीक्षा दी। आप के द्वारा जो गृहस्थों को दीक्षा दी गयी, अन्य पारखी संतों की तरह कोई गणना न होने से उनकी संख्या बतायी नही जा सकती। आप के विरक्त शिष्यो में श्री निहोरे साहेब, श्री ज्ञान साहेब, श्री अवतार साहेब, श्री अवध साहेब, श्री परमहंस साहेब, श्री सुखस्वरूप साहेब आदि मुख्य हैं।

आप के शिष्य श्री ज्ञान साहेब की रचनाएं भी हैं 'संगत कीजै साधु की' 'दो में से एक' 'नारी' तथा 'हालचाल' आदि।

श्री रामशब्द साहेब ने आगे चल कर अपना नाम निष्पक्ष दास घोषित किया। अतएव आज कल आप श्री निष्पक्ष साहेब के नाम से जाने जाते हैं। जीवन में आप ने अनेक बार कठिन-कठिन तपस्याये भी की है; और आप जरजर अवस्था में भी करते रहे। अतः आप को 'तपसी साहेब' के नाम से भी जाना जाता है।

जून १९८५ ई० मे आप फतेहपुर से इलाहाबाद कबीर संस्थान में पधारे तथा यहां से फैजाबाद गये। पीछे बीमार पड़े। जियनपुर (अयोध्या) श्री कबीर मन्दिर में ले जाये गये। वहा आप फल-दूध लेते रहे तथा आसन-

व्यायाम भी करते रहे। आप ने सोलह जून को भी प्रातः आसन-व्यायाम किया, और १७ जून १६८५ ई० को प्रातः चार बजे आपका शरीरांत हो गया।

चकबसवा स्थान में आप के शव की समाधि दे दी गयी और पीछे आप की स्मृति में बैरी तथा चकबसवा में संत सम्मेलन हुआ। उसमे सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब जी भी पधारे।

श्री निष्पक्ष साहेब ने अपनी एक कविता में अपने गुरु श्री रामसूरत साहेब की कबीर साहेब के साथ याद की है। वे चार पदो के बाद पांचवे पद में कहते हैं—

निर्पक्षदास बानी, कहते पुकार ध्यानी।
सूरत कबीर ज्ञानी, निज रूप को दृढ़ाओ।।

आपने अपनी डायरी में लिखा—

निर्पक्षदास गुरु सूरत पाये, साधू शरण देखाये।। पृष्ठ ८०।।

जड़ाध्यास छोड़ो घड़ा शीश फोड़ो, हो शुद्ध चेतन निराले रहो।
दास निर्पक्ष गायें स्वतंत्र पद में रह के, रामसूरत गुरु के चरणों पड़ा।।
(पृष्ठ ७०)

१७

श्री सुखसागर साहेब

(जन्म १८६५ ई०)

आपका जन्म डुमरिया नामक ग्राम के एक जायसवाल परिवार में हुआ जो तहसील फरेंदा, ईलाका तिवारी का बरुआ, जिला गोरखपुर में पड़ता है। आपके पिता का नाम श्री लक्ष्मण जायसवाल था।

एक बार एक वैष्णव साधु मांसाहार का खंडन कर रहे थे। आप अपनी किशोर अवस्था में उनका वक्तव्य सुनकर प्रभावित हुए। आप ने अजगैबा के श्री गजपाल साहेब से भक्ति की दीक्षा ग्रहण की। आप कुछ दिन अयोध्या के श्री राम झरोखा आश्रम में रहे और वहां ही आपका एक वैष्णव संत द्वारा साधु-वेष हुआ। उसके पश्चात जब आप पारखी संतों के साथ में रहने लगे, तब आपका वेष अजगैबा के श्री रामदास साहेब से हुआ। आप बुरहानपुर उस समय गये जब वहां की गद्दी पर श्री नरोत्तम साहेब विराजमान

थे। उसके बाद अजगैबा (गोरखपुर) के प्रसिद्ध संत श्री निर्मल साहेब के साथ एक वर्ष रहे और उनकी सेवा-सत्संग का लाभ लेते रहे। श्री निर्मल साहेब के शरीरांत के बाद श्री सुखसागर साहेब पुनः बुरहानपुर गये। इस समय प्रसिद्ध संत श्री काशी साहेब वहां गद्दी पर विराजमान थे। श्री सुखसागर साहेब ने आपसे बीजक-पंचग्रंथी का अध्ययन किया। वस्तुतः श्री सुखसागर साहेब के शिक्षागुरु श्री काशी साहेब ही हैं।

आप सरल स्वभाव, वैराग्यप्रिय तथा निर्विवादी संत हैं। आप अपनी जरजर अवस्था में आज (आज सन् १९८० ई०) भी विद्यमान हैं। आप ने श्री निर्मल साहेब की वाणियों का प्रकाशन कर तथा 'पारख विजय' नाम की एकमात्र पुस्तक की रचना कर समाज की सेवा की है।

१८

श्री महाराज राघव साहेब

(जन्म सन् १९००, मृत्यु १९४४ ई०)

श्री महाराज राघव साहेब पारख सिद्धान्त के एक स्वनामधन्य विद्वान संत हो गये हैं। आपका जन्म बिहार प्रदेश के सीतामढी जिले के मौर्य परिवार में होना सुना जाता है। आपके पूर्व जीवन के विषय में कुछ पता नहीं चलता। इतना साफ है कि आप काशी कबीरचौरा के गद्दीनशीन श्री रामविलास साहेब के प्रमुख शिष्य थे। आप संस्कृत, हिन्दी के विद्वान थे तथा इंगलिश भी जानते थे। आपने बुरहानपुर में श्री लाल साहेब से बीजक-पंचग्रंथी की विधिवत शिक्षा पायी थी। आप बुरहानपुर में उस समय विद्यमान थे जब वहां श्री भगवान साहेब, श्री छोटे बालक साहेब, श्री लाल साहेब आदि मूर्धन्य संत विराजमान थे। आप जब बुरहानपुर श्री कबीर निर्णय मन्दिर में कथा कहते थे, तब नगर-वासी उमड़ पड़ते थे। आप वहां रह कर पचग्रथी की टीका लिख रहे थे उसी समय श्री विशाल साहेब बुरहानपुर पधारे थे। श्री महाराज राघव साहेब ने बुरहानपुर में रहते हुए पंचग्रंथी टीका लिखी थी। वहां से आप ने बड़ोदा पानी दरवाजा में जाकर सन् १९३२ में पचग्रंथी टीका का पहला संस्करण छपवाया। तब से आपको पुनः बुरहानपुर जाने का अवसर नहीं पड़ा। आपने गुजरात के बड़ोदा आदि जिलो में पारख सिद्धान्त का खूब प्रचार किया था। गुजरात में बड़ोदा का श्री कबीर मन्दिर पानी दरवाजा आपका मुख्यालय था।

जीवन के उत्तरार्ध में आप काशी के लहरतारा कबीर मन्दिर पर रहकर साधुओं को बीजक-पंचग्रन्थी पढ़ाया करते थे। आगे चलकर आप का शरीर रुग्ण हो गया और लगभग ४४ वर्ष की अल्पायु में बड़ोदा के पानी दरवाजा श्री कबीर मंदिर में रात साढ़े दस बजे २८-५-१९४४ ई० को शरीरान्त हो गया।

आप विद्वान, वैराग्यवान, विनम्र, मधुरभाषी, कुशल प्रवक्ता, व्यवहार कुशल एवं मेधासम्पन्न पारखी संत थे। आपने बीजक, पंचग्रन्थी, कबीर परिचय, निर्णयसार, वैराग्यशतक, साखीसंग्रह आदि पर सुन्दर टीकायें लिखी हैं।

१९
श्री चेतन साहेब
(जन्म सन् १९०२ ई०)

आपका प्रथम नाम 'चेतराम' था। आपका जन्म अजगना ग्राम के एक कुर्मी परिवार में हुआ था जो जिला बाराबंकी उत्तर प्रदेश में पड़ता है। आपके पिता जी कबीरपंथी भक्त थे और वे भी पीछे से श्री विशाल साहेब के एक शिष्य श्री वैराग्य साहेब से साधु-वेष लेकर विचरण करते थे। उनका नाम श्री भगवान साहेब था।

चेतराम जी को अपने पिता श्री भगवान साहेब से सत्संग का अच्छा आधार मिलता था। आप करीब १८-२० वर्ष की उम्र में घर छोड़कर वैराग्य की दृष्टि से बुरहानपुर चले गये। वहां उस समय श्री विशालदेव के ज्येष्ठ शिष्य श्री बल्देव साहेब विराजमान थे जो आज (सन् १९८० ई०) भी करीब सौ वर्ष की उम्र में बाराबकी में विद्यमान हैं। चेतराम जी कुछ दिन बुरहानपुर रहकर बाराबंकी लौट आये और श्री विशाल साहेब की शरण में रह कर अध्ययन तथा साधना करने लगे। कुछ दिनों में विशालदेव के कर-कमलों से आपका साधु-वेष हुआ और आपका नाम रखा गया 'चेतन दास' जिन्हे हम श्री चेतन साहेब के नाम से जानते हैं। आप साधुवेष होने के बाद भी बुरहानपुर गये और आपकी मौजूदगी में ही श्री विशाल साहेब बुरहानपुर बुलाये गये थे।

श्री चेतन साहेब लगभग सन् १९२९ ई० में राजस्थान के कोटा जिले में गये। वहां उनके विचारो का कोटा तथा बूंदी जिले में फैलाव हुआ और कोटा

जिले में आपके तीन आश्रम बन गये—शीशवाली, करजोदा तथा डूंगरपुर और अन्य आश्रम भी आपके लिए भक्तों ने बनवाये। आप प्रश्नों के उत्तर देने में प्रवीण, मेधासंपन्न, वैराग्यवान और सरलचित्त के संत हैं। आप समय-समय से बाराबंकी क्षेत्र में भी रहा करते हैं, किन्तु विशेष कोटा-बूदी में रहते हैं। आपकी पद्यात्मक रचनायें हैं—गुरुपद विनोद, शिक्षावली, गुरुमहिमा तथा (एक नवीन)-संध्यापाठ।

२०

श्री रामलाल साहेब

(जन्म सन् १९०६ ई०)

आपका जन्म उत्तर प्रदेश, गोण्डा जिला, धानेपुर बाजार के पास 'बल्दू तिवारी का पुरवा' गांव के एक वैश्य परिवार में हुआ। आप बहुत पुराने पारखी संत हैं तथा अपना सद्‌गुरु, श्री लाल साहेब को स्वीकार करते हैं। आप बड़े स्पष्टवादी हैं। आपका भाषण इतना खरा होता है कि कभी-कभी अत्यन्त कटु और अतिवाद भी हो जाता है। ऐसी बातें आपके भाषण तथा ग्रंथो में बराबर पायी जाती हैं। परन्तु आप में एक महान गुण है कि जब कोई आपके सामने आकर विरोध में वोलने लगता है, तब आप सर्वथा मौन हो जाते है। फिर तो आप को चाहे कोई सैकड़ों गाली दे ले, आप एक शब्द भी नही बोलते। आज तक यह सद्‌गुण ही आपको ढाल का काम किया है। आप बहुत सयमशील एवं सदाचारी संत है। आप कोई कुटी-आश्रम नही बनाये हैं तथा आश्रमधारियों को आप खरा-खोटा कहते रहते है। आप जिज्ञासुओ को साधु-वेष देने में बड़े उदार है और दूसरे साधुओ को आप सात, आठ या नौ कालो से ग्रसित कहते रहते है। आपकी पुस्तके गोण्डा-बस्ती की ग्रामीण बोलचाल की भाषा को लिये हुए हिंदी में लिखी गयी हैं तथा खूब खडन-मंडन सहित हैं। इसलिए सामान्य जनता मे पुस्तकों का बड़ा आदर है। आपकी रहनी, व्यवहार, बोलचाल, पुस्तकें—सब मे रोचकता एव ऐसे कड़वे-मीठे घोल है कि आप वर्तमान समय में पारख सिद्धान्त में एक बहुचर्चित संत है। आपकी अक्खड़ता छांदोग्य उपनिषद् के सयुग्वा रैक्व[1] का स्मरण दिलाता है। वैसे आपका ब्रह्मचर्य और त्याग पक्का है। आप आजकल पारख सिद्धांत

१. छांदोग्य उपनिषद्, चतुर्थ प्रपाठक।

में एक बेढब संत हैं। आपकी रचनायें व संपादित ग्रंथ हैं—गुरु चेला संवाद, व्याख्या सत्यासत्य निर्णय, गुरु चेला संवाद की चटनी, बोध बयालिस, कबीर पारख बूटी, मुक्तावली गारी, निर्पक्ष रत्नाकर, संतोष सुख आदि।

२१

श्री सत्यपाल साहेब

(जन्म १८८२, मृत्यु १९७४ ई०)

आपका जन्म काठमांडो शहर के सस्नेरी मोहल्ले में एक वैदिक ब्राह्मण के घर हुआ था। आपके पूर्वाश्रम का नाम नरनाथ उपाध्याय था। आप अपनी उनतालीस (३९) वर्ष की उम्र में अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर तीर्थ-भ्रमण में निकल गये। नेपाल राज्य के जिला वारा के बंजरिया ग्राम के वैष्णव साधु श्री सूर्यदास महाराज से आपकी प्रथम दीक्षा हुई। उसके पश्चात काठमांडो के कबीर विचारों के प्रसिद्ध उपदेष्टा श्री अनुरागदास जी से पारख सिद्धान्त की ओर प्रेरणा हुई। सन् १९४२ ई० में नरनाथ उपाध्याय बाराबंकी के सद्गुरु श्री विशाल साहेब के सम्पर्क में आये और सन् १९५२ में आप द्वारा ही नरनाथ उपाध्याय का साधु-वेष हुआ। गुरु द्वारा आपका नाम सत्यपाल दास रखा गया। आपने प्रथम भवयान सटीक छपाने में महत्वपूर्ण योगदान किया तथा अंत में आपकी लिखी व संपादित एक पुस्तक प्रकाशित हुई है 'सत्य बोधामृत'।

२२

श्री शांति साहेब

(जन्म १८९६, मृत्यु १९६६ ई०)

नेपाल की राजधानी काठमाण्डो के सुदूर पश्चिम 'तनहूं' नामक ग्राम में वेद-शास्त्रों के विद्वान एक 'हरिदत्त पंत' नामक ब्राह्मण पंडित रहते थे। उनके तीन पुत्र थे और एक पुत्री। उनका छोटा लड़का तीनो वेदों का विद्वान तथा वेदपाठी था। उनका मझला लड़का जिनका नाम 'बोधराज पंत' है आज

भी (विक्रमी सं० २०३६) काठमाण्डो में राजा द्वारा नम्बरी पंडित के रूप में मान्य हैं। नेपाल में पहले अच्छे पंडित को नम्बरी पंडित कहते थे।

हरिदत्त पंत की जो एक पुत्री थी, उसका नाम 'हरिकुमारी' था। वह बचपन से ही भक्तिमती एवं उपासना-परायणा थी। नदी में खड़ी होकर घंटों जप, पूजा, पाठ आदि करती रहती थी। लड़की पिता के साथ जन्मस्थान छोड़ कर काठमांडो में आ गयी और वहां आने पर समसामयिक कबीर साहेब के विचारों के उपदेष्टा श्री अनुरागदास के सत्संग में जाकर ज्ञानार्जन करने लगीं और पीछे इन्होने ही श्री रामस्वरूप साहेब जी आदि को परमार्थ मार्ग में बढ़ने के लिए बल दिया। काठमांडो के अन्य जिज्ञासुओं की भांति हरिकुमारी जी की पहली दीक्षा अनुरागदास जी से ही हुई और वे नवम्बर १९३९ में बुरहानपुर (भारत) आकर श्री बालक साहेब से पुनः दीक्षा लेकर नेपाल लौट गयी और समय-समय से बुरहानपुर आकर संतों के दर्शन करती रही तथा नेपाल में रहती रही। आपको हम श्री शांति साहेब के नाम से जानते हैं। आपकी रची 'शांति संदेश' तथा 'शांति स्मृति' दो पुस्तके हैं।

२३
श्री नेत्र बहादुर थापा
(जन्म १९०६, मृत्यु १९८६)

नेत्र बहादुर थापा का जन्म काठमांडो मे क्षत्रिय परिवार में हुआ। आप श्री आज्ञा साहेब के बड़े भाई हैं। आपका अध्ययन भारत के पटना विश्व-विद्यालय, नेब्रासका, हार्बार्ड (यू० एस० ए०) में हुआ। आप नेपाल में १२ वर्षो तक स्कूल-कालेज में भूगोल शिक्षक रहे, फिर इंस्पेक्टर आफ स्कूल, अर्थ मंत्रालय में उपसचिव, सर्वे डाइरेक्टर, शिक्षा डाइरेक्टर तथा अन्त में मुख्य प्रशासक शिक्षा सामग्री केन्द्र शिक्षा मंत्रालय से विक्रमी संवत २०२७ में सेवानिवृत हुए।

आप ने भारत, चीन, थाईलैंड, फिलिपीस, जापान, अमेरिका, विलायत, फ्रांस, इटली, आष्ट्रीया, स्वीटजरलैंड, डेनमार्क, फिनलैंड, रशिया, पोलैंड, लाटभीया, लिथुयानिया आदि देशो में भ्रमण किया। आपने स्कूल-कालेज के विद्यालयो के लिए भूगोल, इतिहास एवं सामान्य ज्ञान आदि पर नेपाली भाषा में उन्नीस (१९) पुस्तके लिखी और इंगलिश में दो—ए हिस्ट्री आफ नेपाल तथा कल्चरल एकानामिक जाग्रफी आफ नेपाल। आप की धार्मिक पुस्तके पांच

हैं—पुष्पांजलि, पुकार, गीता पर टीका, कबीरदेव के मुख्यग्रंथ मूल बीजक का नेपाली भाषा में छन्दों में रूपांतर और नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान रायल अकाडेमी के आग्रह से नेपाल एन्साईक्लोपीडिया के लिए 'कबीर का परिचय'। आपका ६ मई १६८६ ई० को काठमांडो में अपने निवास पर ही निधन हो गया। आप श्री विशाल साहेब के शिष्य थे। आप का पारख सिद्धांत के प्रति बहुत बड़ा योगदान रहा है।

२४

श्री शरण साहेब

(जन्म १६१२ ई०)

आपका पूर्वाश्रम का नाम श्रीपाल था। आपका जन्म बाराबंकी जिले के ग्राम मजगवां शरीफ के एक कुर्मी परिवार में हुआ था। आप करीब तेईस (२३) वर्ष की उम्र में गृह त्यागकर श्री चेतन साहेब के साथ राजस्थान चले गये। आपका साधु-वेष श्री विशाल साहेब के करकमलों द्वारा हुआ। आप गुरुदेव श्री विशाल साहेब की सेवा में रहने लगे। बीच में आप ने बुरहानपुर जाकर श्री लाल साहेब से बीजक-पंचग्रंथी की विधिवत शिक्षा ग्रहण की और श्री लाल साहेब की सेवा की। पुनः पीछे बाराबंकी में आकर श्री विशाल साहेब की शरण में रहने लगे। आप श्री विशाल साहेब की वाणियो के प्रकाशन में काफी श्रम करते थे। आप विशेष बाराबंकी-लखनऊ आदि जिलों मे विचरण करते रहते हैं। आप तितिक्षु, उदार और वैराग्यवान सन्त हैं। आपकी रचनायें हैं—कबीर महिला उद्धार, कबीर मानव प्रकाश व जीवन सुधा, बाल युवक मानवता प्रकाश व सीख बतीसी और पारख भजन माला।

२५

श्री प्रेम साहेब (बाराबंकी)

(जन्म १६१४ ई०)

श्री प्रेम साहेब का जन्मस्थान गोरखपुर जिला के ग्राम मकुनही में है जो आजकल देवरिया जिला में पड़ता है। यह जगह गोरखपुर-भटनी लाइन मे

देवरिया के पूर्व नूनखार स्टेशन के पास है। आपके पिता का नाम रामरक्षा तिवारी था जो फैजाबाद के एक सरकारी संस्कृत पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। श्री प्रेम साहेब का पूर्वाश्रम का नाम जयदेव तिवारी था। आपके बचपन में ही आपके पिता का निधन हो गया था। माता जीवित थीं। जयदेव जी ने कक्षा चार तक स्कूल में पढ़ा था तथा अपने नाना साहेब से लघु सिद्धान्त कौमुदी पढ़ रहे थे। उन्होंने एक दिन ध्रुव नाटक देखा और उनका मन हुआ कि हम तपस्या कर भगवान के दर्शन प्राप्त करें। इतने में एक श्रवण कुमार नाटक का खेल देखे, तो मन हुआ माता जी की सेवा करें। माता जी ने जयदेव का विवाह रचाना चाहा। इसलिए जयदेव जी घर छोड़कर भगवान के दर्शन के लिए अयोध्या पहुंच गये। वहा एक पंडित से अष्टाध्यायी पढ़ने लगे; परन्तु घर वाले पता लगाकर पकड़ न ले जायं—इस डर से वहां से निकल कर सरजू तट पर दो दिन भगवान की खोज में भटकते रहे। वे सोचे, बिना गुरु के भगवान न मिलेगा, अतः फैजाबाद से लखनऊ जाने वाली गाड़ी पर बैठकर अनिश्चित स्थान को चल दिये। दरियाबाद स्टेशन उतर कर कुड़वासा नाम के गांव में अचानक एक कबीरपंथी संत की कुटी पर पहुंच गये और वहां रहने लगे। वैदिक संध्योपासना करते तथा स्थान पर प्राप्त श्री पूरण साहेब की बीजक टीका त्रिज्या पढ़ते। उसे पढ़कर विचार बदल गया। अपनी मोटी चोटी तथा जनेऊ उतार कर स्थान के संत श्री भान साहेब से साधु-वेष ले लिये। गुरु ने जयदेव तिवारी का नाम 'प्रेमदास' रखा। परन्तु श्री भान साहेब जो श्री प्रेम साहेब के दीक्षागुरु हुए कोई ज्यादा ज्ञानी नही थे; अतः श्री प्रेम साहेब आगे पढ़ने तथा सत्संग करने के लिए वहा से आज्ञा लेकर लखनऊ मेंहदीगज कबीर मन्दिर में चले गये। उस समय इस मन्दिर में श्री देवा साहेब के गुरु श्री गोविन्द साहेब विराजमान थे। उन्होंने श्री प्रेम साहेब की केवल १२-१३ वर्ष की उम्र देखकर उनके घर पत्र दिलवा दिया। घर वाले आकर श्री प्रेम साहेब को घर बुला ले गये।

परिवार वाले कहने लगे कि घर पर रहो। श्री प्रेम साहेब ने माता से कहा कि श्री पूरण साहेब की बीजक टीका मंगा दो, तो मैं कुछ दिन घर पर रह सकता हूं। माता ने कहा "नही, बीजक मत पढ़ो, वह जोलाहा का बनाया है, गीता-रामायण पढ़ो और मैं संस्कृत-अध्यापक रख कर तुम्हे संस्कृत पढ़ाऊंगी।" श्री प्रेम साहेब को माता की छोटी बुद्धि पर दया आयी वे समझे कि इन कुटुम्बियों में रहकर वैराग्य-मार्ग नही सध सकता और वे वहां से निकलकर पुनः बाराबंकी जिले में आ गये। उस समय एक प्रसिद्ध पारखी संत श्री शीतल साहेब बाराबंकी जिले मे थे, जिनका सौ वर्ष से अधिक आयु होकर

अभी हाल में आगरा में शरीर छूटा है। अचानक श्री प्रेम साहेब जी उनके समाज में पहुंच गये और कुछ दिनों में वहीं पर श्री विशाल साहेब के दर्शन हुए। उस समय श्री विशाल साहेब की उम्र करीब सैंतीस वर्ष की थी और श्री प्रेम साहेब की करीब चौदह वर्ष की। श्री विशाल साहेब तो प्रायः बच्चो से बोलते ही नहीं थे। बल्देव साहेब के संकेत से श्री प्रेम साहेब श्री विशाल साहेब से मिले और अंततः सदा के लिए उन्ही की शरण में हो गये। आपने कुछ काल के बाद बुरहानपुर जाकर श्री लाल साहेब द्वारा बीजक-पचग्रथी का अध्ययन किया और पुनः श्री विशाल साहेब के पास आकर उनके साथ जीवन भर रहे। आपके द्वारा बहुत बड़ा जनकल्याण हुआ और हो रहा है। आप बालवत सरल, निर्मल चित्त, आशुकवि, कुशल प्रवक्ता, साधना सम्पन्न, वैराग्य प्रवर, निर्मान, रहनी सपन्न संत है। जिन संतो का अभी शरीर मौजूद है, उनकी अधिक प्रशंसा लिखना मेरी धृष्टता होगी, अतएव ऐसे संतों की अधिक प्रशंसा न कर मैं उनका परिचय मात्र दूगा।

आपने 'सत्यज्ञान मार्तण्ड, अपनी जागृति तथा मुमुक्षु स्थिति शिक्षा प्रवाह'—इन तीनों ग्रंथों की रचना की। तत्पश्चात भवयान, मुक्तिद्वार, सत्य-निष्ठा एवं नौ नियम की विस्तृत टीका लिखी और अभी दो वर्ष पूर्व 'विशाल वृत्तान्त' लिखा। आपके भजनों का संग्रह भी 'विशाल सरोज भजन माला' नाम से प्रकाशित है और 'विशाल जीवन दर्शन' भी आपकी रचना है जो पारख प्रकाश त्रैमासिक पत्र में क्रमशः छपा है।

२६

श्री आज्ञा साहेब

(जन्म १९१४ ई०)

आपका जन्म नेपाल राज्य को बड़ी नगरी एवं राजधानी काठमांडो में भाद्र कृष्णा अष्टमी विक्रम संवत १९७१ को थापा क्षत्रिय परिवार में हुआ। आपका माता-पिता का दिया हुआ नाम लीला बहादुर थापा था। माता का नाम विष्णु कुमारी था; परन्तु वहां के प्रसिद्ध कबीरपंथी गुरु अनुरागदास जी के द्वारा उनका नाम निर्मला बाई रखा गया था। पिता का नाम प्रेम वहादुर थापा था जो गुरु विशालदेव द्वारा संतसनेही रखा गया था। प्रेम बहादुर थापा फौज में कप्तान थे।

लीला बहादुर थापा चार भाई हैं। बड़े भाई नेत्र बहादुर थापा हैं जिनका परिचय इसी अध्याय में आप पढ चुके हैं। उसके बाद मीन बहादुर थापा हैं जो पारख सिद्धान्त के अच्छे साधक हैं और इस समय (१९८० ई०) काठमाडो में सुप्रीमकोर्ट के जज हैं। सबसे छोटे भाई विद्वान संन्यासी स्वामी दिव्यानन्द नाम से प्रसिद्ध हैं। तीसरे मझले लीला बहादुर थापा हैं। स्वामी दिव्यानन्द को छोड़कर आप का पूरा लम्बा परिवार श्री विशाल साहेब का शिष्य है।

लीला बहादुर थापा की बचपन से ही धार्मिक अभिरुचि थी। नेपाल सिविल सर्विस अध्ययन करने के बाद आप सर्विस में लगा दिये गये; यद्यपि आपकी शादी हो गयी थी, परन्तु आप घर-गृहस्थी से हट कर तीर्थ यात्रा के बहाने घर से निकले और जनकपुर धाम, वनसखंडी बाबा की रामधुनी, बंगाल, काशी, प्रयाग, वाराहक्षेत्र, मुक्तिनाथ धाम, अयोध्यादि भ्रमण कर और अनेक मतो के सतों के दर्शन-सत्संग करते हुए वि० सं० १९९७ मे सद्गुरु विशालदेव के दर्शनार्थ उत्तरी भारत के बाराबंकी जिले के दरिगापुर ग्राम म पहुचे। गुरु विशालदेव के एकान्तवास, नैराश्य बर्ताव, पारख सिद्धान्त और सत्सग से आप बहुत प्रभावित हुए। विशालदेव के आज्ञानुसार आप नेपाल लौट गये और उसके बाद आपने वहां श्री शाति साहेब से प्रथम दीक्षा ली।

आप दुबारा पुनः एक साल बाद अन्य संतो के साथ बाराबंकी, बुरहानपुर भ्रमण करते हुए राजस्थान के कोटा जिले के शीशवाली आश्रम पर पहुंच कर विशालदेव के दर्शन किये, क्योकि उस समय आप वही पर विराजमान थे। आपका साधु-वेष फाल्गुन कृष्णा ६ गुरुवार विक्रम संम्वत २००६ में बंधौली कुटी बाराबंकी में हुआ। आपको गुरु का दिया हुआ नाम आज्ञादास है। जिन्हें हम श्री आज्ञा साहेब के नाम से जानते हैं। आप तपस्वी एवं साधनापरायण संत हैं। आप दो-दो, चार-चार सौ मील पद यात्रा करते हुए भ्रमण करते रहते हैं। आपने हिन्दी में 'विशाल विभूति' नाम की पुस्तक लिखी है जो १५४ विंदुओं, चार अध्यायो तथा दो खण्डों में विभक्त है। आपकी नेपाली रचनाये आठ (८) हैं—भर्तृहरि सार शतक (तीनों का सार), अपना बोध पर टीका, निर्णय प्रवेशिका, आफ्नू थान्को, अमनस्कंदकला गीता, पारख प्रमोद (काठमांडो के कवि शिरोमणि श्री लेखनाथ के ९७ प्रश्नों का उत्तर), छंद प्रबंध तथा बीजक पर नेपाली भाषा मे टीका।

२७

श्री रामसूरत साहेब

(जन्म सन् १९१६)

आपका जन्म विक्रम संवत १९७३ में गोण्डा जिला (उत्तर प्रदेश) के खिरचीपुर ग्राम में एक कुर्मी परिवार में हुआ। पिता का नाम रघुवीर वर्मा था। आपका नाम श्री रामसूरत जी था। आपने बारह वर्ष की उम्र तक हिंदी और उर्दू विद्या पढ़ी। घर पर संतों का समाज आता रहता था। घर पर एक भ्रमणशील वैष्णव संत श्री पटेश्वर महाराज अधिक आया करते थे। संतों को देखकर आपके मन में भी होता था कि मैं भी साधु बनूं। संस्कार अच्छे थे और बारह-तेरह वर्ष की उम्र में ही घर से निकल कर अयोध्या चले गये। उस समय सरयू के माझा मे श्री मौनी जी महाराज का संत समाज सहित निवास रहता था। उनके पास आप ५-६ महीने रहे। उसके पश्चात विद्या पढ़ने के लक्ष्य से ही आप चित्रकूट गये। वहां से पुनः घर लौट आये।

आप घर पर आने वाले संतों से कहते कि मुझे आप अपने साथ ले चलें; परन्तु कम उम्र तथा घर वालों के संकोच से कोई संत आप को अपने साथ नही ले जाता। अंततः आप घर से निकल कर थोड़ी दूर पर बिसही नदी पर घटुलिया नाम के एक वैष्णव आश्रम पर चले गये। पीछे आपके पिता आपको बुलाने गये और मिलकर कहे "ठीक है, वैराग्य करना अच्छा है; परन्तु तुम किसी रहनी संपन्न तथा विद्वान सत के पास रहो अभी घर चलो।" बालक ने कहा "आप अपने घर भण्डारा करिये, तब मै आपके घर आऊंगा।" घर पर भण्डारा हुआ। बालक गया। वहीं पर बड़हरा के वैष्णव सत श्री राजाराम दास जी महाराज आये। आपके व्यक्तित्व तथा सदाचार से बालक प्रभावित होकर आप के साथ हो लिया और आपके द्वारा ही बालक का साधु-वेष हुआ। वेष देते समय गुरु ने कहा—"तुम्हारा नाम जो पहले से है, ठीक ही है। इसलिए मैं इसी नाम को रहने देता हूं।" उन्होने उस समय यह दोहा कहा—

जाति बरण कुल देह के, सूरत मूरत नाम।
उपजै बिनसै देह सो, पांच तत्व का गाम॥

घटुलिया पर ही बालक को बीजक की श्री पूरण साहेब रचित टीका (त्रिज्या) मिल चुकी थी और आप को वह सही लगी थी, अतएव गुरु श्री राजाराम दास जी महाराज तथा शिष्य श्री रामसूरत दास जी महाराज—

दोनों वैष्णव संत बीजक टीका, सखुन बहार दर्पण, निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन का अध्ययन तथा विचार करने लगे। इस समय बड़हरा स्थान के अधिकारी श्री पूरण साहेब आदि को साथ लेकर कबीर मठ भुजहवा, त्रिवेणी आदि की यात्रा भी किये।

एक बार एक भण्डारे में पोरा (फैजाबाद) के प्रसिद्ध संत परमहस श्री सुकई साहेब मिले और उन्होने वैष्णव साधु श्री रामसूरत दास जी से कहा कि आप जब बीजक टीका पढ़ते है, तब बुरहानपुर जाकर इसकी ठीक से शिक्षा प्राप्त कर लें। अत: आपने यह बात गुरु श्री महाराज राजाराम दास जी से कही। उन्होने सहर्ष स्वीकृति दी और वैष्णव वेष बदल कर पारखी का वेष उन्हें देकर तथा मस्तक में खड़ा सफेद तिलक लगाकर बुरहानपुर भेज दिया। उस दिन से श्री रामसूरत दास जी महाराज श्री रामसूरत साहेब के नाम से जाने गये। इस समय आपकी उम्र कोई पन्द्रह वर्ष की थी।

आपने बुरहानपुर जाकर और दो वर्ष वहां रह कर श्री लाल साहेब से बीजक-पंचग्रथी की विधिवत शिक्षा पायी। फिर श्री लाल साहेब के साथ ही आप मालवा, राजस्थान, संहारनपुर, बिजनौर आदि होते हुए बाराबकी श्री विशाल साहेब के पास आये। बाराबंकी मे श्री विशाल साहेब के पास श्री लाल साहेब रुक गये और श्री रामसूरत साहेब ने अपने गुरु स्थान बड़हरा (गोण्डा) आकर श्री लाल साहेब को लाने की व्यंवस्था की और तब श्री लाल साहेब को बाराबंकी से बड़हरा लाये, जिसमे बाराबंकी के भी १०-१२ सत श्री निराश साहेब आदि थे। इसी समय श्री लाल साहेब द्वारा महाराज श्री राजाराम दास जी को महन्ती की चद्दर दी गयी तथा आप ही द्वारा उनका नाम बदल कर 'राजाराम दास' से 'विवेकदास' रखा गया, जिनको हम 'श्री विवेक साहेब' के नाम से जानते हैं। यह समय कोई सन् १९३७ ई० का था।

चार साल के बाद श्री लाल साहेब का पुन: बस्ती जिले में पदार्पण हुआ और उस समय आप डुमरियागंज से करीब पांच मील दक्षिण तेनुहार ग्राम में थे। इधर बड़हरा में श्री विवेक साहेब का शरीर छूट गया तथा श्री लाल साहेब ने बड़हरा भंडारे में आकर श्री रामसूरत साहेब को महंती की चद्दर दी। यह समय सन् १९४२ ई० का था। तब से आपके वैराग्य, पवित्र जीवन तथा तात्कालिक उत्तम व्यवहार से एवं श्री कबीर साहेब के उज्ज्वल पारख सिद्धान्त से प्रभावित होकर हजारो शिष्य आपकी शरण में आये और करीब सौ जिज्ञासु आपके विरक्त शिष्य हुए और होते ही जा रहे है। आपकी

चार रचनायें—विवेक प्रकाश, रहनि प्रबोधिनी, बोधसार तथा गुरु पारख बोध मूल-टीका सहित छपकर प्रसिद्ध है तथा अन्य अनेक रचनायें पांडुलिपि के रूप में विद्यमान हैं।

२८

श्री सन्तशरण साहेब

(जन्म १९१९ ई०)

आपका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में काठमाण्डो में हुआ। आप वर्तमान बुरहानपुर गद्दीनशीन श्री रामस्वरूप साहेब के फूफेजात भाई हैं। आप दोनों को संस्कृत का ज्ञान श्री रामस्वरूप साहेब के पितामह एवं श्री संतशरण साहेब के मातामह से हुआ था। श्री संतशरण साहेब मातामह के शरीरांत होने पर घर त्याग कर किशोरावस्था में ही भारत के अनेक तीर्थ-स्थलों एवं आश्रमों में घूमे। आप ने कुछ दिन बम्बई में श्री कृष्ण गंगाविष्णुदास के यहां रह कर उनके सहयोग से विद्याध्ययन किया। अंत में चलते समय वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस के मालिक ने कहा कि एक आध्यात्मिक पुस्तक कोई भी जो कहो उसे मैं आपको पढ़ने के लिए दे दूं। आपने श्री पूरण साहेब की बीजक टीका मांगी और उसे लेकर वहां से निकल पड़े। वहां से बुरहानपुर आकर श्री लाल साहेब के दर्शन किये। श्री लाल साहेब द्वारा बाराबंकी के श्री विशाल साहेब का परिचय प्राप्त हुआ और फिर उनके दर्शन किये।

आपका कोई बीस-इक्कीस वर्ष की उम्र में बुरहानपुर में श्री छोटे बालक साहेब से साधु-वेष हुआ। आप जैसे घर में श्री रामस्वरूप साहेब के फूफेजात भाई थे, वैसे साधु-वेष में भी गुरुभाई हो गये। तत्पश्चात आप कभी बुरहानपुर श्री लाल साहेब तथा कभी बाराबंकी श्री विशाल साहेब के पास रह कर सत्संग-सेवा का लाभ लेते रहे। जब सन् १९४६ ई० में श्री लाल साहेब का शरीरांत हुआ, तब आप अधिक श्री विशाल साहेब का आधार लेकर रहने लगे।

आप एक विशद व्याख्याकार वृत्ति के पारखी संत हैं। त्याग-तपस्या संत की रहनी ही है। आपकी नेपाली भाषा में दो महत्वपूर्ण रचनायें हैं 'विवेक मार्तण्ड' तथा 'सद्धर्म अहिंसा प्रकाश'। दोनों ग्रंथ वेद-शास्त्रादि के प्रमाणों से अलंकृत किये गये हैं।

२६
श्री रामस्वरूप साहेब
(जन्म १६२० ई०)

श्री रामस्वरूप साहेब का जन्म नेपाल राज्य की राजधानी काठमाण्डो के यटखाटोल मोहल्ले में एक वैदिक ब्राह्मण के यहां विक्रमी संवत १६७७ आषाढ़ शुक्ल दशमी शुक्रवार तद्नुसार २५ जून १६२० ई० में हुआ। आपके पितामह संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, उन्हीं से आपने संस्कृत की शिक्षा पायी। पीछे काठमांडो के प्रसिद्ध समसामयिक कबीरपंथी श्री अनुरागदास जी से, जो उस समय कबीर साहेब जी के विचारों के वहां प्रचारक थे, आपने कबीर साहेब के विचारों की ओर मोड़ पाया। फिर उन्ही से उपदिष्ट श्री शांति साहेब द्वारा आप तथा आपकी माता जी को कबीर साहेब का अधिक ज्ञान मिला। आपका बचपन का नाम 'भक्त बालक' था तथा आपकी माता का नाम 'धीरज माता'।

पुत्र और माता साधना की दृष्टि से श्री शांति साहेब के साथ काठमाडो से पश्चिम बागलुग के पास पांगा ग्राम की अमराई कुटी में कुछ दिन रहते रहे। उस समय आपकी उम्र तेरह (१३) वर्ष की थी। वहीं आपने श्री शांति साहेब से बीजक मूल, निर्णयसार, पंचग्रंथी, पारखबोध आदि ग्रंथ लेकर पढ़ा। फिर आपने श्री शांति साहेब के ही आधार में पाल्पा तानसेन मे काफी दिनो निवास किया। वही से चलकर भक्त बालक भारत आये और २६ दिसम्बर १६३६ ई० में श्री कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर आकर वहां के समसामयिक गद्दीनशीन श्री छोटे बालक साहेब के दर्शन किये और आप ही के कर-कमलो द्वारा भक्त बालक का ११ जनवरी १६४० ई० को साधु-वेष हुआ और आप द्वारा 'भक्त बालक' नाम बदल कर 'रामस्वरूप दास' रखा गया जो आज श्री रामस्वरूप साहेब के नाम से जाने जाते है। इस समय बाराबकी के संत श्री वासुदेव साहेब बुरहानपुर में साधुओं को बीजक पढ़ाते थे और हमारे गुरुदेव श्री रामसूरत साहेब भी वहां रह कर अध्ययन कर रहे थे। इस समय श्री लाल साहेब जी बाराबंकी जिले में विद्यमान थे और समय-समय से श्री विशाल साहेब और श्री लाल साहेब का मिलन तथा सत्संग चला करता था।

दिसम्बर १६४१ में आप को श्री छोटे बालक साहेब एवं श्री लाल साहेब द्वारा स्थान बुरहानपुर की गद्दी पर बैठाया गया। तत्पश्चात आपने श्री लाल साहेब से बीजक-पंचग्रन्थी आदि का विधिवत अध्ययन किया। आप अध्ययन करने के बाद स्थान बुरहानपुर तथा सिन्धखेड़ा आदि की व्यवस्था

दायित्वपूर्वक देखते रहे और साधु-समाज को बीजक-पंचग्रन्थी भी पढ़ाते रहे। आप एक प्रतिभा सम्पन्न संत हैं।

आप स्थान बुरहानपुर तथा तत्संबंधित स्थानों का ट्रस्ट कर संत-भक्तों को उसका अधिकारी एवं कार्यकर्ता चुन दिये है तथा अब आप स्वतंत्र होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में एवं नेपाल की राजधानी काठमाण्डो में समय-समय से रहते हैं और समय-समय से बुरहानपुर के श्री कबीर निर्णय मन्दिर में विराजते हैं। आप निवृत्तिपरायण, स्पष्ट वक्ता एवं रहनी सम्पन्न संत हैं।

रचनायें

आपने बीजक, पंचग्रंथी, वैराग्यशतक, निर्णयसार, कबीर परिचय, जड़-चेतन भेद प्रकाश, न्यायनामा, संध्यापाठ आदि ग्रंथों की विस्तृत व्याख्या लिखी है तथा श्री बालक भजन माला, स्वरूप भजन माला, भजन अमर सागर, मानव कल्याण प्रबोध, पंचशतक साखी, भक्ति पुष्पांजलि, छन्द कविता-वली आदि अनेक पद्य के मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं।

३०

श्री गुरुशरण (अध्यापक) साहेब

(जन्म १९१९ ई०)

श्री गुरुशरण साहेब जी का जन्म उत्तर प्रदेश, बस्ती जिला भानपुर खास के पास बड़ोखर ग्राम में एक वैश्य परिवार में हुआ था। आप पहले वैष्णव भक्त थे और कट्टर मूर्तिपूजक। पीछे पारखी संतो के सम्पर्क में आकर कट्टर पारखी बन गये। आपके साधु-वेष की दीक्षा बस्ती जिले के पारखी संत श्री मुरली साहेब से हुई थी। आपने बीजक-पंचग्रंथी का अध्ययन श्री रामस्वरूप साहेब जी से किया था। आप वहां बहुत वर्षों से साधु-समाज को बीजक-पंचग्रंथी पढ़ाते है तथा समय-समय भ्रमण करके भी समाज को सत्योप-देश देते हैं। आप एक दृढ़ विचार के कट्टर पारखी सन्त और विस्तृत विवेचक हैं।

आपकी रचनायें बोध प्रकाश, रहनि परीक्षा निर्णय बोध, धर्म सनातन शुद्ध विचार आदि हैं।

३१

कुछ अन्य वरिष्ठ पारखी संत

कुछ अन्य वरिष्ठ पारखी संत हुए और वर्तमान में हैं जिन्होंने कोई ग्रंथ तो नही लिखा, किंतु अपनी दिव्य रहनी, स्वच्छ वैराग्य एवं सद्विद्या से समाज का बहुत बड़ा कल्याण किये व कर रहे हैं। उनके नाम और स्थान इस प्रकार हैं श्री सेवा साहेब (भड़रा-सतना), श्री सुकई परमहंस साहेब (पोरा-फैजाबाद), श्री शीतल साहेब (आगरा), श्री वासुदेव साहेब तथा श्री निराश साहेब (बाराबंकी), श्री अमृत साहेब (काशी कबीरचौरा के वर्तमान [सन् १९८० ई०] गद्दीनशीन), श्री हीरा साहेब (पारा-लखनऊ), श्री सेवक साहेब (रसौटा-रायपुर) श्री गुरुबोध साहेब (धानेपुर-गोंडा) आदि।

दूसरा अध्याय समाप्त

३

पारख सिद्धान्त

सद्गुरवे नमः

कबीर-दर्शन

तीसरा अध्याय

पारख सिद्धान्त

१

प्रस्तावना

अध्ययन के केवल दो विषय हैं—स्व और पर। स्व चेतन है और पर जड़। इस निखिल विश्व में तीसरा और कुछ नही है। स्व-चेतन को ही जीव, आत्मा, द्रष्टा, ज्ञाता, साक्षी, हंस, पारखी आदि शब्दो से कहा जाता है और जड़ को दृश्य, साक्ष्य, ज्ञेय, प्रकृति, जड़-द्रव्य आदि कहा जाता है। निखिल दार्शनिक जड़ और चेतन का ही अध्ययन करते है। दर्शन-प्रणाली के असंख्य विभेद केवल तीन में बांटे जा सकते हैं—(१) जड़ से चेतन की उत्पत्ति हुई, (२) चेतन से जड़ की उत्पत्ति हुई और (३) जड़ तथा चेतन—दोनों उत्पत्ति-रहित अनादि और अनन्त हैं।

पहला जड़वाद या जड़ाद्वैतवाद है। यह मानता है कि जड़ द्रव्य चिरंतन, अनुत्पत्ति, अनादि एव अनन्त हैं। उन्हीं से विकासवादी क्रम के लंबे दौरान में चेतन का विकास या उत्पत्ति हुई। अतएव जड़ द्रव्य प्रथम और चेतना गौण है। चेतन कोई परिनिष्ठित एवं नित्य वस्तु नही। दूसरा चेतनवाद या चेतनाद्वैतवाद है। यह मानता है कि जड़ द्रव्य एवं जड़ तत्वो का वस्तुत: कहीं कोई अस्तित्व ही नही है, केवल एक चेतन की ही अनादि तथा अनन्त सत्ता है। इस चेतन ही से जड़ जगत का विकास हुआ है, या कहना चाहिए कि यह जड़ जगत चेतन की कल्पना का प्रतिबिंब है। दर्शन की तीसरी प्रणाली न जड़ाद्वैतवादी है और न चेतनाद्वैतवादी। यह विवेकवादी है। यह जड़ और चेतन के भेद को मौलिक रूप मे स्वीकार करती है। इस विचारानुसार न जड़

से चेतन की उत्पत्ति हुई है तथा न चेतन से जड़ की, क्योंकि जड़ और चेतन में गुणात्मक भिन्नता है, जो कभी एक नहीं हो सकते। अतएव जड़ और चेतन अनादि और अनन्त हैं। दर्शन की ये तीनों प्रणालियां सदा से रही हैं। सद्गुरु कबीर का पारख सिद्धान्त तीसरी प्रणाली—जड़ और चेतन की मौलिक भिन्नता—का चिंतक है, जिसको हम भलीभांति आगे देखेंगे।

२

विचारों की प्राचीनता

दर्शन के किसी भी विचार को हम एकदम नवीन नहीं कह सकते। इस अनादिकाल के जगत में विभिन्न विचारों के लोग सदैव से रहे हैं। युधिष्ठिर भीष्म जी से पूछते हैं "हे राजन! जगत में कुछ विद्वान जड़ और चेतन अथवा प्रकृति और पुरुष दो तत्वों का प्रतिपादन करते हैं। कुछ लोग जीव, ईश्वर और प्रकृति—इन तीन तत्वों का वर्णन करते हैं। और कितने ही विद्वान अनेक तत्वों का निरूपण करते हैं, अतः कहीं न विश्वास किया जा सकता है और न अविश्वास। इसके सिवा वह परब्रह्म परमात्मा दिखाई भी नहीं देता। नाना प्रकार के शास्त्र हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार से उनका वर्णन किया गया है; इसलिए पितामह! मै किस सिद्धान्त का आश्रय लेकर रहूं, यह मुझे बताइये[1] ?"

प्रागैतिहास काल में कपिल और कणाद, इतिहास काल के आरम्भ में बुद्ध और महावीर तथा इस सहस्राब्दि के भीतर कबीर—ये ऐसी प्रतिभा तथा स्वतंत्र चिंतन के पुरुष हैं जो अनुपम हैं। हम देखते हैं कि सांख्यमत[2] प्रवर्तक

१. केचिदाहुर्द्विजा लोके त्रिधा राजन्ननेकधा।
न प्रत्ययो न चान्यच्च दृश्यते ब्रह्म नैव तत् ॥
नाना विधानि शास्त्राणि युक्ताश्चैव पृथग्विधाः।
किमधिष्ठाय तिष्ठामि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥
(महाभारत शांतिपर्व-मोक्ष धर्म, अध्याय २२२, १-२ गीता प्रेस)

२. ईसा की तीन शताब्दी पूर्व बने अर्थशास्त्र (१/१-३) में कौटिल्य ने शुरू ही में चार विद्यायें बतायी है—अन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दडनीति। ऋक्, यजु, तथा सामवेद का समन्वित नाम त्रयी है, जिसमें कर्मकांड, चार वर्ण एवं आश्रमों का समाहार है। खेती, व्यापार, पशुपालन वार्ता विद्या है एवं राजनीति

कपिल जड़ और चेतन दो ही मानते हैं जिन्हें वे क्रमशः प्रकृति और पुरुष के रूप में स्वीकार करते हैं। वे पुरुष अर्थात चेतन को एक नही, किन्तु नाना स्वीकार करते हैं। वे वेद के प्रमाणों को स्वीकार करते हैं; परन्तु सापेक्ष, और वैदिक कर्मकाडों को अशुद्धि, क्षय तथा सातिशयता इन तीन दोषों से पूर्ण मानते हैं। ईश्वर को अस्वीकार करते हैं। वे विवेक ही मोक्ष का साधन मानते हैं। करीब इसी प्रकार कणाद जड़ परमाणु और अनेक आत्माओं की व्याख्या करते हैं, जिनका विस्तार हम चौथे अध्याय में देखेगे। वस्तुतः कपिल और कणाद भारतीय दर्शनों के पिता कहे जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। बुद्ध और महावीर कपिल और कणाद के समान ही स्वतन्त्र विचारक हैं, और यहां तक कह सकते हैं कि कुछ अधिक ही स्वतत्र। कबीरदेव इसी प्रकार स्वतंत्र प्रज्ञा के पुरुष है। हम कह सकते है कि कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर और कबीर भारत के ऐसे मनीषी रचनाकार हैं जो पुस्तको की दोहाई, ईश्वर, अवतार, जाति-पांति तथा मिथ्या धारणाओं से हटकर मानवता, स्वावलंबन एवं स्वरूप-स्थिति के पक्षधर हैं। यद्यपि इनके सिद्धान्तो में परस्पर भेद है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि ये महापुरुष एक दूसरे से ज्ञान की उधारी लिये हैं। ऐसा प्रत्यक्ष देखा जाता है कि भिन्न देश और काल में भिन्न विचारक एक दूसरे से सम्पर्क पाये बिना एक ही सत्य को समान रूप से व्यक्त करते हैं। कौन दर्शन किस दर्शन से प्रभावित है—यह खोजबीन ज्यादा निष्पक्ष और हितकर नही होता। किस दर्शन के विचार किस दर्शन के कितने अंशो के समान है, यह तुलना अच्छी है और इससे एकता, उदारता, मेल-मिलाप की भावना बढ़ती है और इससे मिथ्या अहंकार का त्याग होकर एक सत्यता की स्वीकृति होती है। कोई अपने मत या दर्शन को सत्य मान सकता

तथा शासन-व्यवस्था दंडविद्या है। इन तीनों विद्याओं के पूर्व बतायी गयी पहली विद्या 'अन्वीक्षकी' है, जिसमें सांख्य, योग और लोकायत है। 'सांख्य' दर्शन है, और 'योग' तो उसका साधना पक्ष है तथा 'लोकायत' मनुष्य को अलौकिकता एवं स्वप्नराज्य से हटाकर लोक (संसार) की व्यवस्था की तरफ प्रेरित करता है। बारीकी से देखना, खोज, परीक्षण एवं परख करना—अन्वीक्षण है। सांख्य और लोकायत, दोनों अन्वीक्षण-परीक्षण के प्रेमी हैं। लोकायत केवल भौतिकवादी पक्ष रखता है; किंतु सांख्य भौतिक और अध्यात्म—दोनों पक्षों को रखता है। इसलिए अन्वीक्षकी विद्या में सांख्य का शीर्ष स्थान है। इस प्रकार पुराकाल में दर्शन की दृष्टि से सांख्य का सर्वोच्च स्थान था, उसके साथ योग और लोकायत का भी।

है; परन्तु यह नहीं कह सकता कि इस प्रकार अन्य कोई सोच ही नहीं सकता। जैसे सत्य को हम समझ सकते हैं, वैसे दूसरा भी समझ सकता है।

३

पारख सिद्धान्त के महापुरुष और परम्परा

सद्गुरु कबीर (१३९८-१५१८ ई०) इसके मुख्य आचार्य हैं। इसको आप इस ग्रंथ के पहले अध्याय 'बीजक मंथन' में पढ़ आये हैं। उसके बाद श्री श्रुतिगोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री जागू साहेब तथा श्री धर्म साहेब पारख सिद्धान्त के प्रचारक हैं। श्री पूरण साहेब के कथनानुसार श्री धर्म साहेब पारख सिद्धान्त के उपदेष्टा थे[1]। काशी कबीरचौरा के प्रथम प्रतिष्ठाता श्री श्रुतिगोपाल साहेब पारखी थे ही। इसलिए उनकी परम्परा में श्री रामरहस साहेब जैसे परम पारखी संत हुए। श्री भगवान साहेब धनौती भगताही मठ के अधिष्ठाता जीववादी पारखी संत थे, यह प्रसिद्ध ही है। इसकी चर्चा हम दूसरे अध्याय के शुरू में कर आये हैं। श्री जागू साहेब भी पारख के प्रचारक बताये जाते हैं। ये सभी संत कबीरदेव के समकालीन थे।

उक्त संतों के बाद जो पारख सिद्धान्त के केवल टीकाकार नहीं; अपितु उस पर मौलिक विचार दिये हैं, उन छह महापुरुषों के नाम यहां लिये जा सकते हैं—

श्री गुरुदयाल साहेब	(१६८०-१७६० ई०)	फतुहा (बिहार)
श्री रामरहस साहेब	(१७२५-१८०९ ई०)	गया (बिहार)
श्री पूरण साहेब	(१८०६-१८३८ ई०)	बुरहानपुर (म० प्र०)
श्री काशी साहेब	(१८५८-१९२४ ई०)	बुरहानपुर (म० प्र०)
श्री निर्मल साहेब	(१८८४-१९२० ई०)	अजगैवा गोरखपुर (उ० प्र०)
श्री विशाल साहेब	(१८८५-१९७७ ई०)	बाराबंकी (उ० प्र०)

इसके पश्चात श्री कुन्जल साहेब (पावा); महाराज श्री राघव साहेब (काशी), श्री रामस्वरूप साहेब (बुरहानपुर), श्री प्रेम साहेब (बाराबंकी), श्री रामसूरत साहेब (बड़हरा-गोण्डा) आदि के नाम लिये जा सकते हैं। पारख

१. पारख गुरु कबीर कहावें। पारख धर्मदास बतलावें॥
(निर्णयसार अन्त गद्यस्तुति)

सिद्धान्त के इन महान रचनाकारों तथा पारख सिद्धान्त के अन्य लेखकों का परिचय तथा उनकी रचना का सार व परिचय आप पीछे दूसरे अध्याय में पढ़ आये हैं।

कुछ विद्वान पारख सिद्धांत को निरस्त करने के लिए पारख सिद्धांत के प्राचीनतम गढ़ काशी कबीरचौरा, धनौती, फतुहा (बिहार) आदि से और वहां हुए पूर्ववर्ती पारखी संत श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब आदि से एकदम आंखें मींच लेना चाहते हैं और वे यह कहना चाहते हैं कि पारख सिद्धांत तो बुरहानपुर निवासी श्री पूरण साहेब की कल्पना है। वे सोचते हैं कि यदि हम पारख सिद्धांत को लेकर काशी कबीरचौरा, धनौती, फतुहा आदि एवं श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब आदि को याद करते हैं, तो पारख सिद्धांत श्री पूरण साहेब के पहले से सिद्ध हो जायेगा और उसका पलड़ा वजनदार हो जायेगा। परन्तु भाई, किसी सत्य को आप कब तक छिपाओगे? श्री पूरण साहेब की पूर्व गुरु परंपरा पारखी थी, जिनकी उन्होंने वंदना की है। उनके पूर्ववर्ती श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब पारख सिद्धांत का प्रचार कर ही रहे थे। उनके भी पूर्व कबीर साहेब तक पारखी संतों-भक्तो की परंपरा अक्षुण्ण थी।

काशी कबीरचौरा, धनौती एवं फतुहा कबीर मठ में ईसा की बीसवी शताब्दी के पूर्व कोई ऐसा ग्रंथ नहीं मिलता जो पारख सिद्धान्त से पृथक विचार रखता हो। काशी कबीरचौरा से संयुक्त गया-निवासी परम पारखी संत श्री रामरहस साहेब ने अठारहवीं शताब्दी मे पारख सिद्धान्त के महान ग्रंथ पंच-ग्रंथी की रचना की है। श्री मेंही साहेब ने, जो काशी कबीरचौरा के ही थे, उन्नीसवी शताब्दी में बीजक की टीका रची है, जो पूर्णतया पारख सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है और काशीकबीर चौरा के ही प्रसिद्ध विद्वान संत श्री महाराज राघव साहेब ने भी पूर्वार्ध बीसवी शताब्दी में बीजक की टीका लिखी जो पारख सिद्धान्त का प्रतिपादक है। इसके अतिरिक्त पचग्रंथी, निर्णयसार, कबीर परिचय, वैराग्यशतक आदि पारख सिद्धान्त के ग्रन्थो पर आपकी प्राजल टीकाएं हैं।

धनौती की भी, बीजक की एकमात्र प्राचीन टीका 'गुरुगमबूझ' पारख सिद्धान्त का ही ग्रन्थ है।

फतुहा कबीर मठ में भी बीसवीं शताब्दी के पूर्व ऐसा कोई ग्रन्थ नही है जो पारख सिद्धात से भिन्न मत रखता हो। अठारहवी शताब्दी का श्री गुरुदयाल साहेब की प्रसिद्ध रचना कबीर परिचय पारख सिद्धान्त का ठोस ग्रन्थ है।

अतएव उक्त शाखाओं में यदि आज कोई पारख सिद्धान्त से भिन्न विचार रखता है, वह सब परवर्ती है ।

यह सच है कि वंश-परंपरा पुराणवादी होने से उसके साहित्य शुरू से ही पारख सिद्धान्त से हटकर बनते रहे; परन्तु पारख सिद्धान्त के उच्च चितक उसमें भी होते रहे । और यह भी सच है कि उसका साहित्य पारख विचार से एकदम अछूता नहीं रहा । वंश-परंपरा के महान पौराणिक ग्रन्थ 'कबीर मंशूर' में लिखा है—"यह जीव जब पारख पद पर स्थिर हो जाता है, तो इसके एक-अनेक का भ्रम नष्ट हो जाता है, सब दौड़-धूप छूट जाती है । पारख से ही मन और बुद्धि स्थिर और शुद्ध होते हैं, इसका आवागमन दूर होता है, पक्के तत्त्व की प्राप्ति होती है, कच्चे तत्त्व का सम्बन्ध छूटता है । पारख गुरु से मिल कर गुरु रूप हो जाने में कुछ भी संदेह नही रहता[२] ।" ... "जो कोई पारख पद को प्राप्त कर लेता है, वह पारखी कहलाता है । पारखी गुरु सब भ्रम और धोखा को नष्ट कर देता है । एक, अनंत, बाहर, भीतर, पिंड, ब्रह्मांड—सब के भेद, कसर, खोट को भिन्न-भिन्न करके परखा देता है । पारखपद को प्राप्त हुआ पुरुष फिर कभी उससे पतित नही होता[३] ।"

जो लोग यह कहने का साहस करते हैं कि 'कबीर साहेब ब्रह्मवादी है और उनका पारख सिद्धांत से कोई मतलब नही तथा पारख सिद्धात कबीरपंथ में पर-वर्ती स्वरूप है ।' वे सद्गुरु कबीर के बीजक का निष्पक्ष होकर अध्ययन नही करना चाहते । प्रथम अध्याय बीजक मंथन में बीजक के विचारो को काफी विस्तार से देखा जा चुका है । पारख सिद्धान्त कबीर-विचारों से अलग होकर नहीं टपक पड़ा है । बिना पूर्वपरम्परा हुए भक्ताही धनौती, काशी कबीरचौरा, विद्दूपुर तथा श्री धर्म साहेब की परम्परा में पारख सिद्धान्त का समान विचार कैसे पनपता रहा !

सद्गुरु कबीर के बीजक के बाद पारख सिद्धान्त का प्रसिद्ध और प्रकाशित प्रौढ़ ग्रंथ श्री गुरुदयाल साहेब रचित कबीर परिचय है । इसके सारे विचार श्री गुरुदयाल साहेब के मस्तिष्क की देन नही है; किन्तु पूर्व परंपरा से उनके मस्तिष्क को भेदते हुए आये हैं । गया-निवासी श्री रामरहस साहेब रचित पंचग्रंथी बीजक की पहली भावात्मक टीका मानी जाती है । यह पद्यो मे बनी वृहद् पुस्तक है । इसके सभी महत्वपूर्ण विषयों के कथनो के अंत मे बीजक के मूल पदों के उद्धरण रखे गये हैं । पंचग्रंथी जैसे पारख सिद्धान्त का

२. कबीर मंशूर, पृष्ठ ११३३, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, वि० सं० १९९० ।

३. वही, पृष्ठ ११४० ।

असामान्य ग्रंथ जो बहुमुखी विषयों से पूर्ण है, एक व्यक्ति की कल्पना की उपज नहीं है; किन्तु उसके पीछे एक समृद्ध परम्परा है।

जिस प्रकार आज कबीरपंथ में पारख सिद्धान्त का एक अलग समाज है, पहले नहीं था। पहले पूरे कबीरपंथ की सभी शाखाओं में पारख सिद्धान्त के विचारक थे। इसीलिए भक्ताही शाखा धनौती, कबीरचौरा, धर्म साहेब की परम्परा तथा जागू साहेब की परम्परा में समान रूप से पारखी संतों का होना पाया जाता है। कबीरपंथ की सभी शाखाओं में पारख विचार की सरणी एक समान थी। काशी कबीरचौरा, धनौती, फतुहा, पावा पारख सिद्धान्त के गढ़ थे, और इतना ही नही, श्री धर्म साहेब तथा श्री जागू साहेब की शाखा में पारखी संत-भक्त पारख-विचार मे लीन थे।

आज पारखी संतों का कबीरपंथ में एक अलग-थलग समाज होते हुए भी, आज भी कबीरपंथ की प्रायः हर शाखा में पारख सिद्धान्त के विचारक एवं धारक पाये जाते हैं।

४

पारख सिद्धांत का संक्षिप्त स्वरूप

हम पारख सिद्धान्त को पचीस सूत्रों में संक्षिप्ततः कह सकते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. जड़ और चेतन दो वस्तुयें अनादि और अनन्त हैं।

२. जड़—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पांच तत्त्व हैं। पहले के चार द्रव्य हैं और आकाश गुण-धर्म-रहित केवल शून्य है।

३. चेतन—असंख्य हैं। वे व्याप्य-व्यापक रहित, एकदेशी, एक दूसरे से भिन्न तथा जड़ से सर्वथा पृथक हैं।

४. पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन चार तत्वों में उनके गुण, धर्म, शक्ति, क्रिया, आकार तथा परस्पर मेल—ये छह भेद स्वभावसिद्ध अनादि और अनन्त हैं।

५. असंख्य चेतन अनादि, नित्य, अजर, अमर, असंग, पारख रूप, ज्ञान रूप तथा स्वरूपतः शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप हैं; परन्तु वे अनादि वासनावश अनादिकाल से जन्म-मरण के प्रवाह में घूम रहे है।

६. जगत की सृष्टि जड़ तत्वों के स्वभावसिद्ध गुण-धर्मादि से प्रवाह रूप अनादि-अनन्त है। जो जीव मानव-शरीर में स्वरूप-बोध प्राप्त कर जड़-वासनाओं का त्याग कर देता है, वह सदैव के लिए विदेहमुक्त हो जाता है। शेष सृष्टि सदैव चला करती है।

७. सृष्टि का कोई अलग से कर्ता नहीं; किन्तु वह जड़-चेतन के गुण-धर्मो से स्वतः है।

८. वृक्ष-वनस्पतियां केवल जड़ तत्वों के गुण-धर्मो एवं बीजी असर से उत्पन्न होते है और वे सर्वथा निर्जीव हैं।

९. जीव मानव शरीर में जो कुछ शुभाशुभ कर्म करते हैं, उनके फल वे आज या आगे-आगे जन्मों में भोगते हैं।

१०. संतों की संगत, सद्गुरु के उपदेश तथा स्वतः विवेक से जड़-चेतन का भिन्न ज्ञान होता है।

११. शुद्ध शाकाहार, मन-वाणी-कर्मो की शुद्धि, दया, क्षमा, शील, विचार, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति, संतोष, शम, दम आदि शुभ रहनी से चलना मानवता है और यही मनुष्य धर्म है।

१२. स्वरूपस्थिति एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए शुद्ध ब्रह्मचर्य धारण एवं विषयवासना की सर्वथा निवृत्ति अपेक्षित है।

१३. सद्ग्रंथों का स्वाध्याय, सत्संग, सद्गुणों एवं स्वस्वरूप का चिन्तन और वैराग्यवान सद्गुरु-संतो का ध्यान तथा अंततः मन का द्रष्टा बनकर और संकल्पों को छोड़-छोड़ कर अपने आप शांत हो जाना—यह साधना क्रम है।

१४. व्यवहारकाल में अनासक्ति तथा समाधिकाल में संकल्पहीनता—स्वरूपस्थिति तथा जीवन्मुक्ति है।

१५. जीवन्मुक्त पुरुष शरीर छूटने पर सदा के लिए विदेहमुक्त होकर अपने आप नित्य सत्ता मे स्थिर रहता है।

१६. पारख एवं परख प्रमाण ही सर्वोपरि है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्दादि सारे प्रमाण स्वतः मान्य नही जब तक परख की कसौटी पर उन्हें कस न लिया गया हो।

१७. कोई पुस्तक स्वतः प्रमाण नहीं। जो कारण-कार्य-व्यवस्था एवं प्रकृति के अनुकूल तथा विवेक सम्मत हो वही बात माननीय है।

१८. दैवीय आकाशवाणी, चमत्कार, करामात, सृष्टिक्रम विरुद्ध बातें आदि मानव को बेवकूफ बनाने के लिए कुछ चतुर लोगों द्वारा रचे गये जाल हैं।

१९. कल्पित देवयोनि, भूत-प्रेत योनि तथा इस प्रकार के माने गये अदृश्य वायव्य योनियां केवल मनुष्यों के भ्रम एवं अज्ञान हैं।

२०. झाड़-फूक, मंत्र-तंत्र-यंत्र, टोना-टोटका, पुत्र-धनादि के लिए आशीर्वाद-शाप, शकुन-अपशकुन, दिशाशूल, ग्रह का टेढ़ा होना, उन्हें पूजा करके शांत करना आदि—लोगों की जालसाजियां, भ्रम एवं धोखे हैं।

२१. जड़ मूर्ति, चित्र, टोपी, गादी, किताब, समाधि आदि किसी भी प्रकार जड़ वस्तु की पूजा न करना, अपितु माता-पिता, बूढ़े-बड़े एवं संत-गुरु की ही पूजा तथा सत्कार करना।

२२. संसार के नर-नारी ही देवी-देवता हैं, आत्मा ही परमात्मा है तथा जीव ही शीव है। प्राणियों से अलग देवी-देवता तथा जीव से अलग परमात्मा खोजना एक भ्रम है।

२३. मनुष्य में वातावरण एवं जलवायु के अनुसार उनके शरीरों की भिन्न बनावट हो सकती हैं और उनके आचार-व्यवहारो में भिन्नता हो सकती है; परन्तु तत्वतः मानवमात्र की एक जाति है। मनुष्य अपने अच्छे-बुरे चरित्र से ही ऊंचा-नीचा हो सकता है। कल्पित वर्ण या जातियां मिथ्या धारणा मात्र हैं।

२४. स्त्री और पुरुष एक समान कल्याण साधना करने और कल्याण-प्राप्ति के अधिकारी है; परन्तु व्यवहार मे उनकी भिन्न मर्यादाये हैं।

२५. प्रागि मात्र के प्रति द्वेष का सर्वथा त्याग कर अपने हृदय में प्रेम का पूर्ण प्रकाश होना ही स्वर्ग-सुख की प्राप्ति है और सब तरफ से पूर्ण अनासक्ति ही मुक्ति-सुख की प्राप्ति है।

५

जड़ तत्व

भारत का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद केवल एक जलतत्व मानता है और उसी से अन्य तत्व का उत्पन्न होना बतलाता है[1]। संभवतः ऋग्वेद से ही यह

१. ऋग्वेद केवल एक जल की ही कल्पना करता है। यही आदि महाभूत है, जिससे धीरे-धीरे दूसरे तत्वों का विकास हुआ।
(डा० राधाकृष्णनकृत भारतीय दर्शन, खंड १, पृष्ठ ९४)

कल्पना मनुस्मृति में गयी है कि ईश्वर ने पहले जल पैदा किया[२]। आगे चल कर भावनावादी एवं चेतनाद्वैतवादी विचारधारा ने बताया कि आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से क्रमशः वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी पैदा हुए[३]। कणाद अपने वैशेषिक दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—ये पांच तत्व मानते हैं। आकाश निराकार है और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु परमाणु रूप में नित्य हैं। इन तत्वों का कोई उत्पन्न करने वाला नहीं। इन चार तत्वों के अगोचर परमाणुओं से ही दृश्यवान सारे पदार्थ निर्मित हुए हैं। वैज्ञानिक अधिकांशतः अठारहवीं शताब्दी से तत्वों के सूक्ष्म विश्लेषण में लगे और उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू तक तत्वों की गणना तीस हो गयी, और आज तक सौ से अधिक है। आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, गंधक, सोना, लोहा, सोडियम, तांबा, निकल, जस्ता, चांदी, रेडियम, थोरियम, यूरेनियम आदि तत्वों की इतनी लम्बी संख्या है कि हम उनको स्मरण में नहीं रख सकते। फिर इन तत्वों में ऐसे भी हैं जो अपने मूल रूप को छोड़कर दूसरा स्थान ग्रहण कर लेते हैं जैसे रेडियम का शीशा हो जाना आदि[४]।

२. मनुस्मृति १/८।

३. आत्मन् आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायु.। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी। (तैत्तरीय उपनिषद् २/१/१)

४. कुछ ऐसे भी तत्व हैं जो वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम रूप से बनाये गये हैं और उनके नाम आवर्तसारिणी में जोड़ दिये गये हैं जिनमें से थोड़ा विवरण नीचे दिया जा रहा है—

फिनलैंड के रसायनज्ञ योहान गैडोलिन के नाम पर ६४ वें तत्व का नाम गैडोलियम रखा गया।

१६४४ में ९६ वां तत्व बनाया गया। इसका नाम रेडियम और पोलोनियम की खोजी महिला मदाम क्यूरी तथा उसके पति पियरेक्यूरी के सम्मान में क्यूरियम रखा गया।

१६५३ में कृत्रिम रूप से अमेरिका में ९९ वें और १०० वें तत्व को बनाया गया। पहले का नाम अल्बर्ट आइन्स्टीन के नाम पर आइन्स्टीनियम तथा दूसरे का नाम एनरिको फेर्मी के नाम पर फेर्मियम रखा गया।

१६५५ में १०१ वां तत्व भी बना लिया गया। इस तत्व का नाम आवर्तसारिणी (तत्वों के वर्गीकरण का चार्ट) के जनक रूसी वैज्ञानिक मेण्डलीफ के सम्मान में मेण्डेलियम रखा गया।

पारख सिद्धान्त पांच तत्व मानता है पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश। आकाश शून्य को कहते है, इसलिए उसमें न परमाणु है और न क्रिया। इस प्रकार आकाश में कोई परिणाम, विकार, कार्य आदि न होने से उसे संज्ञा मात्र कहकर छोड़ देता है और पृथ्वी, जल, तेज, वायु के गुण-धर्मो पर ही विचार करता है। इसीलिए पारखी विचारक आकाश का नाम छोड़कर चार तत्व भी कहते हैं। सद्गुरु कबीर ने बीजक में पांच तत्वों के बारम्बार नाम लिये हैं[५]। परन्तु जहां उन्होने तत्वों को क्रियाओं का वर्णन किया है, पृथ्वी, जल, तेज, वायु—इन चार[६] ही तत्वो के नाम लिये हैं।

वैज्ञानिक अपने द्वारा निर्धारित शताधिक तत्वों को ठोस, तरल, वायव्य तथा अतिवायव्य—चार में विभाजित करते हैं। पारख सिद्धान्त सृष्टि की स्वाभाविक स्थिति के अनुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायु[७]—इन चार नामों से सम्पूर्ण तत्वों की व्याख्या करता है। पारख सिद्धान्त एक धार्मिक दर्शन है जिसका उद्देश्य जीव का जड़ बन्धनों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करना है। उसका उद्देश्य

डाइनामाइट के आविष्कारक वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबेल अपने पीछे अपार सम्पदा छोड़ गये थे। आज की शांति स्थापना तथा विज्ञान व साहित्य के क्षेत्र में अच्छा काम करने वाले व्यक्ति को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। जब १०२ वां कृत्रिम तत्व बन गया तब नोबेल के सम्मान में उस तत्व का नाम नोबेलियम रख दिया गया।

कृत्रिम रूप से तत्वोंके बनाने में वैज्ञानिक अर्नेस्ट लारेन्स द्वारा आविष्कृत उपकरण (साइक्लोट्रान) अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। अतः जब १०३ वां तत्व बन गया तो उसका नाम लारेन्स के सम्मान में लारेन्सियम रखा गया।

कुछ अपवाद भी हैं १०४ वें तत्व का नाम रूस के प्रधानमन्त्री खुश्चेव के नाम पर कुरचेतोवियम कर दिया गया। इसी प्रकार रूसी खनन अधिकारी कर्नल समस्को के नाम पर ६२ वें तत्व का नाम समेरियम रखा गया।

(दैनिक विश्वमित्र, कलकत्ता, ६ दिसम्बर १९८२ ई०, पृष्ठ ५)

५. बीजक, साखी २२, २३, २६, २७, आदि।

६. बीजक, रमैनी ७८।

७. "उपनिषदो में भी इस कल्पना के चिन्ह मिलते हैं, जो सब भौतिक पदार्थो को चार तत्वों, अर्थात अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी से बना हुआ मानते हैं। आकाश को छोड़ दिया गया है, क्योंकि इसका अपना एक विलक्षण स्वरूप है और यह अन्य तत्वों के साथ मिश्रित नहीं होता।"

(सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/१९३)

तत्वों का रासायनिक[८] अध्ययन नहीं है और न यांत्रिक उपकरणों का निर्माण है। अतएव उसे विज्ञान के शताधिक तत्वों की गणना करने के चक्कर में नहीं पड़ना है। विज्ञान के शताधिक तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में अन्तर्भुक्त हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन चार महाभूतों एवं तत्वों के पेट में ही जड़ प्रकृति की सारी सामग्री है। सभी जड़ तत्व भौतिक द्रव्य हैं। ये द्रव्य ठोस, तरल, वायव्य में भले बदलते रहें, किन्तु रहते हैं जड़ द्रव्य ही। इन द्रव्यों की अन्तिम इकाई परमाणु है। हम परमाणु उन्हें नहीं कह सकते जिन्हें तोड़ा जा चुका है। जो जड़ द्रव्य की अंतिम इकाई है, वही परमाणु है। कुछ लोग जो यह कहते हैं कि द्रव्य शक्ति (ऊर्जा) के रूप में बदल जाते हैं, उसका मतलब है कि द्रव्य एक रूप को छोड़कर दूसरा रूप ग्रहण कर लेता है। परमाणु के विस्फोट पर इलेक्ट्रॉंस, पॉजिट्रॉन्स और न्यूट्रॉन्स शेष रहते है। कहा जाता है वे केवल विद्युत कण हैं। उनके लिए एक नया शब्द गढ़ा गया क्वांटा (Quanta)। क्वांटा का अर्थ है जो कण भी हो और लहर (शक्ति) भी। वस्तुतः द्रव्य शक्तिमान है। शक्ति उससे अलग होकर नहीं रह सकती। शक्तिमान तथा शक्ति सर्वथा अभिन्न हैं। इसी प्रकार द्रव्य और गति एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। पदार्थ के अवस्था-भेद से गति में कमी-बेशी हो सकती है, जैसे लकड़ी, पत्थर, हीरे आदि के द्रव्यों में गति का अन्तर अवश्य है; परन्तु विश्व का कोई जड़ द्रव्य सर्वथा गतिरहित नही हो सकता। यदि कुछ समय के लिए किसी द्रव्य को गतिरहित मान भी लें तो वह सापेक्ष है, निरपेक्ष गति ही है।

६

तत्वों के षट्भेद

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में छह भेद हैं—धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल और आकार। पृथ्वी का धर्म कठोर, जल का शीतल, वायु का कोमल तथा अग्नि का गर्म है। पृथ्वी का गुण गंध, जल का रस, अग्नि का रूप तथा वायु

८. पदार्थों में मिलने वाले तत्वों का विवेचन करना और तत्वगत परमाणुओं में परिवर्तन होने पर पदार्थों की नयी स्थिति का निरूपण करना—रासायनिक अध्ययन है।

के स्पर्श और शब्द हैं। चारों तत्वों के कणों में स्वभावसिद्ध क्रिया है। पृथ्वी के कणों में क्रिया है। जल, अग्नि, वायु में विशेषतर क्रमशः नीचे, ऊंचे तथा तिरछे बहने की क्रिया है। पृथ्वी में धारणा और गुरुत्वा—दोनों शक्तियां हैं, जल में पिंड बांधने आदि की शक्ति है, वायु में तोड़-जोड़ की तथा अग्नि में जलाने की शक्ति है। चारो तत्वों के परमाणुओं में रसायन-शक्ति विद्यमान रहती है[1], जिससे हर निर्मित पदार्थ विशेष देश तथा काल के आयाम में अपने रूप बदलते रहते हैं। पृथ्वी आदि चारों तत्व अंशतः एक दूसरे में मिले रहते हैं और चारों तत्वो के परमाणुओं में आकार होता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म द्रव्य; जैसे कि जड़ द्रव्य की अंतिम इकाई—परमाणु में भी कुछ लबाई, चौड़ाई तथा मोटाई अर्थात घनमान होता है। परमाणु अदृश्य हैं, उनका घनफल निकालना कठिन है; परन्तु मोटे रूप में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु क्रमशः स्थूल-सूक्ष्म हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध—पांच विषय हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि के क्रमशः गंध, रस और रूप विषय हैं। वायु में दो विषय अर्थात गुण हैं स्पर्श और शब्द। वायु में स्पर्श रहता ही है और स्पर्श में ही शब्द उत्पन्न होता है। पारख सिद्धान्त शब्द को आकाश का गुण नही मानता। शब्द वायु का ही गुण है। एक बात अधिक उत्साह-वर्द्धक है कि पृथ्वी आदि उक्त चार तत्वोंके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पांच विषय हैं और इन पांच विषयो को ग्रहण करने के लिए क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाक पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। यदि विज्ञान द्वारा निर्धारित सौ से अधिक तत्व हैं, तो एक तत्व का एक विषय होने से सौ से अधिक विषय अर्थात गुण होने चाहिए और उन्हें ग्रहण करने के लिए सौ से अधिक इन्द्रियां; परन्तु ऐसा कुछ नहीं है। अतः यह विषय विचारणीय है।

७

जड़ से सर्वथा भिन्न चेतन अस्तित्व

जड़ाद्वैतवाद मानता है कि जड़ पदार्थ चिरंतन एवं अनादि हैं और चेतना उसके विकास-क्रम की उपज है। चेतन जड़ से पृथक कोई स्वतंत्र सत्ता नही है। यह कहता है एक परम सत्ता जड़ प्रकृति ही है। इसके ख्याल से आत्मा और देह को भिन्न मानना एक सनक है। परन्तु जीवन, संवेदना, चेतना,

1. जड़-चेतन भेद प्रकाश, १५ वें दोहे के बाद।

विचार, वाणी की शक्ति और इच्छास्वातंत्र्य के मूल कारण क्या हो सकते हैं— इन बातों को लेकर इन भौतिकवादियों के भी दिमाग चकरा जाते हैं।

भौतिकवादियों ने स्वयं यह घोषणा की है कि मूल जड़ द्रव्यों में चेतना का कोई अंश नहीं है। फिर इस हालत में जड़ द्रव्यों के संयोग से चेतना कैसे आ सकती है। भौतिकवादी कहते हैं कि 'गुड़, महुआ, दूध, अन्न इत्यादि मे नशा नहीं है; परन्तु उनको सड़ा देने से मदिरा मे नशा आ जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी आदि जड़ तत्वों में चेतना नही है; किन्तु उनके संयोग में चेतना आ जाती है।' उपर्युक्त युक्ति सर्वथा निर्बल है। अन्न, महुआ, गुड़, दूध आदि सभी में सूक्ष्म नशा है। अन्न-दूध आदि खाने-पीने के पीछे जो शरीर मे गरमी आती है वह नशा ही है। अतएव उनको सड़ाने से उनमें विशेष नशा प्रकट होता है। कपड़े में गध है, जलाने पर प्रकट होती है। मूल में जो गुण-धर्म नही होगे वे उनके कार्य में नहीं आ सकते। अतः जब पृथ्वी, जलादि जड़तत्वो में सूक्ष्म रूप में भी चेतना नही है, तब उनके संयोग मे चेतना कैसे आ सकती है। 'जो गुण-धर्म कारण में होते हैं, वही कार्य में आते हैं[1]।'

विज्ञान के मतानुसार शरीर के सारे परमाणु सात वर्ष मे बदल जाते हैं। यदि जीव जड़ परमाणुओ का ही योग होता तो वह सात वर्षो मे वदल जाता, अतः सात वर्ष पूर्व की बातें याद न रहती। जीव बचपन मे माता-पितादि को देखता है, जवानी में पत्नी-बच्चे तथा बुढ़ापा में पोते-प्रपोते को। अतः वह सभी अवस्थाओं में एक अखंड रहता है। जैसे वह पूरे जीवन की समस्त अवस्थाओ में एक अखण्ड रहता है, वैसे वह देहांतर में भी बना रहता है; क्योंकि वह जड़ से भिन्न धर्मी स्वतन्त्र द्रव्य है। मोटर का चालक मोटर से पृथक है, इसी प्रकार शरीर का चालक शरीर से पृथक है।

एक मनुष्य शब्द सुनता है, एक रूप देखता है, एक गंध सूघता है, एक स्पर्श करता है तथा एक रस चखता है, तो इन पांचो का ज्ञान एक छठें व्यक्ति को नही होता; परन्तु इस शरीर में आंख, नाक, कान, जिह्वा तथा त्वचा— पांचों ज्ञानेन्द्रियो से भोगे गये विषयों का ज्ञान एक चेतन को होता है। अतएव पांच ज्ञान इन्द्रियां स्वतंत्र नही हैं; अपितु इन पर चेतन ही स्वतन्त्र है। समस्त इन्द्रियो को स्वतन्त्रता से चलाने तथा रोकने वाला चेतन जीव की इन इन्द्रियो से सर्वथा पृथक सत्ता है। द्रष्टा ही स्मर्ता होता है। जो एक काल में किसी वस्तु को देखता है वह दूसरे काल मे उसका स्मरण करता है। एक आदमी घट देखता हे, उसको छूता है, दूसरे समय में उसकी याद करता है। अतः

१. कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः। वैशेषिक अ० २ आ० १ सूत्र २४।

शरीर में एक स्वतन्त्र चेतन द्रष्टा है। प्राणों का द्रष्टा, प्राणो का संचालक, उन्हें प्राणायाम द्वारा रोकने तथा छोड़ने वाला चेतन जीव प्राणों से भी पृथक है। मन का नियामक, मन का द्रष्टा जीव, मन से परे है। मन नही बड़ा है; किंतु मन का द्रष्टा जीव बड़ा है[२]। बढ़ई बसुला, रुखान आदि औजारो से लकड़ी को गढ़ता-बनाता है, इसी प्रकार जीव इंद्रिय-अंतःकरण द्वारा विषयो का उपभोग करता है। जैसे बढ़ई औजारों तथा लकड़ी से अलग है, वैसे जीव इंद्रिय-अतःकरण तथा विषयो से अलग है। बादल, तार, बल्ब आदि के आधार से रहित बिजली का स्वतंत्र प्रत्यक्षीकरण नही होता; परन्तु यह नही कह सकते कि बादल, तार, बल्ब आदि से बिजली अलग एक स्वतन्त्र पदार्थ नही है। इसी प्रकार देह-इन्द्रिय-अतःकरण के माध्यम से जीव का जगत मे प्रत्यक्षीकरण होता है; परन्तु वह उनसे एक स्वतंत्र सत्ता है।

दाल-भात को रोटी-साग नही खाते और न पीढ़ा, लोटा, ग्लास ही। भोगो को भोग नही भोगते; किन्तु चेतन द्रष्टा भोगते है। अतएव जड़-भोगों से चेतन सर्वथा पृथक है।

भौतिकवादी कहते हैं कि 'सारा ज्ञान-विज्ञान देह के अन्दर मे होता है। जड़ देह न हो तो आत्मज्ञान भी नही हो सकता।' परन्तु वे यह नही विचारते कि सारे भौतिक पदार्थो का विश्लेषण जड़ द्रव्य नही करते; किन्तु चेतन करता है। चेतन जीव न हो तो जड़ द्रव्यो के गुण-धर्मो का निर्धारण कौन करे ! जड़ द्रव्य को जड़ द्रव्य नही जानते; किन्तु चेतन जड़ द्रव्यो को तथा स्वयं को भी जानते हैं।

जीव को विज्ञान की धारा कहना गलत है जिसके विषय में क्षणिक विज्ञानवादी की यह धारणा है कि वह दीपक की ज्योति के समान क्षण-क्षण में लुप्त होता जाता है। श्री विशाल साहेब तर्क देते हैं कि "दीपक ज्योति का प्रकाश जड़ होने से एक ही काल में उसकी चारों ओर रहता है; परन्तु जीव की स्मृति एक काल में एक ही ओर रहती है। फिर यदि जीव क्षणिक विज्ञान है और वह क्षग-क्षग में लुप्त हो जाता है, तो बचपन के बिछुड़े हुए माता-पिता की याद कर व्यक्ति अपनी अस्सी वर्ष की उम्र में भी क्यो दुखी होता है। अतएव स्मृतियों का धारक जीव स्थायी है, नित्य है[३]।"

जैन विचारक श्री हेमचन्द्र जी ने ठीक ही लिखा है कि "क्षगिक विज्ञान वाद में पांच दोष प्रबलतम है—(१) कृतप्रणाश, (२) अकृत कर्मभोग, (३) भव-

२. ई मन बड़ा कि जेहि मन माना। बीजक, शब्द ११२।

३. लखो निज ज्ञान जीव भ्रमहारी'''में आगे। भवयान, पाठ १४ शब्द २२।

भंग, (४) मोक्षभग तथा (५) स्मृतिभंग । इन दोषों से प्रत्यक्षतः आंखें मूंद कर जो क्षणिकवाद मानता है, वह विपक्षी सचमुच बड़ा साहसी है[४] ।"

१. कृतप्रणाश—का तात्पर्य है किये हुए कर्मो का नाश। क्षणिक विज्ञान के अनुसार कोई भी पदार्थ या घटना बिना फल दिये ही लुप्त हो जाते हैं। कर्म करने वाले व्यक्ति को फल नहीं मिलता; क्योंकि फल पैदा होने के समय के पहले ही कर्म करने वाला अतीत के गर्त में चला गया। जब सत्तावान सारी वस्तु ही दूसरे क्षण विलीन हो जाती है, तब कर्म करने वाले का दूसरे क्षण न रहने से वह कर्म-फल कैसे पायेगा ? अतएव कर्म करने वाला उसका फल नहीं पाता ।

२. अकृत कर्म भोग—फल-भोग उसे हुआ जो कर्म किया नहीं है। जैसे रमेश ने हत्या की और हत्या करने के साथ रमेश की तात्कालिक सत्ता तो क्षणिक विज्ञान के अनुसार लुप्त हो गयी; परन्तु दो वर्ष के बाद जब रमेश नामक व्यक्ति को फांसी हुई, तब वह बिलकुल दूसरा ही है। मानो हत्या की रमेश ने और फल पाया सुरेश। कर्म करने वाला कोई विज्ञान तथा फल भोगने वाला कोई दूसरा विज्ञान। इस प्रकार क्षणिक विज्ञान मे न कर्म करने वाले को फल भोगने का प्रसंग पड़ता है जो अन्याय एवं दोष है।

३. भवभंग—का तात्पर्य है कर्म-फल-भोग की व्यवस्था में पुनर्जन्म लेने का उच्छेद। जीव अपने कर्म के फल-भोगों को भोगने के लिए तथा मानव जीवन में आध्यात्मिक उन्नति करने के लिए जन्म ग्रहण करते हैं; परन्तु क्षणिक विज्ञान के अनुसार स्थायी आत्मा न होने से कर्म करने वाला क्षणिक विज्ञान रूप आत्मा तो लुप्त हो गया, फिर वह जन्म क्योंकर लेगा। इस अंधेरखाता मे तो कर्म राम करें फल श्याम भोगे। अतएव पुनर्जन्म सिद्धान्त का उल्लंघन होगा। यही भवभंग दोष है।

४. मोक्षभंग—कर्मबंधनो एवं पुनर्जन्म से छूट कर शांति पाना मोक्ष है; परन्तु क्षणिक विज्ञान के अनुसार आत्मा स्थायी तो है नही, फिर मुक्त कौन होगा ? बौद्धों का आष्टांगिक मार्ग जो आध्यात्मिक उन्नति के लिए एक नैतिकता का पथ है, उसका भी वस्तुतः कोई फल नहीं। जब आत्मा नित्य है ही नही, तो मोक्ष के लिए पुरुषार्थ कौन करे ! स्थायी आत्मा न होने से उत्तर-

४. कृतप्रणाशाकृतकर्मभोग—भवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात्क्षणभङ्गमिच्छन्नहो महासाहसिकः परोऽसौ ॥
(वीरस्तुति १८)

दायित्व ही समाप्त हो जाता है। अतएव क्षणिक विज्ञानवाद में मोक्ष सिद्धान्त की हानि होती है।

५. स्मृतिभंग—किसी वस्तु, घटना आदि के ज्ञान के बाद उसकी स्मृति होती है। वस्तुतः ज्ञाता तथा स्मर्ता एक ही होता है, यह अपना सबका अनुभव है; परन्तु क्षणिक विज्ञानवाद तो कहता है कि ज्ञान करने के साथ ही, उसी क्षण ज्ञाता लुप्त हो गया, फिर स्मर्ता दूसरा हुआ। किन्तु एक का ज्ञान किया हुआ विषय दूसरे को स्मरण में नहीं आ सकता। यह जो व्यक्ति को दस, बीस, पचास, अस्सी वर्ष की पुरानी बातें याद होती हैं, स्मर्ता के स्थायी रहे बिना कैसे संभव है! इस प्रकार क्षणिक विज्ञानवाद में ज्ञान एवं अनुभव की स्मृति न रहना पांचवां दोष है।

अतएव क्षणिक विज्ञानवादी साहसिक हैं। अर्थात बिना विचार किये सहसा गलत निर्णय ले लेने वाले या असंभव बात को जोर देकर मानने वाले हैं।

इसीलिए परांकुशदास रामानुज के वेदान्त भाष्य की टीका 'श्रुति-प्रकाशिका' में बौद्धों और वेदांतियो पर व्यंग्य करते हुए कहते है "ऐ शंकराचार्य के अनुयायियो! तुम्हारे लिए वेद के उपदेश झूठे हैं और इसी प्रकार शून्यवादी बौद्धों के लिए बुद्ध के उपदेश झूठे हैं। तुम्हारे लिए वेद तथा बौद्धों के लिए बुद्ध-आगम के प्रमाण निरर्थक हैं। तुम दोनो के लिए बोद्धा, ज्ञाता जीव और बुद्धि-फल मुक्ति भी झूठे है। इसलिए तुम (मायावादी वेदाती) और बौद्ध दोनो एक सभा के हो[५]।"

बीजक में जड़ और चेतन को पृथक-पृथक रूप में स्पष्ट स्वीकार किया है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु के अंश जो शरीर में लगे हैं, अन्त में अपने-अपने कारण तत्वों में लीन हो जायंगे; परन्तु यह भूला जीव उसे अपना घर मानता है[६]। लोग अमृत वस्तु नही जानते, भोगो में ही मग्न हैं; स्वरूपत निष्काम तथा अविनाशी जीव ही अमृत है[७]। इस पांच तत्व विनिर्मित शरीर के भीतर गुप्त चेतन वस्तु का निवास है[८]। कबीर परिचय, पंचग्रंथी, निर्णय-

५. वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः प्रमाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्।
बोद्धाऽनृतो बुद्धिफले तथाऽनृते यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः॥
(दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ८२१, संस्करण १९६१)

६. बीजक, रमैनी ७८।

७. बीजक, रमैनी साखी १०।

८. बीजक, साखी २७।

सार आदि में अविनाशी जीवों का जड़ से भिन्न विवेचन है; परन्तु श्री काशी साहेब द्वारा जड़ और चेतन की भिन्नता का विवेचन, विवरण पूर्वक आरम्भ हुआ। यह निश्चित है कि सत्संग में इस प्रकार विवेचन पहले से होते चला आ रहा था; परन्तु श्री काशी साहेब से उसका ग्रंथ में विवरण आया। फिर तो श्री निर्मल साहेब तथा उसके बाद श्री विशाल साहेब ने इस पर उत्तरोत्तर वृहद प्रकाश डाला।

श्री विशाल साहेब कहते हैं "प्रकाश में पृथ्वी दिखाई पड़ती है और उसका ज्ञान होता है। प्रकाश तथा पृथ्वी के साथ जल का ज्ञान होता है और पृथ्वी, तेज तथा जल से विलक्षण, वस्तुओ को उड़ाने वाला एक चौथा तत्व वायु प्रत्यक्ष होता है। अथवा कठोर धर्म से पृथ्वी का ज्ञान, शीत से जल का, प्रकाश व गरमी से अग्नि का एवं कोमलता से वायु का ज्ञान होता है। इसी प्रकार ज्ञान से जीव का बोध होता है 'लक्षणा प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः' के अनुसार लक्षण प्रमाण से ही वस्तुओं की सिद्धि होती है। जीव देख, सुन, सूघ, छू तथा खाकर पांचो विषयों को जानता है। सुना हुआ भी न सुने हुए के समान है जब तक उसे जाने नही। इसी प्रकार खाना, सूघना, छूना, देखना तभी सिद्ध होता है जब उन्हे जान ले। कभी-कभी हमारी चेतना (स्मृति) अलग होने से हम सुनकर भी नहीं सुनते। तब कहने वाले से कहते हैं 'जरा फिर से कहिये तो' अतः इन्द्रियों के ऊपर इन्द्रियों का संचालक चेतन जड़ से सर्वथा पृथक है[६]। पारख सिद्धान्त में श्री विशाल साहेब ने जड़-चेतन का सर्वाधिक निर्णय किया है। उनके भवयान का सातवां प्रकरण देखने योग्य है।

कुछ भौतिकवादी कहते है कि जैसे पृथ्वी, जलादि जड़ तत्वो से बने कांटे और फूल उनसे विलक्षण दिखते हैं, वैसे ही जड़ तत्वो से बने हुए जीव जड़ से विलक्षण दिखते हैं। विशालदेव कहते हैं कि कांटे हो या फूल, उनका भौतिकी या रासायनिक अध्ययन किया जाये तो दोनों मे वे ही जड़ तत्व हैं; परन्तु चेतन जड़ तत्वों से सर्वथा विलक्षण हैं। फूल-कांटे आदि पृथ्वी आदि जड़ तत्वों से विलक्षण दिखते हुए वस्तुतः विलक्षण नही है और चेतन जीव जड़ तत्वो से सर्वथा पृथक एवं विलक्षण है। इस विषय का निर्णय भवयान के सातवें प्रकरण 'जड़ चेतन निर्णय' में बहुलता से है।

जागृतावस्था मे जीव पांच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पांचों विषयों को जानकर उनके संस्कार अंतःकरण में एकत्र करता है तथा अर्धसुषुप्ति मे उन संस्कारों का स्वप्न रूप में द्रष्टा रहता है तथा सुषुप्ति में सबका अभाव कर शांत

६. भवयान, प्रकरण ७/१।

रहता है और जाग्रत में आते ही पुनः इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करने लगता है। इस प्रकार अविनाशी चेतन जीव जो दिल, दिमाग, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि समस्त दृश्य वर्गो से पृथक है, वह तीनो अवस्थाओं का द्रष्टा और नित्य है।

मार्क्सवादी भौतिक द्वन्द्ववाद ने गुणात्मक परिवर्तन का अर्थ जो यह माना है कि असत से सत पैदा हो गया, अर्थात जड़ द्रव्य में चेतना नही थी और कालान्तर में उससे पैदा हो गयी, एक मिथ्या धारणा है। पोषक तत्व आक्सीजन तथा मारक तत्व हाइड्रोजन मिलकर जीवनदायी पानी बन जाता है। इतना ही नहीं, मधु और घृत जो दोनों पोषक हैं, एक निश्चित मात्रा में मिलकर प्राणनाशक जहर बन जाते हैं। पानी मे नमक घुल जाता है; परन्तु पानी के परिवर्तित रूप वाष्प मे नमक नही घुलता। इन्हे गुणात्मक परिवर्तन कह सकते है; परन्तु इससे यह नही सिद्ध होता कि जड़ से चेतन बन गया। उक्त उदाहरणों मे तत्व पोषक से मारक या मारक से पोषक हो गये; परन्तु रहे जड़ के जड़ ही। 'भौतिक द्रव्यो से चाहे जितने ही विलक्षण दिखते हुए कार्य बन जाये, परन्तु वे रहते है जड़ लक्षण के युक्त ही।' इस विषय को श्री विशाल साहेब ने 'भवयान' के सातवे प्रकरण 'जड़ चेतन निर्णय' मे विस्तार से लिया है।

अति निकट की वस्तु जानने में कठिनता होती है। दूर के पर्वत तो दिखते हैं, परन्तु अपनी आंखो मे लगा हुआ कज्जल नही दिखता। जीव सबको तो जानता है; परन्तु अपने आपको ठीक से नहीं जानता; परन्तु जीव का अपना न होना असंभव है। जीव पर संदेह करने वाला जीव ही है। वह अपनी भूल से अपने आप पर संदेह करता है। इसीलिए डेकार्ट ने कहा था कि संशय एक विचार है और यदि मैं हूं ही नही, तो मै विचार कैसे कर सकता हूं। मै सोचता हूं, संशय करता हूं, इसलिए मैं हूं[१०]। भामतीकार भी इसी प्रकार कह रहे हैं "किसी को यह संदेह नही होता कि मैं हूं या नही हूं[११]।" अतएव "सर्व प्रमाणों के अस्तित्व का 'मै' ही प्रमाण है[१२]।"

चेतन जीव का अन्य कोई कारण न होने से वह स्वतः, नित्य और अविनाशी है; परन्तु यह विषय इतना सूक्ष्म है कि इस पर हर समय शंकाशील लोग थे। कठ उपनिषद का नचिकेता भी यमराज से कुछ इसी प्रकार प्रश्न

१०. I think therefore I am.

११. न हि कश्चित् सन्दिग्धे ऽहं वा न ऽहं वा इति। भामती।

१२. सर्व प्रमाण सत्तानां प्रमाणं अहं एव हि।

करता है "व्यक्ति के मर जाने पर कुछ लोग कहते हैं आत्मा रहती है और कुछ लोग कहते हैं नहीं रहती[१३]।" फिर यमाचार्य ने विस्तार से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध किया है। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा "आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने तथा ध्यान करने योग्य है[१४]।" छांदोग्य उपनिषद के अंत में इसी आत्मा की महिमा सनत्कुमार ने नारद से कही है। यह न भूलना चाहिए कि "ज्ञान के अतिरिक्त स्थायी ज्ञाता भी है[१५]।" मीमांसा सूत्र के भाष्यकार शबर स्वामी कहते हैं "आत्मा अपने द्वारा स्वयं जानने योग्य है। उसे न दूसरों द्वारा दिखाया जा सकता है न देखा जा सकता है[१६]।"

वुंट जर्मनी में एक बहुत बड़े वैज्ञानिक हुए हैं। उनकी 'मानव और पाशव मनोविज्ञान पर व्याख्यान' नाम की पुस्तक १८६३ ई० मे छपी। उन्होंने उसमें शरीर से भिन्न चेतन सत्ता को अस्वीकार कर दिया; परन्तु आगे चलकर अपने अज्ञान पर उनको तरस आयी और १८९२ ई० जब अपने ग्रथ का दूसरा संस्करण निकाला, तब उन्होंने आत्म-अस्तित्व को स्वीकार किया और अपनी भूल पर लिखा "मैंने अपनी जवानी के अविवेक मे जो कुछ लिखा, उससे मुक्ति पाने के अवसर में था और अव मैंने उससे छुटकारा ले लिया है।" वुंट ही नही, कांट, विरशो, रेमंड, वेयर आदि वैज्ञानिक एवं दार्शनिकों ने अपने भौतिकवादी विचार छोड़कर चेतन पक्ष को स्वीकार किया[१७]।"

हर्बर्ट स्पेंसर कहते हैं "गुरु, धर्मस्थापक, दार्शनिक चाहे पुराने हों या नये, पश्चिम के हों या पूर्व के यह सब अनुभव करते हैं कि वह अज्ञात और अज्ञेय तत्व वह स्वयं है[१८]।" आर्थर एच० कांपटन कहते हैं "निष्कर्ष संकेत करता है…मौत के बाद चेतना के अस्तित्व की संभावना है। ज्योति काष्ठ से

१३. येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। कठ० १/२०।

१४. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः। (बृहदारण्यक उपनिषद् २/४/५)

१५. ज्ञानातिरिक्तः स्थायी ज्ञाता वर्तते।

१६. स्वसंवेद्य संभवति नासावन्येन शक्यते द्रष्टुं दर्शयितुं वा। शबर।

१७. विश्व प्रपंच, पृष्ठ ६४। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१८. The teachers and founders of the religion have all taught, and many philosophers ancient and modern, western and eastern have percieved that this unknown and unknowable is our very self. (First principles 1900)

से अलग है। काष्ठ ज्योति प्रकट करने का साधन मात्र है[१६]।" सर आलीवर लॉज भी कहते हैं "आत्मा, मृत्यु और जन्म के बीच में उसी प्रकार यात्रा करती है, जैसे व्यक्ति दो दिनों के बीच में स्वप्न देखता है[२०]।" डा० गाल कहते हैं "मेरी समझ से इस शरीर में एक ही ऐसी वस्तु है जो देखती, सुनती, अनुभव करती, प्रेम करती, सोचती, याद करती है इत्यादि। परन्तु इसे अपने भिन्न-भिन्न कार्यो के करने के लिए विविध भौतिक साधनो की आवश्यकता पड़ती है[२१]।"

आज-कल के भौतिकवादी कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फासफोरस आदि बारह भौतिक पदार्थो से बने प्रोटोप्लाज्म नाम के पदार्थ को जीव द्रव्य मानते हैं जो तरल एव चिपचिपादार होता है। सार यह है कि जीव भौतिक द्रव्यों से बना है। परन्तु भौतिकवाद के अनुसार ही जड़ परमाणुओं की चाल एक सेकेंड में एक लाख मील है। फिर ऐसे तेज से भागने वाले जड़ कणो द्वारा स्मृतियों का यह क्रम कैसे बना रह सकता है। इस झटाके से भागते हुए परमाणु कैसे दूसरे परमाणुओं को पूर्व संस्कार समर्पित करते रहते हैं!

विज्ञान ने कहा कि पृथ्वी आग का गोला थी। फिर इसमें जीव कहां से आये? तारिकामंडल से टूटे हुए चट्टानों के साथ; परन्तु बड़े-बड़े चट्टान रास्ते में पिघल कर वाष्प बन जाते है, फिर वह तरल प्रोटोप्लाज्म नामधारी जीव कैसे इतना संघर्षपूर्ण सुरक्षित यात्रा कर सका? तब वैज्ञानिको ने कहा कि जीव अकस्मात पृथ्वी पर ही प्रकट हो गये। जब विज्ञान के पास कोई चारा न रहा, तो उसने जीव का अकस्मात प्रकट होना बतलाया जो विज्ञान के कारण-कार्य-व्यवस्था के विरुद्ध है। इसीलिए मिस्टर जे० ए० थौमसन कहते हैं

१६. A conclusion which suggestes...the possibility of concious-ness after death...the flame is distinct from the log of wood which serves it temporarily as fuel.

२०. The soul of man passes between death and ribirth in this world as he passes through dreams in the night between day and day.

२१. In my opininon there exists but one single principle which sees, hears, feels, loves, thinks, remembers, etc. But this principle requires the aid of various material instruments in order to manifest its respective functions.

(जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान, पृ० १००-१०४)

"पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ कैसे हुआ विज्ञान के पास इसका उत्तर नहीं है[२२]।"

चेतन जीव व्यक्तित्व में अनेक हैं, किन्तु उनकी जाति एक है, गुण-धर्म—ज्ञान एक है। न जड़ से जीव बना है न जीव से जड़। जड़ और चेतन दोनों अनादि, अनन्त एवं नित्य हैं। जड़ तत्व विकारी परिवर्तनशील है और स्वाभाविक एक दूसरे से मिले हुए है और चेतन निर्विकारी, एकरस, अखण्ड, अजर, अमर तथा जड़ से सर्वथा असंग हैं। वे केवल वासनावश भटकते हैं। वासना त्याग कर अपने आप स्थित हो जाते हैं।

जीव किसी महाचेतन का अंश भी नहीं है। अंश कहते है टुटे हुए को। अंश अविनाशी नही हो सकता तथा अविनाशी अंश नही हो सकता। संसार में कोई एक भी ऐसा द्रव्य नहीं है जो अविनाशी तथा अंश एक साथ हो। अतएव जीव न अंश है न अंशी। वह अखण्ड तथा नित्य है।

चेतन से सर्वथा पृथक अनेक जड़ तत्व सत्तात्मक, अनादि एव अनन्त हैं। इस प्रकार द्वैत है, अद्वैत नहीं। चेतन जीव असंख्य, एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं। इसलिए वे व्यापक तथा सर्वदेशी नही हो सकते। द्वैत एक की व्यापकता में अवरोधक है। एक अद्वैत व्यापकवाद मे गति, स्फूर्ति, परिवर्तन आदि असंभव हैं और ये प्रत्यक्ष हैं। अतएव अनेक जड़ तत्वों से पृथक असङ्ख्य चेतन अनादि तथा अनन्त है। व्याप्य तथा व्यापकवाद असंभव है।

जीव में ज्ञान प्रक्षिप्त नहीं है; अपितु जीव का स्वरूप ही ज्ञान है। जैसे अग्नि का स्वभाव ही जलाना है; परन्तु जब तक वह अन्य वस्तुओं का संयोग नही पाती, तब तक किसको जलावे। इसी प्रकार जीव का स्वभाव ही ज्ञान है; परन्तु जब तक देह-इन्द्रिय-अंतःकरण तथा बाह्य विषयों का संयोग नहीं पाता तब तक वह किसका ज्ञान करे। जैसे तृणरहित अग्नि, वैसे प्रकृतिरहित जीव। "जैसे सूर्य और उसका प्रकाश दो नही, वैसे जीव और उसका ज्ञान दो नही[२३]। जीव ज्ञान मात्र है। उसका स्वरूप ही ज्ञान है[२४]।" पांच तत्व,

२२. How did living creatures begin to be upon the earth ? In point of science, we do not know.

(Introduction to science. P. 142)

२३. सूर्य प्रकाश भिन्न नहिं दोई। वैसे जीव धर्म चित्र दोई ॥

२४. जानहि मात्र जीव है सोई। जानते अधिक और नहिं कोई ॥

(निर्णयसार, चौ० ४२)

तीन गुण, वीर्य, रक्त, तेज, तम, श्वासा—इन सबका ज्ञाता इनसे भिन्न है[२५]।" शून्य का ज्ञाता शून्य से पृथक है। जीव शून्य नही। वह सत्य चेतन है[२६]।" चेतन गुणी है और पारख अर्थात ज्ञान उसका गुण है जो उसका स्वरूप है, भिन्न नही[२७]।" जीव न किसी का कारण है और न कार्य। वह स्वयं नित्य स्वरूप है।

८

ज्ञान सापेक्षवाद और निरपेक्षवाद

पारख सिद्धान्त मानता है कि सभी ज्ञान सापेक्ष (परतन्त्र) हैं। जड़ और चेतन—दोनों अपने स्वरूप में मौलिक होने से एक दूसरे से पृथक तथा निरपेक्ष (स्वतन्त्र) सत्तायें हैं; परन्तु मनुष्य को उनका ज्ञान सापेक्ष ही होता है। इसके विषय में सद्गुरु विशालदेव ने कहा है[१] सूरज उगने पर प्रकाश फैलता है; तब हम उसमें इस विशाल पृथ्वी को देखते हैं और समझते हैं कि यह असंख्य कार्य-पदार्थो को धारण की हुई है। यदि सूरज न उगे तो हम पृथ्वी का ठीक ज्ञान नही प्राप्त कर सकते। अतएव पृथ्वी का ज्ञान सूर्यसापेक्ष (सूर्य के अधीन) हुआ। इसी प्रकार पृथ्वी तथा प्रकाश के सम्बन्ध में हमे जल का ज्ञान होता है। जल ठहरने की जगह पृथ्वी न हो तथा प्रकाश न रहे, तो हम जल का ज्ञान नही प्राप्त कर सकते। पृथ्वी, जल तथा अग्नि से कोई वस्तु उड़ती नहीं है; परन्तु संसार में देखा जाता है कि धूल, कण, पत्ते, पतंग, पताके, गुब्बारे, पक्षी, यान आदि आकाश में उड़ रहे है तो ज्ञात होता है कि उन तीनो से पृथक वायु तत्व विद्यमान है जिसका त्वचा मे स्पर्श होता है तथा जिसके माध्यम से उक्त वस्तुये एवं प्राणी उड़ते है। पृथ्वी, जल तथा वायु में प्रकाश नहीं है, इसलिए हम जानते हैं कि इन तीनो से पृथक प्रकाश-धर्म वाला एक तत्व है जिसे हम अग्नि कहते हैं। ठंडा, गरम, कोमल, कठोर का ज्ञान भी होना संभव तभी है जब सभी तत्व मौजूद हो। पानी की शीतलता का

२५. निर्णयसार ३६-३७।

२६. शून्यहि जानै शून्य न होई। जाननहार जीव है सोई॥ (निर्णयसार, चौ० ३८)

२७. चेतन गुण पारख गुणी, एक स्वरूप न आन॥

(जड़-चेतन भेद प्रकाश, दोहा ५)

१. भवयान, जड़-चेतन निर्णय, प्रसंग १।

अनुभव पहले होने से, पीछे आग के सम्बन्ध में गरमी का अनुभव होता है। पहले पृथ्वी तथा उसके कार्य पदार्थों की कठोरता का अनुभव होने से ही पीछे कोमल वायु का भिन्न ज्ञान होता है। किसी भी तत्व के गुण प्रकट होने के लिए उससे भिन्न तत्वों के संयोग की आवश्यकता है और तभी उसका ज्ञान प्राप्त होना संभव है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में क्रमशः कठोर, शीतल, गरम तथा कोमल धर्म है और गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द गुण हैं। गुण-धर्मों को छोड़कर पदार्थ की सत्ता का अनुभव होना असंभव है और गुण-धर्मों का प्रकट होना तभी संभव है जब उनके उत्प्रेरक अन्य तत्व भी विद्यमान हो।

जड़ तत्व स्वतः ज्ञाता-बोद्धा नही है। किसी भी जड़ तत्व का विश्लेपणात्मक एवं रासायनिक अध्ययन करने पर भी उनमें चेतना का कोई लक्षण नहीं मिलता। जड़ तत्वों के कार्य पदार्थ व कारण समूह जैसे नदी, पर्वत, बादल, पृथ्वी, सूरज, तारे आदि को अपने या दूसरे का कोई ज्ञान नहीं है। न सूरज पृथ्वी को जानता है और न पृथ्वी सूरज आदि को। न मिट्टी को जल जानता है और न मिट्टी जल आदि को। अतएव जड़तत्वों का ज्ञान चेतनसापेक्ष है। इसके विपरीत जीव मौलिक रूप में ज्ञान स्वरूप है; परन्तु जड़देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से एकदम पृथक होकर उसको बाह्य ज्ञान होना असंभव है। अतएव बाह्य ज्ञान जितना ज्ञानवान चेतनसापेक्ष है, उतना ही जड़-देहसापेक्ष है। इस वास्तविकता को स्वीकार करने में कोई खतरा की आशंका नहीं करना चाहिए। एक वास्तविकता को झुठलाना अपने आपको झूठा बनाना है। हर मौलिक पदार्थ की सत्ता निरपेक्ष (स्वतन्त्र) है; किन्तु उसका ज्ञान सापेक्ष (परतन्त्र) है—इसकी चर्चा पहले ही की गयी है। जड़ से सर्वथा पृथक चेतन का निरपेक्ष अस्तित्व है—इस विषय को हम पिछले संदर्भ में देख चुके हैं।

श्री निर्मल साहेब कहते है "सभी ज्ञान सापेक्ष है, शास्त्र, पुराण और वेद के मंत्रो की यही सम्मति है। रात की अपेक्षा से दिन तथा दिन की अपेक्षा से रात सिद्ध होती है। इसी प्रकार साक्षी और साक्ष्य का ज्ञान भी सापेक्ष है[२]।"

आक्सीजन तथा हाइड्रोजन क्रमशः एक और दो मात्रा में मिल जाने से पानी का रूप उपस्थित हो जाता है—इसका ज्ञान मनुष्य को पहले नहीं था,

२. सापेक्षा ते ज्ञान सिद्ध सर्वत्र है।
कहता शास्त्र पुराण वेद का मंत्र है॥
रैन सपेक्षा दिवस दिवस ते रैन है।
साक्षी साक्ष्य विचार देख निज बैन है॥
(निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर, सत्यासत्य विवेचन)

परन्तु ज्ञान न होने पर भी उनकी सत्ता तो थी ही। जीव को अपने स्वरूप का ज्ञान जब तक नही होता, उसकी सत्ता में कोई विघ्न नही पड़ सकता। जैसे एक तत्व के आधार में दूसरे तत्व का ज्ञान होता है, वैसे दृश्यों के आधार में अपने द्रष्टा स्वरूप का ज्ञान होता है। जब व्यक्ति विवेक करता है कि शब्द का सुनने वाला कौन है, गंध, स्पर्श, रूप और रस को किसने जाना तथा इन सारे दृश्यों का विश्लेषण, परीक्षण एवं अनुसंधान कौन करता है, तब दर्पण प्रतिबिंबवत उसकी दृष्टि अपने पर लौटती है, कि मैं ही तो इन सबको जानता हू, अतएव मै जानने वाला इनसे पृथक हू।

जीव मूलत: ज्ञानस्वरूप है। वह जो कुछ बाह्य ज्ञान प्राप्त करता है, निश्चित ही सापेक्ष है; परन्तु उसका स्वरूपज्ञान निरपेक्ष है। वह जाग्रतावस्था में ज्ञानस्वरूप रहता है, स्वप्न में भी ज्ञानस्वरूप रहता है और सुषुप्ति में भी ज्ञानस्वरूप रहता है। यदि वह सुषुप्ति में ज्ञानस्वरूप न रहता, तो जाग कर सुषुप्ति के सुख का कौन स्मरण करता और उसे कहता? इसीलिए योगदर्शन ने सुषुप्ति को भी एक वृत्ति माना है। चेतन में ज्ञान बाह्य प्रकृति से नहीं आता है, किन्तु चेतन स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान जीव और प्रकृति (देह) संबध से केवल बाह्यत: प्रकट होता है; जैसे अग्नि स्वयं ज्वलनशील है; परन्तु सम्बन्धित वस्तु को ही जला सकती है। इस प्रकार सारा बाह्य ज्ञान सापेक्ष है। परन्तु जड़ और चेतन की अपनी-अपनी सत्ताये निरपेक्ष हैं तथा जड़ की अपनी जड़ता निरपेक्ष है और चेतन का स्वरूपज्ञान निरपेक्ष है।

६
मन, अंत:करण तथा सूक्ष्म शरीर

दो करण होते हैं—बाह्यकरण तथा अन्त:करण। 'करण' का अर्थ हैं जानने का साधन। आंख, नाक, कान, जीभ तथा चमड़ी—ये बाह्यकरण हैं। इनसे क्रमशः रूप, गंध, शब्द, स्वाद एवं स्पर्श जाना जाता है। दूसरा अंत:-करण=भीतरीकरण है, अर्थात भीतर की बातों को जानने का साधन। भीतर में सुख-दु:ख, हर्ष-शोक, अनुकूल-प्रतिकूल भावनाये उठती हैं, इन सबको हम जिस साधन से जानते है, वह अन्त:करण है। अन्त:करण अदृश्य है; किन्तु शून्य नही है। उसे सूक्ष्म जड़ तत्वों की एक ग्रंथि होना चाहिए। शुद्ध चेतन मे वासनाये टिक नही सकती और न वे निराधार शून्य में तैरती रहेगी। उनके ठहरने के लिए आधार चाहिए, वही है अन्त:करण।

कार्यभेद से अन्तःकरण के चार भेद होते हैं—मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार। अन्तःकरण से जब कोई बात सोची एवं मनन की जाती है तब वह मन कहलाता है; जब अन्तःकरण अनुसंधान एव खोज करता है तब उसका नाम चित्त है; जब वह निर्णय देता है, तब बुद्धि कहलाता है तथा जब स्वीकार करता है, तब अहंकार। एक उदाहरण से यह साफ हो सकता है। हम एक कमरे के भीतर बैठे हैं। इतने मे हमारे कानों में आवाज आती है। हम आवाज को सोचते हैं। यह अन्तःकरण का आवाज के विषय में सोचना मन की अवस्था है। इतने में हम उस आवाज के विषय में अनुसंधान एवं तर्क करने लगते हैं कि यह आवाज़ किसकी है? इस समय अन्तःकरण चित्त का रूप ले लेता है। इतने में अन्तःकरण निर्णय दे देता है कि यह आवाज बैल के गले में लगी हुई घंटी की है। निर्णय सही या गलत दोनो मे से कोई भी हो सकता है; परन्तु यह अंतःकरण के निर्णय की अवस्था बुद्धि है। हम पीछे स्वीकार कर लेते हैं कि यही बात ठीक है। बस, यही अहंकार की अवस्था है। इस प्रकार एक ही अन्तःकरण चार नामो—मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार—से जाना जाता है।

प्रश्न होता है कि मन द्रव्य है कि अद्रव्य? संकल्प-विकल्प एव वासनाओ का पुज कोई द्रव्य नही है। यह चेतन के साक्षित्व मे अंतःकरण पर पड़ा जड़ पदार्थों, व्यक्तियों एवं घटनाओ का प्रतिबिंब है। यदि इस वासना-पुज एवं संकल्प-विकल्प को मन कहा जाय, तो मन द्रव्य नही है और यदि वासनायें जिस आधार में टिकती हैं उस अन्तःकरण को मन कहा जाय, तो मन अवश्य द्रव्य है। इसलिए किसी भी पदार्थ की परिभाषा करते समय केवल पद को लेकर न उड़ना चाहिए; किंतु जो पद का अर्थ पदार्थ है, उस पर विचार करना चाहिए।

यह अन्तःकरण ही बीज रूप में जीव के साथ पुनर्जन्म में जाता है। पांच विषय तथा चतुष्टय अन्तःकरण—इन नौ तत्वों का सूक्ष्म शरीर होता है। हैं। इसका अर्थ यही है कि पाचो विषयो का मनन, चिन्तन, निश्चय एवं अहंकार करके जो उनका अभ्यास टिका है, वही सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर का कोई दृश्यमान आकार-प्रकार नही होता। उसे सूक्ष्म जड़ कणों की गांठ होना चाहिए, जिसमे शुभाशुभ सारी वासनाये एवं कर्म-बीज निहित रहते हैं। स्थूल शरीर बारम्बार छूटता रहता है; परन्तु सूक्ष्म शरीर कर्मी जीवो के साथ सदैव बना रहता है, और उसी के साथ जीव पुनर्जन्म को प्राप्त होता है।

मानव-देह में यथार्थ स्वरूपज्ञान एवं विषयों तथा जागतिक पदार्थों में जब पूर्ण वैराग्य उदय होता है और ज्ञान-वैराग्य की रहनी में दीर्घता तब

चलते-चलते जब द्रष्टा वासनाओं से मुक्त हो जाता है, तब इस जीवन्मुक्त पुरुष के प्रारब्धांत में स्थूल शरीर के छूटने के साथ वह अनादि से रहा हुआ सूक्ष्म शरीर भी समाप्त हो जाता है और जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही विदेहमुक्ति है।

१०
पुनर्जन्म तथा कर्म-फल-भोग

जीव जड़ से सर्वथा पृथक तथा नित्य पदार्थ हैं। वे अनादि काल से वासना-वश जन्म-मृत्यु के चक्कर में घूम रहे हैं। आज जीव प्रत्यक्ष शरीरधारी हैं, तो निश्चित ही पहले भी शरीरधारी रहे हैं। शरीर के संस्कारों के बिना आज शरीर धारण नही कर सकते। आज हमारे जीवन में जो कुछ है, वह आज का ही नहीं, अपितु पूर्वजन्मो का भी फल हैं। कोई सर्वांग निर्बल है कोई बलवान, कोई बुद्धिहीन है कोई बुद्धिमान, कोई कुरूप है कोई सुरूप, कोई जिस काम में हाथ लगाता प्रायः विफल होता हैं कोई प्रायः सर्वत्र सफल—यह सब अपने पूर्वजन्मो के कर्मो के संस्कार ही है। जीवों की ऊंच-नीच स्थितियों का समाधान न अंधी प्रकृति में है और न तानाशाह ईश्वर में। इसका समाधान स्वकर्मो के फल-भोग तथा पुनर्जन्म में ही है।

यदि भौतिकवाद की दृष्टि से यह माना जाय कि सब कुछ प्रकृति ही है तो भी जन्म-मृत्यु तो प्रत्यक्ष है ही। उसी प्रकृति के अंश से असंख्य जीवन खड़े होते है तथा कालान्तर मे प्रकृति में लीन होते है और पुनः असंख्य जीवन खड़े होते रहते है। इस प्रकार पुनर्जन्म प्रत्यक्ष है। किंतु हम थोड़ा विचार करें तो यह सिद्ध हो जायगा कि चेतन के बिना जीवन खड़ा नही हो सकता। चेतन जीव, जड़ से पृथक होने से अविनाशी हैं और वे ही संस्कारों के अधीन जन्मांतरो में घूमते हैं।

केवल माता-पिता के बीजी असर से ही जीवन नही खड़ा होता और न तो जीवन केवल परिस्थितिजन्य है। एक ही माता-पिता के विरोधी स्वभाव वाले बच्चे पैदा होते हैं तथा एक ही परिस्थिति में लड़की एवं लड़के, मंद तथा तीव्र बुद्धि वाले बच्चे जन्म लेते है। खट्टे आम के बीज से पैदा हुए पेड़ मे खट्टे ही फल लगते है और मीठे मे मीठे। इस प्रकार मनुष्यो में नहीं दिखता कि सज्जन के सज्जन तथा दुर्जन के दुर्जन बच्चे हो। माता-पिता का बीजी प्रभाव तथा उनके वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता हैं, परन्तु जीव अपने पूर्वजन्मो के संस्कारो को लेकर जन्म लेते है, अतः उनके विशेष संस्कार उनके

साथ रहते हैं। इसीलिए माता-पिता तथा वातावरण के प्रभाव से स्वतन्त्र जीवों में प्रवृत्ति देखी जाती है।

बच्चों के जन्मते ही उनका रोना, माता के स्तन से दूध पीना, बन्दूक आदि की आवाज सुनकर भयभीत होना, स्वाभाविक मुस्कराना, स्पर्श से जननेंद्रिय का उत्तेजित होना आदि उनके पूर्वजन्मों के संस्कार ही हैं, क्योंकि इस जन्म में तो उनको इस प्रकार की ट्रेनिंग दी ही नहीं गयी है। देहधारियों की ऊंच-नीच विभिन्न स्थितियों के कारण उनकी नित्य सत्ता और उनके विभिन्न कर्म ही हैं।

कर्मी जीवों के साथ में दो शरीर होते हैं। एक स्थूल जो एड़ी से चोटी तक मूर्तरूप में है और दूसरा सूक्ष्म जो मनोमय रूप में है। यह स्थूल शरीर मरता है; परन्तु सूक्ष्म शरीर जीव के साथ में गमन करता है[1]। जैसे स्थूल देह की सारी इन्द्रियों की क्रियायें अर्धसुषुप्ति में बन्द होने पर भी भीतर स्वप्न होता है, वैसे शरीर के छूट जाने पर भी सूक्ष्म शरीर में निहित संस्कारो द्वारा पुन-र्जन्म होता है। वैसे सोने के पूर्व हम यह नही निर्धारित कर पाते कि अमुक स्वप्न देखेंगे; परन्तु अर्धसुषुप्ति में स्वप्न आते है और आते भी वही हैं जो कभी-न-कभी अपने द्वारा पूर्व जागृत में रचे गये संस्कार हैं। इसी प्रकार शरीर छोड़ने के पूर्व जीव यह तो नही बता सकता कि हम किस खानि के शरीर धारण रूप स्वप्न देखेंगे; परन्तु सूक्ष्म वासनावश पुनः शरीर धारण होता है और होता भी वही है जिस प्रकार अपने रचित संस्कार हैं। गोस्वामी तुलसी दास जी ठीक ही कहते हैं—"जैसे एक मणि में भोजन, वस्त्र, पशु तथा अनेक वस्तुयें छिपी हैं। अर्थात एक मणि भुनाकर यह सब खरीद सकते हैं, वैसे स्वर्ग-नरक, चर-अचर लोक मन में बसे हैं। अर्थात एक मन के वासना-वश जीव ऊंची-नीची स्थितियों तथा अनेक योनियो को प्राप्त होता है। जैसे सूत में कपड़े हैं और काष्ठ में मूर्ति, सूत को ताना-वाना के रूप में व्यवस्थित कर दो कपड़े बन जाय तथा काष्ठ को गढ़-छील दो, बस मूर्ति बन जाय, वैसे मन में नाना खानियों के शरीर अनादि संस्कार वश लीन हैं जो समय पाकर उदित होते हैं[2]।"

१. सूक्ष्म इन्द्रियें सूक्ष्म कर्म करती। स्थूल मरती पं सूक्ष्म न मरती॥
(निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर)

२. असन वसन पशु वस्तु विविध विधि, सब मणि महँ रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक सब, बसत मध्य मन तैसे॥
विटप मध्य पुतरिका सूत महँ, कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन महँ तथा लीन नाना तन, प्रकटत औसर पाये॥

सद्गुरु कबीर कहते हैं "यह कर्मों का संस्कार भ्रम हिंडोला है जो जीवों को कभी ऊंची योनियों में तथा कभी नीची योनियों में ले जाता है। यह भ्रम हिंडोला अत्यन्त भ्रमणशील है, थोड़ा भी नही रुकता[३]। जीव जो कर्म कर लेता है, उनके फल उसे भोगने ही पड़ते हैं। सुर, नर, मुनि, देवता—सात द्वीप तथा नौ खण्ड में रहने वाले समस्त जीव अपने किये का फल भोगते हैं[४]। कर्मो का लिखा करोड़ों युगों में भी बिना भोगे मिट नहीं सकता[५]।"

भौतिकवादी भी 'एक्शन टू रिएक्शन' अर्थात 'क्रिया की प्रतिक्रिया' मानते हैं। जो कर्म कर लिये जाते हैं उनके फल-भोग किसी-न-किसी प्रकार तत्काल से होने लगते हैं और जो कर्म जितने ही मन की गहराई में होते हैं वे उतने ही जोरदार ढग से पुनर्जन्म में भी फल-भोग देते है।

श्री विशाल साहेब कहते हैं कि जीव हर समय इन्द्रियो के विषयों में आसक्त रहता है और उसकी वे वासनायें पुनर्जन्म कराने में कारण बनती हैं। जैसे बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से बीज बनते हैं, वैसे कर्म-वासना से देह तथा देह से कर्म-वासनायें बनती हैं[६], और यह प्रवाह अनादि से चला आया है। पुनर्जन्म और कर्म-फल-भोग पर श्री काशी साहेब तथा श्री निर्मल साहेब ने अपनी रचनाओं में अधिक युक्तियां लायी है। परवर्ती श्री विशाल साहेब तथा उनके शिष्य श्री प्रेम साहेब ने इन जैसे विषयों पर अपनी रचनाओं में बहुत विस्तार से विचार किया है।

११

स्वरूपज्ञान होने की भूमिका

जो रात-दिन वकालत पढ़ रहा है उसे शरीर-चिकित्सा का ज्ञान, इंजीनियरिंग अध्ययन करने वाले को राजनीति का ज्ञान तथा व्याकरण पढ़ने वाले

३. कबहुंक ऊंचे कबहुंक नीचे, स्वर्ग भूत ले जाय।
अति भरमित भरम हिंडोरवा, नेकु नहीं ठहराय ॥ बीजक, हिंडोला २ ॥
४. सुर नर मुनि औ देवता, सात द्वीप नौ खंड।
कहहिं कबीर सब भोगिया, देह धरे को दंड ॥ बीजक, साखी २६५ ॥
५. कर्म का लिखा मिटै धौं कैसे, जो युग कोटि सिराई ॥ बीजक, शब्द ११० ॥
६. बन्ध-मोक्ष शतक, प्रसंग १।

को रसायन शास्त्र का ज्ञान कैसे हो सकता है ! श्रद्धा और परिश्रम पूर्वक जिस विषय का हम अनवरत अध्ययन करते हैं, उसी में प्रवीण होते हैं। जो लोग पहले से निश्चय कर रखे हैं कि जड़ द्रव्यों से पृथक चेतन का अस्तित्व नहीं है, देह ही जीवन है, इन्द्रिय-भोग ही जीवन-लाभ है, और वे इसी विषय में निरंतर अध्ययन भी किये हैं। इसके विपरीत सद्ग्रंथ-अध्ययन, सत्संग, आध्यात्मिक-चर्चा, संत पुरुषों की उपासना, इन्द्रिय-भोगों से विरक्तता, चित्त शुद्धि पूर्वक स्वस्वरूप का विचार कभी नहीं करते, वे स्वरूपज्ञान एवं आत्मज्ञान की प्राप्ति के अधिकारी कैसे हो सकते है ?

जैसे पान, सुपारी, ईख, गेहूं आदि हर भूमिका मे नही होते, उनके लिए उपयुक्त भूमिका बनानी पड़ती है। जैसे हर वस्तु में प्रतिबिब नही दिखता उसके लिए वस्तु को माजकर चमकाना पड़ता है। इसी प्रकार स्वरूपज्ञान प्राप्त करने के लिए अंतःकरण को मांजना पड़ता है। अन्तःकरण की मलीनता और देहाभिमान का त्याग कर विनम्रता पूर्वक साधक बने बिना स्वरूप का ज्ञान कैसे होगा। डाक्टर, मास्टर, कलेक्टर, इंजीनियर आदि बनने के लिए जब दस, पंद्रह या बीस वर्षो तक पढ़ना पड़ता है, भौतिक विज्ञान का बोध प्राप्त करने के लिए जब बीसियों वर्ष अध्ययन तथा अभ्यास करना पड़ता है, तब स्वरूपज्ञान जो सबसे सूक्ष्मतम ज्ञान है, जो दृश्य नही, किन्तु द्रष्टा विषय है, दीर्घकाल आध्यात्मिक अध्ययन, सत्संग, अभ्यास आदि किये बिना कोई कैसे प्राप्त कर सकता है।

खाट बीनने, टोकरी बनाने, चटाई बनाने आदि साधारण काम के लिए भी शिक्षा-ग्रहण और अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। अतएव सहज समझा जा सकता है कि स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के लिए विनम्रता पूर्वक खोज आवश्यक है।

हर व्यक्ति में अंतर्मुखता तथा बहिर्मुखता—दो वृत्तियां होती हैं; परंतु इन दोनों में हर व्यक्ति मे एक अधिक होती है। बहिर्मुखी व्यक्ति संसार की इच्छा वाला होता है तथा अंतर्मुखी व्यक्ति शांति का। स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के लिए अंतर्मुखी वृत्ति की आवश्यकता है। आवश्यक समझकर विवेक द्वारा भी वृत्ति को अतर्मुखी बनाया जा सकता है। अतएव चित्त शुद्धि, अंतर्मुखता, तर्कबुद्धि, आध्यात्मिक अध्ययन, सत्संग, श्रद्धा, विनम्रता पूर्वक खोज की प्रवृत्ति—स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। सद्गुरु विशालदेव ने इस सबंध मे मुक्तिद्वार के स्वतंत्र जीव शतक में विस्तार से कहा है। उसमे पहला प्रसङ्ग तथा पाचवें प्रसंग की ६८ से ७२ साखी तक देखने योग्य है।

१२

पूर्व जन्मों के स्मरण न होने के कारण

जीव के अपने शुद्ध चेतन स्वरूप में जड़-जगत नहीं है। जीव के मन में जगत का अध्यास केवल आरोपित है। जिसका मूलतः सम्बन्ध नहीं है, उसका विस्मरण स्वाभाविक है। पूर्वजन्म की देह आज नही है, तो पूर्वजन्म की स्मृति कैसे हो। इस जन्म की पुरानी स्मृतियां तो अचानक भी मन में आ जाती है; परन्तु अधिकतम स्मृतियां सम घटनाओं व संस्कारों के आधार में ही आती हैं। जैसे हम कहीं एकान्त में बैठे हैं और हमारे कानो मे मोटर की आवाज आयी, तो हमें कलकत्ता की मोटरो एवं कारों का स्मरण हो गया; क्योकि वहां हमने मोटर-कारें विपुल मात्रा में देखी है। जब हम किसी के घर में सदूक देखते हैं तो अपने घर के संदूक व उसमें रखे हुए समान की याद होने लगती है। पूर्वजन्म की देह, घटनायें आदि सामने न होने से उसका एक भी संस्कार नही उठता, फिर पूर्वजन्म की स्मृतियां सामने कैसे आयें।

संस्कार स्मरणों को उत्तेजित करते हैं। हम रमेश तथा सुरेश को अधिकतम साथ-साथ देखते हैं, इसलिए जब हम उन दोनो मे से एक दिन एक ही को देखते हैं तब दूसरे का अपने आप स्मरण हो जाता है। यह एक सह-चारी संस्कार है। किसी व्यक्ति, वस्तु एवं घटना को देखकर समानधर्मी व्यक्ति, वस्तु एवं घटना की याद होती है। डाक्टर को देखकर अन्य डाक्टरो की, वैज्ञानिक को देखकर अन्य वैज्ञानिको की, कवि तथा संत को देखकर अन्य कवियों एव संतों की याद होती है। इसी प्रकार गुलाब के फूल देखकर चमेली या कमल के फूलों की याद आना, साइकिल लड़ते देखकर ट्रेन लड़ने की याद आ जाना स्वाभाविक है। समानधर्मी के विपरीत विरुद्धधर्मी बाते भी याद आती है, जैसे दुष्ट को देखकर सज्जन की, अन्यायी को देखकर न्यायी की याद आये। अधिकतम स्मरण संस्कारो के आधार में ही उठते है। पहले जन्म की देह, घटना तथा मूर्त सस्कार सामने न होने से उनका स्मरग नही होता।

इसी जन्म की सब बातें याद नहीं रहतीं। जन्मकाल की बाते न याद रहना तो स्वाभाविक है; परन्तु तीन वर्ष की उम्र की बातें भी नही याद है। बचपन की सारी बाते कहां याद हैं। गत वर्ष के आज की तिथि के इसी समय में हम क्या सोचते थे, नही बता सकते। कल प्रातः छह बजे क्या सोचते थे, यही बताना असंभव है। दूर की बात रहने दीजिये, आज प्रातः छह बजकर पांच मिनट पर क्या सोचते थे, नही बता सकते। इस प्रकार जब इस जीवन

की अधिकतम बातें भूल जाती हैं, तब पूर्वजन्म का, जिसकी देह ही नहीं, स्मरण होना असभव नही तो क्या है !

अनेक बच्चों एवं व्यक्तियों के पूर्वजन्मों की स्मृति सम्बन्धी घटनायें आये दिन अखबारों में छपती हैं जो सनसनीखेज रहती हैं। यदि इस प्रकार किसी को पूर्वजन्म का स्मरण हो जाता है तो अच्छी बात है। इससे हमारे पूनर्जन्म सिद्धान्त की पुष्टि ही है; परन्तु अखबार व पत्र-पत्रिकाओं की ऐसी घटनायें प्राय: जालसाजियों से भरी होती हैं जिनमें यश या यश तथा धन लिप्सा ही कारण हैं। आये दिन ऐसे धर्मगुरु एवं तथाकथित भगवान के अवतार भी उदय होते हैं जिन्हें स्वयं के पूर्वजन्मों की यादें तो होती ही है, वे दूसरे के भी पूर्वजन्मो की यादें कराते हैं। ये सारी बातें अजीबोगरीब होती हैं और मानवीय वातावरण में सनसनीखेज समाचार फैलाने की ट्रिक होती हैं।

पौराणिक कथाओ में पूर्वजन्म की बाते बताने वालो का काफी वर्णन मिलता है। यह सब भी अतिशयोक्तिपूर्ण बाते होती हैं। पुरानी बातो को लोग श्रद्धा से देखने लगते है, इसलिए पुरानी गलत बाते भी मनुष्य के गले मढ़ जाती हैं। पौराणिक कथाओ में पूर्वजन्म की स्मृति की बातें वस्तुत: किसी सदाचार के उपदेश के लिए होती हैं। इस प्रकार मनुष्य को सदाचार की ओर उत्प्रेरित करने के लिए पुराणों में पूर्वजन्म की स्मृतियों की कहानियां कल्पना के आधार पर गढ़ी गयी हैं।

लेखकों ने महात्मा बुद्ध के मुख से उनके पूर्व के पांच सौ सैतालिस (५४७) जन्मों की बातें बोधिसत्व के नाम से कहलवायी हैं। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए जो प्राणी प्रयत्नशील हो वह बोधिसत्व के नाम से बताया गया है (बोधि = बुद्धत्व तथा सत्व = प्राणी)। जातक ग्रन्थो मे ५४७ उपाख्यानो से यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि महात्मा बुद्ध ने ५४७ जन्मों से बुद्धत्व के लिए प्रयत्न करते हुए आकर शाक्यकुमार के रूप में बुद्धत्व पाया। इन कहानियों में किसी न किसी प्रकार के मानवीय कल्याण के लिए उपदेश दिये गये हैं। परन्तु बुद्ध का अपने पूर्व के ५४७ जन्मो की बाते याद रखकर बताने की बात कहना किसी बुद्ध-भक्त की मिथ्या धारणा मात्र है।

पुनर्जन्म एक तथ्य है; परन्तु किसी तथ्य को तीव्रता से लोगों के चित्त में जमाने के लिए ऐसी कल्पनाओ का आधार लेना जिनसे असत्य तथा अंधविश्वास का फैलाव होकर मनुष्य मिथ्या धारणाओं मे पड़े, कथमपि उचित नही है।

जीव से जड़ जगत सर्वथा अलग है। अलग की वस्तु का विस्मरण स्वाभाविक है। संसार के स्मरण के आधार शरीर और मन हैं और वे दोनों परिवर्तनशील हैं। पहले जन्म का जब शरीर ही नही है, तब उसकी घटनाओं का स्मरण कैसे हो ! इस विषय में सद्गुरु विशालदेव ने बंध-मोक्ष शतक के छठें प्रकरण में सविस्तार वर्णन किया है।

१३

बंधन अनादि, किन्तु सांत

बिना कर्म के देह नही तथा बिना देह के कर्म नहीं, इसलिए दोनों में से किसी को पहले नही कहा जा सकता। यह कर्म और देह का प्रवाह अनादि है। यदि जीव स्वरूपतः कर्मो तथा अज्ञान से सर्वथा अछूता, असंग एवं शुद्ध-बुद्ध है, तो वह कर्मों एवं अज्ञान में कब और क्यों पड़ा ? इसका उत्तर दे पाना दुष्कर कार्य है। यदि जीव बन्धनों से अलग बैठा था तो बन्धनो में क्यो पड़ा, किस कारण से पड़ा ? जैसे बिना बीज के वृक्ष नही होता, वैसे बिना कर्म के देह नही होती। अतएव कर्म से देह और देह से कर्मो का प्रवाह अनादि से ही है। कर्म और देह का प्रवाह अनादि स्वीकार किये बिना इसका समाधान असंभव है।

प्रश्न होता है जब जीव अनादि से बंधनों में ही है तो उसके मुक्त होने की आशा कैसे करे ? अनादि वस्तु का अंत कैसे हो जायगा ? परन्तु ऐसी बात नहीं है। अनादि के मुख्य दो भेद किये जा सकते है। एक स्वरूपतः अनादि, दूसरा प्रवाह रूप अनादि। जड़ और चेतन स्वरूपतः सत्तावान अनादि द्रव्य हैं और इनका नाश असभव है। दूसरा अनादि प्रवाह रूप है। यह एक गति-विधि है। इसमें भी मुख्य दो भेद किये जा सकते हैं। एक है मूल भौतिक तत्वो के अनादि गुण-धर्मो से होती हुई गतिविधि, जैसे छह ऋतुओ का परिवर्तन एवं उनका व्यवहार। यह भी रुक नही सकता। दूसरा प्रवाह रूप अनादि वह गतिविधि है जो औपाधिक है। जैसे बीज के उपाधि (विशेष गुण-धर्म) से वृक्ष का बनना तथा वृक्ष की उपाधि से बीज का बनना। यह भी प्रवाह रूप अनादि है। बिना बीज के वृक्ष नही तथा बिना वृक्ष के बीज नही, किन्तु बीज भून देने से वृक्ष नही होता, अतएव बीज-वृक्ष की अनादि प्रवाह रूपता विरोध पड़ने पर रुकती है। अर्थात बीज भून देने पर वृक्ष नही होता।

बीज-वृक्ष पृथ्वी, जल आदि मूल जड़ तत्वों के मौलिक गुण-धर्म न होने से, अर्थात औपाधिक होने से विरोध पड़ने पर उनका अंत हो जाता है, वैसे कर्म और देह न मूल जड़ तत्वों के मौलिक गुण-धर्म हैं और न चेतन जीवों के। अतएव उनमें भी विरोध पड़ने पर उनका अंत हो जाता है। बीज को उचित भूमिका तथा खाद-पानी न देकर आग दे देना उसका विरोध पड़ना है। इसी प्रकार अज्ञान, क्रियमाण और राग जो कर्म बीज के सहायक है, इनका अभाव कर देने पर देह धरने का कोई हेतु नहीं। जैसे बीज-वृक्ष प्रवाह रूप अनादि हैं; परन्तु बीज भून देने पर वृक्ष नहीं होता, वैसे कर्म और देह प्रवाह रूप अनादि हैं, परन्तु कर्म के अभाव में देह नही होती। जैसे चावल के साथ ही उनके छिलके शुरू से है परन्तु छिलके हटा देने पर चावल नही उगते, वैसे जीव के साथ जड़ तत्वो का आवरण अनादि से है, परन्तु अपने स्वरूप को जड़ तत्वो से भिन्न शुद्ध चेतन समझ कर तथा जड़ासक्ति त्यागकर स्वरूपस्थ हो जाने से जीव जड़ बन्धनो से मुक्त हो जाता है।

बिना कर्म के देह नही तथा बिना देह के कर्म नही—इस उपर्युक्त न्यायानुसार जीव का कर्म-बन्धन अनादि सिद्ध हुआ। अब यह देखना है कि जीव का स्वरूप जड़ से सर्वथा असंग एवं निर्मल कैसे है। हम देखते है कि जीव शुद्ध चेतन है। उसका जड़ जगत से सम्बन्ध मानना एवं मान्यता मात्र है। जिसको वह चाहता है, स्वीकार कर लेता है, और जिसको नही चाहता, उसे हटा देता है। जिसको वह चाहता है, उसमें राग बना लेता है और उसको वह रात-दिन जपता है तथा जिसको नहीं चाहता, उसका अभाव कर देता है और उसका संकल्प तक नहीं करना चाहता। विशालदेव कहते हैं, "प्रिय पत्नी, जिसको अपने हृदय में बैठाये रखना चाहता है, उससे जब किसी कारणवश घृणा हो जाती है, तब व्यक्ति उसका सिर काट लेता है। अपने रखे हुए सोना, चांदी तथा अधिक धन यदि अपने ही प्राणघातक सिद्ध होने लगें तो व्यक्ति उन्हें फेंक देता है। इसी प्रकार जिसे दुःखो से छूटकर मोक्ष की इच्छा होती है वह इन्द्रियों के भोगों का त्याग कर मन स्ववश कर लेता है[1]।" किसी भी वस्तु का लाभ जान कर ग्रहण तथा हानि जान कर त्याग होता है। जब व्यक्ति जड़ासक्ति में अपनी हानि-ही-हानि देखता है तब वह उससे अलग हो जाता है।

जीव ने जितने सम्बन्ध बना रखे हैं, सब मान्यता मात्र है। अपने स्वरूप को भूलकर वह दृश्यों मे राग करता है। गुरुदेव कबीर कहते है "जैसे

१. शांतिशतक, साखी २८-२६।

सुग्गे लाल मिर्ची के लोभ से नलिका यंत्र पकड़ कर उसमें फंस जाते हैं वैसे जीव अपने स्वरूप को न समझ कर विषयों में भ्रमवश फंस जाते हैं। इसका बंधन भ्रम मात्र है[२]।" श्री विशालदेव कहते हैं "मुझ शुद्ध चेतन के पास कोई जड़ वस्तु नही है। माता-पिता, भाई-बन्धु, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, देश-गाव— सब स्मरण होने पर निकट प्रतीत होते हैं। इनका स्मरण जिस समय नही रहता, इनसे कोई सरोकार नहीं रहता। बचपन के साथी आज साथ मे नही हैं, तो उनके बिना हमारा कोई अकाज नहीं होता। स्मरण ही तक हमारा दृश्यों का संबंध है। स्मरणों के न रहने पर दृश्यों का सर्वथा अभाव है। पांचों विषय पांच ज्ञानेन्द्रियों तक हैं, चेतन के निकट नहीं। मनोराज्य तथा स्वप्न में इन्द्रियां नहीं रहतीं; परन्तु दृश्यों का सम्बन्ध रहता है, अतः इन्द्रियों से हम अलग हैं। सुषुप्ति में मनोमय नही रहता और साथ-साथ दृश्य भी समाप्त हो जाते है; किन्तु चेतन गाढ़ी नीद के सुख का द्रष्टा रहता है, अतएव जीव में मनोमय भी नही है। जीव नीद से उठकर पुनः जागृत का व्यवहार करता है, अतः उसके स्वरूप में नीद भी नही है[३]।" इस प्रकार जीव बाह्य जगत, पंच-विषय, इन्द्रिय, मन, तीन अवस्था आदि से सर्वथा पृथक सबसे असंग, शुद्ध चेतन है।

इस जीव का जगत में किसी से सम्बन्ध नही है। यह अपनी सूझ-बूझ के अनुसार जहां से अपना दुःख-छुटकारा देखता है वहां से सम्बन्ध करता है और जहां से दुःख-प्राप्ति समझता है उसका त्याग करता है। जीव का शत्रु दुःख है। वह उससे भागता है। याज्ञवल्क्य ने ठीक ही कहा है "अरी मैत्रेयी! पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नही होता, किन्तु अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, देवता तथा संसार की सारी वस्तुये हम अपने प्रयोजन के लिए, आत्मा के सुख के लिए चाहते हैं, उन-उन के लिए नही। जब आत्मा के लिए ही सब कुछ चाहते हैं, तब आत्मा का ही ज्ञान करना चाहिए, उसी का चिन्तन करना चाहिए, उसी मे विश्राम करना चाहिए[४]।"

बन्धन वासना मात्र है जो अंधकारधर्मा है और ज्ञान प्रकाशधर्मा। जैसे हजार वर्षो का अन्धकार पर्वत की गुफा मे हो और प्रकाश जलाते ही वह समाप्त हो जाय, वैसे अनादि का मोह-बन्धन ज्ञानोदय होने पर समाप्त हो

२. बीजक, चाचर २, १७-१८।

३. भवयान, वैराग्यवित्त, शब्द १६।

४. बृहदारण्यक उपनिषद् अ० २, ब्रा० ४, मंत्र ५।

जाता है। इस प्रकार बन्धन अनादि होने पर भी वह सांत (अन्त सहित) है। जीव स्वस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर और विषयों की आसक्ति से हट कर अपने आप स्थित हो सकता है और बन्धनों से मुक्त हो सकता है।

१४

संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण

कर्म तीन हैं—संचित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण। पूर्व के अनेक नर जन्मों में किये गये शुभाशुभ कर्मों में से जिनके फलों का भोग अभी नही हुआ है, उन अवशेष कर्मों का सूक्ष्म शरीर में संचय है। इसे संचित कर्म कहते हैं। जिन पूर्व कर्मों के जोर से यह शरीर बनकर जीव के उपभोग के लिए आरम्भ हो गया है उन्हें प्रारब्ध कहते हैं। 'प्रारब्ध का अर्थ ही है 'प्रारम्भ'। वर्तमान में जो किया जा रहा हो उसे क्रियमाण कहते हैं। राग पूर्वक जो कुछ अच्छे और बुरे कर्म किये जा रहे हों, उन्हें क्रियमाण कहते हैं।

जो भोग के लिए प्रारम्भ हो चुका है उस प्रारब्ध भोग को हम धन्वा से छूटा हुआ तीर समझते हैं। शरीर का भोग तो सबको भोगना पड़ता है चाहे अज्ञानी हो या ज्ञानी। कबीरदेव कहते हैं "सुर, नर, मुनि, देवता, सात द्वीप तथा नौ खण्ड में रहने वाले समस्त प्राणी देह धरने का दण्ड भोगते हैं। सबको प्रारब्ध भोग एवं शारीरिक कष्ट झेलना पड़ता है[1]।" अतएव विवेकवान संतोष पूर्वक भोजन-वस्त्र-आवास आदि का उपयोग करते हुए और शरीर के सुख-दु:खों को धैर्य पूर्वक सहन करते हुए निर्विकार भाव पूर्वक प्रारब्ध यात्रा पूर्ण करते हैं। ज्ञानी को अपने शरीर को नष्ट करने की आवश्यकता नही। प्रारब्ध भोग को शरीर का नाश करके क्षय नहीं करना है, अपितु भोग कर एवं व्यतीत करके क्षय करना है। प्रारब्ध यात्रा में जो आने वाले भावी सुख-दु:ख हैं, वे अदृश्य हैं। कौन जानता है कि कब शरीर में कौन-सी भयंकर व्याधि खड़ी हो जायेगी और कौन-सी शारीरिक व्याधि कब निवृत्त हो जायेगी। कब हमारा प्यारा व्यक्ति हमसे बिछुड़ जायेगा तथा कब हमारे लिए कोई अच्छी घटना सामने घट जायेगी। अतएव प्रारब्ध यात्रा को ज्ञानी सन्तोष तथा धैर्य पूर्वक व्यतीत करता है।

१. सुर नर मुनि औ देवता, सात दीप नौ खंड।
कहहि कबीर सब भोगिया, देह धरे को दंड ॥ बीजक, साखी २६५ ॥

पूर्व-पूर्व नर-जन्मों से लेकर वर्तमान देह के बोधकाल से पहले तक के सारे शुभाशुभ कर्म संचित रूप में मन में संग्रहीत हैं जो अभी भोग के लिए प्रस्तुत नही हैं। उन अच्छे-बुरे कर्मों के संस्कार तो मन की पवित्रता तथा मलीनता के कारण बनते हैं; परन्तु स्थूल रूप उनका भोग तभी होता है जब वे प्रारब्ध रूप में प्रस्तुत हों। उनका प्रारब्ध अभी न होने से वे अन्तःकरण में बीज रूप से विद्यमान हैं। ज्ञान-वैराग्य तथा सद् उपासना द्वारा नाश हो जाता है।

अज्ञान तथा राग पूर्वक जितने शुभाशुभ कर्म होते हैं वे क्रियमाण कर्म है जिन्हें आगामी कर्म भी कहते हैं। अज्ञान और राग के मिट जाने पर अशुभ कर्म तो होते ही नही, शुभ कर्म भी आसक्ति-कामना रहित होकर करने से वे बन्धनप्रद नही होते। अतएव ज्ञानी के क्रियमाण कर्म समाप्त हो जाते हैं। विशालदेव कहते हैं "अबोध और राग से कर्मो की उत्पत्ति होती है। अर्थात स्वरूपभूल और देहाभिमान से विषयासक्ति युक्त क्रियाये होती है और यही क्रियमाण है और इसके विपरीत स्वरूपज्ञान तथा वैराग्य से चित्त अनासक्त होकर स्वरूपस्थ हो जाता है और क्रियमाण कर्मो का नाश हो जाता है। इस प्रकार जीव शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप स्थित हो जाता है[२]।"

स्वस्वरूप चेतन का यथार्थ बोध होकर विषयासक्ति की पूर्ण निवृत्ति और अखण्ड बोध-वैराग्य की स्थिति हो जाने पर क्रियमाण बन्द हो जाता है और पूर्व संचित कर्मो का अभाव हो जाता है। रहा प्रारब्ध वह भोग कर प्रारब्धांत में समाप्त हो जाता है। इस प्रकार तीनो कर्मो का अन्त होकर जीव का मोक्ष हो जाता है। इस विषय का श्री विशाल साहेब ने मुक्तिद्वार के दो प्रकरणो—निवृति साहस शतक तथा शातिशतक में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

श्री पूरण साहेब कहते हैं "गुरु विचार का उदय होने से संचित कर्म का नाश होता है और क्रियमाण कर्म हो सकता नही, क्योकि विचार से सब मानन्दी मिथ्या ठहरी, ताते मानन्दी कर्म भी सब मिथ्या ठहरा, ताते हो सकता नही। जब क्रियमाण नही तब आगे देह भी नहीं, जब बीज नाश हुआ तब वृक्ष भी नही। अब रहा प्रारब्ध, सो ताका रूप देह बनी है, सो भोगे से नाश

२. अबोध राग उत्पति करम, बोध विराग से नाश।
शुद्ध जीव बंधन रहित, जन्ममरण तजि त्रास।।
(मुक्तिद्वार, शांतिशतक, साखी ४)

होयेगी, फिर आगे कुछ नहीं, ये विचार की विशेषताई[३] ।" गीताकार ने भी कहा है "जिन्होंने ज्ञानाग्नि से कर्मों को दग्ध कर दिया है उनको विवेकी लोग पंडित कहते हैं[४] ।" सद्गुरु कबीर ने कहा है "तभी तक तारे टिमटिमाते हैं, जब तक सूर्य उदित नहीं होता, इसी प्रकार तभी तक जीव कर्मों के वश भटकता है, जब तक पूर्ण ज्ञान उदय नहीं होता[५] ।'

१५
कर्म

कर्म क्या है ? कर्म करने में प्रेरक कौन है ? फलदाता कौन है ? क्या कर्मों में क्षमा का स्थान है ?

कर्म—पाप-पुण्य

कर्म दो प्रकार के होते हैं एक पाप दूसरा पुण्य। यदि आदमी जान-बूझकर अनजान न बने तो वह समझ सकता है कि पाप क्या है तथा पुण्य क्या है ? कोई हमारी वस्तु छीन ले, गाली दे तथा मार दे तो हम इसे पसंद न करेंगे और यही पाप है। यही हमें दूसरे के साथ न करना चाहिए। हम भूखे-प्यासे हों, रास्ता भटक गये हों, रोगी हों और कोई हमें जल-भोजन दे दे, रास्ता बता दे एवं औषध कर दे तो यह हमें अच्छा लगेगा और यही पुण्य है। हम पाप और पुण्य जानते हैं। यदि हम अपनी जानकारी का आदर करें तो पाप से बचकर पुण्य पथ में लग सकते हैं।

कर्मों का प्रेरक कौन ?

साधारण जनता में यह धारणा बहुत प्रचलित है कि ईश्वर ही सबसे सब कुछ करवाता है। ईश्वर की इच्छा के बिना कुछ नही होता। इसका मतलब अच्छे कर्मो के साथ चोरी, डाका, राहजनी, हत्या, व्यभिचार, काला-बाजारी, घूसखोरी आदि पाप भी ईश्वर की प्रेरणा से ही होते है। यदि ईश्वर ही सबसे सब कुछ करवाता है, तो जीव कर्ता ही नही है, क्योंकि कर्ता स्वतंत्र

३. बीजक, २६५ वीं साखी की टीका में।

४. ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ।। गीता ४/१६ ।।

५. तौ लौं तारा जगमगै, जौ लौं उगै न सूर ।
तौ लौं जीव कर्मवश डोलै, जौ लौं ज्ञान न पूर ।। बीजक, साखी २०५ ।।

होता है और जीव स्वतंत्र जब नहीं है तब कर्ता कहां ? और जब कर्ता नहीं, तब उसे भोक्ता होने का प्रसंग ही नही आता; परन्तु जीव ही कर्मो के फलों को भोगता है। ईश्वर ही सब कुछ करवाता है, यह मान लेने से तो जीव को सुधार करने का अवसर ही समाप्त हो जाता है। जब ईश्वर ही जिस क्षण जिससे जो करवायेगा वही होगा, तब जीव तो केवल जड़ कठपुतली ठहरा। ऐसी अवस्था में सुधार के लिए सारे प्रवचन, ग्रंथ, मत बेकार सिद्ध हो जायेंगे।

अतएव यह बात सर्वथा गलत है कि कोई तथाकथित ईश्वर ही जीव से कर्म करवाता है। वस्तुतः प्रत्येक जीव कर्म करने में सर्वथा स्वतंत्र है। उसके हृदय में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के संस्कार हैं। जिस समय जो संस्कार बलवान होता है, जीव उसी प्रकार कर्म करता है। मनुष्य जैसे साहित्य पढ़ता है, जैसी संगत करता है और जैसे वातावरण में रहता है उसके मन मे वैसे ही संस्कार उठते हैं तथा वह तदनुसार कर्म करता है। मनुष्य बुरे साहित्य, बुरी संगत तथा बुरे वातावरण का त्याग कर तथा अच्छे साहित्य, अच्छी सगत तथा अच्छे वातावरण में रहकर कुसंस्कारो को मिटा सकता है तथा अच्छे संस्कारो के अनुसार वह अच्छे कर्म कर अपनी हर प्रकार की उन्नति कर सकता है। इस मान्यता में ही सुधार का पथ है और यही सर्वथा सत्य है।

कर्म-फल-दाता कौन ?

कर्मो का फल कौन देता है ? बच्चों को समझाने के लिए तो यही सरल है कि ईश्वर देता हैं; परंतु विवेकियो को समझाने के लिए विवेक की बात करनी पड़ेगी। हर क्षण असंख्य जीव शरीर धरते और छोड़ते हैं। एक व्यक्ति ईश्वर उन सब को कर्म-फल-भोग एक साथ देने की कैसे व्यवस्था कर सकता है ? वस्तुतः संसार में कारण-कार्य की एक अटूट व्यवस्था है। जैसे अपनी सारी योग्यता पाकर बीज से वृक्ष होते है, वैसे अपनी सारी योग्यता पाकर कर्मो से फल-भोग होते है।

स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म मन है जिसमे समस्त कर्म-संस्कार संग्रहीत रहते है और वे अवसर पाकर फल के रूप में जन्म-जन्मांतरों मे उदित होते हैं। अनादि नियमानुसार कर्म-फल-भोग होते रहे तथा होते रहेंगे।

क्या कर्मो में क्षमा का स्थान है ?

नाना मत के लोग दावा करते हैं कि तुम चाहे जितना पाप करते रहो, हमारे पैगंबर, अवतार, ईश्वर पुत्र (ईसा) की शरण में आ जाओ या अमुक नाम जप लो, अमुक नदी में नहा लो, अमुक मंदिर में चले जाओ, मुख से

केवल नर्मदे-नर्मदे कह दो, तो तुम्हारे सारे पाप कट जायेंगे। चार खानि के जितने जगत जीव हैं यदि वे अयोध्या में शरीर छोड़ते हैं, तो उनको पुर्नजन्म की प्राप्ति नहीं होती "अवध तजे तन नहिं संसारा।" काशी में मरने वाला मुक्त होता ही है। पापी अजामिल मरते समय अपने पुत्र को पुकारा नारायण-नारायण, क्योंकि उसके पुत्र का नाम नारायण था। अतः नारायण आकर कूद पड़े और उसे स्वर्ग ले गये। यमराज ने बारहा कहा कि यह जीवन भर का पापी है। यह आपको नहीं, अपने नारायण नामक पुत्र को मोहवश पुकारा है। इसको नरक मे ले जाने दो; परन्तु नारायण (विष्णु) ने उसकी एक न मानी और कहा कि यह तो मेरा नाम लिया है। चूकि तथाकथित अंतर्यामी नारायण को इतना भी ज्ञान नहीं था कि अजामिल ने मुझे पुकारा है कि मोहवश अपने पुत्र को। ऐसे अल्पज्ञ नारायण से हम न्याय की क्या आशा करें? जो ईश्वर इतना खुशामद-पसद है कि उसका नाम लेने से वह सारा पाप माफ कर देता है, वह आज के राजनेताओ तथा घूसखोर क्लर्कों से भी गया-बीता है। आज के तथाकथित भगवान, योगी और योगेश्वर ही नही, पहले के भी मजहबी भावना में नाक तक डूबे गुरुवा लोग धर्म को व्यापार बना रखे थे। यह एक भूलभुलैया में डालकर जनता को बेवकूफ बनाना है।

माना कि नाना मजहबों ने भी कर्म सिद्धांत एवं सदाचार की चर्चा की है; परन्तु उसने ज्यादा जोर विश्वास पर दिया है, ईसा पर विश्वास करो, बस चाहे जितने पापी हो, बेड़ा पार। मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, तीर्थ, मूर्ति के दर्शन से सारे पाप काफूर! परन्तु यह सब मनुष्यता के साथ छलावा है।

इस प्रकृति में क्षमा नाम की कोई चीज नहीं है। आग छूने पर साधु-सज्जन भी जलेगा और अन्य आदमी भी। जो कोई भी लहसुन तथा प्याज खायेगा उसको दुर्गन्धी की डकार आयेगी ही। चार रोटियां खाने से पेट ठीक रहता है, तो जो कोई ५ या ६ रोटियां खायेगा, उसका पेट गड़बड़ होगा। जिन विष्णु, शिव, राम, कृष्णादि के नाम-जप से लोग पाप का क्षय होना मानते हैं, क्या उनके अपने ही पाप बिना फलभोग के क्षय हुए?

पुराण ही कहते हैं कि विष्णु ने नारद का मुख बंदर का बना दिया और उन्हे मोहिनी नही लेने दी, तो उसके फल में विष्णु राम हुए और उनकी भी सीता हरी गयी तथा बन्दर ही उनके सहायक हुए। राम ने बालि को छिप कर अनैतिक ढग से मारा, तो उसके फल मे वे स्वयं कृष्ण बनकर जब जंगल मे तप कर रहे थे, तो जरा नाम का व्याध उन्हें दूर से हिरन समझकर

मारा और उनका प्राणांत हुआ। श्री कृष्ण जी ने शिशुपाल की भुजा निरपराध उखाड़ी थी, तो वे जगन्नाथ में बिना हाथ के लूले बैठे हैं। विष्णु ने वृन्दा से छल किया, तो उसके फल में वे पत्थर बन गये आदि। यद्यपि ये कथायें काल्पनिक हैं, तथापि भारतीय पौराणिक मनीषियों ने भी यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि भगवान नामधारी को भी अपने कर्म-फल-भोग भोगने पड़ते हैं। इस्लाम तथा इसाईयत के अनुसार भारतीय परम्परा एकदम मजहबी नहीं है। वह एक तरफ मजहबी भावना में डूबकर भी कर्म-फल-भोग तथाकथित भगवान पर भी मानती है। इसाई तथा मुसलमान कहते हैं कि ईसा तथा मुहम्मद दूधके धोये हैं। परन्तु हिंदू राम, कृष्णादि को भगवान मानकर भी उन्हें दूध का धोया नहीं मानता, किन्तु उन्हे भी कर्म-वश मानता है।

जब सीता को जंगल में छोड़कर लक्ष्मण लौटे तब उन्होंने मन्त्री सुमंत्र से कहा कि भैया राम बहुत दुखी है; तब सुमंत्र ने कहा कि दुर्वासा ने यह पहले ही बताया था कि राम को अपने पूर्वकृत कर्म-फल में इस जीवन में दुख-पर-दुख भोगना पड़ेगा[1]।

अपने कर्मो का फल भोग सबको भोगना है। किसी ने चोरी की, हत्या की, बलात्कार किया, किसी को लूटा-मारा और जाकर भगवान-भगवान कह कर गिड़गिड़ा दिया, तो भगवान सब क्षमा कर दिये। यह कैसा तमाशा है! क्या जिसके साथ उसने बलात्कार किया, जिसकी उसने हत्या की, क्या उसने भी उसको क्षमा की है? और यदि उसने क्षमा नहीं की तो बीच में ईश्वर कौन होते हैं जो क्षमा कर दे।

कर्म-फल अकाट्य है। उसे कर्मी जीवों को भोगने ही हैं। पाप कर-कर के केवल भगवान-भवानी कह कर छुटकारा नहीं हो सकता। प्रकृति में क्षमा नाम की कोई बात नहीं है। क्रिया की प्रतिक्रिया होगी ही। अतएव कल्याण का पथ है बुरे कर्मो का परित्याग कर अच्छे कर्म करना। पवित्र कर्म ही पूजा है। कर्मो का नाश केवल ज्ञानोदय में होता है, किंतु उसके बाद फिर उससे बुरे कर्म नहीं होते। अच्छे कर्म भी अनासक्तिपूर्वक होते हैं इसके लिए अगला संदर्भ देखें।

१६
कर्मों के नाश का रहस्य

अज्ञानदशा तथा ज्ञानदशा में बड़ा अंतर होता है। हमें इलाहाबाद से कलकत्ता जाना है और हम पश्चिम तरफ जा रहे हैं, तो निश्चित ही यह भूल-

१. बाल्मीकीय रामायण, उत्तरकांड सर्ग ५० तथा ५१।

दशा की बात है, क्योंकि इलाहाबाद से कलकत्ता पश्चिम नहीं, पूर्व है। पश्चिम जाने पर हम कलकत्ता से दूर ही होते जायेंगे। जब हमें ज्ञान हो जायेगा तब हम तुरन्त पूर्व की ओर लौट पड़ेंगे। ज्ञान होते ही हमारी दिशा सही हो जाती है और फिर धीरे-धीरे हम कलकत्ता पहुंच जाते हैं।

'मैं देह हूं' यह अज्ञान दशा है। 'मैं' देह से सर्वथा भिन्न शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप चेतन हूं' यह ज्ञान दशा है। अज्ञानदशा में देह ही को सत तथा उसको अपना स्वरूप मानकर हम विषय-भोगों में ही अनुरक्त रहते हैं और विषयों में अनुरक्ति के कारण हम हर समय बहिर्मुख रहते हैं। विषय केवल स्थूल इन्द्रियों के भोग ही नही हैं, अपितु जहां तक दृश्य विषय हैं, अपनी मान, बड़ाई, पूज्यता, प्रशंसा, वंदना आदि कराने एवं दूसरे से पाने की वासना भी विषयासक्ति है। इन्हें पाकर मन मे हर्ष मानना भी विषय भोग है। स्व-स्वरूप के पृथक जहां तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध—पाच विषय हैं, उनके प्रति आकर्षण ही विषयासक्ति है। मैथुन की वासना पुनर्जन्म कराने में समर्थ है, तो प्रतिष्ठा की वासना भी। द्रष्टा का दृश्य में आकर्षण मात्र बन्धन है। यह दुर्बलता जितनी होगी 'कर्मो के नाश की बाते' समझ में नही आयेगी। यह दशा बड़ी सूक्ष्म है। पूर्ण वैराग्य उदय होने पर यह सर्वोच्च अवस्था प्राप्त होती हैं।

जब द्रष्टा अंतमु'ख हो जाता है, तब उसकी स्थूल-सूक्ष्म सारी विषयासक्ति सर्वथा निवृत्त हो जाती है। यही कर्मो का नाश है। वृत्ति अतमु'खी हो जाने पर वह प्रपंच में अर्थात राग मे नही जाती। राग ही कर्म का कारण है। उसके अभाव हो जाने पर कर्मो का अभाव स्वयं हो जाता है। यह बात केवल पढ़ या सुनकर नही समझी जा सकती। इसका पूर्ण अनुभव करने के लिए बाहर से मुड़कर अंतमु'ख होना पड़ेगा।

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि "यदि किसी व्यक्ति ने अपने जीवन में अनेक हत्यायें की हैं और बहुत दिनों के बाद उसे ज्ञान हुआ और साधना में लग गया तो क्या वह मुक्त होगा ?" कुछ लोग उत्तर देते हैं "नहीं, ऐसे व्यक्ति का मोक्ष नहीं हो सकता। अन्य कर्मो की वासनायें तो मिट सकती हैं; परन्तु हत्या-कर्म की वासनाये नहीं मिट सकती। जो लोग मानते हैं कि ऐसे लोग भी मुक्त हो सकते हैं वे भ्रम मे हैं तथा वे पाप को बढ़ावा दे रहे हैं और वे बहुत-से शिष्यों को बटोरना चाहते हैं।"

उपयु'क्त उत्तर समुचित नहीं है। पाप को बढ़ावा देना तब कहा जा सकता है जब यह कहा जाता कि आदमी हत्या करता रहे और वह कुछ ज्ञान-

विचार की बातें कर ले, और मुक्त हो जायेगा। यहां पाप को बढ़ावा नहीं, पुण्य को बढ़ावा देना है कि आदमी भूल दशा में कैसा भी पाप किया हो, वह उधर पुनः न सोचे। वह पापों का सर्वथा त्याग कर अपनी कल्याण-साधना में लग जाय। सद्गुरु कबीर ने जो यह कहा है कि "हत्या कभी नहीं छूट सकती चाहे करोड़ो पुराण सुनो[1]।" ठीक है। कोई पुराण और दान के बल पर हत्या करता रहे तो उसका उद्धार कहां ? सद्गुरु कबीर ने जिस प्रसंग में उपर्युक्त-जैसी साखियां कही है वह ऐसे लोगो के लिए कही हैं जो अभी हत्या करते जा रहे हैं। परन्तु जिन्होने हत्या आदि सारे अघकर्मो का सर्वथा त्याग कर दिया है और मन, वाणी तथा कर्म से बोध-वैराग्य की धारणा में लगे हैं और यदि उनमें पूरा वैराग्य उदय हो गया है तो वे इसी जीवन में जीवन्मुक्ति स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। प्रश्न तो यह है कि वह व्यक्ति जो पहले हत्यादि घोर कर्म कर चुका है वह इस जन्म में पूर्ण पुरुषार्थ कर जीवन्मुक्त हो सकता है ? उत्तर है, हां, हो सकता है।

कोई पहले से सदाचारी भक्त ही रहा हो, परन्तु उसे यदि पूर्ण बोध-वैराग्य की रहनी धारण नहीं है तो वह जीवन्मुक्त नहीं हो सकता और कोई पहले का हत्यारा या कैसा भी पापी रहा हो, परन्तु उसने उन समस्त पापो का सर्वथा परित्याग कर दिया और उनके प्रति उसे पूर्ण ग्लानि हो गयी और साधना में पूर्ण तत्पर हो गया, तो वह इसी जीवन मे कृतार्थ हो सकता है। न बाल ब्रह्मचारी का महत्व है और न अधेड़ ब्रह्मचारी का तथा न किसी अन्य बात का। महत्व है वर्तमान की पूर्ण मुमुक्षुता, तीव्र वैराग्य एवं पुरुषार्थ का। हत्यारे रत्नाकर महर्षि बाल्मीकि हो गये तथा अत्यन्त विषय लम्पट राजा भर्तृहरि परम वैराग्यवान हो गये।

विशालदेव कहते हैं "कोई मनुष्य बहुत काल तक तप, यज्ञ, तीर्थ आदि किया कि इसके फल में हमें स्वर्ग मिलेगा, परन्तु आगे चलकर उसको स्वस्वरूप का बोध हो गया। फिर तो उसे स्वर्गादि कल्पित प्रतीत हुए और उससे अत्यंत अभाव हो गया। पहले तो तीर्थ, तप, यज्ञ आदि किया, परन्तु पीछे उसके फल स्वर्ग की इच्छा ही समाप्त हो गयी, फिर उसकी वासना उसके मन में कैसे रह सकती है, क्योंकि स्वरूपज्ञान द्वारा सारी वासनायें भुन गयीं। उपर्युक्त प्रकार से कोई व्यक्ति पहले चोरी, डाका तथा हिंसा करता रहा, परन्तु पीछे उसको ज्ञान हुआ कि यह कर्म बुरा है। अतः उसे इन अघकर्मो में पूर्ण दुःख प्रतीत हुआ और इनका सर्वथा त्याग कर दिया और साधु-संत की संगत करने लगा,

१. बीजक, साखी २१२।

सद्ग्रंथ पढ़ने लगा, सद्‌गुण धारण करने लगा और इसी शुभ मार्ग में उसका प्रेम अनुदिन बढ़ने लगा और अंततः वह स्वरूपस्थिति में ठहर गया। इसी अभ्यास में उसका बहुत काल व्यतीत हो गया और उसे स्वरूपस्थिति की पूरी दृढ़ता हो गयी। इस प्रकार वह यदि इसी स्थिति में जीवन की आखीरी तक बना रहा, तो निश्चित है वह इसी जीवन में पूर्ण कृतार्थ, कल्याण स्वरूप हो गया। वह पुनर्जन्म से रहित होकर मुक्त हो गया। क्योंकि जो बात जीव को स्वीकार है वही उसके पास रह सकती है और जिसे वह दुःखप्रद जानकर त्याग कर दिया, उसकी वासना नहीं रह सकती[२]।"

जीव में संवेदना की ऐसी महान शक्ति है कि वह भयंकर-से-भयंकर गलत स्वभाव को मिटाकर शुद्ध हो सकता है। वैज्ञानिक जन एक-एक चीज की खोज में अपनी जान की बाजी लगा देते हैं। इसी प्रकार जिसे इसी जीवन में जीवन को पूर्ण पवित्र करने की तीव्र इच्छा है वह निश्चित ही उसे कर लेगा।

"मनुष्य इस जीवन में अपना पूर्ण कल्याण नही कर सकता।" यह धारणा ही घोर प्रतिक्रियावादी है जो साधक के मन को साहसहीन बना कर उसे पीछे धकेलती है। किसके पूर्व जीवन में दाग नहीं हैं! कम हो या ज्यादा सबकी चादर में मैल लगा है। अच्छी धुलाई मे सब कुछ साफ हो जाता है। वह सिद्धान्त सफल नहीं माना जा सकता जो पूर्ण उत्साही मुमुक्षु को इसी जीवन में पूर्ण सफलता का साहस नही दे सकता।

कबीरदेव ने सारे अघकर्मो को छोड़कर ज्ञानमार्ग मे लगने वालों के लिए कहा है "तभी तक तारे टिमटिमाते हैं जब तक सूर्य नहीं उदित होता, इसी प्रकार तभी तक जीव कर्मबन्धनों मे पड़कर भटकता है जब तक पूरा ज्ञान उदय नहीं होता[३]।" उन्होने कहा "आज भी मैं तुम्हें काल (अज्ञान) से छुड़ा लूंगा, यदि तुम मन को सम्हाल लो[४]।"

१७

जगत की अनादिता

संसार की या कम-से-कम भारतवर्ष की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद के दशम मंडल के नासदीय सूक्त में, जिसकी चर्चा हम प्रथम प्रकरण के 'सृष्टि

२. मुक्तिद्वार, शांतिशतक, साखी ४७ से ५२।

३. बीजक, साखी २०५।

४. बीजक, शब्द ५६।

एवं जगत' संदर्भ में कर आये हैं, सृष्टि के विषय में धुंधली कल्पना उपस्थित की गयी है। मनुस्मृति के मत से जल में पड़े अंडे से, ऐतरेय उपनिषद् के मत से बिना कोई सुव्यवस्था के ईश्वर ने जगत बना दिया। तैत्तरीय उपनिषद् के अनुसार प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ फिर उससे वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि। प्रश्न उपनिषद् के अनुसार प्रथम प्राण पैदा हुए। वैशेषिक-न्याय के अनुसार परमाणु से, सांख्य-योग के अनुसार प्रकृति से, वेदान्त के अनुसार ब्रह्म से और भिन्न-भिन्न पुराणों के अनुसार भिन्न-भिन्न देवता से, कुरान के अनुसार खुदा की आज्ञा से, बाइबिल के अनुसार यहोवा परमेश्वर के छह दिन की मेहनत से, वैज्ञानिकों के मत से ईथर-नीहारिका आदि से सृष्टि हुई। सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में ससार में सैकड़ों मत है।

संसार में दो वस्तुएं मौलिक हैं—जड़ और चेतन। न जड़ से चेतन की उत्पत्ति सभंव है और न चेतन से जड़ की और न ये दोनो किसी अन्य कारण से पैदा हुए। जड़-चेतन अनादि स्वतः अनुत्पन्न है। जड़ को हम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कहें या ठोस, तरल, वायव्य, अतिवायव्य कहे या इनमे रहे हुए शताधिक भेद वाले नाम आक्सोजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि कहें, वे असंख्य सूक्ष्म परमाणुओं के समूह, निरन्तर गतिशील द्रव्यात्मक पदार्थ हैं। इनमें अपने अनादि मौलिक गुण-धर्म हैं जिससे सृष्टि का अस्तित्व सदैव विद्यमान रहता है। इधर जड़ से भिन्न चेतन जीव अनादि एवं अनंत हैं। अर्थात न उनकी उत्पत्ति हुई है, न अंत होगा। चेतन जड़ से सर्वथा विलक्षण होने से वे स्वतः हैं। जो स्वतः है उसका कभी नाश नही। अतएव जीव अनादि जड़-वासनावश देह धरते-छोड़ते रहते है।

जड़ तत्व चाहे जितने भेदों के हो वे सब परमाणु रूप एवं जड़ द्रव्य हैं। जड़ द्रव्य देश और काल में निरन्तर गति करते है। उनकी गति से ही कार्य-पदार्थों के निरन्तर संव्यूहन और विघटन, निर्माण और विनाश चलते रहते हैं। अर्थात जड़ द्रव्यों की अनवरत गतिशीलता ही निर्माण और विनाश है। धान का विनाश चावल का निर्माण है, चावल का विनाश भात का निर्माण है आदि। जगत में वस्तुतः न कुछ विनष्ट होता है और न उत्पन्न, किन्तु अनादि मूल जड़ द्रव्यों की निरन्तर गति होती है और उसी में निर्माण और विनाश प्रतिबिम्ब होते हैं। जिसको हम निर्माण कहते हैं उसके होने पर जड़ प्रकृति में एक कण भी बढ़ता नही और जिसको विनाश कहते हैं उसके होने पर एक कण भी घटता नही।

इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है कि चेतन के समान ही जड़ तत्व भी अनादि, स्वतः और नित्य हैं। जड़ तत्वों में जो गुण-धर्म एवं गति हैं वे औपा-

धिक तथा नैमित्तिक नहीं, अपितु उनके अपने स्वरूप में स्वतः सिद्ध हैं। अनादि अविनाशी चेतन जीव भी जड़-वासना के वश अनादि से ही शरीर धरते-छोड़ते आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में सृष्टि का कहीं किसी काल में आरम्भ मानना एक भ्रांति ही है। जड़ और चेतन अनादि, उनके गुण-धर्म अनादि और उनके गुण-धर्मों से जगत अनादि, फिर अमुक काल में जगत की रचना की कल्पना करना जगत को न समझना है।

पीछे 'तत्वों के षट्भेद' संदर्भ में जो छह भेदों के स्वरूप बताये गये हैं, बड़े महत्वपूर्ण हैं। अनादि जड़ तत्वों के परमाणुओं में उनके अपने मौलिक स्वभाव—धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, आकार व परस्पर मेल अर्थात अंतस्सबंध हैं। तत्वों द्वारा जगत की निरन्तर रचना होते रहने मे उक्त षट्भेद ही उनकी सपत्ति है। जड़ द्रव्यो में हर समय रासायनिक क्रिया होती रहती है। इससे उनमें परिवर्तन बना रहता है। प्रकृति के ये सारे नियम प्रकृतिगत है, प्रकृति के स्वरूप हैं। प्रकृति एव जड़ द्रव्यों के नियमों को बाहर से किसी देव-द्वारा प्रक्षिप्त मानना एवं डाला हुआ समझना जड़ तत्वो के भेदो को न समझना है। नियमों की प्रकृतिगतता समझ लेने पर देववाद के असम्बद्ध प्रलाप की आवश्यकता नहीं होती। जड़ और चेतन दोनो अनादि है और इनके बीच मे जगत चल ही रहा है, फिर अन्य कारण-कर्ता की क्या आवश्यकता ?

सृष्टि दो प्रकार की है, एक जड़ात्मक तथा दूसरा जड़-चेतनात्मक। छह ऋतुओं का परिवर्तन, वर्षा, शीत, गरमी, पर्वत, झरना, बेलि, वृक्ष, वनस्पति, खनिज पदार्थ आदि जड़ात्मक सृष्टि है तथा मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि आदि की देहें, ग्राम, नगर, यंत्र, ग्रंथ, पट, पात्र, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान, मत, पंथ, मान्यतायें आदि जड़-चेतनात्मक सृष्टि है। केवल जड़ात्मक सृष्टि, मूल जड़ तत्वों के गुण-धर्मो, उनकी रासायनिक क्रियाओं, उनके अंतस्सम्बन्धों एवं उनके वस्तुगत अनादि नियमों से निरंतर होती रहती है। इसमे किसी चेतन की कला समझना मिथ्या धारणा है। अपने स्वरूपगत नियमो से आबद्ध पृथ्वी अपनी चाल में निरन्तर चलती है और इससे उसमें स्वयमेव सूर्य का उत्तरायण तथा दक्षिणायण होना लगा रहता है और इस क्रिया से नियमतः वर्षा, शीत और गरमी आती रहती हैं। जड़ पदार्थों में अपने नियम हैं वे उन्हे छोड़ नहीं सकते, किन्तु वे ज्ञान-रहित हैं, इसलिए जड़ तत्वों मे प्राणियो की हानि और लाभ का कुछ पता न होने से सृष्टि मे पूरी व्यवस्था नही रहती। प्रकृति की अपनी सारी योग्यता होने पर पानी बरसने लगता है और समय से इतना भी बरसता है कि जितनी आवश्यकता नही होती और समय-समय से तो इतना बरस जाता है कि हजारो-लाखो लोगो के धन-जन की हानि हो जाती

है, इलाका-इलाका बह जाता है। इसके मूल में यही है कि प्रकृति के जिन नियमों से पानी बरसता है वे अंधे हैं, ज्ञान रहित हैं। इसीलिए अतिवर्षण, अवर्षण आदि से आये दिन जनता त्राहि-त्राहि करती है। श्री निर्मल साहेब कहते हैं "ईश्वर पानी भर कर नहीं गिराता और प्रकृति जड़ होने से उसकी आज्ञा नहीं बजा सकती। जड़ प्रकृति हानि-लाभ का ज्ञान नही रखती, इसीलिए कहीं सूखा पड़ता और कही बाढ़ आती। कही पाला-पत्थर में, कही अग्नि में, कही शीत और कही गरमी में जड़ प्रकृति लोगो को झुलसाती रहती है[1]।"

सदियों से यह भ्रम धारणा मनुष्यो के मन मे घर कर रखी है कि प्रकृति जड़ होने से उसके परमाणु स्वयं क्रिया नही कर सकते। उनमें क्रिया उत्पन्न करने के लिए किसी विश्व-चेतना की प्रेरणा चाहिए। यह धारणा जड़ द्रव्यों के गुण-धर्मो तथा उनकी स्वभावसिद्ध क्रियाशीलता एवं नियमों की वस्तुगतता की अनभिज्ञता का फल है, या यह सब जानते हुए भी रूढ़िवादिता की पटरी से न उतरने का हठ है। कहा जाता है "तितर-बितर बिखरे हुए अनेक अचेतन जड़ तत्व तथा उनके परमाणुओ मे यह शक्ति नही है कि वे ऐसे व्यवस्थित संसार के रूप में एकबद्ध विन्यस्त हो सके और फिर व्यवस्थित ढंग से चलते रह सकें। इसके लिए किसी विश्व-चेतना की आवश्यकता है जो अपनी विराट इच्छा से यह सब कर सके।" परन्तु यह सारी बाते गैरजिम्मेदाराना ढंग से कही हुई हैं। जिस जगत को हम समझना चाहते हैं उसका हमें सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए। निष्पक्ष मन से जड़ तत्वों का अध्ययन कर लेने पर तत्वो की स्वभावसिद्ध क्रिया, उनके गुण-धर्म एवं सारे नियम तथा उनके महत्वपूर्ण अतस्संबंध सरलता से समझे जा सकते हैं जिससे जगत अनादि स्वचालित अनन्त की ओर गतिमान है और उनमें अपनें गुण-स्वभाव से ही क्रमबद्धता और एकता है। सृष्टि में परम व्यवस्था एवं एकता तो असंभव ही है; परन्तु उनमें आंशिक एवं सापेक्ष व्यवस्था तथा एकता उनके अपने गुण-धर्मो से स्वयमेव होती रहती है। श्री विशाल साहेब कहते हैं "जगत से भिन्न जगत के कारण-कर्ता का जहां तक अनुमान किया गया है उसका कारण यह प्रत्यक्ष जगत ही है। अर्थात जगत को देखकर मनुष्य जगत से भिन्न उसका कारण व कर्ता खोजता है। मनुष्य अनुमान की घुड़दौड़ छोड़कर जगत का ही सूक्ष्म अध्ययन नहीं करता, किन्तु अलग भागा जा रहा है[2]।"

१. निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर, न्यायनामा ४/१७-१६।

२. अनुमित को आधार यह, भास भई सब काहि।
घूमि लखत नहि आप तेहि, दौरा अंते जाहि॥
(मुक्तिद्वार, जगत अनादि शतक २३)

सद्गुरु कबीर ने जगत की अनादिता की ओर सातवीं रमैनी में संकेत किया है। श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब तथा श्री पूरण साहेब ने जगत की अनादिता को स्वीकार करते हुए भी कोई इस पर अधिक प्रकाश डालने का ध्यान नहीं दिया। श्री काशी साहेब ने इस पर अधिक ध्यान दिया और उन्होंने अपने 'निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' आदि ग्रन्थों में जगत की अनादिता पर काफी प्रकाश डाला। उन्होंने कहा "पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश —ये पांच तत्व जड़ और इनसे पृथक चेतन जीव—इन सबके सहित जगत स्वयं अनादि है[३]।" श्री निर्मल साहेब ने भी जड़-चेतन निर्णय तथा जगत की अनादिता पर अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा "जड़ प्रकृति अनादि है और उसके गुण-धर्मों से जगत भी अनादि है[४]। श्री विशाल साहेब ने जगत की अनादिता पर मुक्तिद्वार के दूसरे पाठ 'जगत अनादि शतक' में काफी विश्लेषण किया है वे कहते हैं "मूल जड़ तत्वो की न उत्पत्ति होती है और न अंत और न उसकी क्रियाये कभी समाप्त होती है। इसलिए निरतर परिवर्तन में उत्पत्ति और विनाश की लीला चलती रहती है और जगत नित्य बना रहता है[५]।"

बीज-वृक्ष, मुरगी-अण्डा, कर्म-देह, स्त्री-पुरुष—इन जोड़ो के बिना सृष्टि संभव ही नही है। पहले बीज है कि वृक्ष, मुरगी है कि अंडा? बिना वृक्ष के बीज नही तथा बिना बीज के वृक्ष नही। बिना मुरगी के अंडा नही और बिना अंडा के मुरगी नहीं। बिना कर्म के देह नहीं और बिना देह के कर्म नहीं। इस प्रकार यह संसार आरम्भ-रहित अनादि काल से प्रवाह-रूप चला आया है और अनन्त की ओर गतिशील है। जगत को छोड़कर जगत के कारण और कर्ता की खोज करना एक भ्रम है। मूल भौतिक तत्व त्रयकालाबाध यथार्थ सत्तावान अपने स्वरूपगत गुण-धर्मो तथा अंतस्संबंधो से जगत सृष्टि का कार्य सम्पादित करते हुए अनादिकाल से अनन्तकाल की ओर स्वभावतः गतिशील हैं। अविनाशी जीव जड़ संस्कारों के वश अनादिकाल से जन्म-मरण के प्रवाह में बहते जा रहे हैं। जो जीव स्वरूपज्ञान प्राप्त कर स्वरूपस्थ हो जाते हैं, वे इस भवाब्धि से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

जड़ द्रव्यों की स्वभावसिद्ध क्रियायें कभी रुक नहीं सकती, अतएव जगत का कभी प्रलय मानना भी निरर्थक है। जगत का सर्वथा प्रलय कभी नही होता; किन्तु परिवर्तित होता हुआ जगत नित्य बना रहता है[६]।

३. जड़ चेतन भेद प्रकाश चौपाई १-२। ४. न्यायनामा २/६-७।
५. मुक्तिद्वार, जगत अनादि शतक ११७।
६. चलै नित्य सो जगत कहावै। ठहरै नहिं नित नव प्रगटावै॥ (पंचग्रंथी, टकसार)

१८
ईश्वर

तीन आधारों को लेकर ईश्वर की कल्पना अधिकांशतः की जाती है— कोई सृष्टि रचयिता चाहिए, कर्म-फलदाता चाहिए तथा मोक्षदाता चाहिए। इन तीनों मुद्दों पर हम विचार करेंगे।

सृष्टि के लिए

ईश्वर को सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, कारुणिक और पूर्णकाम कहा जाता है। इस पाप-ताप और पीड़ा भरे संसार से ऐसे ईश्वर का ताल-मेल नहीं बैठता। ईश्वर ने सृष्टि क्यों बनायी, इसका उत्तर नही है[१]। पूर्णकाम को कुछ करने की इच्छा नही होती। कोई कार्यारंभ अज्ञात के ज्ञान के लिए तथा अप्राप्त की प्राप्ति के लिए किया जाता है। ईश्वर को न कुछ अज्ञात है और न अप्राप्त, फिर वह कुछ भी करने को क्यों तत्पर हो। उसने करुणा-वश होकर सृष्टि बनायी—यह भी नही कह सकते, क्योकि सृष्टि के पूर्व जब जगत था ही नही तो दुःखी कौन था जिस पर करुणा दिखाने के लिए सृष्टि बनानी पड़ी। यदि पूर्व के सृष्टिकाल के जीवों के कर्म-फल देने के लिए कहें, तो यही प्रश्न पूर्व सृष्टि-काल के लिए होगा कि वह सृष्टि उसने क्यो बनायी थी। ईश्वर भी बिना जाने-समझे अनादिता की धारा मे बहा जाता है, यह बात समझ मे नही आती।

कोई भी कर्ता अपने कार्य में तभी सफल माना जाता है जब उसका कार्य सत्यम, शिवम तथा सुन्दरम हो। जगत को देखकर उलटा लगता है। समस्त शास्त्र जगत को दुःख रूप कहते हैं। गीता का भी उद्घोष है "दुःखालयम् अशाश्वतम्"। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं "न विचार करने से संसार रमणीय लगता है, अन्यथा यह भारी भयंकर है[२]।" यह सृष्टि इतनी दुःखप्रद सिद्ध हुई है कि सभी विज्ञजनों को इससे मोक्ष लेने की आवश्यकता

१. 'इस पुराने प्रश्न का कि ईश्वर ने जगत को क्यों बनाया कभी उत्तर न मिला और न मिलेगा। जगत की क्या आवश्यकता है यह हम नहीं जानते; हम इतना ही जानते हैं कि जगत है।'

(प्रोलेगोमिना टु एथिक्स, विभाग १०० । सर राधाकृष्णन का भारतीय दर्शन, भाग १ पृष्ठ १७१)

२. अनविचार रमनीय सदा संसार भयंकर भारी ॥ विनय पत्रिका ॥

हुई। इसीलिए महाप्राज्ञ पतंजलि कहते हैं "सर्वमेव दुःखम् विवेकिनः।" विवेकी के लिए सब दुःख ही है।

दुःखमय सृष्टि को बनाकर उसमें सब जीवों को डाल देना और पुनः उनको उससे निकलने के लिए वेद-शास्त्रों में आज्ञा देना उसी प्रकार है जैसे कोई अबोध बच्चों को गड्ढे में डाल दे और उनको डूबने के दुःखों से बचने के लिए उसमें रस्सी डालकर उसके सहारे निकल आने की आज्ञा दे, जो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान के लक्षण से सर्वथा विरुद्ध है[३]। अवर्षण, अतिवर्षण, सूखा, दाहा, तूफान, भूचाल आदि प्रलयंकारी प्राकृतिक घटनाओं के पीछे दयालु

३. अपि च करुणया प्रेरित ईश्वरः सुखिन एव जन्तून् सृजेन्न विचित्रान्। कर्मवैचित्र्याद् वैचित्र्यमिति चेत, कृतमस्य प्रेक्षावतः कर्माधिष्ठानेन ? तदनधिष्ठानमात्रादेवाचेतनस्यापि कर्म्मणः प्रवृत्त्यनुपपत्तेस्तत्कार्यशरीरेन्द्रियविषयानुत्पत्तौ दुःखनिवृत्तेरपि सुकरत्वात्।

(श्री ईश्वरकृष्ण कृत सांख्यकारिका (५७) पर श्री वाचस्पति मिश्र कृत भाष्य)

और भी यदि ईश्वर करुणा-वश सृष्टि करता है तो केवल सुखी प्राणियों की सृष्टि करना चाहिए, न कि सुख-दुःख आदि अनेक अनुभवों के संयुक्त। यदि जीवों के विविध कर्मों के कारण अनेक अनुभव हैं तो ईश्वर को अधिष्ठाता मानने की आवश्यकता नहीं। ईश्वर के अधिष्ठाता न रहने पर (पूर्वपक्षी के अनुसार) न जड़ कर्म जीवों को फल देने के लिए प्रवृत्त हो सकेगा और न शरीर, विषय आदि की उत्पत्ति हो सकेगी फिर तो दुःखों की निवृत्ति अपने आप हो जायेगी।

और भी "यस्तु 'परमेश्वरः करुणया प्रवर्तकः' इति परमेश्वरास्तित्ववादिनां डिण्डिमः स गर्भस्रावेण गतः। विकल्पानुपपत्तेः। स किं सृष्टेः प्राक्प्रवर्तते सृष्ट्युत्तरकालं वा ? आद्ये शरीराद्यभावेन दुःखानुत्पत्तौ जीवानां दुःखप्रहाणेच्छानुपपत्तिः। द्वितीये परस्पराश्रयप्रसङ्गः। करुणया सृष्टिः सृष्ट्या च कारुण्यमिति।" (माधवाचार्य कृत सर्वदर्शन संग्रह, सांख्य दर्शन, १०)

अर्थात ईश्वरवादियों का यह ढिंढोरा पीटना कि ईश्वर ने करुणावश ससार को बनाया, गर्भ गिरने के समान नष्ट हो गया। क्योंकि कथन अयुक्त है। ईश्वर सृष्टि के पहले प्रवृत्त होता है कि बाद में ? जब सृष्टि ही नहीं थी तब दुःख न होने से वह किस पर करुणावश होकर सृष्टि बनाया ? यदि सृष्टि के बाद में कहें तो अन्योन्याश्रय दोष होगा—करुणा से सृष्टि होती है और सृष्टि होने पर करुणा होती है।

ईश्वर ने केवल लीला के लिए जगत बनाया—यह नहीं कह सकते। लीला वह करता है जो अपूर्ण हो, असंतुष्ट हो। जो पूर्ण संतुष्ट हो उसको लीला की क्या आवश्यकता ? घबराता हुआ, बोर होता हुआ, व्यक्ति मन को बहलाने के लिए ताश खेलने लगता है। ईश्वर पूर्णकाम तथा पूर्णसंतुष्ट होने से लीला क्यों करेगा ? और लीला भी ऐसी जिसमे सबको संताप हो, यह दयालु के लिए कहां सभव है ? "चिड़िया का जी जाय लड़कों का खिलौना" सब प्राणी सृष्टि में पड़कर पिस रहे हैं और ईश्वर को लीला सूझी है !

अतएव जड़ और चेतन अनादि हैं। उनमें उनके गुण-धर्म भी अनादि हैं और इस प्रकार उनसे जगत की स्थिति भी अनादि है। इसके लिए किसी ईश्वर की प्रस्थापना की कोई आवश्यकता नही है। इसीलिए बुद्ध, महावीर तथा जैमिनि (मीमासक) ने भी जगत को अनादि स्वीकार किया है।

कर्म-फल देने के लिए

'चोरी करके कोई जेल नही जाना चाहता, परीक्षा के बाद फल कोई दूसरा देता है, इसी प्रकार जीवो के कर्मो का फल देने वाला उनसे अलग होना चाहिए जिसे हम ईश्वर कहते है।' परन्तु यह सिद्धान्त मानने से बात और उलझ जायेगी। रमेश्वर ने जगेश्वर के घर मे चोरी की। अगले जन्म मे रमेश्वर के कर्मो का फल देने के लिए ईश्वर ने माधो द्वारा उसके घर में चोरी करवायी। तो माधो निरपराध ठहरा, फिर वह राजा द्वारा पकड़े जाने पर दण्डित क्यो होता है ? या तो रमेश्वर को बदला देने के लिए उसके घर में ईश्वर स्वयं चोरी करे। ईश्वर को बीच मे लाने से कर्मफलों की व्यवस्था गड़बड़ा जायेगी। यदि जीव अपने कर्मफलो का भोग संस्कारानुसार स्वयं करता है तो जिसने चोरी की वह पाप कर्म किया। उसका फल उसे भुगतना ईश्वर का हाथ देखना कहा तक समीचीन है ! हिन्दू, मुसलमान, इसाई, यहूदी—सभी ईश्वर को मानते है और सभी एक दूसरे को नास्तिक, काफर, नापाक समझते हैं। इस दिशा मे ईश्वर ने कभी इनमे एकता करने की चेष्टा नही की।

जो सर्वत्र, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और दयालु भी है, वह संसार में पाप क्यो होने देता है ? क्या बच्चो को बुराइयो से बलात नही रोका जाता ? अपनी आखो के नीचे चोरी, हत्या, व्यभिचार, डाकाजनी तथा अनेक घोर पाप होते देख कर भी उनका समुचित सुधार न कर पाना क्या उसकी सत्ता और सर्वशक्तिमता का उपहास नही है ?

पड़ेगा और जिसकी किसी प्रकार कुछ हानि हुई, वह अपने कर्मों का फल पाया। जीवों के कर्मफलों के बीच में ईश्वर को घसीट लाने से उसे दोषी बना देना होता है।

राजा जनता को बुरे कर्मों से रोकता है, इसलिए वह उसके गलत करने पर उसे दण्ड देने का अधिकारी है। राजा सर्वज्ञ, सर्वत्र तथा सर्वशक्तिमान न होने के कारण किसी के मन का हाल तो नहीं जानता। इसलिए वह पहले से चोरों को नहीं पकड़ पाता; परन्तु जब वह जान पाता है कि अमुक व्यक्ति चोरी, हत्या आदि करने वाला है या कर लिया है तो उसको पकड़ कर दण्डित करता है। ईश्वर तो घट-घट का हाल हर समय जानता है और हर समय हर जगह हर बुराई को दबा सकता है तथा सबमे केवल शुभ वासनाओं का उदय कर सकता है। फिर भी ऐसा सब कुछ न कर पाने से वह जीवो के गलत करने पर उन्हें दण्ड देने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?

इस जीवन में ऐसा कुछ अवश्य है कि हमारे कर्मों के फल दूसरे मनुष्यों द्वारा भी मिलते हैं, जैसे चोरी करने पर राजा द्वारा दंड तथा परोपकार करने पर समाज द्वारा प्रशंसा। परन्तु पाप और पुण्य कर्मो के संस्कारो द्वारा जो हमें अपने अंतर से ग्लानि व प्रसन्नता मिलती है, उसमे कोई दूसरा हेतु नहीं होता। इसी प्रकार जीव जो कुछ पाप और पुण्य कर्म करता है उनके संस्कार उसके मन में संग्रहीत होते हैं। संस्कार बड़े प्रबल होते हैं, वे सूक्ष्म शरीर मे निहित होते हैं। स्थूल शरीर के छूट जाने पर सूक्ष्म शरीर जीव के साथ रहता है जिसमें कर्म बीज संस्कारित होते हैं। बीज जैसे खेत में पड़े रहते है, समय पाकर उग आते हैं, वैसे जन्मांतर में जीव को अपने कर्मो के फलो के भोगो का अवसर पड़ता रहता है। जैसे कटहल, आम, नीम आदि के बीज से उन्ही के वृक्ष पैदा होते हैं, वैसे अच्छे-बुरे कर्म-सस्कारों के अनुसार ऊंची-नीची योनियां तथा सुख-दुःख भोग मिलते हैं। लहसुन-प्याज खाने पर उनकी दुर्गंधी की डकार तथा सुगंधित पदार्थ खाने से उसकी सुगधी की डकार स्वयमेव आती है। किसी दूसरे को उसकी डकार लाने में सहयोग नही करना पड़ता। अपने पैरों में जो कुल्हाड़ी मार लेगा उसे घाव का कष्ट स्वयं भोगना पड़ेगा, उसके लिए ईश्वर को खड़ा करने की आवश्यकता नही।

जीवों के किये हुए कर्म संस्कार उनके अंतःकरण एवं सूक्ष्म शरीर में निहित होते हैं, फिर उनका फल-भोग बाहर से ईश्वर कैसे करा सकता है। कर्म-फल-भोग तो कर्मो के अनादि नियम से स्वयं होते हैं। अपनी योग्यता पाकर बीज से वृक्ष, वृक्ष से फूल, फल स्वयं निकलते हैं। मोर के पंखो में,

मुरगो की कलंगी में, अनेक पत्थर, पत्र, पुष्प आदि में विचित्रता किसने पैदा की है ? यह सब उनके अनादि गुण-धर्मो से स्वयमेव होते हैं। हिरन के सीग को कौन ऐंठता है, आकाश में इंद्रधनुष कौन बना देता है। यह सब उपयुक्त योग्यताओं से स्वाभाविक होते हैं। जो कर्म कर लिये गये हैं उनके संस्कार मन में दृढ़ हो जाते हैं और उनका फल आज या आगे जन्म-जन्मांतरों में अनादि कर्म विधानानुसार स्वयं मिलता है। आग छूकर जलना निश्चित है, पानी के स्पर्श से शीतलता स्वयं आती है।

मोक्ष देने के लिए

कहा जाता है 'जीव स्वयं पूर्ण होता तो दुखी ही क्यों होता। उसमें पूर्णता पाने की तो उत्कट अभिलाषा है; परन्तु वह स्वयं पूर्ण नही है। अतएव कोई ऐसा होगा जो सर्वथा पूर्ण होगा और उसकी उपासना कर तथा उसकी कृपा पाकर जीव पूर्ण एवं मुक्त हो सकता है। वह मोक्षदाता ही ईश्वर है।'

उक्त शंका भी स्वरूपज्ञान के अभाव का फल है। यदि जीव अपूर्ण है तो ईश्वर को ही हम पूर्ण कैसे कहे, जिसकी तथाकथित रची सृष्टि दुःखों से भरी है। यदि ईश्वर पूर्ण होता तो जीवो को क्यों दुःखी रहने देता ? यदि वह उपासना के बाद ही उसको कल्याण का पुरस्कार देता है तो यह भी उसकी अपूर्णता ही है। फिर यदि उपासक जीव में ईश्वर पूर्णता डालता है, तो डाली हुई चीज एक दिन अवश्य निकल जायगी। उधारी का सौदा कब तक चलेगा ? यदि जीव का स्वरूप पूर्ण नही है तो उसे हजार ईश्वर मिल कर भी पूर्ण नही कर सकते। जो वस्तु जहां है ही नही वह वहां आ कैसे सकती है ?

वस्तुतः इच्छा ही अपूर्णता का कारण है और जितनी इच्छाये है स्व-स्वरूप के अज्ञान से ही हैं। चेतन स्वरूप मे मन नही। चेतन मन, वाणी, शरीर—सबसे रहित शुद्ध-बुद्ध है। समाधि, मूर्छा और गाढ़ी सुषुप्ति मे जब मन का अभाव रहता है तब जीव को क्या अपूर्णता रहती है ! अतएव जो अपने पूर्णकाम स्वरूप को ठीक से समझ कर जीवन काल में ही अंतर्मुख हो जाता है वह आज ही पूर्ण है। स्वरूपतः जीव पूर्ण ही है। अपने स्वरूप को ठीक से न जानकर और बाह्य विषयो की इच्छा कर अपूर्णता के दर्शन होते हैं और जब स्वरूपज्ञान प्राप्त कर इच्छा छोड़ दी जाती है, तब जीव अपने पूर्णकाम स्वरूप में स्थित होकर पूर्ण ही रह जाता है। श्री रामरहस साहेब कहते है "जीव अपने आप को नित्य प्राप्त ही है। उसे कुछ प्राप्त करने की इच्छा नही करनी है, अपितु केवल सर्व अहकारो का परित्याग करना है। और जब तक

शरीर है तब तक दूसरे जीवों को भी अपने ही समान समझकर उनकी हित-साधना करनी है[४] ।"

मिली हुई वस्तु छूट जाती है, अतएव मुक्ति प्राप्त नहीं होती, अपितु जीव का अपना मौलिक स्वरूप ही मुक्त है। वह जैसे है, उसे वैसी रहनी में केवल रह जाना है। स्वरूपज्ञान पूर्वक अंतर्मुख रहनी आ जाने पर जीव पूर्ण-काम, मुक्तस्वरूप एवं कल्याणरूप ही है।

समीक्षा

जीव से भिन्न ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं। ईश्वर जीव की शुद्ध कल्पना है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि उसकी मान्यता तथा उपासना से किसी-न-किसी प्रकार किसी श्रेणी के मनुष्यों का हित है। जैसे बच्चे के मुख में चटुआ डाल देने पर उसे विश्वास होता है कि इससे दूध आ रहा है और वह चुप हो जाता है, उसे संतोष हो जाता है; परन्तु यह सन्तोष सदा के लिए नही है। इसी प्रकार जब व्यक्ति सोचता है कि हमारे ऊपर सर्वशक्तिमान ईश्वर हमारा रक्षक है, तब उसे एक सतोष मिलता है, साहस आता है; परन्तु इतने ही विचार से कल्याण नहीं हो सकता। जीवन को निर्मल बनाकर स्वरूपज्ञान प्राप्त करना होगा, तभी सारी भ्रांतियां मिट कर जीव का कल्याण होगा। भूत-प्रेत कोई वस्तु नहीं; परन्तु उनकी भावना आने पर जैसे मनुष्य भयभीत हो जाता है, वैसे ईश्वर जीव से भिन्न कोई वस्तु नही; परन्तु उसकी भावना करने से मन में एक ढाढ़स आता है। यह अनुभवसिद्ध बात है कि अलीक धारणाये भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती हैं। जैसे कड़ी धूप में यदि दृढ़ता पूर्वक यह भावना की जाय कि हमें बड़े जोरों से ठंडी लग गयी, तो क्षण मात्र के लिए रोंगटे खड़े हो सकते हैं और कठिन ठंडी मे दृढ़ता पूर्वक गरमी की भावना करने से क्षणमात्र के लिए गरमी आ सकती है। इसी प्रकार काल्पनिक ईश्वर साधारण मनुष्यो के लिए सदाचार और साहस का आधार हो सकता है।

वस्तुतः संतोष, साहस और सदाचार का सही आधार है अपने अवि-नाशी चेतन स्वरूप का ज्ञान तथा कर्म-फल-भोग को समझ कर उसे स्वीकार करना। पहली बात तो स्वरूपज्ञान है। व्यक्ति का अपना मौलिक स्वरूप अवि-नाशी, चेतन, निर्विकार, जड़ प्रकृति से सर्वथा पृथक, असंग, निराधार एवं पूर्ण-काम है। वह इस अपने स्वरूप को भूलकर ही विकार, भय एवं अपकर्म में

४. प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दया युत, दीन जानि अपनाव॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध दोहा ३५२)

पड़ता है। अपने मौलिक स्वरूप की ओर उन्मुख हो जाने पर वह पूर्णतृप्त ही है। दूसरी बात है कर्म-फल-भोग के विधान को समझना और उसे स्वीकार करना। अच्छे-बुरे जो कर्म जान-बूझ कर इच्छा पूर्वक किये जाते हैं, उनके संस्कार मन में पड़ जाते हैं और कर्मी जीवो को उनके फल-भोग देर-सबेर भोगने अवश्य है। बुरे कर्म करके कोई उनके फल से कही भाग कर बच नही सकता। अतएव जान-बूझ कर बुरे कर्म करने ही नही है। पूर्व जन्मो में किये गये अपने कर्मो के जोर से निर्मित जो प्रारब्ध भोग सामने है, उसे भोगना निश्चित है। आज के या पहले के अपने किये कर्मो के फल कही जा नही सकते। जब उनका भोगना निश्चित है तब चिन्ता करना निरर्थक है। बिना कर्मो का सुधार किये दुःखो से छूटने का रास्ता नहीं, और कर्मो को सुधार लेने पर कोई दुःख दे सकता नही। मनुष्य अपने कर्मो का सुधार कर स्वय अपने लिए शीतल छाया हो जाता है।

भारतवर्ष के पांच महर्षि एवं महान आत्मा कपिल, बुद्ध, महावीर, जैमिनि और कणाद ईश्वर को अस्वीकार करते है और आत्मावलंबन तथा आत्मस्थिति की ओर बल देते हैं। बुद्ध और महावीर वेदो से स्वतन्त्र विचार रखते हैं; परन्तु जैमिनि, कणाद और कपिल वैदिक प्रमाण को स्वीकार करते हुए भी ईश्वर न स्वीकार कर केवल आत्मा, पुरुष एवं जीव को ही स्वीकार करते हैं। सर राधाकृष्णन लिखते हैं "जैमिनि ईश्वर का निषेध उतना नही करते जितना कि उसकी ओर उपेक्षा का भाव रखते है। वैदिक धर्म के किसी भी ब्योरे मे ईश्वर की सहायता आवश्यक नहीं।......हम पहले देख आये हैं कि किस प्रकार वेद को ईश्वर की कृति मानने के प्रयासो का प्रत्याख्यान किया गया है।......एक सर्वज्ञ सत्ता के अस्तित्व का कोई विश्वसनीय प्रमाण नही मिलता[५]।" और भी "कुमारिल न्याय के उस मत की आलोचना करता है जो तर्क के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करता है और घोषणा करता है कि वेदो का निर्माण ईश्वर द्वारा हुआ है। यदि वेद, जिन्हे ईश्वर की कृति समझा जाता है, कहते है कि ईश्वर जगत का स्रष्टा है, तो इस प्रकार के कथन का कोई मूल्य नही है। यदि स्रष्टा ने जगत को बनाया है तो इसे कौन प्रमाणित करेगा? फिर, वह जगत का निर्माण कैसे करता है? यदि उसका कोई भौतिक शरीर नही है, तो उसे सृष्टि-रचना की कोई इच्छा भी नही हो सकती। यदि उसका कोई भौतिक शरीर है तो वह स्वयं उसके कारण नही हो सकता; और इस प्रकार हमें उसके लिए एक अन्य स्रष्टा मानना होगा। यदि उसका

५. भारतीय दर्शन, भाग २, पृष्ठ ४१८।

शरीर नित्य माना जाय तो वह किन घटकों से बना है, क्योंकि पृथ्वी आदि तत्व तो तब तक उत्पन्न नही हुए थे ? यदि उसकी रचनात्मक क्रिया से पूर्व प्रकृति का अस्तित्व है, तो अन्य पदार्थों के अस्तित्व का निषेध करने का कोई कारण नही है। दुःखों से भरे इस संसार को उत्पन्न करने मे ईश्वर का क्या प्रयोजन है ? भूतकाल के कर्म की व्याख्या लागू नहीं होती, क्योकि इससे पूर्व सृष्टि न थी। दया के कारण वह सृष्टि की रचना नहीं कर सकता, क्योकि ऐसे प्राणी नही थे जिन पर दया दिखायी जा सके। इसके अतिरिक्त इस मत के अनुसार केवल सुखी प्राणियों की ही रचना की जानी चाहिए थी। हम यह नहीं कह सकते कि ऐसी सृष्टि की रचना संभव नही है जिसमें दुःख का अंश विद्यमान न हो, क्योकि ईश्वर के लिए कुछ भी असंभव नही है। किन्तु यदि किन्हीं कारणों से उस पर प्रतिबंध लगा हुआ है, तो वह सर्वशक्तिमान नही है। यदि सृष्टि की रचना ईश्वर के मनोरजन के लिए है, तो उस प्रकल्पना से विरोध होता है, जो कहती है कि ईश्वर सर्वथा सुखी है। इससे ईश्वर बहुत अधिक कष्टदायक परिश्रम में पड़ जायेगा और न ही संसार के विनाश की उसकी इच्छा समझ में आयेगी। हम उसकी वाणी पर क्यो विश्वास करें ? क्योंकि यदि उसने जगत का निर्माण न भी किया हो तो भी अपनी शक्ति की महत्ता दिखाने को वह ऐसा कह सकता है (असृष्ट्वापि ह्यसौ ब्रूयादात्मैश्वर्य प्रकाशनात् ६०)।.........यदि यह कहा जाय कि परमाणु ईश्वर की इच्छा के अनुसार कार्य करते हैं, तो ईश्वरेच्छा कैसे उदय होती है ? यदि अदृष्ट सरीखे किसी कारण से प्रेरणा मिलती है, तो वही संसार का भी कारण हो सकता है। यदि ईश्वर अन्य वस्तुओ पर निर्भर करता है तो उसकी स्वतन्त्रता मे अन्तर पड़ता है[६]।" ये सब बातें प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल (सातवी शताब्दी ईसा) के श्लोक वार्तिक आदि मे उपलब्ध हैं।

"कणाद के सूत्र में प्रकट रूप में ईश्वर का उल्लेख नहीं है, उसके अनुसार, परमाणुओं तथा आत्माओं में आदिम गतियां अदृष्ट के कारण से होती है।......कणाद ने स्वयं भी एक दैवीय सत्ता की आवश्यकता को अनुभव किया ऐसा स्वीकार करना कठिन है। उस प्रसिद्ध वाक्य[७] में जो दो बार आया है और जिसे परवर्ती टीकाकारों ने आस्तिकवाद का समर्थक बताया है, ईश्वर का कही उल्लेख नही है। यह प्रकट है कि कणाद वेदो को ईश्वर-प्रदत्त न मानकर उन्हे ऋषियों द्वारा रचित ग्रंथ मानता है।......वेदांत सूत्र पर किये

६. भारतीय दर्शन २/४१६।

७. तदवचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वैशे० १,१,३/१०,२,९)

गये अपने भाष्य[८] में शंकराचार्य ने जो समीक्षा की है उसमें भी यही धारणा बनायी गयी है कि वैशेषिक दर्शन में ईश्वर के लिए कोई स्थान नही है और कि यह दर्शन आत्माओं तथा परमाणुओ के नित्य तथा अनिर्मित स्वरूप को मानता है और उनकी नानाविध अवस्थाओं की व्याख्या अदृष्ट के द्वारा करता है[९] ।"

"सांख्यदर्शन अपने प्राचीन शास्त्रीय रूप में ईश्वरवाद का समर्थन नही करता । एक परम आत्मा के सर्वोपरि भाव के प्रति अपनी उपेक्षा तथा अविद्या के संबंध और आत्मा के संसार मे उलझे रहने के अपने सिद्धान्त से सांख्य हमें बौद्धमत का स्मरण कराता है[१०] ।"

"ईश्वरवाद पतंजलि के संप्रदाय का अंतरंग भाग नही है ।......ईश्वर जगत का स्रष्टा नहीं है, क्योकि एक ऐसे जगत की सृष्टि जो दु:खों से भरपूर है, किसी ऐसी सत्ता के द्वारा नही हो सकती थी जो अनन्त करुणा का आगार हो[११] ।"

"न्यायशास्त्र में हम देखते हैं कि परमेश्वर का उल्लेख केवल आनुषगिक (गौण) रूप में ही पाया जाता है, जिससे यह संदेह युक्तियुक्त ही ठहरता है कि न्याय का प्राचीन सिद्धान्त ब्रह्मवादी नही था[१२] ।"

"दोनों संप्रदायों के मूल ग्रन्थों, वैशेषिक तथा न्यायसूत्रो में ईश्वर की सत्ता को प्रारम्भ में स्वीकार नही किया गया था । पीछे कुछ समय बीतने पर दोनो दर्शन परिवर्तित होकर ईश्वरवादी बन गये । यद्यपि दोनों में कोई भी यहा तक नही पहुंचा कि ईश्वर को प्रकृति का स्रष्टा मानने लगे[१३] ।"

"शंकर (शंकराचार्य) के दर्शन मे ईश्वर एक स्वत:सिद्ध प्रमाण नही है, तार्किक सत्य भी नही है; किन्तु एक अनुभवजन्य उपधारणा है जिसकी क्रियात्मक उपयोगिता है[१४]।"

८. ब्रह्मसूत्र २/३/१४।
९. सर राधाकृष्णनकृत भारतीय दर्शन २/२२४-२२५ ।
१०. वही २/३१३ ।
११. वही २/ ३६३, ३६४ ।
१२. वही २/१६४ ।
१३. गार्वे : फिलासफी आफ एशियंट इंडिया, पृष्ठ २३ ।
सर राधाकृष्णन कृत भारतीय दर्शन २/१६४ ।
१४. वही २/५४१ ।

उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि जैन-बौद्ध के अतिरिक्त वेदानुसारी शास्त्र भी अपने प्राचीन मूल रूप में प्रायः ईश्वरवादी चिंतन से हटकर आत्मवादी ही हैं। दशवीं ईस्वी शताब्दी में होने वाले प्रसिद्ध न्यायवादी उदयन ने ईश्वर की सिद्धि में 'कुसुमांजलि' लिखी, जो बहुत प्रसिद्ध है। परन्तु आगे चलकर जब उन्होंने देखा कि ईश्वर मेरी भक्ति का कोई फल नहीं दे रहा है, तो उन्होंने कहा "हे ईश्वर, तुम अपने ऐश्वर्य के मद में उन्मत्त हो गये हो और मेरा तिरस्कार करते हो, जबकि बलशाली बौद्धों द्वारा तुम रगड़े जा रहे थे और मैंने ही तुम्हारी जान बचायी है।" यथा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि ममवज्ञाय वर्तसे।
पराक्रान्तेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः[१५]॥

पारख सिद्धान्त के गंभीर विचारक श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब, श्री काशी साहेब तथा श्री निर्मल साहेब ने ईश्वर के सृष्टिकर्तापन की गंभीर आलोचनायें की हैं। श्री गुरुदयाल साहेब ने कहा जब संसार नहीं था तब केवल एक ईश्वर था, यह स्थिति जिसने देखी वह कहां पर रहा[१६]? श्री काशी साहेब ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन' के प्रथम प्रकरण 'जगतकर्ता दर्शन' में बहुत विस्तार से ईश्वर का प्रत्याख्यान किया है। उन्होंने जगत की अनादि तथा अनन्त गतिविधि को जड़-चेतन के गुण-धर्मों से स्वचालित होने का प्रबल प्रमाणों से वर्णन किया है।

जो लोग कहते हैं कि ब्रह्म-समुद्र का जगत लहर है, उनको ललकारते हुए श्री निर्मल साहेब कहते हैं "जगत-लहर तो दिखाई पड़ती है, परन्तु ब्रह्म-समुद्र नही दिखाई पड़ता, ऐसी अचरज भरी बातें मुनिजन लिख रहे है[१७]। यदि ईश्वर जगत का अभिन्न निमित्त उपादान कारण रूप जगत से समवाय संबंध वाला, जगत आधेय का आधार है, तो वह जगत माया से अलग कैसे हो सकता है[१८]?"

१५. उद्धृत सर राधाकृष्णन कृत भारतीय दर्शन २/३७।

१६, कबीर परिचय, साखी ११२।

१७. लहर देख पड़ते समुन्दर न दिखते। ऐसे अचंभों को मुनियों ने लिखते। (न्यायनामा ६/७)

१८. आधार आधेय सम्बन्ध समवाय। माया से ईश्वर जुदा अब कहां थाय॥ (वही ६/२२)

विस्तार के लिए पीछे दूसरे अध्याय में श्री निर्मल साहेब के न्यायनामा की व्याख्या देखनी चाहिए।

१८
अद्वैत ब्रह्मवाद

यह सिद्धान्त कहता है, सत्ता केवल एक अखंड, अद्वितीय, निर्विकार, सर्वत्रव्याप्त, निरवयव, निराकार-निर्गुण, शुद्ध-बुद्ध चेतन है। द्वैत का एवं जड़ जगत का कही नाम निशान नहीं है। जीव, जगत, बंध, मोक्ष—सब मिथ्या हैं। 'मन के अलावा यह बाह्य जगत कुछ है ही नही[1]।" यह सिद्धान्त जगत को मन का स्वप्न कहता है। इसके ख्याल से मन से ही जगत निकला है। चित्त के चंचल होने से जगत भासता है; परन्तु जगत है नही।

जगत मिथ्यावाद का जहां मूल स्रोत है वह है गौड़पाद (संभवतः ईसा पांचवीं शताब्दी) की कारिका। इसमें अजातवाद और अलातवाद पर जोर दिया गया है कि सब कुछ अ-जात है। जात का अर्थ जन्म लेना, पैदा होना है। ब्रह्म अजन्मा है। उसके अतिरिक्त कुछ है नही। अजन्मा से कुछ जन्म नहीं सकता। इसलिए "जो कहते है ब्रह्म से जीव तथा जगत पैदा हुए वे अजात को जात बनाना चाहते है; परन्तु जो अजात है, अमृत है वह जन्म तथा मृतत्व को कैसे प्राप्त हो सकता है[2] ?" अतएव "न निरोध है, न उत्पत्ति है, न कोई बंधा हुआ है, न साधक है, न मोक्ष की इच्छा करने वाला है और न मुक्त है, यही अंतिमी सत्यता है[3]।" इस प्रकार अजातवाद है। दूसरा अलातवाद है। अलात का अर्थ है अंगार। एक सिरे पर जलती हुई लकड़ी या मशाल वेगपूर्वक घुमाने से आग का एक चक्र बन जाता है; परन्तु वह वास्तविक नही है। लुकाठी घुमाना बंद कर दें तो अग्निचक्र भी बन्द हो जाता है। इसी प्रकार विज्ञान (चित्त) के चचल होने से जगत भासता है, उसके स्थिर हो जाने पर जगत कुछ नही[4]। जैसे स्वप्न, माया तथा गंधर्वनगर (दृष्टि-दोष से आकाश में दिखाई देने वाला मिथ्या आभास रूप नगर) दिखाई देते है, उसी प्रकार वेदान्त के अनुसार बुद्धिमानो को जगत दिखाई देता है[5]।"

१' गौड़पादीय कारिका ४/५१, ५२, ५३, ६७।
२. वही ३/१६, २०।
३. न निरोधो न चोत्पत्तिर्नबद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ (गौ० कारिका २/३२)
४. गौ० ४।४६, ५०, ५१।
५. स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वं इवं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥ (गौ० कारिका ३/३१)

अजातवाद को ही दृष्टि-सृष्टिवाद भी कह सकते हैं । इसके अनुसार प्रतीत-काल में ही जगत है अन्यथा यह है ही नहीं । देखते हैं तो सृष्टि है नही देखते हैं तो नहीं है ।

इस प्रत्यक्ष एवं ठोस जगत का अपलाप असंभव है । हम इसको झुठला नहीं सकते हैं । इसलिए वस्तुतः एवं द्रव्यतः अद्वैत की सिद्धि असंभव है । अद्वैतवादी हमें विवर्तवाद के आधार पर जगत को समझाने का प्रयत्न करते हैं । जहां वास्तविक परिवर्तन न हो, किन्तु परिवर्तन का आभास मात्र हो, जैसे रस्सी में सर्प, सीपी में चांदी एवं बालुका में पानी, इसे विवर्त कहते हैं । विवर्त अर्थात मिथ्या परिवर्तन । अद्वैतवादी कहते हैं जगत तीनों काल में है नहीं, किन्तु ब्रह्म में जगत की प्रतीति होती है, जैसे रस्सी में सांप दिखे[६] । ब्रह्म में जगत का भ्रम वैसे ही होता है जैसे सीपी में चांदी का भ्रम होता है ।

भ्रम के पांच कारण होते हैं—सदृशता, नेत्र दोष, मिलित अंधकार-प्रकाश, दूरी तथा पूर्व अनुभव । सांप तथा रस्सी और सीपी एवं चांदी में सदृशता है । आपाततः दोनों एक समान दिखते हैं । इसीलिए रस्सी में सांप का भ्रम होता है, घोड़ा का नहीं । सीपी में चांदी का भ्रम होता है रेलगाड़ी का नहीं । इसमें पूर्व अनुभव भी आवश्यक है । पहले असली सर्प तथा चांदी का ज्ञान है, तब उनके सदृश रस्सी तथा सीपी मे उनका भ्रम होता है । जो व्यक्ति सर्प तथा चांदी का कभी अनुभव नही किया है उसे रस्सी व सीपी में उसका भ्रम नही होगा । कभी-कभी भ्रम का कारण नेत्र दोष भी होता है । देश की दूरी भी चाहिए । अति निकट हो जाने पर तथ्य का ज्ञान हो जायगा ।

एक अखंड, निर्विकार सत्ता में किसको, किसमें, किससे भ्रम हुआ ? इसका उत्तर अद्वैतवाद में नही है । अद्वैतवादी सुन्दरदास जी महाराज एक मनोरंजक कविता कहते हैं जिसमें यह भ्रमवाद मखौल बन कर रह गया है—

गुरुदेव ?
बेटा !

६. रस्सी और साँप के दृष्टान्त का उपयोग, जिसका बहुत दुरुपयोग हुआ है, शंकर ने संसार की समस्या को समझाने के लिए किया है। रस्सी की पहेली विश्व की भी पहेली है; क्योंकि रस्सी साँप प्रतीत होती है, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे स्कूल के लड़के उठाते हैं और दार्शनिक इसका उत्तर देने में असफल रहते हैं । इससे अधिक विस्तृत प्रश्न है ब्रह्म का जगत के रूप में प्रतीत होना, और यह और भी अधिक कठिन है । (सर राधाकृष्णनकृत भा० द० २/५६८)

मुझे एक शंका है ?
अभी क्यों नहीं पूछ लेता !
तुम एक ब्रह्म ही की सत्ता कहते हो ?
अभी भी मैं अद्वैत कह रहा हूं।
जब एक तत्व है, तब अनेकता क्यों प्रतीत होती है ?
यह केवल एक भ्रम है।
यह भ्रम किसको है ?
भ्रम ही को भ्रम है।
यह कैसे ?
तू ने जानने की चेष्टा नहीं की।
प्रभो ! कैसे जानूं ?
निश्चय मान लो कि भ्रम ही को भ्रम हुआ है।
मान लिया।
तब एक ब्रह्म सिद्ध हो गया[७]।

ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ है नही, तो भ्रम किसको हुआ—इस प्रश्न का उत्तर न होने से कहा गया 'भ्रम को ही भ्रम हो गया' अर्थात मिथ्या जल को ही बालुका में जल तथा मिथ्या सर्प को ही रस्सी मे सर्प दिखने लगा। सुन्दर दास जी अपने अद्वैतवाद की दुर्बलता अपने वचनों मे ही प्रकट करते हुए कहते हैं" यदि ब्रह्म ही सर्वत्र व्याप्त है; तो इसका प्रचारक कौन है ? यदि जीव है तो क्या वह ब्रह्म से अलग है ? यदि कहो कि ब्रह्म से जीव पैदा होकर अलग हो गया, तो अजात से जात का दोष आ गया। यदि तत्वतः ब्रह्म से जीव अलग हो गया, तब तो अमर मरणधर्मा हो गया—मर्त्यतां अमृतं व्रजेत[८]। यह तो सूर्य से अंधकार पैदा होना हो गया। अतएव सुन्दरदास जी यह समझ

७. शिष्य पूछै गुरुदेव, गुरु कहै पूछ शिष्य।
मेरे एक शंका अहै, क्यों न पूछै अबहीं॥
तुम कहो एक ब्रह्म, अबहूँ मैं कहूँ एक।
एक तो अनेक कैसे, यह भ्रम सबहीं॥
यह भ्रम काको भयो, भ्रम ही को भ्रम भयो।
भ्रम ही को भ्रम कैसे, तू न जानै कबहीं॥
कैसे करि जानों प्रभू, गुरु कहै निश्चय धरु।
निश्चय करि जान्यों अब, एक ब्रह्म तबहीं॥

८. तत्वतो भिद्यमाने हि मर्त्यतां अमृतं व्रजेत॥ गौड़पाद कारिका ३/१९॥

कर मौन धारणकर लिये कि अद्वैतवाद में किसी प्रकार समाधान नहीं होसकता[९]।"

भ्रम के लिए समरूपता की खास आवश्यकता है। जैसे ऊपर बताया गया कि चांदी और सीपी तथा सर्प और रस्सी की समरूपता एवं सदृशता से रस्सी में सर्प और सीपी में चांदी का भ्रम होता है और इसमे पूर्व अनुभव है ही। ब्रह्म और जगत पहले तो दो वस्तु ही नही, फिर समरूपता भी नही। ब्रह्म निराकार चेतन तथा संसार साकार जड़। अतः ब्रह्म में जगत का भ्रम असंभव है।

वेदांती कहते है "भ्रम के लिए समरूपता की आवश्यकता नही है। जैसे स्वप्न में स्त्री प्रसंग के भ्रम होने में क्या समरूपता है ? काम तो अरूप है[१०]।" यहां यह बात भुला दी जाती है कि जागृति में स्त्री को देख, सुन एव उसका मनन तथा स्पर्श कर टिके हुए मन के संस्कार ही स्वप्न में आते है। जागृति की स्त्री तथा स्वप्न की स्त्री मे समरूपता है ही। वही प्रौढ़िवाद (हठ) का आश्रय लेकर वाचस्पति मिश्र भी कहते हैं "यह जगत अपरिणामी ब्रह्म का विवर्त है। अनादि वासना से उत्पन्न होने के कारण इस विवर्त में समरूपता की आवश्यकता नही है[११]।" यह अनादि वासना किसमें, किसको, किसकी है ? इसका उत्तर तो अद्वैतवाद में है ही नही। परन्तु अद्वैतवादी विवर्तवाद सिद्ध करने के लिए कठिन परिश्रम करते हैं। माधवाचार्य के शब्दों में "यह सब वेदान्त शास्त्र में परिश्रम करने वालों के लिए सरल और मान्य है[१२]।" परन्तु कौन समझदार इस द्रव्यात्मक ठोस जगत को मिथ्या मानने को तैयार होगा।

उपनिषदों में विवर्तवाद की कहीं चर्चा नहीं दिखती। आरुणि ने श्वेतकेतु को उपदेश देते समय जो उदाहरण रखा है वह कारण-कार्य भाव वाला है। उन्होंने कहा "मिट्टी से बने सारे पदार्थ मिट्टी रूप हैं, इसी प्रकार सोने

९. व्यापक ब्रह्म रह्यो भरपूर, तो दूसर कौन बतावन हारो।
जो कहि जीव करो परमान, तो जीव कहा कछु ब्रह्म से न्यारो॥
जो कहि जीव भयो जगदीश ते, तो रवि माहि कहा को अंधारो।
सुन्दर मौन गही यह जानि के, कौनिउ भाँति न होय निरधारो॥

१०. असरूपादपि कामादेः कान्तालिङ्गनादिष्विव स्वप्नविभ्रमस्योपलम्भात्।
(सर्वदर्शन संग्रह, शांकर दर्शन)

११ विवर्तस्तु प्रपंचोऽयं ब्रह्मणोऽपरिणामिनः।
अनादिवासनोद्भूतो न सारूप्यमपेक्षते॥ सर्व दर्शन संग्रह॥

१२. तदेतत्सर्वं वेदान्तशास्त्रपरिश्रमशालिनां सुगमं सुघटं च।
(सवदर्शन संग्रह, शांकर दर्मन)

से बने सारे आभूषण सोना हैं, इसी प्रकार लोहे से बने सारे पदार्थ लोहा ही हैं, विकार नाम मात्र है, विभिन्न नाम तो वाणी के विकार मात्र है[१३]।"

पीछे के अद्वैतवादी भी कहते है कि जैसे मिट्टी से बने उसके कार्य, जल और उसके तरङ्ग, स्वर्ण और उससे बने आभूषण भिन्न नही है, वैसे ब्रह्म तथा उससे उत्पन्न जगत दो नहीं है। यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है कि घट-मृतिका न्याय, स्वर्ण-भूषण न्याय तथा जल-तरङ्ग न्याय ब्रह्म और जगत एक है। इसमें विवर्तवाद उड़ जाता है और सांख्यवादियों का परिणामवाद आ जाता है। सत्तायुत पदार्थ का एक अवस्था से दूसरी अवस्था में आ जाना ही तो परिणाम है, जैसे दूध से दही हो जाना। उसी प्रकार मिट्टी का घट हो जाना आदि और उसी प्रकार ब्रह्म का जगत बन जाना।

मिट्टी, सोना, जल आदि असख्य अणु-परमाणुओं की राशि विकारी एवं क्रियाशील हैं, अतएव उनमें घट, आभूषण तथा तरंग बनना संभव है; परन्तु एक, परिनिष्ठित, अखंड, व्याप्त, अक्रिय, निरवयव, चेतन सत्ता में क्रियाशील, जड़ जगत कैसे बन सकता है? पहली बात यह होना ही असभव है, दूसरी बात यह मान्यता जड़-चेतन की वास्तविक भिन्नता से आखे मूदकर ज्ञान के क्षेत्र मे महाभ्रम पैदा करती है। जड़-चेतन की अभिन्नता की दृष्टि जो घोर अविद्या है वही अद्वैत ब्रह्मवाद में यथार्थ ज्ञान एवं परमार्थता है। इससे अधिक अंधकार और क्या होगा? सुन्दरदास जी कहते हैं "तुम्हारे मे यह जगत है और तू जगत में है। जगत और तुम्हारे में पृथकता कहां है? जैसे मिट्टी के अनेक बर्तन मिट्टी ही हैं, जैसे जल के तरङ्ग, फेन, बुदबुदा जल ही हैं। जितने महापुरुष हैं सबका एक सिद्धान्त है 'सब कुछ ब्रह्म ही है[१४]।"

कहते हैं अद्वैतवाद की जान स्वप्न का उदाहरण है। जैसे स्वप्न में स्वप्नद्रष्टा स्वयं दृश्य और द्रष्टा दोनो है, वैसे ब्रह्म चेतन-जड़ दोनो है। जैसे

१३. छांदोग्य ६/१/४, ५, ६।

१४. तोहि में जगत यह, तू ह है जगत माहि,
तो में अरु जगत में भिन्नता कहाँ रही।
भूमि ही ते भाजन अनेक विधि नाम रूप,
भाजन विचार देख उहै एक है मही॥
जल के तरंग फेन बुदबुदा अनेक भाँति,
सोउ तो विचार एक वहै जल है सही।
जेते महापुरुष हैं सबको सिद्धान्त एक,
सुन्दर अखिल ब्रह्म अन्त वेद यूं कही॥

'स्वप्न में देखे गये पदार्थो का बाहर अस्तित्व नहीं, वैसे जगत का भी आभास के अतिरिक्त अस्तित्व नहीं।' विचारणीय है कि जाग्रत अवस्था की इंद्रियो के व्यवहार से इकट्ठे संस्कार ही स्वप्न कहलाते हैं। यथार्थ जागृति का, स्वप्न प्रतिबिंब है। जो वासना जागृति में ग्रहण नहीं होती उसका कभी स्वप्न नही होता। जो यह कहता है कि बहुत ऐसे स्वप्न हम देखते हैं जिसका जागृति में कोई विचार नहीं था। तो यह कहना ही गलत है। जो सामान आप अपने संदूक में नही रखेगे वह आपके संदूक से कैसे निकलेगा ? जो वासना आप जागृति में नहीं गढ़ेंगे उसका स्वप्न कैसे होगा ? हम अनेक ऐसी इच्छा व चिंतन करते हैं जिनके छाप मन में उतर आते है और पीछे हम सचेतन मन से तो भूल जाते हैं, परन्तु अचेतन मन मे उनके सस्कार गुप्त रूप से बने रहते है। वे ही समय से स्वप्न मे दिखते हैं। जागृति के ज्ञान की एक व्यवस्था होती है, क्योकि वहां हम स्थायी पदार्थो से संयुक्त होते हैं; परन्तु स्वप्न अव्यवस्थित होते हैं, क्योकि वहां केवल मन का ही व्यापार है जो कि चंचल है। इसलिए हम कहीं स्वप्न देख रहे हैं कि इलाहाबाद के गङ्गातट पर है, इतने मे हिमालय की चोटी दिखने लगती है। हम जाग्रति में पक्षी व हवाई जहाज उड़ते, किसी को मरते देखते हैं और स्वप्न मे देखते हैं कि हम स्वयं उड़ते हैं या मर गये है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिस वासना का ग्रहण जागृति में नहीं होगा, उसका स्वप्न होना असंभव है।

दश आदमी एक जगह सो रहे हों। सबके स्वप्न अलग-अलग होगे। जो स्वप्न एक दिन होगा, दूसरे दिन वैसा ही नहीं होगा। परन्तु हम एक साथ लाखों लोग जागृति में देखते है कि इलाहाबाद के दक्षिण यमुना तथा उत्तर और पूर्व गङ्गा बहती है और गङ्गा के बायीं ओर झूसी है और यही अनुभव नित्य का है। फिर जगत स्वप्नविलास कैसे हो सकता है। जगत को द्रव्यतः स्वप्न कहना भूल है। हां, भावनात्मक दृष्टि से स्वप्नवत कहकर उससे अनासक्त होना चाहिए। जीव का जगत से संबंध मन द्वारा है। अतएव यह संबंध स्वप्नवत है यह कह सकते हैं न कि जगत मूलतः स्वप्नवत है।

अद्वैतवाद इस ढंग से भी कहता है "आत्मा से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियां, अन्न, वीर्य, पुरुष—पूर्व-पूर्व वाले से उत्तर-उत्तर वाले क्रमशः पैदा हो गये। अर्थात आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि आदि[१५]।" यह भी आत्मा की मिथ्या प्रशंसा मात्र है जो निर्विकारी

१५. आत्मन् आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेत। रेतसः पुरुषः। आदि। (तैत्तिरीय उ० २/१/१)

आत्मा के लिए कलंक स्वरूप है। जब आत्मा सत्-चिद्-आनन्द रूप है, साथ-साथ निर्गुण-निराकार और निर्विकार है, तब उससे असत-अचित-अ-आनन्द, सगुण, साकार एवं विकारी जड़ जगत कैसे पैदा हो सकता है ? आकाश शून्य है। शून्य की उत्पत्ति कहना ही गलत है। फिर शून्य आकाश से वायु इत्यादि अनमिल गुण-धर्मो वाले तत्वों की उत्पत्ति कहना भी गलत है। अद्वैतवादी कहते हैं कि "अद्वैतस्थिति प्राप्त करने के लिए पृथ्वी को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में तथा आकाश को आत्मा मे मिला देना चाहिए।" यह भी शब्दयोजना के अतिरिक्त व्यावहारिक जगत मे कुछ भी उतरने वाला नही है। सभी तत्व तथा तत्वो के असंख्य परमाणु एवं इन सबसे भिन्न असंख्य चेतन जीव अलग-अलग ही रहेगे।

प्रत्यक्ष प्रमाण से अद्वैत ब्रह्म सिद्ध नहीं हो सकता, अनुमान से भी उसकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि ब्रह्म से व्याप्त किसी भी लिंग, अर्थात साधन की संभावना नही है। आगम (शास्त्र) प्रमाण भी नही लग सकता, क्योंकि श्रुति कहती है 'जहां से वाणी लौट आती है'[१६] अर्थात वाणी ब्रह्म का पता नहीं बता सकती। फिर ब्रह्म की सिद्धि कैसे हो ? ब्रह्मवादी इससे थकते नही। वे कहते है "श्रुतिया ब्रह्मज्ञान होने का यदि निषेध करती है तो वे ही कही विधान भी करती हैं। वेद में प्रतिपादित तात्पर्य जब अप्रमाणित होने लगते हैं तब वैदिक घबराते नही, उनकी बुद्धि दुखी नही होती; किन्तु उसके अर्थ को खोजने का रास्ता ढूढ़ती है[१७]।"

इस प्रकार 'येन केन प्रकारेण' शास्त्र प्रमाण ही अद्वैतवाद सिद्ध करने का रास्ता है; परन्तु भारतीय शास्त्रो का मूल जो ऋग्वेद है उसमे कही भी जगत को गंधर्वनगर के समान शून्य[१८] और एक ब्रह्म की सत्ता का प्रतिपादन नही मिलता। उपनिषदे भी जगत को मिथ्या नही कहती[१६]। औपनिषदिक

१६. यतो वाचो निवर्तन्ते। (तैत्तिरीय उ० २/१/१)

१७. श्रुतिरेव निषेधति वेदान्तवेद्यत्वं ब्रह्मणः श्रुतिरेव विधत्ते। न हि वेदप्रतिपादितेऽर्थेऽनुपपन्ने वैदिकानां बुद्धिः खिद्यते। अपि तु तदुपपादनमार्गमेव विचारयति।
(सर्वदर्शन संग्रह, शांकर दर्शन)

१८. 'हम स्पष्ट देख सकते हैं कि ऋग्वेद के सूक्त में जगत के मिथ्या होने के विचार का कोई आधार नहीं है।'
(सर राधाकृष्णन कृत भा० द०१/१६४)

१६. सर आर० जी० भंडारकर का मत है कि "यह सम्मति, जो कुछ विद्वानों ने भी प्रकट की है कि उपनिषदों की शिक्षा की प्रमुख विषयवस्तु जगत को भ्रान्ति

ऋषियों के विचार भी भिन्न-भिन्न हैं। 'नैको ऋषिः यस्य मतः प्रमाणम्' एक ऋषि तो है नहीं, कि उसका मत प्रमाण मान लिया जाय। वेद-बाह्य बुद्ध तथा महावीर अपने-अपने सम्प्रदाय में समाधि-प्राप्त आप्त पुरुष होने से उनके वचन प्रमाण हैं ही। वैदिक कपिल, कणाद आदि आप्त पुरुष सब अद्वैत ब्रह्म नहीं कहते, बल्कि उसका विरोध ही करते हैं। एक तरफ श्री कृष्ण जी गीता में कहते हैं कि मैं सिद्धों में कपिल हूं 'सिद्धानां कपिलो मुनिः'। दूसरी तरफ स्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि कपिल आदि का मोक्ष सापेक्ष (अधूरा) है 'सिद्धेरपि सापेक्षत्वात्'। यदि शंकर स्वामी का वश चलता, तो गीता से 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' निकाल कर छोड़ते।

शास्त्र अनेक हैं, किसका प्रमाण माने और किसका न माने। छह शास्त्रों में वादरायण का ब्रह्मसूत्र ही सत्य सिद्धान्त प्रकट करता है यह कैसे मानें। फिर वादरायण ने क्या कहा है, खुलाशा नहीं है। सर राधाकृष्णन कहते हैं "जब हम वेदांत सूत्र के प्रश्न को हाथ में लेते हैं तो वहां विषय इतना अधिक सरल नही है। यदि हम भाष्यों को एक ओर रख दें तो हमें सूत्र के रचयिता का आशय जानना कठिन है[२०]।"

सभी शास्त्र ऋषियों के बनाये हैं चाहे वे वेद हों, उपनिषद् हों या सूत्र-ग्रंथ (छह दर्शन) हों, या वेदबाह्य भी। कोई ऋषि अपना या पराया नही। किसी से हमें मोह या वैर करने की आवश्यकता नही। किसी को आस्तिक-नास्तिक कहने की आवश्यकता नहीं। सबकी वाणियों पर निष्पक्ष होकर विचार करना चाहिए और जड़-चेतन के वस्तुगत गुण-धर्मों के साथ जितनी वाणियां मिलें वे सब प्रमाण मानने योग्य हैं और जो वाणियां वस्तुगत जड़-चेतन की व्याख्या न कर सकें, वे अप्रमाण हैं।

किसी पुस्तक में यह लिखा भी हो कि सत्ता केवल एक आत्मा की ही है, इसके अतिरिक्त जगत नही है, तो यह सत्य तो नहीं हो जायगा। भामती-कार वाचस्पति मिश्र स्वयं कहते हैं "हजार वेद वचन भी घड़े को कपड़ा नही बना सकते[२१]।" आत्मा भी है और अनात्मा भी है। ज्ञाता-ज्ञेय, द्रष्टा-दृश्य एव चेतन और जड़ को एक ही कहना बहुत बड़ा भ्रम है। कहते हैं माया

रूप से निरूपण करना है और एक आत्मा का ही अस्तित्व है, एक मिथ्या धारणा है और मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि इस प्रकार सम्मति एक असमीक्षात्मक निर्णय है। (राधाकृष्णन कृत भा० द० १/१८२)

२०. भारतीय दर्शन, खंड २, पृष्ठ ४६३।

२१. नह्यागमाः सहस्रमपि घटं पटयितुम् ईशते ॥ भामती ॥

ब्रह्म की शक्ति है जैसे अग्नि में दाहकता। उस माया से ही जगत भासता है। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं "माया न सत है न असत है और न दोनो तरह है। वह न ब्रह्म से भिन्न है न अभिन्न है और न दोनों तरह है। वह न अंगसहित है न अंगरहित है और न दोनों तरह है। सच पूछो तो वह महान अद्‌भुत और कथन में न आने वाली 'अनिर्वचनीया' है[२२]।" इस प्रकार अद्वैतवाद के ख्याल से प्रत्यक्ष जड़ और चेतन स्वप्न, भ्रम मात्र एवं मिथ्या हैं। उनके दो जो मौलिक तत्व हैं ब्रह्म और माया, सो ब्रह्म तो आदि से ही शून्य, अनिर्वचनीय रहा; माया भी शून्य तथा अनिर्वचनीया ठहरी। फिर तो श्री निर्मल साहेब के वचनों मे 'नहीं-नही फिर कौन कहां।' उदयनाचार्य ठीक ही कहते है "मायावादियों का ब्रह्म तथा शून्यवादियों (बौद्धों) का शून्य—दोनों एक समान ही है। दोनोंमें कोई अन्तर नही[२३]।"

'सिद्धान्तलेश संग्रह' के हिन्दी टीकाकार प० मूलशंकर व्यास माया की अनिर्वचनीयता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं "माया अनिर्वचनीया है, इसमें भी युक्तियो का अनुसंधान करना चाहिए। माया ब्रह्म से वस्तुतः भिन्न भी नही है, क्योंकि ब्रह्म-भिन्न संपूर्ण प्रपंच के मिथ्या होने से उसका भेद वास्तविक हो ही नही सकता। ब्रह्म से माया अभिन्न भी नही है; क्योंकि चैतन्य और जड़ एक कैसे हो सकते हैं। भिन्नाभिन्न अर्थात ब्रह्म से भिन्न भी है और अभिन्न भी है, ऐसा नही कह सकते, कारण परस्पर विरुद्ध भिन्नत्व और अभिन्नत्व धर्म एक माया मे कैसे रहेगे। माया सत भी नही है, द्वैतापत्ति होने से अद्वैत श्रुति के साथ विरोध होगा। असत भी वह नही कही जा सकती, क्योकि जगत की प्रकृति वह कैसे होगी, अर्थात असत पदार्थ किसी भी वस्तु के प्रति उपादान या निमित्त कारण नहीं हो सकता। माया को सदसत् नही कह सकते, पूर्व के समान सत्व और असत्व जो परस्पर तेज और अंधकार के समान विरुद्ध हैं, एक में कदापि नही रह सकते। इसी प्रकार माया को सावयव नही कह सकते, क्योकि ऐसा स्वीकार करने से माया में सादित्व का प्रसंग होगा और सुतरां उसके प्रतिबिंबभूत ईश्वर में भी सादित्व की प्रसक्ति होगी और माया के सादि मानने से उसका कारण और माया माननी पड़ेगी। निरवयव भी नही मान

२२. सन्नाप्यसन्नाऽप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाऽप्युभयात्मिका नो।
संगाप्यनंगाऽप्युभयात्मिका नो महाद्‌भुताऽनिर्वचनीयरूपा ॥
(विवेक चूड़ामणि, श्लोक १११)

२३. यन्मायावादिनो ब्रह्म यच्छून्यं शून्यवादिनः।
न हि स्वरूपभेदोऽस्ति स्वतस्सिद्धत्वतस्तयो ॥

सकते हैं, क्योंकि जो निरवयव पदार्थ है वह भी किसी का उपादान कारण या प्रकृति नहीं हो सकता। निरवयव और सावयव रूप भी नहीं कह सकते, क्योकि सावयवत्व और निरवयत्व के एक स्थान में रहने में विरोध है। इस तरह सभी प्रकार से माया का निर्वचन करना असंभव होने के कारण परिशेषात उसे अनिर्वचनीया ही मानना चाहिए[२४]।" इस प्रकार ब्रह्मवादियों की माया ऐसी सांप-छछूंदर हो गयी है कि न उन्हें उसे निगलते बनता है न उगलते।

अद्वैतवादी कहते हैं "श्रुतियों में आत्मा को एक और व्यापक कहा गया है। अतः जो अहम के रूप में आनुभविक आत्मा उपलब्ध है वह श्रुति सम्मत आत्मा नहीं हो सकता, क्योंकि इस आत्मा में व्यापकत्व का कोई लक्षण नही दिखता। इसलिए अहम के रूप में उपलब्ध आत्मायें मिथ्या प्रतीत मात्र हैं, यथार्थ आत्मा तो एक अद्वितीय और व्यापक है।" इस प्रकार इन असंख्य वास्तविक आत्माओं को मिथ्या बतलाकर वेदांत एक ऐसे काल्पनिक आत्मा का प्रतिपादन करता है जिसका ज्ञान आज तक किसी को नही हुआ और जो एक मिथ्या धारणा मात्र के रूप में लोगो मे चला आया है।

एक वस्तु ऐसी हो जो अखण्ड और सर्वत्र व्याप्त हो, तो दूसरे के अस्तित्व के लिए कोई गुजाइश नही हो सकती। सर्वत्र व्याप्त एक अखड मे क्रिया, संचालन, परिवर्तन, सृष्टि, बन्ध-मोक्ष आदि द्वैत के अस्तित्व का कोई प्रश्न ही नही उठ सकता। अब देखना यह है कि सत्ता है कैसी? प्रत्यक्ष है कि सत्ता एक की नहीं, किन्तु अनेक की है। अनेक जड़ तत्व हैं तथा चेतन भिन्न व्यक्तित्व वाले असंख्य और एक दूसरे से पृथक है। यह विवेकसिद्ध बात है कि एक पदार्थ की व्यापकता को दूसरे पदार्थ की सत्ता घटाती है। अतः दो अखंड परिनिष्ठित पदार्थ एक स्थान मे नही रह सकते। पदार्थ की सत्ता अणु रूप असंख्य है चाहे जड़ हो या चेतन। अर्थात जड़ तत्व अनेक हैं। सबके अपने असंख्य परमाणु (इकाइयां) है और चेतन जीव भी जो जड़ से सर्वथा पृथक हैं एकदेशी असख्य हैं। असख्य अनेक होने से ही वे एकदेशी हैं।

अनेक जड़ तत्वों के असंख्य परमाणु अपने स्वभावसिद्ध गुण-धर्मो से निरन्तर क्रियाशील हैं और असंख्य जीव भी वासनावश निरन्तर पुनर्जन्म में परिभ्रमण कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में एक ही अखंड तत्व की व्यापकता की वकालत अपने आप में साारहीन है। यह पूरी सत्ता ही अद्वैत व्यापकवाद का विरोधी है। ऐसे मिथ्या सिद्धान्त को विद्वानो द्वारा तूल देना एक आश्चर्य का विषय है। वस्तुतः यह एक गतानुगतिका है और देखा-देखी एक दूसरे की पूछ

२४. सिद्धान्तलेश संग्रह, पृष्ठ ८२। अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी।

पकड़े लोग चले जा रहे हैं। जहां तक देखा जाता है विद्वान और अविद्वान में कोई अन्तर नही होता। दोनों में विवेकवान होते हैं और विवेकरहित एक दूसरे की पूछ पकड़ कर चलने वाले भी। व्यापकवादी कहते हैं "आत्मा यदि एकदेशी होगा तो नष्ट हो जायगा, क्योकि एकदेशी वस्तु नष्ट हो जाती है। जो वस्तु सर्वदेशी एवं सर्वत्र व्याप्त होगी वही नष्ट नही होगी।" किन्तु नष्ट होने की यह मिथ्या परिभाषा है। पहली बात, व्यापक एक अखड वस्तु की सत्ता ही नही है। दूसरी बात, जो वस्तु व्यापक न होगी, एकदेशी होगी, वह नष्ट हो जायगी यह व्यर्थ कल्पना है। जड़ तत्वो की अन्तिम इकाई भी नही मिटती, फिर अखंड जीव कैसे मिट जायगा। मिट जाने के सारहीन भय से व्यापकवाद की मिथ्या धारणा को प्रश्रय देना विवेकवान का काम नही है।

'नानत्व से एकत्व की ओर जाना सच्चा ज्ञान है।' इस सूत्र का अद्वैतवाद ने बहुत दुरुपयोग किया है। इसे भावनात्मक दृष्टि से न लेकर पदार्थात्मक दृष्टि से लेना जड़-चेतन के भिन्न ज्ञान को गड्डबड्ड कर देना है। मन-इन्द्रियो द्वारा प्रतीतमान नानत्वपूर्ण दृश्य से विवेक पूर्वक लौट कर अपने चेतन स्वरूप में अवस्थित होना—नानत्व से एकत्व की ओर आना है। यह नही की नानत्वपूर्ण सारे जड़-चेतन द्रव्यो को एक में पर्यवसित कर अद्वैत का पिंड बनाया जाय। हैकल आदि भौतिकवादी विद्वानो ने जब यह कहा कि परमसत्ता एक ही है जो सर्वगत एवं परिव्याप्त है, तब अद्वैतवादी ब्रह्म विचारको को बड़ा आनन्द हुआ कि अब विज्ञान भी हमारी बातें कहने लगा। परन्तु वे यह समझने की चेष्टा नही करते कि भौतिक विज्ञानवाद की तथाकथित परिव्याप्त सर्वगत सत्ता गतिशील असंख्य निरा जड़ अणुओ का समूह है जो तथाकथित परिनिष्ठित, अखंड व्यापक चेतन के सर्वथा विरुद्ध है। असंख्य अणु जड़ द्रव्य और उनमें स्वभावसिद्ध गति—यही भौतिकवाद की रीढ़ है जो ब्रह्मवाद का उल्टा है। अतः भौतिकवादियो के शब्द-साम्य में पड़ कर अद्वैत ब्रह्मवाद घाटा ही उठायेगा।

बड़े-से-बड़े सिद्ध ब्रह्मवादी भी यदि ईमानदारी से कहें तो यह नही कह सकते कि मेरी आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, ऐसा मै अनुभव करता हू। आत्मा एक व्याप्त है तो मै सर्वत्र की बाते क्यो नही जानता? अमेरिका, रूस आदि में उपस्थित अतःकरणों के द्वारा मुझे वहां की सारी बाते जानना चाहिए, फिर क्यो नही जानता? ब्रह्मवादी स्वामी लोग जो रात-दिन आत्मा की व्यापकता पर प्रवचन करते हैं, अपने शिष्यो को पत्र लिखकर उनकी बाते जानना चाहते हैं। संसार में कोई एक वस्तु भी व्यापक नही है। यदि एक अखंड वस्तु सर्वत्र व्यापक हो तो कोई क्रिया ही नही हो सकती। यह जो निरन्तर परिवर्तनशील

संसार दिखता है जिसमें अनेक जड़ तत्व तथा असंख्य आत्मा निवास करते है एक अखंड व्यापकवाद का स्वतः विरोध करते हैं। पूरा अस्तित्व ही अद्वैत व्यापकवाद का विरोधी है; परन्तु झूठी बातें भी बराबर दोहराते रहने से सत्य सदृश भासतो हैं। इस प्रकार कुछ लोगों द्वारा अद्वैत व्यापकवाद को हजारों वर्षों से दोहराया जा रहा है, इसलिए यह भ्रांति की बात ही लोगो में सत्य सदृश दृढ़ हो गयी है।

कहते हैं अनुभविता आत्मा जो नाना दिखते हैं असत हैं, औपनिषदिक कल्पित व्यापक आत्मा ही सत्य है। उपनिषद् ही के जो चार महावाक्य माने गये हैं, उनके स्पष्ट अर्थ अहं आत्मा के लिए ही है जो अनुभविता है 'अहं ब्रह्मास्मि,[२५] तत्त्वमसि,[२६] अयमात्मा ब्रह्म,[२७] प्रज्ञान ब्रह्म[२८]' का सरल तथा सीधा अर्थ क्रमशः यही तो है—मै ब्रह्म हू, वह तू है, यह आत्मा ब्रह्म' है तथा ज्ञान ही ब्रह्म है। इसमें प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष को ही ब्रह्म कहा गया है जिसका समन्वय चौथे वाक्य में हुआ है कि ज्ञान ही ब्रह्म है। अर्थात मैं ब्रह्म हूं, तुम ब्रह्म हो, ये आत्माये भी ब्रह्म है तथा मै, तुम और इन सब आत्माओं में जो सार ज्ञान है वह ज्ञान ही ब्रह्म का लक्षण है; और यह बाते एकदम यथार्थवादी हैं। परन्तु इन यथार्थ असंख्य आत्माओ अर्थात चेतन जीवों तथा जगत को अस्वीकार कर अंधकारमय किसी कल्पित, व्यापक ब्रह्म की सिद्धि करना वैसे है जैसे कोई थाली का व्यंजन छोड़कर बातों के लड्डू से पेट भरने का भ्रम करे। शून्यवादी बौद्ध तथा अद्वैतवादी वेदान्ती—ये दोनो यथार्थ जीव तथा जड़ जगत को मिथ्या बतला कर शून्य में टटोलते हैं।

कुछ बड़े-बड़े कहलाने वाले लोग भी यही कहते हैं कि वास्तविक ज्ञान सब कुछ एक मानना ही है। केवल सारी आत्माओ को ही एक मानना नहीं; किन्तु जड़-चेतन सब कुछ एक मानना! "मैं केवल आत्मा ही नही, मिट्टी भी मै हूं, जल भी मैं हूं, वायु भी मैं हूं, चांद-तारे भी मै हूं तथा सारा विश्व मै हूं।" यह एक सनक तथा भावोन्माद के अतिरिक्त क्या है ?

पहले अद्वैतवाद भी जड़-चेतन का विवरण पूर्वक भिन्न विवेक करता है, और उसे चाहिए था कि जड़ को अलग समझ कर अपने स्वरूप में स्थित होने तक की ही व्याख्या में संतोष रखता; परन्तु वह अपनी अद्वैतता के

२५. यजुर्वेद, बृहदारण्यक उपनिषद् १/४/१०।
२६. सामवेद, छांदोग्य उपनिषद् ३/८/७।
२७. अथर्ववेद, मांडूक्य उपनिषद् २।
२८. ऋग्वेद, ऐतरेय उपनिषद् ३/१/३।

भावोन्माद में आगे चलकर जड़-चेतन को एक में मिला देता है। वेदान्त दिन-भर चावल और कंकड़ को अलग-अलग करता है और शाम होते-होते जबकि चावल को पकाने का समय आता है तब वह उसे पुनः कंकड़ में मिला देता है। अद्वैतवाद की भावुकता मे वह अतिशयोक्ति करता है 'मै चांद हू, मै ही सूर्य हू, मैं ही यह अनंत विश्व-ब्रह्माण्ड हूं।' वह एक तरफ कहता है मैं यह नही हूं, मैं यह नहीं हूं, 'नेह नानास्ति किंचन' दूसरी ओर कहता है मैं ही सब कुछ हूं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

अद्वैतवाद यथार्थ जीव और जगत को मिथ्या बताकर अनिर्वचनीय ब्रह्म और माया के सिद्धान्त को लेकर ऐसा उलझा हुआ है जिसका समाधान वह आज पर्यन्त नही कर सका। यह स्वाभाविक बात है कि असत को सिद्ध करने के लिए जितने प्रमाण दिये जायेंगे सब असत होते जायेंगे। जैसे जगत में प्रसिद्धि है कि एक झूठ को सिद्ध करने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते है और अंततः झूठ अधिकाधिक उलझता है। इसी प्रकार अद्वैत ब्रह्मवाद एवं मायावाद को सिद्ध करने के लिए अलात वाद, अजातवाद, विवर्तवाद, दृष्टि-सृष्टिवाद, स्वप्नवाद, श्रुति प्रमाणवाद, एक जीववाद, अनेक जीववाद, आभासवाद, प्रतिबिंबवाद आदि अनेक वादो का जन्म हुआ; परन्तु ब्रह्मवाद उलझा ही रहा। आज तक अद्वैतवाद की व्याख्या न हो सकी और न हो सकेगी। आज से चार सौ वर्ष पूर्व वेदान्त मर्मज्ञ विद्वान अप्पयदीक्षित ने जो अपनी अनेक रचनाओ मे एक 'सिद्धान्तलेश संग्रह' नाम का ग्रंथ रचा है जिसमे तैंतालीस (४३) मतो का वर्णन किया है, जो अद्वैतवाद में अपने-अपने कुछ भिन्न-भिन्न भेदो को लेकर कथन किये है, आपस में ही उलझे है। इस प्रकार आज से चार सौ वर्ष पूर्व अद्वैतवाद में तैंतालीस मत थे जो प्रसिद्ध थे। तब से आज तक और भी उसके भेद हो सकते हैं। सर राधाकृष्णन लिखते है "माया और अविद्या के ब्रह्म के साथ सम्बन्ध की समस्या ने अर्वाचीन अद्वैत के अन्दर अनेक प्रकल्पनाओं को जन्म दिया जिनमे से मुख्य दो हैं—एक जीववाद और अनेक जीववाद[२९]।" उन्होने यही पर एक जीववाद तथा अनेक जीववाद मे भी अनेक मत होने का वर्णन किया[३०]।

एक जीववाद में जीव मुक्त होकर शुद्ध ब्रह्म रूप रह जाता है[३१]।" 'सिद्धान्तलेश संग्रह' के हिन्दी टीकाकार वेदांताचार्य पं० श्री मूलशंकर व्यास

२९. भारतीय दर्शन २/६११।
३०. वही २/६११—६१३।
३१. जीवैक्यवादे हि शुद्धब्रह्मैकशेषता (वेदांत सिद्धान्त सूक्तिमंजरी ४/१४)

जी पाद टिप्पणी में प्रश्न उठाते हैं "जीव के एक होने से उसका मूल अज्ञान भी एक ही है। इसलिए एक जीव के किसी भी अन्त:करण में तत्वसाक्षात्कार के उदित होने पर अज्ञान का देव, तिर्यक, मनुष्य आदि सम्पूर्ण स्वकार्यों के साथ उसी क्षण नाश हो जाता है। यदि इस विषय में शंका हो कि शुक आदि के अन्त:करण में उत्पन्न तत्वज्ञान से ही सब प्रमाताओं (जीवों) के संसार का समूल विलय हो जाना चाहिए। अत: इस समय संसार की अनुवृत्ति (उपस्थिति) कैसे देखी जाती है, तो यह भी युक्त नहीं है क्योंकि शुक (शुकदेव स्वामी) आदि की मुक्ति में कोई प्रमाण नही है। और शुकादि के मुक्ति प्रतिपादक वाक्य स्वार्थ में उपचरित (अपने अर्थों में प्रशंसा सूचक) हैं, अत: संसार की अनुवृत्ति में कोई हानि नहीं है[३२]।"

आत्मा एक ही होने से यदि शुकदेव स्वामी का मोक्ष हो गया तो ससार का अभाव हो जाना चाहिए; परन्तु संसार का अभाव नही दिखता। अत: आज तक अद्वैतवाद के ख्याल से किसी का मोक्ष हुआ ही नही। अविद्याविशिष्ट समस्त अंत:करणों के समाप्त होने पर ही एक आत्मा की मुक्ति होगी। इस दृष्टि से काहे सब अंत:करण समाप्त होगे और काहे एक आत्मा का मोक्ष होगा। काहे नौ मन तेल इकट्ठा होगा, काहे राधा नाचेगी। गंगाधरेन्द्र सरस्वती कहते हैं "सम्पूर्ण जीवों की मुक्ति जब तक न हो तब तक अविद्यावत्पुरुष से कल्पित सत्यकाम और सत्यसंकल्प से कल्पित जगत की स्थिति, लय और उत्पति में समर्थ और मुक्त पुरुषों द्वारा प्राप्य स्वत: चिद्घन अद्वितीय ब्रह्म मैं हूं[३३]।" अर्थात ब्रह्मवाद के अनुसार मुक्ति होनी होगी तो सबकी एक साथ ही होगी, नही तो सब इसी प्रकार चलेगा। सार अर्थ हुआ कि ब्रह्मवाद में मुक्ति असंभव ही है। महान पारखी संत श्री गुरुदयाल साहेब, श्री रामरहस साहेब, श्री पूरण साहेब, श्री काशी साहेब तथा श्री निर्मल साहेब ने अद्वैत ब्रह्मवाद की आलोचना मे सविस्तार कथन किये हैं। जिनका सार रूप हम दूसरे अध्याय मे पढ़ आये है। अतएव यहा हम उनको दोहराने की आवश्यकता नहीं समझते। अद्वैत ब्रह्मवाद पर मधुर किन्तु गहराई से आलोचना निर्णयसार मे ही पर्याप्त है जिसका सार दूसरे अध्याय मे वर्णित है।

ब्रह्मवाद की अंतिमी धारणा के अनुसार बंध और मोक्ष तथा जीव और जगत अयथार्थ है। सर राधाकृष्णन लिखते है "यह एक मर्मभेदी समालोचक

३२. सिद्धान्तलेश संग्रह पृष्ठ, ५२२ की पाद टिप्पणी।

३३. आसर्वमुक्ति परकल्पितसत्यकामसङ्कल्पकल्पितजगत्स्थितिभङ्गसर्गं।
शक्तं स्वतस्तु सुखचिद्घनमद्वितीयं मुक्तोपसृप्यमहमस्मि विशुद्धतत्त्वम्॥
(वेदांत सिद्धान्त सूक्तिमंजरी ४/२४)

को इस परिणाम पर पहुंचाता है कि वह प्रकल्पना जो इससे अधिक कुछ नहीं कह सकती कि एक अयथार्थ आत्मा इस अयथार्थ जगत में सर्वश्रेष्ठ कल्याण की प्राप्ति के लिए अयथार्थ बंधनों से मुक्त होने का प्रयत्न कर रही है, स्वयं अपने में भी अयथार्थ है[३४]।" इसीलिए मीमांसक कहते हैं "जो ब्रह्म को जानते हैं वे यदि किसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि वह सब कुछ, जो ज्ञात है, मिथ्या है और जो अज्ञात है, वह सत्य है, तो मैं झुक कर उनसे विदा लेता हूं[३५]।"

'वृहत्वात् ब्रह्म' अर्थात जो श्रेष्ठ है वह ब्रह्म है। जड़ और चेतन दोनों यथार्थ हैं; परन्तु जड़ से श्रेष्ठ चेतन है, अतएव चेतन ही ब्रह्म है, महान है। **'वही सब कुछ है'** यह एक प्रशंसासूचक शब्द है, जैसे किसी घर के मालिक को कहा जाय कि यही घर में सब कुछ है, तो वह घर की दीवार, खाट, बिस्तर, बर्तन आदि नही है, किन्तु उनमें वही बड़ा है, द्रष्टा एवं व्यवस्थापक है। **'चेतन व्यापक है'** यह शब्द भी प्रशंसा मात्र है, क्योकि व्यापक कोई वस्तु नही हो सकती। यहां तक शून्य आकाश भी, क्योकि वह भी अखंड जीवो एवं जड़ तत्वों की अंतिम ठोस इकाइयो में नही हो सकता। ध्वनि वायु में सर्वत्र फैल जाती है; परन्तु वह स्थायी ठोस व्याप्त नही है, किन्तु तरंग मात्र है। **'चेतन अद्वैत है'** इसका अभिप्राय है कि सभी चेतनो में एक ही ज्ञानगुण है। व्यक्तित्व में चेतन अनेक, असंख्य, एक दूसरे से सर्वथा पृथक, व्याप्य-व्यापक-रहित हैं; किन्तु सबके ज्ञानगुण में एकत्व है अथवा जब व्यक्ति संकल्पो को छोड़ देता है, तब वह स्मरण रहित हो जाने से अद्वैत हो जाता है। मन की उपस्थिति ही द्वैतभास का कारण है, मन के समाप्त हो जाने पर चेतन अपने आप है। यही वास्तविक अद्वैतपन, अकेलापन है; परन्तु इसका मतलब यह नही है कि जगत, जगत के स्वरूप मे भी-नहीं रह गया। मन के न रहने पर यथार्थ जगत से हटकर जीव अपने यथार्थ स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस प्रकार संकल्पों को त्यागकर स्वरूपस्थ होना ही अद्वैत होना, अकेला होना है। **'जो यहां नानत्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है[३६]'** इसका मतलब है कि अपने स्वरूप से पृथक वस्तुओ मे जो आसक्त होता है, वह उनके राग-द्वेष में जन्म-मरण को प्राप्त होता है। अपने से पृथक दृश्य नाना है ही। जो उनको देखेगा, अर्थात उनमें मोह करेगा वह जन्म-मृत्यु मे पड़ा रहेगा ही। **'द्वैत ही भय का**

३४. भारतीय दर्शन २/४५७।

३५. वृहती पृष्ठ ३०। और देखिये शास्त्रदीपिका : अद्वैतमत निरास।
(सर राधाकृष्णन कृत भा० द० पृष्ठ ४०६ की पाद टिप्पणी से उद्धृत)

३६. मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति। कठ उप० ४/१०।

कारण है' यह भी ठीक है, अपने से पृथक वस्तु में जब तक राग रहेगा तब तक भय बना रहेगा, अतः अपने से पृथक का, दृश्य का, द्वैत का राग छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होना चाहिए। जो द्रष्टा, दृश्य को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित हो गया, उसके लिए द्वैत कहां, और उसे भय कहां। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि नाना जीव और जड़ जगत जो यथार्थ हैं कहीं उड़ जायेंगे। हमें संसार तथा अन्य जीवों को उच्छिन्न कर अद्वैत बनने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। यह कभी हो नहीं सकता। हमें तो संसार से अपने को निवृत्त कर, 'पर' को छोड़ कर 'स्व' में स्थित हो जाना चाहिए।

२०

विश्लेषण और संश्लेषण

विश्लेषण का अर्थ है वस्तुओं का अलग-अलग विवरण देना और संश्लेषण का अर्थ है अलग वस्तुओं को एक में मिला देना। वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान के लिए विश्लेषण आवश्यक है। बिना अच्छी तरह विवरण दिये ज्ञान कैसे होगा ? मानव जीवन को समझने के लिए उसके शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों तथा इन सबके प्रेरक जीव को अलग-अलग समझना होगा। यह विश्लेषणात्मक विवरण हुए बिना, मानव जीवन का ज्ञान हमें ठीक से नहीं होगा। परन्तु यदि हम मनुष्य के शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, जीव आदि को एकदम अलग-अलग कर दें और इसके बाद शरीर के सभी परमाणु एवं सूक्ष्म इलेक्ट्रान अलग-अलग कर दें, तो मानव नाम की कोई चीज नहीं रह जायगी। ऐसी स्थिति में भी मानव-जीवन का ज्ञान असंभव हो जायगा। अतएव संश्लेषण की भी आवश्यकता है।

घर और परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को अलग-अलग समझना विश्लेषण है और यह आवश्यक है कि हम घर या समाज के प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न विशेषता को समझें। उनमें कोई लेखक है, कोई कलाकार है, कोई अच्छा व्यवस्थापक है, तो कोई अन्य अच्छे गुणों से सम्पन्न है; परन्तु सबकी सामूहिकता ही परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व है। यह सामूहिकता ही संश्लेषण है। इसकी भी महान आवश्यकता है। यदि सभी व्यक्ति विश्लेषित एवं भिन्न ही रह जायं, तो परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की एक इकाई नही बन सकती, और ऐसा हुए बिना, हम कोई भारी काम नही कर सकते।

इस पुस्तक को ही ले लीजिए। इस पुस्तक के सारे भिन्न अक्षरों एवं मात्राओं का बहुत बड़ा महत्व है। यदि विश्लेषणात्मक ढंग से भिन्न अक्षर-मात्राओं की पहिचान हमें न हो, तो हम कोई भाषा नहीं पढ़ सकते; परन्तु यदि इनके सारे अक्षर एवं मात्राये अलग-अलग ही रह जायें, तो पुस्तक का कोई मतलब ही नहीं होगा। इतना ही क्या द्रव्यात्मक ढंग से पुस्तक के सारे सूक्ष्मतम कण अलग-अलग कर दिये जायं, पुस्तक रह ही नही जायगी।

साधना के क्षेत्र में लें, शील, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, सत्य, धैर्य, विवेक, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि का अलग-अलग अपना बड़ा महत्व है। इनके भिन्न-भिन्न लक्षणों को जानकर इन्हें धारण करना तथा भिन्न-भिन्न अवसरों में इनका जीवन मे प्रयोग करना एक विश्लेषणात्मक रहनी है; परन्तु इन सबका समवेत स्वरूप है मन की शांति। सभी सद्गुणो का शांति मे संश्लेषण हो जाता है।

हम चार आदमी साथ रहते हैं। चारों के भिन्न विचार हैं और कुछ अंशो में परस्पर विरोधी भी, और सभी विचारों का अलग-अलग महत्व भी है, परन्तु ये सभी भिन्न एवं विरोधी विचार सदैव विश्लेषित, अर्थात अलग-अलग ही रह जायं, तो हम चारो सुख पूर्वक नही रह सकते। चारो की आपस मे मैत्री बनी रहे और चारों एक साथ जुट कर किसी एक काम को बलपूर्वक कर सके, इसके लिए आवश्यक है कि चारों के भिन्न तथा विरोधी विचारों का भी मूल्यांकन एव आदर करते हुए, उनमे रहे हुए सारतत्वो को लेकर एकता करे। यह एकता ही संश्लेषण है—एकबद्धता है और इसके बिना कोई रचनात्मक कार्य नही हो सकता। हमारे हाथ की पाचों उंगुलियो का अलग-अलग कितना महत्व है, यह हम जानते हैं। यदि इनको हम एक में मिलाकर जाम कर दे तो इनसे कोई काम नही बन सकता; परन्तु यदि वे पृथक-पृथक ही रह जायं, तो क्या हम इन पंक्तियो को लिख सकते हैं? ज्यादा क्या, हम मुख में ग्रास भी नही डाल सकते। अतएव इनके संश्लेषण एवं एकजुट हो जाने की बड़ी आवश्यकता है।

सत्य की परिभाषा को लेकर, सभी दर्शनों की व्याख्याओ में कुछ अंतर है और इनमे से हम एक को लेकर अन्य सभी को जहां-का-तहां छोड़ दें, तो इसका मतलब यह हुआ कि एक को तो हमने सिरे से स्वीकार कर लिया, चाहे उसमे कुछ त्रुटि भी हो, और शेष की अच्छाइयो को भी तिरस्कृत कर डाला। इस आचरण से एक निष्पक्ष व्यक्ति के चित्त मे दर्शनो के प्रति श्रद्धा कैसे जग सकती है? अतएव विश्लेषणात्मक ढंग से सभी दर्शनों के अलग-अलग अध्ययन

का महत्व है; परन्तु सबके सारतत्वों को लेकर उनका संश्लेषण भी आवश्यक है। सभी दर्शनों के सारतत्वों का संश्लेषण सर्वथा संभव है, और इसके बिना हजारों वर्षो से होते आये दार्शनिक विचारो के क्रमिक विकास का एकबद्ध कोई उपयोग नही हो सकता।

इतना सब कहने के बाद जो एक खास बात पर विचार करना है, अब हम अपनी दृष्टि उस पर केन्द्रित करें। हर वस्तु का न तो मर्यादाविहीन विश्लेषण करने की आवश्यकता है और न मर्यादाविहीन संश्लेषण की। यह कहना कि "सच्चा दर्शन वही है जो अनेकता को एकता में पिरो दे।" अपने आप में सर्वथा निरपेक्ष नही है। उक्त वाक्य का अर्थ हमें बड़ी सावधानी से लेना चाहिए। इसका हम यही अर्थ ले सकते है कि सभी दर्शनो से सार लेकर हम दर्शन के विषय में समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनावे तथा विभिन्नतापूर्ण आनुभविक एवं प्रतीत जगत से मुड़कर आत्म-केन्द्रित एकाग्रता मे पहुंचे। यही अनेकता से एकता में पहुंचना है। यह नही कह सकते कि द्रव्यात्मक दृष्टि से सबको एक में मिला दें।

सर राधाकृष्णन लिखते हैं "सांख्य अद्वैत विषयक आदर्शवाद के सत्य की ऊंचाई तक नहीं उठता, बल्कि केवल बोध के उस स्तर तक रहने मे ही संतुष्ट है जो सत और असत के भेद पर बल देता है और दोनों के विरोध को यथार्थ तथा तादात्म्य को अयथार्थ मानता है[१]।" पंडित बल्देव उपाध्याय भी कुछ ऐसा ही स्वर निकालते है "न्याय ने इस जगत को ज्ञान से पृथक एक स्वतन्त्र सत्तात्मक वस्तु बतलाया है तथा उसमें अनेक नित्य पदार्थों की कल्पना की है।······सच्चा दर्शन वही हो सकता है जिसमें एक नित्य पदार्थ की सत्ता मानकर समस्त पदार्थों का सम्बन्ध उसी से प्रदर्शित किया जाय तथा सद्वस्तु के एकत्व पर जोर दिया जाय[२]।"

उपर्युक्त दोनों उदाहरण मनुष्य को भ्रम में डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सांख्य दर्शन केवल आदर्शवादी नही, किन्तु यथार्थवादी है। निश्चित ही सांख्य दर्शन जड़-प्रकृति और पुरुष की पृथकता पर ही जोर देता है। वह कभी भी नहीं कह सकता कि दोनों का तादात्म्य(एकता)है। जड़-प्रकृति तथा चेतन-पुरुष को एक कह देने का अर्थ ही घोर अविद्या है। न वे व्यावहारिक जगत में एक हैं, न आध्यात्मिक जगत में एक हो सकते हैं। अद्वैत का अर्थ, यदि जड़ और चेतन का एक हो जाना है, तो ऐसे अद्वैत से विवेकवान को दूर ही हट जाना चाहिए। यह हजारों

१. भारतीय दर्शन, २/३२६। २. भारतीय दर्शन, २६२-२६३।

वर्षों से चलता आया हुआ अंधविश्वास कि जड़-चेतन अंततः एक ही हैं, मताग्रह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। सांख्य दर्शन अद्वैत की ऊंचाई तक क्यों नहीं उठता? जब वह 'नास्मि, न मे, नाहम्'—मै क्रियावान नही, मेरा भोक्तृत्व नही, मैं कर्ता नही' और 'केवलम्' की उद्घोषणा करता है, तब क्या यह अद्वैत की ऊंचाई नही है? जड़-प्रकृति से भिन्न होकर पुरुष का कैवल्य ही असंगत्व है और यही सच्चे अद्वैत की ऊंचाई है।

पंडित बल्देव का यह कथन सर्वथा पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के अतिरिक्त और क्या है कि "न्याय दर्शन इस जगत को ज्ञान से एक पृथक स्वतन्त्र सत्ता मानता है और उसमें अनेक नित्य पदार्थों की कल्पना करता है।" इसलिए गलत है। यह शतप्रतिशत सत्य है कि जगत हमारे ज्ञान पर निर्भर नही है। हम सूर्य, चांद, तारे, पृथ्वी आदि को जानते है, इसलिए इनकी सत्ता है और यदि हम इन्हें न जाने, तो इनकी सत्ता ही समाप्त हो जायेगी, यह कितनी निरर्थक धारणा है। भावनावादी (ब्रह्मवादी) यह घोषणा करते फिरते है कि विश्व हमारे मन से निकला है। किन्तु सच्चाई यह है कि विश्व इतना विशाल एवं अनन्त है जहां तक हमारा मन कभी पहुच ही नही सकता। वस्तुतः मन से जगत नही पैदा हुआ है, किन्तु चेतन के साक्षित्व मे यथार्थ जगत का प्रतिबिम्ब मन है। सारांश यह कि मन का प्रतिबिम्ब जगत नहीं; किन्तु जगत का प्रतिबिम्ब मन है। अतएव जगत की सत्ता ज्ञान से स्वतन्त्र है। जगत का हम ज्ञान प्राप्त करते हैं न कि जगत ज्ञान मात्र है। जगत को ज्ञान मात्र, प्रतीत मात्र कहकर उसकी स्वतन्त्र सत्ता का अपलाप करना आख में धूल झोकना है।

"सच्चा दर्शन वही हो सकता है जिसमें एक नित्य पदार्थ की सत्ता मानकर समस्त पदार्थों का सम्बन्ध उसी से प्रदर्शित किया जाय तथा सद्वस्तु के एकत्व पर जोर दिया जाय।" उक्त वाक्य का अर्थ अपने आप में असंगत है। पदार्थ चाहे एक हो या अनेक, जबर्दस्ती सबका एक में प्रदर्शित किया जाना कहां तक उचित है। यदि मूल पदार्थ एक ही होता, तो अनेक न होने से, अनेक का एक में प्रदर्शित करने का कोई प्रश्न ही नही उठता। तथ्य अनेक पदार्थों के होने का है, तो उन्हें हम एक में प्रदर्शित करने वाले कौन होते है? 'यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्'—यदि यह वास्तविकता है, तो इसको बदलने वाले हम कौन होते हैं।

अतएव मर्यादाविहीन संश्लेषण आदमी को सदैव से धोखे में डालते आया है। जितना संभव हो एवं यथार्थ हो भावनात्मक एवं वैचारिक सश्लेषण

करना उचित है। आत्मायें और जड़ द्रव्य जो जैसे हैं, वैसे रहेंगे। हमारे वैचारिक एवं पुस्तकीय संश्लेषण से उनके मूल रूप में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। हां, ऐसा करने से हमारा ज्ञान अवश्य भ्रांतिपूर्ण हो जायगा।

मानव मात्र का लक्ष्य है भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के दुःखों से सर्वथा छुटकारा पाना। भौतिक जीवन का दुःख दूर होगा शारीरिक परिश्रम से तथा आध्यात्मिक जीवन का दुःख दूर होगा मन की निर्मलता एवं एकाग्रता से। पार्टी, पंथ, मत, वाद, दर्शन चाहे जितने हों सबको यही करना है। यह काम जिस साधन से सफल हो, वह सब ठीक हैं। यही सच्चा संश्लेषण हो सकता है। वस्तुतः जगत अपने आप विश्लेष्य (विविधापूर्ण) है तथा स्वरूप-स्थिति स्वतः संश्लेष्य (एकनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ) है। अतएव समस्त जीवों को सजाति समझ कर सब का हित सोचते तथा यथासाध्य करते हुए स्वस्वरूप-स्थिति की ओर चलना ही सच्चा संश्लेषण है।

२१

आकाश तथा शब्द

भारतीय परम्परा में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश—इन पांच तत्वों का निर्धारण है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु तो अवश्य द्रव्य हैं जिनमें उनके अपने गुण-धर्म हैं; परन्तु आकाश कोई द्रव्य नहीं है, अतएव शून्यता छोड़कर उसमें गुण-धर्म नहीं हैं। आकाश को यदि हम तत्व कहें तो कहना होगा कि वह शून्यता स्वरूप अर्थात अभावात्मक तत्व है। वस्तुतः तत्व उसे कहना चाहिए जो द्रव्य हो, जिसमें कुछ घनमान अर्थात लम्बाई-चौड़ाई तथा मोटाई हो, जो कुछ जगह घेरता हो, जो देश-काल में गति करता हो। अर्थात अणुरूपता और क्रियाशीलता तत्व के मुख्य लक्षण हैं; परन्तु आकाश में ये लक्षण नहीं हैं। यदि कहा जाय कि आकाश भी असंख्य अणुओं का समूह तथा क्रियाशील है, तो उसकी गति के लिए एक दूसरे आकाश की कल्पना करनी पड़ेगी जिसमें वह गति करता हो। अतएव आकाश परमाणु रूप तथा क्रियाशील न होकर शून्य रूप ही है।

पारखी संत जहां पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के साथ आकाश का भी तत्वों में नाम लेते हैं, वहां वे आकाश को गुण-धर्म-क्रिया-रहित शून्य रूप ही मानते हैं। अन्यथा वे आकाश को एकदम छोड़कर चार तत्वों—पृथ्वी, जल,

अग्नि तथा वायु के ही नाम लेते हैं। सद्गुरु कबीर ने अवश्य पांच तत्त्वों का कई जगह उल्लेख किया है[1]। परन्तु जहां उन्होने तत्त्वो की क्रियाशीलता का वर्णन किया है वहां चार ही तत्वों के नाम लिये है[2]।

अब रही बात शब्द की। अनेक वैदिक शास्त्रों में शब्द आकाश का गुण बताया गया है; परन्तु आकाश परमाणु और गतिरहित शून्य होने से उससे शब्द की उत्पत्ति असंभव है। तीन सौ वर्ष ईसा पूर्व यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने शब्द के विषय में कहा था कि वह वस्तुओं से वायु पर चोट लगने से पैदा होता है जिससे वायु सिकुड़ती और फैलती है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जब दो वस्तुएं टकराती हैं तब उसके बीच के वायु मे धक्का लगता है और वायु में एक तरंग पैदा होती है। वह हमारे कान के परदे पर टकराती है और हमें शब्द सुनाई पड़ता है[3]। वायु मे स्पर्श गुण है और स्पर्श मे ही शब्द पैदा होते हैं, अतएव स्पर्श और शब्द ये दो गुण वायु के ही हैं, आकाश के नही।

डा० संपूर्णानन्द लिखते हैं "शब्द का अर्थ स्वन—उस प्रकार का संवित जो दो क्षीत वस्तुओं के टकराने पर होता है—माना जाता है और श्रवणेद्रिय उसका ग्राहक मानी जाती है। यह बात ठीक है, परन्तु स्वन का क्षेत्र तो बहुत संकुचित है। वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध है कि यदि किसी प्रकार के आघात के कारण कोई वस्तु प्रकंपित हो उठे और उसके चारो ओर कोई ऐसा ठोस या तरल माध्यम हो जो हमारे कान तक पहुचता हो तो उस माध्यम में एक प्रकार की लहर उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप हमको स्वन-संवित होता (शब्द सुनाई पड़ता) है। हमारे नाडि-संस्थान की बनावट ऐसी है कि यदि वस्तु का कंपन लगभग सोलह बार प्रति सेकेण्ड से कम या लगभग पचास हजार प्रति सेकेण्ड से अधिक हो तो स्वन नही सुन पड़ता। जहां कोई ठोस या तरल माध्यम नही है वहां कपन भले ही हो; परन्तु स्वन नही आ सकता। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि से हमको प्रकाश मिलता है, स्वन नहीं। **किंतु पोथियों के आधार पर पंडित सम्प्रदाय शब्द का सम्बन्ध आकाश से जोड़ता है जो सर्वथा अवैज्ञानिक जान पड़ता है**[4]।"

१. बीजक, साखी २२, २३, २६, २७ आदि।

२. अगिन कहै मैं ई तन जारों। पानि कहै मैं जरत उबारों॥
घरती कहै मोहि मिल जाई। पवन कहै संग लेउ उड़ाई॥
(बीजक, रमैनी ७८)

३. जगन्मीमांसा, आकाश विचार।

४. चिद्विलास, आदि शब्दाधिकरण।

यह स्पष्ट है कि शून्य निष्क्रिय आकाश से सक्रिय शब्द नहीं पैदा हो सकता, अपितु शब्द सक्रिय वायु में ही प्रकट होता है। आकाश की परिभाषा करते हुए श्री रामरहस साहेब कहते हैं "पोल, छिद्र ही आकाश है[५]।"

२२
प्रमाण

'प्रमा' का अर्थ है 'यथार्थ ज्ञान' और वह जिस साधन से हो उसको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण आठ माने गये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, संभव और ऐतिह्य। भौतिकवादी चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानता है। बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानते हैं। सांख्य प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द तीन प्रमाण मानता है। न्याय प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तथा उपमान चार प्रमाण मानता है। पूर्वमीमांसक प्रभाकर के अनुयायी प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान और अर्थापत्ति पांच प्रमाण मानते हैं। पूर्वमीमांसक कुमारिलभट्ट के अनुयायी तथा वेदान्ती उपर्युक्त पांच के साथ छठां अनुपलब्धि भी मानते हैं। पौराणिक लोग उपर्युक्त छह के साथ सभव तथा ऐतिह्य भी जोड़ देते हैं[१]।

१. प्रत्यक्ष—मन, इंद्रिय और विषय के सन्निकर्ष (संबंध) से उत्पन्न हुए ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। नेत्र दीवार पर पड़े और मन ने दीवार का साक्षात्कार किया। यदि मन का चिंतन अलग है तो नेत्र का संबंध दीवार से होने पर भी दीवार का ज्ञान न होगा। अतएव मन सहित इंद्रिय का संबंध विषय (पदार्थ) से होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

२. अनुमान—किसी लिंग (हेतु या चिन्ह) को देखकर उसको धारण करने वाले लिंगी एवं आधार का अटकल लगाना अनुमान ज्ञान है। जैसे दूर से धुआं देखकर वहां आग होने का अटकल लगाना। कार्य को देखकर उसके कारण का अनुमान करना, जैसे घट को देखकर उसके रचयिता का अनुमान।

५. पोल संधि सोई आकाश ॥ पंचग्रंथी, समष्टिसार, चौकड़ी ८ चौ० ७ ॥

१. चार्वाकास्तावदेकं द्वितीयमपि पुनर्बौद्धवैशेषिकौ द्वौ। भासर्वज्ञश्च सांख्यस्त्रियमु-दयनाद्याश्चतुष्कं वदंति। प्राहुः प्राभाकराः पंचकमपि च वयं तेऽपि वेदांतविज्ञाः। षट्कं पौराणिकास्त्वष्टकमभिदधिरे संभवैतिह्ययोगात्।

(मानमेयोदय १/६)

अनुमान तीन प्रकार का माना है—पूर्ववत, शेषवत तथा सामान्यतो दृष्ट[२]। आकाश में बादल देखकर वर्षा होने का अनुमान करना पूर्ववत अनुमान है, क्योंकि पहले बादल से वर्षा होते देखा है। नदी में बाढ़ आयी हुई देखकर यह अटकल लगाना कि नदी के मूल की तरफ वर्षा हुई होगी, शेषवत अनुमान है। क्योंकि वर्षा के बाद ऐसा होता है। सामान्यतो दृष्ट का अर्थ है सामान्य मात्र के दर्शन। अर्थात जहां विशेष वस्तु न दिखे केवल सामान्य-साधारण लक्षण का ज्ञान हो। जैसे जोता हुआ खेत देखकर हल-बैल का व लेख देखकर लेखक एवं लेखनी का अनुमान करना सामान्यतो दृष्ट है। जहां-जहां धूप है वहां-वहां सूर्य है और जहां-जहां धुआं है वहां-वहा आग है; जो बनता है, मिटता है आदि सामान्यतो दृष्ट अनुमान है। इनके अनेक भेद और व्याख्याओ में विरोध है जो दार्शनिक ग्रंथो में वर्णित है।

३. शब्द—आप्त पुरुष, प्रामाणिक पुरुष, अर्थात संबंधित विषय के पूर्ण अनुभवी पुरुष के वचन शब्द प्रमाण है।

४. उपमान—किसी जानी हुई वस्तु के सदृश दूसरे को देखकर तुलना पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना उपमान प्रमाण है। जैसे मैंने पहले से सुना है कि गाय के सदृश नीलगाय होती है, तो जंगल मे नीलगाय (गवय) देखकर हम उसकी तुलना पूर्व अनुभूत गाय से करके नीलगाय का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

५. अर्थापत्ति—जिस अर्थ के अभाव में देखी-सुनो हुई वस्तु की सिद्धि न हो उसे अर्थापत्ति कहते है। जैसे एक मोटे-ताजे आदमी को कोई कहे कि यह दिन में नही खाता, तो इसका अर्थ हुआ कि वह रात में खाता है, क्योंकि बिना खाये-पीये कोई मोटा-ताजा बना नही रह सकता। कोई कहे कि इलाहा-बाद गंगा-यमुना पर बसा है, तो इसका अर्थ है कि उन दोनो के किनारे पर बसा है। दिनेश घर में नही है, तो इसका अर्थ हुआ कि वे बाहर गये है। यह सब अर्थापत्ति प्रमाण है।

६. अनुपलब्धि—अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण है। हम टेबल पर लेखनी तथा कापी लेने गये; परन्तु वहां वे नही थी, यह अनुपलब्धि प्रमाण है। अंधकार के कारण टेबल पर कापी तथा लेखनी नही दिखी, तो इसे अनुपलब्धि नही कह सकते, हो सकता है वहां वे हो, केवल अधकार के कारण न दिखी हो। साफ प्रकाश मे, साफ नेत्रो से देखने पर जब टेबल पर कापी-कलम नही मिली तब हम उसे अनुपलब्धि प्रमाण मानते हैं।

२. पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टश्च। (न्याय दर्शन १/५)

७. संभव—जिस कारण से जो कार्य होता है वही वहां संभव है, जैसे गाय से बछड़ा तथा भैंस से पड़वा का होना। अतएव कारण-कार्य-व्यवस्था ही संभव प्रमाण है।

८. ऐतिह्य—ऐतिहासिक प्रमाण अर्थात परम्परा प्राप्त उपदेश।

उपर्युक्त आठों प्रमाणों में प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वोपरि है। धुआं देखकर आग का अनुमान होना तभी संभव है जब पहले आग से धुआं निकलते देखा गया हो, अतएव अनुमान प्रमाण प्रत्यक्षसाधित है। प्रत्यक्ष विवेक में जो बात घटती है उसी के विषय में शब्द प्रमाण भी मान्य होता है। फिर अनुमान और शब्द के बाद के पांच प्रमाण उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि आदि तो उक्त तीनों प्रमाणों के भीतर आ जाने से प्रत्यक्षसाधित ही होने चाहिए। इसलिए प्रत्यक्ष प्रमाण की सर्वोपरिता है।

इतना होने पर भी सभी बातों का सीधे प्रत्यक्ष से बोध नहीं हो सकता। जन्म और मृत्यु तो निश्चित ही प्रत्यक्ष हैं, परंतु वही जीव जो शरीर छोड़ा है दूसरी देह धारण किया है यह प्रत्यक्ष का विषय नहीं। कर्मो का संग्राहक और पुनर्जन्म में जीव को भ्रमण कराने में कारण माना हुआ सूक्ष्म शरीर प्रत्यक्ष का विषय नही। जीवन्मुक्ति तो प्रत्यक्ष है जो एक निष्काम दशा है; परन्तु विदेह मोक्ष प्रत्यक्ष का विषय नहीं। यह सब अनुमान पर ही अवलंबित हैं। भौतिक जड़ तत्त्वों की अंतिम इकाई परमाणु को भी हम प्रत्यक्ष नही कर सकते, वह भी अनुमानसाधित है। कोई व्यक्ति वर्तमान में कोई अपराध नहीं किया है; परन्तु वह पीड़ित है, तो हम अनुमान के आधार पर कहते हैं कि उसके पूर्व-जन्मों के अपराध का यह फल है। आध्यात्मिक विज्ञान सूक्ष्म है, उसमें अनुमान प्रमाण की आवश्यकता पड़ती ही है, भौतिक विज्ञान में जो अपेक्षया स्थूल विषय है बिना अनुमान प्रमाण के काम नही चलता। भौतिकवाद के व्यापक अध्ययन में जाने पर बिना अनुमान के काम ही नहीं चल सकता। पुराना भौतिकवाद जिसका अध्ययन बहुत सीमित था, भले अनुमान को न माना हो, जैसे लोक प्रचलन के अनुसार भारतीय चार्वाक प्रत्यक्ष छोड़कर अनुमान आदि नहीं मानता; परन्तु आज का भौतिकवाद जिसका बहुत व्यापक अध्ययन है, अनुमान प्रमाण का यथेष्ट प्रयोग करता है। निरीश्वरवादी बौद्ध, जैन, वैशेषिक, सांख्यवादी आदि अनुमान प्रमाण को मानते ही हैं।

पारखी समाज झूठी या अंधविश्वास पूर्ण बातो के लिए यह कहते पाया जाता है कि 'अनुमान-कल्पना की बातें छोड़ो'। तो यह कहना ठीक है; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि पारखी समाज अनुमान प्रमाण नही मानता। यह

विवेक द्वारा सिद्ध होता है कि चेतन की सत्ता जड़ से भिन्न है, पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग, बंध-मोक्ष के अस्तित्व हैं; परन्तु इन्हें सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रमाण एक प्रबल प्रमाण है। जब उपर्युक्त सिद्धान्तों को पारखी मानते हैं, तब स्वतः सिद्ध हो जाता है कि पारखी अनुमान प्रमाण को मानते हैं। हां, पारखी संतों का अनुमान परख की कसौटी से कस कर मान्य है। यह नही कि वे अनुमान के चक्कर में पड़कर अंधविश्वास की बातें मानने लगे जैसे कि जड़-चेतन के गुण-धर्मो एवं क्रिया-स्वभावों की वस्तुगतता को छोड़कर सृष्टि रचयिता की कल्पना करने लगें। सब अनुमान सच ही नहीं होते। हम कहीं धूल उड़ते देखकर उसे धुआं मान लें और यह अनुमान करें कि वहां आग होगी तथा पिघले हुए बर्फ से नदी में आयी हुई बाढ़ के लिए ऊपर वर्षा का अनुमान कर लें तो यह अनुमान गलत होगा। इसलिए अनुमान अपने में पूर्ण निरपेक्ष प्रमाण नहीं है। अतएव परख की कसौटी से कसकर पारखी जन अनुमान प्रमाण मानते हैं।

शब्द प्रमाण के बिना भी काम नहीं चल सकता। मनुष्य के एक बच्चे को यदि ऐसी जगह में रखा जाय जहां अन्य मनुष्यो का संबंध न हो और उसका पालक उसके सामने कभी किसी शब्द का उच्चारण न करे और इस प्रकार उस बच्चे को शब्द सुनने को कभी न मिले, तो न वह बोलना सीख सकता है, न उसका विवेक जाग सकता है। वह केवल काम, मोह, भय, लोभ आदि की प्रवृत्तिया ही प्रकट कर सकता है। शब्द मनुष्य की बुद्धिशक्ति को जगाते है। विद्याध्ययन क्या है, केवल शब्दो का ही तो व्यापार है। दर्शन और अध्यात्म के बोध लेने-देने के लिए भी तो शब्दो का ही आदान-प्रदान करना पड़ता है। शब्दों को हटा देने पर आदमी विचारशून्य हो जायगा। सब कुछ जान-बूझ कर स्वरूपस्थिति के लिए विचारशून्य अर्थात संकल्प-शून्य होना तो सर्वोच्चपद है; परन्तु पहले ही से किसी प्रकार के शब्द न पाने के कारण विचार-शून्य होना तो बुद्धू होकर बैठ जाना है, बल्कि पशु हो जाना है।

किसी अपरिचित स्थान को जाने के लिए जब हम तैयार होते हैं तब लोगो से रास्ता पूछते है और उनके बताये अनुसार उनके शब्दों का प्रमाण मानकर हम जाते हैं। इस प्रकार बिना शब्द प्रमाण मानकर चले हम बाहरी लक्ष्य को भी नही पहुँच सकते। जिस रास्ते पर हम कभी नही चले हैं, शब्द प्रमाण को न माने तो हम कभी चल ही नही सकते। जो हमें रास्ता बताये उससे हम तर्क ही करते रहें और उस पर संदेह ही करते रहे तो रास्ते पर चलना असभव है। बात यह भी विचारणीय है कि हमे कोई अपने अनभिज्ञता वश रास्ता गलत भी बता सकता है। इसलिए जब हम अपरिचित रास्ता के

संबंध में लोगों से पूछते हैं, तब एक ही व्यक्ति के कथन पर न अवलंबित रह कर उस रास्ता के विषय में दूसरे-तीसरे से भी पूछ लेते हैं और अपने अंदाज, दिशा तथा विवेक का भी उपयोग करते हैं जिससे हम धोखा न खा जायं।

जो समाधिप्राप्त आप्त पुरुष हैं वे वैराग्य तथा करुणा की मूर्ति होते हैं। उनके हृदय में प्राणिमात्र के प्रति करुणा होती है। वे किसी को धोखा नहीं दे सकते। अतः उनकी बातें मान लेनी चाहिए। ऐसे समाधिप्राप्त आप्त पुरुष भारत में कपिल, बुद्ध, महावीर, पतंजलि, वादरायण, गौतम, कणाद, जैमिनि, शंकर, कबीर, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस आदि माने जाते हैं। निश्चित है कि इनके अधिकतम विचारों में साम्य है; परन्तु जिन विचारों को लेकर इनमें विरोध है उनको एक साथ किस ढंग से मान लिया जाय। कपिल का जगत संबंधी यथार्थवाद तथा आत्मा संबंधी बहुत्ववाद तथा शंकर का जगत संबंधी मिथ्यावाद और आत्मा संबंधी अद्वैतवाद एक साथ कैसे माना जा सकता है। जो मीमांसक तथा वेदांती शब्द एवं शास्त्र प्रमाण की बहुत दोहाई देते है वे क्या कुरान तथा बाइबिल के सारे शब्दो को प्रमाण मान सकते है ! यहा तक कि वे सांख्य, न्याय, वैशेषिक आदि के सारे शब्द प्रमाणों को न मानकर, उनका खंडन करते हैं। वेद हों या उपनिषद्, गीता हो या ब्रह्मसूत्र या अन्य पुस्तक, किसी भी ग्रंथ की स्वतः प्रामाणिकता के ढोल की पोल वही खुल जाती है जब उसके विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न अर्थ किये जाते है। तब वहां यही सिद्ध होता है कि ये लोग ग्रंथ को स्वतः प्रमाण न मानकर अपनी समझ, मान्यता एवं बुद्धि के अनुसार उसमें अपने ढंग का अर्थ लगाते हैं। किसी भी महापुरुष के वचनों या शास्त्र मे यदि कोई बात असत्य है तो उसके आधार पर उनके समस्त सत्य वचनों का भी त्याग नहीं हो सकता तथा न उनके सत्य वचन के आधार पर उनमें रहे हुए असत्य वचनो का ग्रहण हो सकता है। यह सच है कि संसार में शब्द प्रमाण के बिना काम नही चल सकता; परन्तु यह भी सर्वथा सत्य है कि संसार का एक व्यक्ति भी शब्द मात्र को प्रमाण नही मान लेता। हिन्दुओं के लिए बाइबिल-कुरान, मुसलमानों के लिए वेद-बाइबिल और इसाइयों के लिए वेद-कुरान कहां सर्वथा मान्य हैं ? इसी प्रकार सांख्यवादियो के लिए वेदांत तथा वेदांतियों के लिए सांख्य कहां सर्वथा मान्य है ? इस प्रकार हम देखते हैं कि शब्द भी अपने में सर्वथा निरपेक्ष प्रमाण नही है। उस पर भी परख की कसौटी अनिवार्य है।

भारतीय परम्परा मे वेदों का बड़ा महत्व है। उनमें हमारी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, ज्ञान, व्यवहार, इतिहास की झलकियां मिलती है। इसलिए वे हमारे पूर्वजों की हमारे लिए रखी धरोहर हैं और हमें उनकी प्राणपण से

रक्षा करना चाहिए तथा उनसे शिक्षा लेना चाहिए। परन्तु तत्वज्ञान तथा सामाजिक मूल्य की दृष्टि से उनमें उपयोगी बातें अपेक्षया बहुत कम हैं, शेष मिथ्या कर्मकांड के प्रपंच और कल्पित जड़ देवताओं के सामने गिड़गिडाहट भरे शब्द हैं।

संसार में सार और असार दोनों प्रकार के शब्द गूजते हैं, अतएव मनुष्य को विवेक तथा परख की कसौटी पर कस कर ही शब्दों को स्वीकार करना चाहिए। विवेक-रहित केवल शब्दों की छाया पकड़ कर घूमने से काम नही चलता[३]।

प्रत्यक्ष प्रमाण सभी प्रमाणों की जान है। यदि प्रत्यक्ष को हटा दें तो अनुमान, शब्द आदि सर्वथा सारहीन हो जायं। ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण भी सभी स्थलों पर निरपेक्ष नही हो सकता। उस पर भी परख और विवेक की कसौटी लगाना अपेक्षित है। एक उदाहरण ले—

एक राजा का सेवक उसकी शय्या नित्य लगाता था। उसके मन में यह बराबर होता रहता कि ऐसी मुलायम शय्या पर सोने से कैसा लगता होगा। एक दिन उसने सोचा कि लाओ, इस पर थोड़ा सोकर देखें। उसने शय्या लगायी और राजा साहेब की चद्दर तान कर उस पर लेट गया। उस सुवासित कोमल गद्दे में उसे नींद आने लगी। वह सोचता रहा अभी थोड़ा इसका आनन्द ले लूं तब उठ पडूगा और ऐसा करते-करते उसकी नीद लग गयी। वह गाढ़ी नीद में पहुंच गया। दो घंटे बीत गये, रात के दस बज गये। रानी आयी, देखी कि राजा साहेब चादर तान कर सो गये हैं। वह भी उसी बिस्तर पर एक तरफ उसे बिना जगाये सो गयी। एक घंटा के बाद राजा आया और नौकर तथा रानी को एक बिस्तर पर सोते देखकर आग बबूला हो गया और वह जाकर एक कमरे में बैठकर उद्विग्नतापूर्वक सोचता रहा। उधर समय हो जाने पर रानी जागकर अपने भवन में चली गयी, नौकर सोता ही रहा। रानी ने उसे राजा ही समझ कर छेड़ा नही था। दो घंटे के बाद जब नौकर जगा तब सबेरा हो चला था। पास में रानी की चद्दर पड़ी थी, राजा का कोई पता न था। नौकर के होश उड़ गये। वह सोच लिया आज प्राणदड के अलावा मेरा कुछ होने वाला नही है।

इधर राजा ने एक प्रिय तथा विश्वासपात्र मंत्री को बुलाकर रात की सारी बाते बतायी कि रानी तथा नौकर एक साथ सोये थे और कहा कि इन दोनो को प्राणदंड देना चाहिए। मंत्री ने कहा—"सरकार! इस घटना की

३. बीजक, साखी २-७, २८६।

परख की जाय, तब जो उचित हो वह किया जाय।" राजा नाराज होते हुए कहा—"तुम भी कैसी बात करते हो ! मैंने अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देखा है 'प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्'। प्रत्यक्ष की जांच क्या ?" मंत्री ने कहा—"हुजूर आंखें भी धोखा दे सकती हैं। हर ज्ञान की परख होनी चाहिए। बिना विचारे कुछ न करना चाहिए।" मंत्री के बहुत समझाने-बुझाने पर जब राजा रानी के पास वास्तविकता का पता लगाने गया, तब राजा को देखते ही रानी ने कहा—"आप तो आज ऐसा सोये कि सोते ही रहे। मेरे पहले सोये और मै जब उठ कर चली आयी तब भी सोते रहे।"

राजा ने जब रानी तथा नौकर की अलग-अलग जांच-परख की तब उसे साफ पता चल गया कि ये दोनों निर्दोष हैं। मंत्री की इस बुद्धिमता पर राजा ने उसे हृदय से लगा लिया और उसे काफी पुरस्कार दिया। इस प्रकार हम प्रत्यक्ष प्रमाण को भी परख की कसौटी से कस कर ही मानें।

जो लोग कहते है कि पारख सिद्धान्त केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है, अन्य को नही; वे पारख सिद्धान्त के विषय में पूर्ण जानकार नही है। पारख सिद्धान्त के गम्भीर चिंतक सद्गुरु श्री काशी साहेब लिखते है—"मुख्य प्रमाण अपनी स्वयं प्रत्यक्ष प्रतीति (अविनाशी स्वय चेतन जीव की प्रतीति) सदोदित मनुष्यों को अपरोक्ष (स्वयं प्रत्यक्ष) है। क्योकि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओ मे अपने चेतन स्वरूप का नाश नही, ऐसा ही सबो को अनुभव है। वही मुख्य प्रत्यक्ष प्रमाण है। पूर्वोक्त अष्ट प्रमाण देहोपाधियुक्त नर जीवो के सत्ता संयोग से सिद्ध होने से परोक्ष तथा देहान्त मे नाश होने वाले हैं। जिज्ञासु मनुष्यो को जड़ पदार्थो के विषयाध्यास सत्संग द्वारा छुड़ाने के लिए उक्त अष्ट प्रमाणों को हम भी मानते है। यथार्थ विचार से देहोपाधियुक्त प्रत्यक्ष प्रमाण के भीतर ही अन्य सातो प्रमाण गिने जाते है[४]।" यहां साफ स्वीकार किया गया है कि अष्ट प्रमाणों को हम भी मानते हैं। अब रहा, प्रत्यक्ष या विवेक की कसौटी पर कसकर उन्हें मानने की बात कही गयी तो क्या बुरा किया गया।

वस्तुतः पारख सिद्धान्त अनुमानादि अन्य सातों प्रमाणों को किसी न किसी प्रकार प्रत्यक्षसाधित मानता है और अन्ततः प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणो को परखसाधित। परख की कसौटी पर कसे बिना कोई प्रमाण मान्य नही।

मनुष्य को चाहिए कि सत्यज्ञान की प्राप्ति के लिए निष्पक्ष पारखी बने। ईसा सत्रहवी शताब्दी का प्रसिद्ध यूरोपीय दार्शनिक रेने देकार्त ने कहा

४. निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन, प्रकरण ३, प्रश्न ६८।

है कि सत्यज्ञान के सात बाधक है—देहाभिमान, भ्रांति धारणा, पूर्वाग्रह, शब्द-जाल, परम्परा, अन्धविश्वास तथा जनश्रुति।

देहाभिमान—जो आदमी देह ही को सब कुछ समझता है और देहासक्त है, उसकी दृष्टि निर्मल नहीं हो सकती, वह आत्मनिष्ठ नही हो सकता। अतएव अनासक्त मनोवृत्ति हुए बिना सत्य को समझना कठिन है।

भ्रांति धारणा—जिसने पहले से ही भ्रमपूर्ण धारणा बना रखी है, वह सत्य कैसे समझ सकता है! सत्य कोई धारणा नही है। वह तो अपने आप में ज्वलंत है। जिसने पहले से ही निश्चय कर लिया है कि सारे ब्रह्माण्ड को ईश्वर चलाता है, वह जड़-प्रकृति का स्वतन्त्र अध्ययन कैसे कर सकता है एवं उसकी स्वतन्त्र गतिविधि को कैसे समझ सकता है?

पूर्वाग्रह—पूर्व मान्यताएं जो संस्कारगत हो गयी हैं, उनका निकालना बड़ा कठिन होता है। पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यक्ति जानकर भी अनजान बन जाता है। उसका मन कुतुबनुमा डिबिया की सूई के समान होता है जो दूसरी तरफ घुमा देने पर भी उत्तर को ही लौट जाती है। एक प्रोफेसर कालेज मे बच्चों के सामने लेक्चर झाड़ता है "पानी बरसने के जितने कारण है, सब जड़ हैं। अर्थात केवल जड़प्रकृति की योग्यता से ही पानी बरसता है।" परन्तु वही प्रोफेसर जब घर में होता है, तब वर्षा ऋतु में अवर्षण के समय यही कहता है कि पता नही ईश्वर या इन्द्र क्यों नाखुश हैं जो पानी नही बरसाते।

शब्दजाल—शब्दजाल तो महावन है, जिसमे सारा संसार भटक रहा है। गुरुदेव कबीर ने कहा है "कहहिं कबीर भटकत फिरै, पकरि शब्द की छांहि।" लोग शब्दो की छाया पकड़ कर भटकते रहते है। बस वे यही कहते घूमते हैं कि अमुक शास्त्र मे लिखा है। वे उस पर निष्पक्ष होकर विचार नही करना चाहते। किसी भी पुस्तक को जब आदमी ईश्वरीय मान लेता है, तब उसकी जड़ता का कोई ठिकाना नही रहता। वह उस पोथी के विरुद्ध कुछ भी नही मानना चाहता और वह उस पोथी के बल पर बाल की खाल काढ़ कर अपनी भ्रात धारणाओं को सिद्ध करना चाहता है।

परंपरा—जब आदमी मान लेता है कि यह मेरी परम्परा है, तब वह उसकी सड़ी-गली बातों को भी अपने छाती-पेटे लगाये रखना चाहता है। आज इस बीसवी सदी के उत्तरार्ध में भी कितनी सभ्य कहलाने वाली जातियां एवं परंपराएं बलि और कुर्बानी के नाम पर जीवो की हत्या करके तथाकथित देवताओ तथा ईश्वर को खुश करने का उपक्रम करती है। परम्पराओं की सही बाते आदर करने योग्य होती हैं; परन्तु जब आदमी परम्पराओ का

अंधा भक्त बन जाता है तब वह सत्यपथ पर नहीं आ सकता। भारत की यह गंदी परम्परा कि जाति के नाते आदमी छोटा-बड़ा होता है, आज भी नहीं समाप्त हो रही है। सत्यज्ञान के लिए परम्परा का मोह छोड़ना होगा।

अंधविश्वास—आंख मूद कर विश्वास करने की आदत सत्यज्ञान के लिए बड़ा खतरनाक है। धार्मिक क्षेत्र में तो आंख मूद कर विश्वास करने की बड़ी आदत है। कुछ तथाकथित बड़े आदमी कह दें कि अमुक आदमी भगवान या अवतार है और वह ऋद्धि-सिद्धि एवं मुक्ति देता है तो पढ़े-लिखे व बे-पढ़े सारे मूर्ख उसके पैरों पर टूट पड़ेंगे। इसलिए धूर्त लोग धार्मिक नकाब लगाकर जनता को सदैव बेवकूफ बनाते रहते हैं। कर्तव्य कर्म छोड़कर केवल कल्पित देवी-देवताओं की पूजा के आधार पर सारे पाप-तापों एवं दुःख-दरिद्रताओ से मोक्ष पाने के लिए आज भी मानव पंडे-पुजारियों के सामने नाक रगड़ रहा है।

जनश्रुति—जनता में उठी हुई बातों की तरंगे समाज में फैल जाती है और उन्हें सुन-सुनकर आदमी बौखलाते रहते हैं।

संत परम्परा की यह साखी बड़ी ही उपयुक्त है—

कुलपशु गुरुपशु वेदपशु, कामपशू संसार।
मानुष ताको जानिये, जाहि विवेक विचार॥

कुल, जाति, परम्परा का पक्षपात करने वाला कुलपशु है। आंख मूद कर गुरु की बात मानते जाना और गलत बातों पर अपने गुरु की दोहाई देते रहना गुरुपशु होना है। वेद से अभिप्राय यहां केवल प्रसिद्ध चार वेदों से नही है किन्तु किसी भी पोथी से है। किसी भी पोथी का पक्षपात करना, उसकी विवेक विरुद्ध बातों का भी समर्थन करना वेदपशु होना है। चौथा है विषय-वासना का पशु बन जाना। विषयी पामर आदमी सबसे बड़ा पशु है। उसी को मनुष्य कहा जा सकता है जो इन पशुताओ को छोड़कर विवेक-विचार से पूर्ण है।

२३

वृक्ष-वनस्पति निर्जीव हैं

जहां इच्छा, क्रिया, अवस्था, ज्ञान और अमरता[1] के लक्षण पाये जायं, वहां जीव का निवास समझना चाहिए। मच्छड़, भुनगा, चीटी आदि छोटे-छोटे

[1] इच्छा क्रिया अवस्था, ज्ञान अमरता होय।
ये लक्षण जहं पाइये, जीव जानिये सोय॥

देहधारी जीव को भी देखा जाता है कि वे इच्छायुत होते हैं। वे इच्छानुसार स्वतन्त्र चलते, फिरते, भागते तथा इच्छानुसार क्रिया करते हैं; परन्तु वृक्षों-वनस्पतियो में ऐसे लक्षण नहीं देखे जाते। वृक्ष-वनस्पति एक जगह गड़े होने से भाग नही सकते तो कम-से-कम बाधक क्रियाओं से घबराना, मुड़ना तो चाहिए ही। जैसे कोई व्यक्ति वृक्षों को काटने आये तो वृक्षों को चाहिए कि वे अपनी डगाली-पत्ती को सिकोड़े, इधर-उधर झकझोर कर अपने भय की क्रिया प्रदर्शित करे, परन्तु ऐसा कुछ नही दिखता। कहा जाता है "लाजवंती (छुईमुई) के पत्तों को छूने से वह लजा-जाती है और अपने पत्तों को सिकोड़ लेती है, पौधे छाया की ओर से सिकुड़ कर प्रकाश की ओर फैलते है, सूरजमुखी फूल सूरज की ओर झुकता है, कमल सूरज के दर्शन पाकर खिलते है, कुमुदिनी रात मे खिलती है—यही सब इनकी इच्छायुत क्रियाये है।" परन्तु उपर्युक्त जितनी युक्तियां दी गयी हैं मनुष्य का अपना मनोरंजन मात्र है। जिस पौधे का नाम लाजवन्ती या छुईमुई रखा गया है और जिसके पत्ते छूने से मुरझा जाते है वे लज्जा से नही सिकुड़ते है। लज्जा आंख में होती है। जब लाजवन्ती नामक पौधे मे आख ही नही है तब वे लज्जित कैसे हो सकते हैं? वस्तुतः स्पर्श या ठोकर से मुरझा जाने का उनका जड़ स्वभाव होता है। हवा के झोके मे भी वे मुरझा जाते हैं। सूरजमुखी व कमल के फूल का स्वभाव है कि वे सूरज की ओर उन्मुख होते तथा सूरज के प्रकाश मे खिलते हैं। इसी प्रकार कुमुदिनी के रात में खिलने का भी रहस्य है। उनका भी अपना वैसा जड़ स्वभाव है। जिन वृक्षो को हम मासभक्षी कहते हैं वे कीड़ो को पाकर अपने पत्तो मे लपेट लेते है, इसका मतलब यह है कि उन वृक्षो के पत्तो तथा कीड़ों की देहों मे कुछ ऐसे गुण होगे जिससे उनके निकट होने पर पत्ते कीड़ों को लेकर संपुट हो जाते होगे और जब कीड़ो के शरीरों का वह रस समाप्त हो जाता होगा तब पत्ते खुल जाते होगे। यह सब क्रिया वृक्षो के अपने जड़ स्वभाव से होते है, कोई इच्छायुत नही। चुबक-पत्थर लोहे को पाकर अपनी ओर खीच लेता है और अपने मे चिपका लेता है, तो वह लोहाभक्षी नही है; किन्तु उसका ऐसा स्वभाव है। अतएव वृक्ष-वनस्पतियों मे इच्छायुत क्रिया न होकर उनकी अपनी स्वाभाविक जड़-क्रिया है।

जहा देहधारी होते है वहां ज्ञानेद्रिया तथा कर्मेंद्रियां होती है और मन होता है और इन सबका व्यवहार जागृत अवस्था कहलाती है। अर्थात स्मरण पूर्वक आखो से देखना, कानो से सुनना, नाक से सूघना, जीभ से चखना, त्वचा से छूना, हाथ से कुछ करना, पैर से चलना, मुख से खाना, गुदा तथा जननेद्रिय से मल-मूत्र का त्याग करना—यह जागृतकाल है। यह सब मनुष्य, पशु, पक्षी,

कृमी-कीटादि में होते हैं; वृक्ष-वनस्पतियों में नहीं, क्योंकि उनमें न कर्मेंद्रियां हैं, न ज्ञानेंद्रियां और न मन। और इन तीनों के अभाव में वहां जीव के निवास की कल्पना, कल्पना मात्र है।

जागृतावस्था के व्यवहार द्वारा देहधारी जीव संस्कार ग्रहण करते हैं और जब वे श्रम के कारण अर्धसुषुप्ति में जाते हैं, तब उन निहित संस्कारों में से कुछैक को स्वप्न के रूप में देखते हैं। वृक्ष-वनस्पतियों में जागृतावस्था न होने से उनमें कोई संस्कार ग्रहण नहीं होता, अतएव वहां स्वप्न होना असंभव है। जहां जागृति और स्वप्न न हो वहां यह कहना कि वृक्ष-वनस्पति केवल सुषुप्ति अवस्था में सदैव रहते हैं, अपनी कल्पित धारणा मात्र है। और जहां इन्द्रिय, मन, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थायें आदि नहीं हैं वहां जीव का होना असंभव है।

जगदीशचन्द्र वसु ने एक लकड़ी पर ठोकर मारी और उसमें कंपन हो गया। बस उन्होंने धारणा बना ली कि इस सूखी लकड़ी में भी जीव है, तभी इसमें कपन हुआ है। जिनकी दृष्टि में कण-कण में जीव हैं, उनका यह कहना कि वृक्ष-वनस्पतियों में जीव हैं, कोई अर्थ नहीं रखता। परन्तु जहां जड़ और जीव का ठीक से विवेचन है, वहां दोनों में स्पष्ट भेद है। 'कण-कण मे जीव है' एक कहावत है, जिसकी जांच-परख किये बिना लोग हांकते चले जाते हैं। बात करने में तो कुछ लगता नहीं। विज्ञान भी जीवविज्ञान तथा वनस्पति-विज्ञान का वर्गीकरण तो करता ही है। अतएव जीव का प्रधान लक्षण ज्ञान है, वह मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि में है; किन्तु वृक्ष-वनस्पति में नही है।

जीव अपने अस्तित्व का निरन्तर अनुभव करता है। भौतिक पदार्थ तो हरक्षण गति करते हैं। अतः द्रष्टा, स्मर्ता और मंता जड़ का समुच्चय नही हो सकता। तीनों अवस्थाओं और तीनो कालों में अपनी निरन्तर सत्ता का जिसे भास होता है वह चेतन जीव जड़ से पृथक है। मनुष्य देह में ऐसा जीव स्वय प्रत्यक्ष विद्यमान है। पशु, पक्षी, कृमि आदि खानियो में भी जीव के वही लक्षण दिखते हैं जो मनुष्य में है; परन्तु वृक्ष-वनस्पतियो में ऐसे लक्षण नही दिखते। हम केवल उनकी वकालत करते रहें कि वृक्ष-वनस्पतियों में ज्ञानस्वरूप जीव है और वे अपनी ज्ञान क्रिया द्वारा हमे कभी इसका बोध न करा सकें, तो हम उसे नहीं मान सकते। अतएव वृक्ष-वनस्पति निर्जीव जड़ है।

वृक्ष-वनस्पति अपने बीजी असर से तथा बाहर के मिट्टी, जल, गरमी, हवा, प्रकाश आदि सारी अनुकूल योग्यतायें पाकर पैदा होते, बढ़ते और फूलते-फलते है तथा बाधक अंश पाकर नष्ट हो जाते या अपनी अवधि में जाकर

शक्तिरहित होकर धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। एक मकान भी अपनी निश्चित अवधि के बाद जीर्ण होकर गिर पड़ता है। यह ठीक है कि वृक्ष-वनस्पति कुर्सी, टेबल, मकान आदि की तरह नही हैं। निश्चित वे उपजते, बढ़ते तथा अन्त में नष्ट होते है। श्री रामरहस साहेब कहते हैं "जैसे बाल देह पर पैदा होते हैं, वैसे पृथ्वी पर अंकुरज पैदा होते हैं जो निर्जीव हैं। यदि यह शंका हो कि वृक्ष-वनस्पति हरे-भरे कैसे रहते हैं और अंततः क्यों सूख जाते हैं ? तो इसका भेद भी अच्छी तरह समझ लो। देह के बाल बढ़ने से खूब बढ़ जाते है; परन्तु उनमें आग लग जाय तो वे क्षण मे जल जाते है और उनमें कोई पीड़ा नही होती, क्योकि वे निर्जीव होते है। दीपक जलते रहने के कारण है—आग, तेल और बत्ती। स्थिर वायु मे दीपक उक्त योग्यता पाकर जलता रहता है। वायु के झोके में वह बुझ जाता है और आड़ मे वह देर तक जलता है। रक्त और चाम बाल बढ़ने के कारण हैं तथा मुख्य जल और पृथ्वी अंकुरज वृक्ष-वनस्पति आदि के उगने और बढ़ने के कारण हैं। अतः ये अंकुरज वृक्ष-वनस्पति आदि पृथ्वी, जल आदि पांच तत्वों के कार्य पदार्थ निर्जीव है, इसलिए फल, साग-सब्जी, अन्न आदि खाने से कोई दोष नही है। हां, इनमे नाना प्रकार के देह-धारी जीव कृमि रूप पैदा हो जाते या बाहर से आकर पड़ जाते है, जो प्रत्यक्ष चलते-फिरते नजर आते हैं। इन्हे बचाना चाहिए। इन्हें कष्ट देना बड़ा अपराध है। जान-बूझकर शक्ति चले तक इन्हें बचाना चाहिए। अंकुरज खाने वाले मानव है, मांस खाने वाला श्वान है, जीव-हत्या करने वाला काल है और इसका परिणाम सदैव अधोगति है[२]।" आप गुरुबोध मे कहते है कि "यह

२. जैसे केस उधमज है देहा। ऐसे अंकुरज पृथ्वी नेहा ॥
हरे सुखे जो शंका होई। ताकर भेद तुम लेहु बिलोई ॥
चिखुर बढ़ाये बहुविधि बाढ़े। अनल जराय छिन मों डारे ॥
अनल दीप को तेल अधारा। पवन थीर में करत विहारा ॥
पवन झकोरते जाय बुझाई। अधार पाय पुनि देर रहाई ॥
लोहू चर्म है चिखुर अधारा। जल पृथ्वी अंकुरज को सारा ॥
पाँच तत्त्व को उधमज आहीं। इनके भछे दोष कछु नाहीं ॥
नाना रूप जीव कृमि होई। जल थल अंकुरज रहा समोई ॥
दुख दिये ते बड़ अपराधा। दया विचार में होवै बाधा ॥
साखी—अंकुरज भछै सो मानवा, मांस भछै सो श्वान।
जीव बधै सो काल है, सदा नरक परवान ॥
(पंचग्रन्थी, मानुष विचार, साखी ५)

स्वतःसिद्ध है कि वृक्ष-वनस्पतियों में चेतना नही है। वे केवल तत्वों के संयोग से ही हरे-भरे व प्रकाशित रहते हैं[३]।'

उपर्युक्त कथनानुसार जैसे निर्जीव बाल बढ़ते हैं, वैसे अंकुरज पैदा होते और बढ़ते हैं। जैसे तेल, बत्ती तथा आग से ज्योति बनती है, वैसे जल, मृतका आदि व बीज से अंकुरज होते हैं। जैसे कंकर-पत्थर पैदा होते और बढ़ते हैं; वैसे अंकुरज पैदा होते और बढ़ते हैं। देहधारी जीव शरीर छोड़कर जब चला जाता है, शरीर तुरन्त बदशकल हो जाता है; परन्तु कितने ही वृक्ष कट जाने के बाद भी यदि जल व छाया का संयोग पायें तो कई दिनों तक हरे-भरे रहते हैं। एक देहधारी में से काटकर कई देहधारी नहीं बनाये जा सकते; परन्तु एक वृक्ष, पौधा व लता में कलम आदि कर कई वृक्ष, पौधे व लता उगाये जा सकते हैं। अतएव अंकुरज निर्जीव होते हैं।

वृक्ष-वनस्पतियों में जीव नहीं होते—इस पर विचार पारख सिद्धान्त में संभवतः पहले से होता रहा। श्री रामरहस साहेब ने पहले पहल अपनी पंच-ग्रंथी में इसका उल्लेख किया। श्री पूरण साहेब ने अपने ग्रन्थों में इस पर कुछ नहीं कहा। शायद वे इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिये। श्री काशी साहेब ने इस पर ज्यादा विचार किया और अपने ग्रंथों में अंकुरज को निर्जीव प्रतिपादित किया। श्री विशाल साहेब ने 'भवयान' के सातवें प्रकरण 'जड़-चेतन निर्णय' में इस पर अत्यन्त विस्तार से विवेचन करने का प्रयत्न किया है।

२४

अंधविश्वास के आयाम से परे

पारख सिद्धान्त मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि-कीटादि प्रत्यक्ष योनियों को छोड़कर किसी अदृश्य काल्पनिक योनि—जैसे देव, किन्नर, गंधर्व, भूत-प्रेत आदि को नही मानता। पारख सिद्धान्त के दृष्टिकोण से जड़ क्षेत्र में प्रकृति की शक्ति महान है; परन्तु चेतन क्षेत्र में मानव की शक्ति ही सर्वोपरि है। मानव से बड़ी चेतना अन्य कहीं नहीं है। मानव अपने कर्मों का विधाता है। वह अपने आपका परमातमा है। उसे अपने उद्धार के लिए कहीं रोना या गिड़-गिड़ाना नहीं है।

३. जीवत भाव स्वतः तहँ नाही। तत्व संयुक्त प्रकाश दिखाहीं॥
(पंचग्रन्थी, गुरुबोध, उत्तर १०, चौपाई १७)

मनुष्य ने अपने तन, धन, जन आदि की हानि के कल्पित भयवश तथा दु:खों से उद्धार पाने के लिए भूत-प्रेत से लेकर मृत पितर, देव और ईश्वर-ब्रह्म तक की कल्पना एव मिथ्या धारणा कर रखा है। कल्पित देवयोनि की सृष्टि का मूल कारण मनुष्य के मन का भय है। पारख सिद्धान्त मन की इस मिथ्या धारणाओं को तोड़ कर फेक देता है। यहां किसी तथाकथित ईश्वर तक को खुश करने की बात नही है, फिर देवी-देवता किस खेत की मूली हैं। यहां न भूत-प्रेत से डरना या उन्हें वश में करना है न चुड़ैल, जिद एवं ब्रह्म राक्षस को; क्योंकि इन सबका अस्तित्व ही नही है। ये सब मनुष्य की कल्पना मात्र हैं।

जब तक माता-पिता जीते हैं, उनकी जल-भोजन, मीठे वचन आदि से सेवा करना चाहिए; परन्तु उनके मर जाने पर उनके नाम से जल उलीचना, तिल-अच्छत एवं पिंड चढ़ाना बालकों के खेल से अधिक नही है। न कहीं पितर-लोक है न वहां से बैठकर पितर लोग अपने बच्चो का दिया हुआ श्राद्ध ग्रहण करते हैं और न वहां से अपने बच्चों की शुभकामना करते है। जीव शरीर छोड़कर अपने कर्मानुसार दूसरी योनियों की शरण लेता है और अपने किये हुए कर्मो का फल भोगता है। अतएव माता-पिता की जीते तक सेवा करना चाहिए। "जियत पिता को डंडमडडा, मुये पितर को पानी पिंडा" बेकार है।

पारख सिद्धान्त में फलित ज्योतिष का स्थान नही है। अत: लग्न, मुहूर्त्त, दिशाशूल, शकुन-अपशकुन, योगिनी का दायें-बायें होना आदि सारे पाखंडों का यहां त्याग है। किस दिन बाल बनवाना या तेल लगाना चाहिए और किस दिन नही, किस दिन नये वस्त्र या वस्तु का उपयोग शुरू करना चाहिए, किस दिन नहीं आदि पर विचार करने की आवश्यकता नही। विवेक पूर्वक जब जो उपयुक्त प्रतीत हो, तब वह कार्य करना चाहिए। गन्ना, फल, अन्न इत्यादि किसी निश्चित तिथि से तोड़ने, काटने, खाने आदि का जो विधान है वह ठीक है, क्योकि तब तक वे उपयोग के योग्य होते है।

शाप और वर के जोर से किसी के तन, धन, जन आदि की हानि या लाभ करने की बात, झाड़-फूक, जंतर-मंतर, टोना-टोटका की बात तथा करा-मात-चमत्कार आदि की बातें पारख सिद्धान्त बिलकुल नही मानता। पारख सिद्धान्त सारे चमत्कारो को चतुर मनुष्यों की जालसाजियां मानता है और इसलिए वह ऐसी बातों पर थोड़ा भी विश्वास नही करता, बल्कि इनका विरोध करता है।

मनुष्य अपने अविनाशी, निर्विकार चेतन स्वरूप को न समझ कर और अपना सब प्रकार विनाश व हानि की मिथ्या कल्पना कर भयवश अंधविश्वास का आश्रय लेता है। और जब वह अपने निर्मल, अखंड स्वरूप को समझकर मिथ्या हानि एवं विनाश के भय से मुक्त हो जाता है, तब उसके सारे अंध-विश्वास विलीन हो जाते हैं। फिर उसमें उच्च चरित्र एवं नैतिकता का सृजन होता है। वह सच्चे अर्थ में मनुष्य होता है। उसे जगह-जगह रोने-गिड़गिड़ाने की आवश्यकता नहीं रहती। वह स्वयं मे पूर्ण तृप्त, पूर्ण संतुष्ट और अपनी चेतना की सर्वोच्च महिमा में प्रतिष्ठित, निर्भय एवं निष्काम होता है। स्वरूप-ज्ञान सारे अंधविश्वासो का विध्वंसक है।

२५

मानवता का अधिकार

स्त्री हों या पुरुष—मानव मात्र कल्याण-प्राप्ति के समान अधिकारी हैं। पारख सिद्धान्त कल्याण-साधना के क्षेत्र में वर्ण, जाति, लिंग, देश आदि का व्यवधान नहीं मानता। स्त्री भी कल्याण-प्राप्ति की समस्त साधनाओं को करने की अधिकारिणी है। हां, उसकी मर्यादा अलग है। पुरुषों के संगदोष से रहित रहकर उसे अपनी कल्याण-साधना करना चाहिए। पारख सिद्धान्त स्त्री-पुरुष के अभेद बर्ताव को नही पसंद करता।

वर्ण, जाति, रंग, देश आदि के भेद तथ्यहीन हैं। समस्त मानव की आंतरिक मौलिकता एवं तात्विक स्थिति एक है। अतएव तथ्यात्मक दृष्टिकोण से मानव के अधिकार में भेद नहीं किया जा सकता। यदि व्यक्तियों की साधना में भेद किया जा सकता है तो केवल उनकी मानसिक और शारीरिक योग्य-ताओं के अन्तर को लेकर। इसमें वर्ण, जाति, रंग, देश आदि आड़े नही आते।

पारख सिद्धांत ब्राह्मणवाद के इस प्रकल्पना को निराधार मानता है कि संन्यास के अधिकारी केवल ब्राह्मण ही है। गुण-कर्म की दृष्टि से कहा जाय तो ठीक है जिसमें त्याग की योग्यता है वही ब्राह्मण है और वही संन्यास का अधिकारी है। ब्राह्मणवाद कहता है कि शूद्र, वैश्य आदि को अपने शुभकर्मों के जोर से उन्नति करते हुए उत्तरोत्तर उच्च वर्णो में जन्म लेते हुए अंततः ब्राह्मण के घर जन्म लेना पड़ेगा, तब वे संन्यास के अधिकारी होंगे। पारख सिद्धान्त

इसको निरर्थक एवं तथाकथित ब्राह्मण वर्ण के अहंकार का पोषक मात्र मानता है। वस्तुतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अवर्ण—मुसलमान आदि मानव मात्र में किसी भी मनुष्य को सत्संग, विचार एव साधना द्वारा ज्ञान, चित्त शुद्धि एवं त्याग की योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। अतएव साधना में अन्तर केवल योग्यता का है; वर्ण, जाति, लिंग, देश आदि का नहीं। मानव मात्र कल्याण-प्राप्ति एवं उसकी साधना के अधिकारी ;

२६
नैतिकता ही पूजा है

नाना मतों के मनुष्यों ने ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति के लिए तथा पापों से छूटकर कल्याण की प्राप्ति के लिए तीर्थ-मूर्ति, देवी-देवता, अवतार-पैगम्बर, ईश्वर-ब्रह्म आदि की एक फौज तैयार कर ली है, जिनका वे साधन के रूप में उपयोग करते हैं। कोई मत माला फेर कर पाप समाप्त होना मानता है और कोई हवन करके, तो कोई गंगा आदि नदियों में डुबकी लगाकर। पारख सिद्धान्त पापों से छूटकर कल्याण को प्राप्ति के लिए पुनः पाप न करना एवं नैतिक आचरणों में चलना ही साधन मानता है। यहां सारा धर्म-कर्म एवं पूजा-पाठ बुराइयों को छोड़ कर भले मार्ग पर चलना एवं नैतिक आचरण ही है।

पारख सिद्धान्त में किसी के सामने गिड़गिड़ा कर पापो से छूटने का कोई चारा नही है। यहां, पुनः पाप न करना ही पापों से छूटने का पथ है। जो पाप पहले कर लिये गये हैं, उनको फिर न दोहराने से, वे धुलते हैं[1]। मनुष्य पहले कैसा भी अधम रहा हो, यदि वह पाप-पथ छोड़कर शुभ-मार्ग में चल पड़े, तो उसके वर्तमान एवं भविष्य उज्ज्वल हैं।

अच्छे या बुरे कर्मो से ही अच्छा या बुरा जीवन बनता है। कर्मो के मूल में मन के विचार होते हैं। यदि मन के विचार अच्छे हैं, तो कर्म अच्छे होगे और जीवन भी अच्छा होगा और यदि मन के विचार बुरे हैं, तो कर्म बुरे होगे और जीवन भी बुरा होगा। अतएव मन के विचारों को शुद्ध करने के लिए अच्छी संगत, साधु-गुरुजनो के सतसग एवं सेवा, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय तथा मन की निरख-परख आवश्यक है। इस प्रकार बुनियादी परिवर्तन से

१. मुक्तिद्वार, शातिशतक, प्रसंग ४, ५।

मनुष्य में सच्ची नैतिकता आती है। ईश्वर का भय मनुष्य में नैतिकता लाने के लिए ही विद्वानो एवं संतों द्वारा कल्पित किया गया; परन्तु लोग उसका दुरुपयोग कर उस प्रकल्पना को पाप करने में सहायक बना लिये। अतएव सारे दैववाद को हटाकर नैतिकता को ही एकमात्र पूजा की वस्तु बना लेने पर, जीवन का सच्चा सुधार होता है।

पारख सिद्धान्त में जीवंत प्राणी की सेवा रूप पूजा है और श्रद्धा की दृष्टि से संत-सद्गुरु, माता-पिता, बूढ़े-बड़ो की पूजा है। इसके अतिरिक्त किसी काल्पनिक धारणा को लेकर किसी जड़ पदार्थ एवं कल्पना की पूजा नहीं है। यहां मन, वाणी तथा कर्मो का सुधार एवं पवित्राचरण ही मुख्य पूजा है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों को दूर करते हुए क्षमा, दया, शील, सत्य, धैर्य, विवेक, वैराग्य, भक्ति जीवन मे जितने धारण होते जायं, उतना ही जीवन ऊपर उठता चला जायेगा। पारख सिद्धान्त में जीव के कल्याण के लिए कोई देव आधार नहीं है; किन्तु पवित्र संतों की भक्ति सहित पवित्राचरण एवं सद्गुण ही आधार है। पारख सिद्धान्त उपासना एव पूजा की जगह कल्पना की हवा मे तैरने को नहीं कहता; किन्तु सत्सग एवं सदाचार का ठोस धरातल देता है। सीधी बात है कि आदमी का दुःख दूर होकर उसे सुख-शांति तब मिलती हैं जब वह बुराइयों को छोड़कर भलाइयो में लगे, फिर लोगों को दैववाद की खाई में डालकर क्यो उन्हें भूलभुलैया में रखा जाय ! अतएव मन, वाणी तथा कर्मो के पवित्राचरण पूजा है तथा इच्छा और संकल्पों का त्याग भजन।

२७

गुरुतत्व

सम्बन्धित विषय में गहरा अनुभवी पुरुष ही, उस विषय का सही निर्देश दूसरे को दे सकता है। किसी भी दिशा मे पूर्णज्ञान प्राप्त कर उसकी तलस्पर्शी अनुभूति एवं उपलब्धि के लिए दिशा निर्देशक की आवश्यकता है। अतएव स्वरूपज्ञान, स्वरूपस्थिति एवं जीवन में परम शांति की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की आवश्यकता निर्विवाद है। यथार्थ सद्गुरु की प्राप्ति बिना अधिकतम जिज्ञासु एव मुमुक्षु मारे-मारे भटकते हैं।

इस घोर विषयासक्तिपूर्ण ससार में कोई सुज्ञ संस्कारी जीव अपनी चारो ओर के फैले जाल से असंतुष्ट हो जाता है। अन्य को आकर्षक लगने वाले

विषय उसको तुच्छ, कंटकाकीर्ण एवं बन्धन रूप प्रतीत होने लगते हैं। उसके मन में रात-दिन विचारों की मथानी चलने लगती है। वह उठते-बैठते-चलते यही सोचने लगता है "मैं कौन हूं, जगत क्या है, इससे मेरा क्या सम्बन्ध है, इसका सम्बन्ध कैसे छूटेगा, जगत-सम्बन्ध-रहित होने पर मेरी स्थिति क्या है, परम शांति कैसे मिलेगी ?" इत्यादि। यह निरन्तर का विचार उसके मन में एक आन्दोलन उत्पन्न कर देता है। उसको अन्य सब फीके हो जाते है और सत्यज्ञान की खोज में वह किसी सद्गुरु के पास जाता है।

जब उसे यथार्थ सद्गुरु मिल जाते है और उनसे वह निर्भ्रान्त, यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसकी जिज्ञासा संतुष्ट हो जाती है और अगली सीढ़ी मुमुक्षुता आ जाती है। उसे अपने स्वरूप से भिन्न सारे विषयो से वैराग्य हो जाता है और उनकी आसक्ति के बन्धनो से छूटने के लिए वह साधना करने लगता हैं। साधना करने से वह साधक की श्रेणी में आ जाता है। इस अवस्था में वह कभी मन पर विजयी होता है और कभी मन से हार जाता है और मन गलत संकल्प करा लेता है; परन्तु वह इन्द्रियों से कोई गलत कर्म नही करता। इस प्रकार निरन्तर दीर्घकाल तक साधना करते-करते मन की आसक्ति अधिक-तम समाप्त हो जाती है। इस दशा को साधुता कहते है और जब आसक्ति का सर्वथा अत हो जाता है, तब वह संत है। प्रसंगवशात साधु और सत का अर्थ एक भी माना जाता है। जो पूर्ण निष्काम, अकाम, आप्त-काम एवं जीवन्मुक्त हो गया है, वही साधु और संत है। यह पूर्ण स्ववश अवस्था है।

ऐसे निष्काम संतों में कुछ तो ऐसे होते हैं, जो सामने मिले हुए जिज्ञा-सुओ को कुछ हित की शिक्षा कर देते हैं और सदैव स्वच्छंद रहते हैं; परन्तु कुछ ऐसे होते है जो जिज्ञासुओ को विशेष ढंग से बोध देते है, दीक्षा देकर शिष्य बनाते हैं। उनकी जिम्मेदारी लेकर उनका निर्वाह करते है। ऐसे संत पुरुष सद्गुरु हैं। श्री रामरहस साहेब कहते हैं "सद्गुरु और साधु-संत की एक ही दिव्य स्थिति होती है। दोनो मे अंतर इतना होता है कि सद्गुरु तो जिज्ञासुओ को अपनी शरण मे लेकर कृपापूर्वक उनका भार वाहन करते है; अर्थात लोक-कल्याण के लिए धार्मिक प्रवृति लेते हैं और साधु-सत सदैव स्वच्छन्द होते हैं[1]।"

१. एक रूप गुरु साधु का, दूजा काल को फंद।
अशरण शरण दयाल गुरु, साधु सदा स्वच्छन्द ॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध, दोहा ५२)

पूर्ण संत-दशा एवं जीवन्मुक्ति प्राप्त हुए बिना कोई यथार्थ सद्गुरु नहीं हो सकता। पूर्ण संत-दशा प्राप्त हो जाने पर भी गुरुत्व उसी को अपनाना चाहिए, अर्थात दूसरे जिज्ञासुओं को शिक्षा-दीक्षा देकर उनको निभाने की जिम्मेदारी उसी को उठाना चाहिए जो समर्थशाली हो, पूर्ण मनोबली हो। अन्यथा वह कुछ दिनों में शिष्यों तथा बाह्य प्रवृत्तियों में उलझ कर उच्च संत-दशा से अलग हो जायगा और राग-द्वेष तथा हर्ष-शोक का शिकार बन जायगा।

उपर्युक्त तथ्यात्मक विवेचन से यह समझा जा सकता है कि सद्गुरु-पद सम्हालने का कितना बड़ा दायित्व होता है और कितनी मंजिलें पार कर यह दशा आती है। जो लोग पूर्ण जिज्ञासु एवं मुमुक्षु भी नहीं हैं, जिन्होंने साधनायें की नहीं, यदि कीं भी तो अभी पूर्णता उनको मिली नही और वे दूसरे का उद्धारक सद्गुरु बनकर बैठ गये, तो वे अधकचरे लोग समाज में मिथ्या भ्रम एवं गंदगी न फैलायेंगे तो और क्या करेंगे? कबीरदेव के वचनों में कहें तो उनकी यही दशा है "वे महिमा के अहंकारी अधकचरे गुरु घर-घर मंत्र तो देते फिरते हैं; परन्तु शिष्यों के सहित वे बूड़ेंगे और अन्त समय में पछतायेंगे[२]।" अधिकतम गुरु नामधारियों में राग-द्वेष-कलह, परनिन्दा, विषय-बकवास जो देख पड़ते हैं, इनका कारण यही है कि वे अपने को पूर्ण स्ववश किये बिना सद्-गुरु का जामा पहन कर जगत का उद्धार करने के लिए ठेकेदारी ले लिये।

श्री रामरहस साहेब कहते हैं "सद्गुरु उसको कहना चाहिए जो पूर्ण बोधवान तथा स्वरूप में स्थित है और किसी भी दशा में चंचल नही होता। वह स्वयं सुखी रहता है तथा अपने सम्पर्क मात्र से जिज्ञासुओ को सुख पहुचाता है[३]।" इसी प्रकार आपने साधु एवं संत की स्थिति बतायी "हे शिष्य! यह एक विशेष बात सुनो, साधु में तथा केवल साधुवेष में बहुत अन्तर है। साधु-वेष तो लोग अनेक कारणो से बना लेते हैं; परन्तु साधु-सन्त तो वह है जो संसार के दु:खों से मुक्त हो[४]।"

२ घर-घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरू सहित शिष्य सब बूड़े, अन्तकाल पछिताना॥ (बीजक, शब्द ४)

३. गुरु बोधिक निज थीर पद, डोलै कतहुँ नाहि।
आपु सुखी दूसर सुखी, सद्गुरु कहिये ताहि॥

४. सुनहु शिष्य वृत्तांत यह, साधुभेष बहु भेद।
भेष काज धारै अमित, साधु रहित जग खेद॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध, दोहा ६२, ६४)

संसार के लोग राग-द्वेष में पीड़ित हैं। वे उस पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए साधु-गुरु के पास बड़ी आशा व उम्मीद के साथ जाते हैं; परन्तु यदि वे साधु-गुरु नामधारी के पास भी वही राग-द्वेष का ताप पाते हैं, तो उनका कहां ठिकाना है और साधु-गुरु का क्या आदर्श रहा !

गुरु का शाब्दिक अर्थ ही है वजनदार और श्रेष्ठ। निरन्तर विवेक-वैराग्यादि साधना-द्वारा जब मन भलीभांति धुल जाता है, तब जीव का गुरुत्व उद्घाटित हो जाता है। चेतना की परम उज्ज्वलता, एकाग्रता एवं स्थिति ही गुरुत्व है। चेतन ही गुरु है, और उसका अपने आप स्थित हो जाना गुरुत्व है। ऐसा गुरुत्व-प्राप्त पुरुष ही दूसरे का सद्गुरु बनने का अधिकारी है।

यह व्यावहारिक भाषा मे कहा जाता है कि गुरु जिज्ञासु को शिष्य बनाता है। वस्तुतः गुरु जिज्ञासु को गुरु बनाता है। अर्थात वह उसे धोकर उसके शुद्ध चेतन स्वरूप की वास्तविकता को प्रकट करता है। जब साधक गुरु के निर्देशानुसार साधना मे चलकर अपनी वास्तविक स्थिति को पा लेता है, तब उसका अपना गुरुत्व उद्घाटित हुआ समझना चाहिए। कबीर देव की उद्घोषणा है "जो आज सत्य को समझ कर उसमे स्थित हो जाता है वह गुरु है[५]।" श्री रामरहस साहेब कहते है "हे शिष्य ! जो सत्य निर्णय को समझकर स्वरूपस्थिति कर लेता है, वह कृतार्थ हो जाता है। वही गुरु है, वही गुरु का शिष्य है, वही साधु है, वही वास्तविक दया का पालक है[६]।" श्री पूरण साहेब कहते हैं "पारखी (ज्ञानी) का निवास पारख (ज्ञान) मे ही रहता है, उसे अन्य वासनायें नही रहती। गुरु और शिष्य जब देह के अहंकार को दूर कर देते हैं, तब वे एक समान पारख पद में स्थित हो जाते हैं। क्योंकि पारख में समता हो जाती है, वहां न शिष्य भाव रहता है और न गुरुवाई। देहभाव से साधक शिष्य कहलाता है, परन्तु स्वरूपस्थिति के भाव से गुरुतुल्य हो जाता है। अतएव ऐ शिष्य ! पारख स्थिति में हम और तुम एकतुल्य हैं। हां, देहभाव से दोनो, गुरु-शिष्य की मर्यादा मे हैं[७]।" श्री रामरहस साहेब कहते हैं "जहां पर

५. कहहिं कबीर जो अबकी बूझै, सोई गुरू हम चेला ॥ बीजक, शब्द ४३ ॥

६. हे शिष्य निर्णय जो लखै, तेही भया निहाल।
तेई गुरु, तेई शिष्य गुरु, तेई साधु दयाल ॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध दोहा २५८)

७. पारख मांहि पारखी बासा। दूसर और रही नहिं आशा ॥
गुरू शिष्य पारख कहलाये। दोऊ देह जब दूरि बहाये ॥
पारख में समता होय जाई। शिष्य भाव न रहे गुरुवाई ॥

जिस प्रकार की मर्यादा हो, उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए। इससे स्वरूपस्थिति की वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता; प्रत्युत कर्तव्य पालन रूपी धर्म और स्वरूपस्थिति रूपी ज्ञान—दोनों उज्ज्वल ही होते हैं[८]।"

सार यह कि व्यक्ति का स्वस्वरूप चेतन ही गुरुतत्व है। उसका यथार्थ ज्ञान तथा स्वरूपस्थिति जो प्राप्त कर लेता है, वह गुरु रूप है। विषयासक्ति की पूर्ण निवृत्ति पूर्वक स्वरूपस्थिति ही गुरुत्व की प्राप्ति है। इस प्रकार गुरुत्व को प्राप्त पुरुष सद्गुरु के रूप में जिस जिज्ञासु को मिल जायं, वह महा सौभाग्यशाली है।

२८

राम और आत्मा

हम प्रथम अध्याय 'बीजक-मंथन' के 'राम और आत्मा' सन्दर्भ में देख आये हैं कि सद्गुरु कबीर के बीजक में राम और आत्मा शब्द विधेयात्मक तथा निषेधात्मक—दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। जहां स्वस्वरूप चेतन के लिए ये प्रयुक्त हुए हैं विधेयात्मक हैं और जहां स्वरूप-भिन्न कल्पित ईश्वर के अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं, निधेयात्मक हैं।

पारख सिद्धान्त के महान चिन्तक परम पारखी श्री रामरहस साहेब ने अपनी पंचग्रंथी में राम और आत्मा शब्द का उपर्युक्त ढंग से विधेयात्मक रूप से भी प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण लें—

धीरज दया तत्व संयुक्ता। **राम** भूमिका बासक युक्ता[१] ॥
आनन्द सिन्धु अहतातीता। **राम** रूपमय परम पुनीता[२] ॥

देह भाव ते दास कहावै। पारख भाव ते एक होय जावै ॥
पारख में हम तुम हैं एका। देह भाव ते भिन्न विवेका ॥
(निर्णयसार, ५८ दोहा के बाद)

८. मर्यादा जेहि जौन विधि, वर्ते तौन प्रमान।
जमा माँहि कछु फेर नहिं, उज्ज्वल धर्म अरु ज्ञान ॥
(पंचग्रंथी, गुरुबोध, दोहा ३७५)

१. २. पंचग्रंथी, गुरुबोध, गुरुशतकसार।

गुरु सम्बन्धी जीयरा, इमि देहि शुभ धार।
बसै भूमिका **राम पर,** साधु रूप सुप्रकार[३] ॥

बासक **राम** सो भूमि अधारा[४]।
साँच झूठ जो है संसार। साँच **आतमा** झूठ पसार[५] ॥
तीजै दृढता धारे चित्त। **आतम** सत्य सब जगत अनित्य[६] ॥
आतमा सब महं एक निहार। मन बच कर्म प्रतिपाल विचार[७] ॥

अस्ति **आत्मा राम** यह, नास्ति सनेही दीन।
गुरुमुख मिटै सो दीनता, काल कला होय छीन[८] ॥

यह ध्यान देने योग्य है कि जो ऊपर कहा गया है 'झूठ पसार' इसका अर्थ कोई यह न समझ ले कि यहां जगत को मिथ्या माना गया है। पारख सिद्धान्त जगत को नित्य परिवर्तनशील एवं यथार्थ मानता है। वस्तुतः इसका और जीव का सम्बन्ध झूठा है, इतना ही अर्थ है। दूसरी बात, ऊपर कहा गया 'आतमा सब महं एक निहार' यहां का तात्पर्य अद्वैत नही है वस्तुतः सब देहों में एक सदृश आत्मा समझो। पारख सिद्धान्त जीव एवं आत्मा को व्यक्तित्व में अनेक मानता है जो वे अपने मौलिक स्वरूप में अनादि और नित्य हैं; परन्तु सबका ज्ञान-गुण एक ही है। उपर्युक्त राम और आत्मा शब्द का प्रयोग विधि-परक है।

२९

आनंद, सुख और शांति

कुछ वेदांती विचारक कहते हैं कि इन्द्रियों के विषय-भोगों में उत्पन्न हुई अनुकूल वृत्ति 'सुख' है और विषय निवृत्तिपूर्वक आत्मस्थिति 'आनन्द' है। तात्पर्य यह कि सुख शब्द का मूल्य वैषयिक है और आनन्द शब्द का मूल्य आत्मिक। इसके विपरीत कुछ पारखी विचारक जीवन्मुक्ति, स्वरूपस्थिति एवं आत्मस्थिति के साथ सुख-शब्द तो जोड़ लेते हैं जैसे जीवन्मुक्ति-सुख एवं स्वरूप-

३. पंचग्रंथी, गुरुबोध, उत्तर ६।
४. पंचग्रंथी, गुरुबोध, १९२ दोहा के आगे सवैया।
५. ६. ७. पंचग्रन्थी, गुरुबोध, सारशब्द।
८. गुरुबोध, दोहा १९५।

स्थिति-सुख; परन्तु आनन्द शब्द से तटस्थ रहते हैं। निष्पक्षता से विचार करने पर आनन्द और सुख—दोनों शब्दों में कोई भेद नहीं दिखता। यह हम पर निर्भर करता है कि हम आनन्द और सुख का किस जगह वैषयिक अर्थ में प्रयोग करते हैं और किस जगह आत्मिक अर्थ में।

वेदांतियों को अधिक मान्य पुस्तक गीता में आत्मस्थित-सुख के अर्थ में आनन्द शब्द का प्रयोग नहीं दिखता। वहां पर ऐसी जगहों के लिए सुख और शांति शब्दों का बहुत प्रयोग है। कुछ उदाहरण लें—

स शान्तिमाप्नोति। (२/७०)
स शान्तिमधिगच्छति। (२/७१)
परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति। (४/३९)
शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। (५/१२)
संन्यास्ते सुखं वशी। (५/१३)
सुखमक्षयमश्नुते। (५/२१)
स युक्तः स सुखी नरः। (५/२३)
योऽन्तः सुखोऽन्तराराम। (५/२४)
प्रशान्तात्मा। (६/१४)
शान्ति निर्वाणपरमाम्। (६/१५)
सुखमात्यन्तिकम्। (६/२१)
तं विद्याद्दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। (६/२३)
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्। (६/२७)
अत्यन्तं सुखमश्नुते। (६/२८)
शश्वच्छान्तिं निगच्छति। (९/३१)
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्। (१८/६२)

इन सभी पदों का अर्थ यही है कि वह परम शांति एवं सुख को प्राप्त करता है। दु:खो के संयोग से अलग हो जाना ही योग कहलाता है। इस प्रकार गीता में उच्च आध्यात्मिक स्थिति की अनुभूति के अर्थ में परमसुख, शाश्वतसुख, उत्तमसुख, अक्षयसुख या सुख शब्द का प्रयोग किया गया है।

दूसरी तरफ परम पारखी श्री रामरहस साहेब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक पंचग्रंथी में उस स्वरूपस्थिति एवं आत्मस्थिति की अनुभूति के अर्थ में आनन्द शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण लें—

आनन्द सिंधु अहंतातीता। (गुरुबोध, गुरुशतकसार)
तू हंस स्वतः आनन्द। (गुरुबोध, उत्तर १)

हंस स्वतः पद आनन्द लहै। (उत्तर १)
हंस स्वतः आनन्द पद, सोई पद है जीव। (उत्तर ४)
दीनदयाल की शरण अनंदा। (उत्तर ५)
तेहि माँहि परखगुरु ठहर साथ। आनंद लहरि के समुद्र अगाध।
(उत्तर ८)

हंस स्वतः आनन्द पद। (उत्तर १४)
स्वतः अस्ति आनन्द पद। (उत्तर १५)
आनंद-महल अबास सोहावन। (उत्तर १८)
गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद, बसै आनन्द अटारी। (उत्तर २०)
स्वतः हंस आनन्द पद। (उत्तर २२)

कबीरदेव भी कहते हैं—
अबकी पुरिया जो निरुवारे, सो जन सदा अनंदा। (बीजक, सा० ३२२)

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुख या आनन्द शब्द का प्रयोग स्वरूप-स्थिति-सुख के लिए किया जा सकता है। इनमें कोई शब्द श्रेष्ठ या तुच्छ बतलाने की आवश्यकता नही है। श्री पूरण साहेब ने यह अवश्य कहा है कि "आनन्द-आनन्द तो सब कहते है, परन्तु आनन्द ही जीव का काल है[1]।" यहां उनका लक्ष्य विषय तथा मनःकल्पित धारणाओ में जो आनन्द मान लिया जाता है, उसके लिए है। उन्होंने भी जीवन्मुक्ति एवं एकाग्रता की शांति के लिए 'सुख' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे 'सुख साहेब सुख रूप जो'[2] या 'सुख स्वरूप कबीर'[3] तथा 'तू अविनाशी सुख में कहिये'[4] इत्यादि।

सुख या आनन्द कोई स्वतन्त्र वस्तु नही है। जब जीव के सामने दुःखों का अभाव हो जाता है, तब वही सुख या आनन्द है। और दुःखों का अभाव भी कहां होता है? एकाग्रता मे। जब व्यक्ति किसी विषय मे तत्परता से लग जाता है, तब उसको दूसरी बाते भूल जाती हैं और उस प्रस्तुत विषय में एकाग्रता हो जाती है, तब उसे सुख या आनन्द मिलता है; परन्तु यह क्षणिक होता है और परिणाम में दुःखजनक भी। क्योकि विषय व्यक्ति की अपनी चेतना से पृथक की वस्तु है। वह मिलकर छुट जाती है। अतएव उसमें चिर-शांति नही मिल सकती।

जब व्यक्ति सारे विषयो को हटाकर और मनःकल्पनाओ को दूर कर अपनी चेतना में एकाग्र हो जाता है, तब यह निराधार आत्मिक एकाग्रता

१. आनन्द आनन्द सब कहै, आनंद जीव को काल॥ त्रिज्या अंत, साखी ३२॥
२. संध्यापाठ। ३. वैराग्यशतक, दोहा १। ४. निर्णयसार अंत।

होती है, जिसको हम स्वरूपस्थिति कहते हैं। इसमें चिरशांति मिलती है। इसको हम सुख या आनन्द किसी शब्द से अभिव्यक्त करें कोई हर्ज नहीं है। वस्तुतः शांति सबसे गम्भीर शब्द है। किसी को लड़का पैदा हो, धन लाभ या यश लाभ हो, तो उसे हम कह सकते है कि वह व्यक्ति सुखी या आनन्दित है; परन्तु यह नही कह सकते कि शांत है। शांति एक निर्विकार अवस्था है। वैषयिक सुख के लिए सुख या आनन्द शब्द का प्रयोग हो सकता है; परन्तु शांति शब्द का नही। शांति शब्द का प्रयोग आत्मिक सुख के लिए ही संभव है; परन्तु इसमें सुख या आनन्द शब्द भी चल जाते हैं। सच्चा सुख या आनन्द तो शांति में ही है।

व्यक्ति अपनी चेतना की स्थिति से पृथक विषयों में सुख एवं आनन्द ढूढ़ रहा है, जो उसका अज्ञान है। इस अज्ञान की निवृत्ति के लिए विवेकियों ने व्यक्ति को जाग्रत किया है। श्री काशी साहेब कहते हैं "विषयों में जो वृत्ति स्थिर होने से सुख की अनुभूति होती है, वह क्षणिक है और उसका परिणाम सदैव दुःखप्रद है[५]।" अतएव इनसे तो विरक्त होना ही है। जीव सुख के मोह में अपने आप को सदैव बांधते आया है। सुख का कही प्रलोभन न रह जाय, इसलिए श्री काशी साहेब ने आगे कहा—"जीवन्मुक्ति का सुख भी शरीर तक ही होने से अनित्य है और जीव के स्वरूप मे कोई सुख का स्थान नहीं है[६]।" अतएव सुख का मोह छोड़ो।

विषयों के निवृत्तिपूर्वक मन की एकाग्रता ही जीवन्मुक्ति सुख है और यह निश्चय ही शरीर रहे तक ही है। परन्तु 'सुख स्वरूप जीव नहिं जानो' जीव के स्वरूप में भी सुख नही है। यह बात आपाततः अटपटी भी लगती है और भयावह भी। जब जीव के स्वरूप में सुख है ही नही, तो स्वरूपस्थिति या मोक्ष प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही क्यो किया जाय ? या फिर सुखरहित जीव के लिए सुखसिन्धु एवं आनन्दकद किसी ईश्वर, ब्रह्म की तलाश की जाय, जिससे जीव उसमें मिलकर सुख या आनन्द का लाभ ले सके। इससे हमारे कुछ भाइयो को आनन्द आ जायेगा, जो यह मानते हैं कि 'जड़तत्व केवल सत है, जीव सत और चित दोनों है तथा ईश्वर सच्चिदानन्द है। अतएव तुम अपने

५. अनित्य सब स्थिर वृत्ति विषय सुख। परिणाम तासु सदा लहै दुख॥
(जड़चेतन भेद प्रकाश, दोहा ४ के आगे)

६. जीवन्मुक्ति सुख अनित्य पिछानो। सुख स्वरूप जीव नहिं जानो॥
(जड़चेतन भेद प्रकाश, दोहा ४ के आगे)

सुखरहित जीव को सुख प्राप्त कराने के लिए हमारे आनन्द स्वरूप ईश्वर के पास लाओ।' परन्तु यह सारी बातें बचपना की होंगी।

हम इस पर थोड़ा गहराई से विचार करें। सुख का स्वरूप दुःख-सापेक्ष है। यदि दुःख की उपस्थिति न हो, तो सुख की कल्पना भी न हो। भूख लगती है, तब दुःख की अनुभूति होती है और जब भोजन मिल जाता है, तब सुख की अनुभूति होती है; परन्तु यदि आप को जरा भी भूख न हो तो क्या भोजन मिलने पर सुख लगेगा ? इस स्थिति में कोई आग्रह पूर्वक आपको भोजन कराना चाहेगा, तो आप बुरा मानेंगे। मान लो, आप को कोई बड़ी बीमारी हुई और आप दुखी हुए। इतने में कोई अच्छा वैद्य या डाक्टर आप की चिकित्सा करके औषध किया और आप कुछ दिनों में रोग-मुक्त होकर परम सुख का अनुभव करने लगे। यह रोगनिवृत्तिजनित जो सुख है, रोगसापेक्ष है। रोग पहले न हुआ होता, तो रोगनिवृत्तिजनित सुख का अनुभव कहा होता ? अब यदि डाक्टर कहे कि मैं आपके शरीर में पुनः रोग पैदा कर दू और इसकी पुनः चिकित्सा कर रोग दूर कर दूगा, तब तुम्हें पुनः सुख मिलेगा। तो क्या आप पुनः रोग का दुःख लेकर उसके निवृत्तिजनित सुख लेने के लिए चेष्टा करेंगे ? कदापि नही।

वस्तुतः जीव के शुद्ध स्वरूप चेतन मे दुःख है ही नही। जब वहा दुःख का लेश भी नही है, तब सुख की कल्पना ही असभव है। सुख-दुख जो सापेक्ष भावनाये है, उन्हे भावनातीत, मन-वाणी से परे एवं गुणातीत शुद्ध चेतन में आरोपित करने की चेष्टा करना अधकचरा ज्ञान है। अतएव जीव का, जड़ प्रकृति-रहित, शुद्ध चेतन स्वरूप न दुःखस्वरूप है और न सुखस्वरूप। जो त्रिगुणातीत है, उसमे गुणमय सुख-दुःख का आरोपण बिलकुल अज्ञान है। जहां कुछ कमी ही नही है, वहां पूर्ति क्या करना है। जहा दुःख ही नही है, वहां सुख क्या होगा ! जो सुख-दुःख द्वन्द्वो से परे एकरस सत्य है, उसमे सुख-दुःख का आरोपण कैसा।

अब प्रश्न होता है कि संतपुरुषों के वचनों में विरोध पड़ता है। श्री रामरहस साहेब तथा पूरण साहेब क्रमशः कहते हैं "हंस स्वतः आनन्द पद, सोई पद है जीव।" तथा "तू अविनाशी सुख मे कहिये।" और श्री काशी साहेब कहते है "सुख स्वरूप जीव नहिं जानो।" तो इसको क्या समझा जाय।

वस्तुतः गहराई में उतर कर देखने पर इन वाणियो के मौलिक भावों में विरोध नहीं है। शरीर रहते तक स्वरूपस्थिति का एकाग्रताजनित सुख तो

रहता ही है। सब जीव देह धर कर बारम्बार अज्ञानवश दु:ख भोगते हैं। वे इनसे भाग कर बचना चाहते हैं। जब इन्हें दु:खों से कुछ छुटकारा मिलता है, तब इन्हें सुख एवं आनन्द की अनुभूति होती है, अतएव ये जीव आनंद एवं सुख से ज्यादे परिचित हैं और उन्हें चाहते हैं। इसलिए विवेकवान जब इन्हें यह बताते हैं कि वह आनन्द या सुख तो तुम्हारे अपने आप में ही है, तब ये बाहर से लौटकर अंतर्मुख होने की चेष्टा करते हैं तथा मोक्ष-साधना में भी प्रयास करते हैं। जीव का मूल लक्ष्य तो दु:खों से छूटना है; परन्तु वे समझते हैं कि दु:ख तो छूटे ही और कहीं सुख या आनन्द भी मिल जाय जो सदा हमारे साथ रहें, तो बड़ा उत्तम हो। उन्हें यह पता नहीं कि दु:खो के सर्वथा छूट जाने पर सुख की आवश्यकता भी नहीं रहेगी और दु:खों के सर्वथा अंत होने पर, सुख का कोई सकारात्मक स्वरूप होता भी नही। विवेकवान कहते हैं कि ठीक है तुम्हें सुख या आनन्द मिलेगा, तुम विषयों से लौटकर अपने आप मे आ जाओ। विषय में सुख नही है, सुख तो तेरे अपने आप में ही है। तू स्वयं सुख-स्वरूप है। स्वयं आनन्द पद है। यह मोक्ष ही परमानन्द एव परमसुख है। वस्तुत: शुद्ध स्वस्वरूप चेतन एवं स्वरूपस्थिति-मोक्ष में सर्वापत्तियों एवं दुखों का अभाव होना ही सुख एवं आनन्द है। जब कोई दु:ख नही है तो सुख ही है। इस दृष्टि से 'हंस स्वत: आनन्द पद सोई पद है जीव' एवं 'तू अविनाशी सुख में कहिये' आदि कथन ठीक है। और श्री काशी साहेब द्वारा 'सुख स्वरूप जीव नहिं जानो' कहकर यह बात तथ्य की दृष्टि से बता दी गयी कि जीव के शुद्ध स्वरूप एवं मोक्ष में मन नहीं है जो वहां कोई सुख, आनन्द आदि सगुण एवं विकारी वस्तुओं की अनुभूति हो। वह शुद्ध चेतन मात्र है।

स्वरूपस्थिति एवं जीवन्मुक्ति-सुख के अर्थ को व्यक्त करने के लिए शांति शब्द सर्वाधिक गंभीर है। जीव का शुद्ध स्वरूप निर्विकारी होने से उसे भी शांतस्वरूप कहा जाता है।

३०

साधना का प्राथमिक रूप

जिसे मानव जीवन को सुधारने और जीवन में शांति एवं कल्याण प्राप्त करने की इच्छा है, वह पहले कुसंग का त्याग कर सज्जनों तथा विवेक-वैराग्य सम्पन्न संत पुरुषों की संगत करता है। वह गुरु, संतों एवं सज्जनों का ज्ञान श्रवण करता है तथा सद्ग्रन्थों एवं सत शास्त्रों का अध्ययन करता है। वह

चोरी, हत्या, व्यभिचार, झूठ, कपट, छल, अभिमान, ईर्ष्या, दंभ, मद्य, मांस, मछली, अंडा, गांजा, भांग, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू (अभक्ष्य भोजन) आदि का त्याग कर देता है। वह परायी स्त्री को माता, बहन, पुत्री के समान समझकर, गृहस्थी मर्यादानुसार अपने दंपती जीवन में ही संयमपूर्वक संतोष रखता है और आगे-आगे विशेष विषय-वासनाओं की निवृत्ति करते हुए गृहस्थी में भी जल-कमलवत अनासक्त होकर रहता है, या शुरू से ही अविवाहित रह-कर ब्रह्मचर्य पालन करते हुए साधना मार्ग में चलता है। यही आचरण कल्याणार्थी नारी भी करती है।

कल्याणार्थी बोध, वैराग्य और दिव्य रहनी सम्पन्न सद्गुरु की खोज करता है और उन्हे पाकर उनकी शरण मे अपने को समर्पित कर अपने बोध, जीवनक्रम एवं आचरण को व्यवस्थित एवं निश्चित कर लेता है। वह माता-पिता, भाई, परिवार एवं पड़ोस वालो के साथ सुन्दर बर्ताव करता है। वह स्वाध्याय-सत्संग करते हुए अपनी इन्द्रियो का दमन तथा मन का शमन करता है। कितने साधक गृहस्थी मे रहते हुए दान, सेवा, परोपकार, संत-गुरुजनों की भक्ति, स्वाध्याय एवं सदाचरण मे चलकर जीवन यापन करते है, और कितने विरक्ति मार्ग का अनुसरण कर साधु-दशा मे जीवन व्यतीत करते है।

साधना की गहराई में प्रवेश पाने के लिए शुद्ध ब्रह्मचर्य की महान आवश्यकता है। इसके लिए कुसंग त्याग, शुद्ध सग ग्रहण, सात्विक एवं संतु-लित भोजन, इन्द्रिय-सयम एव पवित्र विचार की महती आवश्यकता है। हर साधक सुबह-शाम एकान्त बैठकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मद आदि विकारों के विषय मे ग्लानि करता है और उनको दूर करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करता है। सुबह-शाम नित्य के ऐसे अभ्यास से साधक के मन के दोष उत्तरो-त्तर क्षीण होते जाते हैं और वह सद्गुणो से भरता जाता है। जैसे व्यापारी अपने व्यापार में हिसाब-किताब रखता है, वैसे साधक अपने गुण-दोषो का हिसाब रखता है। वह समय-समय एकान्त में बैठ कर अपनी परीक्षा करता है कि मेरे दोष कितने क्षीण हुए तथा सद्गुण कितने बढ़े। नित्य एकान्त सेवन, आत्मनिरीक्षण, दोषों के प्रति ग्लानि, सद्गुणो का अभ्यास करते-करते साधक का चित्त निर्मल होता जाता है।

साधक अपने भोजन के विषय मे केवल इतना ही ध्यान रखता है कि वह शुद्ध तथा स्वास्थ्य के अनुकूल हो। इसके अतिरिक्त मोटा-महीन, हलुआ-सतुआ—सब पर उसकी समान दृष्टि रहती है। वह घी, दूध, दही, मेवे, मिष्ठान्न, पकवान आदि की कामना वाला, लोभी-लालची नही होता। वह

सूखा-गीला जो कुछ पाता है संतोषपूर्वक पेट भर लेता है। वस्त्रों में उसकी मध्यवर्ती दृष्टि होती है। वह न तो टाट या केवल मोटा कपड़ा पहन कर त्याग का दंभ करता है और न केवल बहुमूल्य वस्त्रों का उपयोग कर रजो-प्रवृत्ति में पड़ता है। वह दूसरे को सम्मान देते हुए स्वयं निर्मानभाव में बर्तता है। वह पर-दोष-दर्शन से हट कर निज-दोष-दर्शन करता है और अपने आप को निरन्तर सुधारता है। वह सेवापरायण, दानशील, उदार, परोपकारी, शील-वान और सर्वत्र प्रेम प्रसारक होता है। वह किसी से विवाद, लड़ाई-झगड़ा न कर क्षमा, दया और सद्भावना से व्यवहार बर्तता है।

इस प्रकार सदाचार, शम, दम, संतोष, स्वाध्याय, गुरुभक्ति, संत-सेवा और विवेक-विचार का आश्रय लेकर साधक अपने मन को निरन्तर शुद्ध, सूक्ष्म और संतुलित बनाता जाता है। पारख सिद्धान्त मे पवित्र विचारो का निरंतर मार्जन ही भजन है। पवित्र विचारो की निरन्तरता से मन, वाणी और कर्मो की पवित्रता होती है। साधक पहले सेवा, अध्ययन तथा संतपुरुष का ध्यान कर मन को एकाग्र करता है। जब उसके विवेक-वैराग्य के अभ्यास बढ़ जाते हैं और उसकी सर्वत्र अनासक्ति हो जाती है, तब वह द्रष्टा अभ्यास, निर्विचार समाधि एवं पारख समाधि में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है।

३१

पारख समाधि

स्वस्वरूप का यथार्थ बोध, विषयों से पूर्ण वैराग्य, निर्मल संत पुरुषों की उपासना, शुद्ध-संतुलित आहार, निर्वाह में सादगी एवं संतोष, राग-द्वेष-रहित निर्विवादिता, चिन्ता का त्याग, अपने अकेलेपन का यथार्थ बोध—स्वरूपस्थिति एवं पारख समाधि की ये पहली तैयारियां हैं।

व्यक्ति का अपना स्वरूप चेतन है। वह न व्याप्य है न व्यापक, न वह जड़ से बना है न उससे जड़ बना है। वह जड़वर्ग से सर्वथा रहित शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप है। उसके सारे बन्धन औपाधिक हैं जो वासना के त्याग से निवृत्त हो सकते है। वासना त्याग देने पर जीव स्वयं मुक्त स्वरूप है। उसे बुंद-समुद्र की तरह किसी बड़ी राशि में मिलना नहीं है; क्योंकि विकारी, सावयव, परिणामी, कारण-कार्य वाले पदार्थ परस्पर मिलते है। चेतन इन लक्षणो से पृथक निर्विकारी, निरवयव, अपरिणामी, असंग, शुद्ध-बुद्ध है। अतएव वह

किसी में भी नहीं मिल सकता। वह किसी से बना नहीं है और उससे भी अन्य कुछ बनता नहीं। अतएव वह वासना त्याग कर असंग, निराधार, अकेला रह जाता है। मोक्ष 'पर' से निवृत्त होकर 'स्व' मात्र रह जाना है, न कि किसी में मिलना। अपना स्वरूप शुद्ध चेतन तथा जड़ प्रकृति से सर्वथा निर्लेप है। सारे बन्धन जीव के माने हुए हैं और उन्हें छोड़कर जीव बन्धनों से मुक्त हो सकता है।

जो कार्य जिन कारणों से होता है, यदि उस कार्य को ध्वंस करना है तो उन कारणों को हटाकर उसके विरोधी कार्य करना पड़ता है। उपयुक्त खेत में बीज डालने पर फसल होती है, यदि फसल नही चाहिए तो खेत में बीज डालना ही नही है, बल्कि बीज को आग में भून देना है। यद्यपि बीज का खेत में बोना तथा उसके उल्टे उसे आग में भूनना—दोनों कर्म हैं; परन्तु एक कर्म फसल होने में कारण है तो दूसरा कर्म उसका विरोधी है[1]। इसी प्रकार देहाभिमान तथा विषयासक्ति से जीव संसार में भटकता है। यदि जीव को संसार-बधनों से मुक्त करना है तो देहाभिमान छोड़कर स्वरूपज्ञान प्राप्त करना होगा और विषयासक्ति से सर्वथा निवृत्त होकर शुद्ध वैराग्य करना होगा। पूर्ण वैराग्य उदय हुए बिना पूर्ण स्वरूपस्थिति संभव नहीं है।

जिनके मन, वाणी, कर्म निर्मल हैं; जो राग-भोग, ईर्ष्या-द्वेष, ममता, अहकार आदि विकार छोड़कर निरन्तर साधना-परायण हैं, जो वासना-विजयी तथा जीवन्मुक्त हैं, ऐसे संत पुरुष में उपासना, सेवा, श्रद्धा की महान आवश्यकता है। ऐसे महापुरुष की संगत अनिवार्य है। आग के पास जाने से गरमी तथा पानी के पास शीतलता मिलती है। वकील के पास कानून, डाक्टर के पास चिकित्सा तथा इन्जीनियर के पास इन्जीनियरिंग का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्वरूपस्थिति परायण संतों के पास जाने से शुद्ध साधक को स्वरूपस्थिति की प्रेरणा मिलती है। अतएव कुसंग त्यागकर शुद्ध संग अत्यन्त आवश्यक है।

बहुत कम खाना, बहुत ज्यादा खाना, विशेष उत्तेजक पदार्थ खाना यह सब साधना के पथ से विपरीत है। जैसा पीछे कह आये हैं शुद्ध, सात्विक तथा संतुलित भोजन होना अनिवार्य है। इसकी भी चर्चा पीछे की जा चुकी है कि निर्वाह की हर दिशा में सादगी अपेक्षित है। खाने, पहनने तथा निर्वाह की

१. एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत।
　एक कर्म है भूनना, उगै न अंकुर सूत॥
　　　　(कबीर परिचय, साखी ३३८)

चीजों के नाज-नखरों में उलझा व्यक्ति स्वरूपस्थिति का कार्य नहीं कर सकता। स्वरूपस्थिति निष्फिक्र दशा है, अतः उसको पाने के लिए निष्फिक्र साधन की आवश्यकता है। सादा, सरल, यथा-प्राप्त में संतोष पूर्वक निर्वाह करते हुए स्वरूपस्थिति-साधना में परायण होना चाहिए।

जो स्वरूपस्थिति करना चाहता है उसे किसी से राग-द्वेष, उखाड़-पछाड़, विवाद आदि में नहीं उलझना चाहिए। उद्वेगित हृदय से स्वरूपस्थिति का काम कैसे सध सकता है। किसी से राग या द्वेष मानने से अपना मन पवित्र नहीं हो सकता। जिसके मन में राग और द्वेष की ग्रंथियां है, वह स्वरूपस्थिति साधना के सर्वथा अयोग्य है। वस्तुतः विवाद, उखाड़-पछाड़ एवं राग-द्वेष की प्रवृत्तियों से साधक पहले ही निवृत्त हो जाता है।

चिंता करने वाला भी स्वरूपस्थिति नहीं कर सकता। चिंता का कारण है अज्ञान। चिंता करने की आदत भी होती है। धन, परिवार, समाज, स्वास्थ्य, निर्वाह आदि की चिंता करने से इनमे कोई लाभ होने वाला तो रहता नहीं, उल्टे हानि ही होती है। हम जिन वस्तुओं की आज चिंता करते है, दस दिन के बाद उनका कोई महत्व नही रह जाता। पूरी जिंदगी की चिंता एक दिन जिंदगी के साथ समाप्त हो जाती है। जिस संसार मे सब कुछ मरणधर्मा है वहां किसी बात की चिंता करने की क्या आवश्यकता है। चिंताशील चित्त समाधि में नही प्रविष्ट होता है। अतएव चिंता को एकदम छोड़कर अपने चित्त को सरल, हलका-फुलका और उदार बनाना चाहिए।

संसार, समाज, देह, मन आदि की भीड़ से अपने आप को अलग समझना चाहिए। लाख प्रेमी मिल जायं; परन्तु जीव के साथ अंततः कोई नही है। बाहर की भीड़ का आनन्द दाद की खुजली के समान क्षणिक तथा अंततः कष्टप्रद है। जीव का अपना मुख्य संबंध अपने आप से ही है। समाधि में प्रवेश के लिए अपनी असंगता का बोध अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यासकाल में संकल्प-शून्यता तथा व्यवहारकाल में आसक्तिहीनता—पारख-समाधि या स्वरूपस्थिति है। जीव का जीव ही, अर्थात वह अपने आप ही अपना परम निधान है। उसका अपने आप में लौट आना ही, अपना परम लक्ष्य है। यही स्वरूपस्थिति है। इसकी तीन श्रेणियां है—विवेक, द्रष्टा और स्थिति। विवेक और द्रष्टा अभ्यास है तथा स्थिति फल।

मैं शुद्ध चेतन हूं। जड़दृश्य का सबंध असत है। शरीर तथा भोग क्षण-भंगुर एवं नाशवान है। काल की अनन्तता के बीच मे हमारा माना हुआ शारीरिक जीवन-काल क्षण सदृश है। सारा जड़दृश्य भागता हुआ हमसे दूर

चला जा रहा है। अतएव जीवन की सारी भौतिक उपलब्धियां अंततः कुछ नहीं हैं। मैं सबसे भिन्न, असंग, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप हूं—इत्यादि विवेक की दशा है।

विवेक के दीर्घकालीन अभ्यास से मन सूक्ष्म, अनासक्त एवं निर्ग्रंथ हो जाता है। ऐसी अवस्था में द्रष्टा का अभ्यास करना चाहिए। किसी स्थिर आसन से बैठना चाहिए जिससे सुख पूर्वक विलंब तक रहा जा सके। इसमें न श्वास रोकना है, न नासिका के अग्रभाग पर ध्यान जमाना है। यदि नीद न आये तो आंख मूद लेना चाहिए और सूक्ष्मता से देखना चाहिए कि मन क्या कर रहा है। इस समय यही जागरूकता होनी चाहिए कि शुभ या अशुभ कोई वासना आये उसका द्रष्टा जन जाय, उसे देख-देख कर उसमे सत्ता न दे। वासनाओं को केवल देखते हुए अपनी सत्ता अपने आप की ओर लौटाते रहने से, वासनायें शांत होती जायेंगी। स्मरणो को केवल देखना, उन्हे सत्ता न देना उनका अंत करना है। मन को देखते-देखते जब द्रष्टा स्मरणो में मिलकर बहने लगता है, तब देखने की दशा छूट जाती है। द्रष्टा-अभ्यास की यही विशेषता है कि द्रष्टा किसी में न मिले। जब इस प्रकार जागृतावस्था मे ह द्रष्टा-अभ्यास द्वारा संकल्प एवं स्मरण की धारायें टूट जाती है और द्रष्टा स्ववश होकर मन को देखता रहता है तब यह द्रष्टा-अभ्यास है।

द्रष्टा-अभ्यास की पूर्णता हो जाने पर ऐसी स्ववश अवस्था आती है कि अभ्यास में बैठिये और मन संकल्परहित होकर शांत हो जाता है। इस दशा में स्मरण एवं संकल्प उठते ही नही। उनके न उठने पर सामने दृश्य नही रहता। दृश्य न रहने पर चेतन द्रष्टा नही रहता। उस समय वह शुद्ध चेतन मात्र रहता है। यही जोवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। यही अंतिम गंतव्य एवं आखीरी मजिल है। इसके आगे न कोई गंतव्य है न रास्ता। यहां पहुंचकर पूर्ण विश्रांति है। यहां मन समाप्त होने से द्वन्द्व समाप्त होता है।

इसे पारख सिद्धान्त में पारख-समाधि कहते हैं। इसी को आप निर्विकल्प समाधि कह सकते हैं। इस समाधि से उठने के बाद मन में परम शाति रहती है। इसमें एक विचित्र मानसिक सुगंधी रहती है। मन हलका-हलका रहता है। व्यवहार में पवित्रता रहती है। उलझन, उद्वेग, राग-द्वेष समाप्त रहते हैं। जो व्यक्ति समाधि से उठकर झीकता रहता है और उद्वेग, काम, क्रोध, लोभ तथा राग-द्वेष में उद्वेलित रहता है, उसकी समाधि झूठी है, नकली है। अभ्यासकाल में संकल्पहीनता तथा व्यवहारकाल में आसक्तिहीनता—यही तो समाधि या स्वरूपस्थिति है। यही जीवन का चरम एवं सर्वोच्च लाभ तथा

स्थिति है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है "यदि तू मेरे समान स्थिति चाहता है, तो तू सबकी वासना छोड़कर मेरे समान स्वरूपस्थ हो जा, फिर सर्वोच्च सुख तेरे पास है[२]। मूलतत्व—अपनी स्वरूपस्थिति ग्रहण करने से ही कल्याण है, तू कहीं बाहर भूले-भटके मत। तू मन समुद्र की इच्छा-तरंगों में कहीं बह मत जाना[३]। मन-समुद्र की इच्छा-तरंगों में बहुत अविवेकी डूब गये हैं। इससे तो वही बचेगा, जिसके हृदय में विवेक है[४]। जब तक दिल पर दिल न होगा, अपने आप में स्ववशता न होगी, तब तक सर्वोच्च सुख की प्राप्ति नही होगी[५]।"

श्री गुरुदयाल साहेब कहते हैं "जब तक दृश्य जगत के प्रति राग का सर्वथा अन्त न होगा, तब तक सर्वोच्च पद एव संत पद की प्राप्ति नही[६]।" श्री रामरहस साहेब कहते हैं "दृश्यों के प्रति 'मैं-मेरा' का संकल्प ही दुःखों का स्रोत है। इसे त्याग कर जो परख एवं द्रष्टा की स्थिति में रहता है, वही ज्ञानी है। बुद्धिमान लोग जगत के विषय-सुखो को नाशवान जानकर अपने से पृथक किसी ब्रह्म के सुख में लवलीन होते हैं; परन्तु जो सबका द्रष्टा एवं पारखी है, वह दोनों को अपने चेतन स्वरूप से पृथक जानकर उन्हें मिथ्या समझता है और अपने आप में सुखी रहता है। अपने ज्ञान-बल तथा संत-गुरुजनों के उपदेश से और सत्संग द्वारा यथार्थता को समझकर पारखी सबका द्रष्टा हो जाता है और सर्वोच्च सुख का अनुभव करता है। वही पारखपद एवं गुरुत्व का साक्षात्कार है जहां किसी प्रकार की अनुमित-कल्पित वस्तु की आशा नही है और स्वयं प्रत्यक्ष पूर्ण एवं निर्मल सुख की प्राप्ति है[७]।"

२. जो तू चाहै मुझको, छांड़ सकल की आस।
　मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास॥

३. मूल गहेते काम है, तै मत भरम भुलाव।
　मन सायर मनसा लहरि, बहै कतहुँ मत जाव॥

४. मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहुत अचेत।
　कहहिं कबीर ते बाँचि हैं, जाके हृदय विवेक॥

५. जब लग दिल पर दिल नहीं, तब लग सब सुख नाहिं।
　　(बीजक, साखी २६८, ६०, १०७, २६६)

६. चितवन करत जगत की, जौं लौं नहिं अति अंत।
　कहहिं कबीर पुकार के, तौ लौं होय न संत॥ (कबीर परिचय, साखी २०८)

७. मैं मेरी संकल्प यह, सोई दुख की खान।
　ताहि त्याग गुरु परख लहै, द्रष्टा सोई सुजान॥

श्री पूरण साहेब कहते हैं "जब हंस (जीव) सदैव, निरंतर समाधि में ही लीन रहता है और वह इससे कभी विचलित नहीं होता, तब उसे ही परख-पद की प्राप्ति कही जाती है[८]।" अभ्यास-काल में संकल्प-हीनता एवं व्यवहार-काल में आसक्तिहीनता—यही निरंतर समाधि में लीनता है। कोई जीवन भर के लिए निर्विकल्प समाधि में नहीं बैठ सकता। समाधि तो उसे ही कहना चाहिए जो निरंतर विद्यमान हो और वह यही है कि अभ्यास में बैठने पर मन निर्बीज, संकल्पहीन तथा निर्विचार होकर शांत हो जाय और जब उससे उठें तब चित्त में राग-द्वेष-रहित निर्मलता सदैव बनी रहे। श्री पूरण साहेब और कहते हैं "पारख भूमिका (ज्ञान तत्व) सब दृश्यों, संकल्पों से पृथक है। यह किसी को बाहर से मिलने वाली वस्तु नही है। यह तो जीव जब सभी दृश्यो को परख-परख कर छोड़ता हुआ स्ववश हो जाता है, तब उसे स्व-पारखपद की प्राप्ति होती है। वस्तुतः जिस ज्ञान भूमिका से सबको परखा (जाना) जाता है, वही ज्ञानस्वरूप चेतन ही पारख है, वही अपना स्वरूप है। हे साधक! उसी मे तू स्थित हो, अपनी मान्यता-कृत कल्पना की परिछाईं में मत पड़े[९]। पारख मे—अपने चेतन-स्वरूप में स्थित हो जाना और बाहर की सारी वस्तुओ को परख-परख कर छोड़ देना, किसी दृश्य-भास को ग्रहण नही करना[१०]।"

जग सुख अनित विचार बुधि, ब्रह्म सुखहिं लौलीन।
द्रष्टा दोऊ सुखन को, मिथ्या जानहु लीन॥
अपनी दृष्टि प्रताप बल, गुरु उपदेश विशेष।
सतसंगति सुख नित्य प्रति, द्रष्टा पारखी देख॥
सोई पारख प्रगट गुरु, जहाँ नहीं अनुमान।
सुख प्रत्यक्ष पूरण अमल, रहै यथारथ जान॥
(पंचग्रन्थी, गुरुबोध २१६, २२३, २३४, २३५)

८. हंस समाधि एक ही, सदा निरंतर होय।
इनते जो विचलै नहीं, लेहु परखपद सोय॥ (त्रिज्या अन्तस्तुति २५)

९. पारख भूमिका भिन्न है, मिलै न काहु को भाय।
परखत परखत हंस को, ता भूमिका को पाय॥
जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु थीर तू, नहिं झाँई भ्रम कूप॥
(त्रिज्या अंतस्तुति २७, २८)

१०. पारख ऊपर थिर होय रहना। सकल परखना ना कछु गहना॥
(निर्णयसार अंतिम)

श्री काशी साहेब कहते हैं "वैराग्य का आसन और विवेक की माला बनाओ, परख के मणिका को लक्ष्य के धागे में पिरो कर नाशवान माया को फेरो (लौटा दो) और हृदय में अविचल शांति को धारण करो। 'ज्ञान स्वरूप चेतन सत्य है'—इसका निरन्तर जप करो। काया को जीत लेने पर व्यक्ति स्वयं कबीर हो जाता है, यही बीजक का कथन है[११]।" श्री निर्मल साहेब कहते हैं "जहां तक तुम्हारी इंद्रियों का दृश्य है सबको छोड़ दो[१२]।"

श्री विशाल साहेब कहते हैं कि "स्मरणों को छोड़े बिना कौन मनुष्य होगा कि शांति पाये। मन की सारी क्रियायें जड़ दृश्य हैं जो एक के बाद एक जीव के सामने आती रहती हैं। इन मानसिक क्रियाओं से अपने आप को सर्वथा पृथक समझकर अपने ज्ञान बल से उनका त्याग करे और समस्त क्रिया-रहित अपनी असंगता का अनुभव करे। वृत्ति जैसे रुकेगी, संकल्प जैसे निरस्त होंगे जीव को वैसे ही शांति मिलेगी। हां, जब दृश्य का चिंतन होगा, तब शांति नहीं टिक सकती। साधक को चाहिए कि वह मन को देखे, उसका द्रष्टा बनकर उससे अपनी सत्ता को अपनी ओर समेट ले, सकल्पो में बल न दे। जब संकल्प एवं स्मरण जीव का बल नही पायेंगे, तब वे निस्तेज होकर शांत हो जायेंगे। अतएव सब कामो को छोड़कर इस अपने आप की स्थिति में रहना चाहिए। इस पारख स्थिति एवं समाधि की प्राप्ति हो जाने पर जीव दीनता से मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है और उसके सारे विकार एवं दुःख समाप्त हो जाते हैं[१३]।" विस्तार के लिए दूसरे अध्याय के श्री विशाल साहेब के संदर्भ मे शांतिशतक का सार देखना चाहिए।

११. वैराग्य को आसन विवेक की माला। शांति हिये दृढ़ धरना जी ॥ १ ॥
परख करु मणका सुरत को धागा। नास्ति माया को फेरना जी ॥ २ ॥
'परख प्रकाशी हंस सत्य है'। जाप सो हरदम जपना जी ॥ ३ ॥
कायाबीर तब कबीर कहावै। बीजक का यही कहना जी ॥ ४ ॥
(रहनि के पद)

१२. सबको परख डार दे तू विजाती। जहाँ लो तुम्हारे नजर में दिखाती ॥
(न्यायनामा ७/४०)

१३. स्मरणों को मेटे बिना, कौन मनुष्य अस आज।
नित नित आपति न सहै, साधु स्ववश तेहि काज ॥१०२॥
क्रिया जहाँ तक जड़ सबै, एक लेय एक ठेल।
भिन्न आप लखि ताहि से, पारख स्वबल अकेल ॥१०५॥
जैसे रुकती वृत्ति लखि, तैसहि शांति आय।
चिंतन होवै और जब, तबही न ठहराय ॥१०६॥

मन के द्वारा ही सारा जड़ दृश्य जीव के सामने उपस्थित होता है और साधना-विवेक-द्वारा मन को हटा देने से दृश्यों का अंत हो जाता है। दृश्यों के अंत हो जाने पर जीव अपनी असंगता तथा परमशांति का अनुभव करता है। यह मन तथा संकल्पों पर विजय, समाधि एवं असंगता की प्राप्ति ही जीवन का सर्वोच्च फल है। यही मनुष्य का चरम गंतव्य है, आखीरी मंजिल है। यहां पहुच कर चिरविश्रांति है।

३२

मोक्ष

मोक्ष के दो भेद हैं—जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। अपने चेतन स्वरूप को जड़प्रकृति से सर्वथा पृथक, कारण-कार्य-रहित, अंश-अशी एवं व्याप्य-व्यापक भावरहित शुद्ध, निराधार एवं असंग समझकर और सारी विषयासक्ति छोड़कर अपने आप स्थित होना—जीवन्मुक्ति है। इसमें काम, क्रोधादि सारी पाशविक प्रवृत्तियों का सर्वथा अंत होकर क्षमा, शील, धैर्य, सत्य, संतोषादि समस्त सद्गुणो का पूर्ण विकास हो जाता है। उनके चित्त में पूर्ण वैराग्य की स्थिति होती है, अतएव वे कही आसक्त नही होते। वे किसी प्राणी, पदार्थ, अवस्था, परिस्थिति, स्थान, मकान, पूजा-प्रतिष्ठा, पद, सम्मान मे आसक्त नही होते। जैसे सांप अपनी केंचुली छोड़कर निकल जाता है, वैसे जीवन्मुक्त पुरुष अपने माने हुए शरीर की आसक्ति से विवेक पूर्वक निकलकर अपने स्वरूप में स्थित होते है।

जीवन्मुक्त पुरुष का मोक्ष के विषय में भ्रमजन्य ज्ञान नहीं रहता, किंतु वे निर्भ्रान्त होते हैं। क्योकि वे अपने आप को सब समय बंधनों से छूटा हुआ, निर्बन्ध, असग एवं मुक्त पाते है। उनके मन, वाणी और कर्मो मे किसी वस्तु या बात के लिए आग्रह नही होता। वे राग-द्वेष से सर्वथा निवृत्त होते हैं। चारो ओर से पूर्ण अनासक्त पुरुष ही जीवन्मुक्त है। जैसा कि प्रथम अध्याय

मन देखत मन लीन नहिं, निज शक्ती लौटारि।
शक्ती जब पावै नहीं, तब सो क्षीण निहारि॥११३॥
सबै काम को छोड़ि के, रहै आप में आप।
पारख पाय अनाथ गत, मिटै जगत दुख पाप॥११६॥

(मुक्तिद्वार, शांतिशतक)

के 'जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति' संदर्भ में कह आये हैं कि गुरुदेव कबीर ने 'सब दुःखों की निवृत्ति एवं सब सुखों की प्राप्ति' को जीवन्मुक्ति कहा है— और यह होती है पूर्ण आशारहित, इच्छारहित एव पूर्णकाम-निष्काम हो जाने पर।

श्री गुरुदयाल साहेब कहते हैं "जैसे पूर्वी हवा चलने पर फल-जलादि फीके हो जाते हैं, वैसे गुरुज्ञान की स्थिति हो जाने पर जीव के कर्मबंधन जीर्ण होकर नष्ट हो जाते हैं। सभी कर्म जीव को बंधन नहीं देते। बीज को खेत में बोना कर्म है और उसे आग में भूनना भी कर्म है; परन्तु एक में फल होता है और दूसरे में विनाश। इसी प्रकार राग पूर्वक कर्म जीव को बांधते हैं तथा अनासक्तिपूर्वक एवं वैराग्यकर्म जीव को मुक्त करते हैं। संसार के सारे ज्ञानों के फलों का विनाश है; परन्तु अविनाशी बोध का फल अनंत स्थिति है, संत इसे ही ग्रहण करते हैं[1]।"

श्री रामरहस साहेब कहते हैं "विवेकवान पुरुषों की सभी अवस्थाये पारखस्थिति में ही जाती हैं। उनके मन में अन्य विचार नहीं समाते[2]। जीव को कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं करना है, क्योंकि वह अपने आप नित्य प्राप्त ही है। उसे केवल शरीर आदि विजाति पदार्थो का अहंकार छोड़कर अपने आप शांत रहना है, और दूसरे मनुष्यों को अपना सजाति एव अज्ञान-वश दुखी जानकर उन्हे अपनाना है[3]।"

श्री पूरण साहेब कहते हैं "हे भाई! तुम सदैव शरीरांत तक विचार करो। अपने ज्ञानस्वरूप पारख में स्थित रहना, अन्य दृश्य का केवल द्रष्टा रहना, उनको अपने में आरोपित नही करना। जिस ज्ञान-तत्व से तू सबको परखता है, वही तेरा निजस्वरूप पारख है। तू उसी अपने आप में स्थित हो, मन की कल्पना रूपी परिछाईं में मत पड़ना, जो भ्रमकूप मात्र है। जब चेतन हंस समाधि में सदैव तद्गत एवं एकबद्ध रहता है अर्थात अभ्यासकाल में एकाग्र, संकल्प-रहित तथा व्यवहार काल में अनासक्त रहता है और इससे कभी विच-लित नही होता, तब इसे कहते है परखपद की प्राप्ति एवं जीवन्मुक्ति दशा[4]।"

१. कबीर परिचय साखी १५२, ३३८, ३०४।
२. परखै रूप अवस्था जाय। आन विचार न ताहि समाय॥
३. प्राप्ति जीव इच्छा नहीं, केवल हंत छुड़ाव।
निज स्वरूप लखि दयायुत, दीन जानि अपनाव॥ (पंच० गु०रु० दोहा ३५२)
४. सदा विचार करहु तुम भाई। ज्यों लों देह बिखरि नहिं जाई॥
पारख ऊपर थिर होय रहना। सकल परखना ना कछु गहना॥
(निर्णयसार अंत)

श्री काशी साहेब कहते हैं "जिनकी परखदृष्टि निरन्तर जाग्रत है, जो सब समय अपने आप को, सारे दृश्यो से पृथक एवं असंग रूप में देखते हैं, वे जीवन्मुक्ति-सुख में विहरते हैं[५] ।"

श्री विशाल साहेब कहते हैं "जीवन्मुक्त पुरुष की, देहाभिमान छोड़कर अपने ज्ञान स्वरूप में ही निरन्तर स्थिति रहती है। उनको यह निश्चय रहता है कि देह चाहे कुछ दिन रहे और चाहे आज ही मिट जाय, मेरा कोई हानि-लाभ नही। वे सब स्थितियों में एक समान प्रसन्न रहते हैं। उनको न किसी से मिलने की इच्छा रहती है और न छूटने की चिंता। वे धन, प्राणी तथा निर्वाहिक वस्तुओं में अपने मन को आबद्ध नही करते। उनको अपने जीवन-निर्वाह में निःसंश बोध रहता है और मोक्ष स्थिति का निर्भ्रान्त बोध रहता ही है। वे सदैव स्वरूप-विचार में ही स्थित रहते हैं। वे शरीर-निर्वाह की वस्तुयें चाहना-रहित होकर चाहते हैं, वे उनके लिए हर्ष-शोक में पचते नही। वे सदैव अपनी असंगता की दशा में रहते हैं[६] ।"

जीवन्मुक्त पुरुष लोकमंगल के लिए सत्योपदेश देते हैं[७] । अधकचरे लोग

जाते सकलो परखिया, सो पारख निज रूप।
तहाँ होय रहु थीर तू, नहिं झाइँ भ्रम कूप॥
हंस समाधी एक ही, सदा निरन्तर होय।
इनते जो विचलै नहीं, लेहु परखपद सोय॥

(त्रिज्या, अंतस्तुति, साखी २८, २५)

५. काशी कहै परखदृष्टि ह्वै जाग्रत, जीवन्मुक्ति सुख फिर जोहना क्या रे।

(रहनि के शब्द ३-६)

६. पारख अटल समाधि है, देह भिन्न सब काल।
देह रहे या न रहे, यक सम जानि निहाल॥

(मुक्तिद्वार, निवृत्ति साहस शतक १३५)

ना मिलने की चाहना, ना छुटने को सोच।
धन प्राणी निर्वाह में, कहूँ न मन को रोच॥
प्रारब्धि भोग निर्वाह में, संशय रहित प्रबोध।
पृथक मुक्त संशय रहित, समझ मुक्तपद शोध॥
जो आवश्यक निर्वाह तन, तेहि चाहत बिन चाह।
पचत न तेहि के हेतु को, निज के लक्ष निवाह॥

(मुक्तिद्वार, शांति शतक ११६-११८)

७. परख प्रभावन जीवन केरा। यह व्यवहार यथार्थ निबेरा॥

(पंचग्रंथी, गुरुबोध, उत्तर ७)

कहा करते हैं कि जीवन्मुक्त पुरुष उपदेश नहीं करते, ग्रंथ नहीं लिखते, शिष्य नहीं बनाते, समाज लेकर नहीं चलते, इत्यादि। वे कहते हैं कि यह सब करने से व्यक्ति में हर्ष-शोक उठते हैं। साधारण व्यक्ति में तो अवश्य हर्ष-शोक उठते हैं; परन्तु जीवन्मुक्त पुरुषों में नहीं। किंतु वे अपनी छटंकी से उन्हें भी तौलते हैं। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने हृदय को देखे कि उसमें कितने बंधन है। दूसरे के बंधन एवं मोक्ष का मूल्यांकन करना अपने आप को धोखा मे ही डालना है। वस्तुतः जीवन्मुक्त पुरुष तरण-तारण होते है। वे अपना उद्धार तो कर ही लेते हैं, अपने साथ असंख्यों का उद्धार करते है। सभी कामनाओ से निवृत्त होना ही जीवन्मुक्ति दशा है। वे लोकमंगल की कामना रखते हैं; परंतु इस कामना में उनकी कोई आसक्ति नही है, अपितु एक सहज जन-कल्याण की भावना है। हां, यह ठीक है कि यदि उनके द्वारा लोकमंगल की कोई चेष्टा न हो तो भी उनकी दिव्य रहनी से बहुत बड़ा लोकमंगल होता है। जिसने अपने पर विजय पा ली है, वह यदि कुछ न करता हो तो भी समाज का बड़ा हित करता है।

जो निरन्तर अपने स्वरूप में स्थित हैं, जिनकी सारी आसक्तियां एवं वासनाये सर्वथा निवृत्त हो गयी हैं, उन जीवन्मुक्त पुरुष का जब प्रारब्धात होता है, तब अनादिकालीन सूक्ष्म शरीर ध्वंस हो जाता है और जीव अपने आप असंग, मुक्त, निराधार विदेह हो जाता है। उस मुक्त जीव का न किसी जड़ पदार्थ से सबंध रहता है और न अन्य बद्ध या मुक्त चेतन से। क्योंकि वह सबसे पृथक, एकदेशी, असंग एवं निराधार है। श्री काशी साहेब कहते है "देह की आकृति, सुख या आनन्द, शरीर शक्ति तथा क्रिया—यह सब देहोपाधि में ही रहते है। जब जीव विदेहमुक्त हो जाता है, तब उक्त चारों छूट जाते हैं। यदि पूछो कि वह कहां रहता है, तो उत्तर है अपने चेतन-देश मे, अर्थात अपने आप चेतन मात्र। पारख (ज्ञान) गुण है और चेतन गुणी (द्रव्य) है। दोनो एक स्वरूप हैं, भिन्न नहीं। यदि पूछो कि वह विदेहमुक्त जीव कुछ जानता है कि नहीं, तो उत्तर है कि उसमें स्थूल-सूक्ष्म शरीर, मन-अंतःकरण आदि न रहने से उसका साक्षीपन समाप्त हो जाता है। जैसे सूर्य के पास अंधकार नही रहता, वैसे मुक्त जीव के पास दृश्य-भास नहीं रहता[८]।"

८. आकार सुख शक्ति क्रिया, देहोपाधि युत जान।
विदेहमुक्त हंस ह्वै जब, चारों छूट निदान॥
देह तजि हंस मुक्त रहा, चेतन देश ठिकान।
पारख गुण चेतन गुणी, एक स्वरूप न आन॥

यह तो हम सहज समझ सकते हैं कि देह रहते-रहते भी गाढ़ी सुषुप्ति में बाह्य दृश्य का कुछ पता नही रहता, फिर विदेह अवस्था में जहां स्थूल-सूक्ष्म शरीर, अंतःकरण एवं मन—सब सर्वथा समाप्त हैं, वहां शुद्ध चेतन का दृश्यो से कैसे संबंध हो सकता है। यह मानना कि 'विदेहमोक्ष में जीव के ऊपर से जड़प्रकृति का बंधन सर्वथा हट जाने से, उसके अनन्त ज्ञान एवं सामर्थ्य उद्-घाटित हो जाते हैं, वह सर्वज्ञ—संसार की समस्त वस्तुओं का ज्ञाता हो जाता है और वह अपने सत्य संकल्प आदि से विचरण करता है।' एक अतिशयोक्ति है और वास्तविकता से बहुत दूर चले जाना है।

इसका मतलब यह नही है कि जीव जड़ हो जाता है। जीव अपनी मौलिकता में ज्ञानस्वरूप ही रहता है; परन्तु मन-इन्द्रिय साधन न होने से वह कुछ नही जानता[९]।

जो मोक्ष-ज्ञान के अधकचरे लोग हैं, वे मोक्ष में संकल्प-विकल्प एवं आनन्द की अनुभूति चाहते हैं। वे इस पर ध्यान नही दे पाते कि यह सब सदेह एवं सगुण अवस्था में सभव हैं। जो विदेहमोक्ष, देहातीत एवं गुणातीत दशा है, वहां वैषयिक गतिविधि की गुंजाइश कहां है ? वस्तुतः मनुष्य के मन की विषयासक्ति सर्वत्र आनन्द खोजती है। मनुष्य मोक्ष मे भी रसगुल्ला खाना चाहता है। वह दुःखों की अत्यंत निवृत्ति के तत्व को नही समझ पाता। जब महर्षि गौतम ने कहा "स्वप्नरहित निद्रा के समान सर्वथा दुःखरहित अवस्था मोक्ष है[१०]।" तब सब प्रकार के वेदातियो पर, जो आनन्द के बहुत भूखे हैं, गाज फाट पड़ा और अद्वैत वेदान्त के महान पक्षधर श्री हर्ष, महर्षि गौतम को गालो गुप्ता देना शुरू कर दिये। उन्होंने कहा "जिसने मुक्त जीवों को अचेत पत्थर के समान बताते हुए शास्त्र रचा है वह गौतम अज्ञान से पूर्ण, पक्का बैल ही था[११]।" इसी प्रकार वैष्णवों ने कहा "हम रमणीय वृन्दावन में शृगाल (सियार) बन कर विहार करना पसंद करेंगे; परन्तु वैशेषिको का आनन्दरहित

विदेहमुक्त हंस जब होई। साक्षी भास जड़ छूटे सोई।।
रवि के पास कभी तम नाहीं। स्वयं प्रकाशी सदा रहाहीं।।
(जड़चेतन भेद प्रकाश, दोहा ७)

९. मुक्तिद्वार, बन्ध मोक्ष शतक ८८-९०।

१०. सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावदपवर्गः। न्याय दर्शन, ४/१/६३।

११. मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेत्यैव यथा वित्थ तथैव सः।। नैषध चरित्र १७/७५।।

मोक्ष नहीं चाहेंगे[१२] ।" परन्तु इस प्रकार गाली देने से तथ्य तो नहीं बदल जाता । वस्तुतः गौतम ने ईमानदारी की बात कही है । महर्षि कणाद भी इसी यथार्थवादी दृष्टिकोण से विदेहमोक्ष की व्याख्या करते है । वे कहते हैं "ज्ञानी का जब शरीर छूट गया और अदृष्ट (कर्म संस्कारो) का अभाव होने से फिर देह के संयोग (जन्म) होने का भी अभाव हो गया, तो ऐसी स्थिति में पुनः देह नही बनती, यही जीव का मोक्ष है[१३] ।" कणाद भी गौतम की तरह विदेहमोक्ष मे किसी आनन्द की कल्पना नहीं करते । मीमांसक जैमिनि और शबर ने मोक्ष पर विचार नहीं किया, उनके पीछे प्रभाकर, कुमारिल, पार्थ सारथि आदि ने मोक्ष पर विचार किया और कहा कि मोक्ष दुःखो की अत्यन्त निवृत्ति है किसी आनन्द की प्राप्ति नही ।

कपिल ने कहा "मोक्ष में आनन्द मिलता है—ऐसा कथन जो शास्त्रों में मिलता है वह विषयी जीवो को विषय से हटाकर मोक्ष-साधन में लगाने के लिए एक प्रशंसासूचक वाक्य है[१४] ।" वस्तुतः "पुरुष शुद्ध चेतन है । उसमे किसी अन्य धर्म के होने की गुंजाइश न होने से, मोक्ष मे आनन्द की अभिव्यक्ति होना असंभव है । अर्थात गुणातीत शुद्ध चेतन में आनन्द आदि का आरोपण गलत है[१५] ।" प्रसिद्ध सांख्यवादी श्री ईश्वरकृष्ण इस क्रम मे अपना यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हुए कहते हैं "जो ज्ञानी पुरुष कृतार्थ है, शरीर छूट जाने पर जड़प्रकृति से सर्वथा निवृत्त होकर, एकांतिक एवं आत्यंतिक मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं[१६] ।" यही तथ्य महर्षि पंतजलि उपस्थित करते हैं "पुरुष की विरक्ति से जब गुण अपने कारण में लीन हो जाते हैं, तब यही कैवल्य है, यही चेतन का अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाना है[१७] ।" श्रुति भी कहती है "आत्मा सत्य (मोक्ष) को पाकर यह नही जानते कि हम सत्य को पा गये[१८] ।" और

१२. वरं वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं वृणोम्यहम् ।
वैशेषिकोक्त मोक्षात्तु सुखलेशविवर्जितात् ।। (सर्व सिद्धान्त संग्रह, पृष्ठ २८)

१३. तद्भावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्चमोक्षः ।। वैशेषिक दर्शन ५/२/१८ ।।

१४. विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।। सांख्य सूत्र ५/६८ ।।

१५. नानन्दाभिव्यक्तिमुर्क्तिनिर्धर्मत्वात् ।। वही ५/७४ ।।

१६. प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति ।। ६८ ।।

१७. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति ।। पंतजलि योग ४/३४ ।।

१८. सति संपद्य न विदुः सति संपद्यामह इति ।। छांदोग्य ६/९/२ ।

भी "अशरीर होने पर इसे प्रिय और अप्रिय नहीं छू सकते[१९]।" अर्थात मन-इन्द्रियों से परे मोक्ष में संकल्प कहां और फिर तब वहां आनन्द तथा प्रिय एवं अप्रिय आदि की कल्पना कहां ?

श्रुति जोरदार शब्दों में कहती है "जब यह जीव सर्वात्मभूत (मुक्त) हो गया, उस समय किससे किसको सूघे, देखे, सुने, बात करे, मनन करे, जाने ? सबके जानने वाले को किससे जाने ? मैत्रेयि ! किससे जाने[२०] ?" इससे भी अधिक बलपूर्वक छांदोग्य के ऋषि कहते हैं "यह अपने स्वरूप को पा लेता है, अतः इसे लोग कहते हैं कि सोता है। स्व=अपने आप को, अपीति=पाना ही स्वपिति-सुषुप्ति है[२१]।" ब्रह्मसूत्र (वेदांत) भी स्वीकार करता है "सुषुप्ति और मोक्ष में से एक की अपेक्षा से यह कहा गया है कि वहां किसी प्रकार का ज्ञान नही रहता। अर्थात मोक्ष की तुलना हम स्वप्नरहित गाढ़ी नीद से कर सकते है[२२]।" जड़प्रकृति से भिन्न मुक्त चेतन के पास भास-प्रतीत आदि का होना कहां संभव है ? यदि यह वास्तविकता है तो इसको बदलने वाले हम कौन होते हैं। धर्मकीर्ति की भाषा मे "यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्[२३] ?"

विदेहमोक्ष के विषय में एक महत्वपूर्ण विषय और विचारणीय है। कुछ लोग कहते है "बूद जैसे समुद्र में मिल जाता है, वैसे मुक्त जीव ब्रह्म में मिल जाता है।" इस बात का होहल्ला बहुत है; परन्तु यह जीव के वास्तविक स्वरूप को न समझने का परिणाम है। जब जीव अविनाशी और अखंड है, तब वह न किसी से बन सकता है और न किसी में मिल सकता है। बूद और समुद्र दोनो अनेक परमाणुओं के समूह तथा विकारी हैं। इसलिए उनका संयोग-विभाग संभव है। अखंड, अनादि एवं अविनाशी जीव का न किसी का अंश होना संभव है और न किसी में मिलकर उसके अस्तित्व का नष्ट होना संभव है।

अतएव मुक्त जीव प्रकृति से पृथक होकर अपने स्वरूप में ही प्रतिष्ठित हो जाता है, अर्थात जड़ तत्वों से अलग होकर अपने आप रह जाता है। यही

१९. अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः। (छांदोग्य ८/१२/१)

२०. सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं शृणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन कं विजानीयात् येनेदंसर्वं विजानाति तं केन विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति। (बृहदारण्यक उप० २/४/१४)

२१. स्वपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते ॥ छांदोग्य ६/८/१ ॥

२२. स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ॥ ब्रह्मसूत्र ४/४/१६ ॥

२३. प्रमाण वार्तिक २/२०९।

पारख सिद्धान्त का मत है तथा यही अपने-अपने ढंग से न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग आदि कहते हैं।

विदेहमोक्ष एक गुणातीतस्थिति है। इसलिए इस पर विशेष व्याख्या करना संभव नहीं है। साधक का पुरुषार्थ है कि वह अपने चेतन स्वरूप की जड़ से सर्वथा पृथकता समझकर और विषयों से निवृत्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो। प्रत्यक्ष जीवन्मुक्ति दशा में विराजना ही साधक का परम पुरुषार्थ हैं, जिसका व्यावहारिक जगत में भी बहुत बड़ा मूल्य है। शरीर छूटने के बाद विदेहमोक्ष अपने आप होगा, उसके लिए अलग से पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं। कबीरदेव कहते हैं—

जियत न तरेउ मुये का तरिहो, जियतहि जो न तरै[२४]।

तीसरा अध्याय समाप्त

२४. बीजक, शब्द १४।

४

पारख दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन

सद्गुरवे नमः

कबीर-दर्शन

चौथा अध्याय

पारख दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन

१

प्रस्तावना

भारत आध्यात्मिक विचारों का केन्द्र रहा है। यहां अहम और इदम, मैं और यह, आत्मा और जगत पर विचार होते रहे हैं। इस परिवर्तित जीवन के अंतराल में अपरिवर्तित, एकरस आत्मसत्ता की खोज होती रही है। मनुष्य बाहर से चाहे जो कुछ बन जाय और चाहे जो कुछ हो जाय, परन्तु उससे उसे भीतर में शांति तो नही मिलती; क्योंकि वह रात-दिन बाहर का ही श्रृंगार करता है। जब आदमी बाहर से मुड़कर भीतर में प्रवेश करता है, पदार्थ-ज्ञान से ऊपर उठकर आत्मज्ञान-स्वरूपज्ञान एवं पदार्थनिष्ठा से हटकर आत्मनिष्ठा को प्राप्त होता है, तब उसे अविचल शांति मिलती है।

काल के जिस सुदूर पूर्वछोर से हमें कुछ सामग्री मिलती है, उस ऋग्वैदिक युग से लेकर आज तक जो दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धारा बहती आ रही है, वह निश्चित ही बड़ी आकर्षक, ज्ञानवर्द्धक और आदरणीय है। दीर्घकाल से विचारकों के बूंद-बूंद विचार ही एकत्र होकर आज आध्यात्मिक विचारो का एक महासागर दिखाई देता है। जीवन और विश्व के वैचारिक एवं व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने के लिए भारत में अनेक दर्शन उदित हुए। वे सारे दर्शन एक दूसरे से सर्वथा अलग नही किये जा सकते। ऋग्वैदिक

काल से आज तक भारत में जितने मुख्य-मुख्य दर्शन उदित हुए, उनसे सद्गुरु कबीर के पारख-दर्शन से किस स्थल पर कितनी दूरी तथा कितनी निकटता है—इस पर विचार करना, इस अध्याय का मंतव्य है। वैसे मैं हर बात की तुलना करने के चक्कर में न पड़ूंगा; क्योंकि पहले के तीन अध्यायों में पारख-दर्शन पर विस्तार से विचार कर लिया गया है। अतएव पाठक स्वयं तुलना कर लेंगे। परन्तु कुछ विषयों पर संकेत तो करते ही चलना होगा।

२

ऋग्वेद

जड़-चेतनात्मक यह सत्तात्मक जगत अपने नित्य गुण-धर्मों से अनादि और अनन्त है। अतएव 'आरम्भ-काल' नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि काल भी अनादि तथा अनन्त है। इस अनादि-अनन्त जगत मे जैसे प्राकृतिक परिवर्तन निरन्तर बना रहता है, वैसे चेतना एवं मानसिक जगत में संस्कृति, सभ्यता, भाषा, भाव, ज्ञान, विज्ञान आदि का आविर्भाव-तिरोभाव, उन्नति-अवनति होती रहती है। काल की वर्तमान परिधि में, जहां से हमें ज्ञान-विज्ञान एवं मानसिक उन्नति का आरम्भ मिलता है, भारत की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है।

ऋग्वेद का रचना-काल कितने लोग आज से पूर्व पचहत्तर हजार वर्ष मानते हैं, कितने लोग पचास हजार वर्ष, कितने अठारह हजार वर्ष, कितने दश हजार वर्ष मानते हैं। विशेष विद्वान जो ऐतिहासिक एवं तार्किक ढंग से वेदो का अध्ययन करते हैं वे ऋग्वेद का रचनाकाल पन्द्रह सौ ईसा पूर्व मानते हैं। इसका अर्थ हुआ आज से पैंतीस सौ वर्ष पूर्व ऋग्वेद की ऋचायें बनीं[1]। विवेक

१. "कई भारतीय विद्वानों ने वैदिक सूक्तों का समय ३००० ई० पूर्व बताया है, दूसरों ने ६००० ई० पूर्व निर्धारित किया है। स्वर्गीय तिलक इनका समय लगभग ४५०० ई० पूर्व, ब्राह्मण ग्रंथों का समय २५०० ई० पूर्व और प्राचीन उपनिषदों का १६०० ई० पूर्व निर्धारित करते हैं। जैकोबी सूक्तों के निर्माणकाल को ४५०० ई० पूर्व रखता है। हम इसके लिए १५०० ई० पूर्व का समय रखते हैं और हमें विश्वास है कि इस आवश्यकता से अधिक पूर्व का समय कह कर कोई इसका विरोध नहीं करेगा।"

(सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन १/६०)

का परवाह किये बिना जो केवल श्रद्धा को ही प्रश्रय देते हैं उनके लिए कुछ कहना ही नहीं है। उनके ख्याल से तो वेद अनादि-अनन्त हैं, समय निर्धारण हो ही नहीं सकता।

संसार के शाश्वत नियम अनादि एवं अनन्त हैं और जो मनुष्यों के बनाये नियम होते हैं वे बनते और मिटते हैं। शाश्वत नियम को मनुष्य बनाता नही; किन्तु उसका ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार अपना आचरण करता है। ऋग्वेद आदि संसार की कोई भी पुस्तक हो, मनुष्य उन्हें बनाता है और इस प्रकार देश और काल के आयाम में वे बनते तथा मिटते हैं; किन्तु जो शाश्वत नियम हैं, जैसे पानी का ठंडा रहना, आग का गर्म रहना, अधिक खाने से स्वास्थ्य का बिगड जाना, इन्द्रियलंपट होने से अशांत हो जाना, ये बातें वेद, कुरान, बाइबिल या किसी साधारण पुस्तक में लिखी हों अनादि-अनन्त हैं। वेद अनादि का मतलब यह नहीं हो सकता कि वेद नामधारी पुस्तकें ऋग्वेद आदि अनादि-अनन्त हैं; किन्तु शाश्वत नियम अनादि-अनन्त हैं, अतएव उनका ज्ञान भी अनादि-अनन्त हैं। वेद का तात्विक अर्थ ज्ञान ही है। ऋग्वैदिककाल से आज तक जितनी मानसिक उन्नतियां हुई हैं, ऐसी उन्नतियां इस अनादि-अनन्त जगत में असंख्यों बार होकर मिट चुकी है। असंख्यों पुस्तकें भी बनकर मिट चुकी हैं। यहां किसी चीज के अहंकार की कोई गुंजाइश नही है।

अनेक भिन्न विचारक और संशोधक एक दूसरे के सम्बन्ध बिना एक ही काल या भिन्न काल मे आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों के शाश्वत नियमों का समान ज्ञान प्राप्त करते देखे जाते हैं। अतएव शीघ्रता, अहंकार एवं ईर्ष्या में पड़कर एक विचारक, साहित्य एवं पराम्परा का प्रभाव दूसरे विचारक, साहित्य एवं परम्परा पर सिद्ध करने की भूल नही करना चाहिए। प्रायः वेदांती पंडित बड़े उतावलेपन से कहने लगते है कि बौद्ध और जैनों पर उपनिषदों का प्रभाव है; परन्तु जब उनसे कहा जाता है कि गौड़पाद एवं शंकराचार्य के मायावाद एवं निर्गुण अद्वैत ब्रह्मवाद पर शून्यवादी बौद्ध नागार्जुन का प्रभाव है, तो वे इस बात से बहुत दूर भागना चाहते है। एक दूसरे के ऊपर प्रभाव भी होता है और स्वतः अनुभव भी। दूसरे का प्रभाव अपने ऊपर हो तो उसे स्वीकार करना चाहिए; किन्तु अपनी परम्परा का प्रभाव दूसरे के ऊपर व्यर्थ नही लादना चाहिए। किसी भी साहित्य एवं परम्परा में जो शाश्वत नियमों का ज्ञान है, आदरणीय है, चाहे वह उनके पास दूसरे साहित्य एवं परम्परा से आया हो और चाहे उनका अनुभव हो।

आज की हमारी प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है, जो हमारे आदरणीय मनीषी ऋषियो की रचना है। इसमें इतिहास, युद्ध, कला, मनोविज्ञान, भौतिक

विज्ञान, समसामयिक रीति-रिवाज, तात्कालिक जन-मानस में फैले हुए सदाचार और दुराचार, आध्यात्मिक विचारों एवं दर्शन के अंकुर आदि का चित्रण है। वेद हमारे पूर्वजों की हमारे लिए रखी हुई थाती है। हमें उनका आदर करना है, उनकी रक्षा करना है। उनमें आये हुए शाश्वत नियमों के ज्ञान को ग्रहण करना है; किन्तु आज के लिए अनुपयोगी समसामयिक बातें छोड़ देना है। अतएव श्रद्धा, विवेक एवं निष्पक्षता से वेदो एवं संसार के समस्त पुस्तकों को देखना है।

विद्वानों के निर्णयानुसार हमारे पितामह आर्य[२] लोग अपने मूल जन्म-स्थान को छोड़कर आज से चार-पांच हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष मे आये। उनका पहला पड़ाव काबुल तथा अफगानिस्तान में पड़ा, दूसरा सप्तसिंधु-पंजाब में पड़ा तथा तीसरा स्थायी पड़ाव उत्तर प्रदेश के गंगा-यमुना के मैदानी भाग में पड़ा। इसीलिए हिमालय से विन्ध्याचल तक आर्यावर्त कहा गया।

उस समय पूरा भारत तथा विशेषतर उत्तर प्रदेश जंगलों से ढंका था। आर्यो ने यहां के आदिवासियों को युद्ध में परास्त कर अपना प्रभुत्व जमाया। वह समय विशेष युद्ध, खान-पान, भोग-विलास और मस्तमौजी का था। इसलिए ऋग्वेद में बारम्बार ये बातें दुहरायी गयी हैं। आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों से भयभीत थे। उन्हें देवता मानते थे और उनको खुश करने के लिए हवन-यज्ञ करते थे। वे बड़े सरल और उदार हृदय के थे। वे कहते है "मैं नहीं जानता कि मै कौन हूं, मेरा मूढ़ चित्त चंचल बना इधर-उधर भटकता है[३]।" उन्होने ईश्वरीय ज्ञान का दावा नहीं किया; न वे वेद के ऋचाओं को ईश्वर के भेजे हुए होने का फतवा दिये। उनकी अधिक दौड़ सरल मनुष्य के रूप मे लौकिक और स्वर्गिक सुख की प्राप्ति तक थी। वे राष्ट्रीयता, एकता, प्रेम एवं सदाचार के स्वर भी बुलन्द करते थे। फिर ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, नासदीय आदि सूक्तों में ईश्वर एवं सृष्टि की धुंधली कल्पनायें पेश की गयी। इन्हीं स्थलो से लेकर सहस्रो संस्कृत साहित्यो में ईश्वर और सृष्टि के विषय मे अपार कल्पनाओ का विस्तार हुआ। ऋग्वेद में जीवन्मुक्त तथा बद्ध जीवो की भी सुन्दर रूपक से व्याख्या की गयी कि "दो पक्षी है जो परस्पर मित्र है और एक ही समान वृक्ष पर रहते हैं एक

२. कुछ विद्वानों के अनुसार आर्य लोग बाहर से न आकर हिमालय से उतर कर भारत की तराई में फैल गये।

३. न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि।
(ऋग्वेद १/१६४/३७)

फल खाता है तथा दूसरा केवल द्रष्टा है[४] ।" अर्थात एक प्रकार के शरीरधारी रागी और विरागी जीव सजाति होने से मित्र ही हैं; परन्तु एक विषयों का उपभोग कर के बंधा है तथा दूसरा उसका द्रष्टा रहकर उससे विरक्त एवं निर्बंध है ।

ऋग्वेद का 'ऋत' विश्व की गतिविधि का शाश्वत नियम है । सर राधाकृष्णन ऋग्वेद की ऋचाओं पर विचार करते हुए लिखते हैं "इस विश्व में प्रत्येक पदार्थ में जो व्यवस्था पायी जाती है वह ऋत के ही कारण है । यह वही नियम है जिसे प्लेटो व्यापक नियमो के नाम से पुकारता है[५] ।" वे पुनः कहते हैं "ऋत का मौलिक तात्पर्य था, संसार सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण, प्रातः-काल, सायकाल एवं दिन और रात की गति का नियमित मार्ग[६] ।"

तुलना

पारख सिद्धान्त मानता है जड़ और चेतन अनादि स्वतःसिद्ध तत्व है । उनके गुण-धर्म उनके नित्य स्वभावसिद्ध हैं । जड़ पदार्थो में जो गतिविधि है उनके शाश्वत नियमों से अनादि और अनन्त है । अतएव सत्तात्मक जगत अपने गुण-धर्मो के कारण नित्य स्वतः प्रवहमान है । इस प्रकार ऋग्वेद के ऋत का पारख सिद्धान्त के जड़-चेतन के अनादि गुण-धर्मो से सुन्दर मेल खाता है । पारख सिद्धान्त की भाषा मे जड़-चेतनात्मक जगत उनके नित्य गुण-धर्मो एव शाश्वत नियमो से चल रहा है और ऋग्वेद की भाषा मे यह सब कुछ ऋत से चल रहा है । वस्तुतः ऋत ही जड़-चेतन के गुण-धर्म एव उनका शाश्वत नियम है । ऋग्वेद की दृष्टि से कही-कही भौतिक जगत की व्यवस्था 'ऋत' से तथा मानसिक एवं आध्यात्मिक जगत की व्यवस्था 'सत' से होती है । वस्तुतः ऋत और सत का अर्थ एक ही होता है जो पारख सिद्धान्त की भाषा मे जड़-चेतन के नित्य गुण-धर्म एवं शाश्वत नियम हैं ।

पारख सिद्धान्त में मोक्ष का मुख्य साधन विषयो का द्रष्टा होकर उनसे पूर्ण विरक्त हो जाना ही है 'ते द्रष्टा साधू जन मुक्ता[७]।" जो उक्त ऋग्वेद (१/१६४/२०) 'द्वा सुपर्णा' के अभिचाकशीति से मेल खाता है ।

४. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
　तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
　　　　(ऋग्वेद १/१६४/२०)

५. भारतीय दर्शन, खण्ड १, पृष्ठ ७० ।

६. वही पृष्ठ ७१ ।

७. पंचग्रंथी ।

३

उपनिषद्

मंत्रों का संग्रह जो संहिता भाग है उसे वेद कहते हैं। वेद ऋक्, यजु, साम और अथर्व हैं। इनमें मंत्र हैं जिनके आधार पर ऋषिगण सीधे-सादे ढंग से हवन-यज्ञ करते थे। पीछे हवन-यज्ञ के विधि-विधान बढ़े और उनका वर्णन ब्राह्मण नामक ग्रंथों में किया गया, जिनके नाम शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि हैं। इनके पीछे आरण्यक ग्रंथ बने जिनमें यज्ञों का आध्यात्मिक अर्थ किया गया। आरण्यक का अर्थ है आरण्य (वन) में अध्ययन करने योग्य। इसी समय से लोग यज्ञो से ऊबने लगे थे और यज्ञों का आध्यात्मिक अर्थ करते हुए क्रियाबहुल स्थूल यज्ञो से हटने का प्रयास कर रहे थे और वन प्रांत में एकान्त सेवन के रुचि वाले हो रहे थे। आरण्यक के नाम ऐतरेय आरण्यक, सांख्यायन आरण्यक, तैत्तिरीय आरण्यक आदि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण तथा ऐतरेय आरण्यक—दोनों के रचयिता महीदास ऐतरेय हैं।

लोग उपनिषदों की संख्या तो १०८ तथा इससे भी अधिक गिनाते हैं और है भी; परन्तु मुख्य तेरह (१३) हैं—ईश, छांदोग्य, वृहदारण्यक, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, केन, कठ, मुंडक, मांडूक्य, कौषीतकि, मैत्री और श्वेताश्वतर।

ईश, शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है। शेष उपनिषदें किसी-न-किसी ब्राह्मण एवं आरण्यक के अन्तर्गत हैं। समय और महत्व की दृष्टि से ईश, छान्दोग्य तथा वृहदारण्यक प्रथम हैं। उनके बाद ऐतरेय तथा तैत्तिरीय हैं। इनके बाद प्रश्न, केन, कठ, मुंडक, मांडूक्य बने। तत्पश्चात कौषीतकि, मैत्री तथा श्वेताश्वतर[1]।

स्वतन्त्र विचारों का स्वर

छांदोग्य में पहले कर्मकाण्ड का वर्णन है तथा वृहदारण्यक में पहले और पीछे कर्मकांड की थोड़ी झलकियां हैं और इनके शेषभाग तथा प्रायः सभी उपनिषदें ज्ञान-वैराग्य के प्रेरक हैं। वैदिक कर्मकांड के प्रति उपनिषद् के ऋषियों की आस्था घट गयी थी और बहुत कुछ स्वतन्त्र विचारक हो चले थे।

१. राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ३६१, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १६६१।

वे वेदों की वरीयता, कर्मकांड तथा वर्णव्यवस्था की जटिलता के विचारों से हट रहे थे।

नारद ने सनत्कुमार से कहा "भगवन्! मैंने चारों वेद, इतिहास, पुराण, व्याकरण तथा अनेक विद्यायें पढ़ ली हैं, परन्तु मैं शोक करता हूं। मैं केवल मंत्रवेता हूं, तत्ववेत्ता नही[२]।" सनत्कुमार ने कहा "तुम ने अब तक जो कुछ अध्ययन किया है नाम मात्र है। अर्थात वेदों के शब्दो को ही दोहराया है। यही रुको मत। आत्मा को जानो[३]।" वृहदारण्यक के ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं "वेद आदि सब आत्मा के स्वर हैं, आत्मा से ही निकले हैं[४]।"

मुडक उपनिषद् में शौनक ने ऋषि अंगिरा से पूछा है कि किसके जान लेने पर सब कुछ जाना हुआ हो जाता है? अंगिरा ने कहा "जानने योग्य दो विद्याये है—अपरा और परा। सांसारिक विद्या अपरा है। उसमें है चारो वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद और छह वेदांग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद तथा ज्योतिष। और जो परा विद्या है उससे अविनाशी तत्व का बोध होता है[५]।" अर्थात वेद सासारिक विद्यायें है। अविनाशी तत्व का बोध इनसे पृथक है। मुडक के ऋषि कहते हैं यह यज्ञ रूपी नौका जिसमे अठारह[६] लोग बैठे हैं, बड़ा कमजोर तथा नीच कर्म वाला है। जो मूर्ख यज्ञ-कर्म को ही उत्तम मान कर फूले घूमते है वे बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ते हैं। अविद्या में पड़े हुए मूर्ख लोग अपने को धीर तथा पंडित मानते हुए वैसे चलते हैं जैसे अंधे को अंधा चलावे[७]।" इस प्रकार उपनिषदों में वेदो से निष्पक्ष होने का स्वर तेज होने लगा है।

२. ३. छांदोग्य, सप्तम प्रपाठक, पहला खंड।

४. वृहदारण्यक २/४/१०। सर राधाकृष्णन लिखते है "उपनिषदों का दृष्टिकोण वेदों की पवित्रता के प्रति अनुकूल नहीं है। भारतीय दर्शन १/१३६।

५. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (मुंडक उ० १/१/५)

६. चार यज्ञ करने वाले—ब्रह्मा, उद्‌गाता, अध्वर्यु तथा होता और इनके तीन-तीन सहायक तथा यजमान और उसकी पत्नी, ये १८ हुए।

७. प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढ़ा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पंडितं मन्यमानाः।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।
(मुंडक १/२/७-८)

कर्मकांड की खिल्ली उड़ाते हुए छांदोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं "एक बार बक दाल्भ्य जिसका दूसरा नाम ग्लाव था, किसी एकांत स्थल मे वेदपाठ के लिए बैठा था। वहां एक सफेद कुत्ता आया। उसके बाद कई सफेद कुत्ते आकर उस कुत्ते से कहने लगे सामगान गाओ, जिससे हमें अन्न खाने को मिले। हम भूखे हैं। बड़े कुत्ते ने कहा यह काम कल किया जाय। दूसरे दिन सब कुत्ते मिलकर इकट्ठे हो गये। जैसे यज्ञ करने वाले सामगायक एक के पीछे दूसरे उसके कपड़े पकड़ कर चलते और सामगान करते है वैसे वे कुत्ते एक दूसरे से जुड़ कर बैठे गा रहे थे 'हिं! ओम हम खावें, ओम हम पीवें, ओम हमें देवता गण अन्न लाकर दें, हे अन्नपते ओम, हमें अन्न दो[८]।"

उक्त विषय पर लिखते हुए सर राधाकृष्णन कहते है "ऐसे अवसर आते हैं जबकि संस्कारो भरा पुरोहितो का धर्म उन्हें कृत्रिम प्रतीत होता है और तब वे अपने समस्त व्याज्योक्तिपूर्ण उद्गारो को प्रकट करते हैं। वे इस प्रकार निंदासूचक शब्दों में वर्णन करते हैं कि पुरोहितों की शोभायात्रा उन कुत्तो की शोभायात्रा के समान है जिनमें से हर एक अपने आगे वाले की पूछ पकड़े हुए है और कहता है ओम, आओ खाये। ओम, आओ सुरापान करे……आदि आदि[९]।"

जन्म नहीं, कर्म प्रधान

उपनिषद् के ऋषि वर्णव्यवस्था से विरत होकर नैतिक पवित्रता को वरीयता देते हैं। एक बार सत्यकाम नाम के एक बालक ने अपनी माता जबाला से पूछा "मां, मै गुरु के पास रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या पढ़ना चाहता हूं। गुरु पूछेंगे कि तू किस गोत्र वाला है, तो मैं क्या बताऊंगा?" जबाला ने कहा "बेटा! मै नही जानती कि तेरा क्या गोत्र है? मै अपनी जवानी अवस्था में अनेक पुरुषो की सेवा करती और अनेको के पास जाती थी। उसी बीच तेरा जन्म हुआ। इसलिए मैं नही जानती तेरा गोत्र क्या है। जबाला मेरा नाम है तथा सत्यकाम तेरा नाम है। अतएव तू सत्यकाम जाबाल है, गुरु से कह देना[१०]।"

८. छांदोग्य, प्रथम प्रपाठक, खंड १२।

९. भारतीय दर्शन, खंड १ पृष्ठ १३६।

१०. सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि। बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि। स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति।
(छांदोग्य उपनिषद् ४/४/२)

सत्यकाम, ऋषि गौतम के पास गया और उनसे अपनी इच्छा व्यक्त की। उन्होने बच्चे से उसका गोत्र पूछा।

सत्यकाम जाबाल ने गुरु गौतम से कहा "मेरी माता ने कहा है कि मैंने अनेक व्यक्तियों की सेवा की है। उसी बीच तेरा जन्म हुआ। मै नहीं जानती कि तू किस गोत्र वाला है। मेरा नाम जबाला है, तेरा नाम सत्यकाम, अतः तू सत्यकाम जाबाल है।" गौतम ने कहा "बेटा, तू सत्यवादी होने से ब्राह्मण है। समिधा ले आ, मैं तेरे को दीक्षा दे दू[११]।" यहां गौतम ऋषि ने सत्यता को ही ब्राह्मणत्व का लक्षण माना, जन्म नही।

आत्मज्ञान

उपनिषदों के प्रसिद्ध चार महावाक्य है—अहं ब्रह्मास्मि[१२], तत्त्वमसि[१३], अयमात्मा ब्रह्म[१४] तथा प्रज्ञानं ब्रह्म[१५]। अर्थात मैं ब्रह्म हू, वह तू है, यह आत्मा ब्रह्म है तथा ज्ञान ही ब्रह्म है। उपर्युक्त चारो महावाक्यो के अर्थ उक्त ढंग से जैसे तथ्यात्मक है, वैसे रखे जाय, तो यह एक ज्वलत वास्तविकता होगी। व्याकरण की दृष्टि से भी उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष तथा अन्य पुरुष होते है। 'मै' उत्तम है, 'तू' मध्यम है तथा 'वह' अन्य है और इसी में सभी जीव हैं। मैं ब्रह्म हू, तू वही (ब्रह्म) है तथा यह आत्मा ब्रह्म है, इस प्रकार तीनो को ब्रह्म कहा गया। इन तीनो का सामान्य लक्षण है 'ज्ञान'। इसलिए कहा गया कि ज्ञान ही ब्रह्म है, क्योंकि मै, तू और यह ज्ञानस्वरूप ही हैं। याज्ञवल्क्य कहते है "हे मैत्रेयी! आत्मा ही देखने, सुनने, मनन करने एवं निदिध्यासन करने योग्य है, अतः उसी को देख, सुन, सोच तथा निदिध्यासन कर। यह कर लेने पर तेरा सब कुछ जाना हुआ हो जायगा[१६]।" केन उपनिषद् के ऋषि कहते हैं "जिसको वाणी नही कह सकती, किन्तु जिससे वाणी प्रकट होती है; जो मन से माना नही जा सकता, किन्तु जो मन को मानता है; जो आखों से देखा नही जा सकता, किन्तु जो आंखो से देखता है; जो कान से सुना नही जा सकता, किन्तु जो कानों से सुनता है और जो प्राण से गतिशील

११. छांदोग्य, चतुर्थ प्रपाठक, खंड ४।

१२. वृहदारण्यक, १/४/१०।

१३. छांदोग्य, ६/८/७।

१४. मांडूक्य २।

१५. ऐतरेय ३/१/३।

१६. आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्र्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम ॥ (वृहदारण्यक ३/४/५)

नहीं होता, किन्तु जिससे प्राण गतिशील होते हैं—उसी को ब्रह्म जान और जिसकी तू उपासना करता है, वह ब्रह्म नहीं है[१७] ।" अर्थात जो कुछ दिखाई-सुनाई दे, जो कुछ कहने-सोचने में आये, वह ब्रह्म नहीं है; किन्तु देखने, सुनने, सोचने, बोलने वाला ही ब्रह्म है। हम जिसकी उपासना करेंगे वह तो हमसे अलग हो जाने से माया रूप हो जायगा, अतः वह ब्रह्म नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया कि "जो मानता है कि मैं भिन्न हूं तथा देवता भिन्न है और इस प्रकार तुच्छ बुद्धि रखकर अपने से भिन्न देवता की कल्पना कर उनकी उपासना करता है, वह अज्ञानी तथा देवताओं का पशु है[१८] ।"

तुलना

यह वेदों की वरीयता, कर्मकांड एवं वर्णव्यवस्था के प्रति उपनिषदों की निष्पक्षता का भाव स्वतंत्र चिन्तन का लक्षण है और पारख सिद्धान्त के बिलकुल अनुकूल है। स्वरूपज्ञान के सम्बन्ध में पारख दर्शन यही कहता है कि यह जीव ही सर्वोच्च सत्ता है, यह चेतन ही महान हैं। इस प्रकार मौलिक अर्थ में उपनिषद् और पारख अलग नहीं होते; परन्तु जब उपनिषदें यह कहने लगती हैं कि आत्मा ही यह सब कुछ है अर्थात मिट्टी, पानी, आग, हवा, पृथ्वी, पहाड़—सब आत्मा ही है, तब पारख सिद्धान्त उससे दूर हट जाता है। इसी पर सद्गुरु कबीर ने व्यंग्य किया है कि 'तत्त्वमसि' इनके उपदेश है जिनका संदेश उपनिषदों ने दिया है[१९] । आत्मा के लिए उपनिषदों की अतिशयोक्ति, जैसे 'आत्मा ही यह विश्व ब्रह्माण्ड है,' पारख सिद्धान्त खण्डन करता है; परन्तु आत्मा के यथार्थवादी स्वरूप को वह स्वीकार करता है। अर्थात आत्मा यानि चेतन जड़ से सर्वथा पृथक एवं व्यक्तित्व में मूलतः अनेक हैं, उनका ज्ञानगुण एक है।

४

भौतिकवाद

"भौतिकवाद उतना ही पुराना है, जितना कि दर्शन शास्त्र। बुद्ध के पूर्व भी इस मत का पता मिलता है। ऋग्वेद के ऋचाओं में भी इसके अंकुर

१७. केन उपनिषद्, खण्ड १, मंत्र ४-८।

१८. योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम्। (बृहदारण्यक उपनिषद् १/४/१०)

१९. बीजक, रमैनी ८।

पाये जाते हैं[1] ।" यह एक दिलचस्प बात है कि छांदोग्य उपनिषद् का सयुग्वा (गाड़ीवाला) रैक्व नाम का एक अक्खड ऋषि भौतिकवादी था । उसने राजा जानश्रुति को संवर्ग-विद्या का उपदेश दिया था, जिसमें यह बात बतायी गयी है कि वायु ही सबका मूल है । वही अन्त में सबको ग्रहण कर लेती है[2] । जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी है कि उपनिषदो मे ही वेद, कर्मकाण्ड तथा वर्णव्यवस्था के प्रति विद्रोही स्वर उभरने लगे थे । प्रपंचबहुल कर्मकाण्ड, ब्राह्मणवाद एवं वेदों की मिथ्या महिमा और इन सबके पीछे जघन्य स्वार्थपरता को देखकर समसामयिक बुद्धिवादी समाज ऊब गया था । उनमें जो सुधरे हुए विचारक थे, वे उपनिषद् के जैसे मन्द स्वर में अपना विरोध प्रकट किये और जो एकदम उत्तेजक थे, वे दूसरे छोर—भौतिकवाद पर जा पहुचे ।

ऋषि बृहस्पति उस समय के प्रसिद्ध तार्किक भौतिकवादी थे । अध्यात्म-वादियो ने भौतिकवाद को चार्वाक नाम दिया । यह एक व्यंग भरा नाम है । चार्वाक का अर्थ है चबाने-खाने वाला या चारुवाक=मन को अच्छी लगने वाली बात—खाओ, पीओ, मौज करो । धार्मिको ने ही एक श्लोक बनाकर उसके मत्थे मढ़ दिया "जब तक जीयो, सुख से जीयो, घर में पैसे न हो तो कर्ज लेकर घी पीयो; क्योंकि मर जाने पर जब शरीर भस्म हो जायेगा, तब कौन लौटेगा और कौन कर्ज लौटायेगा[3] ।" परन्तु यह बात एकदम बेतुकी है । भौतिकवादी का मतलब पापी नही होता । भौतिकवादी जड़ पदार्थों से भिन्न केवल आत्मसत्ता को नित्य नही मानता । यह नहीं कि वह विश्व के शाश्वत नियमों को भी नही मानता, या जीवन के नैतिक मूल्यो को भी नही मानता । आज भी कितने ही, धर्म के चोंगे में भोगी-विलासी हैं और कितने भौतिकवादी भी जीवन से पवित्र तथा मानव समानता और उनके अधिकार की समानता के प्रबल पक्षधर ही नही, अपितु उसके लिए अपनी कुर्बानी देने वाले हैं ।

जड़तत्व परम सत्ता है

भौतिकवाद मानता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—ये चार तत्व हैं । इन्ही के गुण-धर्मों से जगत की स्थिति अनादि-अनन्त है । जैसे अन्न, महुआ आदि से शराब बनाने पर उसमें नशा आ जाता है, वैसे चार जड़ तत्वो के सयोग से जीव या चैतन्य प्रकट हो जाता है, अतः केवल यही जीवन है ।

१. सर राधाकृष्णन कृत भारतीय दर्शन, खण्ड १, पृष्ठ २५५ ।

२. छांदोग्य, चतुर्थ प्रपाठक, खण्ड ३ ।

३. यावज्जीवं सुखं जीवेत ऋणंकृत्वा घृतंपिवेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ?

मरने के बाद न पुनः जन्म लेना है न परलोक है; क्योंकि आत्मा ही नही है। जब आत्मा ही नहीं है तो परमात्मा की बात ही क्या। केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है। जो पांच ज्ञानेन्द्रियो से जानने में आवे, वही सत्य। जैसे लोग छिलके से चावल ले लेते हैं, वैसे कुछ दुःख-मिश्रित सुख भी संसार से ले लेना चाहिए।

कर्मकांड व्यर्थ

ऋषि वृहस्पति कहते हैं "न स्वर्ग है न अपवर्ग है और न परलोक मे रहने वाली आत्मा है। वर्ण-आश्रमादि की क्रियाये भी निष्फल हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दंड और भस्म लगाना बुद्धिहीन और पुरुषार्थहीन लोगो की जीविका के साधन हैं, जो ब्रह्मा द्वारा रचे गये है। यदि ज्योतिष्टोम-यज्ञ में मारा हुआ पशु स्वर्ग में जाता है, तो यज्ञ करने वाला व्यक्ति पशु की जगह पर अपने पिता को मार कर क्यों नहीं उसे स्वर्ग पहुंचा देता है ? यदि श्राद्ध करने से मरे हुए व्यक्ति को तृप्ति मिलती है, तो बुझे हुए दीपक की ज्योति तेल से अवश्य बढ़ जायेगी। विदेश में जाने वाले व्यक्ति को मार्ग का खर्चा न देकर घर में उसके नाम से श्राद्ध कर देना चाहिए और वह तृप्त हो जायेगा। स्वर्ग में गये हुए पितरों को यदि यहां उनके नाम से दान करने से तृप्ति मिल जाती है, तो घर के ऊपरी तल्ले पर बैठे हुए व्यक्ति को नीचे तल्ले मे उसके नाम से भोजन क्यो नही दे देते ? यदि जीव देह से निकलकर दूसरे लोक में चला जाता है तो संबंधियो के मोह में व्याकुल होकर उनमे क्यों नही लौट आता है ? अतः मरे हुए व्यक्तियो के नाम पर जो मरणोत्तर कर्म है, वह अन्य कुछ नही, सब ब्राह्मणों का बनाया हुआ अपना पेट-धन्धा है। वस्तुतः वेदों के रचने वाले तीन हैं—भांड़, धूर्त और निशाचर। जर्भरी, तुर्फरी[४] इत्यादि बकवास की बातें पंडितो की ही वाणियां होती हैं। अश्वमेध यज्ञ मे अश्व का शिश्न दीक्षित यजमान की पत्नी ग्रहण करे—यह विधान है। ऐसा विधान भांड का ही किया हुआ हो सकता है। (यज्ञ मे सारा धन ब्राह्मणो को दे दो और ये यही स्वर्ग

४. वेदों में ऐसे भी मंत्र और शब्द हैं जिनका कोई साफ अर्थ नहीं लगता। उन्हीं का लक्ष्य कर ऋषि वृहस्पति एक मंत्र का संकेत करते हैं जो ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १०६ में छठां मंत्र है—

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु॥

श्री रामगोविन्द त्रिवेदी लिखते हैं ऋग्वेद के जर्भरी, तुर्फरी, परफरीका, आलिगी, विलिगी, तैमात, ताबुवम् आदि शब्दों के अर्थ संदिग्ध हैं।

(हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका, पृष्ठ ५२)

भोगें और तुम्हें मरने के बाद स्वर्ग पाने की आशा दें—यह धूर्तता ही है)। यज्ञ में मारे हुए पशु का मांस खाने का विधान है। यह राक्षसत्व नहीं तो क्या है[५]।"

तुलना एवं समीक्षा

उपर्युक्त उद्धरणों को पढ़कर लगता है कि निश्चित ही ऋषि वृहस्पति एक क्रांतिकारी पुरुष थे। परन्तु जैसे समसामयिक ब्राह्मण यज्ञ, वेद और धर्म के नाम पर भ्रम फैलाकर अपना घृणित स्वार्थ साध रहे थे और अध्यात्म का रूप बिगाड़ रहे थे, वैसे ऋषि वृहस्पति एक बिलकुल दूसरी ओर—भौतिकवाद और तर्क के अतिवाद पर जाकर विध्वंसक कार्य कर रहे थे। वैदिक ग्रंथो में केवल यज्ञ के नाम पर प्रजा को लूटने, यजमान की स्त्री को घोड़े का शिश्न

५. न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम्॥
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।
गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिरवारिता॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामात्र कस्मान्न दीयते॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।
कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः॥
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्॥
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्भरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम्।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम्॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥

(सर्वदर्शन संग्रह, चार्वाक दर्शनम्)

ग्रहण करने एवं यज्ञ के मांस को खाने का ही विधान नहीं है। उनमें विश्व-प्रेम, सदाचार और ज्ञान-विज्ञान की बातें भी हैं। परन्तु वेदों के पक्षधर सम-सामयिक अधिकांश ब्राह्मणों की दयनीय दशा देखकर ऋषि वृहस्पति वेदों की अच्छाइयों को नजरअंदाज कर जाते हैं और उनकी दृष्टि केवल बुराइयो पर जम जाती है।

यहां एक महत्वपूर्ण बात विचारणीय है कि जो वृहस्पति एक ऋषि के रूप में उभर कर समाज में आया हो, जिसके विचार तात्कालिक वैचारिक वातावरण में एक तहलका मचा दिये हों, जो सैकड़ों वर्षो तक समाज पर छाया रहा हो और जिनके विचार विरोधी धार्मिक दार्शनिक हजारों वर्षो से एक दर्शन के नाम पर उद्घृत करते आ रहे हैं, वह क्या अपने शास्त्र में केवल ब्राह्मणों का अभद्र खंडन ही किया होगा। निश्चित ही उसका दर्शन नैतिकता का एक सर्वाङ्ग शास्त्र रहा होगा; परन्तु विरोधियों ने उसको उच्छिन्न कर दिया होगा और केवल खंडनात्मक प्रसङ्ग को तोड़-मरोड़ कर उद्धृत किया।

वास्तव में ऋषि वृहस्पति के तर्क अंधविश्वासों की भित्ति को हिला देते हैं और आदमी स्वतंत्रता से सोचने-समझने को विवश होता है। स्वतन्त्र दर्शन की प्रतिष्ठा के आरम्भ के लिए ऐसे तर्क पूर्वपीठिका के रूप में योगदान करते हैं। विस्फोटक तर्को से घबराने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि सड़ांध संस्कारों की राख पर स्वतन्त्र दर्शन के पौधे उगते और उनमें फूल खिलते हैं।

पारख सिद्धान्त पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु—इन चार तत्वों से सर्वथा पृथक असंख्य अविनाशी चेतन जीवों को, पुनर्जन्म, कर्म-फल-भोग, जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति को स्वीकार करता है तथा इनके लिए नैतिकता एवं सदाचार का आचरण करता है। वह वेदों को आदर देता है; परन्तु विचार पूर्वक। उसे प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ अनुमान, शब्द आदि प्रमाण भी मान्य हैं; किन्तु उन पर परख की कसौटी लगाकर। वह कर्मकांडों से विरत है; परन्तु नैतिकता का प्रबल पक्षधर है।

५
जैनदर्शन

जैन दर्शन या जैन धर्म के आदि तीर्थकर (गुरु) ऋषभदेव माने जाते हैं जिनका होना प्राक् इतिहास काल में बताया जाता है। उनके बहुत पीछे बारा-

णसी में पार्श्वनाथ हुए जिनका समय विद्वान जन ८१७ ई० पूर्व मानते हैं। उनके बाद अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी बिहार प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले के एक गांव में ५९९ ई० पूर्व हुए इस गांव को आजकल बसाढ़ कहते हैं।

जैनधर्म में अनेक मत हैं, परन्तु मुख्य दो भेद हैं—श्वेतांबर एवं दिगंबर अर्थात सफेद कपड़ा पहनने वाला और नंगा रहने वाला। इन दोनों में विशेष सैद्धांतिक भेद नहीं है; किंतु आचार संबन्धी है। दिगंबरी घोर तपस्या के समर्थक हैं तथा श्वेतांबरी उसमें कुछ नरमी लाते हैं। दिगंबरी कहते हैं केवली (जीवन्मुक्त) पुरुष भोजन नहीं करता और स्त्री का मोक्ष नहीं होता[1], यद्यपि तपस्विनी स्त्री तत्काल अगले जन्म में पुरुष शरीर धारण कर मुक्त हो जाती है। श्वेतांबरी कहते हैं केवली पुरुष भी भोजन करता है तथा स्त्री का भी मोक्ष होता है।

इनके मत में महावीर स्वामी के बाद अच्छे-अच्छे तपस्वी तथा विद्वान पुरुष हुए। इनके यहां साहित्य की अपार संपत्ति है। कुछ प्रमुख लेखक ये हैं—उमास्वाति, कुन्दकुंदाचार्य, समंतभद्र, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र, भट्ट अकलंक, विद्यानन्द, वादिराजसूरि, थेवसूरि, हेमचन्द्र, मल्लिषेणसूरि, गुणरत्न, यशोविजय आदि। इतना निश्चित है कि महावीर स्वामी के बाद ही जैन दर्शन का साहित्य रचा गया है।

तत्व विचार

जैन दर्शन छह द्रव्य मानता है—जीव, पुदगल, धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश[2]। यदि हम इनको संक्षिप्ततः कहे तो जीव और अजीव दो हैं, जिनको दूसरे शब्दों में जड़-चेतन कह सकते हैं। जीव चेतन है। जीव दो प्रकार हैं एक मुक्त जीव तथा दूसरे बद्ध जीव। अजीव—पुदगल, धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश हैं। पुदगल का अर्थ है जड़-कण या परमाणु जिनसे शरीरादि बनते हैं। धर्म का अर्थ है जीव तथा जड़-कणो (पुदगलों) की गति मे सहायता करने वाला, जैसे मछली के चलने में पानी सहायक है। अधर्म का अर्थ धर्म के उल्टा है। अर्थात अधर्म वह द्रव्य है जो जीव या पुदगल को रुकने मे सहायक है। आकाश अवकाश देने वाला तथा काल समय है।

१. भुंक्ते न केवली न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः।
　प्राहुरेषामयं भेदो महान श्वेताम्बरैः सह॥
　　　(जिनदत्तसूरि, सर्वदर्शन संग्रह)

२. कबीर परिचय, शब्द ५।

जैन दर्शन पुदगल-जड़ तत्वों की स्वाभाविक क्रियाशीलता से जगत को अनादि-अनन्त मानता है। ईश्वर की सत्ता नहीं मानता। देहधारी जीव को देह के परिमाण (माप) का मानता है। चींटी-देह में जीव उतने ही आकार का हो जाता है तथा हाथी की देह में उतना बड़ा। देह के साथ जीव घटता-बढ़ता रहता है, यद्यपि वह नित्य है। जैनदर्शन जीव को अनन्तदर्शन, ज्ञान, बल आदि से पूर्ण मानता है और कहता है कि जब उसके ऊपर से कर्मों का मल हट जाता है, तब वह सर्वज्ञ हो जाता है। केवली पुरुष संसार के कण-कण का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जहां तक धर्मस्तिकाय (गति सहायक तत्व) का विस्तार है वह लोकाकाश है और उसके ऊपर अधर्मस्तिकाय में अलोकाकाश है। देह से मुक्त हुआ जीव लोकाकाश से ऊपर, जहां अलोकाकाश है एवं गतिहीन दशा है और सिद्ध शिला है, जाकर स्थिर हो जाता है।

जैन दर्शन दूसरी विधि से सात तत्व मानता है—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष[३]। कहीं पाप और पुण्य को मिलाकर नौ भी कहते हैं। जीव चेतन है, अजीव पुदगल आदि उपर्युक्त पांच द्रव्य[४] हैं। आस्रव का अर्थ है जीव की तरफ कर्मो का प्रवाह, बन्ध का अर्थ है कर्मो का बन्धन, संवर का अर्थ है आने वाले कर्मो के मार्ग को बन्द कर देना, निर्जरा कहते हैं कर्म-क्षय को, उसके बाद मोक्ष—केवली दशा है। मोक्ष में जीव अपने स्वाभाविक शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है और उसमें मूलतः रहे हुए अनन्त-चतुष्टय का उदय हो जाता है। वे हैं—अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य (बल), अनंत श्रद्धा एवं अनन्त सुख।

स्याद्वाद

जैन धर्म कहता है कि वस्तुयें अनन्त धर्मात्मक हैं, हर वस्तु के अनेक पहलू हैं। उन्हें पूरा का पूरा केवली (जीवन्मुक्त) पुरुष ही जानता है; क्योंकि वह सर्वज्ञ हो गया रहता है। शेष मनुष्य को वस्तु के एक अंश का ज्ञान होता है, अर्थात सापेक्ष ज्ञान होता है। जैनदर्शन में किसी वस्तु को समझने के लिए 'स्याद्वाद' उनका प्रसिद्ध सिद्धान्त है। 'स्याद्' का अर्थ है 'किसी प्रकार' या 'कथंचित्'। स्याद्वाद को अनेकान्तवाद भी कहते हैं। 'स्याद्' का प्रयोग सात प्रकार से करते हैं, इसलिए इसे 'सप्तभगीनय' भी कहते हैं। वह इस प्रकार है—

१—स्यादस्ति—किसी प्रकार में है।

३. जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्। (तत्वार्थ सूत्र १/४)

४. पुदगल, धर्म, अधर्म, काल तथा आकाश।

२—स्यान्नास्ति—किसी प्रकार में नहीं है।

३—स्यादस्ति च नास्ति च—किसी प्रकार में है और नही है।

४—स्याद् अवक्तव्यम्—किसी प्रकार में अवर्णनीय है।

५—स्यादस्ति च अवक्तव्यं च—किसी प्रकार में है और अवर्णनीय है।

६—स्यान्नास्ति च अवक्तव्यं च—किसी प्रकार में नहीं है और अवर्णनीय है।

७—स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च—किसी प्रकार है, नहीं है और अवर्णनीय है।

उपर्युक्त सप्तभंगीनय का नीचे कुछ खुलाशा किया जा रहा है—

१—स्याद् अस्ति—(सापेक्ष सत्य=किसी प्रकार है) उपादान, आकार, स्थान और समय—इन चार दृष्टिकोणों से वस्तु की सत्ता की परीक्षा होती है। मिट्टी उपादान से, कंबुग्रीवादि युक्त आकार से, कमरे के भीतर में, दोपहर के समय में घड़ा है।

२—स्याद् नास्ति—अन्य उपादान, आकार, स्थान और समय के दृष्टिकोण से वस्तु विद्यमान नही है। जैसे तांबे से बना घड़ा, भिन्न आकार, कमरे के बाहर तथा भिन्न समय में मौजूद नही है।

३—स्याद् अस्ति च नास्ति च—ऊपर के दोनों दृष्टिकोणों को इकट्ठा कर देखने पर एक दृष्टिकोण से घड़ा है, दूसरे से नहीं है। अनामिका उंगुली बड़ी भी है और छोटी भी। कनिष्ठा से वह बड़ी है तथा मध्यमा से छोटी। किताब अपने रूप में है, किन्तु लोटा के रूप में नहीं है।

४—स्याद् अवक्तव्यम्—जब हम यह कहते हैं कि किताब अपने रूप में है और लोटा के रूप में नही है, तब हम इसको एक साथ कहना चाहे, तो कह पाना असंभव है। यद्यपि किताब अपने रूप में उपस्थित तथा लोटे के रूप में अनुपस्थित एक साथ है, तो भी हम उसे एक साथ कह नही सकते। इसलिए अ-वक्तव्य=अनिर्वचनीय=कहने में न आने वाला है।

५—स्याद् अस्ति च अवक्तव्यं च—प्रथम भंग के साथ अनिर्वचनीय-अकथनीय कहना। अर्थात किसी प्रकार में है, किन्तु कह नही सकते[५]।

६—स्याद् नास्ति च अवक्तव्यं च—दूसरे भंग के साथ अनिर्वचनीय कहना[६]; अर्थात किसी प्रकार में नहीं है और कह नही सकता।

५. आद्यावाच्यविवक्षायां पंचमो भङ्ग इष्यते।

६. अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्ग समुद्भवः। (सर्वदर्शन संग्रह, जैन दर्शन)

७—स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च—सबके समुच्चय, सबके मिलाने से बना हुआ सातवां भंग है[७] । अर्थात किसी प्रकार में है, नही है और न कहने योग्य है ।

तुलना

जैन दर्शन की धर्म और अधर्म की कल्पना विचित्र-सी लगती है । पुद्-गल अर्थात जड़ द्रव्यों की गति से जगत स्वतः अनादि एवं अनन्त है यह ठीक है; परन्तु जीव का शरीर-परिमाण होना तथा घटने-बढ़ने वाला बतलाना खट-कने वाली बात है । अविनाशी जीव अखंड होता है; अत: वह विकारी (घटने-बढ़ने वाला) नहीं हो सकता । पारख सिद्धांत जैनमत की इस राय से भी सह-मत नहीं है कि मुक्त जीव किसी सिद्धशिला पर जाकर रहता है । यह सिद्ध-शिला एक कल्पना की वस्तु है । विदेहमुक्त जीव अपने स्वरूप में रहता है, बस इतना ही कहा जा सकता है और उसकी जितनी व्याख्या की जायगी एक भोलापन ही जाहिर होगा ।

जैनधर्म में ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों की आयु, संख्या में न आने वाले वर्षों में तथा उनके शरीर के कद फर्लाङ्गों लंबे बताये गये हैं । लोक आदि की कल्पना भी अतिशयोक्ति एवं अतिरंजित है । आचारपक्ष में भी अतिक्रमण है, जैसे नंगे रहना, बाल उखाड़ना, महीनों उपवास कर शरीर को सुखाना आदि । पारख सिद्धान्त इन अतियों से परे है ।

केवली एवं जीवन्मुक्त पुरुष अनन्त ज्ञान, बल आदि से सम्पन्न हो जाता है—यह भी एक अतिशयोक्ति है । दुनिया में सर्वज्ञ कोई नहीं होता । केवली पुरुष बिना सीखे साइकिल का पंचर भी नहीं बना सकता । हां, वह अनन्त शांत-स्वरूप हो जाता है, यह कहना ठीक है । जैनधर्म में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—महाव्रतों के पालन से ही सम्यक चरित्र का उदय होना माना गया है जो युक्तियुक्त है । जैन दर्शन अपने आप में एक पूर्ण दर्शन है । उसको सर राधाकृष्णन द्वारा आधे रास्ते[८] में रुका हुआ कहना उनकी निष्पक्षता का परिचायक नहीं है ।

उपर्युक्त सप्तभंगों में पहले के दो तो आवश्यक है । अर्थात वस्तु अपने स्वरूप में है और दूसरे के स्वरूप में नही है । एक ही आदमी थोड़ा भी पढ़ा

७. समुच्चयेन यक्तस्च सप्तमो भङ्ग उच्यते ।-(सर्व दर्शन संग्रह, जैन दर्शन)
८. एक बात तो बिलकुल स्पष्ट है, आधे रास्ते में ठहर जाने के कारण जैनमत एक अनेकांतवादी यथार्थता का प्रतिपादन कर सका है ।
(भारतीय दर्शन, खंड १, १११)

है, ज्यादा भी पढा है। अपने से कम पढ़े लोगो से ज्यादा पढ़ा है तथा अपने से ज्यादा पढे लोगों से कम पढ़ा है। वस्तु को समझने के लिए सापेक्षवाद भी ठीक है जिसे अलबर्ट आईस्टीन ने भी कहा है। अपने प्रिय से बात करने में घंटा मिनट के समान लगता है तथा गर्म चूल्हे पर बैठे हुए व्यक्ति को मिनट घंटे के समान लगता है। जैन दर्शन ने जो पहले के दो भंगों के आगे भी पांच भंगों को जोड़ रखा है, यह ज्ञान के क्षेत्र में एक उलझन का घर है। सब बातें अनिश्चित ही नहीं होतीं।

कहा जाता है संजय वेलट्ठिपुत्त, जो महावीर स्वामी के समकालीन एक दार्शनिक थे, अनेकांतवा दी, अनिश्चयवादीथे। परलोक तथा देवता इत्यादि के विषय में उनसे यदि कोई पूछता कि 'वे है ?' तो वे कहते 'नही कह सकता।' यदि पूछा जाता 'नही हैं ?' तो कहते 'नही कह सकता।' यदि पूछा जाता 'है भी और नही भी ?' तो कहते 'नही कह सकता।' यदि पूछा जाता "न है और न नही हैं ?' तो कहते 'नहीं कह सकता।' सजय वेलट्ठिपुत्त जिस अनेकांतवाद का प्रयोग परलोक, देवता, कर्मफल, मोक्ष आदि परोक्ष वस्तुओ पर करते थे, उसका प्रयोग जैनी प्रत्यक्ष वस्तुओं पर भी करने लगे। यह पहले ही बताया गया कि पहले के दो भंग ठीक हैं। वस्तुओं को समझने में उनकी आवश्यकता है।

कर्तारहित जगत की अनादिता, जीवों की मौलिक अनेकता, जीव की अपने स्वरूप में ही स्थिति आदि जैन दर्शन की महत्वपूर्ण बातों से पारख दर्शन से बहुत कुछ समानता है।

६

बौद्ध दर्शन

उत्तरी भारत (अयोध्या से भी उत्तर) की कपिलवस्तु राजधानी के शाक्यवंशीय राजा शुद्धोधन के औरस एवं मायादेवी के गर्भ से सिद्धार्थ का ५६३ ई० पूर्व वैशाखी पूर्णिमा को जन्म हुआ। सिद्धार्थ के जन्म के एक सप्ताह बाद उनकी माता मर गयी। अत: उनके पालन-पोषण का भार उनकी मौसी एवं सौतेली मां प्रजापति गौतमी पर पड़ा। यह राजकुमार अपनी २९ वर्ष की उम्र में पिता, पत्नी, एक पुत्र एवं राजपाट छोड़ विरक्ति का मार्ग पकड़ा। ये पहले सांख्यवादी आलारकालाम के पास कुछ योग सीखे, उसके बाद उद्दक

रामपुत्त के पास कुछ दिन रहे। अंततः बोध गया के पास छह वर्ष की तपस्या एवं साधना के बाद उनको बुद्धत्व प्राप्त हुआ, तब से वे बुद्ध कहलाने लगे।

उन्होंने अपना पहला उपदेश वाराणसी के उत्तर मृगदाव (वन) में रहने वाले पांच साधुओं को दिया जो पहले उनके साथ रह कर तपस्या करते थे। यही मृगदाव आज सारनाथ कहलाता है। पीछे तो बुद्ध जी का बहुत बड़ा प्रचार हुआ और उनके सारिपुत्र, मौदगल्यायन, आनन्द जैसे अनेक उद्‌भट शिष्य हुए। बुद्ध जी जीवन भर भ्रमण करते हुए धर्म-प्रचार करते रहे। उनका स्वयं का प्रचार क्षेत्र उत्तर प्रदेश और बिहार रहा। वे वर्षा चौमासा एक जगह बिताते थे तथा शेष समय भ्रमण करते थे। वे अपनी बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद ४५ वर्ष जीवित रहे। उनमें गोंडा जिले के श्रावस्ती में छब्बीस वर्षा (चौमासा) निवास किये, और ८० वर्ष की उम्र में गोरखपुर के कुसीनारा (कसया) के वन मे परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

महात्मा बुद्ध के निधन के बाद उनकी वाणियो को उनके शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किया गया, जिसका नाम त्रिपिटक है, अर्थात तीन पिटारियां। ये तीन ग्रंथ विशालकाय हैं। इन ग्रंथों के नाम है सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अभिधम्मपिटक। पीछे से इन पर टीकायें लिखी गयी। पीछे-पीछे अनेक विद्वान साधु उनकी परम्परा में हुए जिनके द्वारा ग्रंथों की महाराशि तैयार हो गयी, और इनमें अनेक भेद-प्रभेद हुए। बुद्ध दर्शन पर बड़े लेखको के नाम ये है— नागसेन (१५० ई० पूर्व), नागार्जुन (१७५ ई०), असंग (३७५ ई०), वसुबंधु (४०० ई०), दिग्नाग (४२५ ई०), धर्मकीर्ति (६०० ई०), शांतिरक्षित (७५० ई०), ज्ञान श्री शाक्यभद्र (१२०० ई०)[1] आदि।

चार आर्य सत्य

महात्मा बुद्ध का जमाना अत्यन्त क्षुब्ध था। उस समय अनेक मत ऐसे प्रचलित थे जो नियतिवादी, संदेहवादी, उच्छेदवादी इत्यादि थे। पूर्णकाश्यप, मक्खलिगोशाल, प्रकुधकात्यायन, संजय वेलट्ठिपुत्त आदि ऐसे ही मत के पोषक थे। अतएव महात्मा बुद्ध ने आत्मा इत्यादि दर्शन का विषय न लेकर सदाचार, वैराग्य, समाधि द्वारा दुःखो को दूर करने के प्रयास पर जोर दिया। उनका सिद्धान्त है चार आर्य सत्य। आर्य सत्य का अर्थ है श्रेष्ठ सत्य। वे हैं दुःख आर्य सत्य, दुःखसमुदय आर्य सत्य, दुःखनिरोध आर्य सत्य तथा दुःख-निरोध की ओर ले जाने वाला आर्य सत्य।

1. राहुल जी का 'दर्शन दिग्दर्शन', पृष्ठ ५३२, सन् १९६१।

दुःख आर्य सत्य—जन्म, जरा, रोग, प्रिय वियोग, अप्रिय संयोग, मृत्यु आदि प्रत्यक्ष दुःख हैं। वस्तुतः जीवन धारण ही दुःख है। यह दुःख ऐसा है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता।

दुःखसमुदय आर्य सत्य—दुःख जिससे उदय होता है, वह कारण भी है। दुःख के बारह कारण या शृङ्खला हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. अविद्या—तत्वज्ञान-हीनता।
२. सस्कार—पूर्वजन्म या इस जन्म की शुभाशुभ वासनायें।
३. विज्ञान—चैतन्यता, संसार का भान होना।
४. नाम-रूप—मन और शरीर की अवस्थाये।
५. षडायतन—आंख, नाक, कान, जीभ, चमड़ी और मन।
६. स्पर्श—विषयों का भोग।
७. वेदना—सुख-दुःख तथा उदासीनता का अनुभव।
८. तृष्णा—अधिक-अधिक लालसा।
९. उपादान—आसक्ति।
१०. भव—जन्म।
११. जरा—बुढ़ापा।
१२. मरण—प्राणांत।

दुःखनिरोध आर्य सत्य—यह श्रेष्ठ सत्य है कि दुःखों का निरोध एवं नाश होता है।

दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाला आर्य सत्य—यह भी श्रेष्ठ सत्य है कि दुःखो के निरोध के साधन तथा पथ है। दुःखनिरोध के आठ क्रमिक मार्ग है, जो अष्टांगिक मार्ग कहलाते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. सम्यक दृष्टि—पूर्णज्ञान।
२. सम्यक संकल्प—अपने और दूसरे के कल्याण के लिए पूरा निश्चय।
३. सम्यक वचन—असत्य, कटु, चुगुली तथा पर निन्दा से दूर रहना।
४. सम्यक कर्मान्त—बुरे कर्मो का परित्याग कर पवित्र कर्म करना।
५. सम्यक आजीव—जीवन निर्वाह का पवित्र धन्धा।
६. सम्यक व्यायाम—उचित पुरुषार्थ।
७. सम्यक स्मृति—पूर्ण विचार।
८. सम्यक समाधि—मन का पूर्ण शांत होना।

संक्षेप में कहें तो बुद्ध दर्शन निम्न तीन बातों में आ जाता है—प्रत्यीत्य समुत्पाद, बन्धन एवं निवृत्ति।

१. प्रत्यीत्य समुत्पाद—प्रत्यीत्य = इसके होने से, समुत्पाद = यह होता है। जैसे दुःख के बारह कारण ऊपर बताये गये हैं, वे क्रमिक हैं। अर्थात अविद्या से संस्कार, संस्कार से विज्ञान, नाम-रूप आदि पहले वाले के होने से दूसरे वाले होते हैं।

२. बंधन—अविद्या, कर्म और तृष्णा।

३. निवृत्ति—प्रज्ञा, शील और समाधि। प्रज्ञा का अर्थ है ज्ञान, शील का अर्थ है सदाचार और समाधि का अर्थ है राग-द्वेष एवं विक्षेप रहित एकाग्रता।

आत्मा

कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध आत्मा को मानसिक पुंजमात्र मानते हैं, जिसका क्षण-क्षण परिवर्तन होता है। वे कहते हैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान—इन पांच स्कंधों का समुच्चय ही आत्मा है। 'रूप' का अर्थ है शरीर या पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। सुख-दुःख एवं उदासीनता का अनुभव 'वेदना' है। किसी वस्तु की पहिचान को 'संज्ञा' कहते हैं। पूर्व के अनुभव से उत्पन्न हुई वासना जो पुनः स्मृति में कारण बनती है, 'संस्कार' है। चेतना को 'विज्ञान' कहते हैं। इन सबका संयोग आत्मा है जो क्षण-क्षण बदल रहा है।

सत्ता सम्बन्धी विचार

महात्मा बुद्ध विशेष दार्शनिक उलझन को आत्मकल्याण के लिए अनुपयोगी मानकर उससे स्वयं हटे रहे और शिष्यों को भी उससे दूर रह कर शील, समाधि की ओर चलने को कहा। परन्तु पीछे के बौद्ध विद्वानों ने बुद्ध की ही वाणियों में से सूक्ष्म परीक्षण द्वारा दर्शन की बहुव्यापी व्याख्या की। यहां विस्तार मे न जाकर सत्ता सम्बन्धी बौद्ध दृष्टिकोण पर थोड़ा विचार कर लेना है। बौद्धों में सत्ता के विषय में चार मत हैं। उनके नाम है—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार एवं माध्यमिक।

१. वैभाषिक—बाह्यार्थ प्रत्यक्षवाद।
२. सौत्रांतिक—बाह्यार्थानुमेयवाद।
३. योगाचार—विज्ञानवाद।
४. माध्यमिक—शून्यवाद।

वैभाषिक—के मतानुसार बाहरी सत्ता सत है। अर्थात जो यह मन से बाहर जगत दिखाई देता है यह नित्य एवं यथार्थ है और इससे भिन्न भीतरी

मन की सत्ता भी है। मन और जगत दोनों अलग-अलग अपनी सत्ता सिद्ध करते हैं। मुख्य बात है कि जगत चित्त की कल्पना नहीं है; किंतु चित्त-निरपेक्ष=चित्त से अलग सर्वथा स्वतन्त्र है।

सौत्रांतिक—कहता है बाहरी सत्ता निश्चित है; परन्तु उसका हमें प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। क्योंकि सब कुछ क्षणिक है। हम जिस क्षण किसी वस्तु को देखते हैं, वह वस्तु प्रथम क्षण में उत्पन्न होकर लुप्त हुई रहती है। जब हम अपनी आंखों से किसी लाल फूल को देखते हैं तो फूल की लाली और आकार चित्त में अंकित हो जाते हैं; परन्तु फूल का आकार उसी क्षण बदल जाता है। फिर भी हमे फूल लाल दिखता है। इसका कारण है अभी का पूर्व-ज्ञान। चित्त ने आकार धारण कर लिया, तो उसे वह फूल बारम्बार वैसे ही दिख रहा है। और उसी के आधार पर उसके उत्पत्ति-कारण का हम अनुमान करते है। अतएव बाह्य सत्ता का बोध हमें प्रत्यक्ष नही हो सकता; किन्तु उसे हम अनुमान के आधार पर जानते हैं। इस प्रकार सौत्रांतिक बाह्यसत्ता को चित्तसापेक्ष=चित्त के आधार पर मानता है।

योगाचार—कहता है कि बाह्य सत्ता बिलकुल है ही नही। सत्ता केवल विज्ञान की है, जिसे मन, चित्त आदि कहते हैं। यदि चित्त न हो तो बाह्य सत्ता—पृथ्वी, सूरज, तारे, नगर, समुद्र आदि का पता भी कैसे चले। वस्तुतः हमारे चित्त में समय-समय से इन सबके आकार बनते है और वे बाहर प्रति-बिंबित होते हैं। यदि हम ज्ञान द्वारा ही बाह्य सत्ता को जानते हैं, तो ज्ञान ही परम सत्ता है, बाह्य सत्ता कुछ नही। केवल विज्ञान[२] सत्ता है।

माध्यमिक—कहता है कि न बाह्य सत्ता है और न विज्ञान की सत्ता है। वस्तुतः शून्य ही परमार्थ है। सत्ता न सत है, न असत है, न सत और असत है और न सत और असत से परे है; किन्तु अनिर्वचनीय है, शून्य है।

इस प्रकार बौद्ध दार्शनिक प्रत्यक्ष बाह्य सत्ता से अनुमेय बाह्य सत्ता पर आते हैं, अनुमेय बाह्य सत्ता से विज्ञान मात्र सत्ता पर आते हैं और फिर अंततः शून्य पर पहुच जाते है।

तुलना

बुद्धमत का चार आर्य सत्य सर्वमान्य तथ्य होना चाहिए। इनका कोई विरोध नही कर सकता। महात्मा बुद्ध जगत को अनादि एवं अनन्त मानते

२. विज्ञान छह प्रकार हैं, जो पांच ज्ञानेंद्रिय तथा छठां मन से उत्पन्न हुआ ज्ञान है, इन सबका कारण आलय विज्ञान है, जो विज्ञान का समुद्र है।

हैं। इसका कोई कर्ता ईश्वर नहीं मानते। वे किसी पुस्तक के स्वतः प्रमाण-वाद तथा जातिवाद के भी विरोधी हैं। यह सब भी पारख सिद्धान्त के अनुकूल ही है।

बुद्धमत का बहुत बड़ा दोष है आत्मा को क्षणिक मानना। इस मान्यता में जगत की व्यवस्था ही नहीं बन सकती। हत्या एक माधव करता है, फांसी दूसरे माधव की होती है। क्षणिकवाद में तो यही मानना पड़ेगा कि माधव ने जब किसी की हत्या की उसी समय वह भी लुप्त हो गया। जब माधव की फांसी हुई, तब तक असंख्य बार उसका अस्तित्व बदल चुका रहता है। बचपन की बात बूढ़ा होने पर भी याद आती है। यदि आत्मा स्थायी एवं अजर, अमर न हो तो वह कैसे पुरानी बातें याद रख सके? आत्मा के अमर हुए बिना मोक्ष का पुरुषार्थ भी बेकार है। वे कहते हैं कि वासनाओं का पुंज ही जन्म-मरण में घूमता है; परन्तु अमर चेतन आत्मा के हुए बिना कर्मों का फल-भोग एवं मोक्ष किसका होगा? पारख सिद्धान्त एवं कबीरदेव इस नैरात्म्यवाद के विरोधी हैं। कबीर साहेब ने कहा है 'जीवहिं मरण न होय[३]।'

लाल फूल देखकर चित्त ने उसका आकार ग्रहण कर लिया। अब जब फूल को देखते हैं चित्त में उसके आकार के नाते वह लाल दिखता है। इस बात में भी तो यह सिद्ध हुआ कि फूल देखकर ही चित्त ने आकार ग्रहण किया, बिना देखे कैसे आकार ग्रहण होगा। दूसरी बात, यदि चित्त में लाल फूल का आकार होने से ही बाहर फूल लाल दिखता है, तो उसके सूख जाने पर भी वह लाल दिखता। अतः जगत का सब ज्ञान अनुमान पर नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष भी है।

पारख सिद्धान्त मानता है जड़ और चेतन दोनों सत हैं। बाह्य जगत परिवर्तित होते हुए भी यथार्थ है। न तो मन से जगत कल्पित है न अनुमेय। वस्तुतः जगत की, ज्ञान की सत्ता से एक अलग निरपेक्ष सत्ता है।

७

गीता

गीता महाभारत के भीष्मपर्व में है। यह भारतवर्ष का छोटा, किन्तु उत्तम ग्रंथ है। दार्शनिक इतिहास के लेखकों ने इसका रचना-काल ईसा पूर्व

३. बीजक, रमैनी १०। देखें इसी ग्रन्थ के तीसरे अध्याय का 'चेतन अस्तित्व' सन्दर्भ।

तीन सौ से पांच सौ वर्ष माना है। अर्थात आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व गीता बनी। गीता लेखक कौन था, इसका पता नही चलता, जैसे उपनिषदों के लेखकों का पता नहीं चलता। किन्तु इसे वेदव्यास से जोड़ा जाता है। जब गीता लेखक श्री कृष्ण के मुख से यह कहलाता है कि "मै मुनियों में व्यास हूं[1]।" तब यह धारणा टूटने लगती है कि वेदव्यास ने गीता लिखी होगी, क्योंकि अपनी प्रशंसा विवेकवान स्वयं नही करते। जो हो, गीता किसी की भी लिखी हो, एक उत्तम ग्रंथ है।

गीता की रचना उस समय हुई जब विभिन्न विचारक कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति—में से एक-एक ही को लेकर उसे श्रेष्ठ सिद्ध कर रहे थे और दूसरे को तुच्छ बतला रहे थे। गीताकार ने कहा कर्म, ज्ञान, भक्ति, योग—सबकी आवश्यकता है। उस समय बुद्धिवादियों मे सांख्य दर्शन के प्रचार का काफी जोर था। गीताकार ने सांख्य के पुरुष और प्रकृति को लेकर उसमें ईश्वर को मिलाया, योग का भी पुट दिया और गीताकार कृष्णभक्त होने के कारण श्री कृष्ण को ही पुरुषोत्तम भगवान सिद्ध किया।

गीता में प्रकृति और पुरुष[2] को अनादि बताया गया। दूसरी तरफ क्षर (प्रकृति) एवं अक्षर (चेतन आत्मा) से परे पुरुषोत्तम की भी बात बतायी गयी[3]। इसी को इस प्रकार भी कहा गया कि मेरी (भगवान की) दो प्रकृतियां हैं। एक है अपरा—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार; तथा दूसरी है परा—जीव। मैं इन दोनो से श्रेष्ठ हूं[4]। एक तरफ कहा गया आत्मा अविनाशी है। यह कुछ होकर के नही होता[5]। दूसरी तरफ कहा गया कि ये मेरे ही अंश है[6]। समसामयिक फैले अनेक वैदिक विचारो का गीता में एक ही जगह संकलन कर देने से गीता में कोई एक दार्शनिक सिद्धान्त निर्धारित करने में बड़ी कठिनता है। इसीलिए शकराचार्य भी कहते है "गीताशास्त्र समस्त वेदार्थ सार संग्रहभूत होने से इसका अर्थ जानना कठिन है[7]।" अर्थात गीता किस एक सिद्धान्त को मानती है यह बता पाना कठिन है। गीताकार ने श्री कृष्ण जी के मुख से कहलवाया है कि संसार की सभी अच्छी चीजें वे ही हैं। उन्हीं में अर्जुन को विश्वरूप दर्शन भी करवाया है। ये सारी बाते अतिश-

१. मुनीनामप्यहं व्यासः। गीता १०/३७।
२. गीता १३/१९। ३. १५/१६-१८।
४. ७/४-५। ५. २/२०। ६. १५/७।
७. तदिदं गीताशास्त्रं समस्तवेदार्थसारसंग्रहभूतं दुर्विज्ञेयार्थम्।
(गीता भाष्य का उपोद्घात)

योक्तियों से भरीं हैं और विश्व के शाश्वत नियम, कारण-कार्य व्यवस्था एवं विवेक का परवाह किये बिना कही गयी हैं। मैं उलझन वाली बातों को छोड़ गीता के क्रांतिकारी और सरल बातों पर थोड़ा विचार करूंगा।

उदारता के स्वर

उपनिषद् की तरह गीता भी वेदों का आदर करते हुए भी उनको स्वतः प्रमाण एवं सर्वेसर्वा मानने को तैयार नहीं। सर राधाकृष्णन् लिखते हैं "बुद्ध धर्म का नाम नहीं लिया जाता, यद्यपि गीता के कितने ही विचार बौद्ध धर्म के मत के सदृश हैं। दोनों ही वेदों के स्वतः प्रमाण होने का विरोध करते हैं और वर्ण के कठोर बंधनों को न्यूनतम स्थायी आधार पर रख कर शिथिल करने का प्रयत्न करते हैं[८]।"

गीता कहती है "हे अर्जुन! जो अज्ञानी हैं; वेद के शब्दों में आसक्त हैं; जो यह कहते हैं कि इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो विषय-अभिलाषी हैं और स्वर्ग को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, वे इस प्रकार के सेमल फूल जैसी दिखाऊ वाणियों को कहते हैं जिनका निदान कर्मों के फल में पुनर्जन्म की प्राप्ति होती है और जो भोग तथा मायावी शक्तियो की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार की विशेष कर्म-विधियां बतलाती हैं। उपर्युक्त वेद वाणी द्वारा जिनकी बुद्धि मारी गयी है और जो भोग तथा मायावी वस्तुओं में आसक्त हैं, उनकी निश्चयात्मक बुद्धि एकाग्रता में स्थिर नहीं होती। वेदो का संबंध तीनों गुणों की क्रियाओं से से है। अतएव हे अर्जुन! तू त्रिगुणात्मक प्रकृति से मुक्त हो जा और दुनिया-दारी झगड़ों से स्वतंत्र होकर नित्य सत्य में स्थित, भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति और रक्षा की इच्छा से निवृत्त एवं स्वरूपनिमग्न हो जा। जब सब ओर जल ही जल भरा हो, तब छोटी तलैया से जितना प्रयोजन रहता है उतना ही प्रयोजन ज्ञानवान ब्राह्मण को सभी वेदों से रहता है[९]।"

इसी प्रकार गीता यज्ञ की भी बड़ी उदार व्याख्या पेश करती है। यद्यपि यज्ञ से पानी बरसने[१०] वाली बात को वह नहीं छोड़ पाती है, तथापि वह वहीं रुकी नहीं रहती, किंतु वह साहसपूर्वक कहती है "अनासक्त, मुक्त एवं स्थितिवान पुरुष कर्म को यज्ञ समझ कर करता है और उसके कर्म-बंधन नष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग अन्य देव के लिए यज्ञ करते हैं और कुछ अन्य योगी

८. भारतीय दर्शन, खंड १, पृष्ठ ४८५।

९. गीता २/४२-४६।

१०. ३/१४।

अपनी आत्मा को ब्रह्मार्पण रूप यज्ञ करते हैं। कुछ लोग इंद्रियों का संयम रूपी यज्ञ करते हैं। कुछ लोग आत्मसंयम रूपी यज्ञ करते हैं। द्रव्ययज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ एवं स्वाध्याय भी यज्ञ ही है। प्राणायाम भी यज्ञ है। नियमित आहार करते हुए प्राणायाम करना भी यज्ञ है[11]।" वस्तुतः भौतिक वस्तुओं द्वारा किये हुए यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है; क्योंकि इसमें सारे कर्मों का अंत है। अतएव किसी ज्ञानी पुरुष की शरण लेकर, उसकी सेवा करके और उससे प्रश्न करके समझो। तत्वदर्शी पुरुष उस ज्ञान का उपदेश करेंगे[12]।"

गीता ईश्वर को स्वीकार करते हुए भी ऐसी बात कह देती है कि उसकी आवश्यकता ही समाप्त हो जाती है। जैसे "ईश्वर न किसी में कर्तृत्व उत्पन्न करता है, न किसी के लिए कर्म करता और न कर्मों का फल ही देता है, अपितु यह सब स्वभाव से ही होता है[13]।"

गीता में जो दो निष्ठायें बतायी गयीं, वे भी बड़ी मूल्यवान हैं—कर्मयोग और ज्ञानयोग। ज्ञान हो जाने पर भी अनासक्तिपूर्वक कर्म करते रहना—कर्मयोग है तथा कर्मों का त्याग कर केवल ज्ञान में ही स्थित रहना—ज्ञानयोग है। कर्मयोग सबके लिए सुलभ और हितकर है और ज्ञानयोग में बिरले पुरुष ठहर सकते हैं। कहा गया "जो अपने आप में प्रीति करता, अपने आप में तृप्त होता तथा अपने आप में संतुष्ट होता है, उसे कुछ करना शेष नहीं रहता[14]।" स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताये गये "जो मन में रही हुई सारी इच्छाओं को त्याग कर अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है, वह स्थितप्रज्ञ है। जो न दुःखों में उद्विग्न हो, न सुख की इच्छा रखे और जो राग, भय, क्रोध से रहित रहता है वह स्थितवान है। जो सर्वत्र स्नेहरहित है, अनुकूल-

११. ४/२४-३०।

१२. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतपः।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ ४/३३-३४॥

१३. न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥ ५/१४॥

१४. यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ ३/१७॥

प्रतिकूल में सम है और कछुये के समान सारे विषयों से अपनी इन्द्रियों तथा मन को समेट रखा है, वह स्थितप्रज्ञ है[१५]।"

गीता की भाषा में वे ही देव हैं जो निम्न सद्गुणों को धारण किये हुए हैं "निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धि, ज्ञान और योग का विवेकपूर्वक विभाग, दान, इंद्रियों का दमन, यज्ञ (पवित्र कर्म), स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, अपैशुन, दया, अलोलुप्ता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, तेज, क्षमा, धैर्य, शौच, अद्रोह तथा अभिमान का सर्वथा त्याग[१६]।"

तुलना

गीता की उपर्युक्त बातें तथा अन्य बहुत सारी बातें पारख सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल हैं। हां, पारख सिद्धान्त गीता के निर्लिप्तवाद को नहीं स्वीकार करता कि ज्ञानी चाहे जो करे उसे कुछ पाप नहीं पड़ता। गीता कहती है "जिसमें कर्तृत्व का अहंकार नहीं है तथा जिसकी बुद्धि कर्मो में लिपायमान नहीं होती, वह संसार के सारे लोगों को मार डाले, तो भी जानो वह न किसी को मारा और न बंधनों में पड़ा[१७]।" भला जिसको कोई अहंकार ही नही रह जायगा, वह किसी को मारेगा क्यों ?

८

सांख्य दर्शन

सांख्य दर्शन के सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन हैं। इसका प्रभाव समस्त वैदिक मतों पर छाया है। इसके प्रणेता महर्षि कपिल हैं। उपनिषद्,[१] महाभारत[२] तथा भागवत[३]—सब में कपिल की महिमा गायी गयी है। गीताकार

१५. गीता २/५५-५८। १६. गीता १६/१-३।

१७. यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥ १८/१७।

१. ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे। पहले कपिल ऋषि पैदा हुए।
(श्वेताश्वतर उपनिषद् ५/२)

२. सनकश्च सनन्दनश्च तृतीयश्च सनातनः। कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। सप्तैते ब्रह्मणः पुत्रः। कपिलं परमर्षिञ्च यं प्राहुर्यतयः सदा। अग्नि स कपिलो नाम साङ्ख्ययोग-प्रवर्तकः। (महाभारत, शांतिपर्व)

३. पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्वग्रामविनिर्णयम्। (भागवत १/३/१०)

ने भी श्री कृष्ण के मुख से कपिल की सिद्ध रूप में प्रशंसा की है[४]। कौटिल्य (ईसापूर्व ३००) ने अपने अर्थशास्त्र मे सांख्य, योग और लोकायत को अन्वीक्षकी विद्या कही है, जिसमें सांख्य का प्रथम स्थान है।[५] यह ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान, वैराग्य, अहिंसादि सपन्न परम ऋषि कपिल उस कपिल से अलग हैं जिसने राजा सगर के पुत्रों को भस्म कर दिया था। स्वामी शंकराचार्य इसको स्वीकार करते है[६]। महात्मा बुद्ध से बहुत पहले कपिल एक ऐसे महान हस्ती के वैराग्यवान तथा विवेकवान संत पुरुष थे जिनका प्रभाव समस्त भारतीय दर्शनो पर फैल गया। ग्रंथ लेखको ने उन्हें कही विष्णु का अवतार, कही ब्रह्मा का पुत्र, कही अग्नि का अवतार होना बताया। एक महान पुरुष के पीछे ऐसी अतिशयोक्तियां लगायी ही जाती हैं। महर्षि कपिल के यथार्थवादी दृष्टिकोण को जो नही अपना पाये, वे उनके तत्वविवेक को तोड़-मरोड़ कर तथा उसमे ईश्वर की मूर्ति प्रक्षिप्त करके लिये, किन्तु उनसे सब ने लिया। पुराण इत्यादि में भी जहा सृष्टिरचना लिखी गयी, महर्षि कपिल के तत्वविवेक का उसमे असर अवश्य आया।

महर्षि कपिल का समय निर्धारित कर पाना कठिन है; परन्तु इतना मानना पड़ेगा कि वे बुद्ध के पहले प्राक् इतिहास काल में हुए। उनके शिष्य आसुरि हुए। आसुरि के बाद पंचसिख हुए। उनके बाद जैगीषव्य। ये सब साख्य दर्शन के बड़े-बड़े विचारक हैं। अत के सबसे बड़े विचारक ईश्वरकृष्ण है। इनका समय ईसा से सौ साल पूर्व माना जाता है। इनकी लिखी सांख्यकारिका केवल ७२ कारिकाओ (श्लोको) मे छोटी, किन्तु सांख्य दर्शन की प्रौढ़ पुस्तक है। ईश्वरकृष्ण अपनी सांख्य परम्परा बतलाते हुए कहते है "यह पवित्र और श्रेष्ठ ज्ञान महामुनि कपिल ने कृपा करके आसुरि को दिया और आसुरि ने पंचशिख को तथा पचशिख ने इसका खूब प्रचार किया[७]।"

४. सिद्धानां कपिलो मुनिः। (गीता १०/२६)

५. सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी ॥

(कौटिलीय अथशास्त्रम् १/१/६)

६. या तु श्रुतिः कपिलस्य ज्ञानातिशयं प्रदर्शयन्ती प्रदर्शिता, न तया श्रुतिविरुद्धमपि कापिलं मतं श्रद्धातुं शक्यं, कपिलमिति श्रुतिसामान्यमात्रत्वात् अन्यस्य च कपिलस्य सगरपुत्राणां प्रतप्तुर्वासुदेवनाम्नः स्मरणात् ॥

(ब्रह्मसूत्र २/१/१ पर भाष्य)

७. एतत् पवित्रमग्र्यं मुनिरासुरयेऽनुकम्पया प्रददौ।
आसुरिरपि पंचशिखाय तेन च बहुधा कृतं तन्त्रम् ॥ ७० ॥

प्रकृति और पुरुष

महर्षि कपिल कहते हैं प्रकृति और पुरुष केवल दो ही तत्व हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका और जड़ है। उसका कार्य पदार्थ फैला हुआ अनन्त संसार है। यह संसार स्वप्न, मृगमरीचिका एवं भ्रम नहीं, किंतु यथार्थ है। सांख्य दर्शन सत्कार्यवादी है। अतः वह मानता है कि कार्य अपने कारण में पहले से विद्यमान रहता है। घड़ा मिट्टी में द्रव्य रूप में अवस्थित है। अभाव से भाव नहीं होता, किंतु दृश्यमान जगत का कारण यथार्थ है। सांख्य ज्ञान के साधन प्रमाण केवल तीन मानता है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

सांख्य दर्शन पुरुष को जड़ प्रकृति से सर्वथा पृथक शुद्ध-बुद्ध, असंग एवं अक्रिय मानता है। जड़ प्रकृति भोग्य है। वह स्वयं अपना भोक्ता नहीं बन सकती। अतः भोक्ता पुरुष है। पुरुष त्रिगुण से परे है। उसे प्रकृति के जाल से मोक्ष की इच्छा होती है, अतः वह प्रकृति से सर्वथा पृथक है[८]। एक साथ सबका जन्म नहीं होता न मृत्यु ही। सबके भिन्न-भिन्न बंध-मोक्ष के कार्य हैं, अतः पुरुष बहुत[९] (असख्य) हैं, एक नहीं। यह चेतन पुरुष साक्षी, केवल, तटस्थ, द्रष्टा एवं अकर्ता है[१०]।

प्रश्न हो सकता है कि पुरुष चेतन तो है, किन्तु निष्क्रिय है और प्रकृति सक्रिय होते हुए जड़ है, तो सृष्टि कैसे चलती है ? सांख्य दर्शन उत्तर देता है, एक गांव में आग लगी। सब भाग निकले। एक अंधा और एक पंगुला रह गये। अंधे ने पंगुले को अपने कंधे पर बैठा लिया। पंगुला रास्ता बताता गया और अंधा चलता गया। दोनों निकल गये। इसी प्रकार क्रियाशील जड़ प्रकृति एवं निष्क्रिय चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि चलती है[११]।

पचीस तत्व तथा सृष्टि

सांख्य दर्शन में कुल पच्चीस (२५) तत्व हैं। उनमें मुख्य दो हैं पुरुष और प्रकृति। प्रकृति सत, रज एवं तम—इन तीनों गुणो का समुच्चय है और

८. सांख्यकारिका १७।

९. पुरुषबहुत्वं सिद्धम्। सांख्यकारिका १८। १०. वही १९।

११. पुरषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥ २१॥
अर्थात—पुरुष प्रकृति को देख ले और प्रधान (प्रकृति) द्वारा उसका कैवल्य (मोक्ष) सिद्ध हो जाय, इसलिए पंगुले तथा अन्धे के दृष्टांतानुसार पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि होती है।

अव्यक्त (अदृश्य) है। पुरुष चेतन भी अव्यक्त (अदृश्य) है। अव्यक्त प्रकृति से सृष्टि के आदि में महतत्व (महानबुद्धि) पैदा होती है, महतत्व से अहंकार और सत संयुक्त अहकार से ग्यारह इंद्रियां (आंख, नाक, कान, जीभ, चाम, हाथ, पैर, मुख, गुदा, लिंग एवं मन) तथा तम संयुक्त अहंकार से पांच तन्मात्रायें—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गध पैदा होते है। रजोगुण इन सबके पैदा होने में सहायक रहता है। फिर पांच तन्मात्राओ से पांच भूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पैदा होते है[१२]। इस प्रकार प्रकृति, महतत्व, अहंकार, मन, दश इंद्रियां, पाच विषय, पांच तत्व और पुरुष (चेतन) पचीस तत्व हैं।

सत, रज एव तम की साम्यावस्था प्रकृति को प्रधान भी कहते हैं। प्रधान प्रकृति रूप है, महतत्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा प्रकृति-विकृति रूप है और और ग्यारह इन्द्रियां तथा पाचतत्व विकृति रूप हैं और पुरुष न प्रकृति है न विकृति, वह निर्विकार है [२]।

सांख्य दर्शन मानता है कि सृष्टि के प्रलय और उत्पाद होते हैं। प्रलय-काल में तीनों गुण समान अवस्था मे रहते हैं। यही प्रधान या प्रकृति की दशा है। जीवो के पूर्वकर्मो के परिपाक से जब सृष्टि के आरम्भ का काल आता है, तब प्रकृति और पुरुष के संयोग से प्रकृति में हलचल मच जाती है। फिर तीनों गुण एक दूसरे को दबाने लगते है। इसी घात-प्रतिघात में महानबुद्धि पैदा होती है जिसका नाम महतत्व है। उससे अहंकार पैदा होता है और अहंकार से अन्य सब पैदा हो जाता है जो ऊपर बताया जा चुका है।

गमनागमन

सांख्य जीव को एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाने के लिए अर्थात गमनागमन के लिए उसके साथ लिंग शरीर एवं सूक्ष्म शरीर को मानता है। साख्यकारिका में बताया गया कि बुद्धि, अहकार, मनसहित दस इन्द्रियां एवं पांच विषय—इन अठारह तत्वो का सूक्ष्म शरीर धर्माधर्म संस्कारों को लेकर जीव को गमनागमन कराता है। जैसे आधार के बिना चित्र एवं स्तंभ के बिना छाया नही रहती, वैसे सूक्ष्म शरीर रूप 'विशेष' के बिना बुद्धि-अहंकार आदि नही रहते। अनेक संस्कार युक्त यह सूक्ष्म शरीर नट के समान व्यवहार करता रहता है। अर्थात नाना देह धरता रहता है[१४]। पारख दर्शन सूक्ष्म शरीर को

१२. सांख्यकारिका २२, २५। १३. वही ३।
१४. वही ४०-४२।

चतुष्टय अंत:करण एवं पांच विषय युक्त केवल नौ तत्वों का मानता है। सांख्य १८ तत्वों का मानता है; परन्तु दोनों की मौलिकता में कोई अंतर नही। सूक्ष्म शरीर वासनापुंज की एक भौतिक गांठ है। उसमें इन्द्रिय आदि के संस्कार होने से उन्हें भी उसमें जोड़ देने से कोई विरोध नहीं आता। "धर्म से जीव उच्च गति को प्राप्त करता है, अधर्म से अधोगित को, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त करता है तथा अज्ञान से बन्धन को[१५]।"

मोक्ष

सांख्य दर्शन मोक्ष के लिए ही आरम्भ होता है। अत: सांख्यकारिका की पहली कारिका में बताते हैं दैहिक, दैविक एवं भौतिक—इन तीनो दु:खो की निवृत्ति के लिए उपयुक्त साधन की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यदि कहो, संसार की वस्तुओं, धन-दौलत, पुत्र-कलत्र आदि का सग्रह करो, दु:ख दूर हो जायगा, तो इनसे दु:खों का सर्वथा अंत नहीं होता। यदि कहो ठीक है, लौकिक चीजोंसे यदि दु:ख नहीं दूर होता, तो वैदिक कार्य करो। वेद पढ़ो, यज्ञ करो और दु:ख दूर हो जायेगा। तो ऐसी भी बात नहीं। लौकिक पदार्थो के समान वैदिक कार्य भी जीवो को दु:खों से सर्वथा छुटकारा नही दिला सकते। क्योकि वैदिक यज्ञों में पशुहिंसा होने से उनमें अशुद्धि है। उनका फल सुख या स्वर्ग क्षययुत एवं नाशमान हैं और स्वर्ग-सुख आदि सातिशयतापूर्ण अर्थात घटी-बढ़ी रूप है। इन्द्रियजन्य भोगों में घट-बढ़ होगा ही। हम दस तल्ले की विल्डिग बनवा लें, तो पास में कोई बीस तल्ले की बिल्डिग बनवाने वाला भी आ सकता है। इसके विपरीत दु:खों से सर्वथा मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करने के लिए व्यक्त (दृश्य जड़ कार्य जगत) तथा अव्यक्त (अदृश्य जड़ प्रकृति) एवं ज्ञ—ज्ञाता चेतन पुरुष का विवेक-ज्ञान ही सर्वथा उपयुक्त है[१६]।

१५. धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमध्यस्ताद्भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥४४॥

१६. दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥ २ ॥

अर्थात—दृष्ट (लोक) के समान आनुश्रविक (सुने हुए = वेदवचन - कर्मकांड) भी अशुद्धि, क्षय तथा अतिशय (विषमता) से पूर्ण होने के नाते दु:ख निवृत्ति करने में असमर्थ हैं। उसके विपरीत व्यक्त—अव्यक्त—ज्ञ, अर्थात दृश्य जड़ जगत, अदृश्य जड़ प्रकृति एवं ज्ञ = ज्ञाता चेतन पुरुष का विवेक ज्ञान दु:ख निवृत्ति करने में समर्थ है।

सांख्य दर्शन का कितना यथार्थवादी दृष्टिकोण है। वह आंख मूद कर लोक-वेद के पीछे घूमना नहीं चाहता। दृष्ट=लोक के सामन, आनुश्रविक=वेद भी जीव को सर्वथा दुःखों से छुड़ाने में असमर्थ हैं। वेद के मंत्र ऋषियो से सुन कर शिष्य ग्रहण करते थे, इसलिए वेदो का नाम श्रुति पड़ा। इसी से यहां वेदों को आनुश्रविक कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा महावीर और बुद्ध के बहुत पहले ही कपिल ने वेदो तथा वैदिक कर्मकाण्डो को अस्वीकार कर जड़-चेतन के भिन्न विवेकज्ञान को प्रश्रय दिया था।

मुमुक्षु को यह समझ लेना है कि अव्यक्त=अदृश्य प्रकृति तथा व्यक्त=दृश्य कार्य जगत से ज्ञ=ज्ञाता चेतन पुरुष सर्वथा पृथक है।

"नास्मि, न मे, नाहम' अर्थात न (मै क्रियवान) हू, न मेरा (भोक्तृत्व) है, और न मैं (कर्ता) हूं—जब इस प्रकार का पूर्ण अभ्यास हो जाता है, तब संपूर्ण भ्रमों का अंत होकर विशुद्ध, केवल—असंगत्व ज्ञान की उत्पत्ति होती है[१७]।" फिर तो उक्त स्थिति मे पहुच कर "द्रष्टा के समान निष्क्रिय स्थित होकर स्वच्छ पुरुष उस प्रकृति को अपने विवेकज्ञान की शक्ति से देखता है, जो अब बन्धन नहीं उत्पन्न कर सकती[१८]।" पुरुष जब प्रकृति को देख लेता है अर्थात उसका द्रष्टा हो जाता है, तब वह उससे उदास हो जाता है और उधर प्रकृति भी उसके लिए व्यापार-शून्य हो जाती है[१९]।" इस प्रकार सम्यक-ज्ञान उत्पन्न होने पर संचित कर्मो का अभाव हो जाता है और प्रारब्ध-संस्कार शेष रहने के कारण ज्ञानी का शरीर उसी प्रकार प्रारब्धान्त तक बना रहता है, जैसे कुम्हार-द्वारा दंडे से घुमाया गया चक्र दड न चलाने पर भी कुछ समय घूमता रहता है[२०]।" "प्रारब्धांत होने पर स्थूल-सूक्ष्म दोनो शरीर समाप्त हो जाते हैं। ज्ञानी का प्रयोजन पहले से ही पूरा है। अतः प्रकृति सर्वथा निवृत्त हो जाती है और पुरुष ऐकांतिक (पूर्णतया) आत्यतिक (नित्य) कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है[२१]।"

यह है सांख्य दर्शन का प्रकृति-पुरुष-विवेक द्वारा मोक्ष की व्याख्या, जो सर्वथा युक्तियुक्त एवं तथ्यात्मक है। पारख सिद्धांत का जड़-चेतन-विवेक और

१७. एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥ ६४॥

१८. प्रकृतिं पश्यति पुरुष प्रेक्षकवदवस्थितः स्वच्छः॥ ६५॥

१९. सांख्यकारिका ६६। २०. वही ६७।

२१. प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति॥ ६८॥

मोक्ष इससे बिलकुल समता रखता है। इसे पारख सिद्धांत के अध्याय में देखें। वहां विस्तार से कहा जा चुका है, इसलिए यहां तुलनात्मक अध्ययन में बार-बार दोहराया नहीं जा रहा है।

तुलना एवं समीक्षा

सांख्य दर्शन की सृष्टि-उत्पत्ति समझ पाना कठिन है; क्योंकि यह स्वयं में शुद्ध कल्पना का विषय है। सृष्टि का मूल प्रकृति क्या है? केवल सत, रज एवं तम की साम्यावस्था। किन्तु ये सत्वादि तीन गुण क्या है? क्या ये स्वतः कोई द्रव्य हैं? कोई भी गुण किसी द्रव्य का होता है। सांख्य दर्शन हमे गुणो की व्याख्या कर उन्हें त्रिविध रूप बतलाता है; परन्तु वे गुण किस द्रव्य के हैं यह नहीं बतलाता। वह कहता है "सत हलका और प्रकाशक है, रज प्रवृत्तिशील-क्रियाशील एवं उत्तेजक है और तम भारी, अवरोधक एवं नियामक है। ये तीनों परस्पर विरोधी होते हुए भी उसी प्रकार एक उद्देश्य को पूर्ण करते हैं जैसे अग्नि, तेल और बत्ती का विरोधी होते हुए भी एक साथ मिलकर प्रकाश का काम करती है और तीनों मिलकर दीपक जल जाता है[२२]।"

अतएव जड़ पदार्थों में ये गुण शक्ति के रूप में है और मन में भावना के रूप में हैं। इस प्रकार जड़ द्रव्य और चेतन मानस-जगत में ये त्रिगुण काम करते हैं। अतएव गुण के लिए द्रव्य चाहिए, शक्ति के लिए शक्तिमान चाहिए। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु अर्थात भौतिक द्रव्य परमाणु ही द्रव्य या शक्तिमान हैं और उन्ही में त्रिगुण काम करते हैं और इधर वे चेतन के साक्षित्व से मन में भावना रूप में काम करते हैं।

सांख्य कहता है "प्रकृति से बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, बुद्धि से अहंकार और अहंकार से ही इन्द्रिय, पांच विषय, पृथ्वी आदि तत्व उत्पन्न हो जाते हैं।" यह सब एक उलझी हुई बात है। क्योंकि अहंकार एक भावना है, उससे इन्द्रिय, विषय एवं तत्व जो पदार्थ रूप में हैं कैसे पैदा हो सकते है?

वस्तुतः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु या ठोस, तरल, वायव्य एवं अतिवायव्य जड़ भौतिक तत्वों का समुच्चय ही जड़ प्रकृति है और इसी में त्रिगुण शक्ति के रूप में विद्यमान हैं जिन्हें उससे अलग नही किया जा सकता। यह सब का सब अनादि-अनन्त है। अतएव सृष्टि भी अनादि-अनन्त है। यह पारख दर्शन मानता है। इस प्रकार सृष्टि-उत्पत्ति के स्थल पर सांख्य और

२२. सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥ १३॥

पारख दर्शन में दूरी है। किन्तु प्रकृति और पुरुष एवं जड़ तथा चेतन परस्पर भिन्न हैं और चेतन असंख्य एवं नाना हैं, इन मौलिक एवं मुख्य विचारों में सांख्य और पारख अत्यन्त निकट हैं, या कह सकते हैं समान हैं।

सांख्य दर्शन 'पुरुष' के लिए अतिशयोक्ति करता है। वह कहता है "इसलिए न किसी पुरुष का बन्धन होता है, न गमनागमन तथा न मोक्ष। अनेक पुरुषों (चेतनों) के आश्रय में रहने वाली प्रकृति ही गमनागमन, बन्धन एवं मोक्ष प्राप्त करती है[२३]।" शरीर सम्बन्ध में रहने वाले पुरुष को भी एकदम अछूता बतलाना अतिरंजन ही है। एक ओर यह बतलाना कि पुरुषों को किसी प्रकार बन्धन ही नही है और दूसरी ओर यह बतलाना कि उसके मोक्ष के लिए प्रकृति प्रयत्न करती है, अपने आप में असंगत है। प्रकृति जड़ होने से वह पुरुष के लिए पुरुषार्थ नहीं कर सकती। "जैसे गाय के स्थन में बछड़े के लिए स्वयमेव जड़ दूध आ जाता है, वैसे पुरुष के मोक्ष के लिए प्रकृति प्रवृत्त होती है[२४]"—यह भी पुरुष को देह सम्बन्ध में भी बिलकुल निष्क्रिय सिद्ध करने के लिए कहा गया है। वस्तुतः चेतन स्वरूप से निष्क्रिय एव असंग हैं; परन्तु अनादि से वह भवबन्धनो में बधा है। वह सत्संग-विवेक-द्वारा स्वयं पुरुषार्थ कर प्रकृति से मोक्ष लेता है।

सांख्यकारिका पुरुष को साक्षी, द्रष्टा, अकर्ता, तटस्थ एवं कैवल्य[२५] तो कहती है, परन्तु वह कही पर भी उन्हें व्यापक नही कहती; क्योंकि अनेक पुरुष व्यापक नहीं हो सकते। एक की व्यापकता को दूसरा रोकेगा। जब सभी पुरुष अखंड, अविनाशी है, तो वे व्यापक कैसे हो सकते है!

सांख्य दर्शन ईश्वर नहीं मानता इसलिए सांख्यकारिका ईश्वर की[२६] उपेक्षा कर जाती है, कही चर्चा ही नहीं करती। ईश्वरकृष्ण ने बहत्तरवी कारिका

२३. तस्मान्न बध्यते नापि मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥ ६२॥

२४ सांख्यकारिका ५७। २५. सांख्यकारिका १९।

२६. भारतीय पंडितों द्वारा प्रशंसित 'द्वादश-दर्शन-कानन-पंचानन' वाचस्पति मिश्र ने ५७वीं कारिका का भाष्य करते हुए, जिसमें कहा गया कि प्रकृति स्वयं क्रिया-शील है, ईश्वर की आलोचना की है। वे कहते हैं "न ह्यवाप्तसकलेप्सितस्य भगवतो जगत् सृजतः किमप्यभिलषितं भवति। नापि कारुण्यादस्य सर्गे प्रवृत्तिः, प्राक् सर्गाज्जीवानामिन्द्रियशरीरविषयानुत्पत्तौ दुःखाभावेन कस्य प्रहाणेच्छा कारुण्यम्? सर्गोत्तरकालं दुःखिनोऽवलोक्य कारुण्याभ्युपगमे दुरुत्तरमितरेतराश्रयत्वं दूषणं, कारुण्येन सृष्टिः सृष्ट्या च कारुण्यमिति।"

में कह दिया है "यह जो सत्तर कारिकाओं के (सांख्यकारिका नामक) ग्रंथ में पदार्थ निरूपित है ये वही है जो 'षष्टितंत्र' नामक सम्पूर्ण ग्रंथ के प्रतिपादित विषय हैं। केवल इसमें आख्यायिका (दृष्टांत-कहानी) एवं परमत खंडन नहीं है[२७]।" इससे यह सिद्ध होता है कि सांख्य दर्शन का कोई वृहद्ग्रंथ 'षष्टितंत्र' था, जो काल-कवलित हो गया है। राहुल सांकृत्यायन जी ने लिखा है "ईश्वर-कृष्ण तथा माठर के कथनों से मालूम होता है कि विचारक कपिल के उपदेशों का एक बड़ा संग्रह था जिसे 'षष्टितन्त्र' कहा जाता था। ईश्वरकृष्ण ने षष्टि-तन्त्र के कथानकों तथा परवादों को हटाकर दर्शन के असली तत्व को सत्तर आर्या श्लोकों में गुंफित किया। इससे यह भी मालूम होता है कि षष्टितन्त्र बौद्धों के पिटक और जैनों के आगमों की भांति एक वृद्ध सांप्रदायिक पिटक

अर्थात—संसार-रचना में ईश्वर को क्या प्रयोजन होगा, क्योंकि वह पूर्णकाम है। जगत रचने में ईश्वर की करुणा भी नहीं दिखती, क्योंकि सृष्टि के पहले जीवों के पास इंद्रिय-शरीर आदि न होने से उन्हें कोई दुःख ही नहीं रहा होगा, फिर किसको दूर करने के लिए ईश्वर को करुणा होगी? करुणा तो दूसरों के दुःखों को दूर करने की इच्छा ही है। करुणा से सृष्टि मानने से तो 'करुणा-भाव से सृष्टि होती है और सृष्टि होने पर करुणाभाव उत्पन्न होता है'—यह अन्योन्याश्रयदोष उपस्थित होगा।

अपि च करुणया प्रेरित ईश्वरः सुखिन एव जन्तून् सृजेन्न विचित्रान्। कर्मवैचित्र्याद् वैचित्र्यमिति चेत्, कृतमस्य प्रेक्षावतः कर्माधिष्ठानेन? तदनधिष्ठान मात्रादेवाचेतनस्यापि कर्म्मणः प्रवृत्त्यनुपपत्तेः तत्कार्यशरीरेन्द्रियविषयानुत्पत्तौ दुःखनिवृत्तेरपि सुकरत्वात्।

अर्थात—एक बात और है, यदि ईश्वर करुणा करके सृष्टि रचता है तो उसे केवल सुखी प्राणियों का सृजन करना चाहिए, दुःख-सुख संयुक्त विविध प्रकार नहीं। यदि यह कहो कि जीवों के शुभाशुभ विविध कर्म होने से उनके भोग भी सुख-दुःखादि के अनेक प्रकार हो जाते हैं, तो ईश्वर को कर्मों का अधिष्ठाता मानने की क्या आवश्यकता? क्योंकि यदि ईश्वर कर्मों का अधिष्ठाता न रहे, तो जड़ कर्म जीव को फल-भोग देने के लिए प्रवृत्त न हो सकेगा और इसका फल होगा कि आगे शरीर, इन्द्रिय तथा विषयों की उत्पत्ति न होगी और जीव का दुःख दूर होना सरल हो जायगा। फिर ईश्वर को करुणा करके जगत भी न रचना पड़ेगा।

२७. सप्तत्यां किल येऽर्थास्तेऽर्थाः कृत्स्नस्य षष्टितन्त्रस्य।
आख्यायिकाविरहिताः परवादविवर्जिताश्चापि ॥ ७२ ॥

था; जिसमें बुद्ध और महावीर के उपदेशों की भांति कपिल—और शायद उनके शिष्य आसुरि—के उपदेश और संवाद संग्रहीत थे[२८]।"

जो आजकल सांख्य दर्शन सूत्र के रूप में कपिल के नाम से प्रचारित है, उसे विद्वान प्रामाणित नही मानते। क्योंकि यह ग्रन्थ ईश्वरकृष्ण, शंकराचार्य एवं माधवाचार्य आदि की जानकारी मे नही है। अतएव सांख्य दर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ ईश्वरकृष्णरचित सांख्यकारिका ही होने से इसी का प्रयोग किया जाना ठीक है।

कपिल का परम सूत्र हमें याद कर लेना चाहिए 'नास्मि, न मे, नाहम्' अर्थात न मैं क्रियावान हूं, न मेरा भोक्तृत्व है और न मै कर्ता हूं, किन्तु साक्षी, तटस्थ, द्रष्टा, अकर्ता एवं असंग हू।

९
योग-दर्शन

योग का अर्थ

सरसरी निगाह से देखेने पर योग का अर्थ जोड़ या जोड़ना होता है; परन्तु योग-दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्तियो का सर्वथा रुक जाना, अर्थात मन की संकल्प-हीनता ही योग है, और अततः योग है पुरुष का प्रकृति से सदैव के लिए वियोग, जैसा कि भोज कहते है "पतंजलि मुनि की अपूर्व कही हुई वाणी की जय हो, जिसके द्वारा प्रकृति और पुरुष के वियोग को भी योग कहा गया है[१]।" आध्यात्मिक उन्नति के परम शिखर पर पहुचने के लिए योग की परम आवश्यकता है। इसीलिए अध्यात्म-चिंतन-प्रधान भारत देश में इसकी बहुलता रही है, और हर सम्प्रदाय के साधकों ने इससे लाभ लिया है। दर्शन के सूक्ष्म विश्लेषण और चिंतन तभी काम देते है जब वैराग्य-द्वारा एकांत में मन-वाणी को मौन कर अपनी चेतना की गहराई मे उतरा जाय।

योग की परम्परा

योग का प्रचार तो किसी-न-किसी प्रकार हड़प्पा-युग और वैदिक-युग से ही है। उपनिषदो में योग की चर्चा है। बुद्ध और महावोर स्वामी तो योग

२८. दर्शन दिग्दर्शन, कपिल, पृष्ठ ५४३-४४।

१. पतञ्जलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ।
पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया ॥ भोज ॥

में धुरंधर थे ही। अतएव योग का प्रचार बहुत पहले से था। बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में पहले से योग का सविस्तार वर्णन है। कहा जाता है ईसा की तीसरी[२] शताब्दी में महर्षि पतंजलि ने 'योग-दर्शन' नामक शास्त्र की रचना की और पूर्व से चली आयी हुई योग-प्रक्रिया का सूत्रों में वर्णन किया। इसीलिए उन्होंने पहले ही सूत्र में कहा "परंपरा से प्राप्त योग संबंधित शास्त्र अब आरंभ करते हैं[३]।" पीछे से व्यास, वाचस्पति मिश्र, विज्ञानभिक्षु, भोज आदि ने भाष्य-टीकायें आदि लिखीं।

योग दर्शन में चार पाद (अध्याय) हैं, उनके नाम हैं समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यवाद। इनमें क्रमशः ५१, ५५, ५५ तथा ३४ सूत्र हैं, जो कुल मिलाकर १९५ होते हैं।

योग-दर्शन का ईश्वर

महर्षि पतंजलि ने अपने पूर्ववर्ती सांख्य दर्शन का तत्व-विचार पूरा-का-पूरा स्वीकार कर लिया है। अर्थात सांख्य के २५ तत्व अपने दर्शन में रख लिया है। उसमें एक ईश्वर को मिलाकर २६ कर दिया है। परन्तु योग का ईश्वर न जगत रचता है न जीवों को कर्म-फल-भोग देता[४] है; किन्तु वह कर्म, क्लेश, आशय एवं विपाक से मुक्त मुमुक्षुओं के लिए आदर्श रूप रहता है। जब एक बार ईश्वर की कल्पना कर ली गयी, तो उसको कुछ काम तो देना ही पड़ेगा, अतः बताया गया कि वह सबका आदि गुरु है और उसको प्रणव (ॐ) के नाम से जाना जाता[५] है। अनेक साधनो में यह भी एक साधना है कि उसकी शरण ली जाय[६]।

चित्तवृत्तियां तथा उनका निरोध

योग दर्शन के पुरुष (चेतन जीवों) को किसी ईश्वर की प्राप्ति नहीं करना है; किंतु उन्हें योगाभ्यास द्वारा चित्त को शांत कर जड़ प्रकृति से अपना पिंड छुड़ा लेना है। महर्षि पतंजलि बतलाते है "चित्त की वृत्तियों का निरोध

२. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/३३७।
३. १/१।
४. "ईश्वर पतंजलि के सम्प्रदाय का अंतरंग भाग नहीं है......वह ईश्वरवाद की कल्पनात्मक रुचियों से अधिक वास्ता नहीं रखता।"
(सर राधाकृष्णन भा० द० २/३६३)
५. योग-दर्शन १/२३-२७।
६. १/२३।

(अंत) करना ही योग है[७] ।" इसका फल होता है "द्रष्टा (चेतन पुरुष) का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना[८] ।" क्योंकि जब वह अपने स्वरूप में स्थित नहीं रहता "तब चित्त की वृत्ति को ही अपना स्वरूप मान बैठता है[९] ।"

चित्त की वृत्तियां पांच प्रकार की हैं, जो प्रत्येक क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट अर्थात साधक और बाधक हैं। वे पांच वृत्तियां हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। योग भी सांख्य की तरह तीन प्रमाण मानता है—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन प्रमाणो के द्वारा निर्णीत यथार्थज्ञान 'प्रमाणवृत्ति' है। मिथ्या एवं संशययुक्त ज्ञान को 'विपर्ययवृत्ति' कहते है। 'विकल्पवृत्ति' उसे कहते हैं जो शब्द ज्ञान से तो उत्पन्न होती है, परन्तु तथ्य से शून्य होती है, जैसे खरगोश के सींग। जागृति और स्वप्न से सर्वथा रहित गाढ़ी सुषुप्ति को 'निद्रावृत्ति' कहते हैं, और जिस ज्ञान का अनुभव हो गया है उसकी पूरी याद-गीरी को 'स्मृतिवृत्ति' कहते है[१०] । ये वृत्तियां यदि वैराग्य में सहायक होती है तो अक्लिष्ट हैं तथा यदि उसके बाधक है तो क्लिष्ट है।

उपर्युक्त चित्त की वृत्तियों का अभ्यास और वैराग्य द्वारा निरोध करना चाहिए[११] । चित्त की स्थिरता के लिए यत्न करना अभ्यास है[१२] । परन्तु यह अभ्यास, श्रद्धापूर्वक बहुत काल तक निरन्तर करते रहने से दृढ़भूमि एवं स्थिर होता है[१३] । जब देखे और सुने हुए विषयो से पूर्ण वितृष्णा=अनासक्ति हो जाती है, तब इसे 'वशीकार-वैराग्य' कहते है[१४] । इसको 'अपर-वैराग्य' भी कहते हैं। परन्तु जब पुरुष (चेतन) के ज्ञान से प्रकृति के गुणों मे पूर्ण वितृष्णा हो जाती है, तब इसे परम-वैराग्य एवं 'पर-वैराग्य' कहते है[१५] । जिनकी साधना तीव्रता से चलती है, वे आसन्नः (शीघ्र) समाधि को प्राप्त हो जाते हैं[१६] ।

७. योगश्चित्तवृत्तिनिरोध ॥ १/२ ॥
८. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ १/३ ॥
९. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ १/४ ॥
१०. योग-दर्शन १/५-११ ॥
११. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १/१२ ॥
१२. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १/१३ ॥
१३. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमि ॥ १/१४ ॥
१४. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १/१५ ॥
१५. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १/१६ ॥
१६. तीव्रसंवेगानामासन्न. ॥१/२१ ॥

विघ्न और निवारण

उक्त साधन में विघ्न भी आते हैं। शारीरिक व्याधि, सत्यान (अकर्मण्यता), संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति (वैराग्यहीनता), भ्रांतिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व (असफलता), अनवस्थिततत्व (ध्यान में न ठहर पाना)—ये नौ अंतराय (विघ्न) हैं[१७]। इसके साथ दुःख, दौर्मनस्य (क्षोभ), अंगमेजयत्व (अंगों का कंपन), श्वास, प्रश्वास की विवशता भी विघ्न हैं। इनको दूर करने के लिए एकतत्व का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात किसी शुभ जगह चित्त को लगाकर वहीं रोकना चाहिए[१८]।

चार भावनायें

मन को पवित्र करने के लिए निम्न चार साधन बहुत महत्वपूर्ण हैं। साधक को चाहिए कि वह सुखियों के प्रति मैत्री, दुखियो के प्रति करुणा, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता एवं पापियों के प्रति उपेक्षा (लापरवाही) की भावना रखे। ऐसा करने से उसके क्रमशः द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध समाप्त हो जायेंगे[१९]। इस तत्वज्ञान के अभ्यास में जब शोक-रहित प्रकाश की प्राप्ति होती है, तब चित्त शांत हो जाता है[२०]। जिनके राग-द्वेष निवृत्त हो गये हैं ऐसे वैराग्यवान संत पुरुष का ध्यान करने से भी मन एकाग्र हो जाता है[२१]। या जिसको जो स्वीकार हो उसका ध्यान करने से मन एकाग्र हो जाता है[२२]।

वैराग्य एवं समाधि

जब अभ्यास पूर्ण हो जाता है तब साधक का परमाणु से लेकर परम महत्व तक वशीकार हो जाता है। अर्थात वह सबसे अनासक्त होकर स्ववश हो जाता है। इस प्रकार जिसकी सब वृत्तिया क्षीण होकर चित्त स्फटिक मणि के समान स्वच्छ हो जाता है, वह जब चाहता है चित्त को किसी भी ध्येय में रोक देता है। इसे कहते हैं 'संप्रज्ञात समाधि[२३]।' साधक जब किसी भी वस्तु को ध्येय बनाकर उसमें अपने चित्त को एकाग्र कर देता है और उसमें उसका

१७. योग-दर्शन १/३० ॥ १८. योग-दर्शन १/३१-३२ ॥
१९. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त-प्रसादनम् ॥ १/३३ ॥
२०. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ १/३६ ॥
२१. वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ १/३७ ॥
२२. यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ १/३९ ॥
२३. योग-दर्शन १/४०, ४१।

चित्त विलम्ब तक स्थिर रहता है, तब इसे कहते हैं 'संप्रज्ञात-समाधि' इसी को 'सबीज' समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में बुद्धि निर्मल होती है। यह एकाग्र बुद्धि सत्य से भरी होती है[२४]। अर्थात स्थिर चित्त भ्रमरहित वस्तु, का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करता है। परन्तु फिर भी इसमें संसार का बीज है। इसीलिए इसे सबीज समाधि कहते हैं। भले ही इस अवस्था में प्रज्ञा निर्मल है, परन्तु प्रज्ञा भी एक वृत्ति ही है। अतः जब इसका भी अभाव हो जाता है। अर्थात जब सारे ध्येय के अवलम्बन से रहित होकर चित्त शून्य हो जाता है, शुभाशुभ सभी वृतियां निरुद्ध हो जाती है; तब यही 'असंप्रज्ञात-समाधि' एवं 'निर्बीज समाधि[२५] है। पारख दर्शन मे द्रष्टा अभ्यास ही सबीज या सप्रज्ञात समाधि है तथा दृश्यो का अन्त हो जाना निर्बीज या असंप्रज्ञात-समाधि है। इस विषय को तीसरे अध्याय के 'पारख समाधि' सन्दर्भ मे देखे।

सिद्धियां

किसी एक ध्येय में जब धारणा, ध्यान और समाधि हो जाती है, तब इस एकाग्रता को संयम कहते हैं। तीसरे पाद में बताया गया है "पदार्थों के परिणाम में संयम कर लेने से भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों काल का ज्ञान हो जाता है। शब्द, अर्थ, ज्ञान में संयम कर लेने से सम्पूर्ण प्राणियो की भाषा का ज्ञान हो जाता है। संस्कारों में संयम कर लेने से पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। दूसरे के चित्त का संयम द्वारा साक्षात कर लेने पर दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है। शरीर मे संयम कर लेने से योगी अन्तर्धान हो जाता है। कर्मो में संयम कर लेने पर मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। बलो मे सयम कर लेने से हाथी जैसा बल हो जाता है। प्रकाश में संयम कर लेने पर परदे के भीतर पड़ी देश-विदेश की वस्तुओ का ज्ञान हो जाता है। सूर्य मे संयम करने से समस्त लोको का ज्ञान हो जाता है। चन्द्रमा में संयम कर लेने से ताराओ का ज्ञान हो जाता है। ध्रुव तारा मे संयम कर लेने से ताराओ की गति का ज्ञान हो जाता है। नाभिचक्र में संयम कर लेने से शरीर की स्थिति का ज्ञान हो जाता है। कंठकूप मे संयम कर लेने से भूख-प्यास की निवृत्ति हो जाती है। मूर्धा की ज्योति में संयम कर लेने से सिद्ध पुरुषो के दर्शन होते है। सारतः संयम से योगी को सारी बातो का ज्ञान हो जाता है; सारे विषयो का अनुभव होने लगता है, योगी दूसरे के शरीर मे प्रवेश कर जाता है; योगी की उर्ध्व-गति होती है और पानी-कीचड़ के ऊपर चलते हुए उसे कुछ स्पर्श नही करता;

२४. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ १/४८ ॥
२५. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ १/५१ ॥

आकाश में उड़ने लगता है; अणिमा, लघिमा आदि सभी सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं, योगी सर्वज्ञ हो जाता है, इत्यादि[२६]।"

पंचक्लेश तथा सर्वमेव दुःख

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश—ये पांच क्लेश हैं। अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्म-जड़ में नित्य, पवित्र, सुख एवं आत्मा (चेतन) का भ्रम होना अविद्या है; चित्त और चेतन का संयोग अर्थात संकल्पों को अपना स्वरूप मान लेना अस्मिता है; सुखासक्ति राग है; जहां से दुःख प्रतीत हो, वहां द्वेष होता है तथा मृत्यु का भय अभिनिवेश है[२७]। सांसारिक भोगों में परिणाम, ताप, संस्कार एवं गुणवृत्ति विरोध का दुःख होने से सारे भोग दुःखपूर्ण ही हैं[२८]। इसीलिए जो दुःख अभी नहीं आया है ऐसे आगामी जन्म के संस्कारों का त्याग करना आवश्यक है[२९]।

दृश्य से द्रष्टा का अलगाव

उपर्युक्त दुःखों का कारण है द्रष्टा चेतन पुरुष का दृश्य जड़ में मिले रहना। अतएव यह संयोग विवेक से त्यागने योग्य है[३०]। द्रष्टा चेतन मात्र होने से यद्यपि शुद्ध है तथापि बुद्धि-वृत्ति को देखने से वह द्रष्टा कहलाता है। बुद्धि-वृत्ति को हटा देने पर वह शुद्ध चेतन मात्र है[३१]। अविद्या के अभाव हो जाने पर प्रकृति-पुरुष के संयोग का अभाव हो जाता है। यही चेतन का कैवल्य =अकेलापन है[३२]। जीव का प्रकृति से छुटकारा के लिए दृढ़ एव निर्मल विवेक ही साधन है[३३]। फिर उसकी बुद्धि अंतिमी सात भूमिकाओं वाली हो जाती है[३४]।

उक्त प्रज्ञा की सप्त भूमियां ये है—(१) जो जानना था जान लिया—द्रष्टा-दृश्य का भेद, (२) त्यागना था वह त्याग दिया—जड़ दृश्य, (३) प्राप्त

२६. योग-दर्शन ३/१४—४९।
२७. योग-दर्शन, २/३-९।
२८. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ २/१५ ॥
२९. हेयं दुःखमनागतम् ॥ २/१६ ॥
३०. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ २/१७ ॥
३१. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २/२० ॥
३२. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २/२५ ॥
३३. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २/२६ ॥
३४. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २/२७ ॥

करना था सो पा लिया—कैवल्य, (४) करना था सो कर लिया—निर्मल विवेक, (५) चित्त का काम था, प्रारब्ध भोग तथा मोक्ष कराना—वह हो गया, (६) चित्त अपने कारण रूप गुणों में लीन हो गया, अब उसका कोई काम शेष न रहा तथा (७) पुरुष गुणातीत होकर निश्चलतापूर्वक अपने स्वरूप में स्थित हो गया। इनमें पहले की चार कार्यविमुक्ति प्रज्ञा कहलाती है तथा पीछे की तीन चित्तविमुक्ति प्रज्ञा[३५]। महर्षि पतंजलि साधक को सावधान करते है कि लोक-पाल देवताओं के भी बुलाने पर साधक को न उसमें राग करना चाहिए और न अभिमान ही; क्योंकि यदि ऐसा किया तो साधक का अनिष्ट हो जायगा[३६]। यह विवेक से उत्पन्न हुआ ज्ञान ही सब कुछ को सब प्रकार से बिना क्रम के जानने वाला तथा संसार-सागर से तारने वाला है[३७]। बुद्धि और चेतन पुरुष जब दोनों समान भाव से शुद्ध हो जाते हैं, या जैसे चेतन शुद्ध है जब वैसे ही बुद्धि शुद्ध हो जाती है, तब पुरुष का कैवल्य हो जाता है[३८]।

योग के आठ अंग और कैवल्य

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि—ये योग के आठ अग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये 'यम' हैं। यदि ये जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से परे हो, तो ये महाव्रत हो जाते हैं। शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर (या सद्गुरु की) शरणागति —ये 'नियम' है। सुखपूर्वक देर तक बैठने का नाम 'आसन' है। श्वास बाहर निकालना रेचक, भीतर ले जाना पूरक एवं समभाव में रोक देना कुभक है—यही 'प्राणायाम' है। इन्द्रियो का विषयो से रहित होना 'प्रत्याहार' है[३९]। शरीर के भीतर या बाहर कही भी एक देश में चित्त को ठहराना 'धारणा' है। ध्येय मे वृत्ति का एकरस लगे रहना 'ध्यान' है। जब चित्त की चंचलता दूर होकर केवल ध्येय ही रह जाता है, तब यही 'समाधि' है। धारणा, ध्यान एवं समाधि की एकता ही 'संयम' है[४०]। जो विवेकज्ञान में रहते हुए उसकी महिमा एवं राग से भी विरक्त हो जाता है, उसका विवेक निरन्तर प्रकाशमान रहता है और धर्ममेध-समाधि की प्राप्ति होती है। उससे उसके

३५. योग-दर्शन, गीता प्रेस।
३६. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्॥ ३/५१॥
३७. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्॥ ३/५४॥
३८. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्॥ ३/५५॥
३९. योग-दर्शन २/२९-५४।
४०. वही ३/१-४।

सारे क्लेश नष्ट हो जाते हैं। उस समय उस साधक के सब भांति परदे हट जाते हैं और उसकी सारी मलीनतायें समाप्त हो जाती हैं। उसके सामने सारे ज्ञेय-पदार्थ (दृश्य माया) अल्प एवं तुच्छ हो जाते हैं। वह ज्ञानी कृतार्थ हो जाता है[४१]। ऐसे पुरुष के लिए "जब गुणों का पुरुषार्थ शून्य हो गया, अर्थात पुरुष के लिए जब गुणों को कुछ करना नहीं रहा, तब गुण अपने कारण में विलीन हो गये। यही कैवल्य है या द्रष्टा का अपने चेतन स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना है[४२]।"

तुलना

चेतन और जड़[४३]—दोनों अपने-अपने स्वरूप में नित्य हैं। जड़ से चेतन सर्वथा पृथक एवं नाना हैं। जड़-चेतन की ग्रन्थि ही बन्धन है। विवेक-वैराग्य-द्वारा जड़ासक्ति छोड़कर चेतन का अपने स्वरूप मे स्थित हो जाना ही मोक्ष है—यही पारख सिद्धान्त है तथा करीब-करीब यही योग-दर्शन बतला रहा है। पारख से योग के विचारों में भिन्नता है केवल कुछ योग-सिद्धि की अतिशयोक्तियों तथा पुरुष विशेष (ईश्वर) की कल्पना को लेकर। परन्तु ये दोनों योग के अंतरंग के अंश नहीं हैं।

महर्षि पतंजलि के समय में सिद्धियों की उपर्युक्त सारी मिथ्या धारणायें फैली हुई थी और पतंजलि जी ने उक्त कल्पित धारणाओं को सूत्रबद्ध कर यहां इकट्ठा कर दिया। चूंकि ऐसी धारणाओं की चर्चा ऋग्वेद में भी है "मुनि लोग आकाश में उड़ सकते है और सारे पदार्थो को देख सकते हैं।... मुनि लोग वायु मार्ग पर घूमने के लिए अश्व स्वरूप है...[४४]।" लोग वेद, शास्त्र और आप्तवचन के मोह में पड़कर वास्तविक विवेक नही करते। भारत में पहले बहुत योगी थे और वे सिद्धि-प्राप्त सर्वज्ञ एवं सारे गुप्त-प्रकट पदार्थों एवं समग्र विश्व का ज्ञान रखते थे, तब भूगोल, भूगर्भ तथा पदार्थ विज्ञान के विषय में आज तक क्यों इतना अंधकार छाया था ? ऋषि लोग चन्द्रमा तक

४१. वही ४/२६-३२।

४२. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्ते-रिति ॥४/३४॥

४३. योग-दर्शन कहता है कि बाह्यजगत हमारे चित्त से पृथक एक स्वतन्त्र सत्ता है। हमारा चित्त उसे जाने या न जाने जगत नित्य बना रहता है। अतः जगत चित्त-विलास नहीं, किन्तु अपने क्षेत्र में बदलते हुए भी यथार्थ है। (योग-दर्शन ४/१५-१६)

४४. ऋग्वेद, १०/१३६/४-५।

को सूर्य से बहुत आगे बताते थे, जबकि वह सूर्य के बहुत पहले एवं पृथ्वी के निकट है[४५]। अतएव ये सिद्धियां कल्पित है। फिर कल्याण के लिए बाधक हैं, यह तो महर्षि पतंजलि ने भी कहा है।

योग-दर्शन का उद्देश्य है योग-द्वारा स्वरूपस्थिति की प्राप्ति। यह कोई हठ योग नही है, किन्तु पारख सिद्धान्त के ही अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध कर समाधि प्राप्त करना है। यह शम, दम, विवेक, वैराग्य, एकान्त सेवन, वाक्य संयम पूर्वक निरन्तर अभ्यास से संभव है। यह योग बाहर से पूर्णतया नहीं बताया जा सकता। व्यास जी ने ठीक ही कहा है "योग से ही योग को जाना जाता है, योग ही योग का उत्प्रेरक है। जो साधक योग के प्रति जागरूक है, वह सदैव योग मे ही रमता है।"

योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगे रमते चिरम्[४६]॥

१०
वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन के विचार बहुत प्राचीन हैं। इसको प्रथम सूत्रबद्ध कर समाज के सामने उपस्थित करने वाले महर्षि कणाद है। इनके समय के विषय में काफी मतभेद है। कोई इन्हें ईसा से डेढ़ सौ वर्ष बाद[१] मानता है और कोई ईसा के पांच या छह सौ वर्ष पहले[२]। कणाद को निश्चित ही बुद्ध के पहले होना चाहिए। वैशेषिक दर्शन मे दस अध्याय तथा हर अध्याय मे दो-दो आह्निक है।

इनके पीछे इनके शास्त्र पर अनेक भाष्यकार एवं टीकाकार हुए जैसे रावण, प्रशस्तपाद, व्योमशिवाचार्य, उदयनाचार्य, श्रीधराचार्य, वल्लभाचार्य, अन्नंभट आदि।

पदार्थ

महर्षि कणाद अपने वैशेषिक दर्शन से छह पदार्थ गिनाये हैं। उनके नाम है—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय[३]। पीछे के टीकाकारों

४५. कस्मिन्नु खल्वादित्यलोका ओताश्च प्रोताश्चेति चन्द्रलोकेषु गार्गीति। सूर्य लोक किसमें ओतप्रोत है? गार्गी! चन्द्रलोक में। (बृहदा० उप० ३/६/१)

४६. योगभाष्य ३/६।

१. राहुल, दर्शन दिग्दर्शन। २. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन।

३. वैशेषिक दर्शन १/१/४।

ने एक पदार्थ अभाव भी जोड़कर सात बना दिया है। पदार्थ का यौगिक अर्थ है पद का अर्थ। अर्थात वह वस्तु जिसका नाम हो और जो जानने में आये।

१. द्रव्य

द्रव्य नौ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन[४]। जिसमें क्रिया और गुण हों तथा जो कार्य का समवायि (नित्य) कारण हो उसे द्रव्य कहते हैं[५]। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में परमाणु होते हैं। ये तत्व परमाणु रूप में नित्य हैं। उस समय परमाणु की बड़ी मोटी परिभाषा थी। दीवार या छत के छिद्र से घर में आयी हुई किरणों में जो सूक्ष्मतम कण नाचते हुए दिखते हैं, वे त्रसरेणु हैं और उनका छठां हिस्सा परमाणु है[६]। आजकल कहा जाता है कि जल की एक बूंद में छह हजार शंख परमाणु होते हैं।

आकाश निष्क्रिय और अदृष्ट है। आकाश एक पदार्थ है यह कैसे सिद्ध हो ? कणाद कहते हैं कि 'शब्द' एक गुण है। वह किस पर लादा जाय ? गंध, रस, रूप, स्पर्श तो क्रमशः पृथ्वी, जल, तेज, वायु के गुण है, पर 'शब्द' किसके मत्थे मढ़ा जाय। अतः उसे हम आकाश के जिम्मे करते है[७]।

काल और दिशा व्यापक, निष्क्रिय[८] एवं गुणविहीन है। उपाधि-भेद से काल क्षण, पल, मिनट, घण्टा, दिन, वर्ष आदि के रूप में तथा दिशा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि खण्ड रूप मे भी हैं। काल और दिशा किसी कार्य के समवायि (उपादान एवं नित्य) कारण नही हैं। ये केवल निमित्त कारण है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा के बाद 'आत्मा' आठवा द्रव्य है। जड़ शरीर में आत्मा निवास करता है। इसका लक्षण है सांस लेना-छोड़ना, पलक खोलना-मींचना, अवस्था बदलना या घाव का भर जाना, मन की गति होना, इन्द्रियो की गति होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न—

४. वही १/१/५।
५. वैशेषिक १/१/१५।
६. जालान्तरगते भानो यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
तस्य षष्ठतमो भागः परमाणुः स उच्यते॥
७. परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य। २/१/२७। अर्थात स्पर्श आदि चार गुणों से बचा हुआ शब्द गुण आकाश का है।
८. वैशेषिक ५/२/२१।

यह सब आत्मा होने के लक्षण हैं[९]।" "'अहम' अर्थात 'मैं' इस शब्द से भी शरीर से भिन्न आत्मा का ज्ञान होता है[१०]।" आत्मा की, मन तथा इन्द्रियों से पृथक नित्य सत्ता है। आत्मा एक नहीं, किन्तु असंख्य एवं नाना हैं। इसका प्रबल प्रमाण है जगत व्यवस्था। कोई सुखी, कोई दुखी, कोई रागी तथा कोई विरागी, कोई जन्म ले रहा है, कोई मर रहा है। अतः आत्मायें नाना हैं[११]। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया……" (ऋग्वेद १/१६४/२०) रागी-विरागी दो प्रकार जीव है के वचनानुसार वेद भी आत्मा को नाना ही बतलाता है[१२]।

वैशेषिक दर्शन का अंतिम नवां द्रव्य मन है जो उनके अनुसार परमाणुओं से बना[१३] हुआ और अणु है, व्यापक नही। जैसे शब्द आदि बाहरी विषयो को ग्रहण करने के लिए श्रवग आदि ज्ञानेन्द्रिया हैं, वैसे भीतरी सुख-दुःख का अनुभव करने का साधन मन है। आत्मा तथा इन्द्रियों के रहते हुए भी कभी-कभी सामने से व्यक्ति निकल जाता है, परन्तु हमें ज्ञान नही होता। इसका कारण यही है कि इन्द्रिय तथा आत्मा के बीच में एक कड़ी मन है, वह जिस समय टूट जाती है सामने विषयो का ज्ञान नही होता। मन व्यापक नही है। यदि वह व्यापक होता तो एक साथ सब कुछ का ज्ञान हो जाता, किन्तु हमें एक विषय का ज्ञान एक ही काल में होता है। यदि हम मिष्ट और सुगन्धित लड्डू खाते हैं तो उस समय पांचो विषय सामने हैं—लड्डू का रूप, उसके गंध, स्वाद और स्पर्श तथा खाने की क्रिया से उत्पन्न हुआ शब्द। लगता है कि हम उस समय पांचों विषयो का ज्ञान एक ही साथ कर रहे हैं, परन्तु ऐसा होता नही। सूक्ष्मता से अध्ययन करने से पता चलता है कि जिस क्षण हम स्वाद का अनुभव करते हैं, उस क्षण शब्द नही सुनते इत्यादि। सौ पान के पत्ते तर-ऊपर रखकर यदि हम उसमे कील ठोकें तो लगता है कि एक ही बार कील सौवो पत्तो को छेद दिया; परन्तु विचार करके देखें, तो एक-एक पत्ता क्रमशः ही छिदा है, इसी प्रकार मन एक क्षण में एक ही वस्तु का ज्ञान करता है; परन्तु उसमे अति तीव्रता होने से वह शीघ्र-शीघ्र ज्ञान ग्रहण करता है।

९. प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः
सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि। ३/२/४।
१०. वही ३/२/६, १४, १८।
११. व्यवस्थातो नानाः। ३/२/२०।
१२. शास्त्रसामर्थ्याच्च ३/२/२१।
१३. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/१८८।

२. गुण

कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में सत्तरह गुण गिनाये हैं, यथा रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या (गिनती), परिमाण (माप), पृथकत्व (व्यक्तित्व), संयोग, विभाग, परत्व (पूर्ववर्तित्व), अपरत्व (पश्चातवर्तित्व), बुद्धि (ज्ञान), सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न[१४]। पीछे के प्रसिद्ध भाष्यकार प्रशस्तपाद ने ऊपर के गुणों की सूची में सात गुण और मिला दिये हैं। वे हैं गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह (चिकनापन), धर्म, अधर्म, शब्द एवं संस्कार। इस प्रकार कुल चौबीस गुण हैं। उक्त सूची में भौतिक तथा मानसिक दोनों गुणों का समावेश है।

रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द—ये प्रसिद्ध पांच विषय हैं। एक, दो, तीन आदि गिनती ही संख्या है। परमाणु से लेकर स्थूल वस्तुओं में परिमाण होता है। बड़ा, छोटा, मोटा, पतला आदि ही माप है, जो परिमाण है। पृथकत्व का अर्थ एक वस्तु से दूसरे का अलग होना। संयोग दो पदार्थों का मिल जाना है। संयोग तीन प्रकार हैं (१) एक तरफ से संयोग, जैसे एक पक्षी का उड़कर पेड़ पर बैठ जाना, (२) दोनों तरफ से संयोग, जैसे दो मित्रों का परस्पर आलिंगन करना। यह उभयकर्मज संयोग है, (३) संयोगज संयोग, जैसे कलम से कागज का संयोग होने से हाथ, कुर्सी, टेवल आदि कई पदार्थों का संयोग होता है। विभाग कहते है मिले हुए पदार्थों का अलग हो जाना। परत्व तथा अपरत्व देश और काल की दृष्टि से दूर और निकट को कहते हैं। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आत्मा के गुण माने हैं। गुरुत्व वस्तुओं के वजन को कहते हैं। द्रवत्व पतलापन या बहने के स्वभाव को कहते हैं। स्नेह का अर्थ है चिकनापन, जिससे वस्तु बंध जाती है। धर्म तथा अधर्म आत्मा के गुण माने है जिससे उसे क्रमशः सुख एवं दुःखो की प्राप्ति होती है। संस्कार वेग, भावना आदि को कहते है।

३. कर्म

कर्म का अर्थ यहां जीव की इच्छा से होने वाले मानसिक, वाचिक तथा कायिक कर्मो से नहीं है। यहा कर्म वैशेपिक दर्शन का एक तीसरा पदार्थ है जो द्रव्य में रहता है। गुण द्रव्य मे स्थायी हैं और क्रिया क्षणिक है। शरीर में वजन होना उसका एक गुण है; परन्तु उसका गिरना संयोगवशात है। द्रव्य में गुण निरन्तर रहता है और कर्म समय-समय पर घटित होता है। कर्म में कोई गुण नही होता। वह केवल वस्तुओ के संयोग तथा वियोग का कारण

१४. वैशेषिक १/१/६।

बनता है। कर्म पांच प्रकार के होते हैं "(१) उत्क्षेपण (ऊपर को जाना, उछलना), (२) अवक्षेपण (नीचे गिरना), (३) आकुंचन (सिकुड़ना), (४) प्रसारण (फैलना) तथा (५) गमन (चलना)[१५]।" परन्तु ये क्रियायें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और मन ये पांच ही द्रव्य में होना संभव है; क्योकि ये अणु है, और आकाश, काल, दिशा एव आत्मा ये चार द्रव्य विभू (व्यापक) होने से उनमें क्रियायें संभव नही[१६]।

४. सामान्य

'सामान्य' वैशेषिक का चौथा पदार्थ है। सामान्य का अर्थ है सार्वभौमता, अर्थात जो सब मे पाया जाय। सामान्य को हम सापेक्ष तथा निरपेक्ष —दो भागों में बांट सकते हैं। सापेक्ष उसे कहते हैं जो दूसरे पर अवलंबित हो, और निरपेक्ष वह है जो स्वावलंबी हो, स्वतन्त्र हो। जैसे अनादिकाल के जगत में असंख्य मनुष्य पैदा होकर मर गये, आगे भी पैदा होकर मरेंगे, परन्तु उन सब में मनुष्यत्व=मानवपन एक सामान्य गुण है जो सब में रहता है। इसी प्रकार सारी गायों में जो गोत्व=गायपन है, वह सामान्य है। परन्तु यह सब सापेक्ष सामान्य है अर्थात मनुष्य और गाय पर ये सामान्य अवलंबित हैं। परन्तु मनुष्य में गायपन नही और गाय में मनुष्यपन नही। इसी प्रकार प्राणी-पदार्थो के हजारो भेद जो अपनी जाति में सामान्य है और दूसरी जाति की दृष्टि से सामान्य न रह कर विशेष हो जाते हैं। अतः ये सब सामान्य सापेक्ष हैं।

निरपेक्ष सामान्य 'सत्ता' है। गाय 'है', मनुष्य 'है', पत्थर 'है', सोना 'है', पृथ्वी 'है', आकाश 'है'। इस प्रकार सभी में होनापना 'सत्ता' है यह निरपेक्ष सामान्य है। बारम्बार सत्ता की उपस्थिति देखने से 'सत्ता' ही सामान्य है[१७]।

५. विशेष

विशेष सामान्य का बिलकुल उलटा है। विशेष उसे कहते हैं जो किसी वस्तु को दूसरे से अलग करने के चिन्हो को प्रकट करे। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु के प्रत्येक परमाणु में अपनी एक विशेषता है जो उसे दूर से अलग करती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के परमाणुओं एवं आकाश, काल, दिशा,

१५. उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि। वैशेषिक १/१/७।
१६. दिक्कालावाकाशञ्च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि। वैशेषिक ५/२/२१।
१७. भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव। वैशेषिक १/२/४।

आत्मा एवं मन में 'विशेष' रहता है। मूल द्रव्य नित्य हैं, अतः उनमें रहे हुए विशेष भी नित्य हैं। यह 'विशेष' ही हमें मूल द्रव्यों तक पहुंचने का रास्ता बताता है। विशेष एक विश्लेषण है जो वैज्ञानिक है। इस विशेष के नाते ही इस दर्शन का नाम वैशेषिक पड़ा है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से, एक आत्मा दूसरी आत्मा से, एक मन दूसरे मन से भिन्न करने के चिन्ह विशेष ही हैं।

६. समवाय

छठां पदार्थ समवाय है। मुख्य सम्बन्ध दो प्रकार का है। एक संयोग सम्बन्ध है तथा दूसरा समवाय सम्बन्ध है। दो स्वतन्त्र वस्तुओं का एक साथ हो जाना संयोगसम्बन्ध है, जैसे मिट्टी और जल का, ड्राइवर और गाड़ी का। संयोग-सम्बन्ध वाले पदार्थ बिना संयोग भी रहते हैं। जल से अलग मिट्टी तथा मिट्टी से अलग जल रह सकते हैं। इसी प्रकार गाड़ी और ड्राइवर भी अलग-अलग रह सकते हैं; परन्तु समवाय-सम्बन्ध कहते हैं नित्यसम्बन्ध को, जैसे जल और शीतलता, आग और गरमी, सूत और वस्त्र का सम्बन्ध। इनको अलग नही कर सकते। अर्थात जल से शीतलता, आग से गरमी तथा सूत से वस्त्र अलग नहीं कर सकते। घड़े से मिट्टी को कैसे अलग कर सकते हैं? उपादान कारण और कार्य का समवाय सम्बन्ध है।

अभाव

महर्षि कणाद ने अपने दर्शन में उक्त द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय—छह ही पदार्थ माना है। उनके पीछे के अनुयायियों ने 'अभाव' एक सातवां पदार्थ जोड़ दिया है। इसका मतलब यह नही है कि कणाद ने अपने दर्शन में अभाव की चर्चा ही नही की है। उन्होने नवे अध्याय के पहले आह्निक में इस पर विचार किया है; किन्तु इसे अपने पदार्थ में नहीं गिना है। अभाव चार प्रकार का होता है (१) प्राक्-अभाव, जैसे बनने के पहले घड़ा का अभाव; (२) प्रध्वंस-अभाव, जैसे टूट जाने के बाद घड़े का अभाव, (३) अन्योन्य-अभाव, जैसे घट में पट का अभाव तथा पट मे घट का अभाव। अर्थात पट का घट के रूप में अभाव है, और घट का पट के रूप मे अभाव है; और (४) अत्यन्त-अभाव, जैसे खरगोश के मस्तक पर सींग का अभाव, वायु-पुष्प का अभाव।

परमाणु

महर्षि कणाद कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्वों में जो इनका सूक्ष्मतम रूप होता है, वह परमाणु है। उनमें पुनः विभा-

जित नहीं किया जा सकता । वह अंतिम इकाई है । परमाणु निरवयव, अखंड, नित्य और अगोचर द्रव्य हैं । मिट्टी, पानी, आग, हवा कार्य रूप में तो बनते-मिटते हैं; परन्तु अपने सार (परमाणु) रूप में नित्य हैं । अतएव जगत में परिवर्तन केवल ऊपरी है । साररूप में जो परमाणु हैं वे नित्य हैं । महर्षि कहते हैं कि जो परमाणु को भी अनित्य कहता है, वह अविद्याग्रसित है[१८] । तात्पर्य यह कि इस सत्तात्मक जगत को मन का आभास नहीं कह सकते । यह मन से पृथक स्वतन्त्र सत्तायुक्त है ।

अदृष्ट

वैशेषिक दर्शन का 'अदृष्ट' बड़ा महत्वपूर्ण है । आध्यात्मिक जगत के पाप-पुण्य-कर्मों के संस्कारों का नाम अदृष्ट है और भौतिक जगत में उसकी गतिविधि का कारण अदृष्ट है । जड़-चेतनात्मक समस्त सृष्टि का सम्पादन अदृष्ट से होता है । महर्षि कहते है "अयस्कान्तमणि (चुम्बक पत्थर) की ओर लोहे की सूई की गति स्वाभाविक होती है[१९] । चुम्बक पत्थर की तरफ लोहा स्वयं खिंच जाता है । वृक्षो के अन्दर जल नीचे से ऊपर अपने आप चढ़ जाता है[२०] । यहां तक अग्नि की लपटो की ऊपर गति होना, वायु की तिरछी गति, परमाणु तथा मन की, सृष्टि की शुरुआत में गति होना यह सब भौतिक जगत की गतिविधि का कारण उसमें रहा हुआ अदृष्ट, अर्थात अदृश्यशक्ति ही है[२१] ।" इसी प्रकार जीवों के कर्मो के फल, शुभाशुभकर्मो के संस्कार रूप अदृष्ट से जीव को स्वतः मिलता है । अतएव महर्षि कणाद के दर्शन मे सृष्टि, जीवो के कर्म-फल-भोग तथा जगत की गतिविधि के लिए—कही भी ईश्वर की तनिक भी आवश्यकता नही है । अदृष्ट से यह सब स्वयं होता है । जीवों के अपने कर्म-संस्कारानुसार उन्हें उनके फल-भोग स्वयं मिलते है तथा जगत की गतिविधि का सम्पादन मूल जड़ द्रव्यो में रहे हुए अदृष्ट या विशेष गुण-धर्मो से स्वयं होता है ।

सृष्टि

महर्षि कणाद यह मानते हैं कि एक विशेष समय आने पर तत्त्वो के सारे परमाणु बिखर जाते है तथा सृष्टि लीन हो जाती है और जब समय का

१८. वैशेषिक ४/१/५ ।

१९. मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् । ५/१/१५ ।

२०. वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् । ५/२/७ ।

२१. अग्नेरूर्ध्वं ज्वलनं वायोस्तिर्यक्पवन मणूनां मनश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम् । ५/२/१३ ।

उपयुक्त चक्कर आता है, तब जीवों के अदृष्ट (कर्म संस्कारों) से प्रकृति के परमाणुओं में हलचल होना शुरू हो जाती है; क्योंकि सब जीव व्यापक हैं, प्रकृति के हरक्षेत्र में विद्यमान हैं। उनके साथ पूर्व के अदृष्ट हैं ही। अतः जीवों के अदृष्ट के जोर से परमाणुओं में हलचल होकर एक परमाणु दूसरे से लिपट जाते हैं। इनका नाम है द्रयणुक। तीन द्वयणुक, अर्थात छह परमाणु जब एक में मिल जाते है, तब उनका नाम हो जाता है त्रसरेणु। यह कहा जा चुका है कि जो छत की जाली या जंगलों से आयी हुई सूर्य-किरणों मे उड़ते हुए सूक्ष्मतम कण दिखते हैं, वे ही त्रसरेणु हैं। इन्ही से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि का संव्यूहन होकर जगत बन जाता है।

यह पहले बताया गया है कि वैशेषिक दर्शन में ईश्वर का स्थान नहीं है। यह सृष्टि जीवो के अदृष्ट तथा जड़ परमाणुओं के गुण-धर्मो से बनती तथा मिटती रहती है। केवल कार्यो का परिवर्तन होता है। मूल रूप परमाणु तो नित्य रहते हैं।

प्रमाण एवं वेद

वैशेषिक दर्शन बौद्धों के समान केवल दो[२३] प्रमाण मानता है प्रत्यक्ष तथा अनुमान। शब्द को यह स्वतंत्र प्रमाण नहीं मानता। कणाद वेदों को ऋषियों के रचे हुए बतलाते है। वे कहते है वेद की ऋचाओं के साथ ऋषियो के नाम आये हैं, अतः वे ही वेदो के कर्त्ता हैं[२४]। शब्द नित्य नही है, किन्तु अनित्य हैं, इसलिए हम वेदों के शब्दों को नित्य नहीं कह सकते। दूसरे अध्याय के दूसरे आह्निक में २१ से ३७ सूत्रो तक शब्दों की अनित्यता पर उन्होंने काफी प्रकाश डाला है। वैशेषिक दर्शन को, शब्दों को स्वतः प्रमाण न मानने के कारण ही, शब्दवादी स्वामी शंकराचार्य अर्धवैनाशिक, अर्थात आधा बौद्ध कहते हैं।

अविद्या चार प्रकार है—संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय (अनिश्चय) तथा स्वप्न; और विद्या भी चार प्रकार है—प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति[२५] एवं आर्ष[२६] (अंतर्दृष्टि प्राप्त ऋषियो के वचन)।

२३. बौद्धवैशेषिकौ द्वौ। मानमेयोदय १/६।

२४. वैशेषिक २/१/१८ तथा ६/१/१-२।

२५. आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृतिः। ९/२/६।
आत्मा और मन के विशेष संयोग से उत्पन्न हुए संस्कार को 'स्मृति' कहते हैं।

२६. आर्षसिद्धदर्शनञ्च धर्मेभ्यः। ९/२/१३।

आचार, नैतिकपक्ष एवं मोक्ष

समस्त भारतीय दर्शन दुःखों की निवृत्ति के लिए ही ऋषियों एवं संतों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। महर्षि कणाद शुरुआत में ही कहते हैं कि मैं धर्म की व्याख्या करने के लिए प्रस्तुत होता हू[२७]। उन्होने आगे के सूत्र में बताया "जिससे लौकिक उन्नति करते हुए मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है[२८]।" जब साधक पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सब तरफ से निर्भ्रान्त हो जाता है और अपने आत्मा को जड़ से सर्वथा पृथक समझ लेता है, तब उसे दृश्यो के प्रति वैराग्य उत्पन्न होता है और तभी वह मोक्ष का अधिकारी होता है। मोक्ष के लिए यथार्थ ज्ञान तथा वैराग्य दोनो की आवश्यकता है।

"जब आत्मा का इन्द्रिय, मन द्वारा विषयों से संबंध स्थापित होता है तब उसे सुख और दुःख के अनुभव होते है[२९]। और जब विषयो का अभाव कर मन आत्मा में ही स्थित हो जाता है तब शरीर (जीवन) के दुःखों का अंत हो जाता है, यही योग है[३०]। शरीर धारण और दुःखपूर्ण जन्मांतर इत्यादि तो अदृष्ट (कर्म संस्कारो) के कारण होता है[३१]। और वैराग्य द्वारा इनके नाश हो जाने पर, जीव मिथ्या ज्ञान तथा राग-द्वेष से रहित हो जाता है। फिर आगे अदृष्ट (कर्म-संस्कार) न रहने से आत्मा का जड़ से संयोग नहीं होता और इस प्रकार शरीर की रचना बन्द हो जाती है। बस यही मोक्ष है[३२]।" इस प्रकार महर्षि कणाद का तत्त्वज्ञान द्वारा धर्म की सिद्धि बतला कर मोक्ष निरूपण उचित ही है।

२७. कुछ पंडितों का विचार है कि कणाद ने पहले प्रतिज्ञा तो अवश्य की कि मै धर्म की व्याख्या करने जा रहा हूं, परन्तु वे उसे न कर पदार्थो की व्याख्या करने लगे। उन्होंने इच्छा की हिमालय जाने की और चले गये समुद्र की ओर। यथा—

धर्मं व्याख्यातुकामस्य षटपदार्थोपवर्णनम्।
हिमवद्गन्तुकामस्य सागरागमनोपमम्॥

परन्तु सूक्ष्मता से देखा जाय तो कणाद ने धर्म की ही व्याख्या की है। उन्होंने छह पदार्थों के वर्णन के माध्यम से जड़-चेतन का निर्णय कर मोक्ष-पथ की ओर जिज्ञासुओं को प्रेरित किया है।

२८. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। १/१/२।

२९. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदु:खे। ५/२/१५।

३०. तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि, शरीरस्य दुःखाभावः स योगः। ५/२/१६।

३१. वैशेषिक दर्शन ५/२/१७।

३२. तद्भावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्चमोक्षः। ५/२/१८।

तुलना

पहले पदार्थ में नौ द्रव्यों का वर्णन है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। पारख सिद्धान्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और असंख्य जीव (आत्मा) को ही द्रव्य मानता है; आकाश, काल, दिशा को कदापि नहीं। द्रव्य में गुण रहना आवश्यक है। आकाश मे शब्द गुण कहना उचित नहीं। आकाश शून्य को कहते हैं जो निष्क्रिय है, फिर उससे शब्द कैसे बन सकता है[३३] ? वायु में स्पर्श है और स्पर्श में ही शब्द है। महर्षि ने स्वयं शब्द की उत्पत्ति वस्तुओं के संयोग, विभाग और शब्द[३४] से माना है, जैसे क्रमशः नगाड़े पर चोट करने से, बांस या दीवार आदि के फटने से तथा वंशी में आवाज फूंकने से शब्द पैदा होते हैं। तत्वों की अन्तिम इकाई (परमाणु) तथा अखंड जीवों में आकाश न होने से 'आकाश' को हम सर्वव्यापक भी नहीं कह सकते। दिशा, काल कोई द्रव्य नहीं, जिसमें कोई गुण व क्रिया हो। रहा मन अन्तःकरण रूप से निश्चित ही तत्वों के सूक्ष्मकणों की एक गांठ होने से द्रव्य है जहां वासनायें टिकती हैं[३५]। परन्तु यदि उसे संकल्प मात्र मानें तो द्रव्य नहीं, केवल वासना है।

पारख सिद्धान्त पृथ्वी, जल और अग्नि में क्रमशः गंध, रस और रूप गुण मानता है तथा वायु में स्पर्श और शब्द दो गुण मानता है। इस प्रकार कुल पांच गुण हैं, जो जगत प्रसिद्ध है। जीव (आत्मा) मे केवल ज्ञान गुण मानता है। इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख—ये देहोपाधिजन्य विकार हैं और द्वेष तो अविद्याजन्य है। वैशेषिक दर्शन जब स्वयं कहता है कि इन्द्रिय-मन के संबंध से सुख-दुःखादि होते हैं, तब शुद्ध आत्मा में सुख-दुःखादि का अभाव स्वयं सिद्ध हो जाता है। वैशेषिक दर्शन ने गुणों की कल्पना मे अतिशयोक्ति कर डाली है। परत्व तथा अपरत्व अर्थात देश और काल की दूरी तथा निकटता यह भला कैसे गुण हो सकते हैं। यह तो एक बुद्धिसापेक्ष अनुमान है। दो मील मे चार मील दूर है, किन्तु छह मील से निकट है। इसी प्रकार दो घण्टे से चार घण्टे अधिक समय है, परन्तु छह घण्टे से कम है। देश और काल की कल्पना व्यवहार की सिद्धि के लिए आवश्यक है; परन्तु ये कोई द्रव्य नहीं और न परत्व तथा अपरत्व कोई गुण हैं। इसी प्रकार अनेक गुणों की कल्पना केवल अवांतर (गौण) हैं।

३३. देखें तीसरे अध्याय का 'आकाश तथा शब्द' सन्दर्भ।
३४. संयोगाद् विभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः॥ २/२/३१॥
३५. देखें तीसरे अध्याय का 'मन व अंतःकरण' सन्दर्भ।

जड़ द्रव्यों एवं परमाणुओं में कर्म (क्रियायें) हैं, यह तो शतप्रतिशत सत्य है। जड़ द्रव्यों मे गति ही तो उनकी संपत्ति है जिससे निरन्तरसृष्टि प्रपंच चलता है। जड़ परमाणुओं में गति आकस्मिक नहीं, किन्तु स्वभावसिद्ध एवं नित्य है। सामान्य और समवाय का विवेचन ठीक ही है। 'विशेष' का विवरण भी बहुत कुछ उपयुक्त हैं; किन्तु असंख्य आत्माओं की परस्पर विभिन्नता ही उनकी अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त उनके मौलिक स्वरूप मे भिन्न लक्षण नहीं है; किन्तु सभी आत्मायें मूल रूप मे ज्ञानस्वरूप है। रही सभी आत्माओं के व्यापक होने की बात ! उस समय आत्मा को व्यापक कहने का बहुत जोर था, जो उपनिषद् युग से चला आ रहा था। किन्तु असंख्य आत्माये व्यापक कैसे हो सकती हैं। संसार मे व्यापक तो ऐसा कुछ भी नही है जो गुण-धर्मयुक्त सत्तात्मक द्रव्य हो। वस्तुतः आत्मा के लिए व्यापक शब्द एक महिमापरक है। इसके अतिरिक्त उसका कोई महत्व नही है।

वैशेषिक दर्शन में अदृष्ट का विवेचन बहुत उपयुक्त है जिससे समस्त जड़-चेतनात्मक जगत का संपादन होता है। वैशेषिक दर्शन गम्भीर चिन्तकों का प्रायः तथ्यात्मक विश्लेषण है जो हमें बतलाता है कि जड़-चेतन के गुण-धर्मों से जगत की व्यवस्था स्वयमेव है। वह बच्चों को समझाने का प्रयास नही करता कि सब भगवान की कृपा से चलता है। जड़-चेतन और उनके गुण-धर्मों की वास्तविकता का विश्लेषण न कर उनके ऊपर किसी तथाकथित ऐसे ईश्वर को लादना जो सृष्टि तो रच सकता हो, परन्तु उसको व्यवस्थित सुख-प्रद एवं सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बनाने में सर्वथा असमर्थ हो, एक बचकानापन एवं हास्यास्पद ही है। कुछ अनुदार टीकाकार जो दो सूत्रों[३६] मे ईश्वर को घुसेड़ने की चेष्टा करते हैं वह सर्वथा व्यर्थ है। पीछे के टीकाकारों ने, विशेष-कर प्रशस्तपाद आदि ने इस दर्शन के विचारों में ईश्वर को प्रविष्ट करने का

३६. वे सूत्र हैं—'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ १/१/३ ॥
तथा संज्ञा कर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् ॥ २/१/१८ ॥
वैशेषिक दर्शन के पहले अध्याय के पहले आह्निक के दूसरे सूत्र में कहा गया है कि जिससे लौकिक उन्नति करते हुए मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। उसके बाद उक्त सूत्र (१/१/३) में कहा गया कि 'तत्'=उस, धर्म के लिए वेद-वचन प्रमाण है। यहां 'तत्' का अर्थ धर्म न लेकर जो कि अभी पीछे कहा गया है, 'ईश्वर' ले आना घोर अनर्थ करना है।
दूसरे (२/१/१८) सूत्र में 'अस्मद् विशिष्ट' शब्द ऋषियों के लिए आया है। सर राधाकृष्णन लिखते हैं कणाद ने स्वयं भी एक दैवी सत्ता की आवश्य-

प्रयास किया है, किन्तु उसे महत्वपूर्ण स्थान वे भी नहीं दे पाये हैं। वस्तुतः वैशेषिक दर्शन में कहीं भी ईश्वर का उल्लेख नहीं है। इस शास्त्र में सृष्टि, कर्म-फल-भोग आदि सबका समाधान अदृष्ट से ही किया गया है।

शब्द को स्वतः प्रमाण न मानकर और वेदों को ऋषियों का रचा हुआ मानकर महर्षि कणाद ने हजारों वर्ष पूर्व अंधविश्वास की दीवार को तोड़ने की महान वीरता का काम किया था। यह एक वास्तविकता है, भले ही उनको कुछ अनुदारों द्वारा नास्तिक होने का करार दिया गया। सत्यवादी को सब समय सहना पड़ता है।

११

न्याय दर्शन

प्रमाणों द्वारा वस्तु की वास्तविकता का परीक्षण करना न्याय है। न्याय के विचार बहुत पुराने हैं। न्याय दर्शन सूत्र के रूप में बुद्ध के बाद एवं ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व बने, ऐसा माना जाता है। परन्तु यह बताया जाता है कि ईसा के बाद भी उसमें नये सूत्र जोड़े गये[1]। अतएव महर्षि गौतम, जो न्याय के रचयिता हैं, ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व सिद्ध होते हैं। उसके पश्चात कई भाष्यकार, टीकाकार तथा मौलिक रचनाकार न्याय के क्षेत्र में आये, जो एक से एक दिग्गज एवं बाल की खाल काढ़ने वाले भी थे। उनमें से कुछ के नाम हैं—वात्स्यायन (ईसा के लगभग), उद्योतकर (छठी शतक), वाचस्पति मिश्र, जयंत भट्ट, भासवर्ग (नवी शतक), उदयनाचार्य (दशम शतक), गंगेश (तेरहवीं शतक), रघुनाथ शिरोमणि, मथुरा नाथ (१६वी शतक), जगदीश भट्टाचार्य एवं गदाधर भट्टाचार्य (सत्रहवीं शतक[2]) आदि।

न्याय दर्शन में तत्वों का विवेचन कम है। न्याय ने वैशेषिक दर्शन के तत्त्व विवेचन को करीब-करीब ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया है। न्याय

कता का अनुभव किया हो, ऐसा स्वीकार करना कठिन है। उस प्रसिद्ध वाक्य में (१/१/३) जो दो बार आया है और जिसे परवर्ती टीकाकारों ने आस्तिकवाद का समर्थक बताया है, ईश्वर का कहीं उल्लेख नहीं है।

(भारतीय दर्शन खंड २, पृष्ठ २२५)

१. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन, खण्ड २, न्याय।

२. बल्देव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, न्याय।

दर्शन में अधिक प्रमाणों का वर्णन तथा शास्त्रार्थ करने के लिए दांवपेचो का वर्णन है।

प्रमा और प्रमाण

'प्रमा' कहते हैं यथार्थ-ज्ञान को और जिन साधनों से वह ज्ञान सिद्ध हो वह प्रमाण है[३]। न्याय दर्शन ने चार प्रमाण स्वीकार किया है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द[४]।

१. प्रत्यक्ष—मन सहित इन्द्रिय और विषय (पदार्थ) का जब सम्बन्ध होता है, तब इसे प्रत्यक्ष कहते हैं[५]। जैसे आंख घट के ऊपर गयी, तब घट का ज्ञान हुआ, यह प्रत्यक्ष है। परन्तु यह निर्भ्रान्ति होना चाहिए। दूर बालू देखकर पानी होने का भ्रम हो सकता है। यह प्रत्यक्ष में भ्रम है। निर्भ्रान्ति प्रत्यक्ष होना चाहिए।

२. अनुमान—प्रत्यक्ष ज्ञान के बाद अनुमान ज्ञान होता है। वह तीन प्रकार है—पूर्ववत, शेषवत तथा सामान्यतोदृष्ट। पहले बादल आने पर पानी की वर्षा देखे है, अतः वर्तमान में बादल आया हुआ देखकर पानी की बारिस होने का अनुमान करना—पूर्ववत अनुमान है। आस-पास तो पानी नही बरसा है, परन्तु नदी में बाढ़ एव मैला पानी देखकर अनुमान करना कि ऊपर पानी बरसा है—शेषवत अनुमान है। आग और धूवा पहले साथ-साथ देख रखा है, अतः कही मकान मे से धूवा उड़ते देखकर अन्दर रसोई घर इत्यादि मे आग होने का अनुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमान है[६]।

३. उपमान—सादृश्यता का उदाहरण उपमान है। जैसे नीलगाय, गाय के समान होती है। हंस, बगुला के समान सफेद होता है।

४. शब्द—आप्त पुरुष का कहा हुआ शब्द प्रमाण[७] मानने योग्य है। आप्त कहते हैं प्राप्त को, अर्थात वास्तविकता तक पहुंचे हुए को, और ऐसे पुरुष की बात ही शब्द प्रमाण है। शब्द प्रमाण दो प्रकार के होते है एक दृष्ट तथा दूसरा अदृष्ट। जिन शब्दो से सासारिक वस्तुओ का ज्ञान हो दृष्ट है तथा जिन शब्दों से आध्यात्मिक ज्ञान हो वह अदृष्ट है[८]।

३. यथार्थनुभवः प्रमा तत्साधनं च प्रमाणम्।
(उदयनाचार्य, बल्देव उपाध्याय के भारतीय दर्शन से उद्धृत)
४. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ॥ न्याय दर्शन १/१/३ ॥
५. न्याय १/१/४। ६. वही १/१/५। ७. आप्तोपदेशः शब्दः। १/१/७।
८. स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्। १/१/८।

उक्त चारों प्रमाणों के सम्बन्ध में अनेक अवांतर (गौण) भेद विद्वानों ने माना है और उनमें खूब बाल की खाल काढ़ी है, जिन्हें लिखकर यहां पोथी बढ़ाना उपयुक्त नहीं है।

प्रमेय

प्रमा का विषय, यथार्थ ज्ञान के योग्य, अर्थात जो मुख्य जानने योग्य है, वह प्रमेय है। न्याय दर्शन के बारह प्रमेय हैं—(१) आत्मा, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) अर्थ, (५) बुद्धि, (६) मन, (७) प्रवृत्ति, (८) दोष, (९) प्रेत्यभाव, (१०) फल, (११) दुःख और (१२) अपवर्ग[९]। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. आत्मा—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान का होना (देहोपाधियुक्त) आत्मा के होने का लक्षण है[१०]।

२. शरीर—विषयों की इच्छा वाली इन्द्रियो का जो आश्रय है, वह शरीर है[११]।

३. इन्द्रियां—नाक, जीभ, आंख, चाम और कान ज्ञानेद्रियां है[१२]।

४. अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश के पांच गुण क्रमशः गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द अर्थ एवं विषय है[१३]।

५. बुद्धि—ज्ञान[१४]।

६. मन—एक साथ दो ज्ञान का न होना मन का लक्षण है[१५]।

७. प्रवृत्ति—शरीर, इन्द्रिय और मन का किसी काम में लगना प्रवृत्ति है[१६]।

९. आत्मा शरीरेन्द्रियार्थ बुद्धि मनः प्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव फल दुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्। १/१/९।

१०. इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिंगम्। १/१/१०।

११. चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्। १/१/११।

१२. घ्राण-रसन-चक्षुस्त्वकश्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः। १/१/१२।

१३. गंध रस रूप स्पर्श शब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः। १/१/१४।

१४. बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्। १/१/१५।

१५. युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्। १/१/१६।

१६. प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ इति। १/१/१७।

८. दोष—किसी अच्छे या बुरे काम में लगने की प्रेरणा देने वाला भाव—दोष कहलाता है[१७]। यहां दोष का अर्थ पाप नही है, किन्तु मन की उत्प्रेरक शक्ति है।

९. प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म[१८]।

१०. फल—उपर्युक्त सातवें और आठवें प्रमेयों—प्रवृत्ति और दोष से उत्पन्न हुए जो सुख और दुःख के अनुभव हैं, यही फल है[१९]। अर्थात अपने किये हुए कर्मो का परिणाम फल है।

११. दुःख—परतंत्रता दुःख का लक्षण है[२०]।

१२. अपवर्ग—परतंत्रता से सर्वथा छूट जाना अपवर्ग एवं मोक्ष है[२१]।

ईश्वर

न्याय दर्शन के उपर्युक्त बारह प्रमेयों में ईश्वर का स्थान नहीं है। किंतु आगे चल कर चौथे अध्याय के पहले आह्निक के तीन सूत्रो (१९, २०, २१) में उसकी चर्चा जीवों को कर्म-फल देने के अनुमान मे की गयी है। किन्तु उक्त बारह प्रमेयो में ईश्वर की चर्चा न होने से अनेक विद्वान ईश्वर सम्बन्धी उक्त तीनों सूत्रो को प्रक्षिप्त (पीछे से मिलाया हुआ) मानते है। सर राधाकृष्णन लिखते हैं "न्यायसूत्र मे हम देखते हैं कि परमेश्वर का उल्लेख केवल आनुषंगिक (गौण) रूप में ही पाया जाता है, जिससे यह संदेह युक्तियुक्त हो ठहरता है कि न्याय का प्राचीन सिद्धान्त ब्रह्मवादी नही था[२२]।"

निग्रह स्थान—हार की स्थिति

न्याय दर्शन के सूत्र जिस काल में बने थे, उस समय बौद्ध, जैन, मीमांसक, नैयायिक, सांख्यवादी आदि के परस्पर खूब शास्त्रार्थ, वाद-विवाद और

१७. प्रवर्तनालक्षणो दोषः। १/१/१८।

१८. पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः। १/१/१९।

१९. प्रवृत्ति दोषजनितोऽर्थः फलम्। १/१/२०।

२०. बाधनालक्षणं दुःखम्। १/१/२१।

२१. तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः। १/१/२२॥

मनु जी ने ठीक ही कहा है—

सर्वं परवशंदुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥

२२. भारतीय दर्शन, खंड २, पृष्ठ १६४।

तर्क-वितर्क होते थे। अपने सिद्धान्त की निर्बलता को छिपाकर और दूसरे के सिद्धान्तों की कमजोरियों को पकड़ कर, यहां तक ही नहीं, छल और वितंडा-वाद से भी दूसरे को हराने की चेष्टा की जाती थी। इसीलिए इस न्याय दर्शन के पहले ही सूत्र में लिखा गया "प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान—इन सोलह पदार्थों के ज्ञान से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है[२३]।" प्रमाण, प्रमेय आदि तो ठीक हैं, परन्तु वितंडा, छल आदि कल्याण में क्या सहायक हो सकते हैं ? खास बात यहां विरोधियों से अपनी रक्षा करने की है। ऋषि स्वयं कहते हैं "तत्वज्ञान के निश्चय की रक्षा के लिए छल, वितंडा आदि उसी प्रकार सहायक होते हैं, जैसे पौधे या फसल की रक्षा के लिए उनकी चारों ओर लगायी हुई कांटों की बाड़[२४]।"

शास्त्रार्थ में निग्रहस्थान, अर्थात हार जाने की जगहें बाइस (२२) हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. प्रतिज्ञा हानि—अपनी प्रतिज्ञा (सिद्धान्त) पर न रह कर विपक्षी की बात स्वीकार कर लेना।

२. प्रतिज्ञांतर—अपनी प्रतिज्ञा का विपक्षी द्वारा खंडन होने पर उसका खंडन न कर, दूसरी प्रतिज्ञा कर लेना और विषय को बदल देना।

३. प्रतिज्ञा विरोध—अपनी ही बात को स्वयं काट देना।

४. प्रतिज्ञा संन्यास—अपने सिद्धान्त से हट जाना।

५. हेत्वंतर—अपनी दी हुई युक्ति को बदल देना।

६. अर्थांतर—अपने विषय बदल देना।

७. निरर्थक—बिना प्रयोजन की बात करना।

८. अविज्ञातार्थ—ऐसी भाषा बोलना जो दूसरो की समझ में न आती हो।

९. अपार्थक—असंगत एवं बे-मेल भाषण।

१०. अप्राप्तकाल—तर्क के सिलसिले को छोड़ देना।

११. न्यून—तर्क एवं युक्तियों के आवश्यक अंशों को छोड़ देना।

१२. अधिक—साफ बात को भी जरूरत से ज्यादा दोहराना।

२३. न्याय १/१/१।

२४. तत्वाध्यवसायसंरक्षणार्थं जल्पवितण्डे बीजप्ररोहसंरक्षणार्थं कण्टकशाखाऽऽवरणवत् ॥ ४/२/५० ॥

१३. पुनरुक्त—एक बात को अनावश्यक बारम्बार दोहराना।
१४. अननुभाषण—चुप हो जाना।
१५. अज्ञान—विषय को न समझना।
१६. अप्रतिभा—उत्तर न सूझना।
१७. विक्षेप—रोग आदि का बहाना कर बात करने से अपना पिंड छुड़ाना।
१८. मतानुज्ञा—अपने पर आए हुए आक्षेपों का उत्तर न देकर, यह कहना कि यह दोष विपक्षी के मत में भी है।
१९. पर्यनुयोज्योपेक्षण—निग्रह स्थान-हार जाने की स्थिति को न देख पाना, अर्थात दोष न समझ पाना।
२०. निरनुयोज्यानुयोग्य—जहां दोष न लगाना चाहिए वहां दोष मढ़ना।
२१. अपसिद्धान्त—अपने ही सिद्धांत का खंडन करने लगना।
२२. हेत्वाभास—जो हेतु नही है, उसे हेतु समझना। अर्थात जो तर्कयुत न हो, परन्तु भ्रम से तर्कयुत लगता हो[२५]।

निर्दोष लक्षण

न्याय दर्शन में प्रथम विषय को रखकर उसका लक्षण बताया जाता है, फिर उसकी परीक्षा की जाती है। लक्षण वही सही माने जाते है, जिनमें अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असंभव—ये तीन दोष न हों। गाय उसे कहते हैं जिसके सीग होते है—यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष से पूर्ण है; क्योंकि गाय के अतिरिक्त जानवरो के भी सीग होते हैं। गाय उसे कहते हैं जो लाल रंग की होती है—यह लक्षण अव्याप्ति दोष से पूर्ण है; क्योकि गाय केवल लाल ही नही, काली, सफेद, भूरी आदि भी होती है। गाय उसे कहते हैं जिसके खुर फटे न हो—यह लक्षण असंभव-दोष से पूर्ण है; क्योकि बिना फटे खुर वाली गाय होती ही नही। निर्दोष अभिव्यक्ति ही सही लक्षण है। सही लक्षण तभी घटते है जब वस्तु में से अनावश्यक बातें हटाते जायं और तथ्य मात्र रह जाय।

मोक्ष तथा मोक्ष-साधन

मिथ्याज्ञान से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, राग-द्वेष से कर्मो में प्रवृत्ति होती है, प्रवृत्ति से जन्म तथा जन्म से दुःख होता है। इसके उलटे तत्वज्ञान से

२५. न्याय दर्शन ५/२/१-२५।

राग-द्वेष के दोष निवृत्त हो जाते हैं। फिर कर्मों की प्रवृत्ति बन्द हो जाती है। कर्म समाप्त होने पर जन्म होना बन्द हो जाता है और यही मोक्ष है[२६]। दोष का कारण शरीर का अहंकार है, और तत्व (आत्म) ज्ञान से इसकी निवृत्ति हो जाती है[२७]। इसके लिए यम, नियमादि अष्टांगयोग का आचरण करना आवश्यक है[२८]। योगाभ्यास के लिए आरण्य, गुहा, नदीतट, शून्यगृह आदि एकान्त स्थल में जाना चाहिए और वहां चित्त को निराम्त कर आत्मस्थ होना चाहिए[२९]। वासना ध्वंस कर प्रारब्धांत में जीव विदेहमुक्त हो जाता है। उस समय उसके पास शरीर, मन आदि न रहने से उसे विषयो का ज्ञान नहीं होता[३०]। इस प्रकार जड़ दृश्यों का अभाव हो जाता है, यही अपवर्ग—मोक्ष है[३१]। स्वप्न रहित गाढ़ी निद्रा के समान सब क्लेशों से रहित मोक्ष दशा है[३२]।

तुलना

वैशेषिक दर्शन के तत्वविवेक ही प्रायः न्याय दर्शन के तत्वविवेक हैं, अतः उस सदर्भ में जो तत्व-विवेचन किया गया है, यहां प्रायः नही दोहराया गया। इसी प्रकार वहां जो तुलना की गयी है उसे यहां प्रायः दोहराना उपयुक्त नहीं है। केवल वादविवाद एवं मोक्ष—दो बातों पर चर्चा करना है।

यह पहले बताया गया है कि न्यायसूत्र का काल अधिक वादविवाद से लिप्त था। उस समय दूसरे को हराकर अपना मत प्रतिष्ठित करने की भावना लोगो में तीव्र थी। आज के समन्वययुगमें उसकी आवश्यकता नही है। कोई अहंकारी मतवादी आपको हराने के विचार से आये और मतवाद करना चाहे, तो आप अपना कोई सिद्धांत स्थापित न कर उसके ही सिद्धान्त से केवल प्रश्न करते जायें, तो उसे ही हार मान लेना पड़ेगा। परन्तु शांति-इच्छुक साधक के लिए यह भी ठीक नही है। उसके लिए तो यही ठीक है कि आप ऐसे अहंकारी आदमी से कह दें कि भैया, आपको मैं बिना वादविवाद किये ही जिता दे रहा

२६. दुःखजन्मप्रवृत्तिदोष मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः। २/१/२।

२७. न्याय ४/२/१। २८. न्याय ४/२/४६।

२९. आरण्यगुहापुलिनाऽऽदिषु योगाभ्यासोपदेशः। ४/२/४२।

३०. न निष्पन्नावश्यम्भावित्वात्। ४/२/४४।

३१. तदभावाश्चापवर्गः। ४/२/४५।

३२. सुषुप्तस्य स्वप्नादर्शने क्लेशाभावादपवर्गः। ४/१/६३।

हूं। मैं हार गया और आप जीत गये। वैशेषिक दर्शन ने वेदों को ऋषियों का रचित माना है; परन्तु न्याय दर्शन में जब ईश्वर दूसरों द्वारा डाल दिया गया, तो वेदों का सम्बन्ध उससे जोड़ देना स्वाभाविक है। यह कोई बड़ा महत्व नहीं रखता। आज प्रायः सब जानते हैं कि पुस्तक मनुष्य रचता है और वेद भी पुस्तक ही है।

जैसा कि तीसरे अध्याय के 'मोक्ष' संदर्भ में बताया गया है कि न्याय-वैशेषिक के मोक्ष को लेकर वेदांतियों ने बड़ा हो हल्ला मचाया है। न्याय-वैशेषिक की इस बात को लेकर कि मन, इन्द्रिय, शरीर से रहित विदेह आत्मा में चेतना (स्मृति) नहीं रहती तथा वहां कोई आनन्द का भाव नही रहता, वेदातियो ने यह फतवा देना शुरू किया कि यह तो आत्मा को जड़ बना देना हुआ। परन्तु यह आक्षेप वेदातियो (अद्वैतवादियो या वैष्णवो) का जोश मात्र है, होश की बात नही है। वे गंभीरता से सोचें कि शरीर रहते-रहते जब जो इन्द्रिय नष्ट हो जाती है (जैसे आंख आदि), तब उस इन्द्रिय सम्बन्धी विषय का ज्ञान जीव को नही होता। गाढ़ी नींद मे सब कुछ भूल जाता है। विदेह अवस्था मे जब देह, मन, इन्द्रिय एवं स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति आत्मा के साथ नही रहेगे, तब उसे किसी प्रकार ज्ञान, स्मृति एव चेतना कैसे रह सकती है ?

प्रश्न होता है "तब तो ज्ञान आत्मा का गुण या स्वभाव नहीं हुआ; किन्तु ज्ञान आत्मा मे प्रकृति एवं जड़ देह से आता है।" यह तर्क या तो गैर-जिम्मेदारी का है या अज्ञान से। विद्युत-शक्ति विद्युत की ही है; परन्तु वह तार, बल्ब आदि माध्यम से ही प्रकट होती है और ब्रह्मांड की विद्युत बादल के माध्यम से। इसी प्रकार ज्ञानशक्ति आत्मा का अपना अभिन्न गुण एवं स्वभाव है; परन्तु उसका प्रकटीकरण देह, इन्द्रिय, मन के माध्यम से ही हो सकता है। अग्नि स्वाभाविक ज्वलनशील है, परन्तु बिना इंधन पाये किसको जलाये ! अतएव आत्मा स्वाभाविक ज्ञानस्वरूप है, परन्तु देहरहित होने से वह किसका ज्ञान करे !

न्याय दर्शन के प्रतिपादित मोक्ष को लेकर वेदान्ती श्री हर्ष ने कहा "जो मुक्त आत्मा को जड़ पत्थरवत बताकर शास्त्र रचा है वह गौतम पक्का बैल ही था[२३]।" गौतम तो बैल नही थे। वे महामानव, महान ऋषि एवं तत्व-विवेकी थे। अब ये कैसे कहा जाय कि श्री हर्ष ही पक्के बैल थे, जो वे अपने बचकाने स्वभाव से विदेहमोक्ष मे भी रसगुल्ला खाना चाहते थे। इसी प्रकार

२३. देखें तीसरे अध्याय का 'मोक्ष' सदर्भ।

किसी वैष्णव ने कहा कि मैं (न्याय) वैशेषिक के आनन्दरहित मोक्ष में नहीं जाना चाहता, बल्कि वृन्दावन में सियार (श्रृगाल) बनकर घूमना पसन्द करूंगा[३४] (जो सियार बनेगा वह जीव-जन्तु ही तो मार कर खायेगा) ये उपर्युक्त दोनों कथन विषयासक्ति ही का परिणाम है। विषयासक्ति का सूक्ष्म परदा सर्वथा हटना कोई मामूली बात नहीं है। विद्वान होना अलग बात है और विषयासक्ति एवं जड़ाध्यास का सर्वथा हट जाना बिलकुल अलग बात है।

विदेहमोक्ष को आनन्द-स्वरूप कहना भी दुःखों की अत्यन्त-निवृत्ति दशा ही है। कोई स्मृतिजन्य अनुभूति नहीं। अतएव महर्षि कणाद एवं महर्षि गौतम का मोक्षप्रतिपादन तलस्पर्शी, गंभीर एवं तथ्यात्मक है।

१२
मीमांसा-दर्शन

मीमांसा दर्शन यज्ञ एवं कर्मकांडपरक है। इसके रचयिता महर्षि जैमिनि माने जाते हैं। इनका काल कुछ विद्वान ईसा पूर्व चार सौ वर्ष कहते हैं और कुछ विद्वान ईसा की तीसरी शताब्दी मानते हैं। जो हो, मीमांसा के सूत्र जब बने, उसके विचार उससे बहुत पुराने वैदिक काल के हैं। महर्षि जैमिनि के बाद उनके सूत्रों पर भाष्य तथा स्वतन्त्र ग्रंथ लिखने वाले जो हुए, उनमें मुख्य हैं—उपवर्ष, भवदास, शबर स्वामी, कुमारिल, पार्थसारथि मिश्र, माधवाचार्य, खंडदेव मिश्र, मुरारि मिश्र आदि।

वेद अनादि

महर्षि जैमिनि की परम्परा में छह प्रमाण मान्य हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि। परन्तु इनमें मुख्य प्रमाण शब्द है। मीमांसा शास्त्र यज्ञ एवं कर्मकांड के लिए प्रयुक्त हुआ है। कर्म स्वर्गादि प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। यज्ञ करते ही स्वर्ग तो मिलता नहीं। मरने के बाद पता नहीं कब मिलता है। तब उसको कैसे सही माना जाय? प्रत्यक्ष प्रमाण उसमें लग नहीं सकता। अनुमान आदि भी उसका बोध कराने में असमर्थ हैं। अतएव शब्द-प्रमाण ही उसके लिए मुख्य है। वेद मे लिखा है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है, इसलिए इसे मान लेना चाहिए।

३४. देखें तीसरे अध्याय का 'मोक्ष' सन्दर्भ।

फिर वेदों को हम प्रमाण क्यों मान लें ? वेदों में क्या विशेषता है कि जिनकी बातों को बिना परीक्षा किये मान लें ? इसका उत्तर है वेद स्वयंभू हैं। वेद किसी द्वारा रचे नहीं गये, किन्तु अनादि से हैं, इसलिए वे अपौरुषेय हैं। जैमिनि के सिद्धान्तानुसार शब्द नित्य हैं, वेद के वचन ही सर्वोपरि हैं।

पदार्थ

मीमांसक प्रभाकर आठ पदार्थ मानते हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतंत्रता, शक्ति, सादृश्य और संख्या। द्रव्य, गुण और कर्म की परिभाषा वैशेषिक दर्शन के समान है। सामान्य की सत्ता व्यक्तियों (प्रकट वस्तुओ) में विद्यमान रहती है। परतंत्रता कहते हैं समवाय को, जैसे जल-शीतलता का अभेद। शक्ति का अर्थ है द्रव्य, गुण, कर्म तथा सामान्य में रही हुई उत्पादक क्षमता। द्रव्य, गुण आदि में अदृश्य रूप शक्ति रहती है जिससे वे कार्य पदार्थो को उत्पन्न करने में समर्थ होते है। बीज में शक्ति है, जो अदृश्य है। उसी से बड़ा वृक्ष तैयार हो जाता है। सादृश्य का अर्थ है समानता, अर्थात भिन्न पदार्थो में समानता। संख्या गणना को कहते है। द्रव्यो की संख्या नौ हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, आत्मा, मन, काल तथा देश। कुमारिल ने इनमें अंधकार तथा शब्द को जोड़कर ग्यारह बनाया है[1]। मीमांसा ने पदार्थ एवं द्रव्यों का विवेचन वैशेषिक से स्वीकार कर लिया है।

जगत और ईश्वर

जगत जैसे आंखों से दिखाई देता है वैसे ही है। जगत यथार्थ है। यह दिवास्वप्न, मिथ्याभ्रम एवं मृगमरीचिका नही है। मीमांसक विचारक कहते हैं "जो ब्रह्म को जानते हैं वे यदि इसी परिणाम पर पहुचते है कि वह सब कुछ, जो ज्ञात हैं, मिथ्या है, और जो अज्ञात है, वह सत्य हैं, तो मैं झुक कर उनसे विदा लेता हूं[2]।"

जड़ द्रव्यो में शक्ति और क्रिया हैं, इनसे जगत स्वतः स्वचालित अनादि और अनन्त है। जगत की न नये सिरे से सृष्टि होती हैं और न सर्वथा प्रलय; किन्तु यह निरन्तर गतिशील तथा प्रवहमान रहता है। मीमांसा दर्शन में ईश्वर की बिलकुल गुंजाइश नही है। मीमांसा अनेक देवताओ को स्वीकार करती है और हवन द्वारा उनकी पूजा करने की विधि बताती हैं और ईश्वर को अस्वीकार करती है। "यह इन देवताओ के परे नहीं जाती, क्योंकि वैदिक

१. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/४१०।

२. बृहती, पृष्ठ ३०, सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/४०९।

धर्म के पालन में किसी सर्वोपरि शक्ति की कल्पना की आवश्यकता नहीं। जैमिनि ईश्वर का निषेध उतना नहीं करते जितना कि उसकी ओर उपेक्षा का भाव रखते हैं। वैदिक धर्म के किसी भी ब्योरे में ईश्वर की सहायता आवश्यक नहीं है। धर्म की स्थापना एक नित्य स्वयंभूः वेद के द्वारा हुई, और हम पहले ही देख आये हैं कि किस प्रकार वेद को ईश्वर की कृति मानने के प्रयासों का प्रत्याख्यान (खंडन) किया गया है[३]।" इस प्रकार मीमांसा दर्शन ईश्वर रहित तथा जगत को उत्पत्ति-प्रलय-रहित अनादि-अनन्त मानता है।

अपूर्व

ईश्वर न मानने से प्रश्न होता है कि जीव को अपने कर्मों का फल कैसे मिलता है ? जैसे कणाद ऋषि अपने वैशेषिक दर्शन में उत्तर देते है कि जीव को कर्मों का फल 'अदृष्ट' से मिलता है, वैसे जैमिनि ऋषि कहते है कि 'अपूर्व' से मिलता है। 'अपूर्व' कर्म-संस्कारों की वह शक्ति है जो कर्मो के बाद, कालान्तर में जीव को उनके अच्छे और बुरे फल के भोग कराने में सक्षम है। महर्षि जैमिनि कहते हैं "जिसकी प्रेरणा से जीव को कर्मों का फल मिलता है, वह 'अपूर्व' है[४]।" ऋषि बादरायण भी स्वीकार करते है "जैमिनि धर्म को ही फलदाता मानते है[५]।" यह धर्म वही 'अपूर्व' ही है। उक्त सूत्र पर भाष्य करते हुए स्वामी शंकराचार्य लिखते हैं......"फल की पूर्वावस्था 'अपूर्व' नामक है, यह युक्ति दी जाती है। उक्त प्रकार से यह बात युक्तिसंगत भी है। ईश्वर फल देता है—यह युक्ति विरुद्ध है; क्योंकि विभिन्न कार्यो का एक कारण होना ठीक नहीं जचता [६]।"

आत्मा

मीमांसा दर्शन आत्मा को देह एवं जड़ तत्वों से सर्वथा भिन्न, नाना और व्यापक मानता है। ऋषि स्वयं कहते हैं "पुरुष (चेतन) को इन्द्रियों के संयोग से जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष है[७]।" अतः देह से चेतन पृथक है। मीमांसक शबर स्वामी कहते हैं "जो अपने आप से ज्ञात है तथा देखा या

३. सर राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/४१८।
४. चोदना पुनरारम्भः ।। २/१/५ ।।
चोदना=प्रेरणा, पुनः=कर्मानुसारः आरम्भः=प्राप्त ।
५. धर्म जैमिनिरत एव ।। वेदांत ३/२/४० ।।
६. शांकर भाष्य ।। ३/२/४० ।।
७. मीमांसा ।। १/१/४ ।।

दूसरों द्वारा दिखाया नहीं जा सकता[८]। ज्ञानों का एक स्थायी ज्ञाता है जो अपने आप जाना जाता है[९]।" और भी "बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर से आत्मा भिन्न, व्यापक, नित्य, प्रति शरीर में अलग-अलग नाना हैं, क्योंकि सबके भिन्न होने का अनुभव होता है[१०]।"

स्वर्ग

इस लोक से कहीं पृथक स्वर्ग लोक है। जीव यहां वैदिक यज्ञ-याग करके जब खूब पुण्य बटोर लेता है तब वह स्वर्ग में जाकर बहुत दिनों तक सुख भोगता है। यह ठीक है कि वहां के भोग भी लौकिक भोग की तरह ही भौतिक हैं। इतना है कि वे ज्यादा उन्नत हैं। और बुरे कर्मों का फल नरक भोगना पड़ता है।

निष्क्रिय अनर्थक

महर्षि जैमिनि कहते हैं "वेद का अर्थ क्रिया (कर्मकांड, यज्ञ-याग) में है। वेद के जिन वचनों में अक्रियता (अखंड ब्रह्म) का बोध होता है, वे वचन अनर्थक (बेकार) है; अतएव उनका प्रमाण नहीं मानना चाहिए[११]।" ऋषि यह कहना चाहते हैं कि वेदो की प्रवृत्ति केवल यज्ञों के लिए है, जो कर्म एवं क्रिया प्रधान है। अतः वेद में क्रिया बताने वाले मंत्र ही सार्थक हैं। यदि वेदो में कहीं ऐसे मंत्र हों जो निष्क्रियता का अर्थ प्रकट कर रहे हों जैसे "ब्रह्म अपूर्व (कारणरहित), अनपर (कार्यरहित), अनंतर (विजाति तत्व रहित) तथा अबाह्य (अद्वितीय) है[१२]।" तो यह निष्प्रयोजन है।

जैमिनि के इस विचार से स्वामी शंकराचार्य सावधान थे। अतः उन्होंने ब्रह्मसूत्र भाष्य मे उक्त जैमिनि के सूत्र को उद्धृत[१३] कर इस खतरे को टालने का प्रयत्न किया है।

८ स्वसंवेद्यः स भवति नासावन्येन शक्यते द्रष्टुं दर्शयितुं वा।
९. ज्ञानातिरिक्तः स्थायी ज्ञाता वर्तते॥ (सर राधाकृष्णन भारतीय द० २/४०३)
१०. बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो भिन्नात्मा विभुर्ध्रुवः
नानाभूतः प्रतिक्षेत्रमर्थज्ञानेषु भासते॥ सर्व सिद्धान्त सार संग्रह ६/२०६॥
(सर राधाकृष्णन भारतीय दर्शन २/४०४)
११. आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादनित्यमुच्यते॥ १/२/१॥
१२. ब्रह्म-अपूर्वम्-अनपरम्-अनन्तरम्-अबाह्यम्॥ बृहदारण्यक उपनिषद् २/५/१९॥
१३. वेदांत १/१/४ सूत्र के पूर्व तथा चौथे सूत्र के भाष्य में भी उद्धृत।

जैमिनि के उक्त विचार निष्क्रिय ब्रह्म के संबंध में कितने खतरनाक हैं! वे वेद का प्रयोजन एकमात्र अनेक देवताओं की उपासना एवं यज्ञ में ही मानते हैं। उनके ख्याल से ब्रह्म भी अनेक देवताओं में एक देवता हो सकता है, न कि निष्क्रिय, परिनिष्ठित, अद्वितीय।

मोक्ष

महर्षि जैमिनि कहते हैं "प्रेरणा एवं आदेश पूर्वक भाव ही धर्म है[१४]।" वेद जो हमें बताते हैं, आदेश देते हैं, वही करना धर्म है। वे कहते हैं यज्ञ करो तथा उसके फल में स्वर्ग प्राप्त करो। जैमिनि के मीमांसा दर्शन मे स्वर्ग ही सर्वोपरि उपलब्धि है। वे मोक्ष की चर्चा से बचे रहना चाहते हैं। परन्तु उनके अनुयायियों ने मोक्ष पर विचार किया है। मीमांसक कुमारिल ने कहा "धर्म और अधर्म (पाप-पुण्य के संस्कारों) के वशीभूत होकर जीव नाना योनियों में भटकते हैं। जब धर्म और अधर्म—दोनों पूर्णतया क्षीण होकर देह का अन्त होता है, तब जीव विदेहमुक्त हो जाता है[१५]।" हां, इसके लिए शम, दम आदि साधन आवश्यक हैं। मीमांसक गण भी मोक्ष में आनन्द-अनुभूति की कल्पना नहीं करते, किन्तु मानते हैं, कि वहां दुःखों का अत्यन्त अभाव रहता है। जब विदेहमोक्ष गुणातीत दशा है, तब वहां आनन्द-क्लेश दोनो का प्रश्न बेकार है। वह सभी विशेषणों से रहित निर्विकार है।

तुलना

शब्द प्रमाण मान्य है; परन्तु परख की कसौटी लगाकर। वेद के शब्दों को हम प्रमाण मान ले, तो बाइबिल तथा कुरान आदि के शब्दों को क्यों न प्रमाण मानें! अतः मीमांसा दर्शन तथा पारख दर्शन मे वेद तथा शब्द प्रमाण के विषय में विचारों का अन्तर है। वेद अनादि नही हैं, किन्तु हमारे पितामहों की कई पीढ़ियों में पैदा हुए अनेक महापुरुषो द्वारा बने हैं।

जगत प्रवाहरूप अनादि तथा अनन्त है। इसका कोई कर्ता नहीं। यह अपने गुण-धर्मो से स्वयं चल रहा है—यह बात मीमांसा तथा पारख में समान माननीय हैं। मीमांसा की 'अपूर्व' की अवधारणा भी शब्द का अन्तर रखते हुए भी समान है। संस्कारानुसार ही जीव अपने कर्मों का फल पाता है, अन्य

१४. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ १/१/२ ॥

१५. आत्यन्तिकस्तु देहोच्छेदो निःशेषधर्माधर्मपरिक्षयनिबन्धनो मोक्ष इति सिद्धम्। धर्माधर्मवशीकृतो जीवस्तासु तासु योनिषु संसरति ॥ प्रकरणपंचिका, तत्त्वा-लोक, पृष्ठ १५६, सर राधाकृष्णन, ॥ २/४१६ ॥

कोई उसका दाता नहीं। आत्माओं की व्यापकता की धारणा पारख दर्शन अस्वीकार करता है, इसे कई जगह पर बताया गया है और वह अपने कर्मों के अनुसार देह धारण कर सुख तथा दुःखों की प्राप्ति के अतिरिक्त, स्वर्ग-नरक नही मानता। मोक्ष के विचार दोनों के करीब समान ही हैं।

महर्षि जैमिनि ने यज्ञ-याग की अतिशयोक्ति में पड़कर जो अक्रिय-अर्थक वेद वचनों को अनर्थक बताया है, इससे पारख दर्शन कदापि समझौता नहीं कर सकता। यज्ञ क्रिया-बहुल हैं और उनका परिणाम तथाकथित स्वर्ग भी भौतिक क्रियाशील एवं मिलकर छूट जाने वाला है। परन्तु अध्यात्मज्ञान की सिद्धि निष्क्रिय दशा है तथा उसका परिणाम मोक्ष भी निष्क्रिय, अचल स्थिति है। कर्म प्रपंच मात्र का अन्त मोक्ष है; इसको भुलाया नहीं जा सकता।

१३
वेदान्त-दर्शन

वेदान्त-दर्शन को ब्रह्मसूत्र तथा उत्तर मीमांसा भी कहते हैं। इसके रचयिता बादरायण माने जाते है जो वेदव्यास से एकदम भिन्न थे। यद्यपि पौराणिक पडित वेदव्यास तथा बादरायण को एक मानते है; परन्तु यह ठीक नही जचता; क्योकि सूत्रो में बौद्ध के उन मतो तक का खण्डन है जो ईसा के बाद वैभाषिक, योगाचार आदि के नाम से उदित हुए। इस दर्शन के रचयिता बादरायण थे—यह मानने मे भी संकोच होता है, क्योकि इसमे बादरायण का नाम अन्य पुरुष के रूप मे अनेक[१] स्थलों पर आते है, यथा 'ऐसा बादरायण मानते है।' परन्तु प्राचीनकाल मे अपने ग्रंथ में अपना नाम अन्य पुरुष के रूप मे रखने का प्रचलन था। इस दृष्टि से इसका समाधान कर लिया जा सकता है। वेदान्त दर्शन का रचना-काल कुछ विद्वान ईसा से पूर्व चार सौ तथा दो सौ वर्ष मानते है और कितने विद्वान तीसरी ईसा शताब्दी मानते हैं। वेदान्त दर्शन में वेदान्त के कुछ पूर्व आचार्यो के नाम इस प्रकार आते हैं—आत्रेय[२], औडुलोमि[३], आश्मरथ्य[४], काशकृत्सन[५], कार्ष्णाजिनि[६], जैमिनि[७], तथा बादरि[८]।

१. वेदांतदर्शन १/३/२६।, १/३/३३।, ३/२/४१।, ३/४/१।, ३/४/८।, ३/४/१६।, ४/३/१५।, ४/४/७।, ४/४/१२। २. ३/४/४४।
३. १/४/२१।, ३/४/४५।, ४/४/६। ४. १/२/२६।, १/४/२०।
५. १/४/२२। ६. ३/१/६। ७. इनका नाम ११ बार आता है।
८. १/२/३०।, ३/१/११।, ४/३/७।, ४/१/१०।

वेदान्त-दर्शन के प्रमुख भाष्यकार और उनके इस पर रखे मत निम्न हैं—

भाष्यकार	भाष्य का नाम	मत
१. शंकर (७८८-८२० ई०)	शारीरिक भाष्य	निर्विशेषाद्वैत
२. भास्कर (१००० ई०)	भास्कर भाष्य	भेदाभेद
३. रामानुज (११४० ई०)	श्री भाष्य	विशिष्टाद्वैत
४. माध्व (१२३८ ई०)	पूर्णप्रज्ञ भाष्य	द्वैत
५. निम्बार्क (१२५० ई०)	वेदान्तपारिजात	द्वैताद्वैत
६. श्रीकंठ (१२७० ई०)	शैव भाष्य	शैवविशिष्टाद्वैत
७. श्रीपति (१४०० ई०)	श्रीकर भाष्य	वीरशैवविशिष्टाद्वैत
८. वल्लभ (१४७९-१५४४ ई०)	अणु भाष्य	शुद्धाद्वैत
९. विज्ञानभिक्षु (१६०० ई०)	विज्ञानामृत	अविभागाद्वैत
१०. बलदेव (१७२५ ई०)	गोविन्द भाष्य	अचिंत्यभेदाभेद[६]

उपर्युक्त भाष्यकारों के मतों में तो अन्तर है ही, इनके भाष्यों के सूत्रों तथा अधिकरणों की संख्याओं में भी अन्तर है, इसे हम प्रथम अध्याय के 'रचना बीजक' सन्दर्भ में देख आये हैं।

इस दर्शन की भूमिका

वेद-अन्त अर्थात वेद का सार भाग वेदान्त है जो उपनिषदें हैं। उपनिषदों के रचयिता अनेक ऋषि भिन्न समयों में हुए हैं। उनके आत्मा, ब्रह्म एवं जगत सम्बन्धी विचार परस्पर कुछ सम तथा कुछ विषम रहे। वेदों की भिन्न शाखा के ऋषि अपने कुछ भिन्न विचार रखते थे। पीछे उपनिषदो के व्याख्याकार भी सब एक मत नहीं थे। इसीलिए बादरायण ने इस वेदान्त दर्शन में यह बारम्बार कहा है कि औडुलोमि इस प्रकार कहते हैं, जैमिनि यह मत रखते हैं, बादरि यह बात बताते हैं इत्यादि। वस्तुतः सृष्टि का स्वभाव ही है विभिन्नता। वेदों के न तो कभी कर्मकांडों में एकता रही और न ज्ञानकांड में। वेदों की भिन्न शाखा के ऋषि अपने यज्ञों के विधानों में कुछ भिन्नता रखते थे तथा ज्ञानकांड में भी भिन्न विचार चलते थे। सर राधाकृष्णन लिखते है "बादरायण के ग्रंथ में वेदान्त के अन्य शिक्षकों के उल्लेख से यह स्पष्ट विदित है कि उस समय उपनिषदों की कितनी ही स्वतंत्र व्याख्यायें, जो बादरायण की व्याख्याओं से भिन्न थी, प्रचलित थीं। जिस समय बादरायण ने

६. बलदेव उपाध्याय भा० द० पृष्ठ ४०६, शारदा मन्दिर वाराणसी।

अपने सूत्र का निर्माण किया, उस समय भी परस्पर में मुक्तात्मा के लक्षण सम्बन्धी तथा जीवात्मा के ब्रह्म के साथ सम्बन्धपरक मुख्य-मुख्य विषयों में भी परस्पर मतभेद विद्यमान थे।......यह प्रकट है कि उपनिषदें स्वयं पर्याप्त विवाद का विषय रही हैं और बादरायण का वेदान्त विषयक विचार एक प्रमुख विचार-सम्प्रदाय का निष्कर्ष है, यद्यपि अन्यान्य संप्रदाय भी, जो पर्याप्त मात्रा में प्रसिद्ध थे, विद्यमान थे[१०]।" इस दर्शन में बादरायण का यह प्रयास है कि सभी उपनिषदें एक ही बात बताती हैं।

ब्रह्म

पहले सूत्र में बताया गया "यहां से ब्रह्म को जानने का प्रयास किया जा रहा है[११]।" अगले सूत्र में बताया गया "जिससे सबका जन्म होता है, अर्थात जिससे सारी सृष्टि पैदा होती है वह ब्रह्म है[१२]।" तीसरे सूत्र में कहा गया "शास्त्र यही बताते हैं कि वह (ब्रह्म) सबकी योनि (कारण) है[१३]।" फिर चौथे सूत्र में कहा गया "संपूर्ण वेद-वाक्य ब्रह्म को जगत का कारण बताने में समन्वित (एकमत) हैं[१४]।" वेदान्त के ये चार सूत्र मुख्य माने जाते हैं।

आगे एक लंबा व्याख्यान दिया गया है कि ब्रह्म ही जगत का निमित्त तथा उपादान कारण है। "उसने जगत रचने की इच्छा की, वह आत्मरूप है, उसमें स्थित होने से मोक्ष होता है, वह त्यागने योग्य नही है, उसमें जीव का विलीन होना बताया गया है, श्रुति-उपनिषद् उसी को जगत का कारण कहती है; उसको बारम्बार आनन्दमय भी कहा गया है—इसलिए वह वही चेतन ब्रह्म है[१५]।" यहा यह बताने का प्रयास किया गया है कि जो उपनिषदों में जगत का कारण बताया गया है वह न सांख्य और योग का प्रधान एवं प्रकृति है और न वैशेषिक तथा न्याय का परमाणु है। क्योंकि ये सब जड़ हैं और उपनिषदों में कहा गया है "उसने इच्छा की कि मै अनेक हो जाऊं, सृष्टि रचूं और उसने पहले आग बनायी[१६]।" उस जगत-कारण चेतन ब्रह्म को आत्मा-रूप भी कहा "यह सब सत्य है, वह आत्मा है श्वेतकेतो! वह तू है[१७]। सबका अर्थ यह हुआ कि यह जो जड़-चेतनात्मक जगत दिखता है, यह जड़ प्रकृति

१०. भारतीय दर्शन २/४२५। ११. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। १/१/१।
१२. जन्माद्यस्य यतः। १/१/२। १३. शास्त्रयोनित्वात्। १/१/३।
१४. तत्तु समन्वयात्। १/१/४। १५. वेदांत दर्शन १/१/५-१२।
१६. तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति। तत्तेजोऽसृजत॥ छांदोग्य ६/२/३॥
१७. इदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो॥ छांदोग्य ६/१४/३॥

तथा परमाणु से नहीं बना है, अपितु यह सत-चिद्-आनन्द स्वरूप ब्रह्म से बना है। यह बात कैसे मानी जाय? क्योंकि श्रुतियों, उपनिषदों में ऐसा ही लिखा है—यही बात पहले अध्याय के अधिकतम सूत्रों में दोहरायी गयी है।

ब्रह्म कैसे स्वयं जगत बन जाता है? उत्तर है 'क्षीरवत्'[१८]। जैसे दूध बिना अन्य साधन के स्वयं दही बन जाता है। प्रश्न होता है शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप ब्रह्म को प्रपंच स्वरूप जगत बनने की आवश्यकता क्या है? उत्तर है, जैसे संसार में सब प्रकार सम्पन्न होने पर भी, अर्थात बिना प्रयोजन भी राजा लोग मनोरंजन के लिए खेल खेलते हैं; वैसे वह पूर्णकाम ब्रह्म भी केवल लीला करने के लिए जगत बनाता है[१९]।

बादरायण कपिल की प्रकृति का खंडन बड़े समारोह से करते हैं। वे कपिल के विचारों से अधिक आतंकित लगते है। उन्होने स्वय प्रश्न उठाया है कि कपिल के प्रकृति-कारणवाद को यदि हम नही मानते, तो यह दोष आता है कि हम इस शास्त्र का खंडन कर रहे हैं। परन्तु यदि इसको हम मान ले तो अन्य शास्त्रों का खडन होगा[२०]। वे कहते है सांख्यमत का खंडन कर देने से योग का खंडन भी इसी में समझ ले[२१], क्योंकि दोनो का प्रकृति-कारणवाद एक है। वे वैशेषिक तथा न्याय के परमाणु-कारणवाद का अनेक सूत्रो मे खडन करते हुए कहते हैं "शिष्ट पुरुषो द्वारा ग्रहण न होने से परमाणु-कारणवाद का बिलकुल तिरस्कार कर देना चाहिए[२२]। अंततः ब्रह्म ही सवकी योनि (उपादान) है, यही मानना चाहिए; क्योंकि उपनिषदों में यही कहा है[२३]। इसके आगे बौद्धों, जैनों, पाशुपत एवं पांचरात्र (वैष्णवो) की मान्यताओ का खडन है[२४]।

जीव

जीव को अणु परिमाण बताया गया है। प्रश्न होता है कि यदि जीव देह भर में व्यापक नही, किन्तु अणु परिमाण है, तो जीव पूरे शरीर का ज्ञान कैसे

१८. २/१/२४। १९. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ २/१/३३ ॥

२०. २/१/१। २१. एतेन योगः प्रत्युक्तः। २/१/३।

२२. अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा। २/२/१७।

२३. योनिश्च हि गीयते। १/४/२८।

कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। मुंडक उप० ३/१/३ ॥

भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः। मु० उ० १/१/६।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥ मु० उ० १/१/७ ॥

२४. वेदान्त २/२/१८-४५।

प्राप्त करता है ? उत्तर में बताया गया है कि जैसे चंदन देह में एक जगह लगा लेने पर वह शरीर भर को सुख देता है, वैसे हृदय में रहकर जीव शरीर भर का ज्ञान करता है। दीपक घर में एक जगह रखा रहता है, परन्तु पूरे घर को उजाला करता है; कोई सुगंधित द्रव्य एक जगह रहने पर भी उसकी सुगंधी दूर तक फैलती है, वैसे जीव हृदयदेश में रहकर पूरे शरीर का ज्ञान प्राप्त करता है[२५]।

श्रुति बतलाती है कि जीव से ईश्वर पृथक है[२६]। मुक्त जीव ईश्वर के साथ मिलकर जगत-रचना आदि कार्य में कोई हाथ बटाने का सामर्थ्य नही रखता। वह केवल मुक्ति का उपभोग कर सकता है न कि जगत-रचना। श्रुति उसे निर्विकार स्थिति वाला ही बताती है। मुक्त जीव का ब्रह्म से समता केवल मोक्ष के उपभोग में है न कि सृष्टि-स्थिति-प्रलय की शक्ति में[२७]।

जीव कर्ता है, इसीलिए विधि-निषेधपरक शास्त्रों की सार्थकता है, शास्त्रो में यह बताया गया है कि जीव विहरता एव विचरता है, इसलिए भी वह कर्ता सिद्ध होता है। जीव इन्द्रियों को ग्रहण कर इच्छानुसार कर्म करता है, ऐसा शास्त्रों में कहा है, अतः जीव कर्ता है। जीव स्वतन्त्र कर्ता इसलिए भी सिद्ध होता है, क्योंकि वह सुख-दुःख उपलब्ध करता है। यदि वह कर्ता न हो, तो फल क्यों पाये ? जीव स्वतंत्र कर्ता इसलिए भी है, क्योंकि श्रुति में उसे समाधि-अभ्यास करने को बताया गया है। यदि वह स्वतन्त्र न हो तो वह समाधि-अभ्यास आदि कल्याण का कार्य कैसे कर सकता है ? यह अवश्य है कि जीव में कर्तापन स्वभावसिद्ध नही है, बल्कि अनादि-वासनावश देहोपाधिक है, इसी-लिए समाधि सिद्ध होती है। यदि जीव स्वाभाविक कर्ता होता, तो समाधि में शांत न हो पाता[२८]। आत्मा शरीर से भिन्न है[२९]। वह अपने कर्मवश नाना योनियों तथा स्वर्ग और नरक लोकों में घूमता है[३०]।

साधना

आश्रमधर्म का पालन बताया गया है[३१]। जैमिनि संन्यास को नही मानते, किन्तु बादरायण उसे भी अन्य आश्रमों की भांति आदर देते है[३२]। मुमुक्षु को शम, दम, तितिक्षा आदि धारण करने पर जोर दिया गया है[३३]।

२५. वेदान्त दर्शन २/३/२१-२९। २६. भेदव्यपदेशाच्च। १/१/१७।
२७. वेदान्त ४/४/१७-२१। २८. वेदान्त २/३/३३-४०। इससे आगे भी।
२९. वेदान्त ३/३/५४। ३०. वेदान्त ३/१/१-२७।
३१. वेदान्त ३/४/१७। ३२. वेदान्त ३/४/१८-२६।
३३. वेदान्त ३/४/२७।

प्रतीक उपासना का खंडन किया गया है[३४]। ब्रह्मदृष्टि को उच्च बताकर एवं बैठकर उपासना, ध्यानादि करने को बताया गया है[३५]। ब्रह्म को अंगुष्ट मात्र मानकर उसकी उपासना करने को कहा गया है[३६]।

श्रुति में कहा गया है कि ज्ञान होने पर समस्त पापों का नाश हो जाता है और उसके नष्ट हो जाने पर पुण्य कर्मो का भी नाश हो जाता है। किन्तु ज्ञानी का शरीर जब तक है, उसका प्रारब्ध कर्म-भोग चलता रहता है। जीवन्मुक्त के वे ही कर्म नष्ट होते हैं जो प्रारब्ध मे नही आये हैं। ज्ञानी पुरुषों को अग्निहोत्रादि कर्म करना केवल उन विहितकर्मो की रक्षा के लिए है। परंतु किसी शाखा वालों के अनुसार आश्रमों के अन्य सारे कर्म भी जीवन भर ज्ञानी को करते रहना चाहिए। ज्ञानी का प्रारब्ध भोग कर ही मोक्ष होता है[३७]।

ब्रह्मलोक की यात्रा

"वाणी तथा इन्द्रियां मन में मिल जाती हैं, मन प्राण में, प्राण अध्यक्ष जीवात्मा में, आत्मा पांचो भूतो (पृथ्वी आदि तत्वो) मे, अर्थात सूक्ष्म शरीर में स्थित होकर ब्रह्मलोक की यात्रा करता है। एक शाखा वाले कहते हैं कि ज्ञानी कही आता-जाता नही 'न तस्य प्राणा उत्क्राति'। वह शरीर छूटने पर वहीं लीन हो जाता है। यह बात स्मृति भी कहती है कि मुक्त आत्मा का परम सत्ता से अलगाव नही रहता। मुक्त साधक जब शरीर से निकलता है, तब हृदय का अग्रभाग प्रकाशित हो जाता है। वह सौ नाड़ियों से भी जो अधिक है, उस सुषुम्णा के सहित निकलता है। वह आत्मा सूर्य की किरणो में मिलकर ब्रह्मलोक को चला जाता है, चाहे रात हो या दक्षिणायन हो, इसमें फरक नही पड़ता[३८]।"

फिर "अर्चि (सूर्य किरण) से आगे दिन को, दिन से शुक्लपक्ष को, शुक्लपक्ष से उत्तरायण के छह महीने को, छह महीने से संवत्सर को, संवत्सर से सूर्य को, सूर्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत को वहां के अ-मानव पुरुष उस मुक्त आत्मा को ब्रह्म तक पहुंचा देते है[३९]।" जब मुक्त जीव ब्रह्म के पास पहुंच गया "जैमिनि कहते हैं वह ब्रह्म के रूप वाला होता है; परन्तु ऋषि औडुलोमि कहते है कि वह चैतन्य मात्र रहता है। बादरायण कहते हैं दोनो मे कोई अन्तर नही है[४०]।" "उन मुक्तात्माओं को संकल्पमात्र से भोगों की प्राप्ति

३४. वेदान्त ४/१/४।
३५. वेदान्त ४/१/५-१२।
३६. वेदान्त १/३/२४।
३७. वेदान्त ४/१/१३-१९।
३८. वेदान्त ४/२/१-२१।
३९. वेदान्त ४/३/१-७।
४०. वेदांत ४/४/४-७।

होती है। इसलिए वह स्वयं अपना स्वामी होता है[४१]।" अब प्रश्न होता है कि उन मुक्तात्माओं के पास ब्रह्मलोक के भोगों को भोगने के लिए शरीर होता है कि नही ? उत्तर में ऋषि बादरि का विचार है "नहीं होता; परन्तु जैमिनि कहते हैं कि शरीर होता है और दोनो अपने-अपने मत में श्रुतिप्रमाण देते हैं। बादरायण कहते हैं दोनों बातें ठीक हैं। मुक्तात्मा के पास जब शरीर नही होता, तब वह स्वप्न के समान केवल मन से भोगो को भोगता है तथा जब शरीर उपस्थित हो जाता है, तब जाग्रत की तरह भोगता है[४२]।"

"जैसे आग अनेक दीपकों में प्रवेश कर जाती है, वैसे मुक्तात्मा अनेक देहों को धर सकता है[४३]। परन्तु "श्रुतियां ऐसा भी बताती है कि सुषुप्ति और मोक्ष में किसी प्रकार का ज्ञान नही रहता। बताया गया कि वहां का मोक्ष निर्गुण है, यहां का सगुण[४४]।"

वेद अनादि

वेदों में इंद्र आदि शरीरधारी देवताओं के नाम आने से यह सिद्ध होता है कि उन देवताओं के बाद वेद बने और जो बनता है, वह मिट भी जाता है। इस प्रकार वेद नित्य नही सिद्ध हुए ? उत्तर में बताया गया कि ऐसी बात नही है। वस्तुतः देवताओं के जन्म के बाद उनके नाम वेद में नहीं आये, बल्कि वेदों के शब्दों से ही देवता आदि की उत्पत्ति हुई या वेदों से ही उनके नाम लिये गये हैं। अतएव वेद नित्य—अनादि-अनन्त हैं[४५]।

वेदविद्या में शूद्रों का अधिकार नहीं

प्रश्न होता है कि एक बार राजा जानश्रुति[४६] ऋषि रैक्व के पास ज्ञान पाने की इच्छा से गया था। तब ऋषि ने उसे शूद्र कहकर संबोधित किया था। परन्तु ऋषि ने राजा को संवर्गविद्या का उपदेश दिया था। इसलिए सिद्ध होता है कि शूद्र का भी वेदविद्या में अधिकार है। यहां ऋषि बादरायण युक्ति

४१. वेदांत ४/४/८-९। ४२. वेदांत ४/४/१०-१४।

४३. वेदांत ४/४/१५।

४४. छांदोग्य ६/८/१।, बृह० ४/४/६। वही २/४/१२। वही २/४/१४। वही ४/३/१९। मांडू० ५। देखें तीसरे अध्याय 'पारख सिद्धान्त' का 'मोक्ष' संदर्भ।

४५. वेदांत १/३/२८-२९।

४६. छांदोग्य उपनिषद् के चतुर्थ प्रपाठक के १ से ३ खंडों में राजा जानश्रुति तथा सयुग्वा रैक्व की कथा आयी है।

देते हैं कि ऐसी बात नहीं है। राजा जानश्रुति शूद्र नहीं था। राजा ने पहले अपना नौकर ऋषि के पास भेजा था। फिर स्वयं ऋषि के पास जाकर हजार गौयें, रत्नों की एक माला, खच्चरों का एक रथ और अपनी कन्या ऋषि को दक्षिणा में देकर उनसे ज्ञान की याचना की थी। ये हजारों गौयें, रत्नों की माला आदि राजा के ऐश्वर्य-सूचक हैं। यह सब क्षत्रिय के ही हो सकते है, शूद्र के नहीं। इसके अतिरिक्त वहीं यह भी वात आयी है कि रैक्व के यहां शौनक कापेय जो ब्राह्मण था तथा अभिप्रतारि काक्षसेनि जो क्षत्रिय था, दोनो ने पहले विद्या सीखी थी। कोई शूद्र के सीखने की चर्चा नही है। अतः राजा जानश्रुति शूद्र नहीं, किंतु क्षत्रिय था। वहां जो रैक्व ने उसे शूद्र कहा है, वह इसलिए कि वह शोक से द्रवित होकर रैक्व के पास गया था।

एक बार की कथा ऐसी है कि दो हंस उड़ते हुए राजा जानश्रुति के छत के ऊपर आये। या दो परमहंस-महात्मा उसके घर आये। राजा बहुत दानी था। एक हस ने कहा राजा का तेज प्रचंड है। दूसरे ने कहा क्या यह गाड़ीवाला रैक्व ऋषि हो जायगा। वह रैक्व बहुत तेजवान है। यह सब सुन कर राजा प्रातःकाल ही अपना नौकर ऋषि रैक्व को खोजने के लिए भेजा। फिर स्वयं जाकर गाये, रत्न, अपनी कन्या उसे दक्षिणा में दे, उससे विद्या सीखी।

वादरायण कहते हैं कि राजा जानश्रुति शोक से द्रवित होकर रैक्व के पास दौड़ा गया था, इसलिए रैक्व ने उसे शूद्र कहा। वस्तुतः राजा क्षत्रिय था।

दूसरा प्रश्न है कि सत्यकाम जाबाल के पिता का पता न था[४७]। तो उसे हम कैसे कह सकते हैं कि वह शूद्र नही हो सकता। और उसे गौतम ने यज्ञोपवीत संस्कार करके ब्रह्मविद्या दी थी? उत्तर में बादरायण कहते है कि सत्यकाम जाबाल इसलिए शूद्र नही, किन्तु ब्राह्मण है; क्योकि उसने सत्य बात बता दी। तो गौतम समझ गये कि सत्य तो ब्राह्मण ही बोल सकता है, शूद्र नही। इसीलिए उन्होंने उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया।

अंततः बादरायण बताते हैं कि स्मृतियों में शूद्रों के लिए वेदो का श्रवण, मनन, अर्थज्ञान, अनुष्ठान आदि सबका निषेध किया गया है। इसलिए शूद्र वेदविद्या के अधिकारी नही हैं[४८]। वह इस प्रकार है "शूद्र निस्संदेह चलता-फिरता श्मशान है, इसलिए शूद्र के पास वेदों का अध्ययन नही करना

४७. छांदोग्य उपनिषद्, चौथा प्रपाठक, चौथा खंड। तथा देखें इसी ग्रंथ मे बीजक मंथन में "जन्म रहस्य" संदर्भ तथा इसी अध्याय का 'उपनिषद्' संदर्भ।

४८. वेदांत १/३/३४-३८।

चाहिए[४९]। ब्राह्मण शूद्र को वेद का ज्ञान न दे[५०]। वेदों के अक्षरो का विचार करते ही शूद्र पतित हो जाता है[५१]। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए अध्ययन, यज्ञ तथा दान का विधान है[५२]। शूद्र बहुत पशु एवं धन सपन्न हो तो भी वह यज्ञ करने का अधिकारी नही है[५३]। शूद्र यदि निकट आकर वेद सुन ले, तो उसके कानों में पिघले हुए रांगा या लाख भर दे। यदि उसने वेदो का पाठ कर लिया हो, तो उसकी जिह्वा को काट दे और उसने यदि वेद मंत्रो को याद कर लिया हो, तो उसके शरीर को काट दे (उसकी हत्या कर दे)[५४]।"

तुलना

सत-चिद्-आनन्द, निर्गुण-निराकार स्वरूप ब्रह्म से असत, अचिद, अ-आनन्द (दुःखपूर्ण), सगुण, साकार जगत बन गया—यह कथन ही पूरा-का-पूरा असंभव दोषयुक्त है। निष्क्रिय, निर्विकार, अखंड ब्रह्म क्रियाशील, विकारी तथा टुकड़े-टुकड़े कैसे होगा? और ऐसा हुए बिना जगत का निर्माण कैसे होगा? ब्रह्म पूर्णकाम है। वह केवल लीला करने के लिए स्वयं जगत बन गया, यह युक्ति कितनी निरर्थक है? स्पष्ट है। सृष्टि करने से तो उसको लीला सूझी है और सभी प्राणियो की सृष्टि मे पड़कर दुर्गति हो रही है[५५]। ब्रह्म से जगत बनने मे महर्षि बादरायण के पास कोई युक्ति तो है नही, इसलिए उन्होने बारम्बार उपनिषदो, श्रुतियो एव स्मृतियो के ही उदाहरण उपस्थित किये है। उदाहरण वही मान्य होता है, जो दो-दो चार के समान निर्भ्रान्त सत्य हो। केवल कही लिखा होने से वह विवेकवानो द्वारा मान्य नही हो सकता। स्वय भामतीकार वाचस्पति मिश्र कहते है "हजार वेद वचन भी घड़े को कपड़ा नही बना सकते[५६]।" जो ब्रह्म आज तक केवल कल्पना का विषय है, वह दूध

४९. पद्यु ह वा एतच्छ्मशानं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्।
वेदांत १/३/३८/ पर शांकर भाष्य।

५०. न शूद्राय मतिं दद्यात्। मनुस्मृति ४/८०।

५१. वेदाक्षर विचारेण शूद्रः पतित तत्क्षणात्। पराशर स्मृति १/७३।

५२. द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम्॥ वेदांत १/३/३८। पर शांकर भाष्य।

५३. तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीयः॥ राहुल, दर्शन दिग्दर्शन, पृष्ठ ६८८।

५४. अथ हास्य वेदमुपश्रृंण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणमुदाहरणे जिह्वच्छेदो धारणे शरीरभेदः॥ गौतमधर्मसूत्र २/१२/३। शांकर भाष्य में भी।

५५. इस विषय को तीसरे अध्याय 'पारखसिद्धान्त' के 'ब्रह्म' संदर्भ में सविस्तार आप देख चुके हैं।

५६. न ह्यागमाः सहस्रमपि घटं पटयितुम् ईष्टे॥ भामती॥

के दही बन जाने के समान, बदल कर ठोस जगत बन गया; कितनी तर्कहीन बात है !

कपिल तथा कणाद के प्रकृति एवं परमाणु कारणवाद जो विवेकसंमत हैं, उनका तो बादरायण ने तिरस्कार कर डाला और श्रुति-शब्दों के जोर से शून्य ब्रह्म से ठोस जगत बना डाला। सर राधाकृष्णन लिखते हैं "वह (बादरायण) हमारा ध्यान श्रुति के प्रत्यक्ष में परस्पर विरोधी वाक्यो की ओर आकृष्ट करते हुए हमें सावधान करता है कि श्रुति के प्रमाण के विषय में शंका करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। दार्शनिक दृष्टि से यह उत्तर असंतोषजनक है[५७]।" और भी "बादरायण के सूत्र में भी उपनिषदो की विशेषता के समान अनिश्चितता तथा संदिग्धता पायी जाती है। सूत्र में उपनिषदों की ही शिक्षा का प्रतिपादन करने का प्रयास किया गया है और इसीलिए इसके अंदर अनेक प्रकार के संदेह तथा वादविवाद के अंकुरों का समावेश है। यदि सूत्र के अंतर्गत विचारों की विशिष्टता को और सूक्ष्मता के साथ समझने का कोई प्रयत्न किया जायगा तो अनेक विरोधी चट्टानो तथा आध्यात्मिक विघ्नो का सामना करने की संभावना हो सकती है[५८]।" "जब हम वेदान्तसूत्र के प्रश्नो को हाथ में लेते हैं तो वहां विषय इतना अधिक सरल नहीं है। यदि हम भाष्यों को एक ओर रख दें तो हमें सूत्र के रचयिता का आशय जानना कठिन है[५९]।"

जगत के कारणवाद में पारख तथा वेदान्तसूत्र में पूरा अन्तर है। एक क्रियाशील जड़ द्रव्यो को जगत का कारण तथा उसे प्रवाह रूप अनादि मानता है तथा दूसरा जगत को निष्क्रिय चेतन ब्रह्म का ही बदला रूप मानता है। जीव प्रति शरीर भिन्न अणु है, यह ब्रह्मसूत्र की बात पारख से मेल खाती है; परन्तु पारख दर्शन जीव को किसी ब्रह्म का अंश या उससे मिलने-बिछुड़ने की बात नहीं मानता। वह जोव को स्वतः स्वतंत्र एवं सर्वोपरि मानता है। कर्म-वश नाना योनियो मे उसका जाना तो मानता है; परन्तु स्वर्ग-नरक की लोकरूप में कल्पना नही करता।

उपनिषद्, गीता आदि में मुक्तों की ब्रह्मलोक-यात्रा का वर्णन है। महर्षि बादरायग ने उसका भी सग्रह कर दिया है। वह हजारों वर्ष पुरानी कल्पित बातें है। जिन श्रुतियों, उपनिषदो तथा स्मृतियों के प्रमाण आंख मूंदकर मान लेने पर हम जोर देते हैं, उन्हीं मे यह भी लिखा है कि चन्द्रलोक

५७. भारतीय दर्शन खंड २, पृष्ठ ४३१। ५८. वही, पृष्ठ ४३७।
५९. वही, पृष्ठ ४६३।

सूर्यलोक से भी आगे है जबकि चन्द्रमा पृथ्वी के बहुत निकट है बनिस्बत सूर्य के। वस्तुतः पुस्तकों के वचनों को ब्रह्मवचन मान लेना ही अनर्थों की जड़ है। हम अपने से पूर्व के हजारों वर्षो से होते आये पितामहों के अनुभव-ज्ञान का लाभ ही न लें, उन्हें ठुकरा दें, यह हमारी हद दर्जे की मूर्खता होगी। परन्तु हम देश-काल-सापेक्ष, समसामयिक एवं भूल से उत्पन्न हुई बातो पर विचार कर उन पर सशोधन की दृष्टि ही न अपनावें, यह हमारा उससे भी अधिक अज्ञान होगा। मुक्तात्मा किसी ब्रह्मलोक की यात्रा करता है, वेदांत सूत्र के इस विचार से पारख दर्शन का कोई मेल नहीं है; परन्तु ज्ञानी शरीर छूटने पर कही आता-जाता नहीं, किन्तु जहां है शांत हो जाता है, इस बात से दोनों का मेल बैठ जाता है।

महर्षि बादरायण वेदों की अनादिता तथा उनकी परम प्रामाणिकता न सिद्ध करते, तो उन्हें अपने युक्तिहीन ब्रह्मकारणवाद की सिद्धि के लिए आधार ही क्या होता ! श्रुतियो की मर्यादाविहीन प्रामाणिकता स्वीकार कर ही वे एक असत्य सिद्धान्त की स्थापना कर सके कि ब्रह्म ही से जगत पैदा हुआ है।

भिन्न उपनिषदों में उनके ऋषियों के भिन्न-भिन्न विचार है। उनके भाष्यकारो-टीकाकारों के भी भिन्न दृष्टिकोण थे इन सबका समाधान कर सभी उपनिषदो का ब्रह्मकारणवाद मे अर्थ करके महर्षि बादरायण ने उपनिषदो के विचारो का समन्वय करना चाहा; परन्तु उनके सूत्र संक्षिप्त, द्व्यर्थक तथा उलझे हुए होने से उनके टीकाकारो ने वेदात मे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैतादि अनेक मत स्थिर किये। इस प्रकार जो वेदांत (ब्रह्मसूत्र) एक दार्शनिक विचार रखने के लिए रचा गया, वह अनेक परस्पर विरोधी विचारों का जन्मदाता हुआ।

हमारे पितामह आर्यो का एक अंधायुग था जब वे अपने ही सहोदर भाइयो के एक बड़े समुदाय से, जिसका नाम भूल से शूद्र रख लिया गया था, घृणा कर रहे थे; और वे उनकी हर उन्नति के मार्ग को रोक रहे थे। वे कह रहे थे शूद्रो का अधिकार वेद विद्या, कर्मकांड एव ज्ञानकांड आदि में नही है। आगे चलकर इस आशय के मंत्र स्मृतियो मे रख दिये गये। जब यह अज्ञान प्रामाणिकता का जामा पहन लिया, तब यह शूद्र कहे जाने वाले भाइयो पर कहर ढाने लगा। फिर वेद सुन लेने वाले शूद्र नामधारियो के कानो में रांगा और लाख भरने की बात ऊपर आने लगी। इसी अज्ञान के कारण रामायण मे शंबूक वध एवं श्री मद्भागवत मे सूतवध की कथा गढ़ी गयी। परन्तु आर्यो के ही भीतर कुछ क्रांतिकारी विचार के पुरुष उदित हुए, जो इस हृदयहीनता

से घृणा कर रहे थे। समय के प्रभाव से उनके स्वर मंद ही सही, उपनिषद् आदि में उठ रहे थे; परन्तु उन्हें भी महर्षि बादरायण ने तोड़-मरोड़ कर अपने सूत्रों में उपस्थित किया। महर्षि बादरायण से, जो सब कुछ एक ही ब्रह्म मानते थे, यह आशा की जा सकती थी कि वे वर्ग और वर्णहीन मानव की समानता के अधिकार को अच्छी तरह समझ कर उसके प्रबल प्रचारक बनते, परन्तु उन्होंने उलटा किया।

स्वामी शंकराचार्य जो अद्वैतवाद के प्रबल प्रचारक हुए और जिन्होंने यह बलपूर्वक कहा कि एक ब्रह्म के अलावा कहीं कुछ नहीं है, वे भी वर्ण और वर्गहीन मानव-समानता पर जोर न देकर, उलटे अपने भाष्य में स्मृतियों का उद्धरण देकर शूद्र कहे जाने वाले बंधुओ के प्रति घृणा ही व्यक्त किये। यह अद्वैतवाद की कैसी विडंबना है।

संप्रति, महर्षि बादरायण या अन्य मनु आदि ऋषियों की कुछ ऐसी लचर एवं दोषपूर्ण बातो को न उछालने की आवश्यकता है, न उन ऋषियों के प्रति अश्रद्धा करने की; और न स्मृतियों के पन्नों को फाड़कर जलाने की आवश्यकता है, जैसे कि कुछ आवश्यकता से अधिक उत्साही एवं उत्तेजक मानवतावादी आये दिन करते हैं, प्रत्युत उनसे सार उपदेश लेकर अपनी और समाज की उन्नति करते हुए ऊपर उठने की आवश्यकता है। दूसरी ओर जो लोग उन ऋषियों के सुपुत्र होने का दम भरते है तथा अपने को श्रुति-स्मृति के पक्षधर मानते हैं, उन्हें आज ऐसी जहरीली बातों को पूर्वजों की भूल ही मानना चाहिए, या कम-से-कम उन्हें तब की समसामयिक बातें मानकर, आज के लिए कलंक का टीका ही समझना चाहिए। मनुष्य मात्र वेदविद्या, कर्म, ज्ञान आदि का समान अधिकारी है। जिसकी जितनी योग्यता हो, उन्हें ग्रहण करे।

१४
स्वामी शंकराचार्य का अद्वैतवाद

हम स्वामी शंकराचार्य की चर्चा करने के पहले उनके दादागुरु गौड़पादाचार्य की चर्चा करना चाहेंगे, जहां से शंकराचार्य ने अद्वैतवाद की अपनी उपादान सामग्री ली है।

गौड़पादाचार्य

इनको ईसा की पांचवी शती में रहना माना जाता है। बताया जाता है कि ये नर्मदा के तट पर रहते थे। नर्मदा मध्य प्रदेश, मालवा, गुजरात होते

हुए पश्चिम समुद्र में गिरती है। इनका नर्मदा तट पर कहां आश्रम था, यह निश्चित नहीं है। इनका रहना समय से बदरिकाश्रम में भी कहा जाता है।

इनका मुख्य ग्रन्थ है 'आगमशास्त्र', जिसमें चार परिच्छेद हैं और चारों में कमशः २९, ३८, ४८ तथा १००—कुल २१५ श्लोक हैं। चारो प्रकरणों के क्रमशः नाम हैं आगम, वैतथ्य, अद्वैत तथा अलातशांति। गौड़पाद ने चौथे परिच्छेद में बुद्ध की आदि तथा अंत में खुले शब्दो में वंदना की है और बीच बीच में बुद्ध के विचारों का, उनका स्पष्ट नाम लेकर आदर से उद्धरण दिया है। इस प्रकार इस प्रकरण में बुद्ध के नाम साफ-साफ आठ बार आये हैं[1]। गौड़-पादाचार्य बुद्ध तथा बुद्धमत के प्रति अत्यन्त श्रद्धालु थे। वे साथ-साथ वैदिक तथा उपनिषद्-मत के भी श्रद्धालु थे। उन्होंने उपनिषद् के ब्रह्मवाद का पुट देते हुए बौद्धों के शून्यवाद का ही अधिक समर्थन किया है।

गौड़पाद का सिद्धान्त

गौड़पाद ने सिद्धान्ततः अजातवाद माना है। 'जात का अर्थ है पैदा होना और 'अ-जात' का अर्थ है न पैदा होना। अर्थात कभी कुछ पैदा नही हुआ। वे कहते हैं "जैसे अंधकार में रस्सी का सही ज्ञान न होने से उसमें सांप, जल-धारा आदि का भ्रम होता है; वैसे आत्मा की कल्पना है[2]। जैसे स्वप्न दिखाई देता है, वैसे माया दिखाई देती है, जैसे गंधर्वनगर दिखता है, वैसे वेदान्त के अनुसार बुद्धिमान को संसार दिखाई देता है[3]। अतएव न निरोध (नाश) है, न उत्पत्ति है, न कोई बंधा हुआ है, न कोई साधक है, न मोक्ष की इच्छा वाला है और न मुक्ति है—यही सच्चाई है[4]। कोई चीज न अपने से पैदा होती है, न दूसरे से पैदा होती है, न सत से कोई चीज पैदा होती है न असत से और न सत-असत मिश्रित से कोई चीज पैदा होती है[5]। किसी जीव का जन्म नहीं

१, गौड़पादरचित आगमशास्त्र, परिच्छेद ४ श्लोक १, १९, ४२, ८०, ८८, ९८, ९९, १०० में बुद्ध के नाम आये हैं।

२. अनिश्चिता यथा रज्जुर्न्धकारे विकल्पिता।
सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥ २/१७ ॥

३. स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वं इदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः ॥ २/३१ ॥

४. न निरोधो न चोत्पत्तिर्नबद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ २/३२ ॥

५. स्वतो व परतो वापि न किञ्चिद् वस्तु जायते।
सदसत् सदसद् वापि न किंचिद् वस्तु जायते ॥ ४/२२ ।

होता है, इसकी कोई संभावना ही नहीं है। यही उत्तम सत्य है कि कहीं कुछ पैदा नहीं होता[६]।"

गौड़पाद कहते हैं जैसे आग की लुआठी, बनेठी एवं मसाल को गोलाकार घुमाने से आग का गोला दिखता है, परन्तु वह कुछ नहीं है। इसी प्रकार चित्त के घूमने (चंचल होने) से जगत दिखता है, परन्तु जगत कुछ नही है। इस आग की लुआठी को 'अलात' कहते हैं। अतएव गौड़पाद के सिद्धान्त को अजातवाद (अन-उत्पन्नवाद) के अलावा अलातवाद भी कहा जाता है। गौड़पाद वेदान्त के विचारों के साथ, शून्यवादी बौद्ध नागार्जुन, जो १७५ ईस्वी में हुए, के शून्यवादी विचारों को लेकर 'कभी कुछ नही पैदा हुआ' कह सके। नागार्जुन की माध्यमिक-कारिका तथा गौड़पाद की मांडूक्यकारिका (आगमशास्त्र) देखा जाय तो दोनों के वस्तु निर्णय तथा शैली में इतना साम्य है कि कहते नही बनता। आगमशास्त्र के चौथे परिच्छेद की २२वी कारिका जो अभी उद्धृत कर आये है, उसे मिलाइये नागार्जुन की निम्न कारिका से "न अपने में से कोई वस्तु पैदा होती है और न पर से और न अपने तथा अन्य से। फिर कुछ भी उत्पन्न होना कैसे संभव है[७]।"

इसीलिए गौड़पाद महात्मा बुद्धकी चौथे परिच्छेद 'अलातशांति' के शुरू तथा आखीर मे वन्दना करते है और बीच-बीच मे बुद्ध का नाम लेते हुए उनके अद्वयवाद (शाश्वतवाद तथा उच्छिन्नवाद—दोनो अतियों से परे) को लेकर अपना वेदान्ती अद्वैतवाद की चर्चा करते है। निष्पक्षता से देखा जाय तो गौड़पाद का दर्शन बौद्ध दर्शन से परिपूर्ण हे या यह कह सकते है कि गौड़पाद के शास्त्र में बहुत कुछ बौद्ध-माल पर वैदिक ट्रेडमार्क लगा है।

स्वामी शंकराचार्य ने गौड़पाद के आगमशास्त्र का भाष्य किया है। खेद है कि वे बुद्ध के स्पष्ट नाम का बुद्धिमान आदि अर्थ करके भाग निकलना चाहे हैं। चौथे परिच्छेद की प्रथम कारिका में जहां गौड़पाद ने बड़ी श्रद्धा से महात्मा बुद्ध की वन्दना की है "मै दो पदो (मनुष्यो) मे श्रेष्ठ तथागत बुद्ध की वन्दना करता हूं[८]।" वहा शकराचार्य ने 'नारायण संज्ञक ईश्वर' अर्थ कर डाला है। स्वामी शंकराचार्य ने गीता का भाष्य करते हुए जो कपिल को क्षमा कर दी,

६. न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते।
एतत् तद् उत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥ ४/७१ ॥

७. न स्वतो जायते भावः परतो नैव जायते।
न स्वतः परतश्चैव जायते कुतः ॥ मा० का० २१/१३ ॥

८. सम्बुद्ध तं वन्दे द्विपदां वरं ॥ ४/१ ॥

यही आश्चर्य लगता है । अन्यथा वे 'सिद्धानां कपिलो मुनिः[९]' का अर्थ कर सकते थे "मैं सिद्धों में भूरा या बादामी रंग का मुनि हूं।" क्योंकि कपिल का अर्थ बादामी भी होता है। सर राधाकृष्णन लिखते हैं "इस मत का कि गौड़-पाद हमें बौद्धधर्म के शून्यवाद का वेदांत रूप देता है, कई विद्वानों ने समर्थन किया है, यथा जैकोबी, पूसीं, सुखठणकर तथा विधुशेखर भट्टाचार्य। दुर्भाग्य-वश शंकर बौद्ध धर्म के समस्त स्पष्ट उल्लेखों का समाधान (explains away =अनर्थ) कर डालता है। देखें आगमशास्त्र पर शांकर भाष्य ४ : १, २, १९, ४२, ९०, जहां पर बुद्ध तथा उसके सिद्धान्त के अद्भुत उल्लेखों का समाधान (अनर्थ) कर दिया गया है[१०]।"

शंकराचार्य

कुछ भक्तों के ख्याल के स्वामी शंकराचार्य का जन्म केरल प्रदेश के कालड़ी नामक ग्राम में शिवगुरु नामक एक नंबूदरीपाद ब्राह्मण के औरस से हुआ; परन्तु कुछ प्रामाणिक विद्वानों के अनुसार स्वामी शंकर कालड़ी ग्राम में ही एक विधवा ब्राह्मणी से पैदा हुए थे। इसका विवरण आप इसी ग्रंथ के प्रथम अध्याय के तीसरे सन्दर्भ जन्मरहस्य में देखें।

आपका जन्म ईस्वी सन ७८८ में केरल में तथा मृत्यु सन ८२० में बद-रकाश्रम की ओर केदारनाथ में हुआ। आप अनेक जन्मों के दिव्य संस्कारी, प्रतिभा के धनी एवं अपार पौरुष वाले महापुरुष थे। आप थोड़ी उम्र में सस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर वेद-वेदांत के मर्मज्ञ विद्वान हो गये तथा नर्मदा के तट पर अमरकान्त में गुरु गोविन्दपाद के चरणों में रहकर सब प्रकार शिक्षित हो गये। आपका गौड़पाद से मिलना बताया जाता है; परन्तु दोनों में करीब तीन सौ वर्षों की दूरी देखते हुए यह बात नहीं जंचती कि शंकर गौड़पाद से मिले। हां, गौड़पाद के आगमशास्त्र से आपने अपने सिद्धान्त की उपादान सामग्री ली। गौड़पाद तथा गोविंदपाद के बीच में कोई महत्वपूर्ण कड़ी न होने से शंकर का दादागुरु गौड़पाद को कहा गया।

आपने प्रस्थानत्रयी (उपनिषद्[११], गीता तथा ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य लिखा। आपके अन्य ग्रंथ है—उपदेश सहस्री, विवेक चूड़ामणि, दक्षिणामूर्ति

९. मै सिद्धों में कपिल हूं॥ गीता १०/२६॥
कपिल का शाब्दिक अर्थ भूरा या बादामी होता है।

१०. Indian philosophy, 2/465, भारतीय दर्शन २/४५८-४५९।

११. छांदोग्य, वृहदारण्यक, ईश, केन, कठ, मुंडक, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, प्रश्न, श्वेताश्वतर—इन उपनिषदों पर भाष्य किये।

स्तोत्र, हरिमीड़ेस्तोत्र, आनन्दलहरी, सौंदर्यलहरी, अपरोक्षानुभूति, प्रश्नोत्तरी, दशश्लोकी, मोहमुद्गर, विष्णु सहस्र नाम आदि। आपने पूरे भारत में घूम-घूमकर वेदांत का प्रचार किया तथा दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में पुरी, पश्चिम मे द्वारिका तथा उत्तर में बदरीनाथ में मठ स्थापित कर कर्मवीरता का अपार परिचय दिया। स्वामी शंकर ने जगत को अवश्य मिथ्या कहा, परन्तु वे जगत के कल्याण के लिए अपने दृष्टिकोण द्वारा जीवन भर जूझते रहे।

अद्वैत ब्रह्म

स्वामी शंकराचार्य परमार्थतः एक ब्रह्म मानते हैं। उनके ख्याल से उसके अलावा कुछ भी नही है। इसीलिए इनके मत को अद्वैतवाद कहते हैं। अब रहा, ऐसा मान लेने से तो काम नही चलता; जगत, जीव, सृष्टि—प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। इसका क्या समाधान है ? एक ही ब्रह्म है तो ये सब कहां से आ गये ? क्योंकि "यह ब्रह्म परिमार्थिक, कूटस्थ, नित्य, आकाश के समान सर्वव्यापक, सब क्रियाओ से रहित, नित्यतृप्त, निरवयव (अखंड) तथा स्वय प्रकाश स्वरूप है, जिसमें धर्माधर्म सहित उनके कार्यों—सुख-दुःखों का तीन-काल में भी सम्बन्ध नही हो सकता[१२]।"

ब्रह्म उपर्युक्त प्रकार से होने पर भी जगत ब्रह्म में से ही पैदा होता है। जैसे सोने से मिट्टी का घड़ा नही बनता, वैसे चेतन ब्रह्म से जड़-चेतनात्मक जगत कैसे पैदा हो सकता है ? और इसके साथ ब्रह्म अखंड, अविकारी भी है ? वे कहते हैं ऐसा प्रश्न नही करना चाहिए; क्योकि उपनिषदें यही कहती हैं कि ब्रह्म ही जगत की उत्पत्ति, स्थिति एव लय का स्थान है। जो श्रुतियां (उपनिषदें) कहती हैं, हमें मान लेना चाहिए। प्रत्यक्ष और अनुमान आदि सभी प्रमाणों से शब्द प्रमाण ही बलवान है। और वे शब्द उपनिषद् के हों। तर्क की तो कहीं स्थिरता नही है। इसलिए उपनिषदो के प्रमाणो को मान लेना चाहिए।

ब्रह्म से जगत कैसे बन जाता है ? इसमें माया कारण है। माया सत्य है कि असत्य, ब्रह्म से पृथक है कि ब्रह्म से अ-पृथक ? यह नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः वह अकथनीय—अनिर्वचनीय है। माया के कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण बनता है, जिसका नाम ईश्वर, हिरण्यगर्भ आदि है।

१२. इदं तु पारमार्थिकं, कूटस्थनित्यं, व्योमवत्सर्वव्यापि, सर्वविक्रियारहितम् नित्यतृप्तम्, निरवयवम् स्वयञ्ज्योतिः स्वभावम्। यत्र धर्माधर्मौ सहकार्येण कालत्रयञ्च नोपावर्तेते। वेदांत पर शांकर भाष्य १/१/४॥

अनादि अविद्या की उपाधि से अंतःकरण विच्छिन्न चेतन ही जीव कहलाता है। वस्तुतः व्यवहार को देखते हुए ईश्वर, जीव, माया, अविद्या, जगत इत्यादि कहना पड़ता है, अन्यथा एक ब्रह्म के अतिरिक्त किसी की सत्ता ही नही है। एक अखंड, शुद्ध, बुद्ध ब्रह्म में मिथ्या भ्रांति रूप ईश्वर, जीव तथा जगत की उत्पादिका माया और अविद्या कहां से आ गयी ? इसका उत्तर हम नही दे सकते। श्रुतियो-उपनिषदो से यही निष्कर्ष निकलता है, इसलिए ऐसा ही मानना पड़ता है। जैसे सीपी में चांदी, बालू मे पानी, रस्सी मे साँप का भ्रम होता है, वैसे अविद्या-वश ब्रह्म मे जगत का भ्रम होता है।

मिथ्या प्रतीत को ही भ्रम या अध्यास कहते हैं। इसकी निवृत्ति से ही मोक्ष है। परमार्थतः एक ही ब्रह्म की सत्ता होने से बंध-मोक्ष भी भ्रम ही है। परन्तु व्यवहारतः बध-मोक्ष है। द्वैत का भ्रम ही बंधन है और उसकी निवृत्ति मोक्ष। जब साधक को यह ज्ञान हो जाता है "मैं शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, निर्विशेष, स्वप्रकाश चेतन ब्रह्म हूं" और इसका पूर्ण अभ्यास हो जाता है, तब मोक्ष की सिद्धि हो जाती है।

मोक्ष के साधन चार हैं—विवेक, वैराग्य, षटसंपत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधि) तथा मुमुक्षुता।

तुलना

अद्वैतवाद जगत का समाधान नही कर सकता। 'मैं शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप चेतन ब्रह्म हू' स्वामी शकर का यह विचार स्तुत्य है। परन्तु इसकी परिभाषा जड़-चेतन अभिन्न चराचर व्यापक करके उन्होने एक अ-समाधान ही उपस्थित किया है। एक शुद्ध-बुद्ध ब्रह्म ही विकारी जगत की उत्पत्ति, स्थिति एव लय का अधिष्ठान है—यह विचार शंकराचार्य के सिद्धान्त को अत्यन्त जरजर बनाकर रख देता है। इसका विस्तार आप तीसरे अध्याय के 'अद्वैत ब्रह्मवाद' सदर्भ मे देखे। गौड़पादाचार्य ने जो यह बड़ी ही उदारता की बात कही है "श्रुति ने कही भूत (अस्तित्व) से सृष्टि का होना माना है और कही अभूत (अन-अस्तित्व) से। परन्तु जो निश्चित है, युक्ति-सहित है वही होता, दूसरे प्रकार नही[१३]।

विवेक, वैराग्य, षटसंपत्ति एवं मुमुक्षुता—साधन-अंश हैं, जो सर्वथा स्तुत्य है।

१३. भूततोऽभूततो वापि सृज्यमाने समा श्रुतिः।
निश्चितं युक्तियुक्तं च यत् तद् भवति नेतरेत् ॥आगमशास्त्र ३/२३॥

१५

स्वामी विवेकानंद एवं वेदांत पर उनका नया दृष्टिकोण

नरेन्द्रनाथ ने कलकत्ता के एक कायस्थ परिवार में १२ जनवरी १८६३ ई० को जन्म लिया। कालेज में पढ़ते-पढ़ते ही ब्राह्म-समाज में दीक्षित हुए। वे पीछे श्रीरामकृष्ण परमहंस की संगत में आये और संन्यासी हो गये। उनके संन्यास का नाम विवेकानन्द हुआ। उन्होने देश और विदेश में वेदांत का प्रचार किया। उन्होंने १ मई १८९७ ई० में आलम बाजार के मठ मे 'श्री रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की तथा १८९८ में प्रसिद्ध बेलूर मठ की स्थापना की। वे अपने जीवन में एक अच्छे साधु शिष्य समाज के अनुशास्ता रहे। उनका चालीस वर्ष की अल्पायु में ही ४ जुलाई १९०२ ई० को शरीरांत हो गया। उनकी रचनायें 'विवेकानन्द साहित्य' के नाम से दस खडों में प्रकाशित हैं, जो महत्वपूर्ण हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में संन्यासियों की एक व्यवस्थित संस्था स्थापित की जो भारत के साधुओं के लिए प्रेरणाप्रद है। इसके संन्यासी शिक्षा, चिकित्सा तथा अन्य माध्यमो से जनता की सेवा करने का एक उच्च आदर्श स्थापित करते हैं।

स्वामी जी ने सिद्धांत के रूप में अद्वैत वेदांत माना, किन्तु जगत तीनों कालों में नहीं है इस वाक्य पर जोर नहीं दिया। उन्होने भारतवासियों को तथा ज्यादातर साधु-संन्यासियों को परोपकारी तथा पर-सेवापरायण होने पर जोर दिया। अद्वैत वेदांत के व्यावहारिक पक्ष मे स्वामी जी ने एक नया मोड़ लाया जो स्तुत्य है। उनका चिंतन उदार था और कई अंशो मे विद्रोही भी।

यदि स्वामी विवेकानन्द श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे भक्त हृदय संत से न मिले होते, तो वे विद्रोही संन्यासी होते। श्री सत्येन्द्रनाथ मजुमदार ने 'विवेकानन्द चरित' में लिखा भी है—"सत्यान्वेषी विवेकानन्द यदि युवावस्था में परम कारुणिक श्री रामकृष्ण देव को गुरु के रूप में न पाते, तो सम्भव है हम उन्हें दयानन्द की तरह विद्रोही देखते।"

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू शब्द को जगह-जगह काफी श्रेय दिया है। इसमें कारण समसामयिक वातावरग है। कलकत्ता में स्थापित ब्राह्म-समाज, जिसमें विद्वानों का जमवट था, द्वारा हिन्दू शब्द एवं समाज को काफी कोसा जा रहा था। साथ-साथ उस समय इसाई मिशनरिया सांप्रदायिकतावश हिन्दू समाज एवं उसकी रीति-नीति के कटु आलोचक थी। इन सबसे क्षुब्ध होकर

स्वामी जी ने बारंबार हिन्दू शब्द एवं हिन्दू समाज की कुछ रीति-नीति की प्रशंसा की है। अन्यथा स्वामी जी का दिल संकुचित हिन्दू-मुसलिम-इसाई आदि शब्दो से ऊपर था। तभी स्वामी जी कह सके थे "मुझे जो कुछ कहना है मै उसे अपने ही भावो में कहूंगा। मै अपने वाक्यों को न तो हिन्दू ढांचे में ढालूगा, न इसाई ढांचे मे और न किसी दूसरे ढांचे में ही[1]।"

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—"नही, समझौता नही, लीपापोती नहीं, सड़े-गले मुर्दो को फूलो से न ढको।......अति निंदनीय कापुरुषता से ही समझौता करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। साहस का आलंबन करो मेरे प्यारे पुत्रो! सबसे बढ़कर तुम साहसी बनो। किसी भी कारण से असत्य के साथ समझौता करने न जाना। चरम सत्य का प्रचार करो। इससे मत डरो कि तुम्हें लोक-समाज की श्रद्धा प्राप्त न होगी अथवा तुम से अवांछनीय झगड़े का कारण उत्पन्न होगा[2]।

"शकर (आदि शंकराचार्य) की बुद्धि क्षुरधार के समान थी। वे विचारक थे और पडित भी; परन्तु उनमे गहरी उदारता नही थी और ऐसा अनुमान होता है कि उनका हृदय भी उसी प्रकार था। इसके अतिरिक्त उनमें ब्राह्मणत्व का अभिमान बहुत था। एक दक्षिण पुरोहित जैसे ब्राह्मण थे, और क्या? अपने वेदान्तभाष्य मे कैसो बहादुरी से समर्थन किया है कि ब्राह्मग के अतिरिक्त अन्य जातियो को ब्रह्मज्ञान नही हो सकता! उनके विचार की क्या प्रशंसा करूं। विदूर का उल्लेख कर उन्होने कहा है कि पूर्व जन्म में ब्राह्मण का शरीर होने के कारग वह (विदुर) ब्रह्मज्ञ हुए थे। अच्छा, यदि आजकल किसी शूद्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो तो क्या शंकर के मतानुसार कहना होगा कि वह पूर्वजन्म में ब्राह्मण था? क्यो, ब्राह्मणत्व को लेकर ऐसी खीचातानी करने का क्या प्रयोजन है?.........भाष्य मे ऐसे अद्भुत पांडित्य प्रदर्शित करने का कोई प्रयोजन न था। फिर उनका हृदय देखो, शास्त्रार्थ मे पराजित कर कितने बौद्ध श्रमणो को आग मे झोक कर मार डाला! इन बौद्ध लोगो की भी कैसी बुद्धि थी कि तर्क मे हार कर आग मे जल मरे। शकराचार्य के कार्य संकीर्ण दीवानेपने से निकले हुए पागलपन के अतिरिक्त और क्या हो सकते है? दूसरी ओर बुद्धदेव के हृदय का विचार करो। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का तो कहना क्या, वे बकरी के बच्चे की जीवन-रक्षा के लिए अपना जीवन भी देने को सदा प्रस्तुत रहते थे। कैसा उदार भाव!—एक बार सोचो तो[3]।

१. विवेकानन्द चरित पृष्ठ २४०।　　२. वही, पृष्ठ ४४३।
३. विवेकानन्द साहित्य, खंड ६, पृष्ठ ८२।

"स्मृति और पुराण सीमित बुद्धि वाले व्यक्तियों की रचनायें है और भ्रम, त्रुटि, प्रमाद, भेद तथा द्वेष भाव से परिपूर्ण है[४]।"

"राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार है; क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे।........रामानुज, शंकर इत्यादि संकीर्ण हृदय वाले, केवल पंडित मालूम होते हैं।......पुरोहितों की लिखी हुई पुस्तकों ही में जाति जैसे पागल विचार पाये जाते है[५]।"

१६

वैष्णव दर्शन

वैष्णव में मुख्य चार सम्प्रदाय हैं (१) श्री संप्रदाय, जिसके प्रमुख आचार्य श्री रामानुज हैं, (२) ब्रह्म सम्प्रदाय, जिसके आचार्य श्री मध्व है, (३) रुद्र संप्रदाय, जिसके आचार्य श्री विष्णु स्वामी है (परन्तु इसके बाद वल्लभाचार्य इस सम्प्रदाय के अनुयायी बनकर शुद्धाद्वैत संप्रदाय चलाये) तथा (४) सनक संप्रदाय, जिसके आचार्य श्री निंबार्क हुए।

रामानुज का मत विशिष्टाद्वैत, माध्वाचार्य का मत द्वैत, वल्लभाचार्य का मत शुद्धाद्वैत तथा निंबार्काचार्य का मत द्वैताद्वैत है। इन वैष्णव सम्प्रदायों में थोड़ा मतभेद होते हुए भी इस बात में सब एक मत है कि ईश्वर सगुण एवं शरीरधारी है। उसके अवतार होते है। जीव ईश्वर से पृथक नाना तथा अणु है और वे मोक्ष में ब्रह्म एवं ईश्वर में विलीन नहीं होते, प्रत्युत उनकी भक्ति करके उसके पास पहुंचकर उसके संग में आनन्द प्राप्त करते है। सभी वैष्णव, जगत को मिथ्या प्रतीत मात्र नहीं; किन्तु सत्य मानते हैं।

रामानुजाचार्य

श्री रामानुज का जन्म तमिल प्रांत में श्री पेरुंबुदुर में १०२७ ई० में हुआ। उन्होंने अपने छुटपन में कांजीवरम में श्री यादव प्रकाश से वेदांत पढ़ा, परन्तु उनको उनकी सारी बाते नही जंची। वे एक विद्वान पुरुष हुए और आलवार वैष्णव आचार्यों से शिक्षा पाकर प्रसिद्ध वैष्णव बने।

पंडित बल्देव उपाध्याय लिखते है "आलवार शब्द तमिल भाषा का शब्द है जिसका अर्थ अध्यात्मज्ञान रूपी समुद्र में गहरा गोता लगाने वाला पुरुष

४. वही, पृष्ठ ३२६।

५. वही, पृष्ठ ३२६, ३२७।

होता है। ये संत भगवान नारायण के सच्चे भक्त थे। इन्होने अपनी मातृ-भाषा तमिल में भक्तिरस से आप्लावित सहस्रों पद्यों की रचना कर साधारण जनता में भगवद्भक्ति का प्रचुर प्रचार किया। प्रसिद्ध 'आलवारों' में अनेक नीच जाति के पुरुष थे। सुनते है सबसे प्रसिद्ध नम्मालवार (शठकोपाचार्य) अछूत जाति के थे, 'तिरुभंगै' आलवार जाति से नीच और कर्म से बड़े भारी डाकू थे। गोदा या आडाल स्त्री थीं। भगवान के दरबार में जाति-पांति का आदर नही होता। वहां पहुचने मे केवल भक्तिमय हृदय की आवश्यकता होती है।···आलवारों का सख्या बारह हैं···[1]। शठकोपाचार्य के रचे चार प्रसिद्ध ग्रथ है (१) तिरुविरुत्तम, (२) तिरुवाशिरियम, (३) पेरियतिरुंदादि तथा (४) तिरुवॉयमोलि। ये चारो ग्रंथ वैष्णवो में वेद के समकक्ष में जाते है जो तमिल भाषा मे बने है[2]।" शठकोपाचार्य[3] के बाद नाथमुनि एवं यमुनाचार्य प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य है। उसके बाद रामानुजाचार्य प्रसिद्ध आचार्य है जिन्होने वेदांत पर श्री भाष्य रचकर अपना विशिष्टाद्वैत मत रखा।

रामानुजाचार्य का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत

चित् (चेतन) अचित (जड़)—ये दोनो ईश्वर के अंश है। ब्रह्म अथवा ईश्वर सगुण है। जैसे आग के कुण्ड से चिनगारियां निकलती और पुनः उसी के आश्रय मे जाती हैं, इसी प्रकार ईश्वर से ही जीव और जड़तत्व निकलते तथा उसी के आश्रय में रहते हैं। ये असख्य, अणु जीव तथा जड़प्रकृति ईश्वर के शरीर हैं। जीव और जड़ जगत दोनो सत्य तथा स्वतन्त्र है; परन्तु ये हैं ईश्वर के अधीन ही। ईश्वर इन दोनो में व्याप्त है; परन्तु इन दोनों के दोषो से मुक्त है। सृष्टिकाल में जीव और जगत से ब्रह्म विशेष एवं श्रेष्ठ रहता है और प्रलयकाल में जबकि जीव तथा जड जगत सूक्ष्म में रहते हैं, उनसे ब्रह्म विशेष (श्रेष्ठ) ही रहता है। इसीलिए इस मत को 'विशिष्टाद्वैत' कहते है। शकरा-चार्य के मत में परमार्थतः ब्रह्म के अतिरिक्त ईश्वर, जीव, जगत—कुछ भी न होने से उनका मत 'अद्वैतवाद' है। परन्तु रामानुज के मत में ब्रह्म से जीव और जगत का भेद सदैव बना ही रहने से ब्रह्म 'विशिष्ट-अद्वैत' है। इस मत में भगवान की शरण में जाना ही मुख्य मोक्ष-साधना है तथा भगवान के साथ बैकुण्ठ मे निवास करना मोक्ष है। रामानुज जीवन्मुक्ति नही मानते। शरीर छूटने पर भगवान का सान्निध्य ही मोक्ष है।

१. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४६९-४७०, षष्ठ संस्करण, शारदा मन्दिर काशी।

२. वही, पृष्ठ ४७०।

३. अनेक आलवार (वैष्णव), जिनकी पूजा ब्राह्मण लोग भी करते थे, जन्म से शूद्र थे।
(राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन २/७१०)

माध्वाचार्य और उनका द्वैतवाद

इनको पूर्णप्रज्ञ तथा आनन्द तीर्थ के नाम से भी जाना जाता है। इनका जन्म दक्षिणी भारत किनारा जिले में उदीपी के निकट एक ग्राम मे ११६६ ई० में हुआ। आप योग्य विद्वान तथा संन्यासी हुए। आपने वेदांत पर अपना 'पूर्ण-प्रज्ञ' नाम का भाष्य लिखा।

आपने जीव, जगत तथा ईश्वर—तीनों को अनादि एवं अनन्त माना है। आपके विचार से जड़ और चेतन (जीव) ईश्वर के अंश नहीं है, किन्तु स्वतन्त्र हैं; परन्तु इन दोनों पर ईश्वर का आधिपत्य है, क्योंकि जीव और जगत ईश्वर से निम्न हैं। पवित्राचरण तथा भक्ति द्वारा ईश्वर की शरण ही उसकी प्राप्ति का साधन है।

निंबार्क तथा उनका द्वैताद्वैतवाद

ये तेलगू ब्राह्मण थे। इनका जीवन ईसा की तेरहवी शताब्दी में था। इन्होने ब्रह्मसूत्र पर एक छोटा-सा 'वेदांतपारिजात सौरभ' नाम का भाष्य लिखा।

इनकी भी दृष्टि में जगत भ्रम नहीं किन्तु सत्य है। जीव असंख्य, अणु तथा नित्य हैं, ईश्वर इनका शासक है। यदि सब एक मान लें, तो उपनिषद् के सैकड़ों वचन जो भेद-परक की घोषणा करते है, उनका क्या होगा ? जीव और जगत के गुण ब्रह्म से भिन्न होने से हम उन्हे ब्रह्म से अभिन्न नहीं कह सकते; परन्तु जीव और जगत ब्रह्म से स्वतन्त्र नही रह सकते। वे ब्रह्म के आश्रित होने से उन्हे सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते। जैसे तरंगे न जल से सर्वथा पृथक है और न सर्वथा एक, इसी प्रकार जीव और जगत ब्रह्म से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी। इसीलिए इस सिद्धांत का नाम है 'द्वैताद्वैत', अर्थात द्वैत भी और अद्वैत भी। निंबार्क ब्रह्म को सर्वशक्तिमान मानते हैं और बताते हैं कि वह किसी सामग्री के बिना जगत रच सकता है फिर भी जगत त्रिगुणात्मक होने से ब्रह्म से कुछ भिन्न भी है। ये विष्णु और लक्ष्मी तथा कृष्ण और राधा में भक्ति आवश्यक बतलाते हैं। ये ईश्वर-भक्ति पर जोर देते हैं और अन्य देवताओं की पूजा का खंडन करते हैं।

वल्लभाचार्य तथा उनका शुद्धाद्वैतवाद

वल्लभाचार्य ने १४७६ ई० मे एक तेलगू ब्राह्मण के यहां जन्म लिया। इन्होने अपने से सौ वर्ष पहले हुए श्री विष्णु स्वामी के मत में दीक्षित होकर शुद्धाद्वैतवाद चलाया और कार्यक्षेत्र उत्तरी भारत चुना। इनका जीवन काशी,

अरैल (प्रयाग संगम से दक्षिण क्षेत्र) तथा वृन्दावन से ज्यादा जुड़ा हुआ बताया जाता है। इन्होंने वेदांत पर अणुभाष्य लिखा।

इनका मत शुद्धाद्वैतवाद है। अर्थात ब्रह्म शुद्ध और अद्वैत है। शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म से जगत बनने में माया कारण है। वल्लभाचार्य कहते है ब्रह्म इतना कमजोर नही है कि उसे जगत रचने के लिए माया की सहायता लेनी पड़े। ब्रह्म तो शुद्ध है। वहां माया कहां ? ब्रह्म ठहरा लीलाधारी ! जब उसे जगत बनाकर लीला करने की इच्छा होती है, तो वह अपने आनन्द और चिद्—इन दो अंशो को तिरोहित (छिपा) कर केवल अपने सद् अंश से प्रकृति बना देता है, और केवल अपना आनन्द गुण तिरोहित कर, अपने सद् और चिद् अंश से चेतन को बना देता है और स्वयं सच्चिदानन्द रूप रहता है। वस्तुतः ब्रह्म जगत का निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है। जैसे कारण-कार्य में तात्विक अन्तर नही, वैसे ब्रह्म और जगत में सारतः अन्तर नही।

वह ब्रह्म विग्रहधारी श्री कृष्ण है जो दश वर्ष की अवस्था तक वाला है। युद्ध करने वाले कृष्ण को ये नही मानते। कृष्ण की शरण मे जाकर उनके नित्य वृन्दावन की रासलीला में शामिल हो जाना ही जीव का परम लक्ष्य है। यह मत तपस्या को नहीं स्वीकार करता। भगवान की भक्ति करने से वह सारे दोषों को माफ कर सकता है। वल्लभ का ईश्वर कर्मसापेक्ष नही है कि वह केवल जीवों के कर्मानुसार ही फल दे। वह अपने पापी भक्तो का भी उद्धार कर सकता है। वल्लभ के मत में भगवान की कृपा ही से जीव का कल्याण हो सकता है। इनकी भक्ति को 'पुष्टि मार्ग' भी कहते है। भगवान की जीव पर कृपा ही पुष्टि कहलाती है। जीव अपने पुरुषार्थ से नही तर सकता। भगवान कृष्ण की शरण में जाने से ही जीव का बेड़ा पार होगा। जब भगवान कृपा करेगा तब वह अपने आनन्द गुण से जीव को आनंदित कर देगा।

इन्ही के मत मे आगे बढ़कर इनके (वल्लभ के) समसामयिक बगाल के नवद्वीप[1] मे चैतन्य नाम का एक ब्राह्मण कुमार हुआ जो कृष्ण-भक्ति मे विभोर होकर उनका कीर्तन करने लगा और उसका उत्तरी भारत मे काफी प्रचार हुआ। इन्ही के मत मे आज प्रभुपाद जो ने, जो (सन् १६८० ई०) दो वर्ष पूर्व शरीर छोड़ चुके, स्वदेश और विदेशो मे 'हरे राम···हरे कृष्ण' का प्रचार किया है। इनके मठ अमेरिका आदि अनेक देशो मे बने हैं और विदेशी लोग सात्विक आहार-विहार रखकर कीर्तन द्वारा कृष्ण भक्ति करते हैं जिससे विदेशो मे

१. यह स्थान कलकत्ता से उत्तर पश्चिम करीब सत्तर मील गंगापार है।

इसाई समाज चौंक गया है । स्वयं चैतन्य ने ही जातिभेद तोड़कर अपने मार्ग में मुसलमान तक को सम्मिलित किया था ।

तुलना

वैष्णव धर्म अपने मत में जो जातिवाद को ढील कर भक्ति में मानव मात्र का अधिकार समझा यह स्तुत्य है और पारख दर्शन से साम्य रखता है। वैष्णवों की अहिंसा और गुरुभक्ति भी श्लाघनीय समस्तरीय है। जहां तक जीव से भिन्न ईश्वर की कल्पना है वह उनके एक भक्त-हृदय की बात है और उसके लिए यहां कुछ कहना नही है । इसके लिए तीसरे अध्याय का 'ईश्वर' सदर्भ देखा जा सकता है ।

जीव अविनाशी तथा अखण्ड होने से वह किसी का अंश नहीं हो सकता । यह पीछे खूब देख चुके है कि पारख दर्शन सत्संग, गुरुभक्ति एवं सद्गुणों का आश्रय लेकर अपने पवित्र कर्मो द्वारा ही अपना उद्धार करना मानता है ।

१७
स्वामी दयानंद सरस्वती और आर्य समाज

आपका शारीरिक जन्म गुजरात के मौरवी राज्य के भीतर टंकारा नामक ग्राम में शनिवार फाल्गुन कृष्ण दशमी विक्रम संवत १८८१ तद्नुसार १२ फरवरी सन् १८२५ को हुआ था। नाम रखा गया मूलशंकर। आपके पिता का नाम श्री कर्षण तिवारी था। पिता धनी तथा राज्याधिकारी थे। मूलशंकर किशोरावस्था में ही घर त्याग कर साधु हो गये। उन्होंने मथुरावासी स्वामी विरजानन्द से व्याकरण तथा वैदिक साहित्य पढ़ा। उसके पश्चात वे प्रचार क्षेत्र मे उतरे। उनकी साधुदशा का नाम पड़ा दयानन्द, जिन्हें स्वामी दयानन्द कहते हैं। आप विद्वान, तेजस्वी महात्मा, अंधरूढ़ियो के विरोधी तथा क्रांतिकारी पुरुष थे। आपने १७ अप्रैल १८७५ में बंबई गिरगाव मोहल्ला, डा० माणिकचन्द्र की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना की, फिर उसका भारत भर मे प्रचार हुआ। आप अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण कई बार परेशान किये गये तथा आपको कई बार जहर दिया गया। अंततः आपको एक वेश्या से प्रेरित आपके भंडारी द्वारा ही जहर दिया गया और आपका कार्तिक अमावस्या (दीपावली) विक्रमी १९४० सवत को अजमेर में शरीर छूट गया।

आपका मत

आप ईश्वर, जीव और प्रकृति—तीनों को अनादि तथा अंशांशी रहित स्वतंत्र मानते है; परन्तु जीव तथा प्रकृति को व्याप्य तथा ईश्वर को व्यापक और उनका नियामक मानते हैं। वेद ईश्वरवचन मानते है[1]। कर्मकांड में हवन आवश्यक मानते है[2]। मोक्ष में जीव का ब्रह्म में लीन होना न मानकर ब्रह्म के भीतर विचरना मानते है। मोक्ष में जीव के साथ स्थूल शरीर तो नहीं रहता, किंतु सत्य संकल्प आदि गुण रहते हैं। ये गुण जीव में स्वाभाविक मानते हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती मुक्ति अवस्था को एक निश्चित अवधि तक मानते हैं। उसके बाद मुक्त जीव पुनः संसार में आकर देह धारण करता है। मुक्ति-सुख भोगने का समय कितना है, यह स्वामी जी के अपने वचनों में ही पढ़ें "वे मुक्त जीव मुक्ति मे प्राप्त होके ब्रह्म मे आनद को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात मुक्तिसुख को छोड़ के संसार मे आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तैतालीस लाख बीस सहस्र वर्षो की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रो का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षो का परांत काल होता है। इसको गणित की रीति से यथावत समझ लीजिये। इतना समय मुक्ति मे सुख भोगने का है[3]।"

आप अवतार, तीर्थ, मूर्ति, देवी-देवता, भूत-प्रेत नहीं मानते हैं। वेदों को ही मुख्य प्रमाण मानते है। वेदो मे कोई रूढ़िवाचक शब्द न मानकर सब यौगिक मानते है। पुराणादि नही मानते। वर्णव्यवस्था तथा जाति-पाँति को थोड़ा ढील करके मानते है। ॐ नाम जप, सदाचार, योगाभ्यास, वैराग्यादि मोक्ष साधन मानते है।

आपने भारत में प्रचलित समस्त धार्मिक मतो की समीक्षा बड़े समारोह से की है। आप पक्के निश्चय से समझते है कि वेद ही ईश्वर-वचन है और वेदों के अर्थ जो आप करते है, मात्र वही अर्थ है। इस जोश मे पड़कर आपने दूसरे मतो की अत्यन्त कड़ी आलोचना की है।

---

१. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पृष्ठ ६, १०। दशवां संस्करण, वैदिक पुस्तकालय अजमेर।
सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ७। प्रकाशन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, विक्रम संवत २०३१।

२. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ३।

३. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ६, पृष्ठ २४०।

सृष्टि

स्वामी जी बताते हैं कि पहले-पहल तिब्बत देश में जवान-जवान स्त्री-पुरुष तथा नर-मादा के हर जोड़े पैदा हुए। यदि वे बच्चे होते, तो उनका पालन-पोषण कौन करता तथा बुड्ढे होते तो उनसे सृष्टि कैसे होती। अतः जवान-जवान पैदा हुए। उसके बाद सृष्टि चल पड़ी। पहले यह मूल रूप में बताया ही गया है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही अनादि हैं—ऐसा स्वामी जी मानते हैं।

तुलना एवं समीक्षा

जड़ और चेतन का ठीक ज्ञान जब तक नहीं होता, बड़े-बड़े विद्वान कहलाने वाले लोग भी अनेक दुर्बलताओं एवं भ्रांतियों से भरी हुई एक तीसरी शक्ति की कल्पना करते हैं और इस लाइन में स्वामी दयानन्द भी खड़े हैं, तो वे क्षम्य हैं।

वेद

वेद या किसी भी पुस्तक को ईश्वरवचन या स्वतः प्रमाण मान लेने से धार्मिकों में जो कठोरता पैदा होती है वह इतिहास-सिद्ध है। मूर्तिपूजा से ग्रंथ-पूजा ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो चुकी है। आज तक बेचारे मूर्तिपूजकों ने सामूहिक हत्यायें नहीं की; परन्तु किसी पुस्तक को ईश्वरवचन मानने वाले ग्रन्थपूजक, जैसे इस्लाम और इसाइयत ने अनेकों बार सामूहिक हत्यायें की हैं। वेदों को ईश्वरवचन मानने वाले यदि हत्यायें नहीं किये, तो वे दूसरों को अवैदिक कहकर हजारों वर्षों से गाली देते आ रहे हैं। यदि संसार की कोई भी पुस्तक ईश्वरीय है, तो वह चांद-सूरज के समान सर्वमान्य क्यों नहीं ? यह तो, यदि निष्पक्ष हो तो एक साधारण बच्चा भी समझ सकता है कि तथा-कथित निराकार ईश्वर वेदादि वाणी नहीं बना सकता। फिर पुस्तक तो एक देश और एक काल में रहने वाला आदमी बनाता है, जिससे भिन्न देश वा काल वाले उससे शिक्षा ले सकें। जो हर देश तथा हर काल में मौजूद है उस ईश्वर को किताब बनाने की क्या आवश्यकता ? वह तो हर समय सब जगह सबको उपदेश व प्रेरणा करता रह सकता है। भाषा और विद्या पर अपना पूर्ण अधिकार मानने वाले स्वामी जी यदि भाषा-उत्पत्ति-विज्ञान पर जरा भी ध्यान दिये होते, तो वे तुरन्त समझ जाते कि वेद मनुष्य के ही रचे हो सकते हैं।

शब्द तीन प्रकार के होते हैं—रूढ़, योग तथा योगरूढ़। व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थानों आदि के नाम, यथा नहुष, मरीच, मिट्टी, पानी, सिंधु आदि रूढ़ हैं। 'हिम' शब्द रूढ़ है। हिम+आलय=हिमालय शब्द योग तथा 'पंकज' योगरूढ़ है। पंक+ज=पंकज, कीचड़ से उत्पन्न अर्थ होने से योग है, परन्तु पंकज कमल में ही रूढ़ होने से योगरूढ़ है। स्वामी दयानन्द वेदो के सभी शब्दों को योग अर्थात यौगिक कह कर उनमें आये हुए व्यक्ति, स्थान आदि के रूढ़-वाची शब्दो का विचित्र अर्थ कर देते हैं। वेद के टीकाकार श्री रामगोविन्द त्रिवेदी लिखते है "आर्य समाज के स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद के शब्द, अर्थ, शब्दार्थ-सम्बन्ध तथा कर्म आदि को भी नित्य मानते है। स्वामी जी का मत है कि "वेद मे अनित्य व्यक्तियो का वर्णन नही है। प्रकृति, प्रत्यय के अनुसार चलने वाली यौगिक शैली ही आर्यसमाज में वेदार्थ करने की उपयुक्त शैली मानी जाती है। स्वामी जी वेद में आये नामों को ऐतिहासिक और भौगोलिक न मानकर यौगिक अर्थो मे लेते हैं। वेद के वशिष्ठ को ऋषि नही मानते, वशिष्ठ शब्द का अर्थ 'प्राण' करते हैं। इसी तरह भरद्वाज का अर्थ 'मन' और विश्वामित्र का अर्थ 'कान' किया गया है[४]।" यदि वेद में ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम सिद्ध हो जायेंगे तो वेद अनादि नही सिद्ध होगे। तब यह अर्थ होगा कि पहले मनुष्य थे, पीछे वेद। इसलिए उर्वशी, पुरुरवा, नहुष, ययाति, यम, सुदास आदि सभी ऐतिहासिक व्यक्तियो के नामों के अर्थ का यौगिक विधा से समाधान कर डाला गया है।

वेद न तो अनादि हैं, न अपौरुषेय और न किसी ईश्वर-रचित। वेद हमारे पूज्य पितामह ऋषियो के रचे हुए हैं। उनमें उस समय के ज्ञान-विज्ञान, रीति-रिवाज, खान-पान, बात-व्यवहार तथा यज्ञ-याग का वर्णन है। वेदों में पंचानबे (९५) प्रतिशत से अधिक सामयिक बातें और प्राकृतिक शक्तियों एव कल्पनाओ को देवता का रूप देकर भय-संभूत प्रार्थनाये हैं, कही पांच प्रतिशत शाश्वत सत्य की झलकियां है। वेद संसार की या कम-से-कम हमारी आर्य-परपरा की प्राचीनतम पुस्तके हैं और हमारे पूर्वजो की देन है, अतः हमें उनकी रक्षा प्राणपण से करना है तथा उनके प्रति आदर रखना है। परन्तु ऐसी बात नही है कि वेद ही सभी ज्ञानो के आकर हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों दिशाओं मे क्या तब से आजतक कोई उन्नति नही हुई ! वैदिक युग से आजतक के हजारो वर्षो के बीच मे दुनिया के महान विचारको के खोजपूर्ण तत्व विवेचन से आज हर दिशा के ज्ञान मे महत्तम वृद्धि हुई है। इस तथ्य को ओझल कर देना बहुत बड़ी भूल होगी।

४. हिन्दी ऋग्वेद, भूमिका पृष्ठ २।

वेदों के महान विद्वान और टीकाकार श्री रामगोविन्द त्रिवेदी लिखते हैं "अभावपूर्ति के लिए मनुष्य भाषायें बनाता है और भाषाये बदला करती हैं। तत्सम शब्द से तद्भव शब्द बनते रहते हैं। संस्कृत भाषा बदलती-बदलती अपने मूल रूप के अतिरिक्त बंगला, ब्रज-भाषा आदि-आदि परिधान मे आ चुकी है। स्वयं वैदिक भाषा कितने ही परिधान धारण कर चुकी है। ऋग्वेद की शाकल-संहिता और शुक्ल-यजुर्वेद माध्यन्दिन-संहिता की भाषाओं मे भेद है। कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय-संहिता वा मैत्रायणी-सहिता को देखकर कौन कहेगा कि दोनों की भाषा समकालीन है?.........एक वंश के प्रपितामह से लेकर प्रपौत्र तक के मत्र वेद की संहिताओं में हैं। ये सब न तो समकालीन हो सकते हैं और न इनकी भाषा समकालीन हो सकती है।......एक नही अनेक मंत्रों से ज्ञात होता है कि ऋषि लोग नये-नये मंत्र बनाते थे। कुछ मंत्र देखिये 'स्तोमं जनयामि नव्यम्' (ऋग्वेद १/१०९/२) आशय यह कि हे इन्द्र और अग्नि तुम्हारे सोम-प्रदान-समय में पठनीय नया स्तोत्र बनाता हूं।' 'युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम्।' (ऋक् ६/८/५) अर्थात प्रत्येक युग में मंत्रात्मक नवीन स्तोत्र कहने वाले को अग्निदेव धन और यश प्रदान करो[५]।" ऋषि कहता है "मैं मंत्र द्रष्टा हूं, मेरा लड़का भिषक (वैद्य) है और मेरी कन्या जो भूनती (भड़भूज) है। हम सब भिन्न-भिन्न काम करते हैं[६]।" ऋषि के कितने सरल और ईमानदारी के वचन हैं। इस प्रकार वेद एक लम्बे समय में अनेक ऋषियों की रचनायें हैं। उनके प्रमाण परीक्षापूर्वक ही माने जा सकते है।

वेदों के विषय में स्वामी भगवदाचार्य का वक्तव्य

रामानन्द सम्प्रदाय के महान संत और विद्वान 'पंडितराज' स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज लिखते हैं—

"स्वामी दयानन्द ने—

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥

ऋग्वेद के इस मन्त्र से ताराख्ययंत्र (तार) का अस्तित्व वैदिककाल में भी था, ऐसा सिद्ध करने का अतीव उपहासास्पद प्रयत्न किया है, वह सर्वविदित है। प्रश्न

५. भूमिका, पृष्ठ ६, ७ हिन्दी ऋग्वेद।
६. ऋग्वेद ९/११२/३।

तो यह है कि यदि वेदों में यह सब कुछ था या है तो स्वामी श्री दयानन्द जी के मतानुसार अब्जों वर्षों की इस सृष्टि में पाश्चात्यों के आविष्कार से पूर्व किन्ही ग्रंथों में इनका उपयोग क्यो नही हुआ है ? महाभारत और बाल्मीकि रामायण यह महाप्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ भी इन सब वस्तुओं से शून्य है ।

महाभारत युद्ध और राम-रावण के युद्ध में भी आज की वैज्ञानिक युद्धसामग्री दृष्टिगोचर नही होती है । रामायण में एक पुष्पक विमान मिलता है परन्तु उस ग्रन्थ की दृष्टि से वह देव-वस्तु है, पार्थिव नही । उसका बनाने वाला मनुष्य नही किन्तु देव हैं ।　　(पृ० १०–११)

ऋग्वेद की ऋषिकायें :—

रोमशा ब्रह्मवादिनी (१/१२६/७) लोपामुद्रा (१/१७६/१-२) अपाला आत्रेयी (८१/७/१-७) शश्वती आंगिरसी (　　) यमी इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी (　　) घोषा काक्षीवती (　　) सूर्या सावित्री (　　) उर्वशी (१०/८५/२ ।; ४, ५, ७, १३, १५, १६, १८) सरमा (१०/१८/२) जुहूः ब्रह्मजाया (१०/१०६/८) गोधा (१०/१३४/७) इन्द्राणी (१०/१४५/६) श्रद्धा कामायनी (१०/१५१/५) देवजामयः इन्द्रमातरः (१०/१५३/५) शची पौलोमी (१०/१५६/६) सार्पराज्ञी (१०/१८६/३) शिखण्डिनी (　　) अदिति (८/१०७/२६) नदी (८/१०७/२६) रात्रि भारद्वाजी (८/६०/२०) वाक् आम्भृणी (१०/१२५/८) विश्ववारा आत्रेयी (५/२८/६) ।

यह ऋग्वेद की ऋषिकाएँ हैं । सामवेद मे इन्द्रमाताएं और गोधा यह दो ऋषिकाएं आयी हुई हैं । इन्द्रमाताएं दो स्थलों में आयी है । इतनी स्त्रिया यदि वेदमंत्रों की ऋषिकाएं हुई हैं तो यह कहना कि वेद स्त्रियो के लिए नही हैं, आज के प्रकाशमय युग में केवल हास्यास्पद है ।

मैंने एक बार आवेश में लिख दिया था कि जो विद्या ब्राह्मणो द्वारा न आयी हो वह ब्रह्मविद्या ही नही है । परन्तु ऐसा है नही । ऋग्वेद में ही कितने ही ऋषि क्षत्रिय हैं । ऋणञ्चय (८/१०८/१२-१३) यह राजर्षि है, विवस्वान का पुत्र कनु, विश्वामित्र के पुत्र अष्टक, ऋषभ, कत, देवराज, पूरण, प्रजापति, मधुच्छन्दा, रेणु यह सब क्षत्रिय ही है । नहुष, मान्धाता, भरत का पुत्र अश्वमेध, नहुप का पुत्र ययाति, इत्यादि कितने ही क्षत्रिय ऋग्वेद के ऋषि है ।　　(पृ० २८-२९)

वेद मन्त्रों के भिन्न जातीय ऋषियो के अस्तित्व से छान्दोग्य के इन प्रघट्टको से यह सर्वथा सिद्ध है कि वैदिक प्रथा के अनुसार स्त्री वेदो की अनधिकारिणी नही हैं ।

अब शूद्र की बात करूं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में ११६ से लेकर १२१ वें सूक्त तक १६३ मंत्र है इन सब मन्त्रों का ऋषि कक्षीवान् है। सायणाचार्य ११६ वें सूक्त के आरंभ में लिखते है--

उशिक्संज्ञायामङ्गराजस्य महिष्यां दास्यां दीर्घतमसोत्पादितः कक्षीवान् अस्य सूक्तस्य ऋषिः।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३८ वें सूक्त की घोषा ऋषिका है। वह कक्षीवान् की पुत्री है। यदि यही कक्षीवान् घोषा का पिता है तो घोषा शूद्रवर्ण की है। उसके लिए सायण लिखते हैं--

"कक्षीवतो दुहिता घोषा नाम ब्रह्मवादिन्यृषिः।"

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १६८ सूक्त का ऋषि शब (व) र है। वह भी कक्षीवान् के ही गोत्र का है। सायणाचार्य लिखते है--

"मयोभूरिति चतुर्ऋचमष्टादशं सूक्तं कक्षीवद्गोत्रस्य शबरस्यार्षम्।"

इससे सिद्ध ही है कि वेदों के शूद्र भी ऋषि है। इनमें वैश्य भी कोई होगा ही। सामवेद के पूर्वार्चिक में दो ऋषिका है। एक तो इंद्रमाताएं है और एक गोधा है यह कहा जा चुका है। (पृ० ३५)

उपालम्भ

त्रित ऋषि परमेश्वर दर्शन को आतुर था। उसने इष्ट सिद्धि के लिए यज्ञों का आरम्भ किया। विधिवत् दीर्घ अनुष्ठान के पश्चात भी उसे सिद्धि प्राप्त नहीं हुई तब वह देवो को सम्बोधन कर कहता है कि हे देवो! "कद्व ऋतं कदामृतं का प्रत्ना व आहुतिः" तुम्हारा सत्य कहाँ गया? तुम्हारा अमृत किधर है? और तुम्हे दी गयी हुई आहुतियां कहां गयी? कैसी अच्छी चुटकी यहां ली गयी है यह केवल सहृदय संवेद्य है।[७]

तात्पर्य यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान नही ही हैं। इस प्रतिज्ञा में निम्नलिखित हेतु मेरे सामने हैं।

१. ईश्वर का अस्तित्व दुःसाध्य है।

२. वेद में ऐसे किसी अलौकिक ज्ञान का उपदेश नहीं है जिसके लिए वेद के रचयिता को या उपदेशक को ईश्वर तत्त्व माना जाय।

३. शतपथ ब्राह्मण के अग्नेर्ऋग्वेदः, वायोर्यजुर्वेदः, सूर्यात्सामवेदः इत्यादि वाक्यों से भी ईश्वर वेदों की उत्पादकता से अलिप्त है।

७. सामवेद और यजुर्वेद की प्रस्तावना, पहला खंड, पृष्ठ ७०-७१।

४. कहीं कहा गया है कि वेदों का प्राकट्य ब्राह्मण से हुआ है और कही लिखा है कि अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा आदि से हुआ है। अत दोनों ही अप्रामाणिक कोटि में जाते हैं।

५. ईश्वर द्वारा वेदों के प्राकट्य का क्रम विश्वसनीय हो ही नही सकता।

६. राग-द्वेष की प्रवृत्ति करने का उपदेश वेदो में उपस्थित है जैसा कि "योस्मान् द्वेष्टि चं य वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः" इत्यादि।

७. भूतकाल की क्रिया का सहस्रो स्थलों पर निर्देश है जो ईश्वरीय ज्ञान का बाधक है। ईश्वरीय ज्ञान में भूत, भविष्यत, वर्तमान काल का निर्देश हो ही नही सकता।

८. शुक्ल यजुर्वेद उद्वान्त (वमि) है।

९. अथर्ववेद का बहुत प्राचीनकाल में पता नही लग रहा है।

१०. सामवेद ऋग्वेद से पृथक है ही नही।

११. ऋग्वेद में सामवेद का नाम उपस्थित है।

१२. उपदेश देने के लिए छन्दोबद्ध वाक्यों का प्रयोग अविचारित रमणीय अतएव अयोग्य है।

ऐसे ही अन्य भी अनेक कारण उपस्थित किये जा सकते हैं। अतः वेद प्राकट्य ईश्वर ने अग्न्यादि ऋषियों के द्वारा किया यह कथन सर्वथा अविश्वसनीय और अश्रद्धेय है। तत्काल में भिन्न-भिन्न ऋषियो ने कुछ लिखा और किसी समय में सबका संग्रह किसी ने किया, यही सिद्धान्त बुद्धिगम्य है। इसीलिए एक ही उपदेश, एक ही आशय वेदों में सहस्रशः प्रकट किये गये हैं। पुनरुक्त दोष का होना भी मेरे ही पक्ष का साधक है। (पृ० ८-९)

मेरा तात्पर्य इतना ही है कि वेदो में कोई क्रम नही है और ईश्वरीय ज्ञान क्रम हीन नहीं होना चाहिए। अतः वेद समय-समय पर ऋषियो के रचे हुए मन्त्रो के संग्रहमात्र हैं, इतना ही सत्य है। अतः उनमें गूढ़ से गूढ विज्ञान के भी विषय है और क्षुद्रातिक्षुद्र लौकिक बाते भी है। "वेद ईश्वरीय हैं" इस लोभ का अब इस युग में संवरण होना चाहिए। पुनरुक्ति दोष का उत्तर भी समीचीनतया इसी मार्ग से होगा और भूतकालादि वैदिक प्रयोगो का भी समाधान शुद्धतया इसी मार्ग से होगा। ऋक्-साम के ऐक्य का समाधान भी इसी मार्ग की अपेक्षा रखता है। (पृ० १२-१३)

वेद ऋषिप्रणीत ही है। वेदो में उत्तम पुरुष की क्रिया के द्वारा कही भी यह नही कहा गया है कि मैं परम पुरुष परमात्मा ही इस वेद का उपदेष्टा हूं। यदि वेद विज्ञान में "अग्ने नय सुपथा" "प्रजापते न त्वदेतान्य य" इत्यादि सहस्रो मन्त्र मध्यम

पुरुष और प्रथम पुरुष में ईश्वर का निर्देश कर रहे हैं तो उत्तम पुरुष के निर्देश से वेद अपवित्र नहीं बन सकते थे। "यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि" इस मन्त्र में जैसे उत्तम पुरुष का प्रयोग हुआ है ऐसे ही सैकड़ों और सहस्रो मन्त्रो में होना चाहिये था। पुरुष सूक्त में विशिष्ट रूप से कहना था कि यह समस्त विश्व मुझसे उत्पन्न हुए है और मैं ही इनका विधाता, धाता और अनुसंधाता हूँ। यदि ईश्वर के ज्ञान में ऋक्, यजुः, साम आदि का विभाग उपस्थित हो तो "अहमीश्वर उपदिशामि वेदान्" इतना भी ईश्वर के ज्ञान में होना ही चाहिए। प्रतिज्ञा वाक्य का स्मरण ईश्वर को क्यों नहीं हुआ अथवा उसके ज्ञान में अपने वेदकर्तृत्व को दृढ़ कराने के लिए किसी वाक्य का अभाव क्यो हुआ? कि च, "यथेमां वाचम्०" इस मन्त्र में आया हुआ "आवदानि" प्रयोग ईश्वर अपने लिए कर रहा है या इस मन्त्र के ऋषि विवस्वान अपने लिए कर रहे हैं, यह भी तो अस्पष्ट ही है। इस मंत्र के पूर्वार्द्ध में ब्राह्मण, राजन्य, शूद्र, अर्य, स्व, अरण ये छः सम्प्रदान है। वेद कहीं पर भी ब्राह्मणों और राजन्यों एवं शूद्रों और वैश्यों का लक्षण नहीं कर रहा है। "आ ब्रह्मन् ब्राह्मणः" इस मन्त्र से यदि क्षत्रिय लक्षण मान भी लें तो अन्य वर्ण तो अलक्षित ही रह गये। तात्पर्य यह है कि वेद ईश्वरीय नहीं, आर्ष हैं—ऋषिप्रोक्त हैं—ऋषिप्रणीत हैं। ऋषिकाल में ब्राह्मणादि शब्द सामान्य रूप से व्यवहृत थे और वर्णविभाग चल रहा था। वर्णविभाग ईश्वर का बनाया हुआ है। इसे मानने में ईश्वर के महत्त्व का निर्देश नहीं होता है। आज वर्णविभाग छिन्न-भिन्न हैं। ईश्वर यदि इतना अल्पशक्तिमान और अशक्त माना जाय कि उसकी आज्ञा का कोई पालन ही न करे और उसकी आज्ञा के विरुद्ध सहस्रों आज्ञायें प्रचारित करे और ईश्वर उसके विरुद्ध कुछ भी न कर सके, असमर्थ के समान सब कुछ सहन करता रहे, तो ऐसे ईश्वर का अस्वीकार कर देना कभी भी अनुचित नही माना जा सकता। अस्तु वस्तुतः वेद ईश्वरप्रोक्त नहीं, ऋषिप्रोक्त हैं, ऋषिप्रणीत है। आर्यकाल में उनका यद्वा तद्वा उपयोग होता रहा। यज्ञादि प्रथा के अन्त के साथ ही वेदाभ्यास का भी अन्त हो गया। ऋषिकाल चला गया। वेदकाल भी समाप्त हो गया। आज तो हिंदुओं के घर में भी वेद के लिए स्थान नही है। वेद के संबंध में निर्भय और निश्चय अभिप्राय यही है कि वेद समय-समय पर ऋषियो के रचे हुए मन्त्रो के सग्रह है। अतएव उनमें सैकड़ों बातें लौकिक और लोकप्रसिद्ध हैं तथा कितनी ही बातें तत्वज्ञानियों को आमोद-प्रमोद देने वाली हैं, कितनी ही बातें निरर्थक हैं। (पृ० १६-१७)

ईश्वर ज्ञान के बिना भी मानवीय कार्य चलते हैं

वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानकर कितने ही लोग ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता का भी विचार करते है। लोग कहते है कि ईश्वर बड़ा न्यायी है। वह जीवो के पुण्य-पापों के दण्ड और पारितोषिक विधान के लिए नियम बनाता है। उन नियमो की

पोथी ही वेद हैं। परन्तु यह अविचारित उक्ति है। वेदों में न तो पुण्य की गणना की गयी है और न पाप की, पाप-पुण्य का स्वरूप भी नही बताया गया है। उनका स्वरूप निर्देश किये बिना ही दण्डादि विधान की पोथी का लेखन विवेक नही कहा जा सकता। वेदो में दण्डादि विधान है भी नहीं।

सच्ची बात यह है कि मनुष्य पशु नही है, मनुष्य है। मननात् मनुष्यः। वह वन्य नही है, ग्राम्य और नागरिक है। उसके पास मननशक्ति है। वह पाप-पुण्य, कर्तव्य-अकर्तव्य का स्वयं विचार कर सकता है। वेद पुस्तक से ही आदिम मनुष्य परिष्कृत हुआ है, यह केवल कथन-मात्र है। वेदों का निर्माण मानव विकास के पश्चात की बात है। सृष्टि के आदि में ही वेद उपदिष्ट हुए या प्रणीत हुए यह मानना या मनवाना आज अति कठिन है। सृष्टि का आरम्भ कब हुआ और मानव-सृष्टि कब हुई इसके लिए गंभीर मीमासा अभीष्ट है। अब्जो वर्ष पूर्व ईश्वर ने चार वेदों का उपदेश च.र ही ऋषियो को चमत्कारिक रूप से किया, यह सब वाग्विलास आज हास्यास्पद ही माने जाते हैं।

आवश्यकता पदार्थ या वस्तु की जननी है। जब जिसकी आवश्यकता होती है, मनुष्य उसे ढूढ़ लेता है—बना लेता है। अपना कार्य करने लग जाता है। ग्रामोफोन, टेलीफ़ोन, रेडियो, विद्युत्प्रकाश, हाथ में लेकर अंधेरे में चलने में सहायता देने वाली छोटी-बड़ी बैटरी, लालटेनें, स्पुटनिक, बम्ब बरसाने वाले विमान, जोड़ा, खडांऊ, उपनेत्र, बिना तार का तार, साइकिल, मोटर, मोटरसाइकिल, घड़ी, फाउन्टेनपेन इत्यादि आज सैकड़ों साधन ऐसे हैं जो ईश्वर को ज्ञात नही थे। क्योंकि वेदों में उनके नाम नही हैं। आज के युग के वैज्ञानिक ईश्वर की कला से भी अधिक सुन्दर कलाओं के आविष्कारक हैं। मैं समझता हूँ कि यदि समझदार लोग ईश्वर को पुस्तक रचयिता, मास्टर, उपदेशक, जज, मजिस्ट्रेट, अंधा, बहरा, गूगा, निर्दय, सदय, अरूप, सरूप, अज्ञ, विज्ञ आदि विशेषणों से आज भी दूर रखने की कृपा करें तो ईश्वर का कल्याण हो जाय। अन्यथा वह निर्दय, क्रूर, अज्ञानी के अतिरिक्त आज कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकेगा। उसका सिंहासन सदा के लिए विलुप्त हो जायेगा।

एक प्रश्न, और उसका उत्तर

कहा जाता है सर्गारम्भ में सब अपने स्वाभाविक ज्ञान से युक्त होते है और उनके सब व्यवहार वेदज्ञान के बिना ही चल जाते हैं। परन्तु मनुष्य ऐसा प्राणी है जो अपने व्यवहारो के लिए परमुखापेक्षी होता है। उसे ज्ञानलाभ करने के लिए वेदों की आवश्यकता है। विभिन्न पशु वर्ग अपने खाद्य को पहचान लेता है, अखाद्य को भी पहचान लेता है। अतः विषयुक्त अन्न को पशु नहीं खाते। पशुओं और पक्षियों में यह विवेक है परन्तु मनुष्यो में नही। अतः विवेक प्राप्ति के लिए परमेश्वर ने मनुष्यों को

चार वेद दे दिये और कल्याण कर दिया। परन्तु इस आश्चर्य का तो इस कथन में उत्तर ही नहीं है कि जो स्वाभाविक बुद्धि, प्रतिभा, द्वेष्य-अद्वेष्य का नैसर्गिक ज्ञान, त्याज्य और ग्राह्य का विवेक परमेश्वर ने पशुओं और पक्षियों में उत्पन्न किया उसका संसर्ग मनुष्य योनि में क्यों नहीं होने दिया ? क्या उसे यह शौक था कि "इसी न्यूनता की पूर्ति के लिए मनुष्य मुझे पूजें और मेरी आजिजी करें ?" वस्तुत: इसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। सब योनियों की अपनी-अपनी पृथक-पृथक परिस्थिति है। उसमें क्रमश: विकास होता रहा है और आज भी दिख रहा है। ईश्वर को और अपने को भी राग, द्वेष, काम, क्रोधादि से अलग रखना ही ईश्वर के प्रति सच्चे प्रेम की निशानी है। किं च, यह सर्वथा सत्य नहीं है कि पशुओं को अपने खाद्याखाद्य का सर्वथा अनुभव होता ही है। चूहे जहर की गोलियों से रोज मरते रहते हैं। शहरों में और शहरों से बाहर जहर खिलाकर कुत्ते मारे जाते हैं। हाथी फुसला कर ही खड्डे में गिराया जाता है। सर्प वंशीनिनाद से ही अधीन कर लिया जाता है। अत: इन सब असंगत बातों से ईश्वर का साम्राज्य स्थापित नहीं किया जा सकता। भारत में आज अन्न नहीं है, ईश्वर अन्न की वृष्टि नहीं कर सकता। मरुभूमि में जल नहीं है, ईश्वर वहां जल नहीं दे सकता। आज रहने के लिए मनुष्य योनि स्थानहीन है, ईश्वर पृथ्वी नहीं बढ़ा सकता। गुजरात के कूपों में ईश्वर मधुर जल नहीं कर सकता। अन्यायियों के अन्याय को वह नहीं रोक सकता। दीनों की रक्षा वह नहीं कर सकता। अपठितों को वह पठित नही ही बना सकता। चक्षुहीनों को वह कभी भी सचक्षुष्क नही बना सकता। भूकम्प को वह नहीं रोक सकता। दावाग्नि को वह शांत नहीं कर सकता। वर्षाऋतु में नदियों की बाढ़ से सैकड़ों नष्ट होते हुए ग्रामों को, बह जाते हुए सैकड़ों पशुओं और मनुष्यों को वह बचा नहीं सकता। इतनी बड़ी निर्दयता के साथ जो ईश्वर स्वामी के रूप में जी रहा हो उसे आत्मघात करने का उपदेश देना बुरा न होगा। अन्त में मैं तो यही कहूंगा कि हे ईश्वर, तू अपने श्रद्धालुओं को सन्मति दे वह तेरा पिंड छोड़ दें।

आदि ज्ञान की निरर्थकता

कहा जाता है कि सहस्रों भेड़ें या बकरियां मिल कर रोटी नही बना सकतीं, पुल नहीं बांध सकतीं, अपने लिए कोई आवश्यक साधन नहीं उत्पन्न कर सकतीं क्योंकि उनको नैमित्तिक ज्ञान की सहायता प्राप्त नहीं है। मनुष्य सब कुछ कर सकता है; क्योंकि उसे नैमित्तिक ज्ञान—वेद ज्ञान-ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त है।

अंधों को अंधेरे में बहुत दूर तक सूझने जैसी यह बात है। इन सब बातों का क्या यह उत्तर नहीं हो सकता कि ईश्वर ही इतना क्रूर और अदूरदर्शी है कि वह इन बेचारी बकरियों पर दया न कर सका और रोटी बनाने की कला न सिखा सका ?

इन्हे रोटी की आवश्यकता है भी या नही, इसका विचार किये बिना ही यह बात कही गयी है। हम पूछते हैं कि वेदविद्या के विद्वान मनुष्य पक्षी के घोसलों के समान घोसला बना सकेंगे ? पक्षी के समान ही निराश्रय नभ में उड़ सकेंगे ? हरिण के समान २०-२० हाथ की छलाग ऊचे-नीचे मार सकेंगे ? सर्प की गति से वह दौड़ सकेंगे ? क्या वह सर्प के समान ही चक्षुःश्रवा बन सकेंगे ? क्या मनुष्य बकरियो और गायों के समान ही दूध देकर जगत-जीवो का कल्याण साधन कर सकेंगे ? ईश्वर-ज्ञान और ईश्वर की सिद्धि में ऐसी ऊटपटाग बातें करने वाले न जाने किस जगत के अन्न-जल से बुद्धि का संवर्धन करते हैं।

कहा जाता है कि जीवात्मा निमित्त के बिना कभी भी उन्नति नहीं कर सकता अतः वह ईश्वरीय-ज्ञान के बिना सर्वज्ञ या बहुज्ञ भी नही हो सकता। इसके उत्तर में कहा जायगा कि जीव ही क्यों ? पानी, पत्थर भी निमित्ति के बिना उन्नत नही बन सकते ? तो क्या अब उन्हे भी वेद-विद्यालय की आवश्यकता बतानी पड़ेगी ? कोई सर्वज्ञ होता है या नहीं यह तो यावज्जगत साध्य वस्तु ही बनी रहेगी। सर्वज्ञ का अर्थ ही क्या है, यह कौन कह सकता है ? सर्वपदवाच्य का तो अन्त ही नही हो सकता। नित्य नयी वस्तुयें उत्पन्न होंगी और वे सबकी सब सर्वशब्द के महोदार उदर में समाती जायेंगी। वेदों को ईश्वरीय सिद्ध करने के लिए कितनी ही निरर्थक बातें मूर्ख और पण्डित दोनों ही किया करते है। यह अर्थ का कालयापन है। ईश्वर होगा तो वह आकाशवाणी करेगा ही कि मैं बैठा हू। आश्चर्य तो यह है कि जिस पद्धति से वेद का आविष्कार माना जाता है उसी पद्धति से जब दूसरे धर्म और जाति वाले अपने धर्मग्रंथ का आविष्कार मानते हैं तो उसे असत्य और गप कह दिया जाता है। इसके लिए शास्त्रार्थ किये जाते है और उनका अत शास्त्रार्थ से ही होता है।

वेदों में छन्दों के लिए अखाड़ा

"वेद ईश्वरीयज्ञान हैं" इस पक्ष में यह कहे बिना कोई भी नहीं रह सकता कि ईश्वर काव्यरसिक है—छन्दःप्रेमी है। सम्पूर्ण वेदो को उसने छन्दोबद्ध ही रखा है। उसके ज्ञान में पद्य के अतिरिक्त गद्य के लिए कोई स्थान ही नही है। ऐसा क्यों हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि छन्द सुनने में प्रिय लगता है और श्रव्य वस्तु की ओर आकर्षण बढता है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि वेद रागालाप करके कृतार्थ होते हैं या उपदेश करके ? रागालाप बहुत ही गौण वस्तु है। किसी भी रूप में उपदेश देकर मानव-हित सिद्ध करना ही वेदों का लक्ष्य होना चाहिए। पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक बोधक होता है, यह ज्ञान ईश्वर को नही था। यह भी थोड़ा सत्य ही है कभी-कभी राग का प्रभाव मानव मन पर अधिक पड़ता है। भाषणों में कभी-कभी कोकिलकण्ठ वक्ताओं के मुख से निकले हुए पद्य हृदय में एक गुदगुदी-सी पैदा अवश्य

कर देते हैं। सारे के सारे वेद मन्त्र छन्दोमय उपदिष्ट हुए, यह क्यों ? यह तो पूछा नहीं जा सकता। इस "क्यों" का यदि कोई उत्तर है तो यही कि ईश्वर को गद्यज्ञान नहीं था अथवा ईश्वरीय वस्तु पद्य ही है। तब तो गद्य का बहुल प्रचार भी ईश्वर का विरोधी ही है।

ईश्वर ने छन्दोमयी अपनी भाषा में ज्ञानोपदेश किया, यह सत्य बन जाय तो भी यह भूल तो उसने अवश्य ही की कि उसने यह नहीं बताया कि अमुक मन्त्र अमुक छन्द में है। इसका परिणाम यह हुआ कि छन्द निर्णय के लिए मल्लभूमि तैयार हो गयी। मन्त्रों के छन्दों के विषय में झगड़े खड़े हो गये। एक ही मन्त्र किसी के मत में अमुक छन्द में है और किसी के मत में उससे विपरीत छन्द में।

यदि यह कहने का साहस किया जा सके कि वेद ईश्वरीयज्ञान नहीं अपितु मानवीय ज्ञान हैं, ऋषिप्रणीत है, सृष्टि के आरम्भ में नहीं सृष्टि के मानवीय सृष्टि के बहुत काल पश्चात तत्तत्समय के ज्ञानी ऋषियों की बुद्धि ही वेदों का उदगम-स्थान है, तो कलह का अन्त सुलभ हो जाता है। ऋषिकाल में व्याकरण छन्द आदि अमुक अंश में प्रचरित हो चुके थे। वेदों में व्याकरण और छन्द उस समय के महर्षियों की देन हैं। वे लोग प्रामाणिक थे, कपटी नहीं, ढोंगी भी नहीं। अतः उनके मन में जो भाव उठे छन्दोबद्ध कर लिये गये। छन्दों में भले भूल रह गयी हो अथवा छन्दों के नाम उस समय तक निश्चित न हुए हों केवल रागालाप किये जा सकते हो, ऐसी वाणी में वे लिख लिये गये। अभी भी ऐसे कवि अवश्य मिलेंगे जो छन्दों के नाम और छन्दोरचना की रीति नही जानते होंगे परन्तु उस राग में छन्द लिख लेते होंगे। यह तो होता ही है कि ऐसे कवियों के छन्दों में अक्षर-मात्रा की भूल रहती है। ऋषियों के छन्दों में भी यह बात है। उन्हें छन्दों की परीक्षा नहीं देनी थी, अतः वे निर्भय थे। वह मन्त्र रचते गये, कण्ठस्थ करते गये, कण्ठस्थ कराते गये। उनका संग्रह ही वेद है। छन्दों को शुद्ध करने का प्रयास पीछे से हुआ। गायत्री छंद में प्रसिद्ध मंत्र "तत्सवितुर्वरेण्यम्" में २४ अक्षर होने चाहिए; परन्तु २३ ही अक्षर हैं। छन्दः शास्त्रियों ने एक नियम बना दिया। **इयादि पूरणः** (पिंगलच्छन्दः सूत्र ३/२) तथा 'तन्वादीनां छन्दसि बहुलम्' (का० वा० ६/४/८६) के अनुसार **"वरेण्यम्"** को **"वरेणियम"** पढ़ देने से २४ अक्षर पूरे हो जाते है। इतना तो निर्भ्रान्ति ही है कि ईश्वर ने छन्द उपदेश नहीं ही किया था[८]।"

मोक्ष

मोक्षावस्था में अ-शरीरी आत्मा के पास मन एवं संकल्पों का अस्तित्व मानना, उसका घूमना-विचरना और आनन्द लेने जैसी बात करना बहुत

८. **सामवेद और यजुर्वेद की प्रस्तावना, दूसरा खंड, पृष्ठ २८-३५।**

छिछिली धारणा है[९]। यह उथला विचार अनुभूति के अभाव तथा शास्त्र-प्रमाण के मोह का ही परिणाम है। वेदांत सूत्रों[१०] में ऐसा कहा गया है; परन्तु कही हुई सब बातें प्रमाण नहीं हो सकतीं जब तक वे युक्तियुक्त न हो। और फिर इसके विपरीत भी तो शास्त्रों में कहा है कि वहां दुःखों का अभाव मात्र रहता है[११]।

मुक्त होने के बाद एक लबे समय के अंतराल में पुनः जीव देह धारण करता है—यह केवल स्वामी दयानन्द ही मानते हैं और कोई भारतीय तथा शायद विदेशी मत भी नही मानता होगा। छांदोग्य उपनिषद् में भी कहा गया है कि मुक्त जीव पुनः नही लौटता[१२]।

स्वामी दयानन्द ऋग्वेद के जिन दो मन्त्रों को उद्धृत कर उनका यह अर्थ बताते हैं कि "जीव प्रार्थना करता है कि कौन ऐसा प्रकाश स्वरूप देव है जो हमें मुक्तिसुख भोगा कर पुनः संसार में जन्म देता है और माता-पिता का दर्शन कराता है।" उनका ऋषि शुनःशेप है। वह वरुण से भयभीत है। वह मानो अपना जीवनदान चाहता है और पृथ्वी पर अपने माता-पिता के साथ जीवन बिताना चाहता है। वहां मत्रो में मुक्तिसुख भोगा कर संसार में जन्म देने की कोई चर्चा ही नही है। उन दोनों मंत्रो का अर्थ श्री रामगोविद त्रिवेदी इस प्रकार करते है—

"देवो में किस श्रेणी के किस देवता का सुन्दर नाम उच्चारण करूं ? कौन मुझे इस पृथ्वी पर रहने देगा, जिससे मै माता और पिता के दर्शन कर सकू ? देवो मे पहले अग्नि का सुन्दर नाम लेता हूं, वह मुझे इस विशाल पृथ्वी पर रहने दे, ताकि मैं मां-बाप के दर्शन कर सकू[१३]।" इससे शुनःशेप की कहानी से सम्बन्ध है जो ऐतरेय ब्राह्मण में है।

हरिश्चन्द्र राजा वेधस के पुत्र थे जो इक्ष्वाकुवंशी थे। हरिश्चन्द्र की सौ पत्नियां थी; किन्तु उनको एक भी पुत्र नहीं था। उनके घर पर पर्वत और नारद दो ऋषि आये। हरिश्चन्द्र ने नारद से पुत्र का महत्व तथा उसकी प्राप्ति का साधन पूछा। नारद ने दस गाथाओं (श्लोकों) में पुत्र की महत्ता बतायी

९. इस विषय को तीसरे अध्याय के 'मोक्ष' संदर्भ में देखें।
१०. वेदान्त सूत्र ४/४/१०-१४।
११ न्याय-दर्शन ४/१/६३।
१२. न च पुनरावर्तते ॥ छां० ८/१५। और भी वेदान्त ४/४/२२। गीता १५/६।
१३. ऋग्वेद १/२४/१-२।

और कहा कि तुम वरुण राजा से पुत्र मांगो कि मुझे पुत्र हो और मैं उससे तुम्हारा यजन करूंगा।

हरिश्चन्द्र ने वरुण से उनका यजन (बलि) करने की शर्त पर पुत्र मांगा। वरुण ने वर दिया। हरिश्चन्द्र को रोहित नाम का पुत्र पैदा हुआ। वरुण ने कहा—अब इस नवजात शिशु से मेरा यजन करो। हरिश्चन्द्र ने कहा—पशु भी पैदा होने के दस दिन बाद शुद्ध होने पर यजन के योग्य होता है। वरुण ने दस दिन के बाद रोहित को बलि देकर यजन करने को कहा। हरिश्चन्द्र ने उसके दांत आने तक का समय मांगा, फिर दूध के दांत गिर जाने तक का, फिर नये दांत आ जाने का, और फिर शस्त्र धारण करने योग्य समय को मांगा। जब रोहित युवा हो गया और शस्त्र धारण कर लिया, तब हरिश्चन्द्र ने रोहित से कहा कि पुत्र, आओ, तुम्हारी बलि देकर वरुण का यजन करना है। रोहित इस प्रस्ताव को न मान कर तथा धन्वा लेकर वन चला गया और एक वर्ष उसी तरफ घूमता रहा।

वरुण ने क्रुध होकर हरिश्चन्द्र के पेट में जलोदर रोग पैदा कर दिया। एक वर्ष के बाद रोहित ने वन में पिता की रुग्णावस्था की बात किसी से सुनी। वह गांव पिता से मिलने चला। बीच मे इन्द्र ने रोहित से मिलकर उसे वन मे रहने तथा देश-विदेश विचरण करने की राय दी। रोहित दूसरे वर्ष पिता के दर्शनार्थ चला। इन्द्र ने पुनः रास्ते मे जाकर रोक दिया और विचरण करने की राय दी। इस प्रकार इन्द्र रोहित को पांच वर्षों तक वन में रहने की राय देता रहा[१४]। छठें वर्ष रोहित वन में घूम रहा था कि उसे सूयवस का पुत्र अजीगर्त नामक ब्राह्मण मिला जो भूख प्यास से पीड़ित था।

अजीगर्त के तीन पुत्र थे शुनःपुच्छ, शुनःशेप तथा शुनःलांगूल। रोहित ने अपनी जगह पर बलि देने के लिए मूल्य पर उससे एक पुत्र मांगा। बड़ा

१४. यहां पर इन्द्र ने रोहित से हर वर्ष के अन्त के पांच वर्षों में जो पांच गाथायें कही हैं बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन्द्र ने कहा—रोहित सुनो, अविश्रांत एवं गतिशील व्यक्ति ही धन लाभ करता है, गतिहीन व्यक्ति तुच्छ हो जाता है। तुम निर्भय विचरण करो, सत्य तुम्हारा साथी है। गतिशील वृक्ष फूल फल से संपन्न होते हैं। गतिशील व्यक्ति पाप से मुक्त होता है। बैठे हुए व्यक्ति का भाग्य भी बैठ जाता है। खड़े हुए व्यक्ति का भाग्य खड़ा होता है और सोये हुए व्यक्ति का भाग्य सो जाता है। कलियुग सोया हुआ है, द्वापर जगा हुआ है, त्रेता उठा रहता है और सत्युग गतिशील रहता है; अतः तुम विचरण करो। अंतिम पांचवीं गाथा बड़ी महत्वपूर्ण है—"विचरने वाला, गतिशील व्यक्ति ही मधु तथा मीठे फल पाता है। देखो, सूर्य सदैव गतिशील रह कर ही वंदनीय होता

लडका पिता को प्रिय था तथा छोटा माता को; अतः उन्होने मझला शुनःशेप को सौ गाये लेकर रोहित के हाथों बेंच दिया। रोहित शुनःशेप को लेकर हरिश्चन्द्र के पास आया और बताया कि मेरी जगह पर शुनःशेप की बलि दे दी जाय। हरिश्चन्द्र ने वरुण से कहा। वरुण ने कहा क्षत्रिय बालक से ब्राह्मण बालक मुझे प्रिय है। फलतः यज्ञ रचा गया। इस यज्ञ में विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा तथा अयास्य ऋषि उद्गाता बने; किंतु इन चारो में इतना क्रूर कर्म करने को कोई तैयार न हुआ कि शुनःशेप का वध करने के लिए उसे यूप (वध के खंभे) में कोई बांधता। अजीगर्त ने कहा यदि मुझे और सौ गाये दे दी जायें तो मैं शुनःशेप के सिर, पैर, कमर को रस्सी से बांध दूँगा। उसे पुनः सौ गायें दी गयी। वह शुनःशेप को वध के खम्भे में बांध दिया। अब उसका वध कौन करे। कोई तैयार न था। तब अजीगर्त और सौ गाये लेकर शुनःशेप को मारने के लिए तलवार तेज करने लगा—'सोऽसिं निःशान एयाय।'

जब शुनःशेप ने देखा कि पिता मेरा वध करने के लिए तलवार तेज कर रहा है, वह कांप गया और उसने प्रजापति, अग्नि, सविता, वरुण, इंद्र, अश्विनो, उषा आदि देवताओ की स्तुति की[१५]।

ऋग्वेद के पहले मंडल के २४ वें से ३० वें सूक्त तक के ९० मंत्रो में शुनःशेप ने देवताओं की वंदना की है और ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र के प्रयास से शुनःशेप बंधन के खंभे से छूट गया और वह विश्वामित्र के प्रति विश्वास करके उनकी गोद में जा बैठा। अजीगर्त अंगिरस गोत्रिय ब्राह्मण थे। उन्होंने पुनः शुनःशेप को अपने घर ले जाना चाहा; परन्तु शुनःशेप ने यह कह कर जाने से इंकार कर दिया कि तुम जैसा, नीच व्यक्ति भी क्रूर नही होता, अतः तुम्हारे घर अब मैं नही जा सकता और तुमने मेरे बदले में तीन सौ गाये ले भी ली हैं। अंततः विश्वामित्र ने उसे पुत्र रूप में अपने पास रखा[१६]। देवों

है, वह आलस्य नहीं करता; अतः तुम भी विचरण करते रहो, गतिशील रहो।" इसकी मूल गाथा इस प्रकार हैं—

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति॥

१५. ऋग्वेद मंडल १, सूक्त २४, मंत्र १, तथा ऋग्वेद १/२४/२-४, ६-१५, १/२५; १/२६; १/२९, १/३० आदि।

१६. ऐतरेय ब्राह्मण, सप्तम पंचिका, तृतीय (तैंतीसवां) अध्याय, पृष्ठ ११३९-११७६ तारा प्रिंटिंग वर्क्स वाराणसी, १९८३ ई०। तै० सं० ५/२/२/३; तै० ब्राह्मण

(विद्वानों) ने भी इसी का समर्थन किया अतः शुनःशेप को विश्वामित्र ने गोद लेकर अपना पुत्र बना लिया और नाम रखा 'देवरात'।

शुनःशेप ने अपने जन्मदाता माता-पिता के पास रहने के लिए देवताओं से तो प्रार्थना शायद न की होगी; उसने वध से छूट कर अपने त्राता विश्वामित्र के पास रहने की कामना की होगी और उसने उन्हीं को अपने माता-पिता समझा भी।

इसी घटना को लेकर ऋग्वेद के पहले मडल के चौबीसवें सूक्त के शुरू से ही शुनःशेप द्वारा देवों की प्रार्थना है कि मैं किस देव के सुन्दर नाम का उच्चारण करूं जो मुझे इस पृथ्वी पर रहने दे और मैं माता-पिता के दर्शन कर सकूं। इसमें मुक्त जीवों का संसार में लौटने के लिए प्रार्थना नहीं है। विदेहमुक्ति गुणातीत दशा है। वहां शरीर, मन आदि का अभाव होने से दुख, प्रार्थना आदि सब असंभव हैं।

स्वामी जी मुण्डक उपनिषद् के जिस मंत्र को उद्धृत कर उसका यह अर्थ करते है "वे मुक्त जीव मुक्तिमें प्राप्त हो के ब्रह्म मे आनंद को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात मुक्तिसुख को छोड़ के संसार में आते है।" वहां ज्ञानियों के अनंत मोक्ष के लिए कहा गया है। आर्य-समाज के आधुनिक विद्वान, संसद् सदस्य तथा गुरुकुलकांगड़ी के भूतपूर्व उपकुलपति प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालकार ने उक्त मंत्र का जो अर्थ किया है, मैं ज्यों-का-त्यों वही दे रहा हूं और वही यथार्थ भी है—"जो वेदांत (Religion) और विज्ञान (Science) से जीवन के लक्ष्य को निश्चित रूप से जान गये हैं, जो संसार मे 'सन्यास' (Detachment) और 'योग' (Attachment) से यति हो गये हैं, जो शुद्ध अंतःकरण है, वे परम-अनंत-काल' में परम-'अमृत' होकर ब्रह्मलोक में चले जाते है, और बंधनों से मुक्त हो जाते है[१७]।" इस मंत्र मे मुक्ति से लौट कर आने की कहीं गंध भी नहीं है। इसमें तो सदैव के लिए मुक्ति में चले जाने की बात है।

मुक्ति किसी कर्म का फल नहीं है, जो समाप्त हो जाय, प्रत्युत अविद्या के हट जाने पर जीव का अपने नित्य स्वरूप में अवस्थित हो जाना है। स्वामी

१/७/१०/६; शुनःशेप की कथा व्यतिक्रम रूप में वाल्मीकीय रामायण बाल-कांड, सर्ग ६१-६२; महाभारत १३/३/६-८; हरिवंश २७/५७/६०, भागवत १/८-१६ आदि में आयी है।

१७. वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥
(मु० उप० ३/२/६)

दयानंद ने इस प्रकार युक्ति तथा प्रमाण विरोधी मोक्ष-सिद्धान्त क्यों निर्धारित किया ? इसमें एक वही बात हो सकती है जो कहावत के रूप में सुनी जाती है। एक बार स्वामी दयानद से एक मौलवी ने वादविवाद में पूछा था कि मुक्त जीव पुन: बंधन मे आता है कि नही ? स्वामी जी ने श्रुति एवं युक्ति सम्मत बात बतायी कि 'नही लौटता' फिर मौलवी ने पूछा कि ईश्वर नये जीव बना सकता है कि नही ? स्वामी जी ने कहा 'नही बना सकता'। मौलवी ने कहा कि जब सब जीव मुक्त हो जायेंगे, तब ईश्वर किसके लिए सृष्टि रचेगा, आप ईश्वर का स्वभाव ही मानते हैं सृष्टि का रचना ? स्वामी जी ने यहां अपनी कमजोरी स्वीकार की और उसके बाद यह सिद्धान्त रखा कि लम्बी अवधि तक जीव मुक्तिसुख को भोगकर पुन: संसार में जन्म धारण करेगा। एक बार जब मुख्य आचार्य द्वारा सिद्धान्त बन गया, तब पीछे अनुयायी उसकी लकीर पर चलते ही हैं। तिब्बत देश मे प्रथम जवान-जवान नर-मादा के पैदा होने की बात भी पौराणिक धारणा से ज्यादा नही है। वैसे स्वामी जी ने भूत-प्रेतादि के अनेक अधविश्वासो को तोड़ा है, यह स्तुत्य है।

कबीर साहेब पर आक्षेप

स्वामी जी जब दूसरे मतवालों की आलोचना पर डंटते हैं, तब वे ऐसे असभ्य, भद्दे और घृणास्पद शब्दो का प्रयोग करते हैं, जिसे पढ़कर आश्चर्य होता है कि क्या विद्वान संन्यासी को ऐसे ही लिखना चाहिए ! मैं उनके द्वारा कबीर तथा कबीरपंथ पर की गयी आलोचना के संबन्ध में कुछ निवेदन करना चाहूंगा। वे पहला प्रश्न उठाते है कि "क्या कबीर साहेब भुनुगा था वा कलियां जो फूलों से उत्पन्न हुआ।" यह उद्धृत विचार कुछ पौराणिक कबीरपंथियों का है न कि विवेकवान कबीरपंथियो का। पारख सिद्धांत के संत-भक्त कभी भी कबीर साहेब को फूल से उत्पन्न हुआ नहीं मानते। स्वामी जी के जीवन-काल के पहले से ही, अर्थात कबीर साहेब के समय से ही पारखी सत-भक्त थे। स्वामी जी ने गहरी खोज किये बिना केवल पौराणिक कबीरपंथियों के आधार पर अपना वक्तव्य दे डाला। पारखी संत-भक्त न कभी पलंग, गद्दी, तकिये, खड़ाऊ, ज्योति आदि पूजते है और न मानव से पृथक किसी देवयोनि आदि पर विश्वास करते है।

स्वामी जी एक तरफ तो यह ढिंढोरा पीटते हैं कि मैं जन्म से नहीं, कर्म से वर्ण मानता हू और दूसरी तरफ जब वे किसी को जाति के आधार पर नीच[१८] कहते हैं, तब वे अपने आप को क्या जाहिर करना चाहते है ? पहले

१८. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ११, पृष्ठ ३६५।

अध्याय के कबीरदेव के विषय में 'कुछ विद्वानों का बहकाव' संदर्भ में निवेदन किया जा चुका है कि दूसरे के कहने से कोई नीच नहीं होता, बल्कि कहने वाले का ही छिछिलापन जाहिर होता है। कुछ विदेशियों ने वेदों के ऋषियों को जंगली गड़रिये तथा वेदों को गड़रिये के गाये हुए गड़बड़ गीत कहे, सो तो कहे ही, भारतीय विद्वान भी वेदों के रचयिताओं को भाड़, धूर्त और निशाचर[१९] कहे, तो क्या वैदिक ऋषि यही माने जायेंगे ?

स्वामी जी ने अपने मिथ्यादर्प तथा उतावलेपन में पड़कर महान संत कबीरदेव के प्रति जो अपना स्टेटमेंट दिया है,[२०] क्या आज कोई सुसभ्य आर्य-समाजी बंधु उसे उचित कह सकेगा ? हम तो कहते हैं कि आज स्वामी जी यदि स्वयं आ जायं और उनके सामने वह बात पेश की जाय, तो वे अपनी भूलों को स्वीकार कर लज्जा से सिर झुका लेंगे।

स्वामी जी ने शुद्धि, नारीशिक्षा, छुआछूत निराकरण, पाखंड निरसन, राष्ट्रीयता आदि द्वारा हिन्दू-समाज को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। भले ही वे परम्परागत संस्कारों के परिधान में लिपटे हुए होने के कारण वेदों पर ईश्वरीय मोहर लगाकर मानवीय एकता की दरार पर खड़े रहे, परन्तु वे संसार की सारी मानव-जातियों का वहां एकत्र होने के लिए उदारता पूर्वक आह्वान करते रहे।

१९. त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः। देखें इसी अध्याय का भौतिकवाद संदर्भ।

२०. स्वामी जी ने सद्गुरु कबीर के लिए जिन अभद्र शब्दों का प्रयोग किया, यहां उद्धृत नहीं किया गया है। जो उन्हें देखना चाहें, सत्यार्थ प्रकाश में देख लें।

५

कबीरपंथ का संक्षिप्त इतिहास

सद्गुरवे नम.

कबीर-दर्शन

पांचवां अध्याय

कबीर पंथ का संक्षिप्त इतिहास

१

प्रस्तावना

धर्म, सम्प्रदाय और पंथ—सरल दृष्टिकोण से इन सबका अर्थ एक ही है। यह कह सकते है कि धर्म उसे कहते है जो एक व्यक्ति द्वारा न चलाया गया हो, बल्कि अनेक ऋषियो एवं संतो की सामूहिकता में पनपा हो, जैसे हिंदूधर्म। परन्तु देखा जाता है केवल महात्मा बुद्ध द्वारा चलाया हुआ मत बुद्धधर्म कहलाता है तथा केवल सत ईसा द्वारा चलाया गया मत इसाईधर्म एव हजरत मुहम्मद द्वारा चलाया गया मत इस्लामधर्म कहलाता है। यह भी कहा जा सकता है कि धर्म का दायरा विशाल होता है। उसमें सम्प्रदाय एवं संप्रदायो में पंथों का विकास माना जा सकता है, या संप्रदाय और पंथ को हम एक ही मान लें, तो एक धर्म में अनेक संप्रदाय एवं पंथों का विकास होता है। जैसे हिन्दूधर्म में, जैनधर्म में, इस्लामधर्म में, बौद्धधर्म में अनेक पंथो एव सप्रदायों का विकास हुआ है।

उपर्युक्त कथनानुसार कबीर साहेब की परम्परा को पथ न कहकर धर्म ही कहना चाहिए अर्थात कबीरपंथ नही; किंतु कबीर धर्म कहना चाहिए। क्योकि इसमें अनेक सम्प्रदाय एव पंथ सिद्ध किये जा सकते है। इसमे जीववादी पारखी, ब्रह्मवादी, ईश्वरवादी, अवतारवादी, योगवादी आदि सैद्धांतिक विभिन्नता रखने वाले मत हैं ही, किंतु विभिन्न पूजा-पद्धति, मान्यता एवं साम्प्रदायिक विचारों को लेकर अनेक पंथ भी हैं। जिन्हें कहा जा सकता—वशपथी, नाद-

पंथी, वचनपंथी, रामकबीरपंथी, पारखपंथी, सारशब्दपंथी आदि। परन्तु आज तक कबीर साहेब की परंपरा की सभी शाखाओं के महापुरुष इस परम्परा को कबीरपंथ ही कहते रहे और इसी के आधार पर बाहरी आलोचक विद्वान भी इसे कबीरपंथ के नाम से ही व्यक्त करते रहे। हो सकता है आगे कबीर-अनुयायी इस पर एक जुट होकर इसका नाम कबीर धर्म रख सकें।

कोई भी संप्रदाय जब धर्म का रूप ग्रहण करता है, तब उसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे संस्कार उसके अपने ढंग के होते हैं। कबीरपंथ में जहां उनका सघन और प्राचीन प्रचार है वहां ऐसा देखा भी जाता है कि कबीरपन्थी गृहस्थों में जन्म, मुंडन, विवाह, मृत्यु आदि में उनके अपने ढंग के संस्कार किये जाते हैं। जैसे हम आगे चलकर देखेंगे कि रामकबीर एवं उदा-जाति में तो इसके लिए उनकी पूरी स्वावलंबी एवं शुद्ध, सरल व्यवस्था है तथा कबीरपन्थ की अन्य शाखाओ में बहुत कुछ अपने नियम हैं। परन्तु पूरे कबीरपन्थ में अभी तक ऐसा व्यापक प्रयास नहीं किया जा सका है। जैसा वर्तमान में चल रहा है इस ढङ्ग से रहने पर प्रचार में अपेक्षया व्यापकता एवं सरलता रहती है, क्योंकि किसी जाति एवं वर्ग का व्यक्ति इसमें सहज दीक्षित हो जाता है। जब सारे नियम एवं संस्कार स्वावलंबी एवं दृढ़ हो कर पन्थ धर्म का रूप ले लेता है, तब प्रचार चाहे भले मंथरगति से हो, परन्तु उसमें अपेक्षया स्थायित्व आ जाता है।

सम्प्रदाय को धर्म के रूप में कहने का जो प्रचलन है, उस दृष्टि से ऊपर विवेचन किया गया है, अन्यथा उच्चतम दृष्टि से देखा जाय, तो कोई भी परम्परा चाहे हिन्दू की हो या मुसलमान की, बौद्धो की हो या जैनों की—सब सम्प्रदाय हैं, धर्म नही। धर्म सार्वभौम होता है और सम्प्रदाय एवं पन्थ देश और काल सापेक्ष होते हैं। यद्यपि उनमें सर्वभौम धर्म निहित होते हैं। हम पहले अध्याय के 'धर्म' संदर्भ मे इसे विस्तार पूर्वक देख आये हैं।

२

कबीरपंथ का प्रवर्तक कौन ?

सद्गुरु कबीर अत्यन्त उच्चकोटि के संत थे। वे सांप्रदायिक संस्कारों तथा किसी पुस्तक के अंधप्रमाणों की पक्षधरता से सर्वथा विमुक्त थे। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। वे सत्य के द्रष्टा तथा उसके स्पष्ट प्रवक्ता थे। वे पूर्ण अनासक्त जीवन्मुक्त पुरुष थे। अतः वे अपने नाम से स्वयं पंथ की रचना कर

उसे चलाये हों, यह बात नहीं जंचती। इतना फक्कड़मस्त संत पंथ चलाने के चक्कर में क्यों पड़ेगा ? वे सत्य के अनुसंधाता' सत्य के आचरणकर्ता एवं सत्य के उपदेष्टा थे और वे जीवनपर्यन्त यही करते रहे। वे पंथ बनाने और उसे चलाने के चक्कर में कभी नही पड़े। जो सब पंथ एवं सम्प्रदाय को समाप्त कर शुद्ध मानवता का प्रकाश चाहता हो, वह स्वयं एक नया पंथ क्यों खड़ा करना चाहेगा !

ऊपर की सारी बातें सोलहो आने सच होने पर भी विचारणीय है। कोई भी महापुरुष अपने सुन्दर विचारों एवं पवित्र आचरणों के कारण कुछ लोगों की श्रद्धा का पात्र हो जाता है। फिर जो संत और सद्गुरु के रूप मे उभर कर समाज में आता है और उसके अद्वितीय विचार एवं व्यक्तित्व भी रहते हैं, तो अनुगामी एवं शिष्यो के रूप में उसके पास एक परिमाण में जन-समूह का एकत्रित हो जाना स्वाभाविक-सी बात है। फिर कबीर साहेब जैसे अत्यन्त उच्चकोटि के महापुरुष के लिए तो कहना ही क्या ! वे जनसमाज द्वारा अपने जीवनकाल में ही संत, सद्गुरु, सिद्ध एवं अवतार तक मान लिये गये थे।

जब किसी भी स्वतन्त्र सद्गुरु के पास थोड़ी मात्रा में शिष्य होते है, तो वहां बिना पंथ एवं सम्प्रदाय की रचना के भी काम चल जाता है, परन्तु जब उनके पास हजारों की भीड़ होने लगती है, तब उन्हे उस नव-दीक्षित समाज को चलाने के लिए जीवन की एक नियमावली, एक शुद्ध वेष, शिष्टाचार की परिपाटी, पूजापद्धति, सस्कार, सिद्धान्त को समझने के लिए पारिभाषिक शब्द एवं उस समाज का एक नाम रखना पड़ता है। और ये सब जब उपस्थित हो गये, तब एक पंथ या सम्प्रदाय बन जाता है।

सद्गुरु कबीर किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होते या किसी परम्परा के पोषक होते, तो वे तथा उनके अनुगामी उसी सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते; परन्तु वे स्वतन्त्र विचारक थे। उनके पहले उनके लिए कोई सांप्रदायिक परम्परा न थी। वे स्वयं स्वतंत्र थे। अतएव उनके विचारो के अनुगामियों के लिए एक स्वतंत्र सम्प्रदाय एवं पंथ की रचना की आवश्यकता हुई। वही कबीरपंथ के नाम से फलित हुआ।

प्रश्न यह है कि पंथ का निर्माण स्वयं कबीरदेव ने किया कि उनके शिष्यों ने ? इसका कोई लेखा-जोखा न होने से कुछ साफ कहा नही जा सकता। बहुत कुछ उम्मीद है उनके शिष्यो ने ही किया हो। हो सकता है कि सद्गुरु के उपस्थितिकाल में ही उनके शिष्यो ने पंथ की रचना की हो या उनके

शरीरांत के बाद। जो बात साफ न हो उसके विषय में बाल की खाल काढ़ कर कुछ कहना उचित नहीं है। इतनी बात साफ है कि कबीरदेव के जीवन काल में ही उनके अनुगामी-शिष्यों की काफी भीड़ हो गयी थी। अतएव पंथ की संरचना चाहे उनके जीवन के आखीर में उनके शिष्यों द्वारा हुई हो और चाहे उनके शरीरांत के तत्काल बाद, परन्तु इसे बहुत पीछे घसीटना उचित नही प्रतीत होता।

सद्गुरु कबीर के अनेक शिष्य रहे होंगे, किन्तु उनमें चार महत्वपूर्ण माने जाते हैं—श्री जागू साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री श्रुतिगोपाल साहेब तथा श्री धर्म (दास) साहेब। इनके साथ दो शिष्य तत्वा और जीवा का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। इन्हीं महापुरुषों ने मिलकर कबीरपंथ नाम से सम्प्रदाय की व्यवस्था की होगी। जिस देश और काल में स्वतन्त्र सद्गुरु उदय होता है, उसके पीछे दीक्षित जनसमूह उपस्थित होता है और यह स्वयमेव सम्प्रदाय एवं पंथ का रूप धारण करता है और उसमें विज्ञ पुरुषो द्वारा व्यवस्था दे दी जाती है। अतएव यह विश्वास होता है कि सद्गुरु के उक्त शिष्यो ने ही पन्थ का रूप निर्धारित किया होगा। पन्थ निर्माण के आरम्भिक काल में इसकी व्यवस्था का रूप निश्चित ही संक्षिप्त रहा होगा और आगे यह अधिक-अधिक व्यवस्था सम्पन्न होता चला होगा। पन्थ की अनेक शाखा होने से उसमें अवांतर भेद भी शुरू हुआ होगा तथा आरम्भ से भी कुछ भिन्न शाखाओं के लिए अवांतर भेद रह सकते है जैसे हम आगे चलकर श्री भगवान साहेब की शाखा में देख सकते हैं कि वे प्रथम एक वैष्णव साधु होने से कबीरदेव द्वारा पुनर्दीक्षित होने पर भी उनके वेष में कबीरदेव द्वारा ही कुछ छूट दी गयी थी। परन्तु पूरे कबीरपंथ को देखा जाय तो दया चिन्ह कंठी-माला, न्याय चिन्ह श्वेत तिलक, वेष श्वेत वस्त्र, शिष्टाचार में 'साहेब बंदगी', आचार में अहिंसा, शाकाहारीपन एवं पवित्रता, इष्ट रूप में सद्गुरु कबीर की मान्यता एक समान है। आगे-आगे देश-काल तथा व्यक्तियों की मानसिक योग्यता के अनुसार कर्मकांड एवं सिद्धान्तों में अंतर हो जाना स्वाभाविक बात है। किसी शाखा वालों ने पौराणिक पद्धति अपना ली तथा किसी शाखा वाले विचारक रहे। हम चौथे अध्याय में चर्चा कर आये हैं कि एक वैदिक परम्परा में यज्ञ के विधानो में भिन्न शाखा वालों मे अंतर था। उपासना में भी अन्तर था, कोई किसी देव की उपासना करता था, तो कोई किसी की। सयुग्वा रैक्व[1] संवर्गविद्या के नाम से वायु की ही उपासना करता था। दार्शनिक सिद्धान्तों

१. छांदोग्य ४/१-३।

में अन्तर था ही। वैदिक कहे जाने वाले छहों शास्त्रों के दार्शनिक विचारों का अन्तर हम पीछे चौथे अध्याय में देख आये हैं। एक वेदांत में ही विभिन्न सिद्धान्तो का सूत्रपात का होना किसी विद्वान से छिपा नहीं है। इतना क्या, स्वामी शंकराचार्य के अद्वैतवाद मे ही आज से चार सौ वर्ष पूर्व अप्पयदीक्षित के काल मे ही तैतालीस (४३) मत हो गये थे, इसकी चर्चा भी हम पीछे कर आये हैं।

कबीरपंथ मे भी देश और काल के प्रवाह में नाना मत अवश्य प्रचलित हुए, परन्तु उनमे उक्त वेष, शिष्टाचार एवं उपासना में एकरूपता रही तथा पूरे कबीरपथ में पारख सिद्धान्त के लिए समान आदर रहा और पंथ की सभी शाखाओ मे पारखी सन्त और भक्त होते रहे तथा पारख का विचार करते रहे, जिसको हम दूसरे अध्याय के शुरू में देख आये है तथा आगे भी निवेदन करेंगे। यह बात अलग है कि कुछ सकुचित विचार के लोग उससे उलझते रहे। तो इसका अभाव किसी भी धर्म व सम्प्रदाय में नहीं है। संसार में केवल असत्य का ही नही, सत्य का भी विरोध किया गया है। अब हम कबीर साहेब के प्रमुख शिष्यो तथा कबीरपंथ की प्रमुख शाखाओ पर विचार करेंगे।

३

श्री श्रुतिगोपाल साहेब तथा काशी कबीरचौरा

कहा जाता है कि दक्षिणी भारत के श्री सर्वानंद नामक एक विद्वान ब्राह्मण जो शास्त्रार्थ मे पंडितो मे सर्वजयी होने से सर्वाजीत भी कहे जाते थे, अपनी माता द्वारा यह प्रेरणा पाकर कि काशी के महान संत कबीर साहेब को जब वादविवाद मे तुम जीत लो तब सच्चे सर्वाजीत कहला सकते हो, कबीर साहेब के पास आये और उनके कई दिनों के सत्संग एवं सच्चे ज्ञान से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये। काशी कबीरचौरा गद्दी पर आप ही श्री श्रुति-गोपाल साहेब के नाम से प्रथम आसीन हुए।

जो विद्वान कहते है कि कबीर साहेब ने कभी कोई आश्रम नही बनाया, अतएव श्री श्रुतिगोपाल साहेब का उसका उत्तराधिकारी होना अपने आप असिद्ध है[1]। उनको विचार करना चाहिए कि यह विश्व-प्रसिद्ध बात है कि कबीरदेव देश-विदेश में भ्रमण करते हुए भी काशी मे अधिक रहा करते थे।

१. श्री ब्रह्मलीन मुनि, सद्गुरु कबीर चरितम् १७/८२-८८।

जहां रहते थे उसका नाम आज भी कबीरचौरा है। जब वे काशी में रहते थे, चाहे बड़ा मठ उस समय न रहा हो, परन्तु उनके शीत-धूप निवारण के लिए कुछ आधार तो रहा ही होगा। अतएव कबीरदेव के बाद उस स्थान का सर्व-प्रमुख श्री श्रुतिगोपाल साहेब का होना स्वाभाविक बात है। काशी कबीरचौरा की गुरुप्रणाली इस प्रकार है—(१) श्री श्रुतिगोपाल साहेब, (२) श्री ज्ञान साहेब, (३) श्री श्याम साहेब, (४) श्री लाल साहेब, (५) श्री हरिसुख साहेब, (६) श्री शीतल साहेब, (७) श्री सुखदास साहेब, (८) श्री हुलास साहेब, (९) श्री माधव साहेब, (१०) श्री कोकिल साहेब, (११) श्री राम साहेब, (१२) श्री महादास साहेब, (१३) श्री हरिदास साहेब, (१४) श्री शरण साहेब, (१५) श्री पूरण साहेब, (१६) श्री निर्मल साहेब, (१७) श्री रंगी साहेब, (१८) श्री गुरु-प्रसाद साहेब, (१९) श्री प्रेम साहेब, (२०) श्री रामविलास साहेब तथा (२१) श्री अमृत साहेब (वर्तमान)। प्रत्येक गुरु का औसतन पचीस वर्ष गद्दीकाल मान लिया जाय, तो यह परम्परा स्वाभाविक ढंग से कबीरदेव के काल तक पहुच जाती है।

श्री श्रुतिगोपाल साहेब की कोई रचना उपलब्ध नहीं होती है। इस परम्परा में चौदहवें गुरु श्री शरण साहेब के काल में उनके शिष्य या उनसे प्रभावित 'कबीर बाग गया' (बिहार) के परम ओजस्वी पुरुष श्री रामरहस साहेब की अनुपम रचना 'पंचग्रंथी' है जो बीजक की टीका के रूप में मानी जाती है और जो कबीरपंथ में बीजक के बाद बेजोड़ है। एक बार कबीर-चौरा के २०वें गद्दीनशीन पूज्यवर श्री रामविलास साहेब ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था "कहो अभिलाषदास! क्या 'पंचग्रंथी' के समान सर्वाङ्ग ग्रंथ कबीरपंथ में दूसरा है?"

इसके पश्चात सत्रहवें गुरु श्री रंगी साहेब के शिष्य श्री मेंही साहेब ने बीजक पर पारख सिद्धान्तपरक एक टीका लिखी है। इसके बाद श्री राम-विलास साहेब के शिष्य श्री महाराज राघव साहेब ने बीजक, पंचग्रंथी, कबीर परिचय, निर्णयसार, वैराग्य शतक, साखीग्रंथ आदि की टीकायें रची है। इस प्रकार कबीरदेव के काल से आज तक काशी कबीरचौरा कबीरदेव के अनुपम पारखज्ञान का केन्द्र बना रहा। वर्तमान गद्दीनशीन पूज्य श्री अमृत साहेब जी एक पारखनिष्ठ, वैराग्य-प्रिय संत हैं। अधिकारी श्री गंगाशरण साहेब ने इस समय साहित्यिक उन्नति, मठ की व्यवस्था आदि पर विशेष ध्यान दिया है।

कबीरचौरा की शाखायें भारत में यत्र-तत्र फैली हैं। जिनमें मुख्य लहरतारा, मगहर, बलुआ, गया, बड़ौदा, नड़ियाद, अहमदाबाद आदि में हैं।

बड़ौदा पानी दरवाजा के कबीर मदिर में इस समय श्री रामेश्वरानन्द साहेब प्रधान महंत हैं जो व्याकरण, न्याय, सांख्य, वेदान्त आदि के आचार्य एक योग्य विद्वान तथा वैराग्यवान महापुरुष हैं। बड़ौदा की नयी धरती वाले मठ में श्री मोती साहेब महंत है।

काशी की गया वाली शाखा जो कबीर बाग के नाम से प्रसिद्ध है और जिसमें परम पारखी श्री रामरहस साहेब विराजमान हुए थे, जिनकी बनायी पंचग्रन्थी है। आपकी चर्चा हम दूसरे अध्याय में कर आये है। काशी कबीर-चौरा तो कबीरपंथ का प्रधान केन्द्र रहा है। वहां देश-विदेश के लोग दर्शनार्थ आते है। वहां से कबीरदेव के विचारो का व्यापक प्रचार हुआ है। यहां जेष्ठ पूर्णिमा को हर वर्ष कबीर जयंती के रूप में उत्सव होता है।

४

श्री भगवान साहेब तथा कबीरमठ धनौती

हम दूसरे अध्याय में इसकी चर्चा कर आये है कि श्री भगवान साहेब पहले प्रसिद्ध हरिव्यासी (निंबार्काचार्य मत के) वैष्णव संत थे। आपको सर्वप्रथम कबीरदेव पिथौरावाद मे मिले। आप कबीरदेव के विचारों से प्रभावित होकर उनकी शरण में आकर उनसे दीक्षित हो गये। इस विषय को थोड़ा विस्तार से हम वहां[1] देख चुके है। जैसे कि दूसरे अध्याय के शुरू में ही आपके संदर्भ में बताया गया है कि आप के यहां की एकमात्र प्राचीन रचना 'गुरुगम बूझ' नाम की एक बीजक टीका उपलब्ध है जो हस्तलिखित है। इसके अतिरिक्त कोई खास रचना नहीं मिलती। आपके मठ में बीजक का नित्य पाठ होता है। आपके मठ मे कोई अंधविश्वास की पूजा नहीं होती। चौका-आरती आदि बाह्योपचार यहां नही है। यहां के महतो एवं संतो के नामों में गोस्वामी शब्द जोड़ा जाता है, जैसे श्री भगवान गोस्वामी इत्यादि।

धनौती में दो कबीरमठ है एक बड़ा मठ तथा दूसरा छोटा कहलाता है। यहां की भी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। यहां की शाखायें भारत में यत्र-तत्र फैली हैं। उनमे लहेजी, मानसर, तुर्की (मुजफ्फरपुर), नौरंगा, दामोदरपुर, चनावे (छपरा), तधवा, बड़हरवा, सवैया वैजनाथ (मोतीहारी),

१. श्री भगवान साहेब के विषय में दूसरे अध्याय के शुरू में देखें।

शेखावना (बेतिया[२]) आदि के नाम लिये जा सकते हैं। धनौती बहुत विशाल मठ है और उसी प्रकार लहेजी तथा नौरंगा है।

धनौती की गुरु परम्परा इस प्रकार है। सद्गुरु कबीर के बाद (१) श्री भगवान गोस्वामी, (२) श्री घनश्याम गोस्वामी, (३) श्री उद्धोरण गोस्वामी, (४) श्री दमन गोस्वामी, (५) श्री गुणाकर गोस्वामी, (६) श्री गणेश गोस्वामी, (७) श्री कोकिल गोस्वामी, (८) श्री बनवारी गोस्वामी, (९) श्री नयन गोस्वामी, (१०) श्री भीष्म गोस्वामी, (११) श्री भूपाल गोस्वामी, (१२) श्री परमेश्वर गोस्वामी, (१३) श्री गुणपाल गोस्वामी, (१४) श्री शेषमणि गोस्वामी, (१५) श्री जयमन गोस्वामी, (१६) श्री हरिनाम गोस्वामी, (१७) श्री स्वरूप गोस्वामी, (१८) श्री रामरूप गोस्वामी, (१९) श्री रघुनन्दन गोस्वामी, (२०) श्री रामधारी गोस्वामी, (वर्तमान) तथा आपके सहायक महंत (२१) श्री मुनेश्वर गोस्वामी। इस प्रकार प्रति गुरु की औसतन २५ वर्ष गद्दीकाल मान लेने पर यह शाखा भी कबीरदेव के काल तक पहुंच जाती है।

५

श्री जागू साहेब तथा कबीरमठ विद्दूपुर

कहा जाता है कि उत्कल (उड़ीसा) की राजधानी कटक के पास तुलसिया नामक ग्राम में जगदीश मन्दिर (जगन्नाथपुरी) के पुजारी जगरदत्त के औरस तथा माता हासो (हंसा बाई) की कोख से विक्रमी संवत १४७० (ई० १४१३) में जागू साहेब का जन्म हुआ[१]। कबीरदेव एक बार जगन्नाथ पहुंचे, तब उनके उच्चज्ञान एवं दिव्य रहनी से प्रभावित होकर श्री जागू साहेब उनके त्यागी शिष्य हुए। श्री जागू साहेब सहित सात गुरु कटक मे ही रहे। आठवें गुरु श्री हाथीराम साहेब कटक के राजनैतिक उथल-पुथल से बिहार के वैशाली जिला में विद्दूपुर ग्राम में आकर मठ स्थापित किये। यह मठ संभवतः यहां १७०५ ई० में स्थापित हुआ। वर्तमान में यहा बड़े महंत श्री रामलखन साहेब तथा छोटे महंत विद्वान श्री रघुनाथ साहेब विराजमान है।

श्री जागू साहेब एक योग्य महापुरुष हो गये हैं। आपकी रचना का पता तो अभी तक नही मिल सका है, किंतु आपके तेजस्वी व्यक्तित्व से तथा

२. केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १६८।

१. श्री मुनेश्वरराय मुनीश, कबीरपंथ की जागू शाखा, पृष्ठ ४३।

आपकी एक लम्बी परम्परा से जनमानस में कबीरदेव से विचारों का काफी प्रचार हुआ है। आपके विषय में एक दोहा प्रसिद्ध है काम, क्रोध, मोह, मदादि से रहित आपकी बुद्धि पारखपद में स्थित थी, इसलिए ससार में आपका नाम जागू साहेब अर्थात जाग्रत पुरुष प्रसिद्ध है[२]।

आपकी परम्परा इस प्रकार है। सद्गुरु कबीर के बाद (१) श्री जागू साहेब, (२) श्री मथुरा साहेब, (३) श्री गरभू साहेब, (४) श्री वल्लभ साहेब, (५) श्री शिरोमणि साहेब, (६) श्री धरणी साहेब, (७) श्री हरिदास साहेब, (८) श्री हाथीराम साहेब, (९) श्री प्रीतम साहेब, (१०) श्री प्रेम साहेब, (११) श्री सन्तोष साहेब, (१२) श्री जगदाधार साहेब, (१३) श्री मनसा साहेब, (१४) श्री गरीब साहेब, (१५) श्री सुखराम साहेब, (१६) श्री अजगैब (झूमक) साहेब, (१७) श्री अमृत साहेब, (१८) श्री रामलखन साहेब तथा (१९) श्री रघुनाथ साहेब, (वर्तमान)[३]।

विद्दूपुर की शाखायें उत्तरी भारत में यत्र-तत्र फैली हैं। उनमें से इनके नाम लिये जा सकते हैं—हरिपुर, शैदाबाद, तैतारपुर, बैकुण्ठपुर, इमायतपुर, मुर्दिवा, शोभनपुर, वसंतपुर अंधराठाढ़ी, भोगराजपुर, दशहरा (दरभंगा), जेठई, तागौल, कौनहारा, गोपालपुर, गनियारी, नावानगर (मुजफ्फरपुर), जलई, जमुई (मुंगेर), वाराटांड, देवरा, गंगावारा (गया), बसहा, भेड़हा, बहरोली (लखनऊ) इत्यादि[४]।

६

श्री धर्म साहेब तथा वंशगद्दी

मध्य प्रदेश के बांधवगढ़ में कसौधन बनिया परिवार मे श्री धर्म साहेब पैदा हुए। आप भगवद्उपासक, मूर्तिपूजक एक वैष्णव भक्त थे। आपके पास धन की प्रचुरता थी। आप अपने तीसरे पन में घर के कामकाज से छुट्टी लेकर तीर्थयात्रा में निकले। कहा जाता है कि आप मथुरा में श्री कबीर साहेब

२. पारखपद आरूढ़ मति, विगत मोह मद काम।
तातें जग में विदित है, जागू साहेब नाम॥ (कबीर अष्टक)

३. कबीरपंथ की जागू-शाखा।

४. डा० केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीरपंथ (पृष्ठ १६६)

के दर्शन पाये और उनके ज्ञान से प्रभावित हो गये। आप गुरुदेव को अपने घर बांधवगढ़ आमंत्रित किये। बांधवगढ़ में सद्गुरु कबीर द्वारा आपकी दीक्षा हुई। आप विरक्त भाव से रहने लगे और अपने अतुल धन को संत सेवा, दुखियों की सहायता एवं जनकल्याण में लगा दिये। आप एक उच्च संत हुए।

आपकी पत्नी का नाम आमीन तथा दो पुत्रों का नाम क्रमशः नारायण और चूरामणि था। कहा जाता है कि ये सब कबीर साहेब से दीक्षित हुए। ब्रह्मलीन मुनि लिखते हैं कि बड़े लड़के नारायण की भी गद्दी बांधोगढ़ में, चली, जो नौ पीढ़ियों के बाद प्रभावशाली नहीं रही, परन्तु उनके मठ यत्र-तत्र देखे जाते हैं[1]। धर्म साहेब के छोटे लड़के चूरामणि ने कुदुरमाल में जाकर अपनी गद्दी की स्थापना की तथा वही वंशपरम्परा का मुख्य केंद्र माना गया। कुदुरमाल के बाद इनकी गद्दिया रतनपुर, मंडला, धमदा, सिंघोड़ी, कवर्धा आदि घूमती रहीं। अंततः बारहवें महंत श्री उग्रनाम साहेब ने वि० सं० १९५३ में दामाखेड़ा में मठ स्थापित किया, तब से आज तक वही श्री चूरामणि साहेब की वंशगद्दी का मुख्य केंद्र माना जाता है।

विद्वानों का मानना है कि धर्म साहेब कबीरदेव के शरीरांत के करीब सौ साल बाद हुए हैं। उन्हें कबीर साहेब के साक्षात दर्शन नही हुए, बल्कि जैसे मदन साहेब (वि० उन्नीसवी शती) ने भावना मे कबीर साहेब के दर्शन किये वैसे धर्म साहेब ने दर्शन किये। इसकी पुष्टि में कुछ वाणियों का उदाहरण दिया जाता है[2]।

धर्म साहेब की परम्परा मे आज तक पंद्रह गुरु सिद्ध होते हैं। उनके नाम ये हैं (१) श्री धर्म साहेब, (२) श्री चूरामणि (मुक्तामणि नाम) साहेब, (३) श्री सुदर्शन साहेब, (४) श्री कुलपति साहेब, (५) श्री प्रमोद साहेब, (६) श्री केवल साहेब, (७) श्री अमोल साहेब, (८) श्री सुरत सनेही साहेब, (७) श्री हक्कनाम साहेब, (१०) श्री पाकनाम साहेब (११) श्री प्रगटनाम साहेब, (१२) श्री धीरजनाम साहेब, (१३) श्री उग्रनाम साहेब, (१४) श्री दयानाम साहेब तथा (१५) श्री गृंधमुनि नाम साहेब (वर्तमान)।

१. सद्गुरु कबीर चरितम् १२/२१९-२२०।

२. जिंदरूप जब धरे शरीरा। धरमदास मिल गये कबीरा॥

(अमरसुखनिधान)

साहेब कबीर प्रभु मिले बिदेही। झीना दरस दिखाइया॥ बानी पृष्ठ ५२॥

(उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ २८३ दूसरा संस्करण)

श्री गृंधमुनि नाम साहेब को चार वर्ष की उम्र मे ही गद्दी पर बैठा देने के कारण उनका गद्दी-काल लंबा चल रहा है। अतएव यह अपवाद स्वरूप है। कोई भी अपवाद सामान्य नियम नहीं बन सकता। वैज्ञानिक एवं सामान्य अनुभव के आधार पर प्रति पीढ़ी लगभग पचीस वर्ष की ही मानी जा सकती है। श्री श्रुति गोपाल साहेब, श्री भगवान साहेब तथा श्री जागू साहेब की पीढ़ियां आज से पूर्व करीब बीस हो गयी है, इसलिए उन की शाखाओं को कबीर साहेब के काल तक पहुँचने में अंतर नही पड़ता; किंतु श्री धर्म साहेब की शाखा की पीढ़ियां चाहे वह श्री चूरामणि-शाखा हो और चाहे श्री नारायण-शाखा हो पहली की पंद्रह तथा दूसरे की तेरह ही पीढ़ी पर है।

बांधवगढ़ के रीवा राज्यवंश की, शुरू महाराजा व्याघ्र देव से लेकर आज श्री मार्तंड सिंह तक, चौतीस (३४) पीढ़ियां हुई हैं जिसका अभिषेक काल विक्रमी स० १२३४ से २००३ तक है। इसमें मार्तंड सिंह का समय न गिनने पर केवल तैंतीस (३३) पीढ़ियो को लें तो प्रतिपीढ़ी का समय लगभग चौबीस (२४) वर्ष का पड़ता है। अतएव एक पीढ़ी पचीस वर्ष की ही मानी जा सकती है।

एक मुख्य बात और है कि श्री चूरामणि शाखा एवं श्री नारायण शाखा—दोनो के ग्रथो मे यह बारंबार लिखा मिलता है कि बाधोगढ के नरेश श्री रामसिंह[३] श्री धर्म साहेब के काल मे थे। रीवा राज्य दर्पण एवं वहां के गजेटियर के अनुसार राजा श्री रामसिंह (रामचंद्र) का जन्म १५९२ वि० स० है तथा राज्याभिषेक १६१२ सं० एवं निधन १६४८ है। इस प्रकार सद्‌गुरु कबीर के शरीरांत के तेईस (२३) वर्ष बाद राजा रामसिंह का जन्म होता है और सैतीस (३७) वर्ष के बाद उनका राज्याभिषेक। इसलिए इस संदर्भ में विचार करने वाले समस्त विद्वान एकमत है कि कबीर साहेब के बाद एवं सतरहवी विक्रम शताब्दी के पूर्वार्ध में श्री धर्म साहेब का काल माना जा सकता है। जो हो, इससे श्री धर्म साहेब की महत्ता में कोई आंच नहीं आती। कबीर साहेब और उनके विचारो के लिए उनकी एकांत निष्ठा तथा पंथ के लिए अन्यतम योगदान प्रशंसनीय है। किसी भी परपरा का हर महापुरुष मूलाचार्य के काल में ही नही होता, किंतु इससे उसकी गुणात्मक महत्ता कम नही होती।

वंशगद्दी, जैसे अपने आप से ही स्पष्ट हो जाता है, गद्दीनशीन महंत का ही लड़का गद्दी पर बैठाया जाता है। यदि महत को लड़का न हुआ हो,

३. धनी धर्मदास जीवन दर्शन एवं वंश परिचय, पृष्ठ—२०, २१, २२, २४, २६, ३१।

तो उसी परिवार का कोई लड़का गोद लेकर गद्दी पर बैठाया जाता है। जो मुख्य गद्दी पर बैठता है, भ्रमवश उसका विवाह करना आवश्यक माना जाता है। उसकी शाखा तथा उसके अन्य मठ के महंत त्यागी भी हो सकते हैं तथा गृहस्थ भी। वंशगद्दी के मुख्य गद्दीनशीन महंत अवश्य सपत्नीक होते रहे। परन्तु इनकी परम्परा में त्यागी साधु भी कम नही होते रहे। आज भी इनमें त्यागी संत एवं महंत पाये जाते हैं। इस परंपरा में प्रतिभा के धनी अच्छे-अच्छे महंत, संत और विद्वान हुए और भारत तथा भारत के बाहर भी इन्होंने व्यापक प्रचार किया। इनकी शाखा में ग्रंथों की एक बहुत बड़ी राशि है जिसकी सहज ही गणना कर पाना कठिन है।

इस शाखा की मान्यता पौराणिक ढंग की है "कबीर साहेब परमात्मा हैं। वे युग-युग मे अवतार लेते हैं। एक युग में अनेक बार भी अवतार ले सकते है, जैसे केवल कलियुग में दश-बारह बार अब तक आ चुके हैं। राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद आदि समस्त गणमान्य पुरुष सद्गुरु कबीर के शिष्य हैं। चारो वेद कबीर साहेब की वाणी है। दुनिया में जो कुछ अच्छाइयां हैं, सब कबीर साहेब की विशेषता है। कबीर साहेब ने धनी धर्मदास साहेब तथा उनके पुत्र चूरामणि नाम साहेब की परम्परा को ही गुरुपद दिया है। संसार में यदि जीवों का कल्याण हो सकता है तो इसी परम्परा से, अन्य से नही, इत्यादि।" इस शाखा में सृष्टि-उत्पत्ति की अद्भुत कल्पना है। सत्लोक, सत्पुरुष, ईश्वर, ब्रह्म की धारणा है। परन्तु वह परमात्मा वस्तुतः कबीर साहेब ही हैं। इस शाखा में चौदह सौ पृष्ठो का विशालकाय 'कबीरमशूर' नामक एक ही ग्रंथ बहुत कुछ बताता है। इन पंक्तियो के लेखक ने इस पुस्तक को जब सन् १९६० ई० के लगभग पढ़ा, दंग रह गया। कबीर साहेब की ईश्वरता इसमें ऐसी जोरदार भाषा में सिद्ध की गयी है और वेद, कुरान, बाइबिल आदि के ऐसे प्रमाण दिये गये हैं कि भावुक आदमी सहज ही इसकी ओर झुक जाय। परन्तु इसमें केवल यही इतना नहीं है, अपितु यह ज्ञान का भंडार भी है। इसमें अनेक ज्ञातव्य बातें है। इक्कीसवें अध्याय 'जीव का वर्णन' में पारखपद का सविस्तार कथन किया गया है। परन्तु इस ग्रंथ मे कल्पना एवं अतिशयोक्तियो का इतना वृहद् अंश है जो सहज समझा जा सकता है। इसी प्रकार इस शाखा के अधिकतम ग्रंथ मिलते हैं। कबीरमंशूर के अलावा अनेकों ग्रंथ कबीर सागर एवं बोधसागर आदि के नाम से दोहा, चौपाई एवं छन्दों में हैं जिन्हें सद्गुरु कबीर एवं धर्म साहेब के संवाद रूप मे अन्य लोगों द्वारा रचा गया है।

इस शाखा में सात्विक यज्ञ रूप में चौका विधान एक बाह्योपचारिक

पूजा है जो बडे विधि-विधान एवं सजधज के साथ संपन्न किया जाता है। यह एक कर्मकांड का रूप है।

इस शाखा में शाखा के संगठन के लिए बहुत बड़ी-बड़ी सभायें भी हुई, जो हमें बुद्ध के मर्णोत्तरकाल की बौद्ध-संगीतों (सभाओं) की याद दिलाती हैं। इस शाखा ने देशव्यापी प्रचार किया और इसका प्रचार विदेशों में खूब हुआ। इस शाखा के भारत मे फैले प्रसिद्ध मठों के नाम इस प्रकार लिये जा सकते है—कुदुरमाल, रतनपुर (बिलासपुर), मंडला (मध्य प्रदेश नर्मदा तट), मऊ सहनिया (छतरपुर), धमदा (मध्य प्रदेश) नानापठे (पूना), सिंघोड़ा (छिंदवाड़ा), गरौठा (बुन्देलखड), जामनगर, दार्गिया, लालदरवाजा (सूरत), सियाबाग (बड़ौदा), कवर्धा, दामाखेड़ा, बमनी, खरसिया, सागर हरदी, धनौरा (मध्य प्रदेश), खैरा (बिहार), खांपा (नागपुर), छोटी बड़ौनी (दतिया), मौर्वी, बेंगलोर (कर्नाटक), अहमदाबाद आदि[४]। यह ध्यान रखना चाहिए कि कबीरचौरा काशी, धनौती, बिद्दूपुर तथा वशगद्दी—इन गद्दियो के शाखा-मठ जो इस अध्याय में गिनाये गये हैं, बहुत कम हैं। इनके मठो की सख्या बहुत अधिक है। वंशगद्दी की शाखायें तो फीजी, ट्रीनी-डाड (अमेरिका), अफ्रीका, मारीशस आदि विदेशो मे भी है।

बाह्योपचार तथा दार्शनिक सिद्धान्त चाहे जो हो, किन्तु वंश-परम्परा में जो मुख्य गुरुओ का वैवाहिक जीवन व्यतीत करने का विधान रहा है, यह एक बहुत बड़ी त्रुटिपूर्ण धारणा रही है। कबीरदेव जैसे परम विरक्त संत की एक मुख्य शाखा में कहला कर मुख्य गुरु स्त्री-बच्चों वाला हो, एकदम विरुद्ध बात है। साधु-गुरु-पद ब्रह्मचर्य, वैराग्य एवं त्याग का है। मुख्य गुरु का पुत्र ही पुनः गद्दी पा सकता है. इसलिए उसमे योग्यता की परवाह भी नही की जा सकती। इस शाखा में जो कई बार उथल-पुथल हुआ उसमे एक यह मुख्य कारण रहा। फल हुआ कि इस शाखा के विरक्त संत एवं महन्त इससे अलग होते गये। विक्रम संवत बीसवी की आखीरी मे श्री विचार साहेब शास्त्री, ग्वालियर के बाजीराव काटे, स्वामी युगलानन्द विहारी तथा बड़ौदा के श्री मोती साहेब के प्रयास से वशगद्दी दामाखेड़ा से हटकर खरसिया (बिलासपुर) में विरक्त गद्दी स्थापित हुई[५]।

आजकल वशपरम्परा के विरक्त महन्तो के मठ दामाखेड़ा वाली गृहस्थ-गद्दी से अलग होते चले जा रहे है। उनके संत और भक्त भी उनसे अगल होते

४. कबीर और कबीरपंथ, परिशिष्ट (ख)

५. कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १७७।

जा रहे हैं। इन अलग होने वाले महन्तों, संतों एवं भक्तों का संबंध त्याग-गद्दी खरसिया से जुड़ता जा रहा है। त्यागगद्दी खरसिया की स्थापना हो जाने से वंशगद्दी के त्यागप्रिय महन्तों, संतों एवं भक्तों को वह एक प्रबल अवलंब मिल गया है और गृहस्थगद्दी का भविष्य निरंतर धुंधला होता जा रहा है। वर्तमान जैसे प्रगतियुग को देखते हुए इस शाखा के गृहस्थ गुरु तथा उनके पक्ष-धरों को विनम्र निष्पक्ष विचार करना चाहिए और गद्दी पर गृहस्थ को न बैठाकर विरक्त को बैठाना चाहिए जिससे भविष्य उज्ज्वल हो। हम वर्तमान गद्दी-अधिपति से यही आशा करते हैं कि वे आगे अपना उत्तराधिकारी विरक्त को ही चुनेंगे, भले ही यदि विरक्ति भाव वाला उनका पुत्र हो तो वही पहले बैठाया जाय।

७
श्री नारायण साहेब तथा वंशगद्दी

श्री धर्म साहेब के बड़े लड़के श्री नारायण साहेब की गद्दी अपने पैतृक स्थान बांधवगढ़ में ही चलती रही जो आजकल जिला शहडोल में पड़ता है, और आप के पीछे तीन पीढ़ियों की गद्दी बाधवगढ़ मे ही रही। पांचवीं पीढ़ी के श्री परमान दास जी साहेब राजनैतिक उथल-पुथल के कारण बांधवगढ़ छोड़ कर वर्तमान सतना जिले के सोहावल ग्राम मे आ गये। आप सोहावल ग्राम में कुछ ही वर्ष रह कर उचेहरा ग्राम चले गये। यह भी आजकल के सतना जिले में पड़ता है तथा इलाहाबाद-कटनी रेल वे लाइन में उचेहरा आज कल रेलवे स्टेशन भी है। श्री परमान साहेब प्रतिभा के धनी थे। इनकी कई रचनायें हैं जैसे निकासी, मूलदक्ष, कबीर-रामानंद, जम चरित, कुंजल कथा, भोपाल बोधादि। उपर्युक्त ग्रंथ विक्रमी सं० १७४३ के लगभग उचेहरा में ही लिखे गये हैं। आपकी समाधि उचेहरा की नदी के पास बनी है। आपके नाम से अनेक चमत्कार जुड़े हुए हैं जो धर्म के नाम पर चलते ही हैं।

परमान दास साहेब के ही परिवार के लोग उचेहरा के अतिरिक्त पुरैना, महेवा, मोहद्रा (पन्ना जिला), धरमपुरा, खितौली, मुरवारी, सिलौडी (जबलपुर जिला), सोहावल, जसो, सितपुरा आदि (सतना जिला) में फैल गये और अपने-अपने ढंग से कबीरपंथ का प्रचार करते रहे तथा आज भी करते हैं।

आजकल नारायण साहेब की शाखा की मुख्य गद्दी उचेहरा है। इस गद्दी पर बारहवें महंत श्री सरजू दास जी साहेब हुए हैं जो अपनी लगन के

पक्के थे। आप ने उचेहरा में एक कबीर मदिर बनवाना चाहा। वहां के तत्काल राजा ने कुछ सांप्रदायिक तत्त्वों के भड़काने से मंदिर बनने में विघ्न डाला। इस पर सरजू दास साहेब अड़ गये। अंततः राजा को झुकना पड़ा और उसने स्वयं आकर मंदिर बनने की जगह पर कबीर साहेब के नाम से झंडा गाड़ा तथा एक हजार रूपये मंदिर के सहयोग में अर्पित किए। यह घटना भारत स्वतंत्र होने के तत्काल पहले की है। फिर एक सुंदर कबीर मंदिर बना, जहां हर जेष्ठ पूर्णिमा को कबीर जयंती के अवसर पर एक महत्वपूर्ण समारोह होता है और अच्छा खासा भक्त एवं साधु समाज इकट्ठा होता है।

वंश परपरा की श्री चूरामणि शाखा जिसकी वर्तमान मुख्य गद्दी रायपुर जिले के दामाखेड़ा ग्राम में है। इस शाखा के समान ही श्री नारायण साहेब की शाखा में उपासना एवं पूजा पद्धति है। दोनो में चौका आरती, पान परवाना एवं श्री कबीर साहेब को अवतार रूप मे मानना आदि पौराणिक ढंग प्रायः समान है। इस शाखा की बहुत पुस्तकें है जो हस्तलिखित रूप में ही है। इस शाखा में प्रकाशन की रुचि नही दिखती। श्री चूरामणि नाम साहेब की शाखा छत्तीसगढ़ में फैली तथा श्री नारायण साहेब की शाखा बघेलखंड एवं बुंदेलखंड में फैली। इनका प्रचार तो भारत के हर क्षेत्र एव विदेश में भी है। हां, अपेक्षया श्री चूरामणि साहेब की शाखा ने अधिक प्रचार किया और आज भी ज्यादा प्रचाररत है।

श्री नारायण साहेब की शाखा में मुरवारी गद्दी के एक गुरु श्री ठाकुर दास जी हुए जिन्होने करीब एक हजार पृष्ठो में 'निर्गुण पुराण' नामक ग्रथ लिखा जिसमें कबीरपंथ की बहुत सी वाणियां संकलित हैं। इसकी कथा इनकी शाखा में चलती है। सिलौडी के एक युवा प्रचारक श्री कमल दास जी हैं जो इसके आधार मे वर्तमान प्रचार करते है। इसके अतिरिक्त श्री चतुरदास जी, श्री सुकृत दास जी, ज्ञानदास जी, श्री चितामणि दास जी, श्री शांत दास जी आदि इसके आधार मे प्रचार कार्य मे रत है।

श्री नारायण साहेब की मुख्य गद्दी (उचेहरा) पर वर्तमान में श्री सुखमणि साहेब आसीन हे जो व्यवहार कुशल, राजकार्य मे भी दक्ष एवं सुलझे हुए व्यक्ति है। इनके उत्तराधिकारी श्री शाति दास साहेब हैं। इस गद्दी का पूरा क्रम इस प्रकार है— (१) श्री नारायण साहेब (२) श्री हरी साहेब (३) श्री चितावन साहेब (४) श्री नरसिंह साहेब (५) श्री परमान साहेब (६) श्री भगवान साहेब (७) श्री शीतल साहेब (८) श्री हिरंबर साहेब, (९) श्री पोखे साहेब (१०) श्री दर्शन साहेब (११) श्री साहेब

दास साहेब (१२) श्री सरजू साहेब (१३) श्री सुखमणि साहेब (वर्तमान) आप के सहायक श्री शांति साहेब हैं ।

इस शाखा में भी श्री चूरामणि साहेब की शाखा की तरह गृहस्थ गद्दी चलती है । इस शाखा के सदस्य वर्तमान में धनार्जन में अधिक गतिशील हो गये हैं और प्रचार कार्य इनमें शिथिल हो गया है । धनार्जन करना बुरा नहीं, किन्तु प्रचार कार्य में भी आगे बढ़ना चाहिए । यदि मूल गद्दी पर विरक्त को बैठायें तो सोने में सुगंध हो ।

८

नादवंशीय कबीराश्रम नादिया गद्दी

श्री धर्म साहेब तो विरक्त संत थे । परन्तु उनके पीछे परम्परा में गृहस्थगद्दी कायम कर लोगों ने वंशपरम्परा चलायी । जैसे पहले कहा गया है कि वंशपरम्परा होते हुए भी इसमें विरक्त संत एवं महंत भी होते रहे । कितने ही विरक्त संत-महन्त इस वंशपरम्परा से घबरा कर अलग होते रहे ।

वंशपरम्परा के श्री सुरति सनेही साहेब के समय में एक विरक्त संत श्री ज्ञान साहेब थे । उनके विरक्त शिष्य श्री सेवा साहेब हुए । उन्होंने अपना विरक्त संतों का मठ नादिया नामक ग्राम में विक्रमी संवत १८३७ में भक्त मंगनू ठाकुर मालगुजार के सहयोग से स्थापित किया । इसी मठ की शाखा भीमा-टोला, अरकार आदि हैं । यहां की गुरु परम्परा इस प्रकार है—(१) श्री सेवा साहेब, (२) श्री ध्यान साहेब, (३) श्री चरण साहेब, (४) श्री भावतन साहेब, (५) श्री तुलसी साहेब, (६) श्री बालकृष्ण साहेब, (७) श्री लौटन साहेब, (८) श्री रामरतन साहेब, (९) श्री गोपाल साहेब, (१०) श्री भूप साहेब, (११) श्री हनुमान साहेब तथा (१२) श्री गंगा साहेब (वर्तमान)[१] ।

यह परम्परा अपने को नादवंशी कहती है । नादवंशी का तात्पर्य है उपदेश द्वारा चलायी गयी विरक्त-परम्परा । नादिया ग्राम में इसका विशाल मठ स्थापित है और गांव की अधिकतम जनता कबीरपंथी है । मठ में आध्यात्मिक धारा का मनन, चिन्तन एवं आचरण न होने से यह मठ वर्तमान में धूमिल हो चला है । इस मठ का प्रचार क्षेत्र भी बहुत दूर-दूर तक है । यह मठ अब पुनः आध्यात्मिक चिन्तन, आचरण में लौट आये, यही शुभाकांक्षा है ।

१. भीमाटोला वाले श्री महेश साहेब की चिट्ठी के आधार पर ।

९

श्री कबीर आश्रम खरसिया गद्दी

जैसे मैंने वंशपरम्परा के संदर्भ में चर्चा की है कि विक्रमी संवत बीसवी के आखीर में श्री विचार साहेब शास्त्री, ग्वालियर के बाजीराव कांटे, स्वामी युगलानंद विहारी तथा बड़ौदा के श्री मोती साहेब के प्रयास से वंशगद्दी दामाखेड़ा से हट कर खरसिया (बिलासपुर) में विरक्त गद्दी की स्थापना हुई। इसके प्रथम गद्दीनशीन रुसड़ा के श्री काशी साहेब हुए। पीछे श्री विचार साहेब शास्त्री हुए, जो एक बहुत योग्य विद्वान संत पुरुष थे। आपने बीजक पर टीका लिखी तथा अनेक ग्रन्थों की रचनायें एवं टीकाएं की हैं। तीसरे गद्दीनशीन आजकल श्री उदितनाम साहेब शास्त्री हैं जो अपने अथक परिश्रम और दृढ मनोयोग से काशी के लहरतारा तालाब में सद्गुरु कबीरदेव के प्राकट्य स्थल पर अत्यन्त विशाल कबीर-स्मारक बनवा रहे है। आपके सहयोगी धर्माधिकारी श्री मनोहर साहेब शास्त्री है, जो इस कार्य में प्राणपण से तत्पर है।

लहरतारा तालाब के ऊपर बाग में भी आपका विशाल कबीराश्रम है, जिसमें संतसमाज रहता है। यहां कबीरदेव के प्राकट्यदिवस जेष्ठपूर्णिमा को हर साल विशाल मेला लगता है और खरसिया में माघ महीने में उत्सव होता है। इस खरसिया शाखा का प्रचार क्षेत्र कबीरपंथ में एक विशाल स्थान रखता है और श्री उदित नाम साहेब तथा उनके सहयोगी श्री मनोहर साहेब के उग्र पुरुषार्थ से दिनोदिन लहरतारा कबीर प्राकट्य स्मृति का तीर्थधाम बनता जा रहा है। इसके शाखा-मठ भारत में बहुत हैं।

१०

कबीराचौरा जगदीशपुरी

यह मठ जगन्नाथपुरी में समुद्र के पास उसकी उत्तर ओर स्थित है[१]। यहां कबीर साहेब की समाधि है तथा उसके पास आसाकुबरी गड़ी है, जिसके लिए यह धारणा है कि कबीर साहेब यहां अपनी कुबरी गाड़ कर समुद्र का बढ़ना रोक दिये थे, जिससे जगन्नाथ का मंदिर बच सका। यहां पर श्री धर्म

१. डा० केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १७७, ७९।

साहेब, आमीन माता, श्री श्रुतिगोपाल साहेब, रतना बाई आदि की समाधियां हैं। यह मठ बहुत पुराना है, शायद कबीर साहेब के तत्काल बाद का ही। यहां चौका-आरती का विधान वंशगद्दी के अनुसार ही बताया जाता है; परन्तु इस मठ को लोग स्वतंत्र ानते हैं।

११
हटकेसर मठ

मध्य प्रदेश, रायपुर जिले के धमतरी शहर के पास हटकेसर नाम का गांव है[1]। कहा जाता है कि श्री धर्म साहेब के बाद जो श्री मुक्तामणि नाम साहेब हुए उनकी पीढ़ी के बाद ही उनके बड़े पुत्र ने यह मठ स्थापित कर अपनी अलग गद्दी चलायी और कांकेर, बस्तर, कोमाखान आदि के राजाओं को शिष्य बनाकर नागपुर के आसपास अपना व्यापक प्रचार किया। यह एक स्वतंत्र शाखा का रूप ले लिया है।

१२
रामकबीर एवं उदाधर्म

गुजरात प्रदेश भड़ौच के पूरब नर्मदा तट पर शुक्लतीर्थ है। इसके उस पार अर्थात नर्मदा की बाईं ओर कहा जाता है तत्त्वा और जीवा दो ब्राह्मण बंधु रहते थे। उनके द्वार पर एक सूखा वटवृक्ष था। उनकी धारणा थी कि जिन संत के चरण जल से यह वट हरा-भरा हो जाय, मैं उनका शिष्य बनूंगा। कबीरदेव अपने भ्रमण में वहां पहुँचे और तत्त्वा-जीवा ने उनके चरण धोकर उस जल के वृक्ष में डाला और वह हरा हो गया। अतः उनसे प्रभावित होकर दोनों उनके शिष्य हो गये। यह जगन्नाथपुरी में समुद्र रोक देने के समान एक कल्पित धारणा है। धर्म के नाम पर यह सब मजे से चल जाता है। वस्तुतः कबीरदेव के ज्ञान से प्रभावित होकर तत्त्वा और जीवा उनके शिष्य हुए।

नर्मदा यहां उत्तर से दक्षिण की ओर गयी है। नदी के पश्चिम शुक्लतीर्थ है तथा पूर्व कबीरवट है। यह कबीरवट बहुत विशाल है। बीच में

१. कबीर और कबीरपंथ पृष्ठ १७९।

रामकबीर मत का एक मंदिर एवं मठ है। वट ऐतिहासिक होने से उसका प्रबंध सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है। कार्तिक पूर्णिमा को यहां कबीरपंथियो का विराट मेला लगता है जो कई दिनों तक रहता है। इन पंक्तियों के लेखक को गतवर्ष नवम्बर १९७९ कार्तिक पूर्णिमा के समय देखने को अवसर मिला।

कहा जाता है जब कबीर साहेब तत्त्वा-जीवा के यहां गये तब वहां एक ज्ञानी जी नाम के संत आये जो पहले खोजी जी के शिष्य थे, परन्तु कबीर साहेब के सत्संग से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये। इन्होने अपने को अपनी बानी में स्वयं कबीर साहेब का शिष्य होना बतलाया है[१]। कहा जाता है इनकी रचनायें 'शब्द पारखी' 'ब्रह्मस्तुति' 'ज्ञानी जी की साखी' तथा 'शब्द' भी हैं।

इन्हीं ज्ञानी जी के शिष्य गोपालदास हुए और उनके शिष्य जीवन जी महाराज हुए, जिन्होंने 'रामकबीर' मत की प्रतिष्ठा की। ज्ञानी जी हृदय में बसने वाले चेतन को राम मानते थे तथा उसका बोधदाता कबीर थे। अतः वे 'रामकबीर' कहा करते थे। इसलिए शिष्यों ने 'रामकबीर' अपना मूल मत्र माना। इस मत की गद्दी बड़ौदा जिले के पुनियाद ग्राम मे है, इसकी शाखा हांसापुर में भी बतायी जाती है।

जिसे उत्तर प्रदेश में कुर्मी तथा छत्तीसगढ़ (मध्य प्रदेश) में चद्रवंशी कहते हैं, उस जाति को गुजरात में पटेल कहते है। इसी पटेल जाति में से लोग रामकबीर मत में दीक्षित हुए और जो इसमें दीक्षित हुए उनकी एक 'उदा जाति' के नाम से अलग जाति बन गयी। 'रामकबीर' मत एवं 'उदा जाति' के लोग बड़ौदा, सूरत, अहमदाबाद एवं महेसाणा आदि जिलों में पाये जाते है।

१. ज्ञानी का गुरु कहे कबीर।
बटक बीज की मांझ में देखि भया मन थीर॥
जन ग्यानी का संसा मिटैया सतगुरु मिल्या कबीर॥
सबद परिख की परिषा होई। ऐसा जो जन उधरे सोई॥
सतगुरु मिलि मोहि दिया विचार। सर्व संत का लीया सार॥
कहै ग्यानी यह निर्मल ग्यान। मिटि गया तिमिर उदै भया भान॥
पं० परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की परम्परा, पृष्ठ २७३–२७४।
इन्होंने और भी कहा—
अदेष देषै शब्द विचारै। आप तरै औरन कूं तारै॥
पषा पषी की पष न झालै। लोकवेद से उल्टा चालै॥
आतम तत का करै बिचारा। कहै ग्यानी सो गुरु हमारा॥
(वही, पृष्ठ २७६)

विशेषता

उदा जाति के लोग प्राय: आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। इनमें सदाचार का पालन कड़ाई से होता है। पहले तो यहां तक था कि यदि किसीके हाथ में तंबाकू छू गया है तो वह तुरन्त हाथ को मिट्टी-पानी से धोता था। ये लोग मांस, शराब तथा नशा से दूर रहते हैं। आजकल किसी-किसी में गड़बड़ी आयी है, परन्तु अपेक्षया बहुत कम। इस जाति में बच्चे के जन्म के सवा महीने बाद ही उसके गले में माला पहना देते हैं। इनके यहां जन्म से मृत्यु तक के किसी सस्कार में ब्राह्मण-कर्म से तनिक भी प्रयोजन नहीं रहता। ये लोग ब्राह्मण आदि किसी का छूआ पानी तक नही लेते। इनके घर में ब्राह्मणी बर्तन अलग रखे जाते रहे जिससे किसी ब्राह्मण के आने पर उनमें उसे जल-भोजन दिये जा सके। ब्राह्मणो से भी इतनी छूत इसलिए मानते थे कि ब्राह्मणों में आहार-विहार की सर्वथा शुद्धि नही है। किन्तु आजकल इनमे भी छुआछूत में नरमी आयी है।

इस जाति में विवाह में दहेज-प्रथा नही है। ये अपनी जाति ही में विवाह करते हैं। इसलिए एक ही गांव मे लड़के-लड़की की शादी हो जाती है। किसी के मरने पर आस-पास के सभी उदा इकट्ठे होते हैं और लाश को विमान पर बैठाकर सजाते हैं तथा श्मशान में ले जाकर जला देते है। जलाने के बाद जब घर लौटते है तब गांव या मुहल्ले में सब उदा के घर खिचड़ी बनी रहती है तथा सब लोग बंटकर घर-घर में जाकर खिचड़ी खा लेते हैं। फिर एक महीना तक वे अपनी गुरु की बनायी वाणी का शाम को पाठ करते है तथा उसके बाद प्रसाद बाटते है। हर दिन का प्रसाद अलग-अलग एक-एक उदा के घर से आया रहता है। तीस दिन पूरा हो जाने पर यह कर्म पूरा मान लिया जाता है। इस प्रकार जिसके घर मे आदमी मरता है, उसको कोई खास खर्च नही करना पड़ता। उसको भी अपनी पारी में केवल प्रसाद बांटना रहता है। इनके गुरु के वही गीत बच्चे के जन्म में, विवाह में एवं मृत्यु में गाये जाते हैं।

इनमें यह प्रचलन अब शुरू हो गया है कि नयी बहू को जब पहला गर्भ रहता है, उस समय खान-पान तथा वस्त्र के लेन-देन आदि के उत्सव में दश-दश, बीस-बीस हजार रुपये खर्च करने लगे हैं, जो एक गलत रस्म है। इससे कम पैसे वाले दीन भावना से ग्रस्त होते हैं। आदमी को ऐसे अवसर पर दीनो की सेवा तथा लोक-मंगल कार्य में धन व्यय करना चाहिए और यह प्रथा समाप्त करना चाहिए।

इस जाति में आपसी संगठन बड़ा सुन्दर है। खेती, नौकरी और व्यापार—तीनों में ये आगे बढ़े हुए है। इनके शिक्षित युवक अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि में भी व्यापार तथा सर्विस के लिए फैल गये हैं। इनमें पहले पहल पारख सिद्धांत का कुछ अधिक प्रचार महाराज श्री राघव साहेब ने किया था। अब इनमें पारखी संतों का आना-जाना काफी है और इनमें अनेक अच्छे-अच्छे भक्त पारख सिद्धांती है। जिनमें आजकल नाना अमादरा (बड़ौदा) के बाल ब्रह्मचारी नाथा भक्त सिरमुकुट हैं।

१३

पनिका कबीरपंथी

कहा जाता है कि श्री धर्म साहेब के दो पुत्रों श्री चूरामणि साहेब या श्री नारायण साहेब में से कोई एक कहीं जा रहे थे। एक बाग में पांच व्यक्ति मिले और वे इनके ज्ञान से प्रभावित होकर इनसे दीक्षित हो गये और सदाचार मार्ग तथा कबीरपंथ में जीवन पर्यंत रहने के लिए दृढ़ प्रण कर लिये। शुरू में इनकी पांच की संख्या होने से या अपने पक्के प्रण के कारण प्रणिका कहलाकर अंत में पनिका कहलाये। ये शायद मानिकपुर नामक स्थान में रहने के कारण मानिकपुरी भी कहलाते हैं। मानिकपुरी पनिका मध्य प्रदेश में प्रसिद्ध हैं। इनकी एक 'पनिका' नाम की जाति ही हो गयी है। कबीरपंथी होने से ये शुद्ध सदाचारी होते हैं। जन्मजात कबीरपंथी होने से ये अपनी गरिमा अधिक समझते हैं। अब इनमें शिक्षा-दीक्षा बढ़ती जा रही है तथा ये भी आधुनिक सभ्यता में बढ़ते जा रहे है।

१४

कबीर मठ फतुहा

हम रामकबीर मत की चर्चा के शुरू में यह कह आये हैं कि तत्त्वा और जीवा—ये दोनो कबीर साहेब के शिष्य थे। नाभादास के भक्तमाल में इन दोनो का कबीर साहेब का शिष्य होना बताया गया है। कहा जाता है, इनमे तत्त्वा जी से ही फतुहा की शाखा स्थापित हुई है। इसकी परम्परा इस प्रकार बतायी जाती है (१) तत्त्वा जी, (२) सत्वा जी, (३) श्री पुरुषोतम

साहेब, (४) श्री कुंता साहेब, (५) श्री सुखानंद साहेब, (६) श्री संबोध साहेब
(७) श्री देवा साहेब, (८) श्री विश्वरूप साहेब, (९) श्री विक्रोध साहेब, (१०)
श्री मुकुंद साहेब, (११) श्री स्वरूप साहेब, (१२) श्री निर्मल साहेब, (१३) श्री
कोमल साहेब, (१४) श्री गणेश साहेब, (१५) श्री गुरुदयाल साहेब, (१६)
श्री घनश्याम साहेब, (१७) श्री भरत साहेब, (१८) श्री मोहन साहेब, (१९)
श्री रघुवर साहेब, (२०) श्री दयाल साहेब, (२१) श्री ज्ञानी साहेब, (२२) श्री
केशव साहेब, (२३) श्री हरिनंदन साहेब, (२४) श्री गरीबानद साहेब तथा
(२५) श्री विद्यानंद साहेब (वर्तमान-१९८०)।

कुछ संत-भक्तों का विचार है कि श्री गणेश साहेब से लेकर पीछे के महन्तों की परंपरा प्रमाणिक है, किन्तु उनके पहले के विषय में कुछ कह नहीं सकते।

यह मठ आर्थिक दृष्टि से बहुत संपन्न है। यहां की एक शाखा नवडीहा है। यहां खेती होती है। नवडीहा में एक हाईस्कूल तथा फतुहा में संस्कृत शाला मठ की तरफ से चलते हैं। यहां पहले पारखी संतो का गढ़ था। यहां सौ-सौ संत रहते थे। श्री गुरुदयाल साहेब एक परम पारखी संत थे जो इसी गद्दी के पंद्रहवें अधिष्ठाता थे। यह विरक्त साधुओं का मठ है। यहां शाम को नित्य बीजक का पाठ होता है। यहां किसी प्रकार बाह्योपचार नहीं है। संतो की सेवा, सत्सग, ज्ञान आदि पर जोर है। यहां की प्रसिद्ध सैद्धान्तिक पुस्तक कबीर परिचय एवं ग्यारह शब्द हैं जो श्री गुरुदयाल साहेब की रचना है। इस पर हम दूसरे अध्याय में विस्तार से लिख आये है।

यहां के एक बड़े वैराग्यवान, निर्मानी संत श्री हनुमान साहेब हुए हैं जो वर्तमान में सौ वर्ष की उम्र से ऊपर चल रहे हैं। आप सस्कृत के प्रकांड पंडित षटशास्त्री हैं। आपकी बीजक पर छोटी-बड़ी अनेक टीकायें है। उनमें एक संस्कृत श्लोकों में बीजक का अनुवाद है। आपने गीता, बादरायण के ब्रह्मसूत्र तथा श्री हर्ष के खंडन खंड खाद्य पर भी हिंदो में टीकाये लिखी हैं। आज आप कबीरपंथ के बहुमूल्य रत्न हैं।

इधर श्री विद्यानंद साहेब की अध्यक्षता में अब फतुहा मे एक नया जागरण दिखाई देता है। इस वर्ष (२१-२३ जून १९८० ई०) की कबीर जयंती के उपलक्ष में हुए यहां के समारोह को देखते हुए लगा कि मानो श्री गुरुदयाल साहेब की भूमिका जाग रही है। यहां की शाखायें इस प्रकार बतायी जाती हैं—चकना, परिहारा (गया), नदपुर (छपरा), अंबारी (छपरा), कुरहना

१, **कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १८२।**

(बनारस), पंचबेतिया (छपरा), सोनपुर (छपरा), ब्रह्मपुरा, अंबा, महदेइया, सतैना, हरिबेला, दिग्घी, हरौना, चदवारा, लोहरवान, पुरनहिया, मुजफ्फरपुर इत्यादि[1] ।

१५
कबीरमठ लक्ष्मीपुर बगीचा रुसड़ा

कहा जाता है कि वंशगद्दी के पांचवें गुरु श्री प्रमोदनाम साहेब के समय से वहीं से विभक्त होकर यह मठ बिहार प्रदेश के दरभंगा जिले मे रुसड़ा नाम के ग्राम में स्थापित हुआ और दयानाम साहेब के निधन के बाद से वंशगद्दी से इसका सबंध विच्छेद हो गया। यह विरक्त मठ है। वहां की गुरु प्रणाली इस प्रकार है—(१) श्री खेदी साहेब, (२) श्री प्रेम साहेब, (३) श्री खुशियाल साहेब, (४) श्री ईश्वरी साहेब, (५) श्री तुलसी साहेब, (६) श्री गोविंद साहेब, (७) श्री काशी साहेब, (८) श्री अवध साहेब, (९) श्री गणेश साहेब तथा (१०)पं० श्री ठाकुर साहेब (वर्तमान)। उक्त सातवें गुरु श्री काशी साहेब ही छत्तीसगढ़ की खरसिया की गद्दी के प्रथम अधिपति हुए। रुसड़ा मठ की निम्न शाखायें बतायी जाती हैं—दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पुरइनिया, सहरसा, नेपाल आदि[1] ।

१६
श्री कृष्ण कारख साहेब तथा वचनवंश गद्दी महादेवमठ रुसड़ा

श्री कृष्ण कारख साहेब का जन्म वि० स० १८५० में रुसड़ा ग्राम में हुआ था जो दरभंगा जिला मे पड़ता है। इस शाखा का प्रसिद्ध ग्रंथ 'पांजी पंथ प्रकाश' है, जिसका एक भाग छपा है, शेष कई भाग अप्रकाशित हैं। इसे श्री कृष्ण कारख साहेब का लिखा बताया जाता है, परंतु कुछ विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि यह ग्रंथ इस शाखा के चौथे गुरु श्री रामभरोस साहेब का

१. कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १८४।
१. कबीर और कबीरपंथ पृष्ठ १८४।

लिखा है[1]। पीछे इसे बड़े गुरु श्री कृष्ण कारख साहेब से नाम जोड़ दिया गया है।

यह वचनवंश, अर्थात त्याग गद्दी है। मूल गद्दी पर त्यागी ही रह सकता है, परन्तु इस शाखा द्वारा गृहस्थ और विरक्त—दोनों को महन्त बनाया जाता है। वंशगद्दी की तरह ही इसमें चौका-आरती का विधान है। मान्यतायें भी वैसे ही पौराणिक हैं, किन्तु निर्णय के वचनों पर भी जोर है। लोक प्रसिद्ध है कि कबीर साहेब ने प्रकट होकर कृष्णकारख साहेब को कहा था कि तुम वचनवंश चलाओ। तथ्य यह है कि श्री कृष्णकारख साहेब ने किसी कबीरपंथी साधु से प्रभावित होकर इस स्वतंत्र शाखा की स्थापना की होगी। वंशगद्दी का प्रभाव इसमें अधिक होने से उन्हीं से संबंधित लगता है। इसकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—(१) श्री कृष्णकारख साहेब, (२) श्री डंवर साहेब, (३) श्री झकरी साहेब, (४) श्री रामभरोस साहेब, (५) श्री रामटहल साहेब, (६) श्री बल्देव साहेब, (७) श्री जीवच्छ साहेब तथा (८) श्री यदु साहेब, (वर्तमान)।

इस मठ के एक संत श्री रामजीवन साहेब ने १९३३ ई० में अपना स्वतंत्र मठ स्थापित किया था। आज उनके योग्य एवं विद्वान शिष्य श्री विद्यानंद साहेब हैं, जो गद्दी पर हैं। आपकी अच्छी समझदारी के परिणाम में दोनों मठ पुनः एक हो गये हैं।

कबीरपंथ की इस वचनवंशीय शाखा का बिहार में बड़ा बोलबाला है। बंगाल एवं खास कलकत्ता में भी इसकी काफी जनसंख्या है। इस शाखा में जो कोई भी (स्त्री, पुरुष, बच्चे) कंठी-माला पहन लेते हैं, वे संत कहलाते हैं। बिहार में इनका क्षेत्र बहुव्यापी है। ये छुआछूत को अधिक निरस्त कर सके हैं।

१७

श्री मदन साहेब और बड़ैया गद्दी

श्री मदन साहेब का जन्म उत्तर प्रदेश, जौनपुर जिला के खरीता नामक ग्राम में एक कायस्थ परिवार में हुआ था और मृत्यु जिला शाहाबाद के

१, 'पाँजीपंथ प्रकाश सार' टीका की भूमिका, (अप्रकाशित) लेखक रामजपी शर्मा शास्त्री।

श्री रामभरोस साहेब की मृत्यु वि० सं० १९६०। कबीर और कबीरपंथ पृष्ठ १८५।

डुमराव नामक स्थान पर १८५४ ई० में हुआ था। श्री मदन साहेब वैराग्यवान थे। ये निरन्तर साधना में लगे रहते थे और कहा जाता है कि 'राधापति' के रूप में कबीर साहेब ने इनको दर्शन दिया था; परन्तु यह केवल भावातिरेक की बात है। वस्तुत: 'श्री राधापति साहेब[1]' नाम के संत आपके गुरु थे और उन्हीं में आपने श्रद्धा से कबीरदेव की भावना की। इनके नामप्रकाश तथा शब्द विलास प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

काशी से करीब ५७ किलोमीटर पश्चिम सुरियावां रेलवे स्टेशन से पश्चिमोत्तर कोण करीब ५ किलोमीटर दूर पर वरुणा नदी के बायीं तरफ बड़ैया ग्राम है। श्री मदन साहेब के एक प्रसिद्ध शिष्य श्री दूलमपति साहेब थे जो एक ब्राह्मण कुल में जन्मे हुए इस बड़ैया ग्राम के निवासी थे। इन्होंने ही अपनी सारी सपत्ति अर्पित कर बड़ैया कबीरमठ गद्दी की स्थापना की थी। १८८२ ई० में आपका भी शरीरांत हो गया। उसके पश्चात श्री विवेकपति साहेब तथा श्री गुरुशरणपति साहेब गद्दीनशीन हुए। पांचवे गुरु श्री प्रकाश-पति साहेब गद्दी पर विद्यमान हैं। श्री प्रकाशपति साहेब का जन्म गाजीपुर जिले में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप मिडिल स्कूल के अध्यापक थे। विशेष वैराग्यभाव उठने से उससे त्याग पत्र देकर आपने बड़ैया कबीरमठ में श्री गुरुशरणपति साहेब से वैराग्य की दीक्षा ले ली। आप सच्चे त्यागी, विद्वान और व्यवहारकुशल पुरुष हैं। आपने भारत की स्वतंत्रता-सग्राम में राजनीति में भी भाग लिया था। बड़ैया की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—(१) श्री मदन साहेब, (२) श्री दूलमपति साहेब, (३) श्री विवेकपति साहेब, (४) श्री गुरुशरणपति साहेब तथा (५) श्री प्रकाशपति साहेब [वर्तमान][2]। इनकी शाखाओं और भक्तों का अपना विस्तार है।

१९

श्री कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर

हम दूसरे अध्याय में देख आये है कि श्री पूरण साहेब एक प्रसिद्ध वैराग्यवान पारखी संत हुए हैं जिन्होने बुरहानपुर में रहकर बीजक टीका

१. राधापति गुरु धन्य हैं, धन्य हमारो भाग।
जेहि टुक नजर निहारते, भये नाम अनुराग ॥ नामप्रकाश ॥

२. कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ १८५।

(त्रिज्या), निर्णयसार, वैराग्यशतक आदि ग्रंथ लिखे। आपने यह बताया कि सद्गुरु कबीरदेव ने जो पारख का उपदेश किया है, वही पारख-उपदेश पूज्य श्री धर्म साहेब ने किया। उसके बाद इस क्रम में बहुत से पारखी संत हुए, परन्तु पीछे श्री सुखलाल साहेब हुए जिन्होने कृपा कर मुझे पारखपद का बोध दिया[1]।

श्री पूरण साहेब ने बुरहानपुर की ताप्ती नदी के तट पर परकोटा में बैठकर तप एवं ग्रंथ लेखन किया और वि० सं० १८९४ (१८३८ई०) में वहीं अपना शरीर छोड़ दिया। यहीं पीछे मठ स्थापित हुआ। यहां आपकी समाधि बनी हुई है तथा आपके पूरब एक दूसरी समाधि है जो आपके एक मित्र संत की है। बताया जाता है कि वे गोस्वामी एवं गोसाईं[2] पदवी के पारखी सत थे जो धनौती शाखा के थे। इसके बाद यहां कई अच्छे-अच्छे संत हुए जिनमें श्री काशी साहेब, श्री प्रेम साहेब, श्री नारायण साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री लाल साहेब, विशेष प्रसिद्ध हैं। यहां की गुरुप्रणाली इस प्रकार है—(१) श्री पूरण साहेब, (२) श्री हंस साहेब, (३) श्री सतोष साहेब, (४) श्री राम साहेब, (५) श्री नरोत्तम साहेब, (६) श्री काशी साहेब, (७) श्री छोटे बालक साहेब तथा (८) श्री रामस्वरूप साहेब, (वर्तमान)। यहां की शाखायें सिधखेड़ा, राजनांदगांव, चिवरी, ढेठा, डोमा, सिवनी, भानपुरी, अटग, सिरसिदा, महासमुंद, गातापार, रणाईस, भड़रा, चिरईबाधा, अबाला, वाराणसी, नेपाल, इत्यादि अनेक स्थानों में हैं।

बुरहानपुर का श्री कबीर निर्णय मन्दिर आज डेढ़ सौ वर्षो से पारख सिद्धांत की प्रेरणा का केन्द्र रहा है। प्रकारांतर से हम दूसरे अध्याय में विचार कर चुके है कि यहां से श्री सुखसागर साहेब, (खलीलाबाद, बस्ती), श्री प्रेम साहेब, श्री बल्देव साहेब श्री चेतन साहेब, श्री निराश साहेब, श्री वासुदेव साहेब, श्री शरण साहेब (बाराबंकी), श्री महाराज राघव साहेब (काशी कबीरचौरा), श्री रामसूरत साहेब (बड़हरा, गोंडा) आदि ने बीजक-पंचग्रंथी का अध्ययन किये। इनमे से केवल श्री सुखसागर साहेब ने काशी साहेबसे पढ़ा, शेष सभी संत श्री लाल साहेबसे अध्ययन किये, एवं उत्तरी तथा मध्यभारत के अनेक जिज्ञासुओ ने यहां से पारख सिद्धान्त की प्रेरणा ली।

बुरहानपुर का यह आश्रम आजकल बहुत विशाल बन गया है, जिसमें हजारों लोग रह सकते हैं। यहां से कुछ दूरी पर सिधखेड़ा में लम्बी खेती

१. निर्णयसार अन्त तथा देखें इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में 'श्री पूरण साहेब'।

२. परम पूज्यवर्य श्री रामस्वरूप साहेब के कथनानुसार यह समाधि श्री हंस साहेब की है जो श्री पूरण साहेब के शिष्य थे।

होती है। अतः यहां की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत है। यहां पारख सिद्धान्त के ग्रन्थों की रचना तथा प्रकाशन बराबर चलता रहता है। मन्दिर में बारहों महीने बीजक, पंचग्रंथी आदि सैद्धातिक ग्रंथो की पढाई होती रहती है। यहां के गद्दी आसीन गुरु तथा संतजन भारत के विभिन्न क्षेत्रों एवं नेपाल में जाकर धर्म प्रचार करते हैं। यहां प्रतिवर्ष श्री पूरण साहेब के शरीरांत की तिथि अगहन कृष्ण तृतीया को विशाल सत्संग-प्रवचन-समारोह होता है। दो-तीन दिन तो काफी भीड़ होती है तथा सामान्य रूप से करीब एक महीना भंडारे एवं सत्संग चलते हैं। इस गद्दी पर वर्तमान में पूज्यपाद श्री रामस्वरूप साहेब विराजमान हैं तथा उनके मुख्य सहायक अध्यापक श्री गुरुशरण साहेब, श्री कुशल साहेब, श्री तरण साहेब आदि हैं।

१९

श्री विशाल साहेब बाराबंकी

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में श्री विशाल साहेब एक महान संत हो गये हैं जिनका निधन १९७७ ई० में हुआ है। आपके विषय में हम दूसरे अध्याय में लिख चुके हैं। आपके वेष एव बोधदाता सद्गुरु श्री रघुवर साहेब थे जो बाराबंकी जिले के ही पारखी संत थे और शायद काशी कबीरचौरा शाखा से संबंधित थे। हम इस पर विचार कर आये है कि विशालदेव अपने वैराग्य, तप, ज्ञान, एकांत सेवन एवं प्रतिभा के बल पर इस युग में केवल कबीरपंथ के ही नहीं, किंतु सभी के लिए प्रेरणास्रोत थे। आपके निवास के लिए भारत तथा नेपाल मे करीब पचास कुटियां बनायी गयी, जिनमें मूजापुर (बाराबंकी) आपकी समाधि-भूमि, मुस्तफाबाद (खीरी), काठमाण्डो (नेपाल), करजोदा, डूगरगढ़ (कोटा, राजस्थान) आश्रम के रूप मे बदल गये है।

बाराबंकी, लखनऊ, उन्नाव, सीतापुर, बहराइच, खीरी-लखीमपुर, कोटा तथा काठमाण्डू आदि के गृहस्थ-समुदाय आपसे प्रभावित तथा शिष्य हुए और भारत के विभिन्न क्षेत्रो के भक्तो, संतो के दिलो मे आपके प्रति आकर्षण बढ़ा। इसके अतिरिक्त आपके विरक्त शिष्यो का एक खासा मंडल तैयार हुआ, जिनमें श्री प्रेम साहेब, श्री बल्देव साहेब, श्री चेतन साहेब, श्री वासुदेव साहेब, श्री निराश साहेब, श्री सुसंग साहेब, श्री आज्ञा साहेब, श्री परमार्थ साहेब, श्री क्षमा साहेब, श्री गुरुमन साहेब, श्री उत्साह साहेब आदि मुख्य हैं।

यहां श्री विशाल देव से लेकर उनके शिष्य श्री प्रेम साहेब तथा अन्य संतों ने अच्छे-अच्छे ग्रंथों की रचना की है जो प्रकाशित एवं प्रचारित हैं तथा समय-समय से नयी-नयी रचनायें भी निकलती रहती हैं। विशालदेव की निधन तिथि फाल्गुन कृष्ण ६ को मूंजापुर तथा काठमांडो में सत्संग-समारोह होता है और मुस्तफाबाद में जेष्ठ कृष्ण पंचमी से अष्टमी तक। बाराबंकी का पारखी संत मंडल स्वाध्याय, साधना, धर्मप्रचार आदि के द्वारा एक बहुत बड़े क्षेत्र को प्रभावित कर रखा है। मुस्तफाबाद का कबीरमठ आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न है। अब विशालदेव तथा श्री प्रेम साहेब के ग्रंथों के प्रकाशन करने में भी यह मठ सामने आ रहा है।

२०

पारख मंडल काठमाण्डो

इस चालू ईसा की बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में काठमाण्डो में कबीर-पंथ के एक प्रचारक श्री अनुरागदास जी थे, जिन्होंने काठमाण्डो के ब्राह्मण, क्षत्रिय घरानों के सैकड़ों युवक-युवतियों को कबीर साहेब के विचारों एवं सिद्धान्तों की ओर प्रभावित तथा स्वयं दीक्षित किया था, जिनमें वहां आज के प्रसिद्ध संत एवं भक्त है। जैसे श्री रामस्वरूप साहेब (बुरहानपुर), श्री संत-शरण साहेब, श्री आज्ञा साहेब, श्री शांति साहेब, श्री सत्यपाल साहेब, भक्तराज श्री प्रेम बहादुर थापा, श्री नेत्रबहादुर थापा, श्री मीनबहादुर थापा आदि। ये तथा सैकड़ो लोग प्रथम दीक्षा श्री अनुरागदास जी से ही पाये थे।

यह वह जमाना था, जब नेपाल राज्य, विशेषकर काठमाण्डो में तथा-कथित अवैदिको को वहां धर्म प्रचार करने मे छूट न थी। यह शायद किसी पुरोहित द्वारा प्रेरित विचार था जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया था। वेदान्ती संन्यासी एवं ब्राह्मण को छोड़कर वैष्णव, आर्य-समाजी, कबीरपथी आदि के लोग अवैदिक कहे जाते थे। ये लोग अपना प्रचार वहां नही कर सकते थे। यदि प्रचार करते पकड़े जायं, दंडित तक किये जाते थे। पीछे से किसी पडित के सुझाव से वैष्णवों को वैदिक मानकर उन्हें छूट दी गयी थी। बाकी पर प्रतिबंध था।

श्री अनुरागदास जी के निवास के एक एकांत कक्ष में भक्त लोग इकट्ठे होते थे। सभी प्रायः संभ्रांत घराने के रहते थे। श्री अनुरागदास जी इन

सबको नित्य अपना प्रवचन सुनाते थे। नये-नये लोग इस मंडल में दीक्षित होते जाते थे और इनका एक बड़ा समाज बन गया था।

राजा को इस बात का पता लग गया। उसने एक गुप्तचर भेजा। वह श्री अनुरागदास जी का शिष्य बनकर उसके पास ही रहने लगा और महीनो रहकर वहां की गतिविधि लिख लिया तथा वहां से दो हस्तलिखित पुस्तके चुराकर चला गया। सारा रेकार्ड राजा के सामने रखा गया। उस पर संबंधित विभाग ने अध्ययन किया और वह कबीरपंथ का कोई दोष नही पाया।

राजा ने एक किसी बड़े तथा अनुभवी अधिकारी को श्री अनुरागदास के पास भेज कर उनकी जांच करने को कहा। वे अधिकारी श्री अनुरागदास के पास आकर बहुत प्रभावित हुए और जाकर राजा से कहा कि महात्मा बड़े अच्छे है। मेरा तो स्वयं का मन कहता था कि मै वही रह जाऊं। फिर राजा की तरफ से कबीरपंथ के प्रचार के लिए छूट हो गयी और उसका अवाध-गति से प्रचार बढ़ने लगा और राजघराने तक के अनेक लोग शिष्य हो गये।

इस समय कबीरपंथ पारख सिद्धान्त के काठमांडो में मुख्य तीन गुरु हैं—श्री रामस्वरूप साहेब, श्री संतशरण साहेब तथा श्री आज्ञा साहेब जो बुरहानपुर तथा बाराबंकी से संबंधित हैं। तीनों के अलग-अलग मठ हैं और उनके प्रचार क्षेत्र भी। यहां कबीरपंथ में अधिक ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ग ही दीक्षित हैं। वैसे फाटक तो सबके लिए खुला है।

श्री रामस्वरूप साहेबजी द्वारा श्री काशी साहेब के तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक ग्रंथ का नेपाली भाषा मे 'यथार्थ बोध' नाम से अनुवाद हुआ है।

श्री संतशरण साहेब, श्री आज्ञा साहेब तथा श्री नेत्रबहादुर थापा की नेपाली भाषा में पारख सिद्धान्त पर अनेक रचनायें भी हैं। श्री नेत्रबहादुर ने तो पूरे बीजक को नेपाली भाषा में छंदोबद्ध किया है जो छप चुका है तथा श्री आज्ञा साहेब ने उसकी टीका की है यह भी प्रकाशित है।

२१

श्री कबीर मंदिर अजगैबा व खलीलाबाद

ठट्टा नामक स्थान पर एक कबीर कुटी थी। वहां के महंत श्री अगरदी साहेब थे। उनके योग्य शिष्य श्री राम साहेब ने वहां से आकर गोरखपुर

जिले की आमी नदी के तट अजगैबा नामक घाट पर एकांतवास की दृष्टि से से रहना शुरू किया। वह स्थान उस समय जंगल था। वहीं पीछे उनके लिए लोगों ने झोपड़ी रखी। श्री राम साहेब के प्रभाव से वहां के आस-पास के लोग श्रद्धालु हो गये। प्रचार बढ़ता गया। उन्हीं के शिष्यों में श्री निर्मल साहेब हुए जिनकी रचनाओं का संग्रह आज 'निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर' नाम से प्रसिद्ध है।

श्री राम साहेब के शिष्यों में ही श्री सुखसागर साहेब हैं जो अजगैबा आश्रम के पुराने महन्त हैं और आज (१९८० ई० में) भी विराजमान हैं। इसी अजगैबा आश्रम की शाखा खलीलाबाद बाजार में है, जो बस्ती जिले में पड़ता है। यहां का प्रभाव कई जिलों के विभिन्न क्षेत्रों में फैला है।

२२

श्री कबीर मंदिर बड़हरा

इस बीसवीं शताब्दी के शुरू में बड़हरा आश्रम की नींव पड़ी है। जैसे मैंने दूसरे अध्याय के 'श्री रामसूरत साहेब' के संदर्भ में चर्चा की है कि सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब के गुरु श्री विवेक साहेब एक प्रतिभावान वैष्णव संत थे और उन्होंने ही बड़हरा आश्रम की स्थापना की थी। उसके बाद गुरु-शिष्य पारख सिद्धान्त की पुस्तकें पढ़कर कबीर साहेब के विचारों की ओर आ गये, तथा उसके बाद श्री लाल साहेब द्वारा श्री रामसूरत साहेब बीजक-पंचग्रंथी पढ़कर सक्रिय रूप में आगे बढ़े। यहां की मुख्य दो शाखायें अयोध्या तथा इलाहाबाद हैं और छोटी-छोटी कई हैं, जैसे—मुहम्मद नगर (बस्ती), खरहना, धानेपुर (गोंडा), कर्मा, (फैजाबाद), मिरदासपुर (सुल्तानपुर), दर्री, करहीभदर, भैंसमूड़ी आदि (छत्तीसगढ़)।

बड़हरा समाज के मुख्य संत हैं श्री संतोष साहेब, श्री निर्बंध साहेब, श्री विमल साहेब, श्री निहाल साहेब, श्री निर्भय साहेब, श्री गंगा साहेब, अभिलाष दास (लेखक), शरणपाल दास आदि।

बड़हरा समाज में बीजक तथा बीजक संबंधी ग्रंथों की पढ़ाई, अन्य भारतीय दर्शनों की जानकारी तथा साधुओं के शिक्षण होते रहते हैं। यहां से पारख प्रकाश त्रैमासिक पत्र तथा अनेक पुस्तकें निकलती हैं।

बडहरा में कभी-कभी कार्यक्रम होते हैं। अयोध्या में रामनवमी, श्रावणपूर्णिमा तथा कार्तिक पूर्णिमा को तथा इलाहाबाद में कुवार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं शरद पूर्णिमा तथा कबीर जयंती जेष्ठ पूर्णिमा को। यहां की साहित्यिक सेवा में सभी संत-भक्तो का हार्दिक योगदान है, किंतु साधु शरणपाल दास, भक्तराज शंकर दास (मोहम्मद नगर, बस्ती) तथा प्रेम प्रकाश गुप्ता (कलकत्ता) इसके मुख्य रीढ़ हैं। अब भक्तराज माथाभाई (नानाअमादरा गुजरात] भी इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं तथा व्यवस्था की दृष्टि से कमल सिंह (दर्रा,रायपुर) तथा रामलाल (बभनान, बस्ती) की सेवायें प्रशंसनीय हैं।

बड़हरा के समाज तथा साहित्य के विकास का कुल समय अभी (१६८० ई० मे) २०-२५ वर्षो का है। यह अपनी विनम्र सेवायें समाज के सामने पेश कर रहा है जो अनेक त्रुटियो से भरी होंगी। यह अभी बहुत कोमल पौधा है। यह तो भविष्य ही देख सकेगा कि यह प्रौढ़ होकर पुष्पित-पल्लवित हुआ और शतसहस्त्र के रूप मे फैल गया है या सूखकर नष्ट हो गया।

२३

कबीरपंथ का क्षेत्र

कबीर तथा कबीरपंथ का केन्द्र अवश्य उत्तर प्रदेश रहा, परन्तु कबीर-पंथ का व्यापक प्रचार मध्य भारत में है। वैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र मे कबीरपंथियों की सख्या अधिक है। मद्रास, आसाम, बंगाल, पजाब, ट्रावनकोर, कोचीन, कश्मीर मे कम है। परन्तु अब इन क्षेत्रो में भी प्रचार बढ़ता जा रहा है।

बनारस में कबीरचौरा मठ है ही, लहरतारा में दो मठ एक कबीर-चौरा का तथा दूसरा खरसिया का है। कबीर कीर्ति मन्दिर, कबीर हनुमत पुस्तकालय मन्दिर, कबीर पारख मन्दिर, कबीर मन्दिर शिवपुरी (बनकटा) आदि यहां कई कबीरपंथी मठ है। बंबई, हरिद्वार, सहारनपुर, लखनऊ, कान-पुर, झासी, खुर्जा, बुलन्दशहर, अलीगढ़, आगरा, गाजीपुर, नीमसार, अयोध्या, इलाहाबाद, पानीपत, दिल्ली आदि में कबीरपंथ के मठ है। कही-कही एक से अधिक है। बड़ौदा, अहमदाबाद, सूरत आदि एक-एक शहर मे कबीरपंथ के कई-कई मठ हैं। बिहार तो कबीरपथी मठो का गढ़ है। यहां अनेक मठ बहुत सम्पन्न है। धनौती, विद्दूपुर, लहेजी, मानसर, फतुहा, तुर्की, रुसड़ा, पर्वत्ता,

लक्ष्मीपुर डंगरहा, पूर्णिया, समस्तीपुर, पावा, दानापुर, दरभंगा, टाटानगर, मुजफ्फरपुर, खैरा, पटना आदि में कबीरपंथी मठ विद्यमान हैं। मध्य प्रदेश के कुदुरमाल, दामाखेड़ा, बुरहानपुर, रतनपुर, हटकेसर, खरसिया, बमनी, मंडला, उचेहरा, धमदा, परकोटा, कवर्धा, रायपुर, सागर, चांपा, जबलपुर, नागपुर, हरदी, भरतपुर, ग्वालियर, महासमुन्द, राजनांदगांव आदि में कबीरपंथी मठ हैं। गुजरात में अहमदाबाद, बड़ौदा, खंभात, सूरत, नड़ियाद, भड़ौच, जामनगर, राजकोट, जूनागढ़ मे अनेक कबीरपंथी मठ तो है ही। भारत के अन्य शहरों, प्रदेशों के जिलों में, देहाती क्षेत्रों में कबीरपंथी मठ फैले है, जिनकी खोज करना एक बहुत बड़ी मेहनत, खर्च और समय का काम है। पाकिस्तान के करांची, लाहौर तथा पंजाब से लेकर गोहाटी, बंगाल, जगन्नाथपुरी एवं दक्षिणी भारत तक कबीरपंथी मठ फैले हैं। विदेशों में ट्रीनीडाड (अमेरिका), दक्षिण अफ्रीका, फीजी, लंका, मारीशस, ब्रिटिश गायना, डेमरारा, बर्मा, भूटान, नेपाल, फारस, काबुल और अरब[1] में भी कबीरपंथी मठ विद्यमान है तथा उनका कार्यक्षेत्र सक्रिय है।

बीसवी सदी की शुरुआत में उत्तरी भारत में दश लाख कबीरपंथी बतलाये गये थे। तब से इन असी (८०) वर्षों के बीच इसका प्रचार क्षेत्र बहुत ज्यादा बढ़ा है। यह ध्यान देने योग्य है कि कबीरपंथी भक्त-गृहस्थ सरकारी जनगणना के समय अपने सहज स्वभाव से अपने को हिंदू मात्र लिखा देते हैं। वे कबीरपंथी प्राय: कम लिखाते हैं। कोई हजारों में एक मुसलमान कबीरपंथी होगा, तो वह अपने को मुसलमान लिखा देता है। कबीरपंथ के अन्दर कबीरपंथ को धर्म के रूप में व्यक्त करने की व्यवस्था अभी नहीं हो पायी है। यदि सभी कबीरपंथियों की गणना हो सके, तो भारत में उनकी संख्या करोड़ों में होगी। मात्र गोरखपुर, इलाहाबाद तथा लखनऊ के बीच में अनुमानन एक हजार से अधिक कबीरपंथी साधु होंगे, जिनमें सत्तर प्रतिशत पारखी होंगे। संख्या इससे अधिक हो सकती है, कम नहीं। गृहस्थ कबीरपथियों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

२४

उपसंहार

कबीरपंथ की अन्य सभी शाखायें विरक्त एवं त्यागी हैं और उनमें सभी निहंग एवं ब्रह्मचारी होते हैं। केवल वंशपरम्परा की शाखा ही गृहस्थ है जिसमें

१. डा० केदारनाथ द्विवेदी, कबीर और कबीरपंथ, पृष्ठ २०६।

गद्दीनशीन मुख्य गुरु ही वैवाहिक जीवन वाला होता है। परन्तु उनमें भी अब खरसिया शाखा अपना वंश बयालिस का नाम रखते हुए भी विरक्त है।

कबीरपंथ में दो ढङ्ग के लोग हैं एक विरक्त तथा दूसरे गृहस्थ। सन्त-गुरु विरक्त हैं जिनकी संख्या अपेक्षया बहुत कम है और भक्त गृहस्थ हैं जो अधिकतम है। गृहस्थ कबीरपंथी ही करोड़ों में होंगे, विरक्त तो हजारो में ही होगे।

वंशपरम्परा की शाखा में योग-भोग साथ-साथ होने से उसमें भरती कराना लोगों को सरल लगा। परन्तु यह भुलाया नही जा सकता कि मुख्य गद्दीनशीन के अतिरिक्त उनमें भी विरक्त सन्त और महंत होते हैं। पौराणिक मान्यता, कबीर साहेब की ईश्वरता, मृत्यु के बाद सत्लोक में पहुंच कर सभी प्रकार के आनन्द भोगने की आशा; चमत्कार आरोपित वंशगुरुओं के जीवन; कर्मकांड तथा अतिमहिमा के कारण इस परम्परा के प्रति जनता का आकर्षण अधिक हुआ। इस परम्परा में विद्वान, यथार्थज्ञानी, त्यागी, तपस्वी एवं ब्रह्मचारी साधक, सन्त भी आये। इस शाखा वाले देश-विदेश में घूम-घूमकर प्रचार करने का भी खूब प्रयास किये और इन्होंने अपनी मान्यताओं को फैलाने के लिए पुस्तकों की एक अतुल राशि भी तैयार की। इस शाखा में पहले के अनेक लेखकों ने दोहा, चौपाई एवं छन्दों में सद्गुरु कबीर साहेब तथा धर्म साहेब के संवाद के रूप में अनेक ग्रन्थो की रचना की। पीछे स्वामी परमानन्द ने कबीरमंशूर लिखकर तथा स्वामी युगलानन्द भारत पथिक ने कबीर की वाणी और कबीरपंथी पुस्तकों का सम्पादन एवं प्रकाशन कर बहुत बड़ा काम किया। स्वामी युगलानन्द भारत पथिक ने भारत में कबीर साहेब के नाम पर मिलने वाली वाणियों का बहुत बड़ा संग्रह किया तथा वंशपरम्परा की बहुत सारी पुस्तकों का सम्पादन कर 'वेंकटेश्वर प्रेस बंबई' में छपाया और उसके लिए उन्होंने घोर तपस्या की एवं कठिनाइयो का सामना किया। ऐसे साहित्य-सेवी महापुरुष ही समाज के लिए वरदान सिद्ध होते है। इस प्रकार वंश-परम्परा शुरू से ही आशातीत सफलता की ओर बढ़ती रही।

किसी भी परम्परा को जब अधिक सफलता मिलती है, तब उसमें घमंड आना स्वाभाविक बात है। यह निर्विवाद है कि कबीरपंथ की विभिन्न शाखाओं में से वंशपरम्परा को सर्वाधिक सफलता मिली; अतएव उसने अन्य शाखाओं तथा उनके मुख्य गुरुओ को हेय दृष्टि से देखने एवं चित्रित करने की चेष्टा की और अपनी शाखा को ही पथ का केन्द्र घोषित करने का प्रयास किया। फल यह हुआ कि दूसरो द्वारा इस पर कुछ-न-कुछ प्रतिक्रिया हुई। यह केवल कबीरपंथ की ही स्थिति नही है। इस प्रकार की घटना वेदांती,

वैष्णव, जैन, बौद्ध, इस्लामी, यहूदी, इसाई आदि सब में पायी जाती है। यह 'घमंड राजा' तो सभी परम्परा के कपार पर आ विराजता है। इससे व्यक्ति बच सकता है, समाज एवं परम्परा नहीं, क्योंकि उसमें हर कोटि के लोग होते हैं। हां, यह अन्तर अवश्य होता है कि कहीं घमंड की मात्रा कम होती है और कहीं अधिक तथा कहीं तो बहुत अधिक। यहां तो विचार कबीरपंथ पर चल रहा है। कबीरपंथ की कोई भी शाखा अपने आपको पूरे कबीरपंथ का आचार्य मान बैठे, यह गलत बात है। पूरे पंथ के आचार्य कबीरदेव हैं, अतः पंथ की हर शाखा का अहंकार उन्हीं में विलीन होना चाहिए।

सद्गुरु कबीरदेव एक ऐसे निराले संत थे, जो मजहब, सम्प्रदाय, पन्थ, बाह्योपचार, संस्कार, देश, प्रदेश, लोक एव वेद से परे केवल पारदर्शी यथार्थता के आचरण और प्रवचनकर्ता थे। उनकी रहनी, करनी और कथनी मे एकता थी। जो ऐसे महान पुरुष का अनुगामी होने का दम भरता हो, उसे बहुत उदार होना चाहिए। यह ठीक है कि सामूहिकता की व्यवस्था के लिए सम्प्रदाय एवं पन्थ का बन जाना प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है; परन्तु उदार पुरुष यह समझता है कि पन्थ एवं सम्प्रदाय केवल विभिन्न मर्यादायें हैं; सत्य तो सबके ऊपर है।

विश्व के समस्त कबीर-अनुयायियों के परम आचार्य एवं परम सद्गुरु कबीर साहेब हैं। बीच मे चाहे कितने आचार्य हो जायं, परन्तु वे अपने आप में निरालंब एव स्वतंत्र नही हो सकते। उन सबका स्रोत कबीरदेव में ही मिलेगा। अतएव शाखा के आचार्यत्व पर न जोर दे कर कबीरदेव के आचार्यत्व पर जोर देना चाहिए। फिर उसके बाद के मुख्य गुरुजन श्री श्रुतिगोपाल साहेब श्री जागू साहेब, श्री भगवान साहेब, श्री धर्म साहेब आदि के प्रति समस्त कबीरपंथियो की समान गुरुबुद्धि होनी चाहिए। अर्थात समस्त कबीरपंथियों के लिए ये समस्त महान पुरुष समान सद्गुरु हैं। इसके बाद तो भारतीय परम्परा के समस्त नये-पुराने गुरुजन एवं विश्व के समस्त परमार्थ-पथ-पथिक महापुरुष गुरुवत आदर करने योग्य हैं। कबीरदेव के अनुयायियो को जहा केवल पूरी मानवता को ही नही, जीव मात्र को अपना स्वरूप मानकर उनके प्रति प्रेम का बर्ताव करना है; वहां वे यदि अपने पन्थ की विविध शाखाओं के प्रति उदार एवं भक्ति सम्पन्न न हो सकें तो वे कबीरदेव को कहां समझे।

संसार के जितने महापुरुष हुए—सनत्कुमार, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शकराचार्य, रामानुज, कबीर, नानक, दयानन्द, विवेकानन्द आदि—कोई गद्दी सजाकर नही बैठे। ये सब जीवनपर्यन्त सत्य के लिए क्राति की

ध्वजा लिये जूझते रहे। इनके कितने अनुयायी गद्दी के इतने रागी तथा अहंकारी हो जाते हैं कि गद्दी के आड़ में उन्हें सत्य दिखता ही नही। 'मेरी गद्दी बडी, तेरी गद्दी छोटी, मैं मूल, तू शाखा, मेरा आचार्यत्व पूर्ववर्ती तथा श्रेष्ठ, तेरा परवर्ती और छोटा, मैं बड़ा मंडलेश्वर, तू छोटा मंडलेश्वर'—इसी अहंकार में कितने गद्दीधारी चूर रहते हैं। लकड़ी और रूई-कपड़े की गद्दी तथा महन्त, आचार्य, महामंडलेश्वर आदि कुछ शब्द रूपी वायु के झोके बड़े- बड़े गद्दीधारियों को विमोहित कर रखे हैं। कितने बड़े-बड़े गुरु यही कहते हैं कि धन, मकान, परिवार, प्रतिष्ठा नाशवान हैं; परन्तु वे अपने शिष्य, परंपरा, मठ, गद्दी और पूज्यता को अजर-अमर ही माने बैठे रहते हैं। वे अपने सामने दूसरों को तुच्छ गिनते है। किन्तु ससार के विवेकवान गुरुजन सारे अहंकारों से रहित परमार्थ-परायण होते है।

संत-गुरुजनों की विशेषता के मानदंड उनके सत्यज्ञान, दिव्य आचरण, ब्रह्मचर्य, वैराग्य, परहितैषिता आदि हैं, न कि कोई पदवी व मठ, धन, गद्दी, विद्या आदि। संसार के गुरुजन अपने पवित्र आचरण एवं दिव्यज्ञान से ही समाज को प्रेरणा देते हैं, धन, मठ, गद्दी एवं घमंड से नही। संसार के जीव राग, द्वेष, अहकार, घृणा आदि विकारों में जल रहे है। उनके पास इन विकारो की कमी नही है। वे तो संत-गुरु समाज से शाति का पथ चाहते हैं। सच्चे धर्म एवं अध्यात्म की सुगंधी जिन गुरुजनों के द्वारा संसार मे फैली है वे घमण्डी नही, किन्तु ज्ञान एवं सदाचार के समुच्चय थे और हैं। हम तीसरे अध्याय के 'गुरुतत्व' संदर्भ में देख आये है कि गुरुपद बड़ा उच्च है। वह गद्दी, महन्ती, महामडलेश्वरत्व और आचार्यत्व के मोह से सर्वथा रहित विनम्रता, ज्ञान, वैराग्य तथा समता का स्वरूप है।

आज भी कबीरपन्थ की हर शाखा में विवेकवान त्यागी, सदाचारी, विद्वान संत पुरुष विराजमान है। वे चाहे तो सब संगठित होकर कबीरदेव के निष्पक्ष ज्ञान की लहर पुनः भारत ही में नही विश्व मे फैला सकते है। आज मठ और गद्दी तथा महन्त और आचार्य के तुच्छ शब्दो के झोके में उड़ने का अवसर नही है। कबीरदेव जीवनपर्यन्त सत्य के प्रकाश फैलाने में संघर्ष-रत रहे है। हम उनकी संतान होकर गद्दी, महन्ती, आचार्यत्व, पूजा, आरती, वन्दना पाने और करवाने की भूख मे पड़े रहे, तो हम क्या कर सकते है?

लोक-प्रचलन के अनुसार भारत में कबीरपन्थ एक धर्म के रूप में विद्यमान है। कबीरपन्थ के संत-भक्त जन एकजुट होकर उसे व्यवस्थित रूप दे सकते हैं, कबीर साहेब के बताये हुए लोकोपकारी ज्ञान का व्यापक रूप में

प्रचार कर सकते हैं। कबीरपन्थ एक समृद्ध तथा बहुव्यापी परम्परा है। यदि वह अपने आप में जग जाय, तो विश्व के सामने लोकमंगल कार्य का एक वृहत्तम रूप उपस्थित कर सकता है। कबीर जैसा विश्व-प्रसिद्ध संतसम्राट एवं निराले सद्गुरु को पाकर उसे आगे बढ़ने में ही शोभा है।

अपने तुच्छ स्वार्थ तथा मिथ्या अहंकार को भूलकर तथा परस्पर के द्वेष-भाव एवं पक्षपातपूर्ण कटु आलोचना को सर्वथा छोड़ कर विचारों की भिन्नता होते हुए भी सद्गुरु कबीर के झंडे के नीचे पूरे कबीरपन्थ को एकजुट होना ही होगा। इसके पश्चात उसका परम कर्तव्य होगा कि वह अपने उदार प्रेम में पूरी मानवता को आत्मसात करे और कबीरदेव के उज्ज्वल ज्ञान को आधुनिक विधा से प्रचारित करे।

पांचवां अध्याय समाप्त

६

कबीर और कबीरपंथ से प्रभावित अन्य संत और मत

सद्गुरवे नमः

कबीर-दर्शन

छठवां अध्याय

कबीर और कबीरपंथ से प्रभावित अन्य संत और मत

१

प्रस्तावना

कबीरदेव ने जो आन्दोलन चलाया, उसकी सामूहिकता को संतमत कहते हैं। संतमत के अग्रगण्य एवं प्रवर्तक कबीरदेव ही हैं। इनके पीछे सतों का एक विशेषदल तैयार हो गया। संतमत का लक्षण यह है कि वह अवतार-वाद, मूर्तिपूजन, कर्मकांड आदि को नहीं स्वीकार करता। वह वर्णाश्रम, जात-पांत, तीर्थादि को प्रश्रय नही देता। वह वेद आदि किसी शास्त्र को ईश्वरवचन नही मानता। वह सदाचार तथा आत्म-परमात्म परायण रहकर खुले वाता-वरण का परिपोषक है। आजकल भारत में संतमत का ही धार्मिक राज्य सम-झना चाहिए। यहां सतमत का अभिप्राय किसी संप्रदाय विशेष का सूचक नहीं है जैसे कि आजकल बिहार में चल रहा है; अपितु यह कबीरदेव तथा कबीर-पन्थ से लेकर हरिदास, नानक, दादू, बावरी, दरिया, पलटू, प्राणनाथ, किना-राम, राधास्वामी आदि मे बहती हुई विशाल आध्यात्मिक धारा का सूचक है, जिनकी संक्षिप्त सूची इस अध्याय मे दी जा रही है।

२

भक्त सूरदास व मीराबाई

ये दोनों श्री कृष्ण के उपासक थे। अतः विशेष रूप में इन्हें सतमत में नहीं गिन सकते। किन्तु सूरदास के कुछ ऐसे पद हैं जिन पर कबीर साहेब की स्पष्ट छाप है तथा 'आपन पौ आपुहि बिसर्‌यौ' जो बीजक का ७६वां शब्द है सूरदास जी की वाणी में ज्यों का त्यों है। मीराबाई के गुरु रैदास थे ही—यह उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है और मीराबाई के कुछ पदों में ऐसे भाव हैं जैसे "पिंड का रहस्य' और 'त्रिकुटी महल' आदि जो कबीर साहेब के लगते हैं। अतएव आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इन दोनों पर कबीर साहेब का आंशिक प्रभाव माना है[1]। सूरदास का जीवन काल वि० सं० १५४०-१६२० तथा ईसा १४८३-१५६३ माना गया है। मीराबाई का वि० सं० १५५५-१६०३ तथा ईसा १४९८-१५

३

श्री हरीदास जी तथा निरंजनी संप्रदाय

कहा जाता है कि राजस्थान में ईसा की सोलहवीं शताब्दी में श्री हरीदास जी एक अच्छे संत हुए हैं जिनके विचारों के विस्तार रूप में 'निरंजनी

१. "रे मन आपु कौ पहिचान।
सब जनम तै भ्रमत खोयो, अंजहुं तौ कछु जानि॥
ज्यों मृगा कस्तूरि भूलै, सुतौ ताके पास।
भ्रमत ही वह दौरि ढूंढै, जबहि पावै वास॥"
"जौं लौं सतस्वरूप नहिं सूझत।
तौ लौं मृगमद नाभि बिसारै, फिरत सकल बन बूझत॥"
"आपन पौ आपुहि बिसरयौ।
जैसे श्वान कांच मन्दिर में, भ्रमि भ्रमि भूकि मरयौ॥"
"आपन पौ आपहुं में पायो।
सब्दहि शब्द भयो उंजियारो, सतगुरु भेद बतायो॥"
(सूर रत्नाकर, काशी ना० प्र० सभा।
उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ३३०)

सम्प्रदाय' चला। इन्होंने कबीरदेव के कठिन पंथ का किसी-न-किसी प्रकार अनुसरण किया—यह बात वे स्वयं स्वीकार कर रहे हैं।

जन हरिदास आनन्द इहै, अपना मन परमोधि।
करड़ा पथ कबीर का, सो हम लीया सोधि[1]।।

इस परम्परा का डीडवाणा एवं जोधपुर कडल में स्थान है तथा करीब इनमें चौदह पीढ़ियां बीत गयी हैं।

४
श्री नानकदेव तथा उनका पंथ

आपका जीवनकाल सन १४६६-१५३८ ई० है। आपका जन्म लाहौर शहर के दक्षिण-पश्चिम कोई पैतालीस किलोमीटर की दूरी पर तलवंडी नामक ग्राम में हुआ। आपके माता-पिता के नाम कालूचंद एवं तृप्ता थे। आप शुरू से ही एकांत प्रेमी थे। कहा जाता है आपको कभी-कभी एकांत में किसी संत के दर्शन हुए और आपका विचार ज्ञान में रमने लगा। आपके दो पुत्र थे और पत्नी। परन्तु आप इनके प्रति अनासक्त थे। आपने पूरे भारत तथा अरब, लंका आदि का भ्रमण किया और अपने को 'न मैं हिन्दू और न मैं मुसलमान' कह कर उपदेश किया। आपकी रची पुस्तकें जपुजी, असादी-वार आदि कई हैं जो गुरुग्रंथ में संग्रहीत है। आप अपने अंत समय में अपने पुत्र को न स्वीकार करके एक योग्य शिष्य 'लहिना' को 'अंगद' नाम रख कर तथा उन्हें गुरुगद्दी पर बैठाकर और उनके सामने पांच पैसे तथा नारियल चढ़ाकर अपना सिर झुका दिया। इस प्रकार अपने शिष्य को अपनी गुरुगद्दी दे दी। इस परंपरा में नानकदेव के बाद गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु राम-दास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु हरगोविन्दसिंह, गुरु हरराय, गुरु हरकृष्ण राय, गुरु तेग बहादुर, गुरु गोविन्दसिंह गुरु हुए। इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह गुरुग्रन्थ को गुरु बता कर आगे गुरु परम्परा तोड़ दी। परिस्थितिवश यह धार्मिक मत राजनीतिक भी बन गया।

इसमें आगे चलकर उदासी, निर्मला नामधारी, सुथराशाही, सेवा पंथी, अकाली, भगतपंथी, गुलाबदासी,[1] निरंकारी, मीनापंथ, रमैया पथ, हृंदली आदि अनेक सम्प्रदाय हुए।

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ३५०।

१. गुलाबदासी ईश्वर की भावना में वैसी आस्था नहीं रखते न इसकी कोई आव-श्यकता समझते हैं। (उ० भा० की संत पर० पृष्ठ ४३१)

कहा जाता है गुरु नानकदेव को सद्‌गुरु कबीर के दर्शन हुए थे। उनसे आपको प्रेरणा मिली थी। कुछ विद्वानों की राय है कि आप कबीरदेव से दीक्षित भी हुए[२]।

५

श्री दादूदयाल और उनका पंथ

श्री दादूदयाल एक प्रसिद्ध गृहस्थ संत हुए हैं। इनका जन्म-स्थान कोई अहमदाबाद (गुजरात) तथा कोई जौनपुर (उत्तर प्रदेश) बतलाता है। कोई निश्चय नहीं है। इनका समय वि० स० १६०१-१६६० तथा ईसा १५४४-१६०३ बताया जाता है। इनका निधन नराणे (नारायण ग्राम) राजस्थान में हुआ, जहां इनकी समाधि है। दादूपथ वालो का यह मठ तीर्थ स्थल है। यहां फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी को मेला लगता है। यहां दादूदयाल जी के 'बानी ग्रंथ' की पूजा होती है। दादूपथ मे गृहस्थ भक्त तथा विरक्त साधु—दोनों है।

ये बड़े योग्य पुरुष थे। इनके १५२ शिष्य बताये जाते हैं। इनके प्रमुख शिष्य हैं—रज्जब, सुन्दरदास, गरीबदास, प्रागदास, जगजीवनदास आदि। ये सुन्दरदास वही प्रसिद्ध संत-कवि है जिनकी सवैया-कवित्त उत्तरी भारत मे प्रसिद्ध है। इसी पंथ मे विचार सागर के लेखक निश्चल दास हुए है, जो हिसार जिले के थे। 'राघोदास' जिनका एक 'भक्तमाल' ग्रथ हैं और जिसमे षड्‌दर्शन के साथ ७१ संतो एवं भक्तों का परिचय दिया है, ये भी दादूदयाल के प्रशिष्य थे। इस प्रकार दादूपथ एक समृद्ध पथ दिल्ली-पंजाब की तरफ है। दादूदयाल ने सद्‌गुरु कबीर के प्रति बड़ी भक्तिभावना उपस्थित की है। वे कबीर साहेब के प्रति अनन्य भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

जेथा कत कबीर का, सोई वर वरिहू।
मनसा वाचा कर्मना, मै और न करिहू[१]॥

२. सद्‌गुरु कबीर चरितम्, सर्ग ५६।
कबीरमंशूर, पृष्ठ ६३५ नानक शाह साहब।

१. दादूदयाल की वाणी, सबद कौ अंग ३४, पृष्ठ २७६।
(उ० भा० की संत पर० पृष्ठ ५२०)

६
बावरी पंथ

कहा जाता है कि गाजीपुर जिले के पटना नामक गांव में, जो रेलवे स्टेशन औड़िहार के पश्चिम ओर स्थित है, स्वामी रामानन्द नामक एक संत रहते थे, जो प्रसिद्ध रामानन्द से भिन्न थे। स्वामी श्री रामानन्द के शिष्य दयानन्द तथा उनके शिष्य मायानन्द थे। स्वामी मायानन्द ने अपने विचारों का प्रचार दिल्ली मे जाकर किया था। इन्ही श्री मायानन्द की शिष्या बावरी साहिबा थी जो एक महिला थी। इनका जीवनकाल वि० सं० १५६६-१६६२ एव ईसा १५४२-१६०५ माना जाता है[1]। बावरी साहिबा आध्यात्मिक ऊंचाई में पहुच गयी थी। इनके देहान्त के बाद इनके एकमात्र शिष्य बीरू साहेब गद्दी पर बैठे और ये दिल्ली मे उक्त गद्दी पर सत्सग चलाते रहने का कार्य करते रहे। बावरी साहिबा तथा उनके शिष्य श्री बीरू साहेब—दोनों की कुछ रचनायें मिलती हैं।

दिल्ली के कोई उच्च एवं शाही घराने के युवक यार मुहम्मद थे, जो श्री बीरू साहेब के शिष्य हो गये। इन्ही का नाम साधु होने पर श्री यारी साहेब पड़ा। कहा जाता है कि इनकी गद्दी परम्परा आज भी दिल्ली में चलती है। श्री यारी साहेब के मुख्य पांच शिष्य हुए—केशव दास, सूफीशाह, शेखनशाह, हस्तमुहम्मद तथा बुल्ला साहेब। इनमें के पहले वाले चार अपना कार्यक्षेत्र दिल्ली की तरफ रखे तथा पांचवें श्री बुल्ला साहेब गाजीपुर जिले के भुड़कुड़ा में एक स्थान कायम किये जो आज भी चल रहा है। श्री यारी साहेब की रचनायें 'रत्नावली' नाम से प्रसिद्ध बतायी जाती है। इनके शिष्य केशवदास की रचनाये भी गंभीर कही जाती हैं। इनके गुरुभाई सूफीशाह की रचनायें फारसी मिली भाषा में बतायी जाती है जो उनके उपनाम 'शाह फकीर' से प्रसिद्ध हैं।

कहा जाता है श्री बुल्ला साहेब पहले बुलाकीराम नाम से एक कुर्मी परिवार के बालक थे जो भुड़कुड़ा (जिला गाजीपुर) के निवासी थे। ये एक ठाकुर जमीदार के यहां हलवाही (नौकरी) करते थे। एक बार किसी मुकदमें में अपने मालिक के साथ दिल्ली गये। वहां कुछ दिन रहना पड़ा। बुलाकीराम को श्री यारी साहेब के मठ पर जाने का अवसर पड़ गया और ये उनके सत्संग से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये। दिल्ली से लौटकर

1. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ५४०।

इन्होंने नौकरी छोड़ दी और साधु जीवन व्यतीत करते हुए ये उच्च संत हो गये। इन्हें अब लोग बुल्ला साहेब कहने लगे। इन्होंने बाराबंकी के कोटवा गांव के जगजीवन नामक बालक को उपदेश दिया, जो आगे चलकर जग-जीवन साहेब के नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने सत्यनामी संप्रदाय चलाया।

इधर श्री बुल्ला साहेब के आध्यात्मिक ज्ञान से प्रभावित होकर उनका पहले का जमींदार मालिक उनकी शरण में आकर शिष्य हो गया। इन्हीं महापुरुष का नाम संत हो जाने पर श्री गुलाल साहेब पड़ा। एक जमींदार ठाकुर का अपने हलवाहे का शिष्य होना कोई मामूली बात नहीं है। परन्तु सच्चे ज्ञान का यही मतलब होता है कि वहां सारा भेद-भाव मिट जाता है। वहां न कोई मालिक है न नौकर, न ऊंचा है न नीचा। श्री गुलाल साहेब गाजीपुर जिले के बंसहरिया गांव के निवासी थे। जब से ये श्री बुल्ला साहेब के शिष्य हुए, भुड़कुड़ा उनका केन्द्र हो गया। श्री गुलाल साहेब की रचनायें भी प्रसिद्ध हैं। श्री गुलाल साहेब का गद्दीकाल वि० सं० १७६६-१८१७ तथा ईसा १७०९-१७६० है।

श्री गुलाल साहेब के दो मुख्य शिष्य थे—हरलाल साहेब तथा भीखा साहेब। हरलाल साहेब ने अपना कार्यक्षेत्र बलिया जिला चुना तथा भीखा साहेब भुड़कुड़ा गद्दी पर रहे। ये आजमगढ़ के बोहाना गांव के निवासी भीखा-नन्द चौबे के नाम से प्रसिद्ध थे, जो आध्यात्मिक भूख से घर छोड़ कर बनारस आदि भटके। अंततः भुड़कुड़ा में श्री गुलाल साहेब से संतुष्ट होकर उनके शिष्य हो गये। श्री गुलाल साहब के देहान्त हो जाने पर श्री भीखा साहेब गद्दी पर बैठे। इनका गद्दीकाल वि० सं० १८१७-१८४८ तथा ईसा १७६०-१७९१ है। श्री भीखा साहेब की बानी प्रसिद्ध है।

श्री भीखा साहेब के मुख्य दो शिष्य थे। श्री गोविन्द साहेब तथा श्री चतुर्भुज साहेब। ये दोनों ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे। श्री गोविन्द साहेब ने फैजाबाद जिले के अहरौला गांव में अपना स्थान चुना, जहां आज एक विशाल मठ स्थापित है तथा साल में एक बार अगहन शुक्लादशमी को उनकी समाधि पर विशाल मेला लगता है। इस स्थान का नाम भी गोविन्द साहेब हो गया है। दूसरे श्री चतुर्भुज साहेब भुड़कुड़ा गद्दी पर विराजमान हुए।

श्री गोविन्द साहेब के शिष्य श्री पलटू साहेब हुए जो अपनी परंपरा में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। श्री पलटू साहेब के तीक्ष्ण अनुभव, उत्कट वैराग्य एवं अद्भुत काव्य-रचना से उनकी ख्याति संत-जगत में खूब हो गयी। आप फैजाबाद जिला के जलालपुर गांव के एक वैश्य परिवार के बालक थे।

आपने विरक्त होकर श्री गोविन्द साहेब की शिष्यता स्वीकार करने के बाद अपना कार्यक्षेत्र अयोध्या चुना, जो आज भी 'श्री पल्टू साहेब का अखाड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है। आजकल भुड़कुड़ा की गद्दी पर श्री राम आसरे साहेब, गोविन्द साहेब की गद्दी पर श्री निहाल साहेब जो उसकी एक दूसरी शाखा केवटला के भी महंत हैं तथा श्री पल्टू साहेब के अखाड़ा पर एक विद्वान पुरुष श्री प्रभुदास साहेब शास्त्री विराजमान हैं।

इस परामपरा के प्रसिद्ध संत प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सद्गुरु कबीर के प्रति श्रद्धावान रहे है। कोई-कोई सत अपनी बानियो मे कबीरदेव का बडे भावपूर्वक नाम लिये हैं। श्री पल्टू साहेब ने भावविभोर होकर एक जगह कहा है ,'कबीर उलटि पलटू भये।"

७

श्री मलूक साहेब तथा उनका पंथ

मलूक साहेब ने इलाहाबाद जिला के कड़ा नामक ग्राम में वि० सं० १६३१ मे सुन्दरदास कक्कड़ खत्री के यहां जन्म लिया था। ये वह मलूक नही है जिन्होने कहा है कि "अजगर नौकरी नही करता तथा पक्षी काम नही करता, फिर भी वे खाने को पाते हैं। सबके दाता राम है[1]। कहा जाता है कि यह कहने वाले मलूक स्वामीरामानन्द के कोई शिष्य थे। फिर जिस प्रारब्ध दृष्टि से उन्होने सहज भाव से कहा है, उतने ही उथले में उसका अर्थ लेना चाहिए। उसको गंभीर नही बनाना चाहिए। कहा जाता है इनके पूर्व-पूर्व गुरुपुरुषोत्तम, देवनाथ, भावनाथ तथा बिट्ठलनाथ हैं। ये घर से विरक्त होकर देश भ्रमण, साधु सत्संग एवं सदुपदेश करते रहे, परन्तु अपना मुख्य स्थान इन्होने अपना जन्म स्थान 'कड़ा' ही चुना। इनके नाम से कई रचनायें प्रसिद्ध है। इनकी परम्परा में करीब बारह गुरु हो गये हैं। मलूक साहेब कबीरदेव के अत्यंत श्रद्धालु रहे, यह निर्विवाद है। वे कहते हैं—

कासी तजि गुरु मगहर आये, दोउ दीनन के पीर।
कोइ गाड़े कोइ अग्नि जरावै, नेक न धरते धीर॥
चार दाग से सतगुरु न्यारा, अजरों अमर शरीर।
दास मलूक सलूक कहत है, खोजो खसम कबीर॥

१. अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहत है, सबके दाताराम॥

८

बाबालाल दास तथा उनका संप्रदाय

कहा जाता है मालवा प्रांत के एक खत्री परिवार में बाबालाल दास का वि० सं० १६४७ तथा १५६० ई० में जन्म हुआ था। आप आध्यात्मिक खोज में लाहौर की तरफ निकल गये। किंतु बाबालाली संप्रदाय के लोग आपका जन्म लाहौर के कहीं पास ही वि० सं० १४१२ में बताते हैं। आपकी दीक्षा किसी चेतन स्वामी से हुई थी। बाबालाल दास विद्वान, वैराग्यवान तथा प्रतिभा के धनी संत थे। आप ने अपने बाइस (२२) प्रमुख शिष्यों के सहित पंजाब, काबुल, गजनी, पेशावर, गांधार, देहली, सूरत आदि भ्रमण किया।

शाहजादा दाराशिकोह ने जो ५० उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया था, कहा जाता है बाबालाल दास से सात बार मिलकर सत्संग किया था। बाबालालदास ने बहुत बड़े जनमानस को प्रभावित किया था। "इन्होंने मूर्तिपूजा, अवतारवाद वा अन्य ऐसी बातों के प्रति अनास्था प्रकट की है और योग साधना को विशेष महत्व दिया है। इनके अनुसार साधु का परम कर्तव्य श्रद्धा तथा वैराग्य के साथ अपना जीवन व्यतीत करना है……ये सांख्य के विकासवाद के समर्थक थे[1]।"

पंजाब प्रान्त, गुरुदासपुर जिले के ध्यानपुर नामक जगह में बाबालाल दास की समाधि है। यहीं कुवार विजयादशमी को हर वर्ष मेला लगता है।

"दाराशिकोह ने इनका 'मुंडिया' और 'कबीर मार्गी' होना ही बतलाया है[2]।"

९

संत प्राणनाथ तथा प्रणामी मत

कहा जाता है कि संत प्राणनाथ का जन्म काठियावाड़ के जामनगर में वि० सं० १६७५, ई० सन १६१८ में हुआ था। कुछ के विचारानुसार 'हल्लार-देश की नौतनपुरी' में हुआ था। आपके गुरु मारवाड़-उमरकोट के देवचंद्र जी

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ५६२-३।
२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ५६२।

थे। उन्ही से आपने शिक्षा-दीक्षा पायी थी। इन्होंने भारत तथा अरब देशों में भ्रमण किया। भ्रमण, उपदेश, ग्रंथ लेखन, पत्र व्यवहार, साधना करते हुए इनका कालक्षेप होता रहा। इन्होने गुजराती, हिन्दी तथा हिंदी फारसी मिश्रित भाषा में कुल १४ ग्रंथ लिखे है। इनका एक संग्रह 'कुलजम स्वरूप' नाम से है जो सब मिलाकर अठारह (१८) हजार चौपाइयों का है।

इनके सम्प्रदाय का नाम 'प्रणामी' है। इनका मुख्य केंद्र 'पन्ना' शहर का 'धामी मंदिर' है। संत प्राणनाथ का समन्वयात्मक दृष्टिकोण था। उन्होने कबीरदेव के समान ही कहा है वेद और किताब में एक ही बात कही गयी है[1]। कही-कही संत प्राणनाथ ने कबीरदेव की पूरी साखी ही उद्धृत कर दी है। जैसे—

हद चले सो मानवी, बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोनों तजे, ताको मता अगाध[2]॥

कबीर साहेब के बीजक में उक्त साखी निम्न प्रकार है।

हद्द चले सो मानवा, बेहद चले सो साध।
हद बेहद दोऊ तजे, ताकर मता अगाध॥ बी० सा० १८६॥

१०

सत्तनामी संप्रदाय

१. श्री योगीदास नारनौल

पश्चिमी भारत के 'नारनौल' स्थान के सत्तनामी जोगीदास जी एक ऐसे संप्रदाय के प्रवर्तक बताये जाते हैं जो शाहजादा दाराशिकोह के समर्थक तथा उनके भाई औरंगजेब के विरोधी थे। दाराशिकोह तथा औरंगजेब के आपसी युद्ध में जोगीदास ने दाराशिकोह का साथ दिया। इनका सत्तनामी-

१. जो कुछ कह्या कितेब ने। सोई कह्या बेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के। पर लड़त बिना पाये भेद॥
बोली सबो जुदा परी। नाम जुदे पर सबन।
चलन जुदा कर दिया। तायें समझ न परी किन॥
(खुलाशा, पृ० ११। उ० भा० की संत पर० पृष्ठ ६००)

२. कुलजम स्वरूप, जागनी १६७८, पृष्ठ २४।

विद्रोह' प्रसिद्ध है। ये सत्तनाम की नारा लगा कर विरोधियों पर टूट पड़ते थे। इनका एक बहुत बड़ा जनमत बन गया था, जो औरंगजेब को कई बार परास्त कर दिया था। परन्तु पीछे औरंगजेब ने सत्तनामियों को हरा कर उनका दमन किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं "सत्तनामी लोगों की सादी रहन-सहन, इनके साहस, संगठन की योग्यता तथा भेदभाव रहित जीवन-यापन करने की प्रणाली को सर्वथा स्तुत्य ही मानना चाहिए[1]।"

२. श्री जगजीवन साहेब कोटवा

ये उत्तर प्रदेश बाराबंकी जिले के सरहदा गांव के चंदेल क्षत्रिय के घर में पैदा हुए थे। हम 'बावरी-पंथ' में चर्चा कर आये हैं कि ये श्री बुल्ला साहेब के शिष्य थे। किन्तु श्री जगजीवन साहेब के पंथ वाले इन्हें काशी के किसी श्री विश्वेश्वरपुरी के शिष्य मानते हैं। परन्तु श्री बुल्ला साहेब से जितनी उनकी संगत बैठती है विश्वेश्वरपुरी से नहीं।

कहा जाता है श्री जगजीवन साहेब ने गृहस्थी जीवन व्यतीत किया, परन्तु ये एक उच्चकोटि के साधक थे। ये अपना गांव सरहदा के कुछ लोगों की ईर्ष्यादि के कारण वहां से 'कोटवा' नामक गांव में चले गये। यहीं रहकर इन्होंने साधनाये कीं तथा वि० सं० १८१८, ई० सन् १७६१ में कोटवा में ही शरीर छोड़ दिये। इनकी यहीं समाधि बनी है। यहां हर वर्ष मेला लगता है। इनके प्रमुख शिष्यों में श्री दूलन साहेब थे जो लखनऊ जिले के एक क्षत्रिय कुल के बालक थे। कोटवा जगजीवन साहेब का आज भी उत्तर प्रदेश के बाराबंकी, फैजाबाद, बहराइच आदि जिलों में काफी प्रचार है। श्री जगजीवन साहेब की 'शब्द सागर' आदि कई पुस्तकें है।

३. श्री घासीदास बिलासपुर

छत्तीसगढ़ बिलासपुर जिला के गिरोद नाम के ग्राम में (जो अब रायपुर में लगता है) एक सतनामी कुल में श्री घासीदास जी का जन्म हुआ, जो देह से सुन्दर एवं व्यक्तित्व के विशाल बताये जाते हैं। ये अशिक्षित तो थे, परन्तु अपने गांव के पास किसी चट्टानी पहाड़ी पर आपने साधना की और पीछे वही आपका सत्संग चल पड़ा। आप वहां एक तेंदू पेड़ के नीचे बैठ कर सत्संग चलाया करते थे। कहा जाता है वह पेड़ आज भी है। यहां इनके अनुगामियों के मन्दिर बन गये हैं तथा उनके लिए यह तीर्थस्थल हो गया है। इनका वि०

१. उ० भा० की संत परम्परा पृष्ठ ६०६। सत्तनामी विद्रोह का समय वि० सं० १७२६-३० माना जाता है।

सं० १६०७[२], ई० १८५० में ८० वर्ष की अवस्था में शरीरांत हो गया। इनके मत को भी 'सतनामी' कहा जाता है। इनका प्रचार बिलासपुर, रायपुर आदि जिलों में पाया जाता है। ये आचार-विचार के पक्के तथा सात्विक होते हैं। आजकल इनमें पढ़े-लिखे लोग भी होते जा रहे हैं।

इस प्रकार नारनौल के श्री योगीदास जी, कोटवा के श्री जगजीवन साहेब जी तथा गिरोद के श्री घासीदास जी—'सत्तनामी' कहलाते हैं। इन तीनो में सद्गुरु कबीर का बड़ा आदर है। श्री जगजीवन साहेब तथा श्री घासीदास की शाखाअ में तो कबीर साहेब बहुत ऊंची दृष्टि से देखे जाते हैं।

११

श्री दरिया साहेब व दरियापंथ

एक दरिया साहेब तो मारवाड मे हुए हैं और दूसरे दरिया साहेब उनसे कुछ पहले बिहार में हुए हैं। ये दोनो संतमत के भीतर ही है। बिहार प्रदेश, जिला शाहाबाद के धरकंधा ग्राम मे बिहार के दरिया साहेब का मठ आज भी विद्यमान है। दरिया साहेब का जीवन-काल वि० सं० १७३१-१८३७, ई० १६७४-१७८० माना गया है। ये उत्तर प्रदेश के काशी, मगहर, गाजीपुर तथा बिहार के क्षेत्रों में कुछ भ्रमण कर सत्संग एवं उपदेश करते हुए अधिकतर धरकंधा ग्राम में ही रहे। इनके प्रधान शिष्य ३६ बताये जाते हैं, जिनमें मुख्य श्री दलदास माने जाते है। इनके रचित अनेक ग्रंथ है जिनमें इनका एक बीजक भी है, जो कबीर साहेब के बीजक से भिन्न है। आप कबीर साहेब के प्रति बहुत श्रद्धावान थे। आप कहते हैं "उसी की खोज करो जिसकी खोज कबीर ने की है। यह खोज जीवन के गंभीर समय में संभव है[१]।" दरिया साहेब अपने आप को कबीर साहेब से अभिन्न भी बतलाते है। "शब्द के विलोडन द्वारा विवेक उपलब्ध करने को इन्होने अन्यत्र 'परखना' भी कहा है[२]।" इनके मन में कबीर साहेब के प्रति अनन्य श्रद्धा थी।

२. उ० भा० की संत परम्परा पृष्ठ ६१६।

१. ताहि खोजु जो खोजहिं कबीरा। बइठि निरंतर समय गंभीरा॥

(उ० भा० की सं० प० पृ० ६५६)

२. परखहु संत शब्द यह बानी। करै विवेक सो निर्मल ज्ञानी॥
बिनु ?? खे नहिं मूल भेंटाई। पारखि जन सो शब्द समाई॥

१२

रामस्नेही संप्रदाय

१. श्री दरिया साहेब

जैसे हम पीछे बिहार वाले दरिया साहेब के सन्दर्भ में चर्चा कर आये हैं, ये मारवाड़ के दरिया साहेब थे इनका स्थान 'रैण' नामक ग्राम है। इन्होने यहीं जीवन व्यतीत किया। इनका जीवन-काल वि० सं० १७३३-१८१५, ई० १६७६-१७५८ है। इनके गुरु श्री प्रेमदयाल थे, जिन्हे दादूपंथी कहा जाता है। कहा जाता है कि मारवाड़ का राजा श्री दरिया साहेब से प्रभावित होकर इनका शिष्य हो गया था। इनकी वाणियो का एक विशाल संग्रह है जिसमें दस हजार वाणियां हैं।

ये दरिया साहेब भी श्री कबीर साहेब के प्रति बहुत श्रद्धालु थे। इन्होने अपनी वाणी में कबीर साहेब की विशेषता बतायी है। "इन्होंने कबीर साहेब की अनेक साखियो का मानो रूपांतर मात्र कर दिया है[१]।"

२. श्री हरिराम दास तथा श्री रामचरण जी

राजस्थान में ही बीकानेर राज्य के 'सिंहथल' नामक गांव में वि० सं० १८ वीं के उत्तरार्ध में श्री हरिराम दास जी का जन्म हुआ था, तथा श्री रामचरण जी का जन्म जयपुर राज्य के सोडो नामक ग्राम मे उसी समय के लगभग हुआ था। श्री हरिदास जी के एक प्रमुख शिष्य श्री रामदास जी थे। इन सब सन्तों के मत को रामस्नेही सम्प्रदाय कहते हैं जो सन्तमत के भीतर है। इनमें कई ने तो कबीर साहेब के प्रति खुले शब्दो में विशेषता कही है। श्री रामदास जी ने अपने गुरु श्री हरिदास को 'संत कबीर साहेब की अन्तःकला वाला होना ठहराया है[२]।' इनके ग्रंथ मे कबीर साहेब की वाणियो का सग्रह किया गया है।

एकहि तत्त बिचारहु भाई। पानी-पथ ज्यौं हंस बिलगाई॥
संत्रित जल पय भीतर रहई। बिबरन बरन सो इमि कर लहई॥
(दरियासागर, उ० भा० की सं० प० पृष्ठ ६६१)

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ६६७।

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ६७३।

१३

अघोर तथा सरभंग संप्रदाय

अघोर मत कोई नया नहीं है। इसका इतिहास खोजकर निकाल पाना सरल काम नही है। परन्तु इसकी एक महत्वपूर्ण कड़ी बाबा किनाराम हैं, जिनका जन्म काशी के पास चदौली तहसील के रामगढ़ गांव में एक सूर्यवंशी क्षत्रिय परिवार में हुआ था। ये बाबा कालूराम के शिष्य थे। बाबा किनाराम का जीवनकाल ई० १६८४-१७८७ माना जाता है। ये वैराग्यवान तथा भ्रमण-शील भी थे, तथा इनका विशेष क्षेत्र काशी रहा। इनका प्रचार गुजरात, नेपाल, समरकंद आदि स्थलों में बताया जाता है। इनकी रची कई पुस्तकें हैं, जिनमें विवेकसार मुख्य है। "इनके 'जोग-जुगति', 'सुरति', 'निरबान', अनहद-बानी', 'सत्तसुकृत्त' जैसे शब्दों से भी स्पष्ट होता है कि इनके मत को 'संतमत' से अधिक भिन्न नही ठहराया जा सकता[१]।

सरभंग सम्प्रदाय अघोर सप्रदाय का किसी हिस्से में मिलान है। सरभंग सम्प्रदाय बिहार के चंपारन, सारन, मुजफ्फरपुर, पटना तथा आसाम, बंगाल एवं यत्र-तत्र उत्तर प्रदेश में भी बताया जाता है। इस परम्परा मे प्रमुख संत श्री भीखमराम बाबा बताये जाते है जो पहले चपारन जिले के माधोपुर नामक गांव में भीखा मिश्र के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होने वैराग्य वेष लेकर देश भ्रमण भी किया। भीखमराम बाबा की रचना एक 'बीजक-ग्रंथ' भी बताया जाता है।

सरभंग सम्प्रदाय के एक विशेष पुरुष श्री भिनकराम बाबा बताये जाते है। कहा जाता है प्रसिद्ध संत कबीर साहेब के ४८४ शिष्य थे। उन्हीं शिष्यो में से किसी की परम्परा मे श्री भिनकराम बाबा थे[२]।

अघोर संप्रदाय तथा सरभंग सप्रदाय—दोनो मे कबीर साहेब के प्रति बहुत बड़ी श्रद्धा है। कबीर साहेब के प्रसिद्ध ग्रथ 'बीजक' नाम का अनुकरण संत परम्परा के अनेक संतो ने किया है और वे अपने ग्रंथ का नाम 'बीजक' रखे हैं। भिनकराम बाबा तो कहते है "सद्‌गुरु कबीर साहेब जिद की कृपा से हमने ज्ञान का जंजीरा पा लिया[३]।" इसी प्रकार उन्होने कबीर साहेब का

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ६९५। २. वहीं ६९८।

३. साहेब कबीर दया जिद सतगुर
सिरी भिनकराम स्वामी पावेले ग्यान के जंजीरा।
(उ० भा० की सं० प०, पृष्ठ ७०५)

नाम 'खसम कबीर' 'हंस कबीर' तथा 'सतगुरु साहेब कबीर' के रूप में अत्यंत से श्रद्धा लिया है[४]।

१४

रविभाण-सम्प्रदाय

रविभाण साहेब का कार्यक्षेत्र सौराष्ट्र एवं गुजरात प्रदेश था। यहीं से यह मत राजस्थान में गया। आज भी इन स्थानों में इसका अधिक प्रचार है। श्री रविराम साहेब की रचना से पता चलता है कि "उत्तराखंड से एक नीलकंठ नाम के निगु णी महात्मा उतरे जो पूर्ण पुरुष थे। उन्होंने रघुनाथ दास को अपना शिष्य बनाया। रघुनाथ दास के जादव दास, जादव दास के षष्टम दास तथा षष्टम दास के भाण साहेब शिष्य हुए। इन्हीं भाण साहेब के ज्ञान द्वारा यह 'रविदास' कृतार्थ हुआ[१]।" कहा जाता है कबीर साहेब के शिष्य पद्मनाभ थे। उनके शिष्य नीलकंठ थे, जो गुजरात-सौराष्ट्र में जाकर रघुनाथ दास को शिष्य बनाये थे[२]। इन्ही की परम्परा मे रविभाण साहेब हुए जिनका रहना सौराष्ट्र के किसी बाराही स्थान में बताया जाता है। रविभाण साहेब के शिष्य रविराम साहेब ने स्वीकार किया है कि रविभाण साहेब बाराही के निवासी थे। उनका जीवनकाल वि० सं० १७५४-१८११, ई० १६९७-१७५४ कहा जाता है।

रविराम साहेब भी गुजरात के ही थे, जिनका कान्हम क्षेत्र के आमोद गांव में वि० स० १७८३, ई० १६२६ में जन्म हुआ। ये रविराम साहेब को रविदास से मत मिलाइयेगा, क्योंकि दोनो में अन्तर है। रविराम साहेब की वाणियों का 'साखी संग्रह' नाम से एक बड़ा संग्रह है जिसमें ७७ अंग बताये जाते हैं। इन्होने कबीर साहेब के प्रति अपनी बड़ी श्रद्धा व्यक्त की है। उन्होंने कहा हे रविदास! तू वही पथ खोज, जिससे कबीर साहेब गये हैं—रविदास वहां पहुच गया है, जहां रामानन्द और कबीर पहुचे हैं—जब एकांत चिन्तन

४. 'मिलि गये खसम कबीर' 'मानस ताल बिचे हंस कबीरा'
'सतगुरु साहेब कबीर' (उ० भा० की सं० प० पृष्ठ ७०६)

१. रविभाण सम्प्रदायनी वाणी, मंछाराममोती, पूना सं० १९८९, पृष्ठ १९४।
(उ० भा० की सं० प० पृष्ठ ७०६)

२. सद्गुरु कबीर चरितम्, २१। ३०-३४।

में रहता हू, तब मैं कभी रामानन्द तथा कभी कबीर से बातें समझता हूं— रविभाण साहेब तो कबीर साहेब के ही समान उच्च दशा को प्राप्त हैं[३] ।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं "मोरार साहेब के शिष्य दलुराम साहेब का अपनी गुरुपरम्परा के प्रथम पुरुष नीलकंठ दास का सम्बन्ध ऊपर की ओर जोड़ते समय उसे कम-से-कम कबीर साहेब तक पहुचाकर वहां 'राम-कबीर' शब्द का प्रयोग करना तथा इसी प्रकार लालदास साहेब का स्पष्ट शब्दों में 'लालदास लवलाय कर, सुमरे राम कबीर' जैसी उक्ति प्रकट करना भी इस बात का समर्थन करता है कि यह संप्रदाय संभवतः उस 'रामकबीर पंथ' से भिन्न न होगा[४] ।"

श्री अनन्तराम रावल ने रविभाण संप्रदाय के संतों के नाम में साहेब पदवी लगा होने से लिखा है "आ सर्व संतों ना नामने अंते 'साहेब' शब्द लगा जाय छे जे बतावे छे के ए कबीर-पंथी हता[५] ।"

"एक गुजराती लेखक ने यहां तक कहा है कि भाण साहेब रामकबीरी कंठी बांधकर सौराष्ट्र में आये तथा उन्होने वहां पर सर्वप्रथम कबीरपंथ का प्रचार किया[६] ।"

१५
श्री चरणदास तथा उनका सम्प्रदाय

दिल्ली की तरफ कहीं डेहरा नामक ग्राम में वि० सं० १७६०, ई० १७०३ में श्री चरणदास जी का जन्म हुआ। दिल्ली की तरफ इनका प्रचार

३. रविदास सो राहो ढूंढ ले, जीस राहा गये कबीर ।
(रविभाण संप्रदायिनी वाणी, भाग बीजो सा० २३, पृष्ठ २३४)
रवीदास उहां पहोंचीया, ज्यां रामानन्द कबीर । वही सा० ११, पृ० २४६ ।
बुझत रवी कबीर के, बुझत कोउक संत ।
रामानन्द पे बुझीया, जबही मिल्या एकंत । वही सा० ३, पृष्ठ २५४ ।
रवीभाण कबीर जी, एक रूप अलेख । वही पृष्ठ २५३ ।
(उ० भा० की सं० प० पृष्ठ ७१३)

४. उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ ७१५-७१६ ।

५, गुजराती साहित्य, पृष्ठ २१० । उ० भा० की सं० प० पृष्ठ ७१५ ।

६. उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ ७१६ । यमल्ल परमार आपणीलोक संस्कृति, अहमदाबाद, १९५७ ई० पृष्ठ ११७ ।

क्षेत्र आज भी बताया जाता है। इनके पंथ को चरणदासी संप्रदाय कहते हैं। इस मत की रूपरेखा वैष्णवी अधिक है तथा संतमत का कम। एक विद्वान लिखते हैं "दार्शनिक तथा पूजोपासना के विविध आडंबरों पर दृष्टि केन्द्रित करने से ज्ञात होता है कि भले ही अंशतः यह परम्परा कबीर का अनुसरण करता हो, किन्तु वस्तुतः यह निंबार्क संप्रदाय के अधिक निकट है[1]।"

१६

श्री गरीबदास तथा उनका पन्थ

रोहतक जिला, झज्जर तहसील के छुड़ानी नामक ग्राम में वि० सं० १७७४, ई० १७१७ में श्री गरीबदास जी का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम बलिराम जी था जो जाट जाति के थे। ये एक जमींदार थे। ये अपनी बारह वर्ष की उम्र में जब गाय-भैंस चरा रहे थे, कहा जाता है इनको कबीर साहेब के दर्शन हुए। दूसरे मत से इन्हें कबीर साहेब स्वप्न में दर्शन दिये। वस्तुतः इनके पिता कबीरपंथी थे। अतः घर के लोगों की कबीर साहेब के प्रति श्रद्धा होने से गरीबदास को भी उनके प्रति श्रद्धा थी। जिनके प्रति श्रद्धा होती है, हम उनके स्वप्न देखते ही हैं।

श्री गरीबदास जीवनपर्यन्त गृहस्थ रहे और आगे भी इनकी गृहस्थ गद्दी चलती रही। परन्तु कहा जाता है कि छठीं पीढ़ी में श्री दयालु दास द्वारा इस पंथ में काफी सुधार आया और महंत को ब्रह्मचर्य पालन करने का विधान हुआ। अब इनमें विरक्ति भाव बढ़ा है। गरीबदास की वाणियों का संग्रह छपा है, जिसमें कबीर साहेब के नाम से भी काफी वाणी है। इनकी वाणियों के संग्रह का नाम 'ग्रंथ साहिब' है। श्री गरीब साहेब सद्गुरु कबीर को बड़ी श्रद्धा से अपना सद्गुरु स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं "गरीबदास सद्गुरु कबीर का चरणचाकर है, यह उनकी कृपा से ही सत्य और अविनाशी पद की स्थिति पाया है[1]।"

१. श्री मुनिकांति सागर, सम्मेलन पत्रिका, भा० ४१ सं० ४, पृष्ठ १-२।
(उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ७२५)

१. दास गरीब कबीर का चेरा। सत्तलोक अमरापुर डेरा ॥
(गरीबदास की बानी, उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ ७३१)

१७

श्री पानपदास तथा पानप-पन्थ

संत श्री पानपदास का जन्म सन १७१९ ई० में प्रसिद्ध राजा बीरबल के खानदान में दिल्ली की तरफ उत्तर प्रदेश में कहीं बिजनौर के पास माना जाता है। एक कबीरपथी साधु द्वारा प्रेरित होकर ये उस समय के वहां के प्रसिद्ध संत श्री मंगनीराम के पास गये। उन्ही से इनकी दीक्षा हुई। इनका रचा वृहद् 'बानी ग्रंथ' है, जिसमें कबीर साहेब से लेकर अन्य कई संतो की वाणियां भी संग्रहीत बतायी जाती हैं। ये नानक साहेब तथा कबीर साहेब को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं[१]। "जहा तक 'बानी ग्रंथ' से उपलब्ध अंशों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है, यह पंथ भी अधिकतर कबीर साहेब तथा अन्य वैसे सतो के सिद्धान्तो और साधनाओ को ही आदर्श-वत स्वीकार करता जान पड़ता है[२]।" श्री पानप जी कहते हैं "कबीर का ही शब्द व उपदेश ठीक है जिसे ग्रहण करने वाला भवसागर के पार पहुंच जाता है और बिना उस अच्छर की खोज किये लोग चिल्ला-चिल्ला कर मर जाते हैं[३]।"

धामपुर में इनकी तथा इनके गुरु की समाधि है। दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश आदि में इनका प्रचार है।

१८

श्री मोहनशाह तथा उनका साईंदाता पन्थ

संत श्री मोहनशाह का जन्म जिला फैजाबाद, मिल्कीपुर थाने के पास 'मझनाई' गांव में हुआ। ये एक अच्छे संत थे। इन्होंने बुन्देलखण्ड आदि का भ्रमण भी किया था। इनके अनेक योग्य शिष्य भी हुए तथा इन्होंने रचनायेंभी की। इनके ग्रंथ का नाम है 'अरस बेगम सार'। मोहनशाह को मोहनसाईं तथा साईंदाता भी कहते है। इनका प्रचार क्षेत्र फैजाबाद, बाराबंकी, प्रतापगढ़, उन्नाव, इलाहाबाद, हरदोई, बांदा, सहारनपुर आदि जिलों में है।

१. नानकदासा और कबीरा। पानपदास तिन्हों का चेरा॥
(पान बोध पृष्ठ १५८, उत्तरी भारत की संत परम्परा पृष्ठ ७३८)

२, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृष्ठ ७३८।

३. वही, पृष्ठ ७४०।

इस पंथ के लोगों में कबीर साहेब के प्रति अगाध श्रद्धा है। "इनकी उपलब्ध रचनाओं के आधार पर केवल इस प्रकार कह सकते हैं कि इनकी विचारधारा संत कबीर साहेब के मत से बहुत प्रभावित जान पड़ती है[1]।"

१९
श्री अक्षर अनन्य

श्री अक्षर अनन्य ईसा की अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में दतिया राज्य के राजा पृथीसिंह के दीवान तथा पन्ना के नरेश महाराजा क्षत्रसाल के गुरु बताये जाते हैं। पीछे ये साधना में उतर आये थे और एक उच्चकोटि के संत हुए। इनकी वाणियों में सद्गुरु कबीर के संदेश मिलते हैं[1]।

२०
श्री दीनदरवेश

श्री दीनदरवेश का जन्म उदयपुर डिवीजन के रेलवे स्टेशन खेमली के पास गुड़ली नामक गांव में बताया जाता है। इनका जन्म ईसा अठारहवी शती का उत्तरार्ध था। इनका कार्यक्षेत्र उत्तर प्रदेश, कुछ मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात था। इनकी वाणियों में भी वही विचार पाये जाते हैं जो सहजतया कबीर साहेब के जैसे हैं।

२१
सन्त बुल्लेशाह

इनका जन्म कुछ लोग बलख शहर मानते हैं और कहते हैं कि ये वहां के बादशाह थे। विरक्ति होने से लाहौर के पास एक जंगल में आये तथा वहीं गुरु मियां मीर की शरण में रह कर साधना किये। कुछ लोगों के अनुसार ये कुस्तुन्तुनिया से आये और कुछ लोगों के विचार से ये कहीं से नहीं आये, बल्कि लाहौर के पास के ही रहे।

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ७४१।
१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ७५०।

इनका जीवनकाल ईसा १६८०-१७५३ माना जाता है। ये एक सच्चे फकीर थे। इन्होंने गृह त्याग के बाद जीवन भर ब्रह्मचारी रहकर साधनाये की। ये बड़े क्रांतिकारी विचारक थे। ये ईश्वरीय मानी गयी पुस्तकों तथा अंधपरम्परा के खरे आलोचक थे। इसलिये कभी-कभी इनके गुरु तक इन पर नाराज हो जाते थे। "इन पर कबीर साहेब के सिद्धान्तों का छाप भी स्पष्ट लक्षित होता है[1]।"

२२
संत सीता साहेब

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के फतुहा नामक स्थान में हुआ। आपका जीवनकाल ईसा १६६०-१७६८ है। आपके गुरु कानपुर के श्री बेनीराम साहेब थे। आपके अनेक शिष्य हुए। आपकी समाधि उन्नाव जिले के नरवीरपुर गांव में है। आप कबीर साहेब के प्रति अनन्य श्रद्धालु थे। आपने कहा है "जो कबीर साहेब ने कहा है, वह प्रामाणिक एवं सत्य है। वे पहुचे हुए सन्त थे। मैं भी उन्हीं का प्रमाण देता हूं[1]।"

२३
संत रोयल साहेब

आप सिंध के निवासी थे। आपका जीवनकाल उन्नीसवीं शताब्दी है। आपके गुरु साम साहेब थे। आप सद्गुरु कबीर साहेब से बहुत प्रभावित बताये जाते हैं[1]। आपने अपने गुरु के प्रति कहा है कि उनके संकेत से मुझे स्वस्वरूप का ज्ञान हुआ[2]। संत रोयल साहेब का प्रचार राजस्थान में अधिक है।

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ ७५५।

१. जो काशी कहि गया जोलाहा, सो तो है टकसारी।
सीता ताकी साखि देत है, वह पहुंचा दरबारी॥
(उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृष्ठ ७५८)

१. उत्तरी भारत की संत परंपरा, पृष्ठ ७६०।

२. साम साहेब गुरु संत बताई, निज स्वरूप दरसाया॥ वही पृष्ठ ७५६॥

२४
श्री तुलसी साहेब

अलीगढ़ जिले के हाथरस नगर में श्री तुलसी साहेब के मत का केन्द्र है। इनका जीवन ईसा की १९वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। आपके मत को 'साहिब-पंथ' कहते हैं। आपकी रची हुई घट-रामायण प्रसिद्ध है। इन्होने कबीर साहेब का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया है और कहा है कि "कबीरपंथ वही है जिससे कबीर साहेब गये हैं, उसी से जाना[1]।"

२५
संत डेढ़राज तथा नांगी सम्प्रदाय

संत श्री डेढ़राज का जन्म नारनौल जिले के धारूस गांव में ईसा १८वीं शती के उत्तरार्ध में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। परन्तु आप खरे विचारक थे। आप वर्णव्यवस्था के विरुद्ध थे। आप सारे अंधविश्वासो के खिलाफ थे। आप मूर्तिपूजा के तथा किसी भी ग्रंथ के स्वतः प्रमाणवाद के भी विरोधी थे। कबीरदेव के संतमत का आप पर पूरा छाप है।

२६
राधास्वामी सत्संग

आगरा में लाला दिलवालीसिंह के घर ईसा १८१८ में लाला शिवदयालसिंह का जन्म हुआ, जिनके द्वारा राधास्वामी मत चला। इनको इनके मत वाले 'परम पुरुष धनीकुल मालिक राधास्वामी दयाल' तथा 'स्वामी जी महाराज' भी कहते हैं। इनके पिता दिलवालीसिंह नानकपंथ के शिष्य थे। अतः वे उस मत के ग्रंथ 'जपुजी' व 'सुखमनी' का पाठ करते थे। परन्तु इस

१. पंथ कबीर सोई है भाई। गये कबीर जेहि मारग जाई॥

(घट रामायण, पृष्ठ १६१)

श्री तुलसी साहेब ने अपने आपको गोस्वामी तुलसीदास का अवतार माना है। लगता है कि उनके शिष्यों ने ऐसा लिखकर उनकी वाणी मे मिला दिया है। स्वयं ऐसी बात सन्त नहीं कहते।

परिवार पर हाथरस के तुलसी साहेब का प्रभाव होने से राधास्वामी मत का झुकाव 'साहिबपंथ' की ओर हुआ। लाला शिवदयालसिंह को 'स्वामी' एवं उनकी पत्नी को 'राधा' कहकर अनुयायीगण राधास्वामी नाम से इस मत को प्रसिद्ध किये। फिर इसका आध्यात्मिक अर्थ भी किया गया।

इस मत के मुख्य प्रवर्तक लाला शिवदयालसिंह 'राधास्वामी' नाम न कह कर केवल 'सत्तनाम' 'अनामी' आदि कहते थे। परन्तु उनके बाद उनके शिष्य संतराम सालिगराम जी ने 'राधास्वामी' नाम प्रचलित किया। आगे चलकर इसका विरोध हुआ। इसीलिए इस मत में कुछ शाखा में राधास्वामी न कह कर सत्तनामी और अनामी कहते हैं[1]।

यह गृहस्थ गद्दी है। मूल प्रवर्तक लाला शिवदयालसिंह 'स्वामी जी महाराज' एवं उनकी पत्नी 'राधा' बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के सुयोग्य गृहस्थ सत थे। इनके सत्संग के प्रभाव से इनके अच्छे-अच्छे शिष्य हुए तथा इनकी परम्परा उत्तरी भारत में काफी फैल गयी। इनका मूल केंद्र आगरा है, जहां इनका बहुत बड़ा व्यवसाय केन्द्र है तथा इनका एक विशाल मंदिर वहां बन रहा है जो अभी पूर्ण नही हुआ है। इनके मठ काशी, डेराव्यास आदि कई स्थलो पर हैं। इनमें कबीर साहेब के प्रति काफी श्रद्धा पायी जाती है।

२७
संतमत सत्संग

इस मत के प्रवर्तक बाबा देबी साहेब है जो उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद में हुए। इनका जीवनकाल सन १८४१-१९१९ कहा जाता है। इनके गुरु हाथ-रस वाले श्री तुलसी साहेब बताये जाते है। बाबा देबी साहेब के कई शिष्य हुए जिन्होंने इस मत की साधना एवं प्रचार किया। इनके एक योग्यतम शिष्य आज भी जीवित हैं जो 'परमहस महर्षि मेंही'[1] के नाम से बिहार में प्रख्यात हैं। इनका जन्म बिहार प्रदेश, सहरसा जिला के 'खोखसीश्याम' नामक ग्राम में सन १८८५ ई० मे हुआ था। आपका इस समय केन्द्र बिहार राज्य के भागलपुर नगर में कुप्पाघाट पर है। आपकी अनेक रचनायें हैं। आपका सत्संग भी चलता है। भागलपुर, सहरसा, पूर्णियां आदि जिलो में आपका व्यापक प्रभाव है। यह मत कबीर साहेब को प्रमुख स्थान देता है।

१. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृष्ठ ८०९।

१. महर्षि मेंही जी का ८ जून १९८६ ई० को कुप्पाघाट भागलपुर में निधन हो गया।

२८
स्वामी रामतीर्थ

आपका जन्म पंजाब प्रदेश के गुजरावाला जिले के मुरारी गांव में १८७३ ई० में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आप गणित में एम० ए० करने के बाद कुछ दिन अध्यापन किये और चौबीस वर्ष की उम्र में पिता को पत्र लिख-कर कालेज से ही विरक्त हो गये। आपकी शादी हो गयी थी। आपको एक कन्या तथा दो पुत्र थे।

आप ऋषिकेश आदि कई स्थलों में घूमें तथा साधनायें कीं। उसके बाद जापान, अमेरिका आदि भ्रमण करके भारत लौटे। आपने कोई संस्था नहीं बनायी और कहा भारत की सब संस्थायें मेरी हैं। मैं सब में काम करूंगा। आप एक मस्तमौला संत थे। आप टिहरी गढवाल में थे। एक दिन गंगा में नहाते समय पैर फिसल गये और आपका शरीर गगा में बह गया। इस प्रकार सन १९०६ में आपका देहान्त हो गया। आपकी रचनायें प्रसिद्ध है, जो बड़ी प्रांजल हैं।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं "इनके जीवन का प्रधान उद्देश्य भी संतमत के अनुसार व्यवहार करना था[१]।"

२९
सन्त घीसा साहेब

मेरठ जिला (उतर प्रदेश) के खेकड़ा ग्राम में सदासुखलाल कौशिक नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे कबीर साहेब के अनन्य प्रेमी एवं कबीरपंथी भक्त थे। उनको संतान न थी। कहा जाता है एक दिन संत कबीर साहेब ने उनको दर्शन दिया और कहा कि मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र होकर जन्म लूगा। एक वर्ष बाद सदा सुखलाल की पत्नी के गर्भ से आषाढ़ गुरु पूर्णिमा सन् १८०३ ई० में एक बच्चा जन्म लिया। यही बच्चा आगे चल कर घीसा साहेब के नाम से प्रसिद्ध हुआ[१]। इसका अर्थ यही है कि सदा सुखलाल जी कबीर साहेब के अनन्य प्रेमी होने से, उन्होने अपने पुत्र में भी कबीर साहेब को ही देखा।

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ८२०।

१. घीसा पंथ : एक अवलोकन, पृष्ठ २६-२७, लेखक इन्द्र सेंगर।

सदा सुख कौशिक ब्राह्मण भाई। गुरु कबीर का था अनुयायी॥
साधु सेवा में भरपूर भौरा। दर्श हेतु नित गांव का दौरा॥

सत घीसा साहेब श्री कबीर साहेब की विचार-सरणी के अनुयायी होने से जातिपांति-विरोधी थे। कहा जाता है इसीलिए उन्होंने जीवन निर्वाह का पेशा कपड़ा बुनना चुन कर एक क्रांति की थी[२]। इसलिए उन्होंने अपने आपको जुलाहा कहा[३]। उन्होंने अपने पंथ की नीव सन् १८३० ई० मे डाली। उन्होने अपना गुरु कबीर साहेब को स्वीकारा। "आज भी आप के दरबार मे जो आरती की जाती है उसमें कबीर का स्वरूप दर्शनीय है—

कक्का केवल नाम है, बब्बा ब्रह्म शरीर।
रर्‌रा सब में रम रहा, ताका नाम कबीर।।
पानी से पैदा नही, श्वासा नहीं शरीर।
अन्न अहार करता नही, ताका नाम कबीर।।

सारांश मे हम कह सकते है कि आपने उक्त आरती में कहे गये सतगुरु कबीर को ही अपना प्रभु रूप मे गुरु माना है[४]।"

घीसा पंथ में यह प्रसिद्धि है—

सकल शरीरो रम रहे, अवगत सत कबीर।
सतरूप सतगुरु मिले, नीर क्षीर के तीर।।

संत श्री घीसा साहेब का शरीरांत सन् १८६८ ई० में हुआ।

जाति-पांति और बाह्याडंबर-विरोधी आपके आध्यात्मिक विचार फैलते रहे। पश्चिम उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली, हरियाना आदि में आपके पंथ का विशेष विस्तार हुआ। वैसे राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, नेपाल आदि मे भी आपके मठ स्थापित होते जा रहे हैं।

३०
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

बंगाल मे जन्मे रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व के एक महान पुरुष है। आपका जन्म ६ मई १८६१ ई० तथा देहात ७ अगस्त १९४१ ई० है। आप कबीर साहेब से अत्यन्त प्रभावित थे। आपने कबीर साहेब की वाणियो का अध्ययन करके उसके आधार पर १९१० ई० में गीतांजलि नाम की पद्य में पुस्तक

अठारा साठ विक्रमी जाना। प्रातःकाल था सोम समाना।।
गुरु पूजा पूर्णिमा सोई। रौनक सदा सुख के हुई।।

२. वही पृष्ठ २७। ३. पृष्ठ ३९। ४. पृष्ठ ३१।

लिखी, जिस पर आपको १९१३ ई० में विश्व का सबसे बड़ा नोबल पुरस्कार मिला, जो उस जमाने में एक लाख, बीस हजार रुपयों का था।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने देखा कि भारतीय दर्शन और धर्म के प्रति विलायत में भ्रम और घृणा फैली हुई है। उन्होंने सोचा कि किसकी वाणियों से विदेशियों के भ्रम मिटाये जायं। उन्होंने भारत में कबीर की वाणी सर्वाधिक निराली पायी और उनके सौ पद चुनकर इंगलिश में अनुवाद किया और उसका नाम रखा 'वन् हन्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर' अर्थात कबीर के सौ पद, जिसका विश्व की समस्त समृद्ध भाषाओं में अनुवाद हुआ। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक जगह लिखा है कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ही कबीर के विषय में मेरी आंखें खोली थीं।

एक बार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने श्रीयुत भगवानदीन से कहा था "हम बंगालियों ने तो संस्कृत इसलिए अपनायी कि हमारे पास शब्द नहीं थे। अध्यात्म के लिए जितने शब्द चाहिए, उतने शब्द बंगला भाषा नहीं दे सकती। पर तुमने कबीर जैसे संत के रहते संस्कृत क्यों अपनायी ? कबीर ने तो हिन्दी भाषा में अध्यात्म की सभी बातें लिख दी हैं और सारी शब्दावली तुम्हें दे दी हैं[1]।"

३१
महात्मा गांधी

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने गांधी जी को भी संतमत के काम करने वालों में शामिल किया है जिनका जीवनकाल १८६९-१९४८ ई० प्रसिद्ध है। गांधी जी का कार्यक्रम राजनीति और व्यवहार लेकर होने से वह उनके जीवन में ही विश्वव्यापी हो गया। यद्यपि गांधी जी ने स्वयं कहा है कि "मेरा महात्मापन राजनीतिक होने से कुछ दिन में उड़ जायगा," परन्तु उनकी नैतिकता तथा विश्वकल्याण भावना एवं उसके प्रयोग ज्वलंत हैं।

गांधी जी ने कहा था "मेरे राम, जो हमारी प्रार्थना के समय स्मरण किये जाते हैं, वह ऐतिहासिक राम नहीं जो अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र थे। मेरे राम तो नित्य अजन्मा और अद्वितीय हैं। मैं उसी की उपासना करता हूं। मैं उसी का अवलंब चाहता हूं और आप लोगों को भी उसी का आश्रय ग्रहण करना चाहिए[1]।"

१. सरिता पत्रिका, सितम्बर १९५६, पृष्ठ १०।

१. हरिजन ८-४-४६। उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृष्ठ ८३०।

डा० पीतांबर बड़थ्वाल लिखते है "अपनी सन १६३५ ई० की हरिजन यात्रा में जब महात्मा गांधी काशी पहुंचे थे, तब कबीरमठ में उनसे वह सुनकर कि मेरी माता कबीरपंथी थीं, उपस्थित जनसमुदाय को विस्मय-सा हुआ था। परन्तु जो लोग महात्मा गांधी और कबीर की विचारधारा से परिचित हैं, उनके लिए उसमें विस्मय की कोई बात नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि उन दोनों में कितना अधिक साम्य है[२]।" दोनो के चरखा-करघा, शुद्ध मानवता तथा राम-रहीम की एकता अद्भुत साम्य प्रकट करते है।

३२

गुजरात में कबीर साहेब का प्रभाव

आजकल 'डा० कातिकुमार सी० भट्ट' गुजरात प्रदेश में कबीर साहेब तथा निर्गुणीधारा पर अधिकृत एवं प्रतिष्ठित लेखक है। आपने कबीर साहेब पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उनमें आपकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है 'कबीर परम्परा : गुजरात के सन्दर्भ में'। इस पुस्तक मे आपने गुजरात मे कबीर साहेब का भ्रमण तथा उनके शिष्यों एवं उनसे प्रभावित संतों के विस्तार का खोजपूर्ण विवरण दिया है। जो कुछ आपने वर्णन किया है, उसका सक्षिप्त वर्णन भी यहां असंभव है। केवल यत्किंचित निर्देश किया जा रहा है।

शनैः शनैः धरती पग धरही, शनैः शनैः मारग अनुसरही।
गॉव गॉव कबीर की जाता, दरशन करत न लोक अघाता॥[१]

सर्वत्र कबीर-कबीर सुन पड़ता था[२]। जीवन जी के ख्याल से कबीर 'सब संतन को सिर' थे ही[३]। बाबादीन दरबेश ने कबीर के गुजरात आगमन के विषय मे रची अपनी एक कुडली के अन्त मे लिखा है—

कहत दीन दरवेश "सत" का शब्द सुनाया।
करुणासिधु कबीर, बदी छुड़ावन आया॥[४]

कविवर श्री उमाशंकर जोशी मध्यकाल मे भारत की आत्मा को सतेज रखने वाले तत्वज्ञ तथा गूढ़ कवियो मे कबीर को "सर्व शिरोमणि" माना है।[५]

२. कबीर और गांधी।

१. पीपा परिचई, ह० लि० ग्रथ (लेखक के पास) कबीर परम्परा, पृष्ठ ३१०, भट्ट।
२. कबीर परम्परा, पृष्ठ ३१०, डा० कांति कुमार सी० भट्ट, अभिनव भारती इलाहाबाद।
३. वही पृष्ठ ३११। ४. वही पृष्ठ ३११। ५. वही, पृष्ठ ३११।

अखा परम्परा के नड़ियाद निवासी संत संतराम ने कबीर वाणी का महत्व समझाते हुए कबीर की आधी साखी को करोड़ ग्रन्थों के बराबर कहा था।

आधी साखी कबीर की, कोटि ग्रंथ करी जापा।
संतराम जग झूठ है, सुरति शब्द पहिचाना ॥[६]

गुजरात के प्रसिद्ध लेखक संत साहित्य के विद्वान डा० अम्बाशंकर नागर, श्री कन्हैयालाल मुन्शी, पं० दुर्गाशंकर शास्त्री, डा० निपुण पंड्या, श्री किशनसिंह छावड़ा, श्री वाड़ीलाल शाह, श्री जनक दवे, श्री मकरंद दवे आदि विद्वानों ने कबीर साहेब का गुजरात के संतों एवं संत साहित्य पर व्यापक प्रभाव माना है।[७] कवि मुकुन्द ने तो 'कबीर चरित्र' में यहां तक लिखा है कि कबीर साहेब का प्रभाव गुजरात में इतना बढ़ गया था, कि गुरु रामानन्द का सम्प्रदाय छुप जाने लगा।.........और नाथपंथियो के जर्जरित त्रिशूल-चिमटे को उन्होंने अपने हृदय की भट्ठी में डालकर जला दिया है, और नये सिरे में उनकी प्यास छिपाने वाले "प्याले" बनवाकर भारत के प्रांत-प्रांत में बांटे हैं।[८]

संत कबीर साहेब का नर्मदा तट पर मंगलेश्वर में कुछ काल निवास हुआ, तत्त्वाजीवा दो ब्राह्मण बन्धुओ के यहां उनका निवास हुआ जो उनके शिष्य बन गये। आज यहीं नर्मदा तट पर विशाल 'कबीर बड़' खड़ा है। ध्यानी जी के धर्म सम्मेलन में मणिपुर में कबीर साहेब तथा मणिपुर के राजा खड्गसिंह उपस्थित थे।[९] सूरत के एक प्रसिद्ध सन्त निर्वाण जी महाराज ने जो एक प्रसिद्ध वैष्णव संत थे, कबीर साहेब को अपने यहां बुलाकर उनका जोरदार स्वागत किया तथा उनके उपदेश सुने। निर्वाण जी महाराज कबीर साहेब से अत्यन्त प्रभावित हो गये और तभी से निर्वाण साहेब कहलाने लगे। कबीर साहेब के चले जाने के बाद वैष्णव संतों ने निर्वाण साहेब से पूछा—महाराज ! हम आप सब वैष्णव हैं, सगुण उपासक तथा मूर्तिपूजक हैं। संत कबीर साहेब निर्गुणी संत हैं। आपने उनको इतना श्रेय कैसे दिया ? निर्वाण साहेब ने वैष्णवों को समझाया कि कबीर कोई साधारण संत नही हैं। वे सगुण-निर्गुण की परिधि से परे उच्चतम संत हैं। अवधूत हैं। निर्वाण जी महाराज ने इस पर एक पद बनाया है[१०]।

६. वही, पृष्ठ ३११। ७. वही, पृष्ठ ३१४-३१५।
८. वही, पृष्ठ ३१५। ९. वही, पृष्ठ ३१२।
१०. कबिरा से कैसे दिल लोभायो।
साधु तेरे दिल में अचरज आयो ॥ टेक ॥
कबिरा से गुरु कैसे नाता, निर्गुण के गीत गायो।
हमतो सिरगुण राम के प्यारे, महि भेद दुखदायो ॥ १ ॥

डा० भट्ट ने सद्गुरु कबीर साहेब से प्रभावित गुजरात के संतों की एक लंबी सूची अपने ग्रंथ 'कबीर परंपरा' में दी है जो निम्न हैं—

गुजरात की निर्गुण-धारा के सन्तों की सूची

अन्नपूर्णा—अरजग भगत—अर्जुनभगत—ऋषीराज—ओखा—करीमशाह—कल्याणदास—कंवलदास—कुबेर दास—कृष्ण दास—केशवदास—खीम साहब—गंग साहब—गणपत दास—गबलदास—गोपालदास—गौरी बाई—चन्द्रावती—चरणदास—जगन्नाथदास—जंभाराम—जगा जी—जीवण जी—दास जीवण—जीवणदास—जुगलदास—जुहारी दास—जोगाहरि—जैतसिंह—तिलकदास—त्रिकमदास—दयालदास—दरियाखान—दादू-दीनदरवेश—दुर्जनशाल—देवा साहब—दूलाराम—धनदास—नागदास—निर्मलदास—निर्वाण साहब—नीलकठ—निरुद्दीन—नृसिंहाचार्य—पद्मनाभ—प्रभूदास—प्राणनाथ—प्यारेदास—बाबा पीथ्थल—प्रेमाबाई—बाबा फकरुद्दीन—बकाजी—बादल साहब—बापू साहब—बांकीदास—बीजल—बोधानन्द—भक्तिराम—भाणसाहब—भीम साहब—मदयन्ती—मन्नत खान—बाबा मलेक—मस्तराम—मेहेरमदास—माणेकदास—माधवदास—मीठोढाढी—बाबा मुराद—मूलदास—मेघोखाचर—मोरार साहब—यादवदास—रंगदास—रघुनाथदास—रंगअवधूत—रतनबाई—रतनदास—रविसाहब—रहमतखान—राघोदास—राजुल—रामस्वामी—रूखडाजी—लालदास—लालदास (अखा का शिष्य)—लालसाहब—लोचनदास—वच्छराज—वाराणसी—श्यामदास (कमाल शिष्य)—शोभाराम—षट्प्रज्ञदास (छट्ठा बाबा)—संतराम—सदानन्द—सम्मद शेख—समर्थदास—स्वरूपदास—सतारशा—बाबूसागर—सुजान सिंह—सोहनदास—हरिदास—हरिलोचनदास—हरजीवनदास—हीरादास—हुर्राहोथी—ज्ञानीजी।

कबिरा युगन-युगन का योगी, अवधू को पिछनायो।
रामानन्द गुरु सिर पे धर के, काशी डेरा लगायो ॥ २ ॥
भेदाभेद चतुराई छांड़े, संत से मेरी सगायो।
चरण कमल चाहूं संत का, प्रेमे रहूं लिपटायो ॥ ३ ॥
कबीर जौहरी ठाढ़े हाट में, अवधू अभेद पिछनायो।
संत को संत जब ही भेटा, प्रेम बदरिया छायो ॥ ४ ॥
दुर्लभ संत समागम कीन्हों, जीवन को सुखदायो।
संतों से मेरी प्रेम सगाई, निर्वाण को यश गायो ॥ ५ ॥

(राम कबीर संप्रदाय, पृष्ठ ४८, डा० कांति कुमार सी० भट्ट)

३३
उपसंहार

इस अध्याय में उन संतों का वर्णन किया गया है, जो शुरू प्रस्तावना के अनुसार उसके अन्दर आते हैं तथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कबीर साहेब को अपना पथ-प्रदर्शक मानते हैं या उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। इस अध्याय में आये हुए संतों में कुछ को छोड़ कर शेष सभी ने कबीर साहेब के प्रति खुले रूप में अपनी श्रद्धा समर्पित की है।

महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जी कबीर साहेब के पीछे हुए हैं अवश्य; परन्तु वे एक परम्परा के पोषक होने से कबीर साहेब द्वारा प्रवर्तित 'संतमत' में नहीं आ सकते। यद्यपि वे भक्ति में मानव मात्र का अधिकार मानते हैं, फिर भी वे वर्णव्यवस्था तथा जाति-पांति के प्रबल समर्थक और एक राजपुरुष को ही इष्ट मानते हैं।

कबीर साहेब से प्रवर्तित संतमत की एक ऐसी धारा चली जो भारत के जनमानस को आज पांच सौ वर्षो से सर्वाधिक प्रभावित करती रही। आगे इसका भविष्य उज्ज्वल ही है। कबीरदेव से लेकर नानक, दादू, दरिया, पल्टू, घीसा आदि संतों की एक बड़ी परम्परा 'संतमत' जो भारत मे विद्यमान है, इसका प्रभाव आज वैदिक कहे जाने वालों पर कम नही है। संतमत के अवतारवाद तथा तीर्थ-मूर्ति से उदासीनता, वर्णव्यवस्था तथा जाति-पांति से रहित अर्थात वर्ण एवं वर्गहीन मानव समाज की स्वीकृति, कर्मकांड से रहित सदाचार में आस्था, किसी पुस्तक को ईश्वरीय मानकर उसके स्वतः प्रमाण-वाद से विरक्ति, शाश्वत सत्यों को अविकल मानते हुए भी देश-काल-सापेक्ष नियमो एव सिद्धान्तों का स्वतंत्र-प्रज्ञा पूर्वक पुनर्मूल्यांकन; जाति, क्षेत्र, प्रदेश, देश के पक्षपात से रहित मानव मात्र का सत्य पर समान अधिकार और भोग-वाद से हटकर आत्म-परमात्म-परायणता—आज इन विचारो से कौन मत नही प्रभावित है ? सत्य पर अपनी बपौती मानने वाले तथा कट्टर कहे जाने वाले वैदिक, कुरानी, बाइबिलवादी क्या उपर्युक्त संतमत के शाश्वत सत्यो से अपने को आज बचा सकते हैं ?

सत्य का अंश सभी परम्पराओ में है। निष्पक्ष होकर उसे देखना चाहिये। संतमत की शाखाओ में भी जो जड़ता है, उसका विध्वंस आवश्यक है। वैदिक, कुरानी एवं बाइबिलवादी ही दोषी नही है। कितना ही उज्ज्वल मत प्रारम्भ होता है, देश-काल के आयाम में उसमें भी जड़ता आने लगती है। आवश्यकता है निष्पक्षता पूर्वक सभी जड़ताओं को नष्ट करके सत्य एवं सदाचार का उद्घाटन करना।

७

उपसंहार

सद्गुरवे नमः

कबीर-दर्शन

सातवां अध्याय

उपसंहार

१

सत्य सनातन, उसके उपदेष्टा समय-समय पर

सत्य नित्य है। सत्य की कोई रचना नहीं कर सकता। सत्यद्रष्टा केवल उसका उद्घाटन करता है। अर्थात जो सत्य को समझ लेता है, वह उसका व्याख्यान कर देता है। सत्य को अमुक व्यक्ति ही समझ सकता है, दूसरा नही—यह मानना हद दर्जे की भूल है। इस संसार में अमुक मत के गुरु का ही सत्य पर एकाधिकार नही है। संसार के समस्त साधको ने सत्य के अंशों को देखा है। कोई अधिक अंशों को देखा है कोई अपेक्षया कम देख सका है। सर्वांश कोई-कोई देख सका है। किंतु सर्वथा सत्य-अंश से रहित कोई नही है, जिससे उसका तिरस्कार किया जा सके।

सत्य के सर्वांश को देखने का मतलब भी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से है। भौतिक पदार्थो के सर्वांश एवं विविध भेदो के सत्य को अपने पूरे जीवन मे कोई नही देख सकता। हमारे शरीर मे कितने बाल है, यही जान पाना असंभव-सा है। विश्वप्रपंच के कण-कण को कौन जान सकता है!

आत्म और अनात्म, जो क्रमशः चेतन और जड़ के रूप में विद्यमान हैं, आत्म-चेतन को स्वस्वरूप तथा अनात्म-जड़ को विजाति समझ लेना ही सत्य को पूर्ण रूप से समझ लेना है। सम्पूर्ण अनात्म को जड़ रूप में समझ कर तथा उससे निवृत्त होकर, स्वस्वरूप आत्म में लौट आना ही आध्यात्मिक सत्य को समझ लेना है।

इस अनादिकाल के जगत में जो व्यक्ति जड़ प्रकृति से भिन्न स्वस्वरूप को समझ कर उसमें स्थित हुआ, वह कृतार्थ हुआ और उसने इस सत्य को समाज के सामने रखा। इस सत्य-ज्ञान को हम देश और काल की परिधि में बांध नहीं सकते हैं, कि अमुक देश और काल में अमुक व्यक्ति ही उसको समझ पाया है और दूसरे देश-काल में दूसरे व्यक्ति नही समझ सकते। सत्य सनातन है, उसके समझने और व्याख्यान करने वाले समय-समय पर होते रहते हैं।

२

एक दर्शन दूसरे से सर्वथा अलग नहीं

इस जड़ और चेतन की भिन्न सत्ता को ठीक से समझने का प्रयास और इस जीवन में कल्याण की प्राप्ति के साधनों का निर्धारण कर उस पर चलना—दर्शन है। शुष्क तत्वचिंतन मात्र दर्शन नहीं कहला सकता, जब तक उसमें जीवन की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के साधन निहित न हों तथा उसके फल में इसी जीवन में शांति न मिले।

जितने दर्शन हैं, वे एक दूसरे से सर्वथा अलग नही हो सकते। यहां तक कि भौतिकवादी दर्शन भी; क्योंकि वह कोई शून्य में नही तैरता है। वह भी जड़-चेतनात्मक जगत की व्याख्या करता है। वह व्याख्या अपने ढंग से करता है। वह जड़ तत्वों को चिरंतन एवं नित्य मानता है और चेतना को उसकी उपज, जो उसकी भूल है। परन्तु भौतिक दृष्टि से लोककल्याण की उसकी भी एक वृहद् योजना है। उसको भौतिकवादी कहकर उड़ाया नही जा सकता। कहीं-कहीं तो उसका बड़ा ही यथार्थवादी दृष्टिकोण होता है और कहीं-कहीं वह भूल भी करता है। तो घोर अध्यात्मवादी भी कम भूल नही करते। वे आत्मा एवं चेतन को चिरंतन एवं नित्य मानते, यह तो ठीक करते हैं; परन्तु वे कहते हैं यह भौतिक जगत आत्मा की ही उपज है। उनके ख्याल से चेतन का ही परिवर्तित रूप जड़ जगत है। घोर अध्यात्मवादी यहां तक मानते हैं कि यह चांद, सूरज, पृथ्वी, नक्षत्रादि से भरा जड़ जगत है ही नहीं। यह यदि प्रतीत होता है, तो मनुष्य के मन की सनक मात्र है।

घोर आत्मवादी जड़ को उड़ा देना चाहते हैं तथा घोर जड़वादी आत्मा को। वैसे दोनों के दर्शनों में बहुत ऐसी बातें हैं जो सार हैं; परन्तु दोनो अपने

जोश में इतने अति में चले जाते हैं कि दोनों एक मिथ्या दृष्टि को जन्म देते है। जड और चेतन—दोनों की स्वतन्त्र-सत्ता की स्वीकृति पूर्ण यथार्थवादी दृष्टिकोण है और यही पूर्ण दर्शन है।

वेदो का सार उपनिषद्, गीता, सांख्य आदि छह दर्शन, जैन, बौद्ध, सद्गुरु कबीर से लेकर फैला हुआ विशाल संतमत, यहां तक इस्लाम, बाइ-बिलवाद आदि विश्व के समस्त दर्शन—एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सभी दर्शन अपनी विशेष व्याख्या रखते हुए आत्म-अस्तित्व स्वीकार करते हैं। भौतिकवाद को छोड़कर सभी दर्शन शरीरांत के बाद भी अपने किये हुए कर्मो के फलभोग मानते है। सब दर्शन जीवन में आसुरी-सम्पदा छोड़कर दैवी-संपदा एवं सदा-चार को प्रश्रय देते हैं। सभी दर्शनो का सिद्धान्त है कि भौतिकता से हटकर आध्यात्मिकता में ही चिरशांति है। सभी किसी-न-किसी ढंग से मोक्ष का प्रतिपादन करते है। मानवता के कल्याण के लिए सबका प्रयास है, यहां तक भौतिकवाद का भी।

भौतिकवाद तो भौतिकवाद ही है। बौद्ध दर्शन को हम भौतिकवादी नही कह सकते। वह ठेठ अध्यात्मवादी अवश्य नही है; किंतु उसकी अन्य मान्यतायें एव आचरण—पुनर्जन्म, कर्मफलभोग, बंध-मोक्ष, सदाचार, वैराग्य, तृष्णाक्षय से निर्वाण-लाभ, आध्यात्मिक उन्नति के लिए साधना एवं तपस्या—अध्यात्मवाद से अलग नही जा सकते। इनके अतिरिक्त विश्व के सभी दर्शन अध्यात्मवादी है। उनमे मुख्य भेद केवल दो हैं। एक आत्मा से अलग पर-मात्मा मानता है, दूसरा आत्मा को ही परमात्मा मानता है। भौतिक व्याख्या में उतरने पर इनमे ज्यादा भेद लगता है। एक कहता है कि आत्मा एवं जीव जड़ प्रकृति से एकदम अलग है देहोपाधि में उसकी अपनी वासनात्मक क्रिया है। जहां तक जड़ पदार्थो की गतिविधि का प्रश्न है वह उनके गुण-धर्मो से स्वयं है। उसमें किसी परमात्मा-ईश्वर नामक चेतन को हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नही। दूसरा कहता है जड़ में स्वयं क्रिया कहां, वह तो पर-मात्मा नामक चेतन से क्रियाशील है। यह धारणा व्यक्ति को अति चेतनावाद की ओर ले जाती है। इस धारणा में जड़ तत्वो की उदारता पूर्वक व्याख्या नही की जाती। बल्कि जड़ तत्वो की अनादिता, उनकी स्वत:सिद्ध क्रिया-शीलता तथा उनकी मौलिक सृष्टि-शक्ति को—जो परम सत्य हैं—झुठलाने की कोशिश की जाती है।

हम भौतिक व्याख्या को छोड़कर केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में आ जायं, तो आत्मा और परमात्मा एव जीव और ईश्वर का भेद मिथ्या सिद्ध हो

जायगा। समाधिलाभ ही आध्यात्मिकता की सर्वोच्च स्थिति है, और यह संकल्पों के उपशमन से होता है। जहां कोई संकल्प ही नहीं है, वहां विचार कहां और जहां कोई विचार नहीं, वहां आत्मा-परमात्मा एवं जीव-ईश्वर की भिन्नता की कल्पना कहां ! वहां तो चेतन-अस्तित्व मात्र है।

इसके पहले साधना-काल में जो साधक जीव से पृथक परमात्मा-ईश्वर की कल्पना कर उसकी उपासना द्वारा मानसिक शांति का लाभ उठाता है, उसको नकारा नहीं जा सकता; परन्तु वह भी है शुद्ध कल्पना ही। अततः आत्मा से पृथक परमात्मा-ईश्वर धारणा मात्र ही है। आत्मा से पृथक उसकी धारणा कल्पना पर अवलंबित है। अनुभूति तो आत्मा में ही होती है। अतएव उच्चतम साधना में भी आत्मा-परमात्मा एवं जीव-ईश्वर की पृथकता व्यर्थ है और समाधिलाभ में तो दो की कल्पना ही असभव है। जीववाद, ईश्वरवाद आदि वाद को लेकर लड़ने के समय में सारा विवाद दिखता है; परन्तु साधक की दृष्टि में वाद-विवादों का कोई मूल्य नहीं। कौन व्यक्ति किस वाद का समर्थक है, इसका कोई बड़ा मूल्य नही; किन्तु कौन व्यक्ति अपने मन को कितना शुद्ध एवं संयत रख सकता है, इसका मूल्य है। जैसा कि ऊपर कहा गया, समाधिलाभ में जीववाद, ईश्वरवाद, ब्रह्मवाद आदि कोई वाद रह नही जाता और न तो वहां जीव-ईश्वर की भिन्नता की कोई अनुभूति संभव है। वहां तो स्वस्वरूप एवं स्वात्म चेतन का अस्तित्व मात्र रहता है।

जितने दर्शन और संप्रदाय हैं, सब शांति के अन्वेषक हैं। परस्पर जितनी पृथकता मालूम होती है, कुछ विचारों का अंतर है और ज्यादा शब्दों की उलझनें हैं। किसी सत्य के लिए विविध दृष्टिकोण हो सकते हैं, न कि विविध तथ्य। अतएव दर्शनों तथा संप्रदायों को लेकर लड़ाइयां केवल अहंकार सूचक हैं।

अतीत की तरफ हमारी जितनी दृष्टि जा सकती है, इतिहास का अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि विचारों की विविधता मिटायी नही जा सकती। किसी को हमसे भिन्न विचार रखने में संतोष है, तो हम उसको नास्तिक, काफर एवं नरकगामी कहने के अधिकारी कहां हैं ! जब हम स्वयं दूसरों से भिन्न विचार रखने में स्वतंत्र हैं, तब दूसरा स्वतंत्र क्यों नहीं ? परस्पर विचारों की भिन्नता को मिटाने का प्रयास किया जा सकता है; परंतु हठ नही। सबके विचारो की भिन्नता मिटना असभव है। केवल मिथ्या अहंकार छोड़ देने के बाद विविध दर्शन एवं मत के विचारक एक जगह बैठकर आराम से बात कर सकते हैं। हमारी दृष्टि केंद्रित होनी चाहिए मिलनबिंदु पर, विभाजक रेखा पर नहीं।

दर्शन और मत चाहे जितने हो जायं, परन्तु वे एक दूसरे से सर्वथा अलग नहीं हो सकते। किसी भी दर्शन या मत को दूसरे से एकदम अलग खींचने का प्रयास, उसकी अपनी मौत है। आत्म-अस्तित्व और शांति-पथ-सदाचार ही सब दर्शनों का मिलनबिंदु है। इनमें अवांतर भेद की कल्पनायें कोई अपना बड़ा महत्व नही रखतीं।

दर्शन, अध्यात्म और धर्म के पथ पर चलने वाले ही सर्वाधिक बुजुर्ग एवं गंभीर माने जाते हैं। यदि वे विचारों की भिन्नता को लेकर परस्पर उत्तेजित होते हैं, तो उनका अपना आदर्श कहां रहा! दर्शन, अध्यात्म एवं धर्म आकाश में तैरने वाली वस्तुयें नही है। वे तो मनुष्य के जीवन में ही चरितार्थ होते हैं। किसी दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक का जीवन अधिक समन्वयात्मक तथा सामंजस्यपूर्ण होना चाहिए। एक तरफ दर्शन, अध्यात्म एवं धर्म को शांति लाने वाले बताना तथा दूसरी तरफ इनके पक्षधरो का परस्पर कटुता एवं उत्तेजना फैलाने का प्रयत्न करना अपने आप में असंगत है। जो जितना अधिक सहनशील है, वह उतना ही अधिक दर्शन, अध्यात्म एवं धर्म को समझ सका है। विचारो की भिन्नता को लेकर प्रेम मे भिन्नता करने की कोई आवश्यकता ही नही है। विचारो की भिन्नता को दूषण के रूप में नहीं, भूषण के रूप में देखना चाहिए। श्री माधवाचार्य की भाषा में "विविध रंगों के फूलो की माला किसके मन मे आकर्षण नही उत्पन्न करती ?"

माल्यं कस्य विचित्रपुष्परचितं प्रीत्यै न संजायते ?

३

प्राचीनता एवं आधुनिकता

कुछ लोग प्राचीनता के पक्षधर हैं, तो कुछ आधुनिकता के। आज के युग में इसका अंतर्द्वंद्व सर्वत्र चल रहा है। मान्यता, विचार, खान-पान, परिधान, रहन-सहन, संस्कृति, सभ्यता—सब में आज द्वंद्व दिखाई देता है। इस द्वंद्व का परिणाम निरंतर व्यक्ति, परिवार और समाज में दरारें बढ़ते जाना है।

ऐसे लोगों की आज भी कमी नहीं है, जो यह दृढता से मानते और कहते हैं कि दर्शन, अध्यात्म, धर्म, आचार, नियम—सब कुछ के लिए हजारों-लाखों वर्ष पूर्व जो निर्णय दे दिया गया है, वह सब-का-सब, सब समय के लिए एक-सा मान्य है। न उनमें कुछ तोड़ा जा सकता है और न जोड़ा। वे यह

मानते हैं कि सत्य को केवल पूर्व पुरुष ही देख सके थे। आज के लोग केवल उन्हीं की आंखों से देख सकते हैं, स्वतंत्र होकर अपनी आंखों से नही। या पहले किसी ईश्वर द्वारा सारे ज्ञान एवं नियम निर्धारित कर दिये गये हैं और वे सब-के-सब सदा के लिए अजर-अमर हैं। उनके ख्याल से पूर्व पुरष, पोथी एवं परम्परा के प्रति आज कोई जरा भी तर्क करता है, उनमे थोड़ा भी संशोधन लाता है तो वह उनके प्रति अश्रद्धालु एवं नास्तिक घोषित करने के योग्य है।

जो इतिहास को जानता है, उससे यह छिपा नहीं है कि ऋग्वैदिक काल से आज तक दर्शन, धर्म, कर्मकांड, उपासना, आचार-नियम आदि ने कितनी करवटें बदली हैं। यदि सदा के लिए सब कुछ पहले ही लिखकर रख दिया गया था, तो वेदों के बाद ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथ क्यो बने? उसके बाद उपनिषद की रचना क्यो हुई? बौद्ध और जैन विचार क्यों फैले? फिर उसके बाद छह भिन्न मत रखने वाले दर्शन, गीता, रामायण एवं महाभारत क्यो बने? उसके बाद पुराणो की क्या आवश्यकता थी?

वस्तुत: कुछ बातें तो शाश्वत सत्य होती है और उनके विषय मे मात्र भिन्न विचारकों के भिन्न दृष्टिकोणो से व्याख्यायें होती है। और कुछ बाते एवं नियम आदि देश-काल सापेक्ष होते है, जिनमे परिवर्तन स्वाभाविक है। जूवा में पत्नी तक को हार जाने वाले को धर्मावतार कहना, वेदव्यास तथा इन्द्र आदि के नियोग से महाभारत के बड़े-बड़े पात्रों को पैदा करना, द्रोपदी का पंच-भ्रतारी होना, यज्ञो मे पशु-वध होना आदि—आज के आयाम में सभ्यता की दृष्टि से नही देखे जा सकते। ऊपर तो बहुत साधारण बातें रखी गयी हैं। यदि वैदिक युग से आज तक की सारी बाते खोल कर रखी जायं, तो हमारे संकुचित विचार से लगेगा कि यह सब असंबद्ध प्रलाप है। वस्तुत: जैसे देश-काल के आयाम में भौतिक द्रव्य गति करते हैं, वैसे मानसिक स्थितियां और वैयक्तिक तथा सामाजिक नियम एवं आचरण भी गति करते है। इनमे शाश्वत सत्य का स्वरूप अक्षुण्ण बना रहता है तथा देश-काल सापेक्ष बाते बदलती रहती हैं। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि पहले की विचारी हुई बातो पर पुनर्विचार नही करना चाहिए।

उक्त आस्था वाले व्यक्तियो का यह विचार है, कि पहले की सारी बातें दैवी विधान है; पूर्ण पुरुष द्वारा उद्घोषित हैं। उनमें संशोधन की बात सोचना भी पाप है। उनके ख्याल से बीच के हजारो वर्षो के ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का कोई अर्थ नही है। वे समझते हैं कि हम प्राचीनता के प्रति सच्चे श्रद्धालु

होकर सत्य की उपासना में लगे हैं। इसमें कुछ विचार करने वाले विपथ-गामी हैं।

दूसरा पक्ष नयी रोशनी का है। वह कहता है जो कुछ पुराना है, सड़ गया है। वेद-शास्त्र नदी में फेंक देने चाहिए। हमारे सारे पूर्वज—अंगिरा, पुलस्त्य, वशिष्ठ, व्यास, सनकादि, नारद, राम, कृष्ण, कपिल आदि सब ज्ञान-हीन थे, असभ्य थे और उनके लिए और भी कठोर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए तथा उनको एकदम भूल जाना चाहिए। इस जीर्ण, दरार भरे, हवा-प्रकाश-रहित गंदे मकान की मरम्मत संभव नही है। इसको भहरा देना चाहिए। इसकी नीव भी खोद कर बहा देना चाहिए और नये सिरे से नीव डालकर, नये माडल का भव्य-भवन खड़ा करना चाहिए। आज के तीव्रगामी वायुयान तथा अणुबंम के युग से उस अत्यन्त पिछड़े युग का कोई पटतर नही हो सकता, जब वे धन्वाबाण ले घोड़ों के रथ पर बैठकर युद्ध करते थे!

ऊपर की दोनों बाते समझदारी की नही है। हम सारी प्राचीनता को छोड़कर जी नही सकते। आधुनिक ज्ञान एवं उन्नति भी प्राचीन ज्ञान तथा निरन्तर होते हुए प्रयास का परिणाम है। एक नवजात बच्चे को भाषा और ज्ञान-विज्ञान से रहित जगह में पाला जाय तो वह पशु के सदृश खाने-पीने एवं यौन-क्रिया के अतिरिक्त कुछ नही जान सकता। आज का ज्ञान-विज्ञान हजारों-लाखो वर्षो का विकास है। यह सब आधुनिक लोगो के कपार से एकाएक नहीं पैदा हो गया है। यदि पहले के लोग सब मूर्ख ही थे, तो इसका मतलब है कि हमारी पूर्व परम्परा असभ्य ही है और हम पशुओ की संतान है। फिर हमारा यह विकास किस बल पर हुआ?

वेद से लेकर बाइबिल, कुरान तथा अन्य अनेक प्राचीन पुस्तकों में हमारे पूर्वजों के इतिहास की झलकियां हैं। उनमें उनके ज्ञान, आचार एवं रहन-सहन के तौर तरीके हैं। प्राचीन भौतिकशास्त्र तथा अध्यात्मशास्त्र से हम बहुत कुछ सीखे हैं तथा सीख सकते हैं। हमें अपने पुरुखों के प्रति कृतज्ञ होना है, उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करनी है।

इसके अतिरिक्त हम यह नहीं कह सकते कि सारी प्राचीन बातें पूरी-की-पूरी बिना विचार किये, मान लेनी चाहिए। पूर्व-पूर्व की बातो का जितना महत्व है, उत्तर-उत्तर काल की बातो का भी उतना ही महत्व है। पिता के कंधे पर बैठकर पुत्र अपने पिता से ज्यादा दूर तक देख लेता है, इस तथ्य को भुलाया नही जा सकता। इसमें पिता की अपनी विशेषता है तथा पुत्र की अपनी।

४

जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य

सब प्रकार चित्त का समाधान होकर चिरंतन एवं एकरस शांति की प्राप्ति—जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य है। मूलतत्व, सृष्टि, जगत, जीवन, प्रारब्ध, पुरुषार्थ, साधनायें, प्राप्तव्य, स्थिति आदि पर पूर्ण विचार करके रहनी में ठहर जाने पर मनुष्य इसी जीवन में कृतार्थ हो जाता है।

कुछ लोगों की धारणा है कि मूलतत्व केवल भौतिक एवं जड़ है, चेतन केवल क्रम-विकास है। आत्मा या चेतन एक भ्रांति है। दूसरे लोगों की धारणा है कि आत्मा एवं चेतन ही मूलतत्व है जड़तत्व एवं भौतिक जगत केवल भ्राति है। यह दिखता हुआ विश्वब्रह्मांड खपुष्पवत कुछ है ही नहीं। चेतन से भिन्न जड़तत्व नाम की कोई वस्तु ही नहीं है।

उपर्युक्त दोनों धारणायें एकांगी चिन्तन के फल हैं। दोनों ही धारणायें दोनों सिरे की अतियां हैं। इस विषय को हम तीसरे अध्याय के 'जड़ तत्व' एवं 'चेतन अस्तित्व' आदि संदर्भों में विस्तार पूर्वक देख आये हैं। जड़ तत्वो में चेतना का कोई अंश न होने से उनसे चेतन का निर्माण असंभव है। चेतन अपने आप में साक्षी, द्रष्टा, एकरस अनुभविता होने से वह स्वयं अकृत्रिम, नित्य, अजर, अमर, निर्विकार, शुद्ध-बुद्ध एवं मुक्त स्वरूप है।

दूसरी तरफ निर्विकार ज्ञान स्वरूप चेतन से जड़ स्वरूप भौतिक द्रव्य नहीं बन सकते। इन भौतिक जड़ द्रव्यो के समूह रूप परिवर्तनशील, ठोस विश्व-ब्रह्मांड एव असंख्य ग्रह-उपग्रहो को हम मन की सनक, चेतन आत्मा का पागलपन, स्वप्न, भ्रम एवं मिथ्या नही कह सकते। यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह निश्चित ही शास्त्र कहे जाने वाले ग्रंथों के मिथ्या मतों का दुराग्रही मात्र है। फिर वह चाहे दुनिया का बड़ा-से-बड़ा नामी-ग्रामी दार्शनिक, सत एवं विचारक क्यो न हो, वह मिथ्या मत का ही पोषण कर रहा है। चेतन-जड़, साक्षी-साक्ष्य, द्रष्टा-दृश्य, ज्ञाता-ज्ञेय—इतने स्पष्ट भिन्न हैं कि सारे दुराग्रहों से रहित होने पर इनकी शाश्वत भिन्नता स्वीकारनी ही पड़ेगी। भिन्नता स्वीकारे बिना कल्याण होना ही असंभव है। कुछ हमसे भिन्न अवश्य है जिसमें हम उसे मान-मान कर बंधे हैं और उसकी मान्यता को छोड़कर ही हम मुक्त हो सकते हैं। कबीरदेव ने कहा है "करि विचार होहु भिन्न[1]।"

१. बीजक साखी, १५६।

मूल जड़ तत्वों में स्वभावसिद्ध गुण-धर्म एवं क्रियायें हैं। अतएव उनसे सृष्टि स्वय स्वचालित अनादि-अनन्त हैं। इस जगत एवं सृष्टि का न कभी आदि है न अन्त। यह सदैव रहा है तथा सदैव रहेगा। कोई सर्वव्यापी चेतन जड़ तत्वों एवं ब्रह्माण्ड में प्रेरणा उत्पन्न करके सब कुछ चलाता है—यह मनुष्य की केवल निराधार कल्पना है। जड़ द्रव्य में गति स्वयं है। उसके संचालक की बाहर से आवश्यकता नहीं। पृथ्वी, चन्द्र आदि ग्रहो की स्वचालित गति से दिन-रात तथा छह ऋतुओं का परिवर्तन स्वयं होता रहता है। इस प्रकार जड़ विश्व-ब्रह्मांड चेतन से पृथक स्वतः क्रियाशील अनादि-अनन्त है।

जड़ से सर्वथा पृथक असंख्य चेतन जीव हैं, जो न व्याप्य है और न व्यापक। यदि चेतन व्यापक हो तो एक की व्यापकता दूसरे की सत्ता का अवरोधक होगी। एक चेतन व्यापक हो, तो अन्य चेतन का न अस्तित्व रह सकता है तथा न जड़ तत्वों का। चेतन जड़ से पृथक है तथा एक चेतन भी दूसरे चेतन से पृथक हैं, यह प्रत्यक्ष एवं अनुभवसिद्ध तथ्य है। वास्तविकता को सरल-सहज ईमानदारी से न स्वीकारना तथा उसे मतवाद के चक्कर में डालकर तथ्य को उलझा देना, यह उचित नही। जड़-चेतन तथा सब चेतनों की एकता बतलाना ऐसी ही उलझन भरी बात है।

जीव अपने स्वच्छ स्वरूप को भूलकर जड़ में मोह करता रहता है, अतएव उसके वासनावश वह बारम्बार संसार के चक्कर में भटक रहा है। जड़ का मोह छोड़कर अपने स्वरूप मे लौट आना ही उसका परम पुरुषार्थ है। आत्मा का लक्ष्य स्वय आत्मा अर्थात जीव का लक्ष्य स्वय जीव ही है। व्यक्ति का अपना प्राप्तव्य बाहर कुछ नहीं है। वह स्वयं ही, अपना प्राप्तव्य है। इसलिए यहा न किसी मूर्ति, वृक्ष, पत्थर, पानी, सूरज, चांद, शून्य आदि के सामने गिड़गिड़ाना है और न रोना। यहा किसी की विनती कर, घूस देकर उसे मनाना नही है, किन्तु विवेक-वैराग्य सम्पन्न सद्गुरु-संतों की सेवा-भक्ति करते हुए उनसे वास्तविक बोध एवं प्रेरणा लेकर अपने आप उठ खड़ा होना है। कमजोर बनकर कोई भी अपना बेड़ा पार नही कर सकता। हमारे जीवन की सारी बुराइया, केवल हमारी मानसिक दुर्बलताओ के फल है। हम उन्हें अपने दृढ़ पुरुषार्थो द्वारा दूर किये बिना कृतार्थ नही हो सकते।

साधक भोगों का त्याग किये बिना अध्यात्म-मार्ग में अग्रसर नही हो सकता। सभी इन्द्रियो के रस जब तक तुच्छ नही हो जाते, तब तक मन का भटकना कैसे छूट सकता है। दार्शनिक विचार किसी के चाहे जो हों, विषयों से पूर्ण वैराग्य हुए बिना कोई अपनी सहज चेतना की अवस्था में नही ठहर

सकता। बिना पूर्ण वैराग्य के मन सबसे छूट नहीं सकता और सबसे छूटे बिना अपनी असंगदशा में स्थिति नहीं हो सकती।

विवेकवान को जीवन-निर्वाह की चिन्ता नहीं होती। वह उचित पुरुषार्थ करता है तथा प्रारब्ध पर निर्भर रहता है। हमें उचित पुरुषार्थ करना चाहिए, जीवन का निर्वाह जीवन के साथ अपने आप होता जाता है।

सपने से जागकर जैसे व्यक्ति को स्वप्न के प्राणी-पदार्थों के प्रति राग नहीं होता, वैसे विवेकवान को जागृति के इन सारे प्राणी-पदार्थों के प्रति राग नहीं होता। वह विवाद-रहित, राग-रहित एवं देहाभिमान से शून्य होकर जीवन-यापन करता है। मिलन-वियोग में हर्ष-शोक-रहित रह कर विवेकवान समता में बरतता है। जड़ाध्यास एवं जड़मोह सर्वथा छूट जाने पर साधक भौतिक राग के धरातल से ऊपर उठ जाता है। बाहर का सब तुच्छ हुए बिना कोई स्वरूपस्थिति के राज्य में नही प्रविष्ट हो सकता। स्वरूपस्थिति में पहुचे हुए पुरुष के लिए जगत बवना हो जाता है। वह लोक-कल्याण के लिए भी पागल होकर नहीं भटकता। वह समझता है कि संसार अपनी स्वाभाविक गति से प्रगति करता है। हम उसमें जल्दीबाजी के लिए सर पटक कर कुछ नहीं कर सकते। विवेकवान लोकमंगल के लिए अपना सहज कर्तव्य करता है और सत्पात्र लोग उसके प्रभाव से प्रेरणा लेकर अपना कल्याण करते है और जिन्हें रुचि नहीं है, उनके सामने सर पटकने पर भी वे कुछ ध्यान नही दे सकते। संसार का कोई भी पुरुष संसार भर को सदाचारी एवं ज्ञानी न बना सका है और न बना सकता है। हां, महापुरुषों ने अपने प्रयत्न किये है। जिनके प्रभाव में जो आ गये हैं वे उनके संरक्षण में सुधरे है। बारम्बार जन्म लेकर संसार के उद्धार करने की बात निश्चित ही परोपकार की दृष्टि से एक पवित्र भावना है, परन्तु है एक सनक ही।

हर साधक का कर्तव्य है कि पहले वह अपना कल्याण कर ले। स्वयं तृप्त हुए बिना दूसरे को तृप्ति के लिए प्रेरणा देने का क्या मूल्य है? हजार उपदेष्टाओं से वह प्रेरणा नही मिल सकती, जो रहनी संपन्न पुरुषों की दिव्य रहनी देख कर मिलती है। जीवन में जिनकी सारी कामनायें निवृत्त है, जिनका सब कुछ पूरा हो गया है, जो सब समय तृप्त हैं, उनको जीवन और मरण मे कोई अन्तर नही दिखता।

इच्छा का त्याग ही अमृत है। सारी इच्छाओं की निवृत्ति होने पर ही मनुष्य अपने चरम लक्ष्य-चिरंतन शांति को पाता है। इस शाश्वत स्थिति की परम ऊंचाई तक पहुंचने के लिए देह तथा देह संबन्धी समस्त प्रपंचों से ऊपर

उठना ही पड़ेगा। भ्रम को छोड़े बिना वास्तविकता के ठोस धरातल पर हम नही पहुंच सकते। यदि हमें मोक्ष प्रिय है, तो देह तथा जगत को तुच्छ होना ही पड़ेगा। जो अंततः छूट ही जाता है ऐसे जगत का मोह छोड़े बिना, कभी न छूटने वाली स्थिति को हम कैसे पा सकते हैं! इसलिए सद्गुरु कबीरदेव ने कहा है "यदि तू मेरे समान स्थिति चाहता है, तो सबकी आशा छोड़ दे और मेरे समान निष्काम हो जा, फिर सब सुख—जीवन्मुक्ति स्थिति—तेरे पास है।"

जो तू चाहै मूझको, छाँड़ सकल की आस।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास।।

(बीजक, साखी २६८)

सातवां अध्याय समाप्त

परिशिष्ट

सद्‌गुरु कबीर कृत व उन पर आधारित पुस्तकें

बीजक

पुस्तक	संपादक	प्रकाशन स्थल
बीजक	श्री हंसदास शास्त्री व महावीर प्रसाद	बाराबंकी
कबीर साहेब का बीजक (टिप्पणी युक्त)	श्री विचार साहेब शास्त्री	बनारस
मूल बीजक	श्री रामखेलावन गोस्वामी	चंपारन
मूल बीजक	डा० शुकदेव सिंह	इलाहाबाद
मूल बीजक	पुस्तक मन्दिर	मथुरा
मूल बीजक	भारतीय पुस्तकालय	बनारस
बीजक मूल (शब्द शतक सहित)	जित लाल मुन्शी	पटना
मूल बीजक	कबीर चौरा मठ	वाराणसी
मूल बीजक	कबीर मठ	धनौती
मूल बीजक	श्री रामस्वरूप साहेब	बुरहानपुर
बीजक	पा० प्र० कबीर संस्थान	इलाहाबाद
संत कबीर का बीजक	शिवव्रत लाल	गोपीगंज
कबीर साहिब का बीजक	बेलंवेडियर प्रेस	इलाहाबाद
सत्य शब्द टकसार अर्थात बीजक मूल	युगलानद	लखनऊ
मूल बीजक	महंत मेथी गोसाईं साहेब	छपरा
बीजक मूल (नेपाली अनुवाद)	नेत्र बहादुर थापा	काठमांडो

बीजक की टीकायें

नाम	टीकाकार	प्रकाशन स्थल
बीजक टीका त्रिज्या	श्री पूरण साहेब	बुरहानपुर
बीजक टीका पाखंड खंडिनी	विश्वनाथ सिंह (रीवां नरेश)	लखनऊ
बीजक टीका गुरुगम बूझ (अप्रकाशित)		धनौती

बीजक सटीक जीवकार्थ बोधिनी	श्री विचार साहेब	इलाहाबद
बीजक भाष्य	श्री सदाफलदेव	बलिया
बीजक विमला टीका	श्री ब्रह्मलीन मुनि	सूरत
बीजक टीका सर्वांग पद प्रकाशिका	श्री महाराज राघव साहेब	बनारस
बीजक सटीक	श्री मेंही साहेब	लखनऊ
बीजक भाष्य (तीन खडों में)	श्री रामस्वरूप साहेब	बुरहानपुर
बीजक सटीक सुरहस्यम्	श्री हनुमान साहेब	बड़ौदा
बीजक शिशुबोधिनी टीका	"	फतुहा
बीजक संस्कृत व्याख्या	"	बड़ौदा
बीजक स्वानुभूति व्याख्या	"	चकना
बीजक सटीक	श्री प्रयाग साहेब	लखनऊ
बीजक पारख प्रबोधिनी टीका	अभिलाष दास	इलाहाबाद
बीजक शिक्षा	"	"
बजक प्रवचन	"	"
बीजक सटीक	श्री सुकृतदास बरारी	बगलौर
बीजक सटीक	श्री जयराम दास	मथुरा
कबीर वांग्मय (छह खंडो मे)	डा० जयदेवसिंह वासुदेवसिंह	बनारस
बीजक सटीक	श्री हरि साहेब	बनारस
बीजक सटीक	श्री अहमदशाह (अंग्रेजी)	कानपुर
बीजक सटीक	पादरी प्रेमचद (अंग्रेजी)	कलकत्ता
बीजक सटीक (गुजराती)	श्री मणिलाल तुलसीदास मेहता	बड़ौदा
बीजक सटीक (उर्दू)	महर्षि शिवव्रत लाल	अलीगढ़
बीजक सटीक (नेपाली)	श्री आज्ञा साहेब	काठमाडो
बीजक सटीक अप्रकाशित	श्री वासुदेव साहेब	बाराबकी
बीजक (इंगलिश अनुवाद अपूर्ण)	डा० शुकदेवसिंह व लिंडाहेस	अमेरिका

कबीरपंथी रचनायें

श्री कबीर निर्णय मन्दिर बुरहानपुर

बीजक सटीक त्रिज्या	श्रा पूरण साहेब
निर्णयसार	"
वैराग्य शतक	"
शब्दावली	"
निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन	श्री काशी साहेब

तत्वयुक्त निजबोध विवेक	श्री काशी साहेब
सत्यज्ञान बोध नाटक	,,
जड़ चेतन भेद प्रकाश	,,
संध्यापाठ मूल	,, (संपादन)
निष्पक्ष प्रश्नोत्तर	श्री दामोदर साहेब
तिमिर भास्कर	श्री प्रेम साहेब
इक्कीस प्रश्न	श्री राम साहेब
पारख विचार	(अज्ञातकृत)
सखुन बहार दर्पण	श्री नारायण साहेब
विवेकसार	,,
पारखपद शब्दामृत	श्री भगवान साहेब
शांति संदेश	श्री शांति साहे
शांति स्मृति	,,
बीजक भाष्य (रमैनी)	श्री रामस्वरूप साहेब
बीजक भाष्य (शब्द)	,,
बीजक भाष्य (साखी)	,,
पचग्रथी सटीक	,,
षट्ग्रंथी सटीक	,,
इक्कीस प्रश्न तथा पारख विचार	,,
निर्णयसार सटीक	,,
वैराग्यशतक सटीक	,,
न्यायनामा सटीक	,,
संध्यापाठ सटीक	,,
जड़चेतन भेद प्रकाश सटीक	,,
कबीर परिचय सटीक	,,
स्वरूप भजन माला	,,
श्री बालक भजन माला	,,
भजन अमर सागर	,,
मानव कल्याण प्रबोध	,,
पंचशतक साखी	,,
भक्ति पुष्पांजलि	,,
छन्द कवितावली	,,
संध्यापाठ (गुजराती)	

निर्णयसार (गुजराती)	
रहनि परीक्षा निर्णय बोध	श्री गुरुशरण साहेब
धर्म सनातन शुद्ध विचार	"
शिक्षासार अनेक विचार	"
पारख निर्णय गुरुदया	"
स्वरूप निष्ठासार शांतिसदन	"
बोध प्रकाश	"
तितिक्षा बोध कीर्तन	श्री तितिक्षा साहेब
तितिक्षा बोध वाटिका	"
अधीन भजनादि वाटिका	श्री अधीन साहेब
जीवन उद्देश्य	श्री तरण साहेब
जीवन व्रत	"
आदर्श मानव धर्म	श्री अनन्य साहेब
जिज्ञासु बोध	"
भक्त भजन कथन	श्री नूरसिंह गौटिया
संत समाज बाराबंकी	
भवयान	श्री विशाल साहेब
मुक्तिद्वार	"
सत्यनिष्ठा	"
नौ नियम	"
भवयान सटीक	श्री प्रेम साहेब
मुक्तिद्वार सटीक	"
सत्यनिष्ठा सटीक	"
नौ नियम सटीक	"
सत्यज्ञान प्रकाश	"
मुमुक्षु स्थिति शिक्षा प्रवाह	"
अपनी जागृति	"
विशाल वृतांत	"
विशाल सरोज भजन माला	"
विशाल शतदल कमल	"
प्रकाश भजनावली	श्री प्रकाश साहेब
विशाल विभूति प्रथम भाग	श्री आज्ञा साहेब
विशाल विभूति द्वितीय भाग	"

गुरुपद विनोद	श्री चेतन साहेब
शिक्षावली	,,
गुरुमहिमा रहस्य	,,
संध्यापाठ	,,
कबीर मानव प्रकाश	,,
व जीवन सुधा	श्री शरण साहेब
बाल युवक मानवता प्रकाश	,,
कबीर महिला उद्धार	,,
पारख भजन माला	,,
भक्ति भजन माला	,,
सत्य बोधामृत	श्री सत्यपाल साहेब
सत्य निवेदन	श्री सत्य साहेब

कबीर धर्म मन्दिर बड़हरा (पारख प्रकाशक कबीर संस्थान इलाहाबाद)

बीजक	
कबीर भजनावली	
विवेक प्रकाश	श्री रामसूरत साहेब
बोधसार	,,
रहनि प्रबोधिनी	,,
गुरु पारख बोध	,,
शिक्षासार (अप्रकाशित)	,,
विशाल शतदल कमल (पद्यानुवाद)	,,
गीतासार (पद्यानुवाद)	,,
भजन प्रवेशिका	श्री निर्बन्ध साहेब
बीजक पारख प्रबोधिनी टीका	अभिलाषदास
पंचग्रंथी सटीक	,,
विवेक प्रकाश सटीक	,,
बीजक शिक्षा	,,
बीजक प्रवचन	,,
रहनि प्रबोधिनी सटीक	,,
कबीर परिचय सटीक	,,
कबीर अमृतवाणी सटीक	,,
गीतासार (व्याख्या सहित)	,,

बोधसार सटीक	अभिलाषदास
गुरु पारख बोध सटीक	"
कबीर दर्शन	"
रामायण रहस्य (अप्रकाशित)	"
जगन्मीमांसा	"
कल्याण पथ	"
ब्रह्मचर्य जीवन	"
मानसमणि	"
सरल शिक्षा	"
कबीर पर शुक्ल की और मेरी दृष्टि[1]	"
संत सम्राट सद्गुरु कबीर	"
वैराग्य संजीवनी	"
तुलसी पंचामृत	"
स्त्री बाल शिक्षा	"
आप किधर जा रहे हैं ?	"
भजनावली	"
व्यवहार	"
अनन्त की ओर	"
बुरहानपुर श्री कबीर निर्णय मन्दिर के महापुरुष	"
कबीरपंथी जीवनचर्या	"
हितोपदेश समाधान	"
अहिंसा शुद्धाहार	"
संत महिमा	"
मैं कौन हूं ?	"
जीवन क्या है ?	"
कबीर कौन ?	"
कबीर संदेश	"
सरल बोध	"
आदेश प्रभा	"
राम लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक	"
Who am I ?	"
बुद्धिविनोद	"

अंतर्संगीत	अभिलाषदास	
शाश्वत जीवन	"	
वृहदारण्यक, छांदोग्य, कठ उपनिषद्सार		
पारख प्रकाश (त्रैमासिक पत्र)		
जीवन गीत	जीवनदास-सजीवनदास	
मोहभंग	शुकदेव दास	
पारखपद पुष्पांजलि	डा० नीलमणि	
संत वचनामृत	अज्ञातकृत	
कबीर आश्रम बैरी (फतेहपुर)		
संगति कीजै साधु की	श्री ज्ञान साहेब	
दो में से एक	"	
नारी	"	
कबीर आश्रम अजगैबा		
निर्मल सत्यज्ञान प्रभाकर	श्री निर्मल साहेब	
न्यायनामा	"	
पारख विजय	श्री सुखसागर साहेब	
विद्युत प्रभाकर	श्री सेवा साहेब	
कबीर चौरा मठ वाराणसी		
पंचग्रन्थी	श्री रामरहस साहेब	
बीजक सटीक	श्री मेंही साहेब	
विचार ग्रन्थ	"	
बीजक सटीक	श्री राघव साहेब	
पंचग्रंथी सटीक	"	
साखी ग्रन्थ सटीक	"	
कबीर वचनामृत सटीक	"	
चौका आरती विधि	"	
निर्णयसार सटीक	"	बम्बई
वैराग्य शतक सटीक	"	बम्बई
कबीर परिचय सटीक	"	बम्बई
गोरख गोष्ठी	बाबा लखनदास	
सर्वाजीत गोष्ठी	"	
कबीर शब्दावली	"	
गुरु माहात्म्य (विविधसंत)		

संत कबीर का सहज योग	श्री गंगाशरण साहेब शास्त्री	
कबीर जीवन चरित	,,	
कबीर सिद्धान्त दर्शन	,,	
कबीर स्तोत्र माला		
भजनमणि माला		
मानव शिक्षा	श्री रामनन्दन साहेब	
नन्दन कुसमांजलि	,,	
कबीर साहब	श्री विवेकदास (सं०)	
कबीर साहित्य की प्रासंगिता	,,	
साधमता है सार	,,	
श्री गुरु माहात्म्य ज्ञान	,,	
संध्यापाठ	,,	

श्री कबीर हनुमत पुस्तकालय वाराणसी ,,

बीजक शिशुबोधिनी टीका	श्री हनुमान साहेब षटशास्त्री	फतुहा
बीजक संस्कृतबद्ध स्वानुभूति व्याख्या	,,	बड़ोदा
,, रबोधिनी व्याख्या	,,	फतुहा
बीजक स्वानुभूति व्याख्या	,,	चकनामठ
साखी ग्रंथ सटीक	,,	चकनामठ
शब्दामृत सिन्धु सटीक	,,	चकनामठ
तीसा यंत्र टीका सहित	,,	वाराणसी
सद्गुरु कबीर साहेब का संदेश	,,	सीमली
कबीर कौशल सार	,,	चकना
कबीर परिचय सटीक	,,	चकना
वैराग्य प्रकाश सटीक	,,	चकना
अध्यात्म तत्व संवाद	,,	चकना
सद्धर्म चंद्रिका	,,	वाराणसी
लघुधर्म चंद्रिका	,,	

श्री हनुमान साहेब षटशास्त्री कृत इतर साहित्य

विचार चंद्रोदय	वाराणसी
विचार सागर (शुद्ध हिन्दी भाषांतर)	चकनामठ
तत्वार्थ मणि मंजुषा (विचार सागर का संस्कृत अनुवाद)	,,
भक्त चरितम्	,,

भगवद्गीता (संस्कृत टीका)	चकनामठ
भगवद्गीता (हिन्दी टीका)	"
तत्वार्थ मणिमाला	"
तत्वार्थ दोहावली	बड़ोदा
अनंतपरिचय तथा अनंत सागर (सटीक)	चकना
मनोबोध	"
संशय खण्डनम् सटीक	"
ब्रह्मसूत्र (स्वतंत्र टीका)	"
ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य टीका	वाराणसी
खण्डन खण्ड खाद्य भाषा टीका	"
चित् सुखी भाषा टीका	"
दिव्य नामावली टीका सहित	"
ईशावास्योपनिषद् (संस्कृत हिन्दी टीका)	"
केनोपनिषद् "	"
रहस्यैकता	"
कठोपनिषद् (संस्कृत-हिन्दी टीका)	प्रेस में

श्री ब्रह्मलीन मुनि सूरत

बीजक सटीक	सूरत
कबीर स्वामी की अमृतवाणी	बनारस
सद्गुरु कबीर के राम	सूरत
सद्गुरु कबीर चरितम्	बड़ोदा
निरुक्त हिन्दी व्याख्या[1]	"
योग दर्शन हिन्दी टीका[2]	"

श्री कबीर आश्रम खरसिया (लहरतारा)

श्री प्रकाशमणिनाम साहेब (श्री विचार साहेब शास्त्री)

कबीर साहेब का बीजक	"
बीजक टीका सहित	"
साखी ग्रन्थ सटीक	"
संध्या पाठ सटीक	"
बंदगी विचार	"
सत्यनाम	"

१. महर्षि यास्क रचित । २. महर्षि पतंजलि रचित ।

सद्गुरु कबीर साहेब का संक्षिप्त जीवन
चरित तथा कबीर शब्द की व्याख्या
ब्रह्म निरुपणम्

कबीर आश्रम बड़ैया गद्दी

सुरति शब्द संवाद	श्री मदन साहेब	
शब्द विलास	,,	
नाम प्रकाश	,,	
शब्द प्रकाश	श्री जवाहिर पति साहेब	
मुक्ति प्रकाश	श्री मोहन पति साहेब	

अन्य सन्त

गुरु चेला संवाद	श्री रामलाल साहेब	वाराणसी
निर्पक्ष रत्नाकर	,,	
बोध बयालिस	,,	,,
व्याख्या सत्यासत्य निर्णय	,,	,,
कबीर पारख बूटी	,,	,,
मुक्तावली गारी	,,	,,
गुरु चेला संवाद की चटनी	,,	,,
संतोष सुख	,,	,,
जीवन परख	श्री अनुराग साहेब	फैजाबाद
सृष्टि पर दृष्टि	श्री अवध साहेब	वाराणसी
पचग्रन्थी	श्री कुन्जल साहेब	पावा स्थान
सद्गुरु कबीर	श्री रामनन्दन साहेब	समस्तीपुर
वैराग्य अमृत जीवन	श्री संतशरण साहेब	वाराणसी
जिन्दाबोध प्रकाश		
शब्द प्रकाश	श्री धर्म साहेब	पूर्णिया
कबीर भजन माला	श्री शम्भू साहेब	वम्बई
कबीर संगीत रत्नमाला	,,	,,
सारदर्शन	,,	,,
सदुपदेश मणिमाला	,,	वड़ोदा
चौका चंद्रिका	श्री सुकृत दास साहेब	रायगढ
सत्कबीर महापुराण	,,	वंगलौर
बीजक टीका	,,	
चौका विधान	श्री वंसूदास	वम्बई

कबीर कसौटी	श्री लहनासिंह साहेब	बम्बई
कबीर भनित प्रकाश	श्री परमानन्द शास्त्री	लाहौर
कबीरमंशूर	,,	बम्बई
शांति और क्रांति के कवि	,,	लाहौर
अभयसागर	श्री सजीवन दास कबीरपंथी	छपरा
वंशपांजी का वास्तविक तत्व अथवा मोक्ष सोपान	महंत श्री सूरतदास	होशंगाबाद
श्री सद्गुरु सत्कबीर भजनमाला	श्री तुलसी साहेब	अहमदाबाद
सत्कबीर पदामृतम् अर्थात चेतन शब्दावली	संत श्री मोतीदास	बड़ौदा
सिद्धांत दीपिका	श्री बाबा आनंददास क० पं०	रांची
सत्कबीर की शब्दावली	श्री मणिलाल तुलसीदास मेहता	बड़ौदा
सत्यनाम		,,
सद्गुरु कबीर साहेब	,,	,,
कबीर आद्य जीवन प्रकाश	,,	,,
सर्वाजीत पडित की गोष्ठी	,,	,,
सदभिनन्दन तथा बीजकसार	श्री जयंतीलाल मणिलाल मेहता श्री चंद्रकांत मणिलाल मेहता	,,
अनुराग सागर	सं० श्री युगलानंद	बम्बई
अमर मूल		,,
अमर सिंह बोध		,,
आगमनिगम बोध		,,
आत्म बोध		,,
उग्रगीता		,,
एकोत्तर शतक		,,
कबीर उपासना पद्धति		,,
कबीरपंथी बाल उपदेश		,,
कबीरवाणी		,,
कबीरसागर तथा बोधसागर		,,
कबीरमीनागीता		,,
कमाल बोध		,,
कर्म बोध		,,
कायापांजी		,,

गुरुमाहात्म्य	सं० श्री युगलानंद	बम्बई
गरुड़ बोध		"
कबीर कृष्णगीता		"
कबीरपंथी शब्दावली		"
कबीर मोहम्मद बोध		"
काफिर बोध		"
चौका स्वरोदय		"
जगजीवन बोध		"
जैनधर्म बोध		"
जीव धर्म बोध		"
ज्ञान गुदरी		"
ज्ञान प्रकाश		नरसिंहपुर
ज्ञान बोध		बम्बई
ज्ञान सागर		"
ज्ञानस्थिति बोध		"
ज्ञान स्वरोदय		"
पचमुद्रा		"
पूर्णिमाव्रत कथा		बड़ौदा
बोध सागर		"
भवतारण बोध		बम्बई
भोपाल बोध		"
लक्ष्मण बोध		"
विश्व बोध		वाराणसी
वीरसिंह बोध		बम्बई
श्वासगुंजार		"
सत्यकबीर की साखी		"
सर्वज्ञ सागर		"
साखी सटीक		"
सुमिरन बोध		"
सुलतान बोध		"
स्वसंवेद		"
हनुमान बोध		"

बाहरी रचनायें

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
अनाहत	श्री राजेन्द्र नारायण शर्मा	रायपुर
अम्बुसागर	स्वामी श्री नन्हेंलाल मुरलीधर	नरसिंहपुर
आधुनिक कबीर	श्री राजवल्लभ सिंह	इलाहाबाद
आधुनिक कबीर एक अध्ययन	श्री विश्वनाथ प्रसाद दीक्षित	,,
ईश्वरदास	श्रीमती पार्वती बाई	नरसिंहपुर
उत्तरी भारत की संत परम्परा	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद
उपदेश रत्नावली		अलीगढ़
कबीर	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	बम्बई
कबीर	श्री कृष्णदेव शर्मा	दिल्ली
कबीर	प्रभा दीक्षित	,,
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी	,,
कबीर	सं० श्री बालकृष्ण	,,
कबीर	श्री भारत भूषण सरोज	वाराणसी
कबीर	श्री महावीर प्रसाद गहलोत	इलाहाबाद
कबीर	श्री मुकुन्ददेव शर्मा	वाराणसी
कबीर	श्री राजनाथ शर्मा	,,
कबीर	श्री विजयेन्द्र स्नातक	दिल्ली
कबीर आत्मबोध	स्वामी श्री शंकरानन्द भारती	हैदराबाद
कबीर आद्य जीवनप्रकाश	श्री शिवव्रतलाल	अलीगढ़
कबीर और उनका काव्य	डा० भोलानाथ तिवारी	दिल्ली
कबीर और कबीरपंथ	डा० केदारनाथ द्विवेदी	इलाहाबाद
कबीर और गोरख की तुलना	श्री ब्रह्मदत्त शर्मा	पंजाब
कबीर और जायसी	श्री शिवमूर्ति शर्मा	इलाहाबाद
कबीर और जायसी एक मूल्याकन	श्री रामगोपाल शर्मा व श्री प्रतापचंद्र जायसवाल	आगरा
कबीर और जायसी का मूल्यांकन	श्री पुरुषोत्तम चन्द्र बाजपेयी	वाराणसी
कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक विवेचन	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	आगरा
कबीर और मायावाद	श्री रामनिवास	हैदराबाद
कबीर उपदेश	सं० श्री ठाकुरदास	बम्बई

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर उपासना पद्धति	श्री मकण जी कुबेर	बम्बई
कबीर एक अध्ययन	श्री रामरतन भटनागर	इलाहाबाद
कबीर एक नव्यबोध	श्री बैजनाथप्रसाद शुक्ल	लखनऊ
कबीर एक विवेचन	डा० सरनामसिंह शर्मा	दिल्ली
कबीर एक विश्लेषण	आल इंडिया रेडियो	,,
कबीर एक विश्लेषण	श्री शिवदानसिंह चौहान	बनारस
कबीर : कल्पना शक्ति और काव्य सौंदर्य	श्री ब्रह्मदत्त शर्मा	शिमला
✓कबीर का रहस्यवाद	डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद
कबीर काव्य	श्री वेदप्रकाश	हैदराबाद
कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन	श्री भागवत प्रसाद दूबे	दिल्ली
कबीर काव्य का विशेष अध्ययन	श्रीमती पुष्प कुमारी शर्मा	सोलंक
कबीर काव्य कौस्तुभ	श्री बालमुकुन्द गुप्ता	आगरा
कबीर का समकालीन भक्ति समाज	श्री अरुण शास्त्री	पटना
✓कबीर का सहज दर्शन	श्री लाला जयबहादुर	लखनऊ
कबीर का सामाजिक दर्शन	श्री प्रहलाद मौर्य	कानपुर
कबीर की कार्य कला	श्री मुरारीलाल शर्मा	आगरा
कबीर की काव्य साधना	श्री केदारनाथ कालधर व श्री प्रभाकर मिश्र	
कबीर की भक्ति भावना	श्री विलियम द्वायर	दिल्ली
कबीर की भाषा	श्री महेन्द्र	दिल्ली
कबीर की भाषा	डा० माताबदल जायसवाल	इलाहाबाद
कबीर की विचारधारा	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	आगरा
कबीर की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन (अप्रकाशित)	माधुरी पुरी	इलाहाबाद
कबीर की सुबोध साखियां	श्री वियोगी हरि	दिल्ली
कबीर के काव्य रूप	श्री नजीर मुहम्मद	अलीगढ़
कबीर के धार्मिक विश्वास	श्री धर्मपाल मैनी	चण्डीगढ़
कबीर के बोल	सं० श्री अशोक	
कबीर के शब्द	मथुरा पुस्तक मंदिर	दिल्ली

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर के ज्ञान व उपदेश	श्री जनक लाल	नरसिंहपुर
कबीर कोष	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद
कबीर ग्रंथावली	डा० श्यामसुन्दर दास	वाराणसी
कबीर ग्रंथावली	डा० पारसनाथ तिवारी	इलाहाबाद
कबीर ग्रंथावली	श्री माताप्रसाद गुप्त	आगरा
कबीर ग्रंथावली सटीक	श्री एल० बी० अनन्त	दिल्ली
कबीर ग्रंथावली सटीक	डा० पुष्पलाल सिंह	दिल्ली
कबीर ग्रंथावली सटीक	श्री भगवतस्वरूप मिश्र	आगरा
कबीर ग्रंथावली सटीक	श्रीमती सावित्री शुक्ल व श्री राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	लखनऊ
कबीर ग्रंथावली की भाषा	श्री विन्धु माधव मिश्र	दिल्ली
कबीर चरित्र बोध		बम्बई
कबीर जनजागरण		वाराणसी
कबीर ज्ञान टीका सहित	श्री शुकदेव प्रसाद	इलाहाबाद
कबीर ज्ञान समाज		गुड़गांव
कबीर तथा नानक का तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)	पद्मा मिश्र	श्रीनगर (गढ़वाल)
कबीर दर्पण		बम्बई
कबीर दर्शन	श्री रामजीलाल सहायक	लखनऊ
कबीर दास	श्री कान्ति कुमार	ग्वालियर
कबीर दास	श्री नरोत्तमदास स्वामी	लाहौर
कबीर दास	श्री नौसरवन जी	मद्रास
कबीर दास	श्री वियोगी हरि	दिल्ली
कबीर दास	श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	आगरा
कबीर दास की वाणी		इलाहाबाद
कबीर दास के भजन	सं० श्री शालिग राम	आगरा
कबीर दास कृत रमैनी	श्री गारसन द तासी	वाराणसी
कबीर दास जी का शब्द	भार्गव पुस्तकालय	,,
कबीर दास सटीक	कांतिकुमारी	ग्वालियर
कबीर दास सटीक	श्री वियोगी हरि	दिल्ली
कबीर दोहावली	आर० जी० गर्ग एण्ड कंपनी	आगरा
कबीर दोहावली	श्री हरिमोहन भाव जी	कलकत्ता

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर दोहावली	श्री महेन्द्रकुमार जैन	मद्रास
कबीर निरंजन गोष्ठी	श्री धर्मदास	नरसिंहपुर
कबीर निर्देशन	डा० सरनामसिंह शर्मा	राजस्थान
कबीरपंथ और दरियापंथ (अप्रकाशित)	श्री सुरेशचन्द्र मिश्र	इलाहाबाद
कबीरपंथी नीतिदर्श	कबीरवाणी	भागलपुर
कबीरपंथ पर पंथेतर प्रभाव का आलोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)	श्री वेदप्रकाश गिलड़ा	श्रीनगर (गढ़वाल)
कबीरपद संग्रह	श्री किशनलाल उदासी	बम्बई
कबीर पदावली	सं० श्री चुन्नीलाल	दिल्ली
कबीर पदावली	स० श्री बरसानेलाल चतुर्वेदी	मथुरा
कबीर पदावली	सं० डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद
कबीर परम्परा	श्री कांतिकुमार भट्ट	"
कबीर परम्परा गुजरात के सन्दर्भ में	श्री कांतिकुमार भ	"
कबीर परिचय		कलकत्ता
कबीर परिचय (संस्कृत अनुवाद)	श्री रामरूप पाण्डेय	
कबीर प्रश्नोत्तरी	श्री कैलाशचन्द्र वार्ष्णेय	कानपुर
कबीर बोध	श्री भगवानदास राम जी	"
कबीर भजन रत्नावली	सं० श्री रामविलास शर्मा	बनारस
कबीर भजनावली	सं० श्री गौगादास	नरसिंहपुर
कबीर महिमा	सं० श्री शिवनारायण तोषनिया	बीकानेर
कबीर मीमांसा	डा० रामचन्द्र तिवारी	इलाहाबाद
कबीर मूल्यांकन का एक और विकास	श्री मत्स्येन्द्रनाथ शुक्ल	इलाहाबाद
कबीर वचनामृत तथा जीवन चरित्र	सं० श्री ओंकारनाथ भारद्वाज	लाहौर
कबीर वचनामृत सार	श्री मुन्शीराम शर्मा	कानपुर
कबीर वचनावली	श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध"	वाराणसी
कबीर वचनावली	श्री भवानी शंकर श्रीधर	वाराणसी
कबीर वचनावली	श्री एस० एस० दास	"
कबीर वांग्मय (छह खंडों में)	डा० जयदेवसिंह डा० वासुदेवसिंह	"

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर वाणी	कमल प्रकाशन	इन्दौर
कबीर वाणी	सं० श्री श्रवणसिंह शर्मा	आगरा
कबीर वाणी की प्राचीनतम टीका	डा० पारसनाथ तिवारी	इलाहाबाद
कबीर वाणी पीयुष	डा० जयदेवसिंह डा० वासुदेवसिंह	वाराणसी
कबीर वाणी संग्रह	डा० पारसनाथ तिवारी	इलाहाबाद
कबीर वाणी सटीक	श्री पन्नालाल जैन	छतरपुर
कबीर वाणी सार	माया अग्रवाल	दिल्ली
कबीर वाणी सुधा	डा० पारसनाथ तिवारी	इलाहाबाद
कबीर वाणी सुधा सटीक	डा० पारसनाथ तिवारी	,,
कबीर विमर्श	डा० सरनामसिंह शर्मा	दिल्ली
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	श्री मत्स्येन्द्रनाथ शुक्ल	इलाहाबाद
कबीर : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व	श्री चन्द्रमोहन सिंह	,,
कबीर : व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं सिद्धान्त	डा० सरनामसिंह शर्मा	गुलाबपुरा
कबीर शतक	सं० श्री अक्षयराम	वाराणसी
कबीर शतक सटीक	श्री अखीराम	,,
कबीर शलाका	श्री अक्षयराम	,,
कबीर शब्द संग्रह	महन्त श्री बालकदास	कानपुर
कबीर शब्दावली	महर्षि श्री शिवव्रतलाल	अलीगढ़
कबीर संगीत रत्नमाला	श्री मल्ला साहेब	बम्बई
कबीर संगीत भजनामृत	श्री रामअवतार	दिल्ली
कबीर संग्रह	श्री सीताराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद
कबीर संग्रह	श्री योगेन्द्रनाथ शर्मा तथा श्री तेज नारायण टण्डन	लखनऊ
कबीर संग्रह संजीवनी सटीक	डा० पारसनाथ तिवारी	इलाहाबाद
कबीर सत्संग योग		लखनऊ
कबीर साखी	सं० श्री गंगाप्रसाद वर्मा	लखनऊ
कबीर साखी और पद	श्री शिवाजी विद्यापीठ	कोल्हापुर
कबीर साखी संग्रह		इलाहाबाद
कबीर साखी समीक्षा	डा० पुष्पपाल सिंह	दिल्ली
कबीर साखी सटीक	श्री मोहन प्रदीप	आगरा

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर साखी सार	श्री ताराकांत बाला व रामवशिष्ठ	आगरा
कबीर साखी सार सटीक	श्री ताराकांत बाली व रामवशिष्ठ	,,
कबीर साखी सुधा	श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव	,,
कबीर साखी सुधा सटीक	श्री हरिहरनाथ टंडन व श्री भगवतस्वरूप मिश्र	,,
कबीर साधना और साहित्य	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	
कबीर साहित्य का अध्ययन	श्री पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव	वाराणसी
कबीरपंथी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)	कु० उमा ठुकराल	श्रीनगर (गढ़वाल)
कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	श्री आर्य प्रसाद तिवारी	सागौर
कबीर साहित्य की परख	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद
कबीर साहित्य की भूमिका	श्री रामरतन भटनागर	इलाहाबाद
कबीर साहित्य चिंतन	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	कानपुर
कबीर साहित्य में प्रयुक्त शब्दावली	श्री भागीरथ प्रसाद यादव	भागलपुर
कबीर साहित्य व सिद्धान्त	श्री यज्ञदत्त शर्मा	दिल्ली
कबीर साहित्य समीक्षा	श्री शिवस्वरूप गुप्त	लखनऊ
कबीर साहेब का ज्ञान गुदरी व रेखते	बेलवेडियर प्रेस	इलाहाबाद
कबीर साहेब का शब्द सागर		मुरादाबाद
कबीर साहेब की शब्दावली	श्रीविशुनदास साहब	वाराणसी
कबीर साहेब की शब्दावली	श्री बालेश्वर प्रसाद	इलाहाबाद
कबीर साहेब की शब्दावली (चार खंडो मे)	बेलवेडियर प्रेस	इलाहाबाद
कबीर साहेब की शब्दावली जीवन चरित्त सहित	,,	,,
कबीर साहेब की साखी सटीक	श्री राजा शिव प्रसाद	फर्रुखाबाद
कबीर साहेब जी के शब्द		वाराणसी
कबीर साहेब तथा समुदय संत वाणी	श्री शंकर हरि भाई	बम्बई

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर सिद्धांत सार व नि:अक्षर प्रकाश		कानपुर
कबीर सुधा	श्री हरिहरनाथ टंडन	आगरा
कहैं कबीर	श्री चंद्रदेव सिंह	दिल्ली
काशी का जुलाहा	श्री प्रेम चंद्र	"
क्रांति कबीर	श्री गोविन्द लाल छावड़ा	"
ग्रन्थ नाम प्रकाश	श्री अमरनाथ बहल	इलाहाबाद
जिंद कबीर की संक्षिप्त चर्चा (विचार विमर्श में संकलित)	श्री चन्द्रबली पांडेय	"
तंत्र और संत	डा० राममूर्ति त्रिपाठी	"
तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन	श्री रवीन्द्र कुमार सेठ	दिल्ली
दीनबन्धु कबीर	श्री तारानाथ	तुंगभद्रा
दोहावली	उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	कलकत्ता
धनी धर्मदास की शब्दावली	बेलवेडियर प्रेस	इलाहाबाद
बाल सुधार शिक्षा		वाराणसी
बीजकसार कबीरपंथ		शाहजहांपुर
भारत पुत्र उर्फ भक्त कबीर	श्री जमुनादास मेहरा	अमृतसर
मध्यकालीन निर्गुण संतो की अद्वैत परम्परा	श्री विश्राम यादव	वाराणसी
महात्मा कबीर	श्री मोहम्मद हनीफ	लखनऊ
महात्मा कबीर और महात्मा गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन	श्री रामजी लाल	दिल्ली
महात्मा कबीर की कुंजी	श्री रामलाल अग्रवाल	लाहौर
महात्मा कबीर जी का जीवन, कविता और सतोपदेश	श्री गंगा राम जी	
महात्मा कबीर विश्लेषण	श्री हरिहर निवास द्विवेदी	लाहौर
मुक्ति पथ (कबीर पर ड्रामा)	श्री महादेव प्रसाद मिश्र	जबलपुर
युगद्रष्टा कबीर	श्री ताराकांत बाली	आगरा
युगपुरुष कबीर	श्री रामलाल वर्मा	वाराणसी
रहस्यवाद	डा० राममूर्ति त्रिपाठी	दिल्ली

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
रमैनी	सं० श्री महाराजनाथ सिंह	वाराणसी
राग रत्नाकर तथा भक्त शिरोमणि	श्री नारायण प्रसाद मिश्र	बम्बई
वैराग्य रत्नाकर	श्री साहेब दास	बम्बई
वैष्णव कबीर	श्री स्वामी योगिराज गोवत्स	हरिद्वार
शब्द सागर		पटना
शब्दावली	श्री शतपददास लक्ष्मणदास	टिपारी
श्री कबीर चालीसा	श्री शिव प्रसाद तांबिया	वाराणसी
श्री कबीर साहेब का जीवन चरित	श्री जनक लाल	नरसिहपुर
श्री गुरुदेव कबीर	श्री बाल कृष्ण दास	संतवाणी प्रकाशन
संत कबीर	डा० उर्वशी सुरती	इलाहाबाद
संत कबीर	श्री क्रांति कुमार भट्ट	हैदराबाद
संत कबीर	डा० रामकुमार वर्मा	इलाहाबाद
संत कबीर दर्शन जीवन और कर्तृत्व की आलोचना	श्री राजेन्द्र सिंह गौड़	इलाहाबाद
संत कबीर वाणी	श्री भगवतस्वरूप मिश्र	आगरा
संत कबीर शब्दावली	श्री बनवारी	
संत काव्य और सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित)	श्री रुद्रदेव तिवारी	इलाहाबाद
संत काव्य धारा	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	इलाहाबाद
संत वाणी	सं० श्री वियोगी हरि	दिल्ली
संत सुधासार	श्री वियोगी हरि	दिल्ली
संतोष बोध	श्री संत बालादास	बम्बई
सत्कबीर वचनावली	श्री तेजनारायण टंडन व योगेन्द्र शर्मा	लखनऊ
सत्य दर्शन	श्री कोदीराम दास	नागपुर
सत्यनाम श्री गुरुदेव कबीर सागर	श्री बालकृष्णदास	संतवाणी प्रकाशन
सद्गुरु कबीर साहेब की अखरावती	बेलवेडियर प्रेस	इलाहाबाद

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
साखी सटीक	श्री दिकपाल सिंह	इलाहाबाद
साखी भावार्थ बोधिनी सटीक	डा० जयदेव सिंह वासुदेव सिंह	वाराणसी
हंस मुक्तावली	श्री रामलाल दयाल दास	बम्बई
हंस मुक्तावली गुजराती करेक्टर्स		बम्बई
हिन्दी कवि चर्चा	श्री चन्द्रवली पांडेय	वाराणसी
हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय (अनुवाद)	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	लखनऊ
हिन्दी के दो प्राचीन कवि कबीर और तुलसी	श्री कुंजलाल कनोड़िया	कलकत्ता
हिन्दी गीति काव्य	डा० राम कुमार वर्मा	इलाहाबाद
हिन्दी साहित्य का अतीत	श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	वाराणसी

हस्तलिखित (अप्रकाशित) रचनायें

निर्भय ज्ञान
मूल ग्रंथ वंशावली
एकोत्तर अर्ज
खुदबानी
आसा सागर
कबीर जी की परिचई
जन्मौती मंगल
धर्मदास गुसाईं की समाधि
मूल ज्ञान
ज्ञान तिलक
दीपक सागर
अवदाल मात्रा
स्वांसा मोदकसार
चौतीसी

पत्र-पत्रिकायें	संपादक	प्रकाशन स्थल
कबीर संदेश		बाराबंकी
स्वसंवेद		बड़ोदा
वंश परिचय		दामाखेड़ा
वतमान की		
कबीरपथ	महंत भगवान दास	दिल्ली

पुस्तक	संपादक	प्रकाशन स्थल
कबीर शांति संदेश	श्री श्याम साहेब शास्त्री	वाराणसी
कबीर चौरा	विवेकदास	,,
पारख प्रकाश	अभिलाष दास	कलकत्ता

अन्य भाषायें

अंग्रेजी

सोर्सेस आफ इन्सपीरेशन आफ हिन्दी निर्गुण लिटरेचर विथ स्पेशल रिफरेन्स टू कबीर एन्ड गुरुनानक	श्री हरिवंश लाल	पंजाब
ए कंपेरेटिव स्टडी आफ मिस्टिसिज्म आफ हिन्दी पोयट कबीर एन्ड द कश्मीरी पोयटस् लालेश्वरी	डा० मोहिनी कौल	
ए क्रिटिकल स्टडी आफ द लिटरेरी फार्मस इन कबीर पोयट्री	श्री नजीर मुहम्मद	अलीगढ़
योग साधना आफ संत कबीर एन्ड हिज फिलासाफी बैक ग्राउंड	श्री ओम प्रकाश	पंजाब
ए क्रीटकल स्टडी आफ द फिलास-फिकल इन्टरप्रेटेन्शन्स आफ कबीर	श्री गिरीशचन्द तिवारी	वाराणसी
ए कंपेरेटिव स्टडी आफ कबीर एन्ड रमन	श्री वेंकटेश्वर रेड्डी	लखनऊ
ए ट्रांसलेशन आफ कबीरस् कंप-लीट बीजक इन टू इंगलिश,	श्री प्रेमचंद	कलकत्ता
द बीजक आफ कबीर ट्रांसलेटेड इन टू इंगलिश	श्री रेवरेंड अहमदशाह	हमीरपुर
वन हन्ड्रेड पोयमस् आफ कबीर	श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर	लंदन
बीजक (ट्रांसलेटेड)	लिडाहेसव डा० शुकदेवसिंह	अमेरिका
कबीर : द एपोसल ऑफ हिंदूमुसलिम यूनिटी	मोतीलाल बनारसीदास मुहम्मद हिदायतुल्ला	दिल्ली
कबीर (ट्रांसलेटेड फ्राम द ओरिजनल इनवर्सस)	श्री एस० एच० झाववाला	बम्बई

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर (टासलेटेड फ्राम हिन्दी)	कु० शार्लात वौदविल	आक्सफोर्ड
लाइटस् आफ सद्गुरु कबीर	एस० बलवाली	बड़ौदा
बीजक आफ कबीर		दिल्ली
द सेइंग्स आफ कबीर	श्री लाला कन्नूमल	मद्रास
कबीर द ग्रेट मिस्टिक	श्री राधास्वामी सत्सग	
कबीर	श्री जोध सिंह	पंजाबी यूनिवर्सिटी
कबीर एन्ड हिज फालोवर्स	डा० रेवरेंड एफ० ई० की	कलकत्ता
कबीर	डा० प्रभाकर माचवे	दिल्ली
डिवाइनमलैडि (डिसकशन आन सांग्स आफ कबीर	श्री रजनीश फाउंडेशन	पूना
पथ आफ लव (टाक्स आनद सांग्स आफ कबीर)	श्री रजनीश फांउडेशन	पूना
कबीर एन्ड द भक्ति मूवमेट	श्री मोहन सिंह	लाहौर
कबीर द अपोस्टल आफ पीस इन इंडिया	श्री ए० आर० वादिया	मद्रास
कबीर एण्ड द कबीर पथ	श्री रेवरेंड जार्ज हर्बर्ट वेस्कट	कलकत्ता
द क्वैस्ट फार दी जैनविन "विद स्पेशल फिरेस टू दीपोयम्स आफ कबीर		लंदन
कबीर	श्री पारस नाथ तिवारी अनुवाद जे० पी०उनियाल	दिल्ली
निगुण स्कूल आफ हिन्दी पोइट्री	डा० पीताम्बरदत्त बर्थ्वाल	वाराणसी
कबीर बायोग्राफी एण्ड फिलासफी	रामकुमार वर्मा	दिल्ली
हू एम आई	अभिलाष दास अनुवाद लखी एन परियानी	इलाहाबाद
व्हाट इज् लाइफ	अनुवाद लखी एन परियानी	अप्रकाशित
सेलेक्टेड पोयम्स आफ टू बीजक आफ कबीर	डा० शुकदेव सिंह व लिडा हेस	वाराणसी
	बंगाली	
कबीर: हिन्दी भाषा मूल बागला आध्यात्मिक व्याख्या सह	श्री रामचनन भट्टाचार्य	कलकत्ता
कबीर बगाली अनुवाद		,,
कबीर (चार भाग)	डा० क्षितिमोहन सेन	,,
अविनाशी कबीर गीता	श्री श्यामचरन गौड़ उपाध्याय	,,

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर वानी सटीक	श्री योगेशचन्द्र मजुमदार	कलकत्ता
सद्बोध निकाय	श्री महेन्द्रनाथ साव	,,
दोहावली (तुलसी-कबीर की तुलना)	श्री वैष्णवाचार्य बासक	,,
सानुवाद दोहावली (तुलसी, कबीर तथा अन्य हिन्दी कवि की तुलना)	श्री काली प्रसन्न विद्यार्थी	,,
कबीर पंथ	श्री भुवानन्द स्वामी	
युगे युगे	श्री पांडुरंग चट्टोपाध्याय	,,
भक्त कबीर	श्री उपेन्द्र कुमार दास	,,
कबीर (कबीर जीवन)	श्री धीरेन्द्र कुमार गंगोपाध्याय	,,
परम भागवत महात्मा कबीर	श्री अमरेन्द्र कुमार घोष	,,
जलालुद्दीन रूमी और कबीर	श्री यतेन्द्रनाथ	,,
महात्मा कबीर जीवनी व बानी	श्री पूरनचन्द्र मुखोपाध्याय	,,
अमिय कबीर	श्री कालीचरन पाल	,,
भजन गीतिका (कबीर वचन)	श्री हृदयराय	,,
युगे युगे कबीर	श्री मोतीलाल राय	,,
भारतीय साधक (कबीर, बुद्धादि छह)	श्री शरदकुमार राय विद्यार्थी	इलाहाबाद
कबीर	श्री योगेन्द्रनाथ सरकार	कलकत्ता
कबीर	श्री पी० भट्टाचार्य	,,
दोहावली	श्री अ० मुखोपाध्याय	,,
मध्ययुगेर सन्त कवि	श्री अतुलचंद मुखोपाध्याय	,,
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद श्री एस० एस० मुखोपाध्याय	दिल्ली

गुजराती

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर दर्पण		बम्बई
कबीर लीलामृत	श्री छगनलाल त्रिकमदास ठाकुर	अहमदाबाद
कबीर वचनावली	श्री पिनाकी त्रिवेदी और श्री रघुवर उपाध्याय	देहली
कबीर काव्य	श्री पोपटलाल हंसराज सेठ	अहमदाबाद
कबीर तीसा यंत्र	महंत मलूकदास जी	सूरत

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर वानी स व्याख्या	श्री बहरामजी फिराजशाह मदन	बम्बई
महात्मा कबीर वानी	श्री वेदीलाल मोतीलाल शाह	अहमदाबाद
सत्कबीर वचन	महंत मायादास जी	,,
कबीर	श्री धनवंत ओझा	,,
संध्यापाठ		बुरहानपुर
निर्णयसार		,,
कबीर साहेब जीवन चरित्र	श्री मणिलाल तुलसीदास मेहता	अहमदाबाद
कबीर साहेब की साखियां	,, ,,	बड़ोदा
कबीर साहेबनां भजन	,, ,,	,,
सद्गुरु कबीर साहेबना साहित्यनी प्रस्थान त्रयी	श्री जयंतिलाल मणिलाल मेहता व श्री चन्द्रकान्त मणिलाल मेहता	बड़ोदा
कबीर जीवन प्रकाश	भक्त कवि पटेल डाह्या भाई झबेर भाई	बड़ोदा
कबीर नो वाणी	श्री जयेन्द्र त्रिवेदी	मुबई
कबीर	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी अनुवाद श्री किसनसिंह चावड़ा	अहमदाबाद
बीजक ग्रंथ गुजराती टीका	श्री मणिलाल तुलसीदास मेहता	बड़ोदा
कबीर साहब नु बीजक	श्री प्राणलाल प्रभाशकर बखशी	बड़ोदा
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली
मै कौन हूं	अभिलाषदास अनुवाद डी० एम० बारिया	

कन्नड़

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
कबीर वचनावली	अनुवादक डी० आर० बेन्द्रे	देहली
कबीर दास	श्री हुबली	
कबीर दास	श्री हिरण्यम	मैसूर
संत तुकाराम एवं संत कबीर	श्री केशवानद भद्र गिरि	बैंगलोर
कबीरदास नाटकम्	श्री नरहरि श	,,
कबीरदास चरित्र नाटकम्	श्री रामशर्मा यंगर	मैसूर
कबीर वचनामृत	रंगो पंत करुणा प्रकाशन	
क बीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
	मलयालम	
कबीरिते गीतानल	[श्री कुतातुकुलम मार्य जान	कोट्टायम्
भारत तिलुते		पालघाट
महात्मा कबीरदास	श्री कंठ पोतवाल	
गीतांगल	श्री कुतातुकुलम्	कोट्टायम
	मराठी	
श्री कबीर वचनावली	श्री भवानी शंकर श्री धर पंडित	नागपुर
कबीर का बोल	श्री वामन जनार्दन	पवनार
संतकबीर	श्री पेंढरकर	पूना
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	
	श्री अशोक प्रभाकर कामत	दिल्ली
	उड़िया	
कबीर साहिब दोहावली	श्री कमललोचन वादल	कलकत्ता
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली
	पंजाबी	
सलोक, २४३ साखियों का संग्रह		लाहौर
सलोक सटीक	श्री निहाल सिंह ज्ञानी	,,
सलोक सटीक		अमृतसर
सलोक भगत कबीर जी सटीक	श्री साहेब सिंह भाई अर्जुन सिंह	
सलोक भगत कबीर सटीक	श्री नारायन सिंह	अमृतसर
कबीर वचनावली	श्री संतोष सिंह धीर	पटियाला
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली
	संस्कृत	
भक्ति पुष्पांजलि	श्री हरिशरण गोस्वामी	बिहार
कबीर सिद्धांत बोधिनी	श्री शम्भूदास कबीरपंथी	बम्बई
कबीर एकोत्तर सटीक		,,
कबीर बीजक संस्कृत टीका	श्री हनुमान साहेब षटशास्त्री	बड़ोदा
कबीर शतक सटीक	श्री अक्षय राम	बम्बई
सद्गुरु कबीर चरितम्	श्री ब्रह्मलीन मुनि	सूरत
सद्गुरु कबीर सहस्रनाम	श्री मनोहर साहेब शास्त्री	खरसिया

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
	सिंधी	
कबीर जी के सलोक	श्री जीवमल लोकसिंह लालवानी	हैदराबाद (सिंध)
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली
	तमिल	
कबीर अरुल्वाकू	श्री टी० शास्त्री "सासदरी"	देहली
कबीरदास रिन असलवरु	श्री टी० वेंकेटकृष्ण अयंगर	मद्रास
कबीर	श्री टी० वेंकेटकृष्ण अयंगर	देहली
कबीर, कमाल तथा अन्य संतों की बानी	श्री मोहनराम सिंह	मद्रास
कबीरदास चरितम्		मद्रास
कबीर और कमाल	श्री सुब्रह्मण्यम् भारती	मद्रास
कबीर	श्री तुलसीराम टी० के०	तमिलनाडु
कबीर-कमालदास कृत नैगल	श्री मोहनराम सिंह	कुन्दुर
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	दिल्ली
	तेलगू	
कबीर वचनावली	श्री पी० नारायणाचार्य	देहली
कबीर गीतांजलि	श्री शिवश्र	
महात्मा कबीरदास	श्री रामकृष्ण शास्त्री	कोंडापल्ली
कबीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद	देहली
	असमी	
मैं कौन हूं	अभिलाषदास अनुवाद दयाल चन्द्र दास	गौहाटी
	उर्दू	
बीजक सटीक	महर्षि शिवव्रतलाल	लाहौर
कबीर और इनसफायत		
क़बीर	डा० पारसनाथ तिवारी अनुवाद एम० के० दुरानी	देहली
कबीर कसौटी	श्री लहना सिंह	
क़बर मंसूर	श्री परमानन्द	फिरोजपुर

पुस्तक	लेखक	प्रकाशन स्थल
	फ्रेंच	
ओं कैबरे दोला मारू कबीर "टैगोर" ला	कु० शार्लात् वौदविल	पेरिस
फ्यूजिटिव	रेनी दी ब्रीमोन्ट	पेरिस
कबीर ग्रंथावली	कु० शार्लात वौदविल	पांडिचेरी
पोयम्स दी कबीर	श्री मीरबौड थोरेंस	पेरिस
ले मिस्तीक दी ले इन दे मिदेवेल	एसोसियेशन फ्रेंके दी एं मीस दील ओरियंथ	पेरिस
	जर्मन	
वेमर कुगेर उबेर दैन इंडिश्चन कबीर	रिफारमेटर प्रोफेसर ट्रंप	जर्मनी
	तुर्की	
हिन्दू सूफी शायर कबीर	श्री सोफी हुरा	सबुल
	स्विस भाषा "स्विटजरलैंड"	
पैरोलेस मिस्टीक्स	श्री एण्ड्रे चेडेल	जेनेवा
	रसियन	
लिरिका	श्री एस० लिप्किन	मास्को
	इटालियन	
मूलपंची	श्री पाद्रे मार्क्स	